बी.एड. स्पेशल (मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा)

स्व-अधिगम सामग्री

SECP-02

First Year

समकालीन भारत और शिक्षा

(Contemporary India and Education)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

बी.एड. स्पेशल (मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा)

स्व–अधिगम सामग्री

SECP-02

First Year

समकालीन भारत और शिक्षा

(Contemporary India and Education)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय,

भोपाल (म.प्र.)

संरक्षक

डॉ० रवीन्द्र कान्हेरे

कुलपति

मार्गदर्शन

श्री अरुण सिंह चौहान

कुलसचिव

संपादक मण्डल

संयोजक

डॉ० वर्षा सागोरकर

निदेशक, बहुमाध्यमीय शिक्षा विभाग

समन्वयक व सलाहकार

डॉ० हेमलता दिनकर

विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग

समन्वयक

डॉ० कंचन जिज्ञासी

रीडर (शिक्षा)

समन्वयक

डॉ० सालेहा सिद्दीकी

लेक्चरर (शिक्षा)

Printed by : **P Square Solutions** Mini Industrial Area Barari Mathura-281005

अनुक्रमणिका

इकाई-1

अध्याय-1	शिक्षा का अर्थ, प्रकृति एवं उद्देश्य	5-60
अध्याय-2	शिक्षा के अभिकरण	61-86
अध्याय-3	शिक्षा के विभिन्न दर्शन	87-100
अध्याय-4	प्रकृतिवाद	101-114
अध्याय-5	प्रयोजनवाद	115-130
अध्याय-6	अस्तित्ववाद	131-142
अध्याय-7	मानवतावाद, संरचनावाद तथा सम्बन्धवाद	143-162
अध्याय-8	पुरातन भारतीय परिपेक्ष्य (बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, वेदान्त दर्शन तथा सांख्यदर्शन)	163-222
अध्याय-9	भारतीय विचारक : श्री अरविन्द का दार्शनिक एवं शैक्षिक चिन्तन	223-240
अध्याय-10	महात्मा गाँधी जी का दार्शनिक चिन्तन	241-268
अध्याय-11	रवीन्द्रनाथ टैगोर का दार्शनिक चिन्तन	269-290
अध्याय-12	जे. कृष्णमूर्ति का दार्शनिक चिन्तन	291-304

इकाई-2

अध्याय-1	विविधता की अवधारणा	305-318
अध्याय-2	विभिन्न सीखने की आवश्यकताओं का सम्बोधन	319-372
अध्याय-3	विविधता : वैश्विक परिप्रेक्ष्य	373-392

इकाई-3

अध्याय-1	शिक्षा का सार्वभौमीकरण	393-422
अध्याय-2	गुणवत्ता एवं समता के पहलू	423-438
अध्याय-3	विशेष रूप से बालिकाओं, गरीब एवं उपेक्षित समूह की शिक्षा	439-470

अध्याय-4	शैक्षिक अवसरों की समानता व असमानता	471-482
अध्याय-5	विद्यालयीकरण में असमानता	483-514

इकाई-4

अध्याय-1	शिक्षा संबंधी संवैधानिक प्रावधान	515-522
अध्याय-2	राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964-66 (कोठारी कमीशन)	523-538
अध्याय-3	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986	539-554
अध्याय-4	संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (1982)	555-568
अध्याय-5	कार्यक्रम तथा योजनाएँ	569-592
अध्याय-6	विशेष तथा समावेशित शिक्षा के संदर्भ में राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय नीतियाँ और कानून	593-626

इकाई-5

अध्याय-1	शिक्षा में मुद्दे एवं प्रवृत्तियाँ	627-646
अध्याय-2	समावेशी, विशेष स्कूलों की पूरकता तथा सामुदायिक शिक्षा	647-672

1 शिक्षा का अर्थ, प्रकृति एवं उद्देश्य

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- शिक्षा की अर्थ
- शिक्षा की प्रकृति
- शिक्षा की प्रक्रिया
- शिक्षा का महत्व
- शैक्षिक उद्देश्यों की आवश्यकता
- शिक्षा के उद्देश्य
- विभिन्न आयोगों के अनुसार शिक्षा शिक्षा के उद्देश्य
- भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य
- शिक्षा के कार्य
- शिक्षा का विषय विस्तार
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- प्राक्कथन
- शिक्षा की अर्थ
- शिक्षा की प्रकृति
- शिक्षा की प्रक्रिया
- शिक्षा का महत्व
- शैक्षिक उद्देश्यों की आवश्यकता
- शिक्षा के उद्देश्य
- विभिन्न आयोगों के अनुसार शिक्षा शिक्षा के उद्देश्य
- भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य
- शिक्षा का विषय विस्तार
- शिक्षा के कार्य

शिक्षा का अर्थ, प्रकृति एवं उद्देश्य

मनुष्य प्रकृति की सर्वोत्तम रचना है। यह सर्वोत्तम रचना असहाय स्थिति में अपने जीवन का अस्तित्व एवं निरन्तरता बनाये रखने के लिए कुछ जन्मजात प्रवृत्तियों को लेकर उत्पन्न होती है। शिक्षा द्वारा उसकी जन्मजात प्रवृत्तियों को शोधन तथा मार्गान्तरीकरण होता है और वह एक सामान्य प्राणी से बौद्धिक एवं सामाजिक प्राणी बन जाता है। स्पष्ट है कि शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। इसके द्वारा ही मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। यह कार्य जन्म से ही नहीं बल्कि माँ के गर्भ से ही शुरू हो जाता है। जन्म के पूर्व यह अनौपचारिक रूप में स्थित रहता है और जन्म के बाद औपचारिक रूप ग्रहण कर लेता है। शिक्षा के द्वारा ही बालक का सर्वांगीण विकास होता है। इस संदर्भ में **जॉन लॉक** का कहना है कि- *"जिस प्रकार पौधों का विकास कृषि द्वारा होता है उसी प्रकार मनुष्य का विकास शिक्षा द्वारा होता है।"* मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इस विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए एवं उसकी महत्ता को दर्शाते हुए **जॉन ड्यूवी** ने कहा है कि- *"जिस प्रकार शारीरिक विकास के लिए भोजन का महत्व है उसी प्रकार सामाजिक विकास के लिए शिक्षा का।"* आज मनुष्य ने आदिम तथा बर्बर जीवन को त्याग कर सभ्य एवं सुसंस्कृत जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया है।

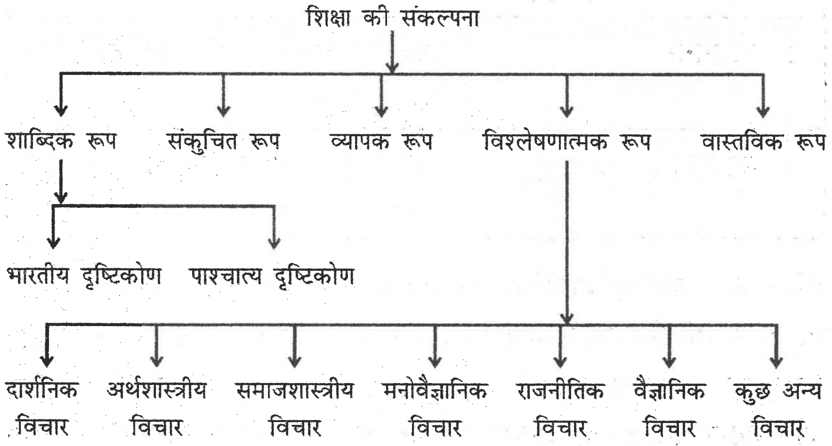

वास्तव में यह सब शिक्षा की ही देन है। इस प्रकार की शिक्षा मानव विकास के लिए आवश्यक ही नहीं बल्कि उसके जीवन की आधारशिला है। शिक्षा वास्तव में ही क्या? इसे जानने के लिए हम कुछ विद्वानों के

विचारों का अवलोकन करेंगे। उन्होंने अपने-अपने अनुसार शिक्षा के अर्थ की पुष्टि की है।

शिक्षा की शाब्दिक संकल्पना

शिक्षा के शाब्दिक अर्थ को दो दृष्टिकोण में विभाजित किया गया है-

(क) **भारतीय दृष्टिकोण में शिक्षा का अर्थ-** शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की शिक्ष् धातु में अप्रत्यय लगने से बना है। शिक्षा का अर्थ है सीखना एवं सिखाना, इस प्रकार शिक्षा का अर्थ सीखने-सिखाने की क्रिया, ज्ञान प्राप्त करना, अध्ययन करना आदि है। शिक्षा शब्द विद्या का पर्याय है। विद्या शब्द की संस्कृत भाषा के विद्य् धातु से बना है जिसका अर्थ है जानना, विद्या ग्रहण करना। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के अनुसार- शिक्षा, शि+क्षा अर्थात् शीयते सर्व पापभ्यों, क्षीयते सर्व वासना सभी पापों और सभी अभिलाषाओं का नाश करना ही शिक्षा है और आवश्यकता से ज्यादा अभिलाषाएँ ही वासना कहलाती है।

(ख) **पाश्चात्य दृष्टिकोण में शिक्षा का अर्थ-** शिक्षा अंग्रेजी भाषा के एजूकेशन शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। एजूकेशन शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के निम्नलिखित शब्दों से मानी जाती है-

शब्द (Words)	अर्थ (Meaning)
1. एडूकेटम (Educatum)	शिक्षित करना
2. एडूसीयर	विकसित करना, किसी छिपी हुई शक्ति को बाहर लाना।
3. एडूकेयर (Educare)	आगे बढ़ाना, बाहर निकालना, संवर्द्धन करना, पालन-पोषण करना

लैटिन भाषा के 'एडूकेटम' (Educatum) शब्द का अर्थ है शिक्षित करना। यह दो शब्दों के योग से बना है। E + catum या E + deco इसमें ई (E) का आशय अन्दर से तथा Catum या deco का आशय अग्रसर होना अथवा आगे बढ़ाना है। अर्थात् अन्दर से बाहर की ओर अग्रसर करना। अब प्रश्न यह उठता है कि अन्दर से बाहर की ओर अग्रसर करने का आशय क्या है? इसका उत्तर यह है कि हर बालक में कुछ अन्तर्निहित जन्मजात प्रवृत्तियाँ होती हैं उन्हें बाहर की ओर विकसित करना। एडूकेटम (Eductum) के

NOTES

अतिरिक्त उक्त दोनों शब्दों एड्सीयर (Educere) तथा एडूकेयर (Educare) का अर्थ यही है। एडूसीयर (Educare) का अर्थ है विकसित करना तथा एडूकेयर (Educare) का अर्थ है आगे बढ़ाना। इस प्रकार शिक्षा शब्द का अर्थ जन्मजात शक्तियों का सर्वांगीण विकास है।

शिक्षा का संकुचित अर्थ

संकुचित अर्थ में शिक्षा से अभिप्राय विद्यालयी शिक्षा से है, जिसमें नियन्त्रित वातावरण में बालक को बिठाकर पूर्व निर्धारित अनुभवों का ज्ञान कराया जाता है, इस प्रकार की शिक्षा की एक निश्चित अवधि होती है तथा प्रौढ़ों द्वारा निध रित पाठ्यक्रम बनाया जाता है। शिक्षा के संकुचित अर्थ में बालक का स्थान गौण तथा शिक्षक का स्थान मुख्य होता है। इस अर्थ के अनुसार व्यक्ति का विद्यालयी जीवन ही शिक्षा काल होता है।

1. **जी. एच. थामसन** के अनुसार, "शिक्षा एक प्रकार का वातावरण है, जिसका प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार की आदतों, चिन्तन और दृष्टिकोण पर स्थायी रूप से परिवर्तन करने के लिए डाला जाता है।"
2. **जे. एस. मैकेन्जी** के अनुसार, "संकुचित अर्थ में शिक्षा से तात्पर्य हमारी शक्तियों के विकास अथवा सम्वर्द्धन करने के लिए चेतनापूर्ण प्रयासों से है।"

शिक्षा का व्यापक अर्थ

शिक्षा का व्यापक अर्थ उन सभी अनुभवों है, जो बालक विभिन्न परिस्थितियों से अर्जित करता है। इस अर्थ के अनुसार 'शिक्षा' आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। बालक को प्राकृतिक वातावरण के साथ अनुकूलन करना पड़ता है। थोड़ी आयु बढ़ने के साथ-साथ युवक सामाजिक एवं आध्यात्मिक वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करते समय अनेक अनुभव प्राप्त करता है। अर्जित अनुभव ही शिक्षा है। सीखने तथा सिखाने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। व्यापक दृष्टि में शिक्षा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक एवं शिष्य दोनों ही हैं। इस शिक्षा प्रक्रिया में नियन्त्रित वातावरण का अंकुश नहीं होता।

1. **डम्बिल** के अनुसार, "शिक्षा के व्यापक अर्थ में वे सभी प्रभाव आते हैं, जो मानव को बाल्यावस्था से लेकर मृत्यु तक प्रभावित करते हैं।"

2. **मैकेन्जी** के अनुसार, "व्यापक अर्थ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जो जीवनपर्यन्त चलती है और जीवन के प्रत्येक अनुभव से उसमें वृद्धि होती है।"

अतः स्पष्ट है कि शिक्षा केवल घर या विद्यालय तक ही सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है।

NOTES

शिक्षा की परिभाषाएँ

महात्मा गाँधी के अनुसार, "शिक्षा का तात्पर्य बालक तथा व्यक्ति के शरीर, मन तथा आत्मा की सर्वोत्तमता का सर्वांगीण प्रकटीकरण है।"

वैदान्तिक दृष्टिकोण के अनुसार, "मनुष्य आध्यात्मिकता का सार है। हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान आध्यात्मिकता की आवश्यकता को तीव्र, सजीव तथा प्रकाशमान करे।"

कौटिल्य के अनुसार, "शिक्षा का अर्थ है देश के लिए प्रशिक्षण और राष्ट्र के प्रति प्यार।"

आचार्य पाणिनि के अनुसार, "मानवीय शिक्षा से अर्थ वह प्रशिक्षण है, जो मनुष्य प्रकृति से प्राप्त करता है।"

मिल्टन के अनुसार, "मेरे विचार में एक सम्पूर्ण तथा उदार शिक्षा वह है, जो मनुष्य को सभी कर्त्तव्य, न्यायसंगत विधि, कुशलता तथा उदार हृदय से सम्पन्न करती है, चाहे वे निजी हों या सार्वजनिक, युद्ध से सम्बन्धित हो या शान्ति से।"

सुकरात के अनुसार, "शिक्षा का अर्थ है, संसार के उन सर्वमान्य विचारों को प्रकाश में लाना जो कि प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में अदृश्य रूप में निहित होते हैं।"

एडवर्ड थ्रिंग के अनुसार, "एक जीवित प्राणी द्वारा, एक जीवित प्राणी को जीवन प्रदान करना ही शिक्षा है।"

शिक्षा की प्रकृति

शिक्षा की प्रकृति के सम्बन्ध में दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों के दृष्टिकोणों से निम्नलिखित तथ्य उजागर होते हैं-

1. शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। इसके मुख्य तीन अंग होते हैं- शिक्षार्थी (सीखने वाला), शिक्षक (सिखाने वाला) तथा पाठ्यक्रम या पाठ्यचर्चा (सीखने-सिखाने की विषय सामग्री)। यह बात दूसरी है कि शिक्षक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उपस्थित रहता है।

2. व्यापक अर्थ में शिक्षा की प्रक्रिया किसी समाज में निरन्तर चलती रहती है, लेकिन संकुचित अर्थ में यह केवल विद्यालयों तक ही सीमित रहती है। अतः हमें शिक्षा को उसके व्यापक रूप में लेना चाहिए।

3. शिक्षा सोद्देश्य प्रक्रिया है, उसके उद्देश्य समाज द्वारा निर्धारित होते हैं तथा विकासोन्मुख होते हैं। अतः शिक्षा विकासात्मक प्रक्रिया है।

4. शिक्षा एक साधन है, जो व्यक्ति के आन्तरिक गुणों को प्रखर बनाती है, उनमें जो अन्तर्निहित शक्तियाँ हैं, उनका विकास करती हैं।

5. शिक्षा का स्वरूप समाज के धर्म-दर्शन, उसकी संरचना-संस्कृति, शासनतन्त्र, अर्थतन्त्र और वैज्ञानिक प्रगति आदि अनेक तत्वों पर निर्भर करता है।

6. इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी समाज के धर्म-दर्शन, संरचना-संस्कृति, शासनतन्त्र, अर्थतन्त्र और वैज्ञानिक परिवर्तनों के साथ-साथ उसकी शिक्षा के स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार शिक्षा की प्रकृति गतिशील होती है।

शिक्षा की प्रक्रिया

शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा प्रक्रिया का विश्लेषण निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर किया है-

1. **शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है :** मनुष्य कुछ शक्तियाँ लेकर पैदा होता है, प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण में उसकी शक्तियों का विकास होता है जिसके फलस्वरूप ही मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन होता है। मनुष्य की समस्त सभ्यता एवं संस्कृति का विकास सामाजिक प्रक्रिया का ही परिणाम है। यह बात अवश्य है कि कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों के विकास तथा भाषा ज्ञान होने के बाद

मनुष्य स्वतन्त्र रूप से ही अवलोकन, परीक्षण, चिन्तन और मनन करता है और इस प्रकार भी सीखता है, लेकिन इसके लिए आवश्यक कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का विकास, भाषा ज्ञान एवं विचार शक्ति का विकास सामाजिक पर्यावरण में ही होता है। समाज के अभाव में न तो हम भाषा सीख सकते हैं। और न विचार करना सीख सकते हैं। बच्चे अपने चारों ओर की वस्तुओं, भाषा एवं क्रियाओं का ज्ञान समाज में रहकर ही प्राप्त करते हैं। समाजशास्त्रियों ने यह भी स्पष्ट किया कि शिक्षा समाज के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन होती है। जैसा समाज होता है जैसी उसकी आकांक्षाएँ होती हैं, वैसी ही उसकी शिक्षा होती है। वास्तव में शिक्षा समाज के भूत, वर्तमान और भविष्य, तीनों से सम्बन्धित होती है, इस प्रकार समाज के भूत, वर्तमान ज्ञान की आवश्यकताओं की पूर्ति और भविष्य का नियम किया जाता है। अतः शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है।

2. **शिक्षा त्रि-ध्रुवीय प्रक्रिया है :** विद्यार्थी, शिक्षक एवं सामाजिक वातावरण शैक्षिक प्रक्रिया के तीन खम्भे हैं। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर शिक्षा को त्रिमुखी प्रक्रिया की संज्ञा दी। इस प्रकार कोई भी शिक्षा तब तक सफल नहीं हो सकती, जब तक कि विद्यार्थी एवं अध्यापक के साथ-साथ सामाजिक वातावरण को स्थान न दिया जाए। शिक्षक सामाजिक वातावरण को ध्यान में रखते हुए शिक्षार्थी को निश्चित रूप से शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करें।

3. **शिक्षा द्विमुखी प्रक्रिया है :** इस प्रक्रिया के अन्तर्गत एक पक्ष प्रभावित करता है और दूसरा पक्ष प्रभावित होता है। अतः यह स्पष्ट है कि शिक्षा द्विध्रुवीय प्रक्रिया है। शिक्षाशास्त्रियों के विचारानुसार शिक्षा के दो ध्रुव होते हैं- एक वह जो प्रभावित करता है (शिक्षक) और दूसरा वह जो प्रभावित होता है (शिक्षार्थी)। **जॉन ड्यूवी** के अनुसार शिक्षा के दो ध्रुव होते हैं- एक मनोवैज्ञानिक और दूसरा सामाजिक। मनोवैज्ञानिक अंग से तात्पर्य सीखने वाले की रुचि, रुझान और शक्ति से है और सामाजिक अंग से तात्पर्य उसके सामाजिक पर्यावरण से है, किन्तु सामाजिक पर्यावरण ही नहीं बल्कि प्राकृतिक पर्यावरण भी सीखने-सिखाने की क्रिया को प्रभावित करता है।

NOTES

4. **शिक्षा एक अवतरित प्रक्रिया :** शिक्षा एक सतत प्रक्रिया है। यह मनुष्य के जन्म के कुछ दिन बाद ही प्रारम्भ हो जाती है। जन्म से मरण तक हम एम-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और हमेशा नवीन अनुभव प्राप्त करते हैं और उन्हें सीखते हैं। अधिक विस्तृत दृष्टिकोण से देखें, तो समाज के सदस्य तो समाप्त होते रहते हैं, लेकिन उनकी शिक्षा प्रक्रिया पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। अर्थात् निरन्तरता ही शिक्षा का दूसरा लक्षण है।

5. **शिक्षा आधुनिक समाज का आधार है :** निश्चय ही आज अनुष्य अत्यन्त ही सामाजिक परिस्थितियों में निवास करता है। समाज में रहकर उसे नित-प्रतिदिन नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए प्रगतिशील एवं गतिशील शिक्षा की आवश्यकता होती है। शिक्षा के द्वारा नवीन तथा आधुनिक रूप से समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण किया जा सकता है। अर्थात् शिक्षा आवश्यकताओं को पूर्ण करने का सामाजिक आधार है।

6. **शिक्षा विकास की प्रक्रिया है :** किसी समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का विकास शिक्षा के द्वारा ही होता है। शिक्षा के अभाव में यह सब सम्भव नहीं। स्पष्ट है कि शिक्षा विकास की प्रक्रिया है। संसार का प्रत्येक प्राणी अपनी जाति के प्राणियों के बीच रहकर, अनुकरण द्वारा, उनके अनुसार चलना-फिरना, खाना-पीना तथा बोलना आदि सीखता है। पुश-पक्षी जन्म के कुछ दिन बाद ही अपनी जाति के प्राणियों के अनुसार ही खाना-पीना, चलना-फिरना एवं उड़ने के तौर-तरीके सीख जाते हैं, लेकिन उनकी यह प्रक्रिया केवल परिस्थितियों के साथ समायोजन कर आत्मरक्षा के कार्यों तक सीमित रहती है, जबकि मनुष्य की शिक्षा उसे केवल परिस्थितियों के साथ समायोजन करना ही नहीं, बल्कि उसमें अपने अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करने की क्षमता का विकास भी करती है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति के रहन-सहन, खान-पान, विचारों एवं जीवन को सुखमय बनाने के लिए साधन तथा उपसाधनों के निर्माण में हमेशा परिवर्तन होता रहता है। अर्थात् यह स्पष्ट है कि मनुष्य की शिक्षा ही विकास की प्रक्रिया है, पशु-पक्षियों एवं अन्य जीवों की नहीं।

7. **शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है :** शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपनी सभ्यता एवं संस्कृति में दिन-प्रतिदिन विकास करता रहता है। इसके लिए उसकी एक पीढ़ी अपने ज्ञान एवं कौशल आदि को दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करती है। इस हस्तान्तरण के लिए प्रत्येक समाज विद्यालयी शिक्षा का आयोजन करता है। इसके लिए उपयुक्त नियोजन करता है। इस प्रकार समयानुसार शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियाँ सब निश्चित होते हैं, लेकिन जैसे-जैसे सामाजिक परिवर्तन होते हैं, वैसे-वैसे शिक्षा आगे बढ़ती है। इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य पाठ्यक्रम एवं शिक्षण-विधियों आदि में आवश्यकतानुसार परिवर्तन होता रहता है, यह उसकी गतिशीलता कहलाती है। यदि शिक्षा गतिशील न होती, तो हम कभी भी विकास के पथ पर अग्रसर नहीं रह पाते।

शिक्षा का महत्त्व

शिक्षा के प्राचीन एवं आधुनिक अर्थों से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा ही मानव में मनुष्य तत्व का निर्माण करती है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य जैविक प्राणी से सामाजिक प्राणी बनता है और शिक्षा से मानव राष्ट्र का एक जिम्मेदार नागरिक बनता है। अतः शिक्षा का महत्व मानव की संस्कृति एवं सभ्यता के आधार से जुड़ा है। शिक्षा के महत्व को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है-

1. शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपने पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों को पूर्ण कर सकता है।
2. बालक के सर्वांगीण विकास जैसे- शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, संवेगात्मक विकास आदि में शिक्षा की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
3. शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य इस धरती का स्वर्श्रेष्ठ प्राणी बन पाता है।
4. शिक्षा, शिक्षार्थी तथा शिक्षक दोनों को ही लाभ पहुँचाती है।
5. शिक्षा के द्वारा ही एक पीढ़ी के विचार तथा रीति-रिवाज अगली पीढ़ी की संचारित होते हैं।

NOTES

6. शिक्षा के द्वारा किसी व्यक्ति में देश-विदेश की गतिविधियों तथा संस्कृति को समझने की प्रवृत्ति जागृति होती है।
7. शिक्षा बालक की प्रत्येक परिस्थिति में सन्तुलन बनाए रखने में सहायक सिद्ध होती है।
8. शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र में सम्मान की प्राप्ति करता है।

उपयुक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि शिक्षा का महत्व प्रत्येक देश, काल तथा परिस्थितियों में समान रूप से होता है। शिक्षा ही मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने में सहायक सिद्ध होती है। शिक्षा के बिना मनुष्य पशु के समान होता है। अतः शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास होता है।

शैक्षिक उद्देश्यों की आवश्यकता

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है, जो मनुष्य के साथ जीवनपर्यन्त चलती है, इसके द्वारा समाज अपने दसरूों को अपनी संस्कृति तथा सभ्यता से परिचित कराता है तथा उन्हें इस योग्य बनाता है कि वे अपनी सभ्यता एवं संस्कृति में निरन्तर विकास कर सकें। इसलिए शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करना अति आवश्यक हो जाता है। शिक्षा के उद्देश्यों के अभाव में शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती। निरुद्देश्य शिक्षा अपने में अर्थहीन सिद्ध होती है। अतः शिक्षा के उद्देश्यों की आवश्यकता निम्नांकित तथ्यों से स्पष्ट की जा सकती है-

1. शिक्षा के उद्देश्य स्पष्ट होने से सीखने एवं सिखाने वालों का मार्ग निश्चित हो जाता है। शिक्षार्थी को यह ज्ञात रहता है कि उसे क्या सीखना है और शिक्षक को ज्ञात रहता है कि उसे क्या सिखाना है और क्यों सिखाना है तथा कैसे सिखाना है। अतः शिक्षा के उद्देश्य स्पष्ट होने से शिक्षा प्रक्रिया सुचारू रूप से निरन्तर चलती रहती है।
2. शिक्षा के उद्देश्य के निर्धारण के बिना किसी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र का विकास सम्भव नहीं हो सकता है, परन्तु परिस्थितियों की विभिन्नता के कारण शिक्षा का रूप समान हो यह सम्भाव नहीं, इसलिए व्यक्ति समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करना आवश्यक है।

3. शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हम पाठ्यक्रम का निर्धारण करते हैं तथा इसे पूरा करने के लिए शिक्षण विधियों को निर्माण करते हैं। उद्देश्यों के अभाव के कारण न तो शिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार किया जा सकता है और न शिक्षण विधियाँ। अत: शिक्षा के उद्देश्य निश्चित होने अति आवश्यक होते हैं।

4. प्रत्येक समाज का मनुष्य जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण रखता है। इसी के आधार पर वह कुछ उद्देश्य निर्धारित करता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उसे शिक्षा का विधान करना पड़ता है। निश्चित एवं स्पष्ट उद्देश्य किसी भी कार्य की सफलता के आधार होते हैं। इस दृष्टि से शिक्षा के उद्देश्य स्पष्ट होने अति आवश्यक हैं।

5. शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हमें कुछ विषयों के ज्ञान तथा निश्चित क्रियाओं के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, जो हमारी शिक्षा प्रक्रिया के लक्ष्य होते हैं। नियोजित शिक्षा को जब सुचारु रूप से चलाया जाता है, तो शिक्षक तथा छात्रों के उत्साह में वृद्धि होती है एवं शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त कर सकते हैं। अत: शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण आवश्यक है।

शिक्षा के उद्देश्य

जिस प्रकार शिक्षा का तात्पर्य अत्यन्त व्यापक है, उसी प्रकार शिक्षा के उद्देश्य भी अन्यन्त विस्तृत हैं। इन्हें हम निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से समझ सकते हैं-

(अ) शिक्षा के सामान्य उद्देश्य

(ब) शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य

(स) शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य

(द) शिक्षा के राष्ट्रीय उद्देश्य

शिक्षा के उपर्युक्त उद्देश्यों का विस्तारपूर्वक विवरण अग्रांकित शीर्षकों के आधार स समझा जा सकता है-

(अ) शिक्षा के सामान्य उद्देश्य

शिक्षा के सामान्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

NOTES

1. ज्ञानार्जन का उद्देश्य
2. सांस्कृतिक विकास का उद्देश्य
3. जीविकोपार्जन का उद्देश्य
4. सन्तुलित विकास अथवा समविकास का उद्देश्य
5. आध्यात्मिक विका का उद्देश्य
6. अनुकूलन का उद्देश्य
7. पूर्ण जीव का उद्देश्य
8. नागरिकता का उद्देश्य
9. सृजनशीलता तथा प्रतिभा के विकास का उद्देश्य
10. आत्मानुभूति तथा आत्माभिव्यक्ति का उद्देश्य।

1. **ज्ञानार्जन का उद्देश्य :** भारतीय दर्शन एवं ग्रीक विद्वानों के मतानुसार शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति है। भारतीय दर्शन के अन्तर्गत ब्रह्मज्ञान एवं कैवल्य ज्ञान को ही सच्चा ज्ञान माना गया है। ब्रह्म, आत्मा एवं ईश्वर के सम्बन्ध में जो व्यक्ति सच्चा और यथार्थ ज्ञान रखता है, उसे ज्ञानी कहा गया है। ब्रह्मज्ञान रखने वाले दार्शनिक को ब्रह्मज्ञानी भी कहा जाता है और सत्य का साक्षात्कार होने पर मोक्ष प्राप्त होता है। उपनिषदों में सत्य एवं ज्ञान को पर्यायवाची काह गया है। संस्कृत में ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र कहा गया है, ज्ञान मोक्ष प्राप्ति का साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अज्ञानरूपी अन्धकार की ओर अग्रसर होता है। भारतीय शिक्षाशास्त्री हुमायूँ कबीर ने भी ज्ञान की प्राप्ति को ही शिक्षा का उद्देश्य माना है। उन्होंने लिखा है, "शिक्षा का उद्देश्य भौतिक संसार एवं समाज के विचारों और आदर्शों का ज्ञान प्राप्त करना है। इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना निजी उन्नति और समाज सेवा के लिए आवश्यक है।" पाश्चात्य विद्वान्, एवं आदर्शवादी विचारधारा के विद्वान् भी इसका समर्थन करते हैं और वह अपने जीवन में सुख शान्ति प्राप्त करते हैं। **कोमेनियस** के अनुसार, "शिक्षक अपने दायित्व को तभी पूरा कर सकता है, जब छात्र को अधिक-से अधिक ज्ञान प्रदान करे।" **प्लेटो** के मतानुसार यह संसार अमूर्त विचारों की अनुकृति है। अत: विचार ही स्थायी है। शिक्षा का उद्देश्य यदि शाश्वत है, तो वह ज्ञान ही हो सकता है।

सुकरात ज्ञान तथा नैतिक व्यवहार में अन्तर नहीं करता। उसका विश्वास है कि मनुष्य अज्ञा के कारण ही दुराचारी होता है और यदि उसे सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाए, तो वह सदाचारी बनेगा। यदि ज्ञान को सत्य का प्रतिरूप माना जाए एवं नैतिक आचरण से अलग न किया जाए, तो ज्ञान प्राप्ति शिक्षा का अत्यधिक व्यापक उद्देश्य हो सकता है, क्योंकि ज्ञान केवल तथ्यात्मक जानकारी तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसमें चरित्र निर्माण का ठोस तत्व भी सम्मिलित है। भारतीय विचारधारा के अनुसार ज्ञान विवेक से युक्त होना शहिए, विवेक ही चरित्र की नींव तैयार करता है।

ज्ञान संकुचित अर्थ में भी प्रचलित है। **वेबस्टर** के अनुसार, "ज्ञान वह है, जो ज्ञान होने के द्वारा संचित रहता है अथवा वह ऐसी जानकारी है, जो प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्राप्त की जाती है।" सामान्यता ज्ञान का अर्थ तथ्यों, सिद्धान्तों, परिभाषाओं, विधियों आदि की सम्यक् जानकारी तथा विभिन्न ज्ञात तथा अज्ञात परिस्थितियों में उन्हें सम्मिलित करने की क्षमता से लगाया जाता है। इस अर्थ के सम्बन्ध ज्ञान भौतिक भी हो सकता है और आध्यात्मिक भी, लेकिन ज्ञान का सम्बन्ध व्यवहार से नहीं माना जाता। सुकरात ज्ञान को विवेक मानता है और उसके अनुसार ज्ञानी व्यक्ति नैतिक आचरण अवश्य करता है। ज्ञात का यह संकीर्ण अर्थ है। इससे ज्ञान और व्यवहार दोनों अलग प्रतीत होते हैं। अर्थात् ज्ञान किसी सीमा तक व्यवहार को प्रभावित करता है।

2. **सांस्कृतिक विकास उद्देश्य :** मनुष्य के संस्कार, क्षमता एवं सम्पन्नता ही उसकी संस्कृति है। संस्कृति एक ओर हमारे शरीर तथा मन को शुद्ध कर हमारे व्यक्तित्व का विकास करती है तथा दूसरी ओर हमें समाज सम्मत तथा शिष्ट व्यवहार करने की क्षमता प्रदान करती है। जिस व्यक्ति के विचार तथा मन संस्कारित हो चुके हैं, वहीं सुसंस्कृत है। संस्कृति हमारी प्रकृति की बाह्य अभिव्यक्ति है, जो हमारी विचार प्रणाली, कला, धर्म, नैतिकता तथा परम्परा द्वारा व्यक्त होती है। किसी देश की संस्कृति में उस देश के निवासियों का रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज, ज्ञान-विज्ञान, कला-साहित्य का समावेश होता है। इस प्रकार संस्कृति और संस्कारों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। शिक्षा का सम्बन्ध जीवन की प्रक्रिया से है और

संस्कृति उस क्रिया का परिणाम है, इसलिए संस्कृति जीवन की क्रिया में निहित है। संस्कृति शब्द का शाब्दिक अर्थ है, संस्कार की गई क्रिया अथवा वस्तु, अर्थात् संस्कृति का अर्थ हुआ भली प्रकार से किया गया कार्य, व्यवहार अथवा विचार।

मनुष्य संस्कृति को विरासत के रूप में प्राप्त करता है तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है। संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य जीवन के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों से है। **ई. बी. टेलर** के अनुसार, "संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, प्रथाएँ एवं अन्य योग्यताएँ और आदतें सम्मिलित होती हैं, जिसको मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में प्राप्त करता है।"

मैथ्यू आर्नाल्ड के शब्दों में, "संस्कृति व्यक्ति के जीवन में माधुर्य भरती है, उसे प्रकाश देती है, उसमें सौन्दर्य के प्रति प्रेम एवं कलात्मकता भरती है।" संस्कृति को आत्मसात कर लेने से व्यक्ति की रुचियों में परिष्कार होता है और वह साधारण व्यक्ति न रहकर महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बन जाती है। शिक्षा और संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अर्थात् शिक्षा के सांस्कृतिक उद्देश्यों से तात्पर्य सभ्य, सुसंस्कृत तथा श्रेष्ठ मनुष्य निर्मित करना है।

3. **जीविकोपार्जन का उद्देश्य :** आज मनुष्य की मुख्य तीन आवश्यकताएँ हैं– भोजन, कपड़ा और मकान। यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति न हो, तो मनुष्य सन्तुष्ट तथा सुखमय जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। धन के अभाव के कारण वह अनैतिक कार्य करने के लिए प्रेरित होगा तथा समाज में भ्रष्टाचार, अनाचार तथा अराजकता फैलेगी। आज वही देश प्रगतिशील तथा समृद्ध है, जहाँ के नागरिकों की आर्थिक दशा अच्छी है और जो सुखमय जीवन व्यतीत करने की क्षमता रखते हों। जिस देश के पास अपने नागरिकों के लिए जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध हैं, वही देश प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है इसलिए प्रत्येक बालक को यह शिक्षा दी जानी चाहिए कि वह किसी व्यवसाय को चुन सके और जीविकोपार्जन कर सके इसलिए विद्यार्थी काल में ही बालक को कोई ऐसी हस्तकला या व्यावसायिक प्रवणीता सिखाई जाए, जिससे भविष्य में

अपनी जीविका उपार्जित कर सके। हम जो शिक्षा ग्रहण करते हैं, उसका एकमात्र उद्देश्य रोटी, कपड़ा और मकान प्राप्त करने की क्षमता होती है।यदि शिक्षा इन आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक नहीं है, तो वह अर्थहीन है। ऐसी स्थिति में बालक को अफलता ही हाथ लगेगी। मनुष्य की आर्थिक उन्नति उसकी हर प्रकार की उन्नति का आधार होती है। जिस व्यक्ति की आर्थिक स्थिति अच्छी होगी, उसे समाज में भी सम्मान मिलेगा इसलिए अमेरिका एक उन्नतिशील एवं सम्पन्न देश है। वहाँ व्यावसायिक निर्देशन की समुचित व्यवस्था है। व्यावसायिक शिक्षा से व्यक्ति तथा राष्ट्र दोनों की प्रगति होती है। आज के युग में प्रत्येक राष्ट्र अपने औद्योगिक विकास में लगा हुआ है। जिन देशों में व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं है, वहाँ बेरोजगारी तथा भुखमरी तथा वे राष्ट्र अवनति के गर्त में गिर गए हैं। जिस राष्ट्र में कुशल इंजीनियर, टेक्नीशियन तथा उद्योगपति होंगे, वह राष्ट्र समृद्धशाली होगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए महात्मा गाँधी ने बुनियादी शिक्षा को प्रारम्भ करवाया, जिससे हमारे देश के युवक आत्मनिर्भर बन सकें तथा अपने जीवन को सुखी बना सकें। उन्होंने कहा है, "सच्ची शिक्षा बालक और बालिकाओं के लिए बेकारी के विरुद्ध एक प्रकार का आश्वासन होना चाहिए।" प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था में उपजीविका के महत्त्व को नकारा नहीं गया।

अतः इस उद्देश्य का तात्पर्य है कि बालकों को विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में प्रशिक्षित किया जाए, जिससे वे कुशल तथा प्रवीण होकर धनोपार्जन कर सकें तथा अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकें। **डॉ. जाकिर हुसैन** मतानुसार, "राज का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह नागरिकों को किसी लाभप्रद एवं निश्चित कार्य के लिए शिक्षित करें।" प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री **ड्यूवी** के अनुसार, "यदि व्यक्ति अपनी जीविका स्वयं नहीं कमा सकता, तो वह दूसरों की जीविका पर आश्रित रहने वाला एक परजीवी है। इससे एक बड़ा खतरा यह है कि वह व्यक्ति अपने आप से वंचित हो रहा है और दूसरों को नुकसान पहुँचा रहा है।" इसका अर्थ है, शिक्षा को जीवनोपयोगी बनाया। जीवनोपयोगी शिक्षा ही सार्थक तथा फलदायी है। आज की शिक्षा पुस्तकीय तथा सैद्धान्तिक है। **विनोबा भाव** के अनुसार,

NOTES

"जिस समय विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहा होता है, उस समय उसके समक्ष जीवन और जगत् का चित्र नहीं रहता और जब वह जीवन प्रारम्भ करता है, उस समय उसकी शिक्षा समाप्त हो जाती है।" कोठारी आयोग (1964-66) ने भी उत्पादन क्षमता और आत्मनिर्भरता को राष्ट्रीय उद्देश्य मानकर इसको शिक्षा में प्रथम स्थान दिया है। सन् 1986 की नई-नीति ने डिग्री और नौकरी के सम्बन्ध को समाप्त करने की सिफारिश की है और व्यावसायिक शिक्षा पर विशेष बल दिया है। कुछ विद्वान् इस उद्देश्य पर अधिक बल देने के पक्ष में नहीं है।

4. **सन्तुलित विकास अथवा समविकास का उद्देश्य :** इस उद्देश्य से तात्पर्य मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, नैतिक तथा कलात्मक शक्तियों का सन्तुलित विकास करना है। इस उद्देश्य का आधार मनोवैज्ञानिक है तथा इसके समर्थकों में पेस्टालॉजी तथा रूसो के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य कुछ मूल प्रवृत्तियों को लेकर जन्म लेता है, इनका समविकास होने पर ही मनुष्य का व्यक्तित्व सन्तुलित रहात है। किसी प्रवृत्ति के अधिक विकसित होने एवं किसी प्रवृत्ति के कम विकसित होने के कारण व्यक्तित्व का सन्तुलन बिगड़ जाता है। **पेस्टालॉजी** के मतानुसार, "शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, सामंजस्यपूर्ण तथा प्रगतिशील विकास है।" **पेन्टर** के अनुसार, "शिक्षा का उद्देश्य मानव का पूर्ण विकास है।"

   माध्यमिक शिक्षा आयोग (सन् 1952-53) ने भी सम विकास को शिक्षा का उद्देश्य माना है। आयोग के अनुसार, "वह शिक्षा कहलाने योग्य नहीं है, जो व्यक्ति को उसके साथियों के साथ गरिमा, सामंजस्य तथा कुशलता के साथ रहने के आवश्यक गुणों का विकास नहीं करती।" महात्मा गाँधी ने इसी बात पर बल देते हुए अपने विचार व्यक्त किए हैं, "शरीर, मस्तिष्क और आत्मा के सामंजस्यपूर्ण मेल से पूर्ण मानव की रचना होती है। यह तीनों शिक्षा की सच्ची मितव्ययिता की रचना करते हैं।"

5. **आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य :** वर्तमान में हमने आशातीत भौतिक प्रगति की है और भौतिक दृष्टिकोण से हम परिपूर्ण तथा

समृद्ध हैं। किसी भी मनुष्य का निर्माण केवल शरीर से नहीं होता, बल्कि उसके अन्दर आत्मा से है। इसी आत्म ज्ञान को पहचानना ही आध्यात्मिक विकास की सीढ़ी है। किसी भी मनुष्य को आत्म ज्ञान होने पर वह संसार के माया मोह से मुक्त होकर असीम आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। आध्यात्मिक ज्ञान से आत्मा-परमात्मा का भेद दूर हो जाता है तथा मनुष्य परमात्मा के समान सत्-चित्-आनन्द प्राप्त कर सकता है। आज मनुष्य स्वार्थी तथा आत्म-केन्द्रित हो गया है। समाज में छल, पकट, भ्रष्टाचार आदि का अत्यधिक बोलबाला है। इसका प्रमुख कारण आध्यात्मिक ज्ञान का अभाव है। **गौतम बुद्ध** के अनुसार, "सब दुःखों का एकमात्र कारण हमारी इच्छाएँ हैं, इच्छाओं को दूर कर दो, तो तुम्हारा दुःख दूर जो जायेगा।" इस प्रकार आध्यात्मिक शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के दुःखों को दूर करना है। **डॉ. राधाकृष्णन्** के मतानुसार, "यदि शिक्षा हृदय और आत्मा की अवहेलना करती है, तो उसे पूर्ण नहीं माना जा सकता।"

आध्यात्मिक भावना के कारण व्यक्ति सभी जीवों को समान दृष्टि से देखता है। वह प्रत्येक प्राणी में ईश्वर के दर्शन करता है तथा सभी के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करता है। **नरसी मेहता** के अनुसार, "वैष्णव जण तेणे कहिए, जो पीर पराई जाणे रे।"

आध्यात्मिक व्यक्ति अपनी इच्छाओं एवं वासनाओं पर नियन्त्रण रखने की क्षमता रखता है, वह विवेकी होता है और सत्य तथा असत्य में भेद कर सकता है। नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य ही बालकों में उत्तम संस्कार डाल सकते हैं और उनके चरित्र को उज्ज्वल बना सकते हैं। **डॉ. राधाकृष्णन्** के अनुसार, "हम एक संस्कृति का निर्माण कर रहे हैं, कारखाने का नहीं। संस्कृति के मूल्य एवं श्रेष्ठता भौतिक समृद्धि एवं राजनैतिक व्यवस्था पर आधारित नहीं है, बल्कि मनुष्य के चरित्र पर आधारित है, अतः शिक्षा का प्रमुख कार्य है, चरित्र-चित्रण।"

आध्यात्मिक विकास का तात्पर्य आत्मा को विकसित कर बालकों में सच्ची शक्ति प्रदान करना है।

6. **अनुकूलन का उद्देश्य :** प्रकृति का यह नियम है कि मनुष्य को जीवित रहने के लिए विभिन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़ता

NOTES

है, जो इन परिस्थितियों का मुकाबला कर लेता है, वही जीवित रह सकता है। अत: बालक को इस प्रकार शिक्षा प्रदान की जाए कि उसे किसी प्रकार के वातावरण से अनुकूलन करने में कोई कठिनाई न हो, जो व्यक्ति वातावरण से अनुकूलन नहीं कर पाता, वह नष्ट हो जाता है। अत: शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह बालक को इस प्रकार की शिक्षा दे, जिससे वह अपने भावी जीवन में विभिन्न प्रकार के वातावरण से अनुकूलन कर सके। प्रत्येक बालक को किसी समाज का उपयोगी सदस्य बनाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण से अनुकून कर सके। अर्थात् शिक्षा का कार्य बालकों को समाज से अनुकूलन करना सिखाए। **जॉन ड्यूवी.** के अनुसार, "मनुष्य प्रत्येक परिस्थितियों में वातावरण पर विजय प्राप्त कर सकता है।"

7. **पूर्ण जीवन का उद्देश्य :** इस उद्देश्य का तात्पर्य है कि शिक्षा के द्वारा जीवन के सभी अंगों का विकास हो, जिससे मनुष्य अपने जीवन की ओर पूर्णता से अग्रसर हो। शिक्षा का यह कार्य है कि वह जीवन के नियमों एवं तौर-तरीकों से परिचित कराए। **स्पेंसर** के अनुसार, "शिक्षा को हमें बताना चाहिए कि हम अपने शरीर, मस्तिष्क और आत्मा के साथ कैसा व्यवहार करें। अपने कार्यों का प्रबन्ध किस प्रकार करें, अपने परिवार का किस प्रकार पालन-पोषण करें। नागरिक के रूप में किस प्रकार व्यवहार करें, तथा प्रकृति द्वारा दिए जाने वाले सुख के साधनों का किस प्रकार उपयोग करें, अपने और दूसरों के अधिकतम लाभ के लिए सब शक्तियों का उपयोग किस प्रकार करें।" **स्पेंसर** के अनुसार, "शिक्षा को हमें पूर्ण जीवन के नियमों और ढंगों से परिचित कराना चाहिए। शिक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हमें जीवन के लिए, इस प्रकार तैयार करना है कि हम उचित प्रकार का व्यवहार कर सकें और शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा का सदुपयोग कर सकें।"

   स्पेंसर ने पूर्ण जीवन की तैयारी के लिए पाठ्यक्रम की रचना भी की है, जिसमें शरीर विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, गणित, भूगोल, गृह विज्ञान, बला मनोविज्ञान, भाषा, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, कला-संगती और साहित्य का समावेश किया है और इन्हें पढ़ाने की सिफारिश की है।

8. **नागरिकता का उद्देश्य :** नागरिकता की शिक्षा का उद्देश्य है, समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए दी जाने वाली शिक्षा के माध्यम से ऐसे नागरिकों का विकास किया जाए, जो राष्ट्र की उन्नति में सहायक हों। प्रजातन्त्र को एक जीवन प्रणाली के रूप में विकसित किया जाना चाहिए, जिससे प्रत्येक नागरिक अपने अधिकार तथा कर्त्तव्यों का पालन कर सके। देश के सभी नागरिक समान हैं एवं सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन से सम्बन्धित जागरूकता अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व अवश्य होता है, किन्तु समाज तथा राष्ट्र के प्रति भी उसके कुछ उत्तरदायित्व होते हैं जिन्हें पूरा करना प्रत्येक नागरिक के लिए आवश्यक है। अंग्रजी में एक कहावत है, "जनता का जो स्तर होगा, उसी स्तर की सरकार उसे मिलेगी।" People get the Government, they deserve) वर्तमान समय में प्रजातान्त्रिक देशों की नागरिकात को सर्वोत्तम स्थान दिया गया है। कुछ विद्वानों के मतानुसार लोकतन्त्रीय देशों में नागरिकता का प्रशिक्षण देना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। उत्तम रागरिक ही प्रजातन्त्र का पोषण करते हैं। अत: बालकों में राष्ट्रीयता तथा एकता की भावना भरी जानी चाहिए और उन्हें संकुचित दायरे से निकालकर उदात्त तथा विस्तृत धरातल पर लाना चाहिए।

9. **सृजनशीलता तथा प्रतिभा के विकास का उद्देश्य :** इस उद्देश्य का अर्थ है, बालकों की सृजनात्मक शक्ति का विकास करना। व्यक्ति में अनेक प्रकार के गुण विद्यमान रहते हैं। यदि इन गुणों को विकास का अवसर दिया जाये, तो विद्यार्थी नवनिर्माण के लिए प्रेरित होते हैं। इसी नवनिर्माण शक्ति को सृजनशीलता कहा जाता है। कुछ विद्वान् प्रतिभा को सृजनशीलता से ऊपर स्तर की शक्ति मानते हैं, किन्तु देखा जाए, तो इन दोनों में बहुत कम अन्तर है। कुशाग्र बुद्धि एवं सृजनशीलता में घनिष्ठ सम्बन्ध है। बुद्धिमत्ता, सृजनशीलता, कलात्मक एवं प्रतिभा कुछ ही छात्रों में होती है, अत: इनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। स्थापत्य, मूतिकला, शिल्पकला, वैद्यक, अभियान्त्रिकी आदि विषयों में नवनिर्माण एवं सृजन के पूर्ण अवसर हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार प्रतिभा तथा सृजनशीलता ईश्वर की देन है, किन्तु इनके भी संस्कार डाले जाते हैं। **स्टीवेंसन** के अनुसार,

"प्रतिभा 10 प्रतिशत प्रेरणा और 90 प्रतिशत परिश्रम है।" इस प्रकार कहा जाता है कि सृजनशीलता तथा प्रतिभा प्रकृति प्रदत्त हैं, किन्तु इसका विकास भी किया जा सकता है। जिस प्रकार हीरे को तराश कर उसमें कई पहलू निकाले जा सकते हैं, उसी प्रकार प्रतिभा में भी सुधार लाया जा सकता है तथा शिक्षा के द्वारा उसे संस्कारित किया जा सकता है। हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति बालकों की सृजनशीलता एवं कलात्मकता को प्रोत्साहित करने में असमर्थ है। अतः शिक्षा में इन्हें उचित स्थान दिया जाना चाहिए। समुचित मार्गदर्शन तथा प्रोत्साहन से बालकों में इन प्रवृत्तियों को विकसित होने का पूरा अवसर प्राप्त होगा और विश्व रंगमंच पर भावी कलाकार के रूप में चमकेंगे। अमेरिका जैसे प्रगतिशील देशों में बालकों की सृजनशीलता को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है तथा शिक्षा द्वारा वहाँ की प्रतिभाओं को चमकाने का अवसर मिलता है।

10. **आत्मानुभूति अथवा आत्माभिव्यक्ति का उद्देश्य :** आत्मानुभूति का तात्पर्य है, आत्मज्ञान अथवा प्रकृति, मानव और ईश्वर का ज्ञान। कुछ विद्वानों के मतानुसार शिक्षा का उद्देश्य है, बालक का आत्मिक विकास करना, जिससे वह समाज में रहकर अपने गुणों का अनुभव कर सके। आत्माभिव्यक्ति का तात्पर्य पाशविक प्रवृत्तियों से युक्त आत्मा से है। **रॉस** के अनुसार, "आत्मानुभूति का अर्थ वर्तमान में असन्तुष्ट एवं अनुशासनहीन आत्मा से नहीं है बल्कि सक्षम एवं पूर्ण विकसित आत्मा से है जो वह भविष्य में हो सकती है।" प्राचीन भारतीय शिक्षा में आत्मानुभूति के उद्देश्य को मुख्य स्थान दिया जाता है इसलिए उस काल में बालकों को ऐसे विषय पढ़ाये जाते थे, जिनके द्वारा आत्मानुभूति हो सके। आत्मानुभूति से मनुष्य को सुख और शान्ति प्राप्त होती है।

आत्मानुभूति एवं आत्माभिव्यक्ति शब्द व्यक्तिवादी दर्शन को व्यक्त करते हैं, क्योंकि उनका बल व्यक्तित्व के विकास पर रहता है। प्रकृतिवादी के मतानुसार आत्माभिव्यक्ति का तात्पर्य शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं के संचालन से है। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य प्रकृत स्वभाव का विकास करना है। शिक्षा के द्वारा बालकों की उनकी शक्तियों की अभिव्यक्ति करने तथा गुणों को प्रकट करने की क्षमता का विकास

करना चाहिए। यदि बालक को अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर नहीं मिल पाता, तो उसका मस्तिष्क दमित वासनाओं को केन्द्र बन जाता है और वह मानसिक संघर्ष का शिकार बन जाता है और उसका सन्तुलित विकास नहीं हो पाता। **डेनियल वेबस्टर** के अनुसार, "अपने बच्चों को आत्मअनुशान की शिक्षा दीजिए, उसमें ऐसी आदतें डालिए कि वे अपने आवेगों, पक्षपातों और बुरी प्रवृत्तियों को सच्ची और तर्कपूर्ण इच्छा के नियन्त्रण में रख सकें। यदि आप इतना कर सके, तो आप उनके भावी जीवन से दुःख तथा समाज से अपराधों को समाप्त कर सकेंगे।"

(ब) शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य

शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्यों का विकास अन्य उद्देश्यों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि व्यक्तियों के अभाव में समाज तथा राष्ट्र का कोई अस्तित्व नहीं होता। दोनों का आधार मनुष्य ही होता है, इसलिए शिक्षा पर अत्यन्त ध्यान दिया जाना चाहिए। शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्यों के निर्धारण का अपना महत्त्व है, क्योंकि बच्चे की जन्मजात प्रकृति तथा जैवीय, मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक आदि दृष्टिकोण से शिक्षा उसके स्वयं के लिए एवं उसके समाज एवं राष्ट्र के विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

1. **बाल प्रकृति की दृष्टि से :** जिस प्रकार जैवीय दृष्टि से कभी भी दो व्यक्ति सदैव समान नहीं होते, उसी प्रकार बच्चे अपनी प्रकृति की दृष्टि से कुछ संकोची होते हैं, तो कुछ मिलनसार। बच्चों की प्रकृतिजन्य विविधताओं के कारण किसी को कुछ अच्छा लगता है तो किसी को कुछ कोई चित्रकारी पसन्द करता है, तो कोई खेल पसन्द करता है, जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, तो उनकी रुचियों में ही परिवर्तन नहीं होता बल्कि उनकी इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा महत्वाकांक्षाओं में भी परिवर्तन आ जाता है। इस दृष्टि से शिक्षा की रूपरेखा तैयार करते समय इन सभी बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए ताकि उनकी प्रकृति के अनुकूल विषयों तथा व्यवसायों के अध्ययन का सुअवसर मिल सके।

2. **जैविकीय दृष्टि से :** प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि कभी भी दो बच्चे सभी दृष्टियों से समान नहीं होते, चाहे वे जुड़वा ही

NOTES

क्यों न हों। उनकी वैयक्तिक पहचान अलग-अलग होता है। शिक्षा का उद्देश्य बालक में निहित वैयक्तिक गुणों की पहचान करना तथा उनके गुणों का विकास करना होना चाहिए जिससे उन्हें गुणों के अनुरूप शिक्षा प्राप्त हो।

3. **दार्शनिक दृष्टि से :** दार्शनिक दृष्टि से शिक्षा के वैयक्ति उद्देश्यों को समझने से पहले दर्शन (Philosophy) तथा मनोविज्ञान (Psychology) के अन्तर को संक्षेप में समझना अति आवश्यक है। यह दोनों अन्त:सम्बन्धित होते हुए भी समान नहीं हैं। वेद दर्शन के अनुसार शरीर की रचना का सम्बन्ध पाँच कोषों से माना गया है, ये इस प्रकार हैं, मनोमय, ब्रह्म, आनन्द आदि। मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य उस सच्चे, आनन्द की प्राप्ति से है, जो परमेश्वर पर पहचानने में हैं, जिसकी अलौकिक रचना भौतिक सृष्टि है। भौतिक जगत् दृष्ट है, तो उसका रचयिता अदृष्ट। जिसे हम देख नहीं सकते उसकी रचना को देखकर हम उसके विषय में भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ करते हैं, फिर भी कुछ ही उसकी अनुभूति कर पाते हैं। वे उसमें रम जाते हैं और फिर उन्हें सम्पूर्ण संसार फीका लगने लगता है, तथा सच्चा आनन्द आने लगता है। ये सच्चा आनन्द तथा मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है और यही शिक्षा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उद्देश्य भी, लेकिन इस आनन्द की अनुभूति मन की वृत्तियों के सकारात्मक मोड़ के बिना सम्भव नहीं है। मन की वृत्तियों में वांछित मोड़ लाना अत्यन्त कठिन है। चिन्तन, वह करता है जिसकी बुद्धि प्रखर हो तथा उस अदृष्ट का चिन्तन वह करता है, जिसकी वृत्ति सात्विक हो। ऐसे चिन्तक एवं दार्शनिक (Philosophers) बिरले ही होते हैं।

4. **भौतिक विकास की दृष्टि से :** 'शारीरिक' शब्द का शाब्दिक अर्थ, 'शरीर + इक' से है, तो 'भौतिक' (भूत + इक) का सम्बन्ध इस दृष्टि के उन सभी प्राणियों तथा पदार्थों से है, जो दिखाई देते हैं और अन्तत: नश्वर हैं। इस संसार का जो बनावटी रूप कल था वह आज नहीं है और जो आज है वह कल नहीं रहेगा। इस संसार में सब कुछ नश्वर और परिवर्तनशील है। यदि संसार में कुछ शाश्वत है, तो वह उस सृष्टि का रचयिता तथा आत्मा जो उसी परमात्मा की पहचान का एक अंश है। अत: भौतिक विकास की दृष्टि से शैक्षिक उद्देश्य भी आवश्यक हैं।

5. **मनोवैज्ञानिक दृष्टि से (Phychologically) :** मनोविज्ञान के अनुसार मैक्ड्यूगल ने 14 मूल प्रवृत्तियों तथा 14 ही संवेगों का उल्लेख किया है। बालक में मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं, जबकि संवेग अस्थाई होते हैं। संवेगों की उत्पत्ति विशेष परिस्थितियों में ही होती है। कुछ संवेग बालक के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं, जबकि कुछ संवेग विकास में बाधक भी होते हैं। इस दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रकार के संवेगों में सन्तुलन रखना होना चाहिए जिससे विद्यार्थी इनके परिणामों को पहचान सके तथा उनके अनुसार कार्य कर सके, जिससे समाज और राष्ट्र का उत्थान हो सके। विद्यार्थियों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए।

(स) शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य का अभिप्राय है, व्यक्ति के ऊपर समाज एवं राज्य की सत्ता। इस उद्देश्य के अनुसार समाज और राज्य का स्थान व्यक्ति से बहुत ऊँचा है। समाज से अलग रहकर व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। व्यक्ति समाज का एक अभिन्न अंग है और समाज से ही निर्देशित होना चाहिए। शिक्षा का यह उद्देश्य है कि वह व्यक्ति को सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों का पालन करना सिखाए। शिक्षा के द्वारा सामाजिक गुणों को विकास किया जाए और उसमें सामाजिक कुशलता पैदा की जाए। सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। सामाजिक उद्देश्यों के समर्थक राज्य को उच्च सत्ता का प्रतीक मानते हैं। व्यक्ति राज्य का नागरिक होता है, अतः राज्य अपे नागरिकों से अवश्य ऊँचा है। राज्य व्यक्ति से हर प्रकार से श्रेष्ठ होता है और व्यक्ति की इच्छाओं, आकांक्षाओं एवं अभिलाषाओं पर राज्य का प्रभुत्व होता है। इन बस पर राज्य का शासन आवश्यक है। इसके अनुसार व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह राज्य के कल्याण के लिए अपने हितों को समर्पित कर दे। इस विचारधारा के अनुसार व्यक्ति की तुलना में समाज को बहुत ऊँचा स्थान देते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है तथा समाज से अलग रहकर वह जीवित नहीं रह सकता, क्योंकि समाज में ही उसकी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति होती है तथा समाज के अन्य सदस्यों से वह विचारों का आदान-प्रदान

करता है और अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। यदि समाज की कुछ हानि होती है, तो उसकी भी हानि होती है। व्यक्ति समाज निरपेक्ष जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। अतः समाज से हटकर उसके वैयक्तिक जीवन का कोई महत्त्व नहीं है। अतः शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार से हो कि प्रगति के मार्ग पर बढ़े। शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। इसलिए अधिकांश शिक्षाशास्त्री शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य पर अत्यधिक बल देते हैं। **रेमाण्ट** के अनुसार, "जो शिक्षाशास्त्री व्यक्ति को समाज के ऊपर स्थान देते हैं, उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि समाजविहीन व्यक्ति कोरी कल्पना है।" अतः शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत चरित्र गठन के साथ-साथ बालक को सच्चा सामाजिक प्राणी तथा कुशल नागरिक बनाना है।

जॉन ड्यूवी, तथा **प्रो. बागले** आदि शिक्षाशास्त्रियों ने सामाजिक उद्देश्य के व्यापक अर्थ को स्वीकार किया है। उन्होंने शिक्षा के इस उद्देश्य को समाज सेवा तथा सामाजिक कुशलता के नाम से भी सम्बोधित किया है। **प्रो. बागले** के अनुसार, "सामाजिक कुशलता ही वह मापदण्ड है, जिसके द्वारा शिक्षा सम्बन्धी कार्यों का मूल्यांकन किया जा सकता है।" अपनी "Educational Values" नामक पुस्तक में उन्होंने प्रतिपादित किया है कि सामाजिक कुशलता ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य है। सामाजिक दृष्टि से कुशल व्यक्ति में निम्नांकित विशेषताएँ होती हैं-

1. **निषेधात्मक नैतिकता :** निषेधात्मक नैतिकता का अभिप्राय है कि व्यक्ति अपनी संकल्प शक्ति के द्वारा अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण रखे। यदि एक व्यक्ति की इच्छाओं की तृप्ति दूसरे व्यक्ति की आर्थिक कुशलता में बाधक है, तो उसे उनका त्याग कर देना चाहिए। अर्थात् त्याग करने की मानसिक तैयारी हो।

2. **आर्थिक कुशलता :** व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ा होना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे वह अपनी जीविकोपार्जन में स्वयं समर्थ हो। आर्थिक कुशलता रखने वाला व्यक्ति दूसरों पर बोझ नहीं होता और अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम होता है।

3. **सकारात्मक नैतिकता :** सकारात्मक तथा रचनात्मक नैतिकता का अर्थ है, व्यक्ति की उन सभी क्रियाओं का निर्धारण सामाजिक उत्तरदायित्व को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। जिस व्यक्ति में सामाजिक कुशलता होती है, उस व्यक्ति का आचरण समाज के अनुकूल होता है। मनुष्य को सामाजिक प्रगति में सहायक होना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति की इच्छाओं की पूर्ति सामाजिक प्रगति में बाधक बनती है, जो उसे उन्हें त्याग करने के लिए तैयार रहना चाहिए। जब किसी व्यक्ति की आकांक्षाएँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से समाज के विकास में सहायक न हों, तो उन्हें त्यागने के लिए व्यक्ति की तैयारी होनी चाहिए।

जॉन ड्यूवी के शब्दों में सामाजिक कुशलता से अभिप्राय व्यक्ति द्वारा सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने की क्षमता से है। अतः बालकों के समक्ष इस प्रकार का शैक्षिक वातावरण प्रस्तुत किया जाए, जिससे वे अपने नये तथा पुराने अनुभवों को समझने की क्षमता प्राप्त कर सकें, अपनी जन्मजात शक्तियों का विकास कर जीवन के संघर्षों का मुकाबला कर सकें। अतः विद्यालय को एक लघु समाज होना चाहिए, जो सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। विद्यालय के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत ऐसे विषय सम्मिलित किए जाने चाहिए, जो सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक हों।

विभिन्न आयोगों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

स्वतन्त्रता के बाद भारत में शिक्षा व्यवस्था के सुधार के लिए अखिल भारतीय शिक्षा आयोगों को गठन हुआ है। इन आयोगों ने शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला है, जो निम्नलिखित हैं–

(अ) माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-54) के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य :

माध्मिक शिक्षा आयोग द्वारा भारतीय समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किए हैं, वे निम्नांकित हैं–

1. जनतान्त्रिक नागरिकता का विकास।
2. नेतृत्व के लिए शिक्षा।

3. कुशल जीवनयापन की शिक्षा।

4. व्यक्तित्व का विकास।

5. व्यावसायिक कुशलता की उन्नति।

(ब) कोठरी आयोग के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य (1964) :

1. सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता का विकास।

2. उत्पादन में वृद्धि करना।

3. जनतन्त्र को सुदृढ़ बनाना।

4. देश का आधुनिकीकरण करना।

5. सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना।

भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

भारतीय षडदर्शनों की सर्वाधिक प्राचीन शाखा सांख्य विशुद्ध दर्शन के क्षेत्र में एक विलक्षण प्रायस है अर्थात् सांख्य दर्शन वेदमूलक षडदर्शनों में सबसे अधिक प्राचीन है। इसका उल्लेख पुराणों, गीता, महाभारत तथा अन्य कई धार्मिक ग्रन्थों में पाया जाता है। सर्वप्रथम महर्षि कपिल ने वेद साहित्य में निहित दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन कर सांख्य दर्शन का प्रतिपादन किया। उनकी दो कृतियाँ उपलब्ध हुई- सांख्य प्रवचन सूत्र एवं तत्वमास सूत्र। सांख्य प्रवचन सूत्र में छः अध्याय होने के कारण इसे 'सांख्य षडध्यायी' व पष्टितन्त कहा जाता है। इसमें 537 सूत्र हैं और उसमें सांख्य दर्शनके सिद्धान्तों का सप्रमाण प्रतिपादन किया गया है। तत्वमास में 22 सूत्रों की संक्षिप्त विवेचना के कारण के कारण इसे सांख्य सूत्र का संक्षिप्त रूप माना जाता है। महर्षि कपिल के बाद आसुरि, पश्चशिख, देवल, ईश्वर कृष्ण विन्ध्यवासी, गौणपाद, वाचस्पति मिश्र, महादेव वेदान्ती, विज्ञानभिक्षु, याष्ट, अनिरुद्र, भाव गणोश आदि ने सांख्य-दर्शन की व्याख्या की और उसके सिद्धान्तों को स्पष्ट किया। इस प्रकार सांख्य दर्शन की विचारधारा अबाध गति से निरन्तर प्रवाहित होती आ रही है। इसके नामकरण के संदर्भ में विद्वानों के अनेक मत हैं। 'सिद्धान्त कौमती' में 'सांख्य' शब्द की उत्पत्ति 'समपूर्वक चलिङ' धातु से मानी गयी है। चलिङ का अर्थ 'ख्यानम' होता है। अतः सांख्य शब्द का अर्थ 'सम्यक्

ख्यानम सम्यक् ज्ञान' तथा 'सम्यक् दर्शन' से होता है। गीता में भी 'सांख्य' शब्द विवेक व ज्ञान के अर्थ में प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान् इसकी उत्पत्ति सांख्य शब्द की व्युत्पत्ति 'संख्या' (Number) से मानते हैं। चूँकि इस दर्शन में 'पुरुष' एवं 'प्रकृति' को मिलाकर कुल 25 तत्वों द्वारा द्वारा तगत् मीमांसा प्रस्तुत की गयी अतः इसका नाम सांख्य पड़ा। हरिश्चन्द्र सूरि के अनुसार 'सांख्य' शब्द, संख या शंख अर्थात् आदिपुरुष के अर्थ व्यवहृत हुआ। चूँकि इस दर्शन में तत्वों की संख्या निर्धारित की गई इसलिए इसे सांख्य कहा गया। श्री भागवत में इसको 'तत्व गणक' भी कहा गया। गीता में सांख्य दर्शन का प्रयोग किया गया। सांख्य का लक्ष्य प्रकृति एवं उसके विकारों, शरीर, इन्द्रियों, बुद्धि तथा अहंकार से पुरुष का विवेक कराना है जिससे सब दुःखों को आत्मन्तिक उच्छेद हो जाता है। सांख्य का प्रयोग इसी कारण हम 'सही ज्ञान' के रूप में करते हैं। महाभारत में इसे इसी अर्थ में प्रयोग किया गया है। यह दर्शन सैद्धान्तिक तत्वज्ञान की चर्चा करता है व इसका परआर योग दर्शन इस बात की विवेचना करता है कि तत्वज्ञान को कैसे प्राप्त किया जाता है। यह दर्शन द्वितत्व को भी प्रस्तुत करता है। द्वितत्व का आशय प्रकृति और पुरुष से है।

द्वैतवाद
↓
प्रकृति — पुरुष

यह दर्शन मोक्ष प्राप्ति के लिए जड़ एवं चेतन अर्थात् प्रकृति और पुरुष के भेद के ज्ञान पर बल देता है। **डॉ. राधाकृष्णन्** ने इस दर्शन की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है, "सांख्य एक असीम जटिलता के तत्वों के रूप में प्रकृति की व्याख्या करता है जो सदैव परिवर्तित हो रही है।"

योग दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

योग दर्शन का प्रमुख उद्देश्य है मनुष्य पंचविघ्न क्लोशों तथा नानाविध कर्मफल से विभुक्त होकर मोक्ष या कैवल्य प्राप्त करें अर्थात् ईश्वर प्राप्ति या आनन्दानुभूति है। उसके अनुसार इस उद्देश्य की प्राप्ति वह इसी शरीर विकास से उसका आशय मनुष्य की कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के विकास से होता है। इसके बाद शिक्षा को मनुष्य के अन्तःकरण का विकास करना चाहिए। मुक्ति के इच्छुक को वह योग साधन मार्ग का अनुसरण करने का उपदेश

NOTES

करना है और योग साधना के लिए नैतिक आचरण आवश्यक मानता है। योग द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के इन उद्देश्यों को हम आज भी भाषा और शैली में निम्न रूप से क्रमबद्ध कर सकते हैं।

प्रथम मुख्य उद्देश्य – ईश्वर की प्राप्ति अर्थात् मुक्ति पाना।

अन्य उद्देश्य – शारीरिक विकास उद्देश्य,
भावात्मक विका का उद्देश्य,
बौद्धिक विकास का उद्देश्य,
नैतिक विकास का उद्देश्य,
अष्टांग योग प्रशिक्षण,
परिश्रम के महत्व को स्वीकार करना,
आत्मिक विकास पर बल।

न्याय दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

न्याय-दर्शन के अनुसार शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है। मोक्ष का आशय जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति पाने से है एवं इसके लिए मनुष्य को पदार्थ और आत्मतत्व के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है। इस ज्ञान के लिए वह योग साधन मार्ग को आवश्यक मानता है तथा योग साध ना के लिए स्वस्थ शरीर और नैतिक आचरण को आवश्यक माना है। अतः मुक्ति साध्य उद्देश्य है और साध्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधन उद्देश्य की आवश्यकता होती है।

शिक्षा के उद्देश्य–

(a) साध्य उद्देश्य

(b) साधन उद्देश्य

(a) साध्य-उद्देश्य : इसके अन्तर्गत मुक्ति का उद्देश्य आत्मा है। मुक्ति का अर्थ जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाना है। इसके लिए मानव को पदार्थ एवं आत्मतत्व के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है। इस ज्ञान के लिए वह योग साधन मार्ग को आवश्यक मानता है तथा योग साधना के लिए स्वस्थ शरीर और नैतिक आचरण को आवश्यक माना

है। अतः मुक्ति साध्य उद्देश्य है और साध्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधन उद्देश्य की आवश्यकता होती है।

(b) साधन-उद्देश्य : साध्य उद्देश्य के लिए जिन साधन उद्देश्यों की आवश्यकता होती है उन्हें इस प्रकार जाना जा सकता है-

1. शारीरिक विकास का उद्देश्य अर्थात् कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों का विकास करना।
2. मानसिक विकास का उद्देश्य अर्थात् मनस का विकास, विचारशक्ति का विकास करना।
3. बौद्धिक विकास का उद्देश्य अर्थात् बुद्धित्व का विकास करना।
4. आत्मत्व का ज्ञान अर्थात् यथार्थ जगत् से हटकर आत्मतत्व की ओर उन्मुख होना।
5. नैतिक विकास का उद्देश्य अर्थात् सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य व्रत, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और प्राणिधान नियमों का पालन करना।
6. पदार्थों का वास्तविक ज्ञान अर्थात् वस्तु जगत् का ज्ञान और प्रयोग करना एवं उनकी वास्तविकता से अवगत कराना।

चार्वाक दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

चार्वाकी शिक्षा की प्राकृतिक आवश्यकता को मूल रूप से स्वीकार करते हैं लेकिन शिक्षा का एक सामाजिक संस्था के रूप में भी स्वीकार किया। अतः उन्होंने जीवन की आवश्यकताओं की उपलब्धि, बालकों के सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्धों के विकास और अवकाश के समय के उपभोग को भी आवश्यक समझा। चार्वाक दर्शन के अनुयायी सुख को आत्मसात् करते हुए आत्म संरक्षण की भी कामना करता है। वे शिक्षा के उद्देश्य के प्रमुख उद्देश्य बालकों को जीवन में सुख प्राप्ति के लिए तैयार करना ही मानते हैं क्योंकि इस दर्शन का प्रसिद्ध श्लोक-

"यावज्जीवेत् सुख जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृटं पिवेत्,
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कृतः।"

अर्थात् जब तक जियें सुख से जियें, ऋण लेकर घी पियें, इस शरीर के नष्ट हो जाने पर इसका पुनः आगमन कहाँ होगा। इस श्लोक में सुख से जीने पर जोर दिया गया है अत: शिक्षा का उद्देश्य भी बालकों को जीवन में सुख प्राप्ति हेतु तैयार करना है क्योंकि चार्वाकी दार्शनिक जीवन सुख के लिए किये गये कर्मों को सार्थक मानते हैं तथा उनका मानना है कि वही कर्म धर्म है जो कामना की पूर्ति करता है।

गीता दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

गीता में कर्म को प्राधनता दी गयी है। जीवन के भौतिक व आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्र में कर्म को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। गाती के एक श्लोक में कहा गया है।

> **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन**
> **मा कर्मफलहे वुर्भूमी ते संगोऽस्त्वकर्मणि।**
> **–गीता, 2/47**

अत: स्पष्ट है कि गीता में कर्म को विशेष स्थान प्राप्त है और यह सत्य है कि किसी भी दर्शन के जीवन मूल्य उसके जीवन के उद्देश्यों को निर्धारित करते हैं तथा इन्हीं से शिक्षा के उद्देश्य अनुप्राणित होते हैं। गीता में जिस जीवन दर्शन तथा मूल्यों की व्याख्या की गई है उसके अनुसार दोनों प्रकार की शिक्षा परा और अपरा ही श्रेष्ठ है। परा शिक्षा का प्रथम और महत्वपूर्ण उद्देश्य आध्यात्मिक स्वतंत्रता है। इसके अतिरिक्त सामान्य दृष्टि से परा और अपरा शिक्षा के कुछ सामान्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. **आध्यात्मिक विकास :** गीता दर्शन के अनुसार बालक का आध्यात्मिक विकास ही शिक्षा का प्रथम उद्देश्य है। मनुष्य स्थूल एवं सूक्ष्म का एक ऐसा समुच्चय है जो कर्म बन्धनों में बँधकर जीवन जीने के लिए विवश है अत: अपने अन्दर निहित सूक्ष्म का ज्ञान कराना, प्रथम आवश्यकता प्रतीत होती है ताकि वह सूक्ष्म अर्थात् आत्मत्व से साक्षात्कार कर भौतिक जगत् के जाल से निकलने का प्रयास करें। गाती में जिस स्वतन्त्रता की बात की गई है उसका आशय अर्थ, कम, तथा जीवन से अलग हटकर नहीं है बल्कि क्रिया और जीवन, शिक्षा के साथ एक ऐसा स्वतन्त्र प्रयास है जो सात्विक जीवन जीने के लिए सात्विक कर्म करने का ही आग्रह करती है अत: शिक्षा ऐसी हो जो बालक का आध्यात्मिक विकास करें।

गीता ईश्वर को ऐसी यथार्थ सत्ता मानती है तो आनन्त और सान्त दोनों से परे है। इसके अनुसार ईश्वर अनादि, अनन्त, कुटस्थ, नित्य और सर्वगुणसम्पन्न है। ईश्वर एक सर्वोपरि सत्ता, सर्वोच्च आत्मा या परमात्मा है जो तीनों में व्याप्त है और उसे धारण करता है-

उत्तमः पुरूषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः
यो लोकत्रयमाविश्व विभर्त्यव्यय ईश्वरः।

गीता के अनुसार यह ईश्वर अनादि, निर्गुण एवं अव्यक्त है। इस कारण वह शरीर में स्थिर रहकर भी न तो कुछ करता है और न लिपायमान होता है।

अनादित्वनिर्गुण त्वात्परमात्भायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥

2. **मानसिक विकास :** गीता में जीवन को अनुशासित रखने की बात कही गयी है। **उदाहरणार्थ-** युद्ध स्थल में शोक और मोह से आसक्त अर्जुन का युद्ध न करने की मानसिकता बना बैठना और परिस्थितियों का अवलोकन करके सद्‌गुरु श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया उपदेश पुनः अर्जुन की मानसिक स्वतन्त्रता को स्वतन्त्रतापूर्वक बदलने में सक्षम रहता है। यहाँ श्रीकृष्ण ने अर्जुन पर अपने विचारों को थोपा नहीं बल्कि उनको इस तरह समझाया कि वह स्वयं ही युद्ध करने के लिए गाण्डीव उठाए। अपनी मानसिक स्वतन्त्रता से उनका भ्रम, शोक, मोह समाप्त हुआ और मानसिक रूप से स्थिर होकर युद्ध के लिए तैयार हुए। अतः यह दर्शन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बल देता है जिससे बालक मानसिक स्वतन्त्रता के आधार पर निर्णय ले सके, उसके ऊपर विचारों को थोपा न जाए।

3. **व्यक्तित्व का विकास :** गीता के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों में क उद्देश्य है व्यक्तित्व का विकास। इस दर्शन के अनुसार जो कुछ भी संसार में व्याप्त है वह दैवी सम्पदा है अतः मनुष्य भी दैवी सम्पदा है। उसका शारीरिक, मानसिक, धार्मिक, नैतिक, चारित्रिक एवं अनुशासित रूप से सन्तुलित विकास करना शिक्षा का अहम् दायित्व है। शिक्षा द्वारा ही मनुष्य सन्तुलित और साम्य प्राणी बनता है।

NOTES

4. **सामाजिक और राष्ट्रीय विकास :** गीता दर्शन में न केवल व्यक्तित्व उन्नयन की बात कही गयी वरन् सामाजिक और राष्ट्रीय विकास को भी एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकारा गया। जहाँ एक ओर इसमें व्यक्तित्व उत्थान के लिए सदाचारिता, बुद्धिमता, स्वाध्याय, निर्भयता, संयम, तप, यज्ञ, सत्य, सदाचरण, शान्ति, अस्तेय, कर्मफल आदि आवश्यकता महसूस की गयी वहीं दूसरी ओर सामाजिक और राष्ट्रीय विकास के लिए दान, त्याग, अक्रोध, नैतिक दायित्व, परोपकार आदि को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

बौद्ध दर्शन में शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य

संसार के जन्म-मरण के उद्देश्यों के अवलोकन के बाद गौतम बुद्ध के मन में यह विश्वास निवास कर गया कि संसार में केवल दुःख ही दुःख है और इससे मुक्ति पाने के लिए गृहत्याग कर संन्यासी बन गये। यह 'सुलझाव' उन्हें बुद्ध होने पर प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धान्त में प्राप्त हुआ। तब आनन्दमय बुद्ध ने रात्रि के पहले पहर में अपना मन सीधे एवं विपरीत क्रम के कारण शृंखला पर लगाया। अविद्या से संसार उत्पन्न होते हैं, नाम रूप से षडायतन उत्पन्न होते हैं। षडायतन से स्पर्श उत्पन्न होता है, स्पर्श से वेदना उत्पन्न होती है, वेदना से तृष्णा व तृष्णा से उपादन उत्पन्न होता है।

उपादन से भव व भाव से जाति उत्पन्न होती है। जाति से जन्म, मरण, दुःख, शोक, विषाद व निराशा उत्पन्न होती है। यह समस्त दुःखों का प्रारम्भ है। पुनः अविद्या के नाश से जो कि वासना के पूर्ण निरोध से सम्भव है, संस्कार नष्ट हो जाते हैं। षडायतन नष्ट हो जाने से स्पर्श व स्पर्श से वेदना नष्ट हो जाती है। वेदना से तृष्णा व तृष्णा से उपादन नष्ट हो जाते हैं। उपादन नष्ट हो जाने से जन्म-मरण कष्ट, शोक दुःख, विषाद, निराश आदि नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार समस्त दुःखों का नाश हो जाता है।

जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्यों को जानने से पूर्व प्रो. मैक्समूलर के विचारों से अवगत होना अधिक उचित होगा। उनका कथन है कि भारत में दर्शन ज्ञान के लिए नहीं बल्कि उस सर्वोच्च लक्ष्य के लिए था, जिसके लिए मनुष्य इस जीवन में चेष्टा कर सकता है। भारतीय दर्शन में शिक्षा का तात्पर्य जीवन का

दिव्य रूपान्तर एवं सांसारिक दु:खों से मुक्ति पाना है। चार्वाक के अतिरिक्त सभी भारतीय दार्शनिक मोक्ष प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं और जैन धर्म भी इससे अछूता नहीं है। जैन दर्शन के अनुसार भी शिक्षा का परम् लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति है। काषायो यथा- "क्रोध, मान, माया, लोभ आदि के कारण जीवन के पुद्गल से आक्रान्त हो जाने को जैनों ने बन्धन अथवा बन्ध तत्व की संज्ञा दी है।" जीव का बन्धन मानसिक प्रवृत्तियों के कारण होता है। दूषित मनोभाव ही बन्धन का मूल कारण है तथा पुद्गल आस्रव मनोभाव का परिणाम है। बन्धन की अवस्था में जीव और पुद्गल एक-दूसरे में प्रविष्ट हो जाते हैं। आस्रव एवं बन्धन का अवरोधन संवर तत्व करते हैं, ये पहले जीव के रागद्वेष एवं मोह आदि विकारों का निरोध करता है, इसे भाव संवर कहते हैं, इसके बाद कर्म पुद्गलों का प्रवेश रुक जाता है उसे द्रव्य संवर कहते हैं। कर्म पुद्गलों का प्रवेश एक बार रूकने पर फिर सदैव के लिए रूक जाता है और जब जीव के सभी कर्म पुद्गलों का क्रमश: नाश हो जाता है तो उसे निर्वाण प्राप्त हो जाता है। कर्म-प्रवेश को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय बताये गये हैं-

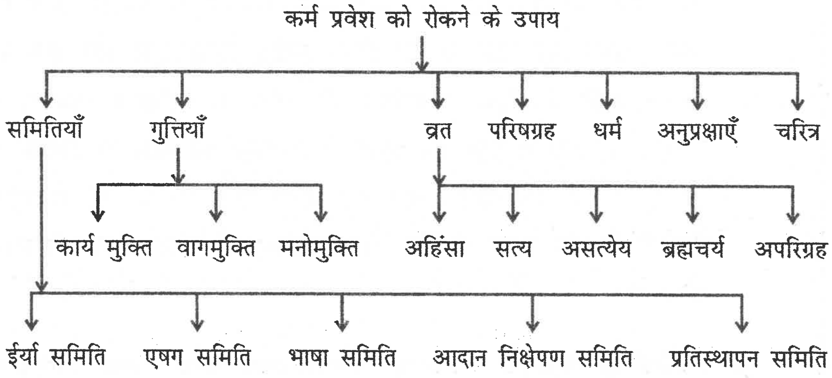

जैसन दर्शन में निर्वाण दो प्रकार का माना गया है- भाव निर्वाण, द्रव्य निर्वाण। कर्म पुद्गलों से मुक्त होकर जीव के सर्वज्ञ और सर्व दृष्टा होकर मुक्ति अनुभव करने का भाव निर्वाण कहते हैं। इसमें चार धातीय कर्म यथा- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एवं अन्तराय का नाश हो जाता है। इसके प्रश्चात् क्रमश: चार आधातीय कर्म यथा आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय का भी नाश होने से द्रव्य निर्वाण प्राप्त होता है। अत: निर्वाण प्राप्त करना इस दर्शन का भी मुख्य लक्ष्य है तथा इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं-

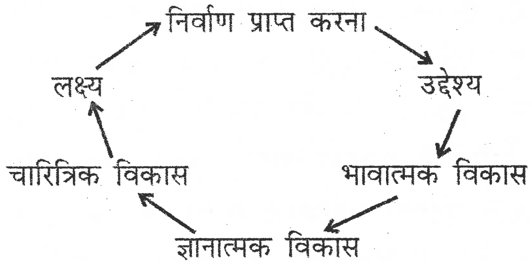

1. **भावात्मक विकास :** जैन दर्शन में निर्वाण प्राप्ति का प्रमुख चरण भावात्मक विकास है क्योंकि जब तक भावात्मक दृष्टि से मनुष्य शुद्ध एवं तत्पर नहीं होगा तब तक उसे अज्ञान के बन्धन से मुक्ति नहीं मिलेगी। सम्यक् ज्ञान से ही कर्म के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होती है उस कर्म का संवर एवं निर्जर होता है और मनुष्य को निर्वाण प्राप्त होता है। अतः इस प्रकार मनुष्य में भावात्मक विकास की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

2. **ज्ञानात्मक विकास :** जैन दर्शन में ज्ञान के पाँच प्रकार का उल्लेख किया गया है- मति, ज्ञान, श्रुति, ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनपमभि ज्ञान और कैवल्य ज्ञान। यह ज्ञान की चरम अवस्था है केवल ज्ञानी देश काल विषम की सीमा से पार होकर सर्वज्ञ हो जाता है और कर्म बँध न से अपने को मुक्त कर लेता है। तत्वों के सविशेष नाम से ही सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है। इसके लिए कर्मों का नाश आवश्यक है। इसके ज्ञान से ही यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है। कषायों से मुक्ति मिलती है और कर्मों के नाश से ही जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

3. **चारित्रिक विकास :** सम्यक् ज्ञान के साथ-साथ सम्यक् चरित्र भी आवश्यक है। निर्वाण की प्राप्ति के लिए सम्यक् चरित्र की भी आवश्यकता होती है। इसके माध्यम से ही मनुष्य अपने कर्मों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। यह निर्वाण प्राप्त करने का व्यावहारिक और क्रियात्मक पक्ष है। इसके लिए उसे पंच अणुव्रत का पालन करना होता है-

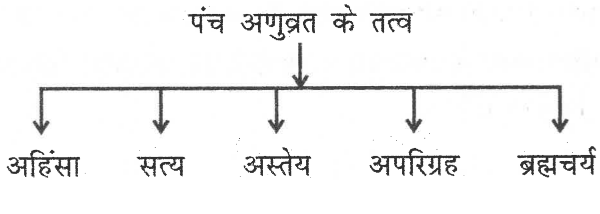

इस्लाम दर्शन में शिक्षा के उद्देश्य

मुस्लिम-दर्शन में शिक्षा के उद्देश्यों की लेकर एकरूपता न थी। कुछ शासकों का उद्देश्य हिन्दू शिक्षा और संस्कृति को नष्ट करना था और कुछ शासकों का इस्लाम धर्म का प्रचार करना। इस्लाम दर्शन में धर्म का विश्वास न रखने वाले को 'काफिर' की संज्ञा दी जाती थी और धर्म के प्रचार को 'सबाब' (पुण्य कार्य) समझते थे। उनका यह भी विश्वास था कि तालीम ही एक मुसलमान को निजात दिला सकती है। कुरान के अनुसार हर मुसलमान के लिए तालीम प्राप्त करना आवश्यक था क्योंकि तालीम ही उसे पाप-पुश्य, अच्छे-बुरे से अवगत करा सकती है। मुस्लिम कालीन शिक्षा के निम्न सामान्य उद्देश्य थे-

1. **इस्लाम धर्म का प्रचार करना :** धर्म प्रचार को इस्लाम में सबाब (पुण्य) का कार्य माना गया है। धर्म प्रचारक ही गाजी होती है। इस कार्य के लिए उन्होंने शिक्षा का सहारा लिया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही मकतब और मदरसे से लगी हुई मस्जिद अवश्य रहती है। मकतबों में कुरान की शिक्षा दी जाती थी और इस प्रकार छात्रों को इस्लाम के मूल सिद्धान्तों का परिचय दिया जाता था।

2. **ज्ञान का प्रसार :** इस्लाम धर्म में शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान का प्रसार करना था। हजरत मोहम्मद साहब ने ज्ञान को अमृत बताया है तथा प्रत्येक मुसलमान से ज्ञानार्जन की आशा व्यक्त की है। "विद्यार्थियों के कलम की स्याही शहीदों के खून से भी अधिक पवित्र हैं।" कुरान शरीफ में इस प्रकार की सूक्तियाँ मिलती हैं।

3. **विशिष्ट नैतिकता का विकास :** मुस्लिम शासक अपने साथ अपने देश की विशिष्ट नैतिकता भी लाये थे। उनके जीवन सिद्धान्त तथा मूल्य हिन्दुओं से भिन्न थे। अतः मुस्लिम कालीन शिक्षा का उद्देश्य भारतीय छात्रों में मुस्लिम नैतिकता के सिद्धान्तों का प्रचार करना था।

4. **मुस्लिम संस्कृति का संरक्षण और प्रसार :** मुस्लिक शासक अपने धर्म का प्रचार करने के साथ-साथ अपनी संस्कृति का संरक्षण एवं प्रचार करना चाहते थे और इसके प्रसार व संरक्षण का साधन शिक्षा को मानते थे।

5. **लौकिक ऐश्वर्य की प्राप्ति :** इस्लाम शिक्षा का उद्देश्य सांसारिक ऐश्वर्य प्राप्त करना था। इस बात को ध्यान में रखकर शिक्षा दी जाती थी जिससे उसका भावी जीवन सांसारिक सुख सम्पन्नता से व्यतीत हो सके।

6. **मुस्लिम शासन को सुदृढ़ बनाना :** मुस्लिम काल में शिक्षा का उद्देश्य मुस्लिम शासन को सुदृढ़ बनाना था। उन्हें डर था कि हिन्दू लोग कहीं उनके विरुद्ध बगावत न रक दें, इसलिए वे यहाँ अपने रीति-रिवाज, परम्पराएँ और संस्कृति का प्रचार कर उन्हें अपने ही रंग में रंगना चाहते थे।

पाश्चात्य शैक्षिक दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

आदर्शवादी विचार शिक्षा में आदर्शों और विचारों को महत्व देते हैं। उनके अनुसार शिक्षा के निम्न उद्देश्यों को निर्धारित किया गया है-

1. आत्मानुभूति का विकास
2. वस्तु की अपेक्षा विचारों का महत्व
3. जड़ प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य का महत्व
4. आध्यात्मिक मूल्यों का विकास
5. विभिन्नता में एकता
6. सभ्यता और संस्कृति का विकास

प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

प्रकृतिवादी विचारकों ने शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य स्पष्ट किये हैं-

1. उपयुक्त सम्बद्ध सहज क्रियाओं की स्थापना।
2. मूल प्रवृत्तियों का मार्गान्तरीकरण और उदात्तीकरण।
3. जीवन की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति।
4. वातावरण के साथ अनुकूलन।
5. व्यक्ति को सम्पूर्ण जीवन के योग्य बनाना।
6. जीवन संघर्ष के लिए शक्ति और योग्यता का विकास।

7. जातीय गुणों का विकास।
8. बालक के व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास।

यथार्थवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

यथार्थवादियों के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य स्वीकार किये गये हैं-

1. वास्तविक जीवन की तैयारी,
2. शारीरिक विकास,
3. जीवन को सुखमय बनाना,
4. इन्द्रिय प्रशिक्षण,
5. वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास,
6. नैतिक, चारित्रिक और सामाजिक विकास के साथ व्यावसायिक उन्नति,
7. प्राकृतिक प्रवृत्तियों और क्रियाओं का स्वतन्त्र रूप से विकास।

प्रयोजनवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

प्रयोजनवादी दर्शनिकों के अनुसार संसार परिवर्तनशील है। ये पूर्व निश्चित आदर्श और मूल्यों में आस्था नहीं रखते। उनका मानना है कि सत्य किसी वस्तु या सिद्धान्त को हमेशा के लिए सत्य नहीं कहा जा सकता सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। मनुष्य का प्राकृतिक तथा सामाजिक पर्यावरण हमेशा परिवर्तित होता रहता है और इस परिवर्तित वातावरण में मनुष्य नित्य नये अनुभव करता है और नये-नये आदर्शों एवं मूल्यों का निर्माण करता है, इसीलिए शिक्षा के उद्देश्य निश्चित नहीं किये जा सकते। जॉन ड्यूवी के मतानुसार, "शिक्षा के अपने में कोई उद्देश्य नहीं होते, उद्देश्य तो व्यक्तियों के होते हैं और व्यक्तियों के उद्देश्यों में बड़ी भिन्नता होती है और जैसे-जैसे व्यक्तियों का विकास होता जाता है उनके उद्देश्य भी बदलते जाते हैं। फिर भी शिक्षा के निम्न उद्देश्य माने गये हैं-

1. अनुभवों का पुनर्संगठन एवं पुनर्सरचना
2. सामाजिक कुशलता का विकास

NOTES

3. गतिशील तथा लचीले मस्तिष्क का निर्माण
4. बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास
5. प्रजातांत्रिक आदर्शों का विकास
6. मूल्यों और आदर्शों को निश्चित करने की क्षमता का विकास
7. बालक में वातावरण को समझने की क्षमता का विकास करना।

अस्तित्ववाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य तीन अभिधारणाओं पर आश्रित हैं-

1. मनुष्य स्वतन्त्र है उसकी नियति प्रागनुभूत नहीं है वह जो बनना चाहे वह उसके लिए स्वतन्त्र है।
2. मनुष्य अपने कृत्यों का स्वयं चयन करने वाला अभिकरण है उसे चयन की स्वतन्त्रता है।
3. अपने चयन का दायित्व उसका है अतः स्वतन्त्र मनुष्य को निरन्तर पीड़ा, सन्देह और कुण्डाओं के बीच रहना पड़ता है।

उपर्युक्त धारणाओं के आधार पर अस्तित्ववादी शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं-

1. **व्यक्तिगत अस्तित्व की एकरूपता :** मानव क्या है? आज संसार में मानव की क्या स्थिति है? अस्तित्वादी यह मानते हैं कि मानव का होना निराशापूर्ण है। मानव अनुभव व्यथा के हैं। यह दशा शायद सदैव रही हो। आज के संसार में कुछ घटनाएँ जैसे महायुद्ध, लाचारों पर अत्याचार इत्यादि ऐसी हुई हैं जिन्होंने इस अनुभव की तीव्रता में वृद्धि कर दी है। आज मानव की स्थिति के सम्बन्ध में दो बातें कही जा सकती हैं पहली हमारी यह जानकारी कि हमारा अस्तित्व अनिश्चित है और दूसरी यह कि मानव अस्तित्व में विशिष्टता अन्तर्निहित है। वास्तव में शिक्षा मानव के अस्तित्व के तत्वों को प्रकट करती है।

2. **व्यक्तिगत गुणों और मूल्यों का विकास :** अस्तित्ववाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य में जिम्मेदरी, स्वतन्त्रता, चुनाव, क्रियात्मक और आत्म-निर्माण आदि व्यक्तिगत गुणों और मूल्यों का

विकास करना है। अस्तित्ववाद में व्यक्ति पर अधिक बल दिया जाता है।

3. **मनुष्य की 'अहं' भावना और अभिलाषा का विकास** : इस सम्बन्ध में **प्रो. मार्टिन हीडेगर** का कथन है कि "सच्चा व्यक्तिगत अस्तित्व ऊपर से थोपे गये और अन्दर से इच्छित किये गये का संकलन है।"

   इसी प्रकार **प्रो. कार्ल जैस्पर्स** का भी कहना है, "अस्तित्व केवल मैं हूँ, यह नहीं है वरन् मैं क्या हूँ? यह है जो मैं होऊँगा इसको हल करता है।"

   अतएव अस्तित्ववाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की अहं भावना के साथ अभिलाषा का भी विकास करना है।

4. **व्यक्ति का सामाजिक और नैतिक उत्थान** : हालांकि सभी अस्तित्ववादी इस उद्देश्य के समर्थन में हैं किन्तु फिर भी कुछ अस्तित्ववादी विचारक इससे सहमत नहीं हैं। इससे सहमत होने वाले विचारकों में प्रो. ग्रीन, प्रो. हीडेगर, प्रो. सात्रे आदि हैं। **प्रो. ग्रीन** का कथन है, "अस्तित्ववाद का नवीन नैतिकता की ओर एक उत्साहपूर्ण और सच्चा प्रमाण है।"

   प्रो. हीडेगर के अनुसार, "मनुष्य का अस्तित्व एक हिस्सेदारी अस्तित्व हो।"

   प्रो. सात्रे ने कहा कि "मेरी एकरूपता दूसरे के साथ होनी चाहिए ऐसा नहीं है कि अकेला मैं ही हूँ दूसरे से अलग होकर।"

   अत: उपर्युक्त कथनों के आधार पर शिक्षा का उद्देश्य नैतिक और सामाजिक उत्थान माना जा सकता है।

5. **मृत्यु को कष्ट और यातना के लिए तैयार करना** : मानव का अस्तित्व समाप्त होने वाला है और वह इस ज्ञान के साथ जीवित है कि उसे एक दिन मृत्यु का सामना करना है। उसका अस्तित्व मृत्यु के लिए प्राणी जैसा है। अनेक व्यक्ति दूसरों की भलाई के लिए अपने प्राणों की बलि दे देते हैं। सामूहिक जीवन को आगे बढ़ाने के

NOTES

NOTES

लिए यह आवश्यक है आराम, स्वार्थ का जीवन निरर्थक है। सबसे अधिक अच्छी चीज यदि व्यक्ति कर सकता है तो वह है बलिदान अर्थात् जीवन से अधिक वह मृत्यु से अन्य व्यक्तियों को लाभान्वित कर सकता है। इसके लिए तैयार करना अस्तित्ववादी शिक्षा का उद्देश्य है।

6. **भावात्मक विकास :** अस्तित्ववादी शिक्षा का उद्देश्य बालक में भावात्मक तथा सोन्दर्यात्मक विकास करना है ताकि बालक चयन प्रक्रिया के साथ आत्मसात कर सके।

7. **व्यक्तिगत सहज ज्ञान या अन्तर्ज्ञान का विकास : प्रो. विआउवर** ने इस सम्बन्ध में कहा है कि मानव एक पत्थर या पौधा नहीं है।

अतः अस्तित्ववादियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्गित और सहज ज्ञान का विकास करना है ताकि वह अपनी बुद्धि और योग्यता का प्रयोग कर सकें।

अस्तित्ववाद और पाठ्यक्रम

अस्तित्ववादी विचारक व्यक्तिगत चिन्तन पर बल देते हैं। अतः वे उसी आधार पर पाठ्यक्रम और पाठ्यवस्तु निर्धारित करते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम कितना विशाल होता है यह **प्रो. नीट्शे** के शब्दों से स्पष्ट है, "वन, चट्टानें, हवाएँ, फूल, तितली, घास के मैदान, पर्वत के ढाल, अपनी भाषा में उससे (मनुष्य से) अवश्य बोलते हैं, उनमें वह अपने आपको असंख्य विचारों और प्रतिभाओं में बदलते हुए दृश्यों के विभिन्न सम्पूर्ण में जैसे कि वे होते हैं, जानता है।"

इस प्रकार अस्तित्ववादी पाठ्यक्रम में कला, साहित्य, इतिहास, विज्ञान, भूगोल, संगीत, दर्शन, मनोविज्ञान तथा विभिन्न विषयों एवं क्रियाओं को महत्व देते हैं।

अस्तित्ववाद के अनुसार शिक्षा प्रक्रिया को निश्चित करने में मानव अस्तित्व की मौलिक विशेषताओं के विश्लेषण एवं स्वतन्त्रता क प्रति मानव के अवधान के तत्व महत्वपूर्ण हैं। वे पाठ्यक्रम में दुखांत तत्व को प्रस्तुत करने पर भी बल देते हैं। शल्फ हारपर के प्रसिद्ध लेख Existentialism and Education में पाठ्यक्रम पर विचार किया गया और तीन बातों पर बल दिया गया-

1. प्रत्येक व्यक्ति को कुछ बातें अनिवार्य रूप से सिखानी हैं जैसे पढ़ना, लिखना, गणित, इतिहास।
2. विद्यार्थी यह निश्चय नहीं करेगा कि उसे क्या पढ़ना है निश्चय का कार्य अध्यापक का है।
3. मानव मस्तिष्क एक निश्चत दिशा में काम करता है अतः सभी व्यक्तियों को तर्क विद्या का अध्ययन अवश्य करना चाहिए जिससे कि तर्क के सहारे सत्य तक पहुँच सके।

मार्क्सवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा के उद्देश्य देशकाल और परिस्थिति पर आधारित होते हैं। मार्क्स द्वारा प्रस्तुत साम्यवाद का एकमात्र लक्ष्य वर्गविहीन समाज की स्थापना था। उनकी इस विचारधारा का समर्थन करते हुए **डॉ. आर. एस. पाण्डे** ने कहा है कि "साम्यवादी शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह बालक को इस योग्य बना दे कि वह अपने स्वरूप को ठीक से पहचान सके, वह अपने हाथ तथा मस्तिष्क का प्रयोग करके अपनी इच्छानुरूप अपने पर्यावरण की रचना कर सकता है। वह श्रम कर सकता है, श्रम करने योग्य है। ....वह श्रम करे, श्रम करना सीखे श्रम का मूल्य समझे और श्रम के आधार पर रचनात्मकता को विकसित करे।" बालक को चैतन्य बनाना है कि वह सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक है। इसी प्रकार उसे यह भी आभास कराना कि श्रमिक का उत्पादन मूल्य क्रय का विक्रय की जाने वाली वस्तु मात्र नहीं है। मार्क्स के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य है–

1. साम्युवाद की स्थापना करना और छात्रों में इसके प्रति निष्ठा उत्पन्न करना,
2. श्रम के प्रति सम्मान की भावना उत्पन्न करना,
3. आत्मनिर्भरता की दृष्टि का विकास करना,
4. स्वयं को पहचानना,
5. चारित्रिक दृढ़ता की प्राप्ति,
6. 'समाज ही सर्वोपरि' भावना का विकास करना,
7. छात्रों में सामूहिक भावना का विकास करना,

8. बौद्धिक क्षमता का विकास करना,
9. शारीरिक सुदृढ़ता और क्षमता का विकास करना,
10. श्रम ही सर्वाधिक सम्मानीय भावना का विकास करना।

मानवतावादी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य

NOTES

मानवतावादी शिक्षा मानव केन्द्रित है। उसका मूल उद्देश्य मानवीय निर्यात को श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर बनाना, तुलना रूप से अच्छे ढंग से जीवनयापन के योग्य बनाना तथा अपनी समस्याओं को समझकर हल निकालने के लिए मनुष्य को तैयार करना है। सुख, प्रगति तथा प्रगलमयता के पथ पर प्रवर्तन मानवतावादी शिक्षा का मन्तव्य है। इस विचार दर्शन में शैक्षिक प्रक्रिया निर्गत निम्नलिखित उद्देश्य सम्मिलित हैं-

1. **शिक्षार्थी की अन्तर्निहित शक्तियाँ और क्षमताओं का विकास :** मानवतावादी शिक्षा का शिक्षार्थी की अन्तर्निहित शक्तियों और क्षमताओं का विकास करना है ताकि वह श्रेष्ठ मानव बनकर अपने जीवन लक्ष्यों को प्राप्त कर सके।

2. **व्यक्ति का सुखमय जीवन :** मानवतावादी नैतिक आदर्श सांसारिक सुखों की प्राप्ति देश, जाति वर्ग निरपेक्ष रूप से सभी को होनी चाहिए, इससे सांसारिक सुखों को प्राप्ति के लिए समानता की भावना का विकास होगा और समानता आधारित सांसारिक सुखों की प्राप्ति की क्षमता का विकास शिक्षा करेगी जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति का जीवन सुखमय व्यतीत होगा।

3. **शिक्षार्थी का सर्वांगीण विकास :** बालक का सर्वांगीण विकास करना मानवतावादी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। इन्होंने व्यक्ति के व्यक्तित्व को शरीर, मस्तिष्क और चेतना तीन भागों में बाँटा और इन्हीं का सम्यक् विकास करने के लिए शारीरिक विकास, मानसिक विकास और चेतनात्मक विकास की बात कही।

4. **सृजनात्मकता का विकास :** मानवतावादी शिक्षा का एक उद्देश्य बालक में सृजनात्मकता का विकास करना भी है। ये सृजनात्मकता में विश्वास और आस्था रखते हैं। मानवतावादी मानव की पशु से भिन्नता का आधार उसकी बुद्धि, विवेक, कल्पनाशक्ति और सृजनात्मकता को माना है।

5. **नैतिक मूल्यों का विकास :** मानवतावादी विचारक मानवतावाद के अपने नैतिक मूल्य मानते हैं जिनका आधार सांसारिक अनुभव और सम्बन्ध है। इन्हें शिक्षा द्वारा विकसित किया जा सकता है।

6. **आत्म-विश्वास सागृत करना :** मानवतावादी शिक्षा में आत्म-विश्वास का भाव जागृत करना बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी के आध ार पर व्यक्ति अपनी समस्याओं को हल कर जीवन को सुखमय व्यतीत कर सकता है।

7. **जनसेवा की भावना का विकास :** मानवतावाद इस तथ्य को स्वीकार करता है कि वैयक्तिक विकास और पूर्णता जनसेवा द्वारा ही प्राप्त होती है। अतः व्यक्ति के वैयक्तिक विकास और पूर्णता की प्राप्ति के लिए जनसेवा की भावना का विकास करना आवश्यक है। यह कार्य शिक्षा द्वारा ही सम्भव है।

8. **विश्वबन्धुत्व और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का विकास :** मानवतावादी विचारक मानव में विश्व-बन्धुत्व और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का विकास करना चाहते हैं। उनका मानना है कि ऐसी भावना से ही शिक्षार्थी प्रेम, सहयोग, परोपकार जैसे मूल्यों को समझकर समुदाय, सम्प्रदाय और राष्ट्र आदि की संकीर्णता से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की ओर अग्रसर होगा।

शिक्षा के कार्य

शिक्षा एक बहुमुखी प्रक्रिया है अतः इस प्रकार इसके अनेक कार्य स्पष्ट होते हैं। **एम. एल. जैक्स** के अनुसार, "शिक्षा अनेक कार्य करने के लिए है। शिक्षा के द्वारा बालक को इस योग्य बनाना चाहिए कि वह स्वयं विचार कर सके, कठिन परिश्रम का सम्मान कर सके, उत्तम मित्र बना सके तथा अनन्त के प्रत्यक्ष का अनुभव कर सके।"

मनुष्य जन्म से ही दूसरों पर निर्भर रहता है। न वह बैठ सकता है न ही वह खड़ा हो सकता है, न ही वह चल सकता है आदि। यदि उसका समुचित ढंग से पालन-पोषण न किया जाय तो उसका जीवित रहना भी सम्भव नहीं है। परन्तु प्रकृति ने अन्य प्राणियों को मनुष्य की अपेक्षा अधिक आत्म-निर्भर बनाया है। गाय का बच्चा जन्म लेते ही अपने पैरों पर खड़ा होकर अपनी माँ

के थनों से दूध पीने में समर्थ होता है। मानव-शिशु को बोलना, चलना, खाना आदि सीखना पड़ता है, यह सीखने की प्रक्रिया ही शिक्षा कहलाती है। अत: अनेक शिक्षाविदों ने मानव एवं समाज दोनों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा के विभिन्न कार्य निर्धारित किये हैं।

जॉन ड्यूवी के अनुसार, "शिक्षा काय-असहाय प्राणी के विकास में सहायता पहुँचाना है जिससे कि वह सुखी, नैतिक और कुशल मानव बन सके।"

डेनियल वेब्स्टर के अनुसार, "शिक्षा का कार्य भावनाओं को अनुशासित, आवेगों को नियंत्रित प्रेरणाओं को उत्तेजित, धार्मिक भावना को विकसित करने तथा नैतिकता को अभिवृद्धित करना है।"

पं. जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, "शिक्षा से सन्तुलित मानव का विकास करने और बालकों को समाज के लिए लाभप्रद कार्यों को करने और सामूहित जीवन में भाग लेने के लिए तैयारी की आशा की जाती है।"

प्लेटो के अनुसार, "शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य तथा कार्य मानव प्रकृति और चरित्र को प्रशिक्षित करना है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इसके अनेक कार्य हैं।

शिक्षा के कार्य

शिक्षा के निम्नलिखित कार्य हैं-

(क) शिक्षा के सामान्य कार्य

(ख) मानवीय जीवन में शिक्षा के कार्य

(ग) सामाजिक जीवन में शिक्षा के कार्य

(घ) राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा के कार्य

(क) शिक्षा के सामान्य कार्य : शिक्षा के कुछ सामान्य कार्य अग्रलिखित हैं-

1. **अन्तर्निहित अथवा जन्मजात शक्तियों का विकास :** प्रत्येक बालक में कुछ आन्तरिक या अन्तर्निहित शक्तियाँ होती हैं। शिक्षा इन अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करती है। **पेस्टालॉजी** ने इसका समर्थन करते हुए लिखा है कि "शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों का स्वाभाविक, सामंजस्यपूर्ण एवं प्रगतिशील विकास है।"

डेनियल वेब्स्टर के अनुसार, "शिक्षा का कार्य तीव्र भावों पर नियंत्रण करना, भावनाओं को अनुशासित करना और सच्ची तथा उपयोगी प्रेरणाओं को उत्तेजित करना है।"

2. **मूल प्रवृत्तियों का नियन्त्रण :** मूल-प्रवृत्तियाँ मनुष्य के जीवन में सदैव निहित रहती हैं। प्रत्येक मूल-प्रवृत्ति का कोई न कोई लक्ष्य अवश्य होता है उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य कार्य करता है। अत: मनुष्य के कार्य एवं व्यवहार को समाज स्वीकार बनाने के लिए इन्हें नियंत्रित करना आवश्यक है। इस नियन्त्रण के कार्य को शिक्षा के द्वारा क्रियान्वित किया जाता है।

3. **व्यक्तित्व का विकास :** शिक्षा का प्रमुख कार्य बालक के व्यक्तित्व का विकास करना है। शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व के निर्माण के लिए बालक के शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक, संवेगात्मक आदि पक्षों का विकास किया जाना चाहिए। **टी. पी. नन** के अनुसार, "शिक्षा वैयक्तिकता का पूर्ण विकास है, जिससे कि व्यक्ति अपनी पूर्ण योग्यता अनुसार मानव जीवन को योग दे सके।"

   बुडवर्थ के अनुसार, "व्यक्तित्व व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार की व्यापक विशेषता का नाम है।"

   बी. डी. भाटिया के अनुसार, "शिक्षा योजना में बालक के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण तथा सर्वांगीण विकास के लिए व्यवस्था है।"

4. **चरित्र निर्माण :** शिक्षा का प्रमुख कार्य बालक के चरित्र का निर्माण करना है। शिक्षा हमें सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की अनुभूति कराती है। उसकी अनुभूति से बालक में श्रेष्ठता आती है वह राष्ट्र का निर्माण करने में भी योगदान देता है।

   डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार, "चरित्र भाग्य है, चरित्र वह वस्तु है जिस पर राष्ट्र के भाग्य का निर्माण होता है। तुच्छ चरित्र वाले मनुष्य श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते हैं।"

   हरबार्ट के अनुसार, "अच्छे नैतिक चरित्र का विकास ही शिक्षा है।"

5. **वयस्क जीवन की तैयारी :** शिक्षा बालक को वयस्क जीवन की तैयारी करने में सहायता देती है। क्योंकि आज का बालक ही कल का नागरिक है। **मिल्टन** ने कहा है, "मैं उसी को पूर्ण शिक्षा कहता

NOTES

हूँ जो मनुष्य को शान्ति और युद्ध के समय व्यक्तिगत और सार्वजनिक दोनों प्रकार के सब कार्यों को उचित रूप से करने योग्य बनाती है।"

शिक्षा बालक को समाज में रहने योग्य बनाती है। समाज उससे किस प्रकार के आचरण की आशा करता है इसका ज्ञान उसे शिक्षा ही कराती है।

6. **संस्कृति व सभ्यता का संरक्षण एवं हस्तान्तरण :** शिक्षा संस्कृति व सभ्यता का संरक्षण, प्रगति और हस्तान्तरण करती है। **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद**, ने कहा था कि संस्कृति अश्वमेध आन्तरिक प्रेरणाओं का प्रकटीकरण तथा एक समुदाय या राष्ट्र के विश्वासों का संचय है जो शताब्दियों की सहानुभूतियों से संग्रहित होते हैं। **ओटावे** के अनुसार, "शिक्षा का एक कार्य समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों को अपने तरुण और कार्यशील सदस्यों को प्रदान करना है।"

7. **सामाजिक प्रगति और सुधार :** शिक्षा मानव समाज की प्रगति और सुधार के लिए अत्यन्त आवश्यक है। **ड्यूवी** के अनुसार, "शिक्षा में अति निश्चित और अल्पतम साधनों द्वारा सामाजिक तथा संस्थागत उद्देश्य के साथ समाज के कल्याण, प्रगति और सुधार में रुचि को पुष्पित होना पाया जाता है। शिक्षा समाज की कुरीतियों एवं रूढ़िवादिता का अन्त करती है।"

8. **वातावरण के साथ सामंजस्य :** मनुष्य विज वातावरण के साथ रहता है उसे उस पर्यावरण के साथ अनुकूलन करना पड़ता है। यह अनुकूलन कार्य शिक्षा द्वारा सम्पादित होता है। शिक्षित व्यक्ति आवश्यकता पड़ने पर वातावरण को भी अपने अनुसार परिवर्तित कर लेता है। वह इतना कुशल हो जाता है कि परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करता जाता है। **हार्न** के अनुसार, "शिक्षा और मानसिक उपदेशात्मक और संकल्पित वातावरण से श्रेष्ठ अनुकूलन स्थापित करती है।"

9. **सृजनात्मक कार्य :** शिक्षा में सृजनात्मक कार्य होने पर ही उसका सामाजिक महत्व होता है। प्रयोजनवादियों ने सृजनात्मक शिक्षा को

महत्वपूर्ण माना है। शिक्षा को उन्होंने गत्यात्मक प्रक्रिया माना है। शिक्षक को कलाकार तथा शिक्षार्थी को उसका कृत्य माना है। शिक्षा के पाठ्यक्रम में हस्तकौशल और उत्पादक विषयों को महत्व दिया जाता है। शिक्षा के इन सब तथ्यों से उसके सृजनात्मक कार्य की ओर संकेत मिलता है।

10. **राजनीतिक कार्य :** देश में जिस प्रकार की शासन प्रणाली होती है उसका प्रचार शिक्षा द्वारा किया जाता है और प्रत्येक नागरिक को उस शासन प्रणाी के सम्बन्ध में ज्ञान दिया जाता है।

(ख) मानव जीवन में शिक्षा के कार्य : महान् दार्शनिक **डॉ. राध ाकृष्णनन्** का कहना है कि "शिक्षा को मानवीय होना चाहिए। इसमें मात्र बौद्धिक प्रशिक्षण का ही स्थान नहीं होना चाहिए वरन् आत्मानुशासन तथा हृदय की पवितत्रता पर भी बल दिया जाना चाहिए।"

भारतीय समाज की वर्तमान आवश्यकताओं, मूल्यों, गुणों, समस्याओं तथा उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए मानव जीवन के निम्न कार्य हैं-

1. **मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति :** इस संदर्भ में विवेकानन्द जी ने कहा है कि "शिक्षा का कार्य यह ज्ञात करना है कि जीवन की समस्याओं को किस प्रकार हल किया जाय और इसी कारण आध ुनिक सभ्य समाज का गम्भीर ध्यान इसी बात में लगा हुआ है। शिक्षा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।"

2. **आत्मनिर्भरता की प्राप्ति :** मानव जीवन में शिक्षा का एक कार्य व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाना है। जो व्यक्ति स्वयं अपने जीवन-यापन के भार को उठाने में समर्थ होता है वह समाज पर बोझ नहीं बनता है। **स्वामी विवेकानन्द** के अनुसार, "हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।"

3. **चरित्र विकास :** आज के संसार में झूठ, छल-कपट, स्वार्थ तथा धृणा का साम्राज्य दिखाई देने लगा है। इन सब बातों से भले ही व्यक्ति प्रगति करता दिखाई पड़े पर वह प्रगति स्थायी कदापि नहीं

NOTES

हो सकती । स्थायी शान्ति और उन्नति के लिए इन बुराइयों को दूर करना आवश्यक है जो शिक्षा द्वारा सम्भव है। **हरबार्ट** के अनुसार, "उत्तम नैतिक चरित्र का विकास करना ही शिक्षा का कार्य है।"

4. **व्यावसायिक कुशलता की प्राप्ति :** मानव जीवन में शिक्षा का एक कार्य छात्रों को व्यावसायिक कुशलता की प्राप्ति में सहायता प्रदान करना है। इससे राष्ट्रीय आय और उत्पादकता में वृद्धि होती है। **डॉ. राधाकृष्णन्** के अनुसार, "प्रयोगात्मक विषयों में प्रशिक्षित व्यक्ति कृषि और उद्योग के उत्पादन को बढ़ाने में सहायता प्रदान करते हैं। ये विषय सरलता से जीविका प्राप्त करने में सहायक होते हैं। छात्रों को जीविका कमाने में सहायता देना शिक्षा का कार्य है।"

5. **वातावरण में समायोजन :** शिक्षा व्यक्ति को वातावरण के साथ समायोजन भी करना सिखाती है। **थामसन** ने लिखा है कि "वातावरण शिक्षक है और शिक्षक का कार्य है, छात्र को उस वातावरण के अनुकूल बनाना जिससे कि वह जीवित रह सके और अपनी मूल-प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करने के लिए अधिकाधिक सम्भव अवसर प्राप्त कर सके।"

6. **कुशल नागरिकों का निर्माण करना :** शिक्षा का कार्य कुशल नागरिकों का निर्माण करना है। **बाइनिंग** व **बानिंग** के अनुसार, "विद्यालय वर्तमान परिस्थितियों तथा हमारे आधुनिक समाज में व्याप्त अन्यास, अशिष्टता तथा भ्रष्टाचार की अवहेलना नहीं कर सकते हैं। इनको छात्रों को प्रभावशाली ढंग से प्रशिक्षित करना चाहिए जिससे भावी नागरिक सुशासन में सामान्य रुचि तथा सक्रिय भाग ले सके और अपने सामाजिक सम्बन्धों में उच्च एवं निशंक नैतिकता का उपयोग कर सके।"

7. **सन्तुलित व्यक्तित्व का विकास :** शिक्षा का माव विकास में एक महत्वपूर्ण कार्य सन्तुलित व्यक्तित्व का विकास करना भी है। इस सम्बन्ध में **फ्रेडरिक ट्रेसी** ने लिखा है, "सम्पूर्ण शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य व्यक्तित्व के आदर्श को पूर्ण रूप में प्राप्त करना है। यह आदर्श सन्तुलित व्यक्तिक्त है।"

8. **मार्ग-दर्शन और जीवन में निरन्तरता :** जीवन में मार्ग-दर्शन और निरन्तरता कायम रखने में शिक्षा अपनी अहम् भूमिका निभाती है। **एमरसन** के अनुसार, "शिक्षा इतनी व्यापक होनी चाहिए जितना मनुष्य, उसमें जो भी शक्तियाँ हैं शिक्षा को उन्हें पोषित एवं प्रदर्शित करना चाहिए।"

(ग) सामाजिक जीवन में शिक्षा के कार्य : शिक्षा सामाजिक जीवन में अपने कार्यों का निर्वाह करती है। चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अत: समाज के साथ निर्वाह करने के लिए उसे अनेक तरह के कार्यों को करना पड़ता है।

1. समाज के साथ अनुकूलन।
2. सामाजिक कुशलता की उन्नति एवं सुधार।
3. सामाजिक कर्तव्यों की पूति।
4. संस्कृति और सभ्यता का विकास।
5. व्यक्तिगत हित को सामाजिक हित से दूर रखना।
6. सामाजिक भावना की जागृत।
7. सामाजिक गुणों का विकास।

प्रत्येक व्यक्ति समाज में ही जन्म लेता है, समाज में ही पल्लवित होकर जीवन व्यतीत करता है तथा समाज में ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में शिक्षा का महत्वपूर्ण कर्तव्य हो जाता है कि वह बालकों में सामाजिक भावना जागृत करं उनमें दया, परोपकार, सहनशीलता, सौहार्द, सहानुभूति, अनुशासन इत्यादि सामाजिक गुणों का विकास करें।

एच. गार्डन के मतानुसार, "शिक्षा को यह जानने की आवश्यकता नहीं है कि वह सामाजिक प्रक्रिया को उन व्यक्तियों को सम्मुख लाने की दिशा में आगे बढ़ जो इसके लिए अयोग्य है।"

शिक्षा समाज को नई दिशा दिखाती है। **ओटावे** ने सत्य ही कहा है कि "यह नि:सन्देह सत्य है कि सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा को एक महत्वपूर्ण कार्य करना पड़ता है।"

(घ) राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा के कार्य : मनुष्य जिस देश में जन्म लेता है और जहाँ का वह नागरिक होता है उसके प्रति उसके कुछ कर्तव्य हो जाते हैं जिन्हें उसे पूरा करना पड़ता है तभी राष्ट्र उन्नति की दिशा में अग्रसर होता है। प्रत्येक राष्ट्र की इकाई नागरिक होता है तथा उसके नैतिक स्तर पर प्रभाव राष्ट्रीय जीवन पर भी पड़ता है। **मैकाइवर** और **पेज** के मतानुसार, "राष्ट्र का गुण, उसकी सामाजिक इकाईयों का गुण है अर्थात् सामाजिक इकाइयों का सामूहिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन है। यदि ईंधन खराब है, तो ज्योति कैसे तेज हो सकती है। अर्थात् यदि सामाजिक इकाइयाँ निर्बल है तो राष्ट्र कैसे देदीप्यमान हो सकता है।"

अत: स्पष्ट है राष्ट्र तथा उसके निवासियों का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। राष्ट्र की उन्नति तभी हो सकती है, जब उसके नागरिक श्रेष्ठ हों। उनको ऐसा बनाना ही राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा का कार्य है।

1. **नेतृत्व की शिक्षा :** प्रत्येक राष्ट्र की सफलता उसके कुशल नागरिक तथा नेताओं पर निर्भर करती है। यह शिक्षा का कार्य है कि वह व्यक्तियों को इस प्रकार प्रशिक्षित करे कि से समाज के विभिन्न क्षेत्रों में कुशलता से नेतृत्व या मार्गदर्शन कर सके। आज भारत में जिस नेतृत्व की आवश्यकता है, उसके विषय में **डॉ. आर. एस. मणि** ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि "विशेष रूप से इस समय जबकि देश में लोकतन्त्र जीवन का ढंग हो गया है, अच्छे नेतृत्व की आवश्यकता है। सच्चे नेतृत्व के लिए सेवा की भावना के साथ-साथ अच्छे प्रशिक्षण की आवश्यकता है।"

2. **राष्ट्रीय एकता का विकास :** शिक्षा का कार्य राष्ट्रीय एकता का विकास करना है। अशिक्षित व्यक्ति अन्धविश्वास, क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता, जातीयता आदि में विश्वास करता है। इस देश के नागरिकों का शिक्षित होना बहुत ही आवश्यक है। शिक्षित व्यक्ति के सोचने का क्षेत्र व्यापक हो जाता है वह जातीयता, साम्प्रदायिकता, अन्धविश्वास, क्षेत्रीयता आदि में विश्वास नहीं करता। वह एक-दूसरे के साथ भाईचारे का व्यवहार करता है। ये देश के हितों को अपने हितों से महान् समझने लगता है।

3. **भावात्मक एकता का विकास :** देश में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए देशवासियों में भवात्मक एकता का विकास करना बहुत आवश्यक है। शिक्षा हमारे चारों ओर भावात्मक एकता का वातावरण निर्मित करती है। नागरिकों में उचित संवेगों का विकास

करती है। इससे उनके हृदयों की संकीर्णता टूटती है। उनमें एकता का विकास होता है। **पं. जवाहर लाल नेहरू** के मतानुसार, "जहाँ कहीं मैं जाता हूँ वहीं मैं एक ऐसी बात पर बल देता हूँ जो प्रत्यक्ष है जिससे हर व्यक्ति को सहमत होना चाहिए। मैं भारत की एकता पर बल देता हूँ न केवल राजनीतिक एकता पर जिसे हमने प्राप्त किया है पर इससे भी अधिक महत्वपूर्ण भावात्मक एकता पर अपने मन और हृदय की एकता पर और पृथ्वी की भावनाओं के दामन पर।"

4. **राष्ट्रीय अनुशासन :** शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय अनुशासन के कार्य पर विशेष बल दिया जा रहा है। किसी भी राष्ट्र की स्वतन्त्रता उसके अनुशासित नागरिकों पर निर्भर करती है।

5. **सांस्कृतिक विरासत से सम्पर्क :** राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा का प्रमुख कार्य कालक को राष्ट्र की संस्कृति के सम्पर्क में लाना है। शिक्षा बालकों को उनके राष्ट्र की संस्कृति का ज्ञान कराती है और बताती है कि उसके देश की संस्कृति किस प्रकार से विकसित हुई? **डॉ. जाकिर हुसैन** के अनुसार, "केवल संस्कृति की सामग्री द्वारा ही शिक्षा की प्रक्रिया को गति दी जा सकती है। केवल इसी सामग्री से मानव-मस्तिष्क का विकास हो सकता है।"

6. **व्यक्तिगत हित को सार्वजनिक हित से निम्न रखना :** शिक्षा का यह कार्य है कि वह लोगों के मन में ऐसी भावना का विकास करे जिससे वह अपने हितों के आगे अपने समूह, देश तथा राष्ट्र के हितों को निम्न समझे। **डॉ. राधाकृष्णन्** के अनुसार, "एशिया में प्रजातंत्र की सफलता हमारी अनुशासन में रहने की इच्छा औश्र व्यक्तिगत बलिदान पर आधारित है। यदि भारत संयुक्त और लोकतंत्रीय रहना चाहता है तो शिक्षा को लोगों की एकता के लिए न कि प्रादेशिकता के लिए, प्रजातंत्र के लिए न कि तानाशाही के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए।"

7. **योग्य नागरिक का निर्माण करना :** शिक्षा का कार्य प्रत्येक नागरिक में उचित नागरिकता का विकास करना है। शिक्षा द्वारा प्रत्येक बालक में देश-भक्ति, अधिकारों और कर्तव्यों को समझने और निभाने की क्षमता, देश की बागडोर सँभालने की योग्यता इत्यादि को उत्पन्न किया जाता है। **डॉ. जाकिर हुसैन** के मतानुसार, " प्रजातन्त्रीय समाज में यह आवश्यक है कि व्यक्ति नैतिक और

भौतिक दोनों प्रकार से समाज के जीवन को उत्तम बनाने के सम्मिलित उत्तरदायित्व को सहर्ष स्वीकार सके।"

न्यूयार्क की वैधानिक कमेटी ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि "सार्वजनिक शैक्षणिक व्यवस्था का यह प्रधान कार्य है कि वह विद्यार्थियों को राज्य में नागरिकता के अधिकारों और कर्तव्यों को निभाने योग्य बनाये।"

अत: स्पष्ट है कि शिक्षा मानवीय, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन में अपने विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करती है। ये सभी एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। इस सन्दर्भ में **बोसिंग** ने कहा है "शिक्षा का कार्य व्यक्ति और समाज के बीच ऐसा सामंजस्य स्थापित करना है जिसमें व्यक्ति अपने को मोड़ सके और परिस्थितियों को पुनर्व्यवस्थित कर ले जिससे दोनों को अधिकाधिक स्थाई सन्तोष हो सके।"

शिक्षा का विषय विस्तार

शिक्षाशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जिसमें शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप तथा उसके विभिन्न अंगों एवं समस्याओं का दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जाता है। जहाँ तक शिक्षाशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र की बात है, वह बहुत व्यापक है, लेकिन इस व्यापक क्षेत्र में हमने अब तक जो कुछ सोचा विचारा है, वह उसकी विषयवस्तु है। शिक्षाशास्त्र के अध्ययनक्षेत्र एवं विषयवस्तु को सामान्यत: निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जाता है -

शिक्षा दर्शन– मानव जीवन बड़ा रहस्यमय है, जब तक हम उसके रहस्य को नहीं समझते तब तक हम यह निश्चित नहीं कर सकते कि हमें क्या सीखता है और क्या सिखाना है। इसलिए शिक्षाशास्त्र में जीवन के प्रति जो विभिन्न दृष्टिकोण है, उनका तथा उनके आधार पर शिक्षा के स्वरूप, शिक्षा के उद्देश्य और शिक्षा की पाठ्यचर्या आदि का अध्ययन किया जाता है। शिक्षाशास्त्र के इस भाग को शिक्षादर्शन कहा जाता है।

शैक्षिक समाजशास्त्र– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह जो कुछ भी सीखता है समाज के बीच रहकर सीखता है उसके आचार-विचार को प्रभावित करने में समाज तथा सामाजिक संगठनों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। दूसरी ओर शिक्षा समाज पर नियन्त्रण रखती है, तथा उसका विकास करती है। शिक्षाशास्त्र के अन्तर्गत समाज के स्वरूप, समाज और शिक्षा के

आपसी सम्बन्ध, विभिन्न सामाजिक संगठनों एवं शिक्षा की प्रक्रिया में उनके कार्यों, समाज और विद्यालयों के सम्बन्धों, शिक्षा के सामाजिक कार्यों और शिक्षा तथा सामाजिक बदलाव के आपसी सम्बन्ध आदि का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन क्षेत्र को शैक्षिक समाजशास्त्र कहा जाता है।

ब्राउन के मतानुसार "शैक्षिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र के सिद्धान्तों को शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर क्रियान्वित करता है।"

ओटावे के अनुसार

"शैक्षिक समाजशास्त्र शिक्षा और समाजशास्त्र के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है।"

शिक्षा मनोविज्ञान – वर्तमान शिक्षा प्रक्रिया में बालक को बड़ा महत्व दिया जाता है। उसके शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास के आधार पर ही उसकी शिक्षा व्यवस्था की जाती है। इन सबको समझने के लिए हमें मनोविज्ञान की सहायता लेनी पड़ती है। मनोविज्ञान का वह भाग जिसमें बालक के विकासक्रम, सीखने की प्रक्रिया और अन्य शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, उसे शिक्षा मनोविज्ञान कहते हैं। इसमें बच्चों की प्रकृति उनकी योग्यता, रूचियों और अभिरूचियों तथा स्मृति, विस्तृति, चिन्तन और कल्पना आदि शक्तियों का अध्ययन किया जाता है। और शिक्षा की प्रक्रिया में उनके उपयोग की सीमा निश्चित की जाती है। शिक्षा मनोविज्ञान में बच्चों की बुद्धि तथा उनके व्यक्तित्व के विकास की विधियाँ तथा उनके मापने की विधियाँ तथा सीखने की प्रक्रिया के स्वरूप, विधियों एवं दशाओं का भी विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

कोलसनिक के मतानुसार –

"शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान की खोजों और सिद्धान्तों का प्रयोग है"।

स्किनर के अनुसार –

"शिक्षा मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार का शैक्षिक परिस्थितियों में अध्ययन है"।

लिण्डग्रेन के अनुसार –

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों का सम्बन्ध तीन केन्द्र बिन्दुओं से है और वह है –

i. शिक्षार्थी

NOTES

ii. सीखने का प्रक्रम

iii. सीखने की परिस्थितियाँ

शिक्षा का इतिहास – वर्तमान की रचना अतीत की उपलब्धियों के आधार पर ही की जाती है, इसलिए अतीत का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक होता है। शिक्षाशास्त्र में हम शिक्षा के इतिहास का अध्ययन इसी दृष्टि से करते हैं। जब तक हम आदि काल से लेकर अब तक शिक्षा का जो स्वरूप रहा है, उसकी जो व्यवस्था रही है तथा उसके जो परिणाम रहे हैं, उस सबका विस्तृत अध्ययन नहीं करते तब तक हम अपने लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकते। अत: शिक्षाशास्त्र में इस सबका अध्ययन भी किया जाता है।

तुलनात्मक शिक्षा– आज मनुष्य केवल अपनी जाति के अनुभवों से ही लाभ नहीं उठाता बल्कि दूसरे देशों के लोगों के अनुभवों से भी लाभ उठाता है। शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में भी विभिन्न देशों की शिक्षा प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है तथा उनके गुणदोषों का उल्लेख किया जाता है। इससे हम अपनी परिस्थितियों में अपने उपयोग की शिक्षा व्यवस्था का निर्माण करने में सफलता अर्जित करते हैं।

शैक्षिक समस्याएँ

इसके अन्तर्गत देश की वर्तमान शैक्षिक समस्याओं पर विचार किया जाता है और उनके समाधान के उपाय खोजे जाते हैं। वर्तमान काल में हमारे देश में मुख्य शैक्षिक समस्याएँ हैं- देश के सभी क्षेत्रों में शिक्षा की समान सुविधाएँ उपलब्ध कराना, शिक्षा को व्यवसायिक स्वरूप प्रदान करना, धर्मनिरपेक्ष राज्य में धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा का विधान करना तथा शिक्षा का राष्ट्रीयकरण करना आदि। जब तक शिक्षाशास्त्र के अन्तर्गत वर्तमान समस्याओं का अध्ययन कर उनके समाधान के उपाय नहीं सोचे जाते तब तक इसे विकसित नहीं कहा जा सकता।

शैक्षिक प्रशासन एवं संगठन– नियमित शिक्षा की व्यवस्था विद्यालयों में होती है, इसलिए शिक्षाशास्त्र में इन विद्यालयों के संगठन संचालन की विधियों का अध्ययन भी किया जाता है। इसमें जिन तथ्यों का अध्यययन किया जाता है उनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं –

शिक्षा का संचालन किसके हाथ में है, राज्य का इसमें किस प्रकार सहयोग है? समाज किस प्रकार सहयोग कर रहा है, विद्यालयों का निर्माण कैसे करना चाहिए, विद्यालयों में विभिन्न शैक्षिक (पाठ्यचारी एवं सहपाठ्यचारी) क्रियाओं

का संगठन किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाए कि उनसे अत्यधिक लाभ उठाया जा सके, प्रधानाध्यापकों तथा अध्यापकों के गुण एवं कर्तव्यों और उनके आपसी सम्बन्धों को मधुर बनाने के उपाय, बच्चों में अनुशासन उत्पन्न करने के उपाय, बच्चों का प्रवेश, उनका वर्गीकरण और उनकी उपलब्धियों का मूल्यांकन तथा कक्षोन्नति, विद्यालयों में बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा के उपाय और शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन। इन सबके अध्ययन से हम शिक्षा की प्रक्रिया को सुचारू रूप से संचालित करने में समर्थ होते हैं।

शिक्षण कला एवं तकनीकी– शिक्षण प्रक्रिया में सीखना और सिखाना दोनों प्रक्रियाएँ आती हैं। सीखना क्या है? इसकी विधियाँ कौन-कौन सी हैं? उत्तम सीखना कब सम्भव होता है? इन सभी प्रश्नों के उत्तर हमें मनोविज्ञान देता है तथा उसके आधार पर भिन्न-भिन्न स्तरों के बच्चों को भिन्न-भिन्न विषयों को पढ़ाने की कौन-कौन सी विधियों का निर्माण हुआ है? उनमें कौन सी विधियाँ उपयोगी हैं? और इन विधियों को अपनाते समय क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए? इन सबकी चर्चा शिक्षण कला तथा तकनीकी के अन्तर्गत की जाती है। अतः शिक्षाशास्त्र में इस सबका अध्ययन भी किया जाता है। नियोजित शिक्षा को चलाने के लिए हमें इस सबका अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है।

अध्ययन के विशिष्ट क्षेत्र

शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में अब नए-नए विषयों का विकास हो रहा है तथा उनका अध्ययन भी आवश्यक समझा जाता है। जैसे- शिशु शिक्षा, बालशिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्रीशिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, शिक्षक शिखा, पुस्तकालय संगठन, शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन, शिक्षण में दृश्य-श्रव्य सामग्री का उपयोग, शैक्षिक तकनीकी, शैक्षिक नियोजन, शैक्षिक वित्त, शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन, शैक्षिक सांख्यिकी और शिक्षा में अनुसंधान आदि। इस संदर्भ में हम यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझते हैं कि आज से कुछ वर्ष पहले तक इन सबका अध्ययन शिक्षा के इतिहास, शैक्षिक प्रशासन, शिक्षा मनोरंजन और शैक्षिक तकनीकी ही किया जाता था, परन्तु अब से भिन्न-भिन्न विषयों के रूप में विकसित हो रहे हैं।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा को परिभाषित करते हुए इसकी प्रकृति का उल्लेख कीजिए।

NOTES

2. शिक्षा के वैदिक अर्थ से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।
3. शिक्षा के आधुनिक अर्थ को समझाते हुए इसके महत्व की व्याख्या कीजिए।
4. शिक्षा के व्यापक अर्थ से आप क्या समझते हैं? इसकी आवश्यकता समझाइये।
5. शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए तथा इसके सामान्य उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
6. शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
7. शिक्षा की अवधारणा बताइये तथा इसके राष्ट्रीय उद्देश्यों की समीक्षा कीजिए।
8. शिक्षा के कार्यों का उल्लेख कीजिए।
9. शिक्षा के संकुचित अर्थ को समझाते हुए, विभिन्न आयोगों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
10. शिक्षा के विषय विस्तार से आप क्या समझते हैं ?

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के अर्थ एवं प्रक्रिया को समझाइये।
2. शिक्षा की अवधारणा से आपका क्या तात्पर्य है? इसकी आवश्यकता का उल्लेख कीजिए।
3. शिक्षा के आधुनिक अर्थ एवं उसकी प्रकृति को समझाइये।
4. शिक्षा के वैदिक अर्थ से आप क्या समझते हैं?
5. शिक्षा के संकुचित अर्थ को समझाइये।
6. शिक्षा के व्यापक अर्थ को परिभाषित कीजिए।
7. शिक्षा के महत्व को समझाइये।
8. शिक्षा की प्रक्रिया का विश्लेषण कोई चार तथ्यों के आधार पर कीजिए।

2 शिक्षा के अभिकरण

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- घर – शिक्षा के अभिकरण के रूप में
    - घर के आवश्यक प्रकार्य
    - घर के शैक्षिक प्रकार्य
- विद्यालय - शिक्षा के एक औपचारिक अभिकरण के रूप में
    - विद्यालय के प्रमुख प्रकार्य
    - विद्यालय के शैक्षिक प्रकार्य
    - घर और विद्यालय के बीच संबंध –
- समुदाय - एक अभिकरण के रूप में
    - समुदाय के महत्वपूर्ण प्रकार्य
    - समुदाय के शैक्षिक प्रकार्य
    - समुदाय और विद्यालय के बीच संबंध
    - समुदायों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा उनका शैक्षिक प्रणाली या विद्यालय पर प्रभाव
    - सामुदायिक कार्यकलापों में विद्यार्थियों की भागीदारी
- जनसंचार माध्यम (मीडिया) - शिक्षा के एक अभिकरण के रूप में
    - जनसंचार माध्यम के मुख्य (महत्वपूर्ण) प्रकार्य
    - जनसंचार माध्यम के शैक्षिक प्रकार्य
    - घर, समुदाय, विद्यालय एवं जनसंचार माध्यम के बीच संबंध
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे –

- घर – शिक्षा के अभिकरण के रूप में
  - घर के आवश्यक प्रकार्य
  - घर के शैक्षिक प्रकार्य
- विद्यालय - शिक्षा के एक औपचारिक अभिकरण के रूप में
  - विद्यालय के प्रमुख प्रकार्य
  - विद्यालय के शैक्षिक प्रकार्य
  - घर और विद्यालय के बीच संबंध –
- समुदाय - एक अभिकरण के रूप में
  - समुदाय के महत्वपूर्ण प्रकार्य
  - समुदाय के शैक्षिक प्रकार्य
  - समुदाय और विद्यालय के बीच संबंध
  - समुदायों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा उनका शैक्षिक प्रणाली या विद्यालय पर प्रभाव
  - सामुदायिक कार्यकलापों में विद्यार्थियों की भागीदारी
- जनसंचार माध्यम (मीडिया) - शिक्षा के एक अभिकरण के रूप में
  - जनसंचार माध्यम के मुख्य (महत्वपूर्ण) प्रकार्य
  - जनसंचार माध्यम के शैक्षिक प्रकार्य
  - घर, समुदाय, विद्यालय एवं जनसंचार माध्यम के बीच संबंध

प्राक्कथन

शिक्षा एक सामाजिक तथा एक वैयक्तिक आवश्यकता होती है, क्योंकि मुख्यतः बच्चा एक सामाजिक व्यक्ति है। शारीरिक, जैविक, संज्ञानात्मक, सामाजिक, नैतिक, तथा आध्यात्मिक इन सभी पक्षों की दृष्टि से उसकी वृद्धि का अनिवार्य रूप से एक सामाजिक संदर्भ होता है। मानव अधिगम एवं शिक्षा का स्वरूप, स्वभाव से ही अन्तःक्रियात्मक होता है। यह अन्तःक्रिया भौतिक जगत तथा सामाजिक जगत किसी से भी हो सकती है।

बच्चे की शिक्षा उसके जन्म के तुरन्त बाद शुरू हो जाती है जबकि बच्चे में होने वाली वृद्धि मात्र एक जैविक परिपक्वता संबंधी प्रक्रिया है। बच्चे की प्रथम भेंट माँ तथा परिवार के सदस्यों से होती है। इससे बच्चे का बाह्य

दुनिया के विषय में सीखना सरल हो जाता है। इसके अलावा बच्चे की शिक्षा का अन्य अभिकरण विद्यालय है। विद्यालय में बच्चे की अंत:क्रिया अध्यापकों, समकक्ष बच्चों तथा अन्य व्यक्तियों से होती है जिसका बच्चें के चिंतन तथा व्यवहार पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव पड़ता है। साथ-साथ बच्चे का व्यवहार समुदाय तथा जनसंचार माध्यमों जैसे टी. वी., रेडियो, सिनेमा आदि से प्रभावित होता रहता है। ये सभी स्रोत, जिनके द्वारा बच्चा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त करता है, शिक्षा के अभिकरण कहे जाते हैं। इन सभी अभिकरणों की सहायता से बच्चा संस्कृति संबंधी लोकाचार (ethos) तथा समाज के मूल्य विकसित करता है। इसके अतिरिक्त इन अभिकरणों के द्वारा बच्चा अपने आस-पास की दुनिया के सम्बन्ध में जानकारी या ज्ञान प्राप्त करता रहता है, अपने परिवेश से संबंधित या उस में पाई जाने वाली चीजों के प्रति सकारात्मक, नकारात्मक अथवा तटस्थ अभिवृत्ति विकसित कर लेता है। तथा ऐसे कुछ सामाजिक व व्यक्तिगत कौशलों में कुशलता प्राप्त कर लेता है जो अपने पदविरण को वश में करने तथा स्वयं कुशलता प्राप्त करने में उसकी सहायता करते हैं।

NOTES

इस इकाई में आप शिक्षा के विभिन्न अभिकरणों तथा इन अभिकरणों की भूमिका के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे जिससे यह ज्ञात हो सकेगा कि किस तरह ये अभिकरण बच्चे को वातावरण के विषय में जानने में उसकी सहायता करते हैं तथा किस तरह बच्चे की वृद्धि तथा उसके विकास को प्रभावित करते हैं।

घर – शिक्षा के एक अभिकरण के रूप में

यह सत्य है कि माँ बच्चे का पहला शिक्षक होती है; और घर बच्चे की पहली अनौपचारिक पाठशाला। 5 या 6 वर्ष की आयु तक बच्चा मुख्य रूप से माता, पिता या अन्य भाई बहन के साथ रहता है। व्यक्ति का शैशव काल सर्वाधिक प्रभावनीय या अतिसंवेदनशील काल होता है जो एक साफ स्लेट की भाँति होता है जिस पर कुछ भी लिखा जा सके। आरंभ के वर्षों में बच्चे के व्यवहार को किसी दिशा में ढाला जा सकता है, बशर्ते उपयुक्त सामाजिक-मनोवैज्ञानिक वातावरण उपलब्ध कराया जाए। यदि बच्चे का पालन-पोषण एक स्वतंत्र, स्नेहयुक्त व कोमल तथा स्वतंत्र वातावरण में किया जाए जिसमें उसकी ओर सही ध्यान दिया गया हो तो बच्चे का बाद का विकास बड़ा ही स्वस्थ होगा। अत: स्पष्ट है कि घर बच्चे के व्यक्तित्व - संज्ञानात्मक, सामाजिक, संवेदात्मक तथा नैतिक विकास के संदर्भ में शिक्षा - को आधार प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

घर के आवश्यक प्रकार्य

एक सामाजिक प्राणी के रूप में बच्चे को विकसित होने के लिए घर कुछ महत्वपूर्ण प्रकार्य संपादित करता है। ये प्रकार्य निम्नलिखित हैं: 1) समाजीकरण, 2) उत्संस्करण, 3) संबद्धता की भावना अथवा वयम्-भावना, 4) धार्मिक आस्था संचारण, तथा 5) नैतिक अधिगम या नैतिक शिक्षा। घर द्वारा संपादित ये सभी प्रकार्य परस्पर संबंधित होते हैं।

घर पहली ऐसी सामाजिक संस्था होती है जो बच्चे का समाजीकरण करने का प्रयत्न करती है, अर्थात् बच्चे में उन योग्यताओं का विकास करता है जो उसकी भावी-भूमिका निष्पादन या कर्तव्य पालन के लिए अनिवार्य हों। एक या अनेक सामाजिक प्रकार्यों के निष्पादन के लिए प्रत्येक समाज को कुछ सामाजिक संस्थाओं पर निर्भर करना पड़ता है, ऐसे प्रकार्य जैसे 1) समाज की संस्कृति को स्थाई रखना, और 2) सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का सुगमीकरण।

किसी सामाजिक संस्था के इन दो मूल प्राथमिक प्रकार्यों में से सामाजिक विरासत का संरक्षण (preservation) परिवार के प्रकार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। जैसा कि हमें ज्ञान है, मानव जीवन संगठित सांस्कृतिक इतिहास तथा सांस्कृतिक परिवर्तन पर आधारित होता है। संगठित सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से घर की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। बच्चा अपने माता-पिता को दैनिक जीवन की क्रियाओं तथा व्यवहार में एक विशेष प्रकार से कार्य करते अथवा व्यवहार करते देखता है; और संबद्धता की भावना से बालक उन व्यवहारों को सुगमतापूर्वक ग्रहण कर लेता है तथा उन्हें आत्मसात् कर लेता है जिन्हें परिवार में सराहनीय समझा जाता है। वास्तव में यह वयम् भावना ही होती है जिसे परिवार का विशेष लक्षण माना जाता है और इसी भावना के कारण आंतरीकरण संभव होता है। बच्चा नैतिक लोकाचारों तथा समस्त मूल्य पद्धति को, चाहे वह अच्छी हो या बुरी, ग्रहण कर लेता है।

घर के शैक्षिक प्रकार्य

हम सभी यह जानते हैं कि शैक्षिक प्रकार्यों का संबंध बच्चे के समग्र एवं सन्तुलित व्यक्तिव विकास से होता है और हमें यह भी मालूम है कि बच्चे के व्यक्तित्व विकास में सार्थक ज्ञान, कौशल, अभिवृत्तियाँ, मूल्य, व्यवहार का विकास सम्मिलित होता है। शिक्ष्यता से अभिप्राय है ऐसे अधिगम के प्रति अभिरूचि तथा अभिप्रेरण जो सार्थक हो, उचित हो; और साथ-साथ इन

सबको प्राप्त करने के प्रयत्न। इसके अतिरिक्त हमें यह ज्ञात है कि बच्चे के व्यक्तित्व का विकास उन संबंधों से गहन रूप से प्रभावित होता है जो संबंध बच्चे तथा माता-पिता के बीच पाए जाते हैं। ऐसे कारक जो संवेगात्मक रोगों को जन्म देते हैं वे परस्पर संबंधित होते हैं। ऐसा विश्वास है कि परिवार के सदस्यों में पाई जाने वाली विकृतियाँ, उत्तेजनाएँ या परिवार के सदस्यों के, विशेषतया माता एवं पिता के आपसी संबंधों की विकृति के कारण होती हैं। प्रायः मानसिक रोगों का, विशेष कर बच्चों के रोगों का, किसी परिवार की साम्यावस्था के साथ एक प्रकार्यात्मक संबंध होता है। इसी प्रकार बच्चों को मूल्य अवस्थिति या अभिविन्यास जिनके साथ बच्चों का घनिष्ठ संबंध होता है, मुख्यतः अचेतन मन के साथ जुड़ी होती है, तथापि सभी प्रकार के क्रियाकलापों में व्यक्तियों के व्यवहार प्रतिरूपों तथा चिंतन प्रक्रियाओं को सुस्पष्ट रूप से प्रभावित करते हैं। यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि माता-पिता अपने बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। यदि बच्चे से प्यार किया जाता है, उसे माता-पिता द्वारा उचित स्वतंत्रता दी जाती है ताकि वे स्वयं निर्णय करने लगे तो इस बात की बहुत संभावना होगी कि उनमें माता-पिता के प्रति तथा अन्य व्यक्तियों के प्रति भी एक सकारात्मक अभिवृत्ति का विकास होगा।

अतः आधुनिक जटिल समाज में बच्चे के व्यक्तित्व के विकास में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उसकी अभिवृत्तियाँ तथा मूल्य संरचना इस बात पर निर्भर करती है कि माता-पिता तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति उसके पालन-पोषण में किस प्रकार का योगदान हैं। बच्चे की बौद्धिक योग्यताएँ, अपेक्षाएँ व आकांक्षाएँ तथा प्रतिबद्धताएँ" सर्वप्रथम परिवार में ही ग्रहण की जाती हैं। अतः बच्चे के व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि माता-पिता को भी इस दिशा में उचित रूप से शिक्षित होना चाहिए। एक अच्छा अभिभावक वह है जो बढ़ते बच्चे को उसकी सभी आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं के संदर्भ में समझता है। उसे उचित स्वतंत्रता प्रदान करता है और बच्चे पर अपने विचार तथा अभिवृत्तियाँ कभी नहीं लादता। उसकी बच्चे के प्रति देख-भाल पूर्ण अभिवृत्ति तो अवश्य होती है लेकिन स्वत्व बोधक अभिवृत्ति कदापित नहीं होती। वह बच्चे को स्वायत्त रूप से बढ़ते देखना चाहता है, ताकि बच्चे का व्यक्तित्व हो सके।

घर मात्र बच्चे के समाजीकरण बल्कि को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि उसकी शिक्ष्यता के निर्धारण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समाजवादियों के पास इस बात के आनुभविक साक्ष्य हैं कि बच्चों के निष्पादनों में अंतर

क्यों होते हैं। उनके अनुसार यह बात आंशिक रूप से जैविक कारकों, जैसे बुद्धि तथा आंशिक रूप से घर पर बच्चे के पालन पोषण पर निर्भर करती है। जिस तरह से घर पर बच्चे से व्यवहार किया जाएगा उसका बच्चे की अभिप्रेरणाओं तथा अभिरुचियों पर प्रभाव पड़ेगा। बच्चे के विद्यालय प्रवेश से पूर्व ही नहीं परन्तु विद्यालयी शिक्षा के अंत तक ऐसा होता रहता है। यह अभिभावकों पर निर्भर करता है कि वे अध्यापकों के क्रिया-कलापों की कमी को पूरा करें तथा समर्थन करें। अत: उन्नत घर-विद्यालय संबंधों का निर्माण करना बच्चे की शिक्षा के उन्नयन के लिए आवश्यक है। विद्यालयीय संस्कृति में बच्चे की प्रविष्टि के लिए माता-पिता की अभिवृत्तियाँ एवं क्रिया-कलाप उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि अध्यापकों के।

विद्यालय - शिक्षा के एक औपचारिक अभिकरण के रूप में

अधिकांश छोटे-छोटे तथा सरल प्रकार के समाजों में शिक्षा प्राय: अनौपचारिक रूप से प्रदान की जाती है। समूह के तौर तरीके वयस्कों के व्यवहार को देख कर सीख लिए जाते हैं लेकिन समाज जैसे-जैसे जटिल व विशिष्टीकृत हो जाता है, शिक्षा की अनौपचारिक संस्थाएँ कम प्रभावी हो जाती हैं। समय के साथ-साथ सामाजिक जटिलता और शैक्षिक विशेषज्ञता की आवश्यकता इतनी बढ़ जाती है कि विद्यालय तथा अध्यापन सामाजिक संरचना में लगभग अंत:स्थापित हो जाते हैं।

विद्यालय सामान्य रूप से संपूर्ण समाज से संबंधित होता है, स्वयं में एक लघु समाज को निरूपित भी करता है। इस लघु समाज के सदस्य - अध्यापक, विद्यार्थी तथा अन्य-व्यक्ति परस्पर अंत: क्रिया करते हुए अपने-अपने तरीकों से हिस्सेदारी करते हैं। विद्यालय की अपनी आचार संहिता होती है, इसका अपना एक सामाजिक पर्यावरण होता है तथा इसकी अपनी संस्कृति। एक रूप में यह एक "समग्र संस्था" को निरूपित करता है। इस अर्थ में कि कोई विद्यार्थी चाहे वह किसी भी सामाजिक संस्कृति से आया हो उसे विद्यालय के सभी नियमों का पालन करना होता है और जब तक वह उस विद्यालय में रहता है विद्यालय के उस विशिष्ट सामाजिक वातावरण से सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है।

वातावरण से विद्यालय के प्रमुख प्रकार्य

समाज के एक अभिकरण के रूप में विद्यालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह निम्नलिखित प्रमुख प्रकार्यों को संपादित करें :

NOTES

i) भावी वयस्क भूमिकाओं के लिए विद्यार्थियों में प्रतिबद्धताएँ तथा क्षमताएँ उत्पन्न करना।

ii) वयस्क समाज की भूमिका संरचना के अनुसार उनमें मानव संसाध न निर्धारित करना।

प्रकार्यात्मक दृष्टि से विद्यालय को युवा पीढ़ी के समाजीकरण के लिए समाज के अभिकरण के रूप में स्वीकार किया जाता है। अर्थात् यह वह अभिकरण है जिसके द्वारा व्यक्तियों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है ताकि वे अभिप्रेरणात्मक रूप से तथा तकनीकी रूप से वयस्क भूमिका निर्वहन के लिए तैयार हो सकें। विद्यालय के माध्यम से व्यक्ति में उन प्रतिबद्धताओं व योग्यताओं का विकास किया जाता है जिनकी अपेक्षा भावी भूमिका निर्वाहन के लिए की जाती है। ऐसी प्रतिबद्धताओं के दो घटक पाये जाते हैं :

i) समाज के सामान्य तथा व्यापक मूल्यों का पालन करने की प्रतिबद्धताएँ

ii) समाज संरचना के अंतर्गत विशिष्ट भूमिका निर्वाहन के लिए प्रतिबद्धताएँ

इस प्रकार चाहे कोई व्यक्ति बहुत छोटी अवस्थिति या छोटे व्यवसाय में क्यों न हो वह एक यथार्थ नागरिक कहा जा सकता है, बशर्ते वह उस व्यवसाय में ईमानदारी तथा वचनबद्धता पूर्ण अपने कर्तव्य का पालन करता रहे।

इसी प्रकार क्षमताएँ दो प्रकार की हो सकती हैं (i) व्यक्तिगत भूमिका निर्वहन में शामिल कुशलताएँ या क्षमताएँ: तथा ii) भूमिका के प्रति दायित्व की भावना। इस प्रकार, एक मैकेनिक तथा एक डॉक्टर को मात्र अपने-अपने व्यवसाय के मूल कौशल ही प्राप्त न हों बल्कि उन व्यक्तियों के प्रति जिनसे अपने व्यवसाय में उनका मेल-जोल होता है, उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से व्यवहार करने की योग्यता भी होनी चाहिए।

दूसरा प्रकार्य - समाज की भूमिका संरचना में संसाधनों का निर्धारण - विभिन्न विद्यार्थियों में विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं/कार्यों पर आधारित विभेदन पर निर्भर करता है तथा यह विभेदन (i) विद्यार्थियों में पाई जाने वाली मूल योग्यताओं तथा (ii) तथा (i) कार्यों के अनुरूप विशिष्ट अध्ययन क्षेत्रों में विद्यार्थियों की उपलब्धि पर निर्भर करता है। जैसे- यदि हमें डॉक्टरी व्यवसाय के लिए विद्यार्थियों का चयन करना है तो हम ऐसा उनकी मूल योग्यताओं के आकलन तथा भौतिक, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान तथा भाषा में दक्षता के आधार पर कर सकते हैं।

अतः कह सकते हैं कि विद्यालय का यह प्रकार्य शैक्षिक रूप से अधिक योग्य व्यक्तियों को कम योग्य व्यक्तियों से अलग छाँट कर तथा तत्पश्चात्

उन्हें उनकी शैक्षिक योग्यता अनुसार कार्य निर्धारित करके किया जा सकता है। ऐसे विभाजन से व्यक्गित तथा सामाजिक हित तथा समायोजन भली-भांति पूर्ण होते दिखाई देंगे।

इसके विपरीत, यदि व्यक्तियों को वे कार्य प्रदान किये जाएँ जो उनकी शैक्षिक क्षमताओं, योग्यताओं या रुचियों के अनुसार नहीं हैं, तो ऐसी अवस्था में न तो वे कभी भी अपने आपको समायोजित कर पाएँगे और न ही वे समाज के लिए उपयोगी सदस्य बन सकेंगे। इसके बावजूद, कुछ व्यक्ति इस प्रकार से छाँटने की नैतिक न्यायसंगतता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। उनका विचार है कि व्यक्तियों को प्रतियोगिताओं के आधार पर छांटने से समान अवसर के लोकतांत्रिक आदर्श को आघात पहुँचता है। क्योंकि इस प्रकार का विभाजन बुद्धिलब्धि के आधार पर किया जाता है; तथा इस बात की काफी संभावना है कि बुद्धि परीक्षण सामाजिक या आर्थिक रूप से सुविधा हीन समूह के विरूद्ध स्वभावत: पक्षपातपूर्ण हों।

विद्यालय के शैक्षिक प्रकार्य

समाजीकरण तथा उत्संस्करण जैसे सामान्य प्रकार्यों के अलावा विद्यालय द्वारा कुछ विशिष्ट शैक्षिक प्रकार्य संपादित किए जाते हैं। इन शैक्षिक प्रकार्यों को भी दो वर्गों में बाँटा जा सकता है।

(क) **प्रत्यक्ष प्रकार्य :** प्रत्यक्ष प्रकार्य निम्नलिखित हो सकते हैं :

(i) पारंपरिक संस्कृति संप्रेक्षण तथा प्रसारण

(ii) मूलभूत कौशलों का अध्यापन तथा व्यावसायिक शिक्षा।

(iii) चारित्रिक शिक्षा (चरित्र निर्माण शिक्षा)

(ख) नवोद्भावित (उन्मज्जी) प्रकार्य : इस के कार्य निम्नलिखित हो सकते हैं :

(i) वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं का हल

(ii) सामाजिक दक्षता;

(iii) नए ज्ञान का प्रसार एवं विस्तार;

(iv) समान अवसर प्रदान करना;

(iv) यौन शिक्षा तथा पारिवारिक जीवन शिक्षा;

NOTES

(v) अतिरिक्त क्रियात्मक साक्षरता

(vii) सार्वभौम दृष्टिकोण का विकास (विश्वबन्धुत्व की भावना);

इन सभी प्रकार्यों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

क (i) पारंपरिक संस्कृति संप्रेषण अथवा प्रसारण : बच्चों का समाज की सामूहिक उपलब्धियों के प्रति उत्संस्करण सदैव से ही विद्यालय की केन्द्रीय भूमिका रही है, जिसे सामान्यतः इतिहास, साहित्य, कला तथा शिल्प इत्यादि विषयों के औपचारिक अध्यापन के द्वारा पूर्ण है। राष्ट्रीय, ऐतिहासिक, तथा अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं के उत्सव के रूप में मनाना भी युवा बालकों के उत्संस्करण के लिए एक उत्तम साधन है, तथापि हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि विद्यालय का उत्संस्करण प्रकार्य इसके समाजीकरण कार्य से भिन्न होता है। समाजीकरण का संबंध उन वास्तविक व्यवहार-प्ररूपों से जानता है जिन्हें समाज "कौशलों" के नाम से जानता है जबकि उत्संस्करण प्रकार्य के अंतर्गत भूतकाल के उस ज्ञान को प्राप्त करना आता है जिसे संस्कृति के रूप में हस्तांतरित किया गया है तथा जो अभिवृत्ति या मनोवृत्ति आदि पर प्रभाव डालता है।

विद्यालय में बच्चे का समाजीकरण जिस प्रकार की रीतियों द्वारा किया जाता है, उनका एक उदाहरण है जैसे दूसरों के साथ वार्तालाप करने के लिए बारी का शांति एवं विनम्रतापूर्वक इन्तजार करना। दूसरी ओर, इतिहास के औपचारिक अध्ययन के द्वारा बच्चों का बैलगाड़ी से लेकर मोटरगाड़ी के ज्ञान से सम्बन्धित उत्संस्करण होता है।

क (ii) मूलभूत कौशलों तथा व्यावसायिक शिक्षा के लिए अध्यापन

स्कूली शिक्षा प्रक्रिया में कुछ-कुछ ध्यान व्यवसाय संबंधी शिक्षा पर भी दिया गया है। वस्तुतः वर्तमान समय में इस बात पर बल दिया जाता है कि माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा को और अधिक महत्व प्रदान किया जाए। इस संदर्भ में पहले माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) ने तथा बाद में शिक्षा आयोग (1966) ने अपनी-अपनी अनुशंसाएँ दी। तथा इसके पश्चात् भी आदिशेसिया समिति ने भी व्यावसायिक शिक्षा के लिए अपनी सिफारिशें की। फलस्वरूप व्यावसायिक शिक्षा के पूर्णधार के रूप में विद्यालयों में माध्यमिक स्तर पर "कार्यानुभव" को शामिल किया गया है। "कार्यानुभव" को इस रूप में माध्यमिक शिक्षा से जोड़ने का उद्देश्य विद्यार्थियों के मनों में शारीरिक और प्रायोगिक कार्यों के प्रति आदर व सम्मान की भावना को विकसित करना था।

NOTES

क (iii) चारित्रिक शिक्षा (चरित्र निर्माण की शिक्षा)

कुछ व्यक्ति चरित्र निर्माण को इतना अधिक महत्व प्रदान करते हैं कि वे इसे मूल साक्षरता से भी अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। याजक वर्ग (पुरोहित वर्ग) की भांति अध्यापकों को सदैव ही बच्चों के लिए आदर्श भूमिका-प्रतिरूप समझा गया है। परिणामत: उनसे वेशभूषा, वाणी आदि में संयत व्यवहार की आश की जाती है, ऐसे व्यवहार की जो समुदाय के अन्य सदस्यों से प्राय: अपेक्षित व्यवहार की आश की जाती है, ऐसे व्यवहार की जो समुदाय के अन्य सदस्यों से प्राय: अपेक्षित नहीं होता। तथापि, क्योंकि अच्छे चरित्र की परिभाषा पर व्यापक मतभेद है, अत: इस बात पर कई बार शंका जताई जाती है कि क्या एक विशेष प्रकार के नैतिक मानदण्डों का अनुसरण विद्यालयों का परंपरागत कर्त्तव्य है अथवा नहीं। फिर भी चरित्र निर्माण शिक्षा विद्यालय के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। इसका अर्थ है कि बच्चों को समझना चाहिए कि उन्हें किसी परिस्थिति विशेष में क्या करना उचित है और उनसे यह अपेक्षित है कि वे वास्तव में ऐसा व्यवहार करें जैसा उन्हें करना चाहिए भले ही ऐसा करने में उन्हें कुछ बलिदान करना पड़े। नैतिक शिक्षा के तीन पक्षों - उचित ज्ञान, उचित निर्णय तथा उचित कर्म - में चरित्र निर्माण शिक्षा का बल कर्म पर अधिक होता है। कोई अध्यापक उचित चरित्र निर्माण शिक्षा के प्रति आश्वस्त उसी स्थिति में हो सकता है जब वह स्वयं एक आदर्श भूमिका निर्धारक के रूप मं कार्य करे। यह कहावत कि "उपदेश से उदाहरण अच्छा है", इस संदर्भ में बिल्कुल सही उत्तर है। लेकिन यदि कोई अध्यापक बच्चों को शिक्षा प्रदान करता है कि हमें ईमानदारी से कार्य करना चाहिए लेकिन उसका अपना व्यवहार बच्चों के प्रति पक्षपातपूर्ण होता है तो चरित्र शिक्षा का कोई अर्थ नहीं रह जाता। यदि वह स्वयं ईमानदार है या अपने कर्त्तव्य का पालन ईमानदारी तथा निष्पक्षता से करता है तो बच्चों के चरित्र पर स्वत: ही सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

(ख) विद्यालय के नवोद्भावित प्रकार्य

विद्यालय के उपर्युक्त प्रकार्य, भले ही वे संतोषप्रद रूप से प्राप्त न किए जा सके हों, लेकिन प्रकार्यों की दृष्टि से उचित है तथा सैद्धान्तिक दृष्टि से स्थापित हैं। दूसरी ओर विद्यालय के उन्मज्जी प्रकार्य प्राय: विवादपूर्ण रहे हैं, अत: उन्हें शैक्षिक "मुद्दों" की संज्ञा देना उचित हो सकता है। इस तरह के कुछ प्रकार्य नीचे दिए जा रहे हैं।

ख (i) वैयक्तिक तथा सामाजिक समस्याओं का समाधान

प्रो. डिवि तथा उसके सहयोगियों के अनुसार शिक्षा का केन्द्रीय प्रकार्य बच्चों को इस योग्य बनाना है कि वे अपनी वैयक्तिक तथा सामाजिक समस्याओं का समाधान स्वयं कर सके। इन विचारकों के अनुसार वास्तविक शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि यह वैयक्तिक जीवन से संबंधित सभी समस्याओं, जैसे पारिवारिक समस्याओं, मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं, कार्यस्थल दबाव अथवा सम्पूर्ण समाज की समस्याओं के समाधान में सहायक हो। सम्पूर्ण समाज की समस्याओं के उदाहरण हो सकते हैं: अपराध पर नियंत्रण गरीबी को कम करना, प्रभावी प्रशासन प्रदान करना आदि।

ख (ii) सामाजिक दक्षता

वर्तमान काल भारतीय समाज में राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे हैं। आधुनिक समाज तीव्रता से औद्योगीकरण, शहरीकरण, दैनिक जीवन में कम्प्यूटरों तथा बिजली के उपकरणों के प्रयोग की ओर बढ़ रहा है। समाज में आए इन सभी परिवर्तनों के कारण उन्मज्जी भारतीय समाज में उपर्युक्त व प्रभावी सामाजिक अंत:क्रिया के लिए सहगामी व्यवहारगत दक्षताओं की आवश्यकता अनिवार्य है। जैसे आज भारत में पार्श्विक तथा उर्ध्वगामी दोनों प्रकार की सामाजिक गतिशीलता घटित हो रही है जिसके परिणामस्वरूप विलक्षण वैयक्तिक तथा सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। ऐसी समस्याओं के समाधान के लिए कुछ सामाजिक दक्षताओं की आवश्यकता पड़ती है। ये दक्षताएँ छोटी-छोटी समूह परियोजनाओं द्वारा जो सामुदायिक अध्ययन द्वारा कार्यान्वित की गई हों, अच्छे तरीके से विकसित की जा सकती है।

ख (iii) नए ज्ञान का संचारण (प्रसारण) या विस्तार

वर्तमान समय में वैज्ञानिकों, शिल्प वैज्ञानिकों तथा अन्य अन्वेषकों की खोजों के परिणामस्वरूप ज्ञान का विशाल विस्फोट हुआ है। इस नए समाज का सामना करने के लिए जो उनके पूर्वजों के समाज से सर्वथा अलग है, नवयुवकों को इस ज्ञान की प्राप्ति अवश्य करनी चाहिए। अत: इन नए विचारों का संचरण करने के अतिरिक्त विद्यालय के पास कोई विकल्प नहीं है। इससे बच्चों को इन परिवर्तनों को समझने में सहायता प्राप्त होगी तथा वे बढ़ती अपेक्षाओं के अनुरूप अपने को ढाल सकेंगे।

ख (iv) सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए अवसरों की समानता प्रदान करना

चूँकि सामाजिक समानता का अधिकार हमारे संविधान में प्रदत्त मूल अधिकारों में से एक है, इस बात के प्रति निश्चित होने के लिए प्रयास किए जा

NOTES

रहे हैं कि प्रत्येक बालक को चाहे अमीर हो या गरीब, पुरुष हो अथवा स्त्री, शारीरिक रूप से सामान्य हो या विकलांग, सामाजिक रूप से वंचित हो या संपन्न, एक वयस्क के रूप में सफलता प्राप्त करने के लिए समान अवसर दिए गए हों। अत: प्रतिपूरक शैक्षिक कार्यक्रम जैसे विशेष शिक्षा, उपचारी शिक्षा, निशुल्क शिक्षा, अथवा छात्रवृत्ति का प्रावधान या अन्य दूसरे प्रकार की सहायता संवैधानिक प्रावधानों के दायित्व के रूप में उन विद्यार्थियों को प्रदान की जा रही है जो सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से वंचित है अथवा शारीरिक दृष्टि से विकलांग हैं।

ख (v) यौन तथा पारिवारिक जीवन के लिए शिक्षा

प्राचीन भारतीय समाज में यौन तथा पारिवारिक जीवन के लिए शिक्षा का संचारण तथा संप्रेषण एक क्रमबद्ध रूप में न होकर केवल आकस्मिक, प्रासंगिक अथवा समवयस्कों के पारस्परिक सम्पर्क द्वारा ही होता था। यौन शिक्षा या जिस शिक्षा का संबंध बच्चों के प्रजनन तथा मैथुन द्वारा संचारित रोग आदि से हो, को देने में अभिभावक हिचकिचाते थे परन्तु "एड्स" जैसे भयंकर रोगों के उत्पन्न हो जाने के कारण इस क्षेत्र को अब उपेक्षित नहीं छोड़ा जा सकता है, बल्कि इस पर तत्काल विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यही कारण है कि यौन शिक्षा को विद्यालयीय पाठयचर्या में सम्मिलित किया गया है ताकि विद्यार्थियों को क्रमबद्ध यौन शिक्षा प्राप्त हो सके और वे असुरक्षित लैंगिक क्रियाओं के खतरों से सावधान हो सकें।

ख (vi) वर्धित क्रियात्मक साक्षरता

एक आम आदमी का साक्षरता के विषय में बोध है कि व्यक्ति को लिखना, पढ़ना तथा थोड़ा सा अंकगणित (हिसाब-किताब करना) आता हो। विकासोन्मुख भारतीय समाज के लिए अथवा इस सदर्भ में किसी भी लोकतांत्रिक समाज के लिए यह अनिवार्य है कि यदि लोकतंत्र को जीवित रखना है तो इसके नागरिक साक्षर होने चाहिए। लेकिन विकासोन्मुख भारतीय समाज की यह साक्षरता अपर्याप्त होती है और अत: इस संदर्भ में साक्षरता की एक अधिक व्यापक अवधारणा जिसे "कार्यात्मक साक्षरता" कहते हैं, स्वीकार की गई है। कार्यात्मक साक्षरता सामाजिक उत्तरजीविता संबंधी अर्थपूर्ण तथा संगत तरीकों का निरूपण करती है जिसमें ऐसे सार्थक ज्ञान, कौशल, अभिवृत्तियाँ तथा मूल्य शामिल होते हैं जो सामान्य व्यक्ति (विशेषकर महिलाओं) को दक्षता प्रदान करते हैं ताकि वे प्रभावी सामाजिक भागीदारी तथा वैयक्तिक विकास सुनिश्चित कर सकें।

NOTES

ख (vii) सार्वभौग दृष्टिकोण का विकास (विश्वबंधुत्व की भावना)

भारत में, जैसा हम सभी जानते हैं कि विविध संस्कृतियाँ, जातियाँ, धर्म तथा भाषाएँ हैं। भारत के संविधान की प्रस्तावना में भारत को, धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक, समाजवादी राष्ट्र के रूप में विकसित करने की प्रतिज्ञा की गई है। इसके लिए अपरिहार्य है कि उन सभी के प्रति सहिष्णुता एवं सम्मान का विकास करना जो उपर्युक्त मामलों पर हमसे भिन्न मत रखते हैं। वर्तमान विद्यालयों के लिए यह अति आवश्यक बन गया है कि वे बच्चों को इस प्रकार शिक्षा दें कि वे (बच्चे) अपने से भिन्न समूहों के साथ भी सामंजस्य स्थापित करते हुए एक पंथनिरपेक्ष, सार्वभौम समुदाय के साथ रहना तथा व्यवहार करना सीख जाएँ। दूसरों को समझने के गुण, समानुभूति पारस्परिक सहिष्णुता, तथा सम्मान, वयम् भाव, एवं सामुदायिक दृष्टिकोण जैसे गुणों को बच्चों में विद्यालयों के द्वारा विकसित करने की आवश्यकता है। विद्यालयों से ऐसे उदीयमान प्रकार्य की अपेक्षा है, अन्यथा आपसी मतभेद, साम्प्रदायिक झगड़े, तथा असामंजस्य तथा राजनीतिज्ञों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए शोषण अवश्य होते रहेंगे। वास्तव में यही विद्यालय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है जो अकेला सामाजिक संबद्धता सुनिश्चित कर सकता है तथा जिससे समाज शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना से रह सकता है।

ख (viii) मिलजुल कर रहना सीखना

मिलजुल कर रहना सीखना अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (डेलर्स, 1996) द्वारा अनुशंसित शिक्षा के चार स्तंभों में से एक स्तंभ है। आयोग के अनुसार, "शिक्षा का कार्य साथ-साथ यह सिखाना है कि मानव जाति में विविधता और असादृश्यता पाई जाती है, और व्यक्तियों में समानताएँ व भिन्नताएँ दोनों होती हैं तथा वे एक दूसरे पर आरित रहते हैं। अतः विद्यालयों को चाहिए कि पूर्व बाल्यकाल से इन दो चीजों का विकास करने के किसी भी अवसर को व्यर्थ न जाने दें" सर्वप्रथम विद्यालयीय शिक्षा के लिए अनिवार्य है कि यह बच्चों का स्वयं को खोजने में उनकी मदद करे, तभी यह यथार्थ में संभव हो पाएगा कि वे दूसरों के स्थान पर अपने आपको रखकर उनके दृष्टिकोण को समझ सकेंगे (पृ. 92-93)। हमें बच्चों को अन्य जातियों एवं धर्मों के व्यक्तियों के दृष्टिकोणों को अपनाना सिखना चाहिए। ऐसा करने से हम उस समझ की कमी को दूर कर पाएंगे जिससे घृणा को बढ़ावा मिलता है। अतः अध्यापक आचार-प्रतिरूप (Role model) की तरह कार्य करें जिसका ग्रहणशील बालक मन अनुकरण करता है तथा आत्मसात करता है।

घर और विद्यालय के बीच संबंध

क्योंकि घर एवं विद्यालय दोनों ही शिक्षा के अभिकरण होते हैं तथा दोनों ही एक व्यक्ति तथा एक सामाजिक प्राणी के रूप में बच्चे के विकास में योगदान देते हैं। अत: दोनों का एक सांझा ध्येय होता है। अपने-अपने तरीके से ये दोनों अभिकरण बच्चे को प्रभावित करते हैं। कुछ समाज शास्त्रियों ने उस विशिष्ट प्रभाव का विश्लेषण किया है जो शैक्षिक प्रणाली में माता-पिता डालते हैं। विद्यालय तथा इसके परिवार के साथ संबंध का महत्व इस बात पर निर्भर होता है कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्पत्ति में इनका क्या योगदान है न कि इस बात पर कि इनका सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है।

स्त्रियाँ विशेष रूप से माताएँ सांस्कृतिक पुनरुत्पत्ति में एवं नैतिक अधिगम में एक महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। क्योंकि माताएँ ऐतिहासिक दृष्टि से गृह संचालक रही हैं अत: उन्होंने अपनी पुत्रियों के लिए आदर्श प्रतिरूप की भूमिका निभाई है। आज माँ एक सांस्कृतिक पुनरू+पादन का अभिकरण है। क्योंकि सारा समय वे शिशुओं के साथ व्यतीत करती हैं तथा उन पर अपना प्यार (वात्सल्य) अर्पित करती हैं तथा उनकी देखभाल करती हैं। अत: वे उनके (बच्चों के) व्यवहार को अलक्षित रूप में प्रभावित करती हैं। यह एक प्रकार का परोक्ष अध्यापन है जिसके द्वारा बच्चे परिवार की संस्कृति को सीखते हैं। वास्तव में इसी अदृश्य अध्यापन के द्वारा ही सांस्कृतिक संचरण होता है।

इसके अतिरिक्त स्मरण रहे कि कुछ बातों में बच्चों की शैक्षिक उन्नत्ति के लिए माता-पिता विद्यालयों की तुलना में कहीं अधिक प्रभावशाली होते हैं। यह बात कि माता-पिता बच्चों की शैक्षिक प्रगति में सहायक होते हैं अथवा बाधक, इस पर निर्भर करती है कि माता-पिता तथा बच्चों में किस तरह के संबंध विकसित हुए हैं। यदि इस संबंध का आधार माता-पिता द्वारा बच्चों की उचित देखरेख, उनके प्रति स्नेह व अनुराग तथा उनकी आवश्यकता की समझ है तो ऐसी अवस्था में मनोवैज्ञानिक बंधन मजबूत होने निश्चित हैं। इस प्रकार का संबंध बच्चे की बाद की उन्नति में अत्यधिक सहायक सिद्ध होगा। इसके विपरीत यदि यह संबंध माता-पिता के डर, सत्ता व प्रभाव पर आध ारित है जहाँ बच्चों को मात्र दिशा-निर्देश प्रदान किये जाएँ, मार्ग-दर्शन नहीं, ऐसी दशा में इस बात की बहुत क्षीण संभावना है कि बच्चे अपने शैक्षिक प्रयासों में उपयुक्त मार्ग अपना सकें। वास्तव में माता-पिता की रुचियाँ बच्चों की विद्यालय संबंधी सफलता को गहन रूप में प्रभावित करती हैं।

NOTES

समुदाय- एक अभिकरण के रूप में

समुदाय किसी ऐसे समष्टि समूह को कहा जाता है जो एक संसक्त भूगोलीय स्थिति में रहता हो तथा स्थानीय एकत्व बोध अर्थात् समुदाय भावना जिसका प्रमुख लक्षण हो। यह बड़े समाज का एक भाग होता है जिसके समाज के साथ सांझे सामाजिक व सांस्कृतिक संबंध होते हैं। स्थानीय समुदायों में विभिन्नताएँ निम्नलिखित कारणों से देखने को मिलती हैं: (i) समष्टि की प्रकृति (जैसे ग्राम समुदाय, नगरी समुदाय); (ii) भाषा; (iii) धर्म (पंथ); (iv) सामाजिक संघटन या रचना; तथा समष्टि समूह की सामान्य आर्थिक दशा।

समुदाय के महत्वपूर्ण कार्य

क्योंकि समुदाय परिवार की अपेक्षा एक बड़ी सामाजिक इकाई होती है, अत: समुदाय के कार्य परिवार के कार्यों को जारी रखना तथा उन्हें प्रोत्साहित करना है। हम पहले ही जान चुके हैं कि परिवार के प्रमुख कार्य समाजीकरण, उत्संस्करण, 'वयम्' भावना का विकास, धार्मिक आस्था का विकास और आचरण की किसी नैतिक संहिता का विकास हैं। समुदाय इन्हीं प्रकार्यों (कार्यों) की निरंतरता बनाए रखते हैं तथा उन्हें प्रोत्साहन भी देते हैं। तथापि, इसके अलावा समुदाय बच्चे की औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था भी करते हैं। घर की भांति यह एक सामाजिक संस्था है जो उपर्युक्त प्रकार्यों की अधिक औपचारिक तथा क्रमबद्ध रूप में प्राप्ति के लिए शैक्षिक संस्थाओं को स्थापित करने का दायित्व लेती है। स्पष्ट है कि समुदाय घर की तुलना में अधिक सामान्यीकृत रीति से कार्य करता है लेकिन समाज की तुलना में कम सामान्यीकृत रीति से। बच्चे को उसकी भविष्य भूमिका निष्पादन के लिए आवश्यक समझे जाने वाली प्रतिबद्धताओं एवं क्षमताओं के विकास में सहायता करने में तथा समाज के व्यापक मूल्यों के विकास के लिए समुदाय कुछ संकल्पित प्रयास करता है। ऐसे बहुत सारे तरीके होते हैं जिनके द्वारा समाजीकरण तथा उत्संस्करण जैसे प्रकार्य समुदायों द्वारा किए जा सकते हैं। शादी-विवाह, त्योहार, धार्मिक अनुष्ठान आदि कई प्रकार के उत्सव तथा सामुदायिक समारोह होते हैं जिनके द्वारा बच्चा सामाजिक संस्कृति को आत्मसात् करता है।

इसके अलावा समुदाय में कुछ ऐसी शक्तियां भी कार्यरत होती हैं जो बच्चे के विकास पर प्रभावी रूप से असर डालती हैं और जिनके द्वारा बच्चा कौशल, अवधारणाएँ आदतें, प्रेरणा तथा मूल्य विकसित करता रहता है। जैसे

कुछ समुदायों में कृषि संबंधी कौशल को इतना अधिक महत्त्व दिया जाता है कि यह लिखने पढ़ने के कौशलों से भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है। समुदाय लड़के तथा लड़कियों में अनौपचारिक रूप से, कुछ व्यक्तियों के प्रति विशेष भाव विकसित कर देता है। समुदाय कई अवसरों पर ऐसे आदेश भी देते हैं कि कुछ चीजों पर सार्वजनिक रूप से व्याख्या नहीं की जानी चाहिए।

समुदाय के शैक्षिक प्रकार्य

उन अनौपचारिक विधियों के अतिरिक्त जिनसे समुदाय तरूण एवं किशोर दोनों को समाजीकरण तथा उत्संस्करण जैसे शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों की प्राप्ति एवं प्रभावित करता है, यह नई शैक्षिक संस्थाएँ स्थापित करता है तथा उनका संचालन करता है। यह विद्यालय के साथ अन्योन्य क्रिया करता है तथा विद्यालय एवं बच्चों की आवश्यकताओं का निर्धारण भी करता है। डेलॅर्स आयोग (1996) के अनुसार "शैक्षिक सुधारों की सफलता में योगदान देने वाले प्रमुख पक्ष सर्वप्रथम स्थानीय समुदाय होते हैं जिनमें माता-पिता, विद्यालय के मुखिया तथा अध्यापक भी शामिल होते हैं।... जिन देशों में यह (शैक्षिक सुधारों की प्रक्रिया) सफल रही है ऐसे देश वे हैं जहाँ माता-पिता, अध्यापक तथा स्थानीय समुदाय अपनी दृढ़ प्रतिबद्धताएँ दर्शाते हों तथा उनके बीच एक सतत् वार्तालाप चलता रहता हो तथा तकनीकी व आर्थिक मदद मिलती रहे। स्पष्ट है कि स्थानीय समुदायों का किसी भी सफल सुधार व्यूह-रचना में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान होता है।" (लघु-कोष्ठक वाक्यांश जोड़ा है) पृ. 29।

शिक्षा के प्रति पहुँच में वृद्धि करने तथा इसका गुणवत्ता में सुधार करने की दृष्टि से, लोक-अधिकारियों तथा समाज के संबंधित वर्गों के साथ संवाद द्वारा आवश्यकताओं के निर्धारण की प्रक्रिया में स्थानीय समुदाय ही वास्तव में प्रथम महत्वपूर्ण अवस्था है। संचार साधनों बैठकों, चर्चाओं, माता-पिता को शिक्षित करने तथा अध्यापक शिक्षा के बीच सतत् संवाद द्वारा ज्ञान सृजन करने में मदद मिलती है, निर्णयन योग्यता तीव्र होती है और स्थानीय क्षमताओं का विकास होता है।

विद्यालय तथा समुदाय के बीच संबंध

शिक्षा का एक सामाजिक संदर्भ होता है जिसे समझना अनिवार्य हैं। सर्वप्रथम यह संदर्भ स्थानीय समुदाय में देखा जा सकता है जो शैक्षिक प्रक्रिया को समझने तथा इसे एक दिशा प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। भारत

में स्थानीय समुदाय अलग-अलग प्रकार के हैं। यह भिन्नता वहाँ के निवासियों द्वारा निर्धारित होती है। विभिन्न प्रकार के समुदायों की शैक्षिक आवश्यकताएँ उन समुदायों की प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न है। अत: उन समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं के ध्यान में रखते हुए, विभिन्न प्रकार की शैक्षिक संस्थाएँ स्थापित की गयी। जहाँ एक ओर स्थानीय समुदाय की प्रकृति, विशिष्ट प्रभावों को और प्रदान की जाने वाली शैक्षिक सुविधाओं को निर्धारित करती है, वहीं दूसरी तरफ शैक्षिक संस्थाएँ भी स्थानीय समुदाय को प्रभावित करती हैं। इस तरह स्थानीय समुदायों एवं शैक्षिक संस्थाओं के बीच संबंध पारस्परिक होता है।

समुदाय की विद्यालय तथा शिक्षक से यह अपेक्षा होती है कि वे बच्चों के द्वारा समाजीय आकांक्षाओं की प्राप्ति कराएँ। इस तरह समुदाय विद्यालय अध्यापक या शिक्षा पद्धति को प्रभावित करता है। लेकिन जैसे शिक्षा पद्धति समुदाय द्वारा प्रभावित होती है, समुदाय भी विद्यालय तथा अध्यापकों द्वारा प्रभावित होता है। किसी शिक्षा-प्रक्रिया का अभिकल्पन न केवल किसी समुदाय-विशेष की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है बल्कि इसका निर्धारण व्यापक समाज या सम्पूर्ण राष्ट्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। किसी भी शैक्षिक प्रणाली के लिए यह आवश्यक है कि वह पाठ्यचर्या के माध्यम से नवीन विचारों, मूल्यों तथा व्यवहारों को धारण करे तथा इनका प्रचार प्रसार करे। ऐसे मूल्यों को बच्चों के मन में बैठाने के लिए, विद्यालय में बाल-विकास के कार्यक्रमों में माता-पिता तथा समुदाय के अन्य सदस्यों को सक्रिय भागीदारी शैक्षिक प्रक्रिया को काफी हद तक आगे बढ़ाएगी। इन नवीन विचारों मूल्यों, अभिवृत्तियों आदि को समुदाय में संचारित करने के लिए विद्यालय या अध्यापकों को समुदाय के सदस्यों के साथ अपनी सभी अन्योन्य क्रियाओं में एक अग्रणी भूमिका निभानी होगी। आचार्य रामूर्ति समिति (1992) के प्रतिवेदन के अनुसार, जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1966 की समीक्षा के लिए बनाई गई थी, "यदि हमें एक प्रबुद्ध व मानवीय समाज की ओर बढ़ना है तो समुदाय तथा विद्यालय का पारस्परिक सहयोग उसके लिए एक अनिवार्य अवस्था होगी।" इस प्रकार के सहयोग द्वारा, अध्यापक, अध्येता, अभिभावक एवं समुदाय सभी लाभान्वित होंगे। जब समुदाय स्वयं के विकास के लिए अधिक उत्तरदायित्व स्वीकार कर लेते हैं तो वे समाजीय उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा जीवन की गुणवत्ता सुधारने में शिक्षा की भूमिका के महत्व को सीख जाते हैं।

NOTES

समुदायों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा उनका शैक्षिक प्रणाली या विद्यालय पर प्रभाव

भारत में प्राय: ग्रामीण समुदाय जाति अथवा जनजाति के आधार पर विभाजित होते हैं। लेकिन शहरों में सामाजिक बंटवारा समुदाय के सदस्यों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर होता है। भारत में तथा अन्य देशों में भी जिन व्यक्तियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति उच्च होती है वे प्राय: शैक्षिक दृष्टि से अधिक सचेतन होते हैं तथा उनमें अच्छी प्रबंधन योग्यताएँ पायी जाती हैं। वे अपने लिए अच्छी गुणवत्ता वाली शैक्षिक संस्थाएँ स्थापित करते हैं। चूँकि ये समुदाय आर्थिक दृष्टि से संपन्न होते हैं अत: अपनी संस्थाओं को अच्छी शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करने में सक्षम होते हैं। दूसरी ओर, ग्रामीण एवं जनजातीय समुदाय तथा झुग्गी झौपड़ी निवासी आर्थिक रूप से पिछड़े होने के कारण इस बात के लिए समक्ष नहीं होते कि वे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार शैक्षिक संस्थाएँ चला सकें। इसी कारण ऐसे समुदायों की देखरेख सरकार करती है जो उनके लिए विभिन्न तरह के विद्यालयों का प्रावधान करती है। भारतीय संविधान की 45वीं धारा के अंतर्गत नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है ताकि गरीब से गरीब व्यक्ति भी अपने शिक्षा के अधिकार से वंचित न रहने पाए। भारत में कुछ धार्मिक संप्रदाय ट्रस्ट बनाकर तथा कुछ व्यापारिक परिवार अपने विद्यालय चलाते हैं लेकिन वे बहुत ऊँचे शुल्क वसूल करते हैं। इस तरह इन गुणवत्तायुक्त निजी संस्थाओं का लाभ सामाजिक, आर्थिक रूप से कमज़ोर समुदायों को नहीं मिल पाता।

सामुदायिक कार्यकलापों में विद्यार्थियों की भागीदारी

यह बात अवश्य समझ लेनी चाहिए कि अच्छे पारस्परिक व्यक्तिगत संबंध , बंधुत्व, इत्यादि प्रत्यक्ष रूप से विद्यार्थियों द्वारा सामुदायिक क्रियाकलापों में हिस्सेदारी की प्रकृति और इस की मात्रा पर निर्भर करते हैं। यही कारण है कि बड़े उपनगरों तथा नगरों में सामाजिक संबंध गाँवों तथा छोटे कस्बों की अपेक्षा बहुत कम पाए जाते हैं। अत: सामाजिक कौशलों एवं मूल्यों के विकास के लिए व्यक्तियों में पारस्परिक अन्योन्य क्रिया अथवा विद्यार्थियों में अन्योन्य क्रिया अवश्य ही सुनिश्चित की जानी चाहिए। ऐसी अंत:क्रिया समुदाय के सदस्यों के अनुभव या ज्ञान की सीमा, पारस्परिक समझ तथा दूसरे व्यक्तियों के सांस्कृतिक, धार्मिक अंतरों के स्वीकरण को व्यापक बनाने में सहायता करेंगे। अधिकांश रूप में विद्यालय-समुदाय अन्योन्य क्रियाओं द्वारा

यह संभव हो सकता है। इस के लिए एक मात्र शर्त यह है कि अध्यापक को चाहिए कि वह समुदाय, की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं तथा कठिनाइयों को समझे। यह प्रक्रिया सरल हो सकती है यदि अध्यापक उसी समुदाय के स्थायी सदस्य हों। डेलर्स आयोग अवलोकित करता है: 'जब अध्यापक उसी समुदाय के सदस्य हैं जहाँ वे पढ़ाते हैं तो उनकी भागीदारी अधिक स्पष्ट रूप से सुनिश्चित हो जाती है। वे उस समुदाय की आवश्यकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील और अनुक्रियाशील होते हैं तथा समुदाय के उद्देश्यों की ओर भली-भांति कार्य करते हैं। अतः विद्यालय तथा समुदाय के बीच संबंध को सुदृढ़ बनाना इस बात को सुनिश्चित करने की एक बहुत उपयोगी विधि है कि विद्यालय अपने पर्यावरण के साथ सहजीवी रूप धारण करने योग्य बनाए जाएँ।

संचार माध्यम-शिक्षा के अभिकरण के रूप में

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में 20वीं शताब्दी में हुई उन्नति के परिणामस्वरूप मल्टीमीडिया प्रणालियों के रूप में संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विस्मयकारी क्रांति आई जो आधुनिक विश्व को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। मल्टी-मीडिया की सहायता से समाजीकरण के नए रूप और नए प्रकार के व्यक्तिगत एवं सामूहिक पहचान बन रही है। सूचना तकनीकी के विस्तार तथा नेटवर्क से विभिन्न व्यक्तियों के साथ, चाहे वे देश के अंदर के हों अथवा देश से बाहर के हों संप्रेषण तथा संवाद बढ़ रहा है। जन संचारण माध्यमों की सहायता से विभिन्न व्यक्तियों के साथ अंत:क्रियात्मक संप्रेषण संभव हो पाया है, शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रयोग किये जा रहे हैं।

जनसंचार माध्यम (मीडिया) के महत्वपूर्ण प्रकार्य

शिक्षा के विभिन्न अभिकरणों में से समाजीकरण, उत्संस्करण, तथा सूचना प्रसारण के लिए वर्तमान काल जनसंचार के साधन संभवत: अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। जनसंचार के साधनों को बच्चों तथा बड़ों दोनों की औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा में उचित स्थान प्राप्त हो चुका है। सभी आयु वर्गों के व्यक्तियों में सार्थक ज्ञान, कौशलों, अभिवृत्तियों एवं मूल्यों के विकास में जजन संचार साधनों में महत्वपूर्ण व बहुत बड़ी संभाव्यताएँ (potential) छिपी हैं। बीसवीं शताब्दी के अंतिम चर्तुथांश में सूचना प्रौद्योगिकी ने तीव्र गति से वृद्धि की, जिसकी सहायता से अब ज्ञान का विशाल भंडार प्रभाव ढंग से संसाधित किया जा सकता है तथा उसका संचारण किया जा सकता है। अधिकांश संप्रेषण/संचारण प्रणालियों ने मानव

विश्व के क्षितिज पर नये मार्ग खोल दिये हैं। मनुष्य के ज्ञान संचयन व्यवहार में इन्होंने एक क्रांति ला दी है। अंतरिक्ष यानों पर लगाए गए कैमरों से चंद्रमा तथा अन्य आकाशीय पिण्डों के निकट से लिए गए चित्र टेलीविजन स्क्रीन पर देखे जा सकते हैं। सम्पूर्ण विश्व के एक छोर से दूसरे छोर की ओर आज टेलीविजन कार्यक्रम संचारित किए जाते हैं। भारत में SITE (सैटेलाइट इन्फॉर्मेशन टेलीविजन एक्सपेरीमेंट) कार्यक्रम बहुत ही सफल रहे हैं जिसके द्वारा पृथ्वी के किसी भी भाग से मौसम संबंधी या अन्य किसी भी प्रकार की सूचना तुरंत मिल जाती है। इसी प्रकार शैक्षिक प्रसारण कम्प्यूटर नेटवर्क, ई-मेल टेक्नोलॉजी, कम्पाक्ट डिस्क इत्यादि ने मानव के ज्ञान संसाधन विधियों में तीव्र गति से वृद्धि है। ETV (एजुकेशनल टेलीविजन) वर्तमान समय में औपचारिक व औपरिकेतर शिक्षा का एक प्रभावी व विश्वस्त साधन बन गया है।

सूचना प्रौद्योगिकी में हुई तीव्र गति से यह उन्नति विकास के नए आयामी दे सकती है। इससे हमारी पहुँच बहुत से अलग-अलग पड़े क्षेत्रों तक बढ़ जाती है तथा व्यक्ति वैज्ञानिक शोध के महत्वपूर्ण क्षेत्र में सम्पूर्ण विश्व से बातचीत कर सकता है। इसकी सहायता से अंतर्राष्ट्रीय डेटा बेस भी व्यक्ति की पहुँच के अंतर्गत आ गया है तथा प्रयोगशालाएँ स्थापित की जा सकती हैं जिसकी सहायता से विकासशील देशों के लोग अपने ही देशों में वही कार्य कर सकते हैं जो वे विकसित देशों में जा कर करते थे। इस प्रकार उच्च बुद्धिवाले व्यक्तियों का विदेशों में जाना भी रूक जाएगा।

समाज पर प्रभाव

डेलर्स आयोग (1996, पृ. 169), वे आविष्कार जिन्होंने बीसवीं शताब्दी पर अपनी छाप छोड़ी- जैसे रिकॉर्ड, रेडियो, टी.वी. ऑडियो तथा वीडियो रिकॉर्डिंग, कम्प्यूटर, केबल तथा सैटेलाइट प्रसारण - उनके न केवल प्रौद्योगिकी आयाम महत्वपूर्ण है, बल्कि इनका आर्थिक तथा सामाजिक पहलू भी बहुत महत्वपूर्ण है। इन प्रौद्योगिकियों में बहुत सारी पर्याप्त रूप से लघु रूप में आ गई हैं। उद्योगीकृत देशों में से वे अधिकांश देशों में उपलब्ध हैं तथा विकासशील देशों में भी इनका उपयोग अनेक व्यक्ति कर रहे हैं। भारत में सैटेलाइट ट्रांसमिशन का उपयोग अब सुदूर पहाड़ी क्षेत्रों या जनजातीय क्षेत्र तक भी पहुँच चुका है तथा इसके द्वारा गाँववासियों को लाभकारी ज्ञान प्राप्त हो रहे हैं, जो अन्यथा उनके लिए एक स्वप्न जैसा ही था। सौभाग्य से सरकार ने अब ग्रामीण पंचायतों तथा विभिन्न विद्यालयों को टी.वी. सेट एवं रेडियो दे दिए हैं। सरकार इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि यह सूचना प्रौद्योगिकी

NOTES

औपचारिक शिक्षा प्रक्रिया के बाहर व्यापक श्रोताओं तक पहुँचे। सुदूर ग्रामीण समुदाय के लिए बाह्य दुनिया के प्रति ऐसे प्रभावन धीरे-धीरे परन्तु निश्चित रूप से ग्रामवासियों के चिंतन (सोच) तथा अभिवृत्तियों में ऐसे परिवर्तन लाएगा जो उन्हें निरन्तर सामाजिक परिवर्तन (रूपांतरण) तथा सांस्कृतिक उन्नति की ओर अग्रसर करता रहेगा।

इन प्रकार्यों की प्राप्ति के लिए भारत सरकार ने INSAT 1-B (इंडियन नेशनल सैटेलाइट-1-B) छोड़ा जिसका उपयोग देश में सामाजिक-आर्थिक विकास करने के लिए किया जा रहा है। INSAT 1-B की टी.वी. सेवा के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं :

– कृषि उत्पादकता में वृद्धि करना
– विकासात्मक तथा प्रसार सेवा में विशेषकर कमजोर वर्ग की भागीदारी उत्प्रेरित करना।
– संबंधित क्रियाकलापों अथवा व्यवसाय के द्वारा ग्रामीण जनता को अपनी आय को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करना
– उन्नत स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य विज्ञान को प्रोत्साहन देना
– वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास करना
– सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन देना
– समाचारों, सामयिकी, खेल-कूद तथा अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं में रुचि उत्पन्न करना।

समुदाय संवर्धन के लिए चेतना बनाम संचार माध्यम

सूचना तकनीकी या संचार माध्यमों के विकास का एक मुख्य उपयोग सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले व्यक्तियों के लिए ऐसी सूचनाएँ उपलब्ध कराना है जिसके द्वारा वे अपने वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन की गुणवत्ता में सुधार कर सकें। इस प्रकार के दूर शिक्षा अधिगम कार्यक्रमों से तथा संचारण/संप्रेषण के विकास के द्वारा ग्रामवासियों में उनके चेतना स्तर का विकास होगा एवं वे भौतिक, जैविक, सामाजिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक कारकों तथा उनके जीवन को प्रभावित करने में इन सब की भूमिकाओं का गुण-विवेचन कर सकेंगे।

NOTES

जनसंचार माध्यम के शैक्षिक प्रकार्य

भारत जैसे अधिगमोन्मुख समाज में जिस की 100 करोड़ से भी अधिक जनसंख्या है, आधुनिक प्रौद्योगिकी पर आधारित जनसंचार प्रणाली शैक्षिक विकास का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसके विभिन्न तथा असंख्य अनुप्रयोग हैं जिनका प्रभाव लगभग सम्पूर्ण व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन पर पड़ता है। एक अर्थ में, सूचना तकनीकी के ये सभी उपयोग करना प्रभाव मूल रूप से लोगों को शिक्षित करने, उनका ज्ञान वर्धन करने, कौशलों व बोध के विकास, तथा उनकी अभिवृत्तियों में परिवर्तन करने में दिखाते हैं। वर्तमान में जन संचार साधन औपचारिक तथा औपचारिकतर प्रणालियों में विशिष्ट शैक्षिक प्रकार्यों को संपन्न करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इन साधनों का उपयोग अधिगम के व्यक्तिगत तथा जनसमूह दोनों स्तरों पर किया जा रहा है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों का उपयोग, विशेषतया औपचारिकतर शिक्षा में (दूर-शिक्षा विधि), एक अधिगमोन्मुख समाज में अत्यंत महत्वपूर्ण वितरण प्रणाली बन गई है। दूर-शिक्षा के लिए इसका उपयोग सम्पूर्ण विश्व के प्रत्येक देश में आशा का मार्ग दिखता है। भारत में इग्नू तथा केन्द्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान (CIET) देश भर में दूर शिक्षा कार्यक्रम संचालन कर रहे हैं। सामान्यतया, दूर शिक्षा में विभिन्न प्रकार की वितरण प्रणालियों जैसे पत्राचार पाठ्यक्रम, रेडियो, टेलीविजन, श्रव्य-दृश्य सामग्री, दूरभाष पाठ, एवं टेलीकांफ्रेंसिंग का उपयोग किया जाता है। प्रौढ़ शिक्षा क्षेत्र में जीवन पर्यन्त अधिगम की अवधारणा के अंतर्गत इन नई तकनीकियों की एक महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

औपचारिक विद्यालय की शिक्षा व्यवस्था में आमने-सामने के अधिगम का कोई पूर्ण विकल्प तो नहीं है, तथापि अपने पूरे लाभ के लिए जन संचार के साधनों का उपयोग भली-भांति किया जा सकता है तथा किया जा रहा है। डैलर्स आयोग (पृ. 173) के अनुसार नई प्रौद्योगिकी ने कक्षा में उपयोग करने के लिए अनेक उपकरण निर्मित कर दिए हैं जिन में से कुछ निम्नलिखित हैं :

- कम्प्यूटर तथा इंटरनेट
- केबल तथा सेटेलाइट टी. वी. शिक्षा
- मल्टी मीडिया उपकरण
- अन्त:क्रियात्मक सूचना, विनिमय प्रणाली जिसमें ई-मेल तथा ऑन लाइन एक्सैस (पुस्तकालय तथा विभिन्न आँकड़े) शामिल हैं।

इन उपकरणों का उपयोग करते हुए अध्यापक तथा शिक्षार्थी दोनों ही के पास वह सामग्री व उपकरण प्राप्त होंगे कि वे शोधकर्त्ता के रूप में कार्य कर सकें। अध्यापक अपने विद्यार्थियों को यह प्रशिक्षण प्रदान कर सकेंगे कि वे (विद्यार्थी) अपने लिए एकत्रित सूचनाओं का मूल्यांकन कर सकें तथा उसका प्रभावी उपयोग कर सकें। इस प्रकार कक्षा में एक नई सांझेदारी का विकास होगा। तथापि यह समझना चाहिए कि इन उपकरणों का उपयोग शिखा की परंपरागत विधियों के संयोजन में करना चाहिए, उनके एक आत्मनिर्भर विकल्प के रूप में नहीं। यदि पारंपरिक तरीके से उसका उपयोग किया जाए तो यह शैक्षणिक कमियों को दूर कर ज्ञान को अद्यतन करते हुए तथा नई अधिगम अनुभूतियाँ प्रदान करते हुए यह औपचारिक प्रणाली को संबंधित करेंगे।

दूरदर्शन के तथा शैक्षिक तकनीकी के आगमन से शिक्षा विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों तक ही सीमित नहीं रही, अपितु दूरदर्शन ने तो एक ऐसी विधि प्रदान की है कि शिक्षा व्यक्तियों के घरों तक स्वयं चल कर जाए तथा उनकी सेवा करें, वे चाहें जहाँ भी रहते हों। संचार माध्यमों तथा शैक्षिक प्रौद्योगिकी की भूमिका को नई शिक्षा नीति (1986) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

"आधुनिक संचार तकनीकों में वह क्षमता है कि इनके द्वारा विकास की प्रक्रिया की कई अवस्थाओं को, जिनका सामना पिछले दशकों में किया गया बाई पास किया जा सके। इनके द्वारा समय तथा दूरी की सभी अड़चनें वश में की जा सकती हैं। संरचनात्मक द्वित्व को दूर रखने के लिए शैक्षिक तकनीकी को अत्यंत सुदूर क्षेत्रों तथा लागग्रहियों के वंचित वर्गों तक पहुँचाया जाए।

कम्प्यूटर तथा मल्टी मीडिया प्रणालियों के उपयोग द्वारा ऐसे व्यक्तिगत अधिगम मार्ग को अभिकल्पित किया जाना संभव हो सकता है जिनके द्वारा प्रत्येक अध्येता अपनी गति से सीख सकें एवं मानसिक विकास कर सकें। इसमें कम्पैक्ट डिस्क (CD) तकनीकी की विशेष भूमिका हो सकती है क्योंकि यह सूचनाओं के विशाल भंडार का जिसमें ध्वनि चित्र तथा अध्ययन सामग्री भी हो, संचालन कर सकती है। अंत:क्रियात्मक संचार माध्यम में यह संभव है कि विद्यार्थी स्वंय प्रश्न पूछे तथा उत्तर को प्राप्त करें। ऐसा देखने में आया है कि वे विद्यार्थी जिनकी उपलब्धि कम होती है अथवा वे शिक्षा के पारंपरिक प्रणाली में कठिनाई अनुभव करते हैं, इस तकनीकी का प्रयोग करने पर अपनी प्रतिभा का बेहतर प्रदर्शन करते हैं, उनकी अभिप्रेरणा तथा जिज्ञासा बढ़ जाती है।

NOTES

अंत में इस बात पर बल देना उचित होगा कि इन प्रौद्योगिकियों के विकास का अर्थ पठन सामग्री एवं अध्यापक का प्रतिस्थापन नहीं है। बच्चे की शिक्षा में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पाठ्य पुस्तकें यद्यपि वर्तमान समय में अध्यापन-अधिगम के मात्र उपकरण नहीं हैं, बल्कि इस प्रक्रिया में इनका स्थान केन्द्रीय है। वे सभी माध्यमों में सबसे सस्ते हैं तथा संचालन की दृष्टि से सरलतम, जिनमें अध्यापक अपने पाठ को निर्देशित कर सकता है विद्यार्थी अपने पाठ की पुनरावृत्ति कर सकता है। इसी प्रकार इन तकनीकियों का विकास अध्यापक की भूमिका तथा उसके कार्य को कम नहीं करता, बल्कि यह तो उन्हें एक अवसर प्रदान करता है जिसका वह लाभ उठा सकता है। यह सत्य है कि वर्तमान समय में अध्यापक ही उस ज्ञान के एक मात्र स्रोत नहीं हैं जो बच्चों तक संचारित किया जा सके। वे तो ज्ञान के सामूहिक भंडार में सांझेदार हैं। इन तकनीकियों के विकास से इतना अवश्य है कि अध्यापक की भूमिका की प्रभाविता में परिवर्तन आया है। उन्हें अब बच्चों को मात्र पढ़ाना ही नहीं है अपितु यह भी सिखाना है कि ज्ञान, सूचनाओं तथा तथ्यों को किस प्रकार ढूंढ़ना है, प्राप्त करना है, आकलन करना है। अध्यापक की यह दक्षता उसकी साक्षरता का एक और रूप होगी।

घर, समुदाय विद्यालय एवं जनसंचार माध्यम के बीच संबंध

शिक्षा के विभिन्न अभिकरण बच्चे को अलग-अलग रूप से प्रभावित नहीं करते अपितु एक दूसरे के संपूरक के रूप में कार्य करते हैं तथा बच्चे के ज्ञान, कौशलों, बोध या अभिवृत्तियों को समाकलित रूप में शक्तिशाली बनाते हैं। बच्चे की शिक्षा के संदर्भ में ये सभी अभिकरण साथ-साथ कार्य करते रहते हैं। बच्चा इन सभी अभिकरणों से अनुभूतियाँ प्राप्त करता है और जब कोई अनुभव एक अभिकरण से प्राप्त होता है तथा दूसरे अभिकरणों द्वारा प्रबलित हो जाता है तो बच्चा उस अनुभव को ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार अधिगम और शिक्षा की प्रक्रिया में समस्त वातावरण, जिसमें घर, विद्यालय, समकक्ष वर्ग, समुदाय तथा संचार माध्यम शामिल होते हैं, बच्चे को प्रभावित करता रहता है। बच्चे का अपने सामाजिक-सांस्कृतिक तथा भौतिक वातावरण से निरंतर अन्योन्य-क्रिया चलती रहती है। शिखा तथा विकास की इस प्रक्रिया में बच्चे का अनन्य व्यक्तित्व उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ अभिवृत्तियाँ, उसका ज्ञान, उसकी आकांक्षाएँ एवं ध्येय, ब्राह्य बलों के साथ अन्योन्य क्रिया करता है, जिसके परिणामस्वरूप बच्चा अपनी दुनिया की रचना करता है। इस तरह बच्चे की शिक्षा में उसका भूत, वर्तमान तथा भविष्य, सभी परस्पर मिल जाते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक बालक अपने

आप में विलक्षण होता है, इस बात के होते हुए भी कि वह अन्य बच्चों के साथ अथवा अपने समकक्षों के साथ सांझा बाह्य वातावरण बाँटता है।

NOTES

इस प्रकार बच्चे की इन सभी अभिकरणों के साथ पृथक रूप में अन्योन्य क्रिया होती है और ये अभिकरण भी परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। जैसे- अध्यापक से मात्र यही अपेक्षा नहीं होती कि वह ज्ञान का प्रसार-प्रचार करेगा (जो उसकी निष्क्रिय भूमिका होती है) लेकिन वह सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक गतिशीलता का एक सक्रिय अभिकर्त्ता भी होता है। वह नई विचारधारा, अभिवृत्तियों और मूल्यों का व्याख्याकार (समीक्षक) तथा मध्यस्थ होता है - एक ऐसा अभिकर्त्ता जो समुदाय तथा परिवार को परंपराओं की गहन निद्रा से जगाने में सहायक होता है और उनका सामाजिक उत्थान तथा राष्ट्रीय विकास में सक्रिय भागीदारी के लिए नेतृत्व करता है लेकिन साथ ही साथ अध्यापक भी बच्चों के साथ घर तथा समुदाय में अपनी सक्रिय भागीदारी द्वारा बहुत कुछ सीख जाता है।

शिक्षा के ये सभी अभिकरण एक महत्वपूर्ण प्रयोजन में अपनी साझेदारी करते हैं। यह प्रयोजन है बच्चे को एक ऐसे स्वतंत्र, स्वायत्त परन्तु जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में विकसित करना जो अपने निर्णय ले सके, अपनी समस्याओं का हल ढूंढ़ सके, जो दूसरों का ध्यान रख सके और अपने सहपाठियों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हों। अतः आज की भ्रान्तिपूर्ण तथा परिवर्तनशील सामाजिक व्यवस्था में बच्चे को इस प्रकार शिक्षित करना है कि वह अपनी वैयक्तिक पहचान बना सके। अतः यदि उन्हें आत्मानुभूत व्यक्तियों के रूप में, न कि मात्र बढ़ती सामाजिक मशीनरी में स्व व्यवस्थित व्यक्ति बनना है तो उन्हें वैयक्तिक वरण की अभिव्यक्ति का कार्यक्षेत्र प्रदान करना होगा। अतः यदि इन अभिकरणों को बच्चे की आत्मानुभूति में सहायक होना है, अर्थात् उसकी गुप्त या प्रच्छन्न शक्तियों तथा सामाजिकता को यथार्थ बनाना है तो इनका बच्चे के साथ तथा परस्पर भी महत्वपूर्ण और सार्थक संबंध होना आवश्यक है।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के अभिकरणों से आप क्या समझते हैं? घर को परिभाषित करते हुए, इसके प्रकार्यों का उल्लेख कीजिए।
2. विद्यालय, शिक्षा के एक अनौपचारिक अभिकरण के रूप में स्पष्ट कीजिए तथा इसके प्रकार्यों का वर्णन कीजिए।

3. समुदाय शिक्षा का एक अभिकरण है? इस कथन की समीक्षा कीजिए।
4. समुदायों की सामाजिक आर्थिक स्थिति तथा उनका शैक्षिक प्रणाली पर प्रभाव स्पष्ट कीजिए।
5. जनसंचार माध्यम-शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अभिकरण है, समीक्षा कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. घर तथा विद्यालय के बीच सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
2. समुदाय के महत्वपूर्ण प्रकार्यों का वर्णन कीजिए।
3. समुदाय के शैक्षिक प्रकार्यों का उल्लेख कीजिए।
4. समुदाय तथा विद्यालय में सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
5. समुदायिक कार्यकलापों में विद्यार्थियों की भागीदारी समझाइए।
6. जनसंचार माध्यम के मुख्य प्रकार्यों का उल्लेख कीजिए।
7. जनसंचार माध्यम के शैक्षिक कार्यों का वर्णन कीजिए।
8. घर, समुदाय, विद्यालय एवं जनसंचार माध्यम के बीच सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।

3 शिक्षा के विभिन्न दर्शन

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- आदर्शवाद और शिक्षा
    - आदर्शवाद का अर्थ
    - आदर्शवाद की परिभाषाएं
    - जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद
- शिक्षा के उद्देश्य
    - आदर्शवाद व शिक्षा के उद्देश्य
    - आदर्शवाद और पाठ्यक्रम
    - शिक्षण पद्धतियां
- आदर्शवाद व शिक्षक
- आदर्शवाद एवं बालक
- आदर्शवाद का मूल्यांकन
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे –

- आदर्शवाद और शिक्षा
    - आदर्शवाद का अर्थ
    - आदर्शवाद की परिभाषाएं
    - जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद
- शिक्षा के उद्देश्य
    - आदर्शवाद व शिक्षा के उद्देश्य
    - आदर्शवाद और पाठ्यक्रम
    - शिक्षण पद्धतियां
- आदर्शवाद व शिक्षक
- आदर्शवाद एवं बालक
- आदर्शवाद का मूल्यांकन

प्राक्कथन

मानव सभ्यता के उदभव तथा विकास के समय से ही आदर्शवादी विचारधारा का किसी न किसी रूप में अस्तित्व रहा है। वर्तमान समय में जब मानव ने चिन्तन एवं मनन आरम्भ किया तब से आदर्शवादी विचारधारा निरन्तर फलफूल रही है। आदर्शवादी विचारधारा जीवन की निश्चितताओं से सम्बन्धित है। इसका आशय है- जीवन के लिए निश्चित आदर्शों व मूल्यों का निर्धारण कर मनुष्य को उनके अनुकरण के लिए प्रशिक्षित करना। यह विचारधारा भौतिक वस्तुओं की अपेक्षा विचारों पर अधिक बल देती है। आदर्शवादी दर्शन का प्रतिपादन सुकरात, प्लेटो, डेकॉर्टो, स्पनोसा, वर्कलकान्ट, फिटशे, रोलिग, हीगल, ग्रीन जेन्टाइल आदि अनेक पाश्चात्य तथा वेदों व उपनिषदों के प्रतिपादक महर्षियों से लेकर अरविन्द घोष तक अनेक पूर्वी दार्शनिकों ने किया है।

आदर्शवाद और शिक्षा (Idealism and Education)

आदर्शवाद दार्शनिक जगत में प्राचीनतम विचारधाराओं में से एक है। एडम्स के शब्दों में "आदर्शवाद एक अथवा दूसरे रूप में दर्शन के सम्पूर्ण इतिहास में व्याप्त है। आदर्शवाद की स्वयं मानव प्रकृति में है। आध्यात्म शास्त्रीय दृष्टि से आध्यात्मवाद है। अर्थात् इसके अनुसार विश्व में परम सद्वस्तु की प्रकृति आध्यात्मिक है। सम्पूर्ण विश्व आत्मा या मनस से अवस्थित है। प्रमाण शास्त्र की दृष्टि से आदर्शवाद प्रत्यवाद है। अर्थात् इसके अनुसार विचार ही सत्य है। यह प्रत्यवाद प्राचीन यूनानी दार्शनिक प्लेटो के विचारों में मिलता है। जिसके अनुसार विचारों का जगत वस्तुजगत से कहीं अधिक यथार्थ है। मूल्यात्मक दृष्टि से इस दर्शन को आदर्शवाद कहते हैं।

आदर्शवाद के दर्शन के सम्बन्ध में जी.टी. डब्ल्यू पैट्रिक ने लिखा है, "आदर्शवादी यह मानने से इन्कार करते हैं कि जगत् एक विशाल यंत्र है। वे हमारे जगत् की व्याख्या में जड़तत्व, यंत्रवाद और ऊर्जा के संरक्षण के सर्वोच्च महत्व से इन्कार करते हैं। वे अनुभव करते हैं कि किसी न किसी प्रकार से कुछ विज्ञान जैसे मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र आदि का आधारभूत और अंतरंग वस्तुओं से संबंध है कि वे प्रकृति के रहस्यों को समझने के लिए वैसी ही कुंजी है जैसे कि भौतिकशास्त्र तथा रसायनशास्त्र है। वे यह विश्वास करते हैं कि जगत का एक अर्थ है एक प्रयोजन है और

शायद एक लक्ष्य है। अर्थात् जगत के हृदय और मानव की आत्मा में एक प्रकार का आन्तरिक सम्बन्ध है, जिसमें कि मानवबुद्धि प्रकृति के बाहरी आवरण को छेद सकती है। इस व्याख्या में जड़वाद के खिलाफ आदर्शवाद के लक्षण दिखाई बतलाए गये हैं।

NOTES

कोई भी दार्शनिक सिद्धान्त दो प्रकार से समझा जा सकता है- एक तो उन सिद्धान्तों को समझकर, जिनका कि वह प्रतिपादन करता है तथा दूसरे उन बातों को जानकर जिनका कि वह निराकरण करता है। क्योंकि प्रत्येक दर्शन कुछ सिद्धान्तों के समर्थन तथा कुछ बातों के निराकरण पर आधारित होता है। इस दृष्टि से आदर्शवाद की दशा की व्याख्या करते हुए डब्लू. ई. हॉकिग ने लिखा है कि आदर्शवाद के अनुसार प्रकृति आत्मनिर्भर नहीं है। वह स्वतंत्र दिखायी पड़ती है। परन्तु वास्तव में वह मनस् पर आधारित है। दूसरी ओर मनस् आत्मा या प्रत्यय ही वास्तविक सद्वस्तु है।

आदर्शवाद का अर्थ (Meaning of Idealism)

आदर्शवाद, दो शब्दों से मिलकर बना है- Ideal+ism लेकिन कुछ विचारक यह मानते हैं कि इसमें दो शब्द हैं - Ideal+ism इसमें स् सुविधा के लिए जोड़ दिया गया है। वास्तव में यदि देखा जाये तो इसे Idea या विचार से ही उत्पन्न होना माना जाना चाहिए। चूंकि इसके प्रतिपादक दार्शनिक विचार की चिन्तन सत्ता में विश्वास करते हैं, इस कारण इसे विचारधारा का प्रत्ययवाद की संज्ञा दी जाती है। लेकिन प्रचलन में हम आदर्शवाद का प्रयोग ही करते हैं। यह दर्शन वस्तु की तुलना में विचारों, भावों तथा आदर्शों को महत्व देते हुए यह स्वीकार करता है कि जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति तथा आत्मा का विकास है। इसी कारण यह आध्यात्मिक जगत को उत्कृष्ट मानता है तथा उसे ही सत्य व यथार्थ के रूप में स्वीकार करता है।

आदर्शवाद की परिभाषाएँ (Definition of Idealism)

रास (Ross) के अनुसार "आदर्शवादियों के अनेक रूप हैं, किन्तु सबका सार यह है कि मन या आत्मा ही इस जगत का पदार्थ है और मानसिक स्वरूप सत्य है।" (Idealism Philosophy takes many and vaeid from, but the postulate underlying all is that mind or sprit is essential word stuff that the true reality is of a Mental character)

ब्रूवेकर (Brubacher) के अनुसार- "आदर्शवादियों के अनुसार- इस जगत को समझने के लिए मन केन्द्रीय बिन्दु है। इस जगत को समझने हेतु मन की क्रियाशीलता से बढ़कर उनके लिए अन्य कोई वास्तविकता नहीं है।" (The Idealism point out that It is mind that is central in understanding the world. To them nothing gives greater sense of reality then the activity of mind lugged in typing to comprehended its words.)

हैण्डरसन (Handerson) के अनुसार "आदर्शवाद मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है, क्योंकि आदर्शवादियों के लिए आध्यात्मिकवाद मूल्य जीवन के तथा मनुष्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू हैं। एक तत्वज्ञानी आदर्शवादी का विश्वास है कि मनुष्य का सीमित मन असीमित मन से उत्पन्न होता है। व्यक्ति और जगत दोनों बुद्धि की अभिव्यक्ति हैं और भौतिक जगत की व्याख्या मन से की जा सकती है।"

डी.एम.दत्ता (D.M. datta) के अनुसार "आदर्शवाद वह सिद्धान्त है जो अन्तिम सत्ता आध्यात्मिकता को मानता है।"

राजन के अनुसार, "आदर्शवादियों का विश्वास है कि ब्रह्माण्ड की अपनी बुद्धि एवं इच्छा है और सब भौतिक वस्तुओं को उनके पीछे विद्यमान मन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।"

जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद (Idealism of Philosophy of life)

आदर्शवाद जीवन की एक प्रचीनतम् विचारधारा है। वर्तमान में भी इस बात का पर्याप्त सम्मान है। जीवन दर्शन के रूप में इसने विश्व के उच्च कोटि के दार्शनिकों को आकर्षित किया है। सुकरात, प्लेटो, कान्ट आदि दार्शनिक आदर्शवादी थे। आदर्शवाद के मूल सिद्धान्त निम्नलिखित हैं : -

(a) आदर्शवाद के अनुसार पदार्थ अन्तिम सत्य नहीं है। पदार्थ का प्रत्यय वास्तविक है, पदार्थ का भौतिक रूप असत्य है।

(b) भौतिक सृष्टि सत्य का आभासमात्र है। इस सृष्टि के पीछे कोई मानसिक सत्य है जो सृष्टि के प्रकाशन का आधार है। सृष्टि वस्तुतः तार्किक तथा मानसिक ही है। इसका बाह्य रूप तो कल्पना मात्र है।

(c) जो अन्तिम सत्य है वही वास्तविक शिव है। अन्य भौतिक पदार्थों में भद्र अथवा शिव को देखना भ्रमपूर्ण है। जो सत्य है और शिव है, वही वास्तव

में सुन्दर भी है। विश्व के भौतिक पदार्थों में सुन्दरता का आभास मात्र है। अतः उसमें आसक्ति व्यर्थ है। 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की यह व्याख्या आदर्शवाद की आत्मा है।

(d) भौतिक जगत नश्वर है, परिवर्तनशील है। सत्य को स्थायी तथा अपरिवर्तनशील होना चाहिए। अतः सत्य विचारात्मक तथा मानसिक है क्योंकि विचार एवं प्रत्यय में स्थायित्व होता है।

(e) इस आधार पर शरीर नश्वर है, अतः असत्य है, आत्मा अनश्वर सत्य है।

(f) मानव जीवन का लक्ष्य इसी अनश्वर, अजर, अमर तथा अपरिवर्तनशील आत्मा की प्राप्ति है।

(g) आदर्शवाद विकास में विश्वास करता है, परन्तु उसका विकासवाद प्रकृतिवादी विकासवाद से अलग है। आदर्शवाद के अनुसार विकास का अन्तिम लक्ष्य आत्मा की प्राप्ति ही है न कि निचले स्तर से ऊँचे स्तर के प्राणी में विकास करना।

(h) मन एवं पदार्थ भिन्न हैं। मन पर नैतिकता एवं आदर्शों का प्रभाव पड़ता है, पदार्थ पर नहीं। मन चेतन है, पदार्थ जड़। जड़े से चेतनता का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता।

(i) इन्द्रियों की तुलना में मस्तिष्क अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि विचारात्मक सत्य का ज्ञान इन्द्रियों से संभव नहीं।

(j) अंतिम सत्य का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है, शेष तो अज्ञान अथवा ज्ञानाभास है। यह ज्ञान तर्कजन्य है, चिन्तन एवं मनन एवं अंतदृष्टि का परिणाम है। यह इन्द्रियों का विषय नहीं है।

(k) इस प्रकार विज्ञान द्वारा प्राप्त ज्ञान अपूर्ण है। वास्तविक ज्ञान तो व्यक्ति के अपने प्रयासों का प्रतिफल होता है।

(l) आदर्शवाद धार्मिकता तथा नैतिकता का समर्थन करता है।

(m) प्रकृति अपने आप में अपूर्ण है। वह स्वयं किसी सत्य पर आश्रित है। अतः प्रकृति का ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान नहीं होता है। भारतीय सांख्य-दर्शन प्रकृति तथा पुरूष में मौलिक भेद करता है।

NOTES

(n) आदर्शवाद अनेकता में एकता का दर्शन करता है। सत्य मानसिक है। सृष्टि के अनेक स्वरूपों में उस एक चरम सत्य को देखना ही अनेकता में एकता का दर्शन करना है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आदर्शवाद सृष्टि के आध्यात्मिक पहलू पर अधिक बल देता है। प्राकृतिक वातावरण की अपेक्षा आध्यात्मिक वातावरण अधिक महत्वपूर्ण है। आदर्शवाद व्यक्ति तथा सृष्टि पर इसी दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण बताता है।

शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Education)

आदर्शवादी दार्शनिकों का मत है कि मानव के जीवन का लक्ष्य, मोक्ष की प्राप्ति, आध्यात्मिक विकास करना या उसे जानना है। इस कार्य के लिए मानव को चार चरणों पर सफलता प्राप्त करनी होती है। प्रथम चरण पर उसे अपने प्राकृतिक 'स्व' का विकास करना होता है। इसमें मनुष्य का शारीरिक विकास आता है। दूसरे चरण पर उसे अपने सामाजिक 'स्व' का विकास करना होता है। इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, चारित्रिक एवं नागरिकता का विकास आता है। तीसरे चरण पर उसे अपने मानसिक 'स्व' का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत मानसिक, बौद्धिक एवं विवेक शक्ति का विकास करना होता है और चौथे एवं अंतिम चरण पर उसे अपने आध्यात्मिक 'स्व' का विकास करना होता है। इसमें आध्यात्मिक चेतना का विकास आता है। आदर्शवादी इन्हीं सबको शिक्षा के उद्देश्य मानते हैं।

आदर्शवाद व शिक्षा के उद्देश्य (Idealism and Objectives of Education)

1. **आत्मनुभूति का विकास (Development of self-realization) –** आदर्शवादी विचारधारा यह मानती है कि प्रकृति से परे यदि कोई चेतन सत्ता के अनुरूप है तो वह है 'मनुष्य'। इस कारण विश्व व्याप्त चेतन सत्ता की अनुभूति मनुष्य तब तक नहीं कर सकता जब तक उसके अंदर व्याप्त चैतन्यता का विकास न हो। अतः शिक्षा का सर्वोच्च कार्य यह है कि वह मनुष्य को इतना समर्थवान बनाये कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाने व उसकी अनुभूति कर सके। इस आत्मानुभूति के प्रमुख रूप से चार सोपान हैं :-

4. आध्यात्मिक 'स्व' (spiritual self)

3. बौद्धिक 'स्व' (Intellectual self)

2. सामाजिक 'स्व' (Social self)

1. शारीरिक व जैविकीय (Physical Self)

NOTES

शारीरिक 'स्व' आत्मानुभूति का निम्नतम सोपान है, जिसे प्रकृतिवादी आत्माभिव्यक्ति (Self expression) की संज्ञा देते हैं। सामाजिक 'स्व' को अर्थ क्रियावादी महत्व देता है, इसमें व्यक्ति सामाजिक हित की कल्पना करता है व सामाजिक कल्याण के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों का परित्याग कर देता है। बौद्धिक अनुभूति के स्तर पर व्यक्ति विवेक द्वारा 'स्व' की अनुभूति करता है व सामाजिक नैतिकता से ऊपर उठकर सद्-असद् में अन्तर कर सकता है तथा उसका आचरण चिन्तन तथा विश्वास विवेकपूर्ण हो जाता है। आध्यात्मिक 'स्व' स्वानुभूति का सर्वोच्च स्तर है जहाँ व्यक्ति गुणों को अपने व्यक्तित्व में अंगीकृत सहज प्रक्रिया द्वारा ही कर लेता है व अपने अंदर विश्वात्मा का तादाम्य करने लगता है। इस विश्वात्मा को हम तीन रूपों में अभिव्यक्त कर सकते हैं :- सत्य, शिव व सुन्दर। आदर्शवादी जब आत्मानुभूति के लिए शिक्षा प्रदान करने की बात करते हैं तो उनका एक ही लक्ष्य होता है, "अपने आपको पहचानो" (To Know Thyself)

2. **आध्यात्मिक मूल्यों का विकास (Development of Spiritual Values)** – आदर्शवादी विचारधारा भौतिक जगत की अपेक्षा आध्यात्मिक जगत को महत्वपूर्ण मानती है। अतः शिक्षा के उद्देश्य भी बालक के आध्यात्मिक विकास को महत्व देते हैं। यह मनुष्य को एक नैतिक प्राणी के रूप में अवलोकित करते हैं तथा शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण को मानते हैं। वह 'सत्यं शिवं सुन्दरं' के मूल्यों का विकास करते हुस इस बात की भी व्याख्या करते हैं कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक में आध्यात्मिक दृष्टि से विकास करना है।

3. **बालक के व्यक्तित्व का उन्नयन (To Exalt Child's Personality)** – बोगोस्लोवस्की के शब्दों में – "हमारा उद्देश्य छात्रों को इस योग्य बनाना है कि वे सम्पन्न तथा सारयुक्त जीवन व्यतीत कर सकें, सर्वागीण

तथा रंगीन व्यक्तित्व का निर्माण कर सकें, सुखी रहने के उल्लास का उपभोग कर सकें। यदि परेशानी आये तो गरिमा एवं लाभ के साथ उनका सामना कर सकें तथा इस उच्च जीवन को जीने में दूसरे लोगों की सहायता कर सकें।"

व्यक्तित्व के उन्नयन की चर्चा करते हुए प्लेटों व रॉस भी यह मानते हैं कि शिक्षा के द्वारा मानव व्यक्तित्व को पूर्णता प्राप्त की जानी चाहिए तथा साथ ही उसके व्यक्तित्व का उन्नयन होना चाहिए।

4. **अनेकता में एकता के दर्शन (To Establish Unity in Diversity)** – आदर्शवाद इस विचारधारा का समर्थन करते हुए इस बात पर बल देता है कि शिक्षा का उद्देश्य बालक को इस दृष्टि से समर्थ बनाना होना चाहिए कि वह विश्व में विद्यमान भिन्न-भिन्न बातों को एकता के सूत्र में पिरो सके अर्थात् बालक के अंदर यह समझ उत्पन्न करनी चाहिए कि वह इस संसार का संचालन करने वाली एक परम सत्ता है जो ईश्वर के नाम से जानी जाती है तथा यह ईश्वर की सत्ता जगत के सभी प्राणियों का संचालन करती है। इस ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति कराना ही शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। इसकी अनुभूति होने पर ही व्यक्ति इस संसार के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकता है एवं व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान कर सकता है।

5. **सभ्यता एवं संस्कृति का विकास (Development of Culture and Civilization)**– आदर्शवाद यह मानता है कि व्यक्ति जिस समाज का सदस्य है, उस समाज की संस्कृति से उसका परिचय होना अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही बालक यदि समाज को जीवित रखना चाहता है तो उसे समाज की धरोहर के रूप में जो सभ्यता व संस्कृति से प्राप्त होती है, उसकी भी रक्षा करनी चाहिए। सभ्यता तथा संस्कृति तो वह आधार प्रस्तुत करती है जिसके द्वारा समाज का विकास संभव होता है। आदर्शवाद व्यक्ति की तुलना में समाज को महत्व देता है। इसी कारण वह शिक्षा का उद्देश्य सभ्यता तथा संस्कृति का विकास करना मानते हैं। रस्क के अनुसार "सांस्कृतिक वातावरण मानव का स्वरचित वातावरण है अथवा यह मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया का परिणाम है जिसकी रक्षा व विकास करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।" (Culture Environment is an environment of man's creative activity. The aim of idealistic

education is the preservation as well as environment of Culture, (Rusk).

NOTES

6. **वस्तु की अपेक्षा विचारों का महत्व (Idea are Important than Objective)** – आदर्शवाद यह मानता है कि इस संसार में पदार्थ नाशवान है व विचार अमर। विचार सत्य, वास्तविक तथा अपरिवर्तनशील है। विचार ही मनुष्य को ज्ञान प्रदान करने का साधन है। यह संसार मनुष्य के विचारों में ही निहित होता है। वह यह मानते हैं कि यह जगत् यंत्रवत् नहीं है। चूंकि इस जगत् में विद्यमान वस्तुओं का प्रादुर्भाव मानसिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप ही होता है। इनका विचार है कि "यह विश्व विचार के समान है, यंत्रवत् नहीं। (Universe is like a thought than a machine).

7. **जड़ प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य का महत्व (Man is Important then Nature)** – आदर्शवादी मनुष्य का स्थान ईश्वर से थोड़ा ही नीचा मानते हैं। (Man is little lower than angels) इनका विचार है कि मनुष्य इतना समर्थवान होता है कि वह आध्यात्मिक जगत का अनुभव कर सके एवं ईश्वर से अपना तादात्म्य स्थापित कर सके या उसकी अनुभूति कर सके। इस कारण वह जड़ प्रकृति से बहुत महत्वपूर्ण है। वह यह भी मानते हैं कि मनुष्य बुद्धिपूर्ण व विवेकशील प्राणी है और बुद्धि ही मनुष्य के विभिन्न क्रिया-कलापों का आधार बनती है, जिससे मानव अपने आपको पशुवत् गुणों से ऊंचा उठा लेता है।

8. **समाज हित का उद्देश्य (Aims of the Welfare of the Society)** – आदर्शवाद जब शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा करता है तो व्यक्तित्व के विकास पर बल देता है तथा व्यक्तित्व विकास में सामाजिक हित अन्तर्निहित होता है। जब आदर्शवाद आत्मानुभूति में व्यष्टि या स्वार्थपरता निहित न होकर समष्टि या परमार्थ भाव निहित होता है। प्रसिद्ध आदर्शवादी दार्शनिक हॉकिंग (Hocking) जब शिक्षा के उद्देश्यों की व्याख्या करता है तो वह शिक्षा के दो उद्देश्य बताता है–

   a. सम्प्रेषण (Communiction)

   b. विकास के लिए प्रावधान (Development of the Society)

सम्प्रेषण में वह यह मानता है कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है कि वह समाज की संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित करें, सिर्फ

NOTES

संस्कृति का सम्प्रेषण मात्र करना ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं होता है। चूंकि सम्प्रेषण कर देने से संस्कृति रूक जायेगी। अतः शिक्षा द्वारा प्रत्येक पीढ़ी को इस बात के लिए तैयार किया जाना चाहिए कि वह उस संस्कृति में वृद्धि कर सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा उचित सामाजिक वातावरण तैयार करे जो समाज के विकास में योगदान दे। हॉर्न (Horn) के अनुसार, "शिक्षा द्वारा बालक की संस्कृति का ज्ञान व उसमें विकास करना आना चाहिए, साथ ही उसमें सामाजिक कुशलता व नागरिकता का विकास भी होना चाहिए।"

आदर्शवादी विचारधारा ने प्रमुख रूप से शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा की है, लेकिन इन्होंने शिक्षा के अन्य पक्षों पर भी थोड़ा प्रकाश डाला है, उनकी अवहेलना नहीं की है। अब हम इस बात की चर्चा करेंगे कि आदर्शवाद ने पाठ्यक्रम, पाठन विधि, शिक्षक, अनुशासन आदि के संबंध में क्या विचार प्रस्तुत किये हैं।

आदर्शवाद और पाठ्यक्रम (idealism and Curriculum)

अब सवाल उठता है कि उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम किस प्रकार का होना चाहिए? छात्र जिस प्रकार के पर्यावरण में जन्म लेता है उसी प्रकार के पर्यावरण में रहने का आदी हो जाता है। यह निश्चित है कि हम पाठ्यक्रम की योजना बनाते समय इस वातावरण की उपेक्षा नहीं कर सकते। संभव है कि हम पाठ्यक्रम में ऐसी सूचनाओं तथा क्रियाओं को भी स्थान दें जिन्हें हम पूर्णतः सत्य नहीं मानते। आदर्शवाद भौतिक जगत को अंतिम सत्य नहीं मानता लेकिन सत्य का आभास तो मानता ही है। सत्य को इसी भौतिक जगत में रहकर तथा भौतिक पर्यावरण के सहयोग से ही आदर्शवाद चरम सत्य को प्राप्त करने की सलाह देता है। मनुष्य का आध्यात्मिक वातावरण अधिक महत्वपूर्ण होता है लेकिन प्राकृतिक पर्यावरण की उपेक्षा नहीं की जा सकती। व्यक्ति शरीर और मन का संयोग है जिसमें मन अधिक महत्वपूर्ण है। किन्तु यदि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति न की गयी तो मानसिक क्रिया भी अवरुद्ध हो जायेगी। व्यक्ति आत्मानुभूति की ओर तभी आगे बढ़ सकता है जबकि उसने शारीरिक आवश्यकताओं को वश में कर लिया हो। अतः भौतिक जगत की जानकारी भी अत्यन्त आवश्यक है। छात्र को प्राकृतिक पर्यावरण का ज्ञान होना चाहिए। इसके साथ ही आध्यात्मिक वातावरण पर विशेष दृष्टि होनी चाहिए। आध्यात्मिक पर्यावरण में व्यक्ति के बौद्धिक, सौन्दर्यानुभूति संबंधी, नैतिक एवं धार्मिक सभी क्रिया-कलाप आते हैं। उसका ज्ञान, कला, नीति तथा धर्म इसी आध्यात्मिक वातावरण के

अंतर्गत हैं। समाज की प्राकृतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार की आवश्यकताएँ हैं। प्राकृतिक वातावरण से मानव समाज प्रभावित होता रहता है। उसने कला, धर्म एवं नीति आदि का विकास करके आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण किया है। समाज अपने ज्ञान को स्थायी बनाना चाहता है कि उसके भावी सदस्य प्राकृतिक विषयों एवं आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। वह यह नहीं चाहता कि समाज में एक प्रकार के ही व्यक्ति हों। अतः समाज एवं व्यक्ति दोनों की दृष्टि से ही पाठ्यक्रम में प्राकृतिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के ज्ञान का समावेश होना चाहिए। व्यक्ति के आत्मानुभूति भी तभी कर सकता है जब दोनों प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति में सक्षम हो।

इस दृष्टि से आदर्शवाद शारीरिक प्रशिक्षण की उपेक्षा नहीं कर सकता। शारीरिक शिक्षा भी उसके पाठ्यक्रम में होगी। प्राकृतिक वातावरण का ज्ञान प्राकृतिक विज्ञानों से होता है, अतः भौतिकी, रसायनिकी, भूमिति, भूगोल, खगोल, भूगर्भ विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, जीव-विज्ञान आदि विषयों को आदर्शवाद समर्थन नहीं देता। आध्यात्मिक विकास के लिए कला, साहित्य, नीतिशास्त्र, दर्शन, धर्म, मनोविज्ञान, संगीत आदि विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन विषयों के अध्ययन से मानव की आत्मा का विकास होता है। यदि इन विषयों का अध्ययन न किया जाये तो व्यक्ति प्राकृतिक वातावरण तक ही सीमित रह जायेगा।

शिक्षण पद्धतियाँ (Teaching Method)

i. **स्वाध्याय विधि –** आदर्शवादी दार्शनिक प्राचीन साहित्य का सम्मान करते हैं। वे मानते हैं कि हमारे प्राचीन साहित्य में हमारे पूर्वजों द्वारा खोजा हुआ ज्ञान कूट-कूट कर भरा है, हमें उससे लाभ उठाना चाहिए। प्राचीन साहित्य के अध्ययन के लिए वे स्वाध्याय विधि के पक्षधर हैं लेकिन इस विधि का प्रयोग शिक्षा के उच्च स्तर पर ही किया जा सकता है।

ii. **आगमन एवं निगमन विधि –** प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू इन विधियों द्वारा शिक्षा प्रदान किये जाने पर बल देते हैं। आगमन विधि में सामान्य से विशिष्ट की ओर चला जाता है तथा निगमन विधि में विशिष्ट से सामान्य की ओर चला जाता है।

iii. **प्रश्नोत्तर एवं संवाद विधि –** प्रश्नोत्तर एंव संवाद पद्धति के प्रतिपादक दार्शनिक सुकरात थे। संदर्भ विषयों की व्याख्या करके और तदुपरान्त पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देकर सुकरात तत्कालीन समय में विद्यार्थियों को शिक्षा दिया करते थे। वे किसी स्थान पर युवकों को एकत्रित कर उनके

सामने प्रश्न प्रस्तुत करते थे, युवक उन प्रश्नों पर विचार करते थे, उत्तर देते थे, तब वे उन प्रश्नों के संदर्भ में अपना मत प्रकट करते थे। प्लेटों ने प्रश्नोत्तर विधि के आधार पर संवाद विधि का विकास किया। प्लेटो ने अपनी अधिकांश रचनाएं भी संवादों के रूप में लिखी हैं। प्लेटो के संवाद विश्वविख्यात हैं।

इसके अतिरिक्त आधुनिक आदर्शवादी दार्शनिकों ने तर्क विधि, खेल विधि, अनुदेशन विधि एवं आवृत्ति विधि का विकास किया है।

iv. **अनुकरण विधि –** आदर्शवादी दार्शनिकों के अनुसार बालक अनुकरण द्वारा भी सीखता है। अतः शिक्षकों को बालकों के समक्ष अपने उच्च आचरण प्रस्तुत करने चाहिए। शिक्षकों से यह आशा की जाती है कि वे बच्चों के सम्मुख लेख, चित्रकला व संगीत आदि के उत्कृष्ट नमूने प्रस्तुत करें, जिनका अनुकरण कर वे इनको सीखें। वे शिक्षकों से यह भी अपेक्षा रखते हैं कि वे छात्रों में उच्चकोटि की प्रेरणा व स्पर्धा उत्पन्न करें। उस स्थिति में अनुकरण विधि द्वारा शिक्षण अति लाभकारी होता है। बच्चों के मूल्यों के विकास तथा उनके चरित्र निर्माण के लिए वे बच्चों के सामने धर्मग्रन्थों तथा साहित्य के धीरोदात्त नायकों के चरित्र प्रस्तुत करने पर बल देते हैं। आदर्शवादियों का विश्वास है कि मनुष्य की प्रकृति अच्छे बुरे में अन्तर करने की होती है, वे इन धीरोदात्त नायकों के गुणों का अनुकरण कर अच्छे मनुष्य बन सकेंगे।

आदर्शवाद में शिक्षक (Idealism and Teacher)

जेण्टील (Gentile) के अनुसार, "अध्यापक सही चरित्र का आध्यात्मिक प्रतीक है" (Teacher is Spiritual Symbol of right Conduct) । आदर्शवादी विचारक शिक्षक को उस अनुपम श्रेणी में रखते हैं जिसमें शिक्षण प्रक्रिया का कोई अन्य अंश नहीं रखा जा सकता। आदर्शवादी दार्शनिक शिक्षक में जिन गुणों की परिकल्पना करते हैं, उनकी व्याख्या बटलर ने इस प्रकार की है–

i. शिक्षक बालक के लिए सत्ता का आकार रूप होता है।

ii. अध्यापक को छात्रों की व्यक्तिगत, सामाजिक व आर्थिक विशेषताओं का ज्ञाता होना चाहिए। 3. शिक्षक अध्यापन कला में निपुण होना चाहिए व उसमें व्यावसायिक कुशलता होनी चाहिए।

iii. अध्यापक का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए जिससे वह छात्रों को अपनी ओर आकर्षित कर सके।

NOTES

iv. अध्यापक एक दार्शनिक, मित्र व पथ-प्रदर्शक के रूप में होना चाहिए।

v. छात्रों के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करना अध्यापक के जीवन का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए।

vi. अध्यापक में अपने विषय का पूर्ण एवं उचित ज्ञान होना चाहिए।

vii. अध्यापक में स्व-अध्ययन का गुण होना चाहिए जिससे वह निरन्तर नवीन ज्ञान की ओर अग्रसर हो सके।

viii. अध्यापक को प्रजातंत्र की सुरक्षा बनाये रखने का प्रयास करना चाहिए।

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री फॉबेल ने कहा है कि बालक एक पौधे के समान है और अध्यापक एक माली के समान, जो पौधे को आवश्यकतानुसार सींचकर, खाद आदि डालकर तथा काट-छांटकर सुव्यवस्थित रूप में पालन-पोषण है, जिससे वह सुन्दर और मनमोहक वृक्ष बन सके। शिक्षक के महत्व के संबंध में रॉस ने भी कहा है- ''प्रकृतिवादी तो जंगली गुलाब से संतुष्ट हो सकता है, लेकिन आदर्शवादी तो एक सुन्दर व सुविकसित गुलाब की परिकल्पना करता है।" यह दार्शनिक विचारधारा यह मानकर चलती है कि बालक के विकास के लिए उपर्युक्त सामाजिक वातावरण एवं शिक्षक का सही मार्गदर्शन अत्यन्त आवश्यक है।

आदर्शवाद एवं बालक (Idealism and Child)

आदर्शवाद में बालक को शिक्षण प्रक्रिया का प्रमुख बिन्दु नहीं माना जाता। उनके अनुसार शिक्षण प्रक्रिया में भावों, विचारों व आदर्शों का महत्वपूर्ण स्थान है। तथ इनको प्रदान करने के साधन के रूप में वह अध्यापक को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं व बालका को गौण। वह छात्रों को एक आध्यात्मिक प्राणी मानते हैं एवं यह स्वीकार करते हैं कि आध्यात्मिक सत्ता भी होती है। वे मन को शरीर से अधिक महत्व देते हैं। हॉर्न के मतानुसार "विद्यार्थी एक परिमित व्यक्ति है किन्तु उचित शिक्षा मिलने पर वह परम पुरूष के रूप में विकसित होता है। उसकी मूल उत्पत्ति दैविक है, स्वतंत्रता उसका स्वभाव है तथा अमरत्व की प्राप्ति उसका लक्ष्य है।"

आदर्शवाद का मूल्यांकन (Evaluation of Idealism)

गुण (Merits) : आदर्शवाद के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं –

i. बालक के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास पर बल देना।

ii. बालक में आत्मानुभूति की क्षमता उत्पन्न करना।

iii. सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् को शिक्षा का आधार मानना।

iv. शिक्षा के उद्देश्यों पर विस्तृत रूप में विचार करना।

v. शिक्षण प्रक्रिया में अध्यापक को सर्वोच्च एवं महत्वपूर्ण स्थान देना।

vi. आत्मानुशासन तथा आत्म-नियंत्रण पर बल देना।

vii. शिक्षण विधियों को उद्देश्यों के अनुरूप बनाने की बात करना।

अवगुण (Demerits) : आदर्शवाद में निम्नलिखित अवगुण पाये जाते हैं –

i. बालक के मनोवैज्ञानिक प्रारूप या विशेषताओं की अवहेलना करना।

ii. अध्यापक को आवश्यकता से अधिक महत्व प्रदान करना।

iii. कठोर सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना करना।

iv. इनके द्वारा निर्धारित लक्ष्य वास्तविक न होकर काल्पनिक हैं। इसी कारण इनकी प्राप्ति सम्भव नहीं है।

v. लक्ष्य वर्तमान पर आधारित न होकर भविष्य पर आधारित है।

vi. मानववाद को आवश्यकता से अधिक महत्व देना।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. आदर्शवाद से आप क्या समझते हैं? जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद की व्याख्या कीजिए।
2. आदर्शवाद में शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
3. आदर्शवादी पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धतियों का उल्लेख कीजिए।
4. आदर्शवादी शिक्षक एवं बालकों के प्रमुख गुणों का उल्लेख कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. आदर्शवाद से आप क्या समझते हैं ?
2. जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद को स्पष्ट कीजिए।
3. आदर्शवाद की शिक्षण पद्धतियाँ समझाइए।
4. आदर्शवाद का मूल्यांकन कीजिए।

4 प्रकृतिवाद (Naturalism)

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- प्रकृतिवाद
    - प्रकृतिवादी दर्शन का अर्थ
    - प्रकृतिवाद की परिभाषाएं
    - प्रकृतिवाद के दार्शनिक स्वरूप
- प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त
    - प्रकृतिवाद व शिक्षा के उद्देश्य
    - प्रकृतिवाद व पाठ्यक्रम
    - प्रकृतिवाद व शिखण विधियां
- प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषताएं
- शिक्षा में प्रकृतिवाद की देन
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे –

- प्रकृतिवाद
    - प्रकृतिवादी दर्शन का अर्थ
    - प्रकृतिवाद की परिभाषाएँ
    - प्रकृतिवाद के दार्शनिक स्वरूप
- प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त
    - प्रकृतिवाद व शिक्षा के उद्देश्य
    - प्रकृतिवाद व पाठ्यक्रम
    - प्रकृतिवाद व शिक्षण विधियाँ
- प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषताएँ
- शिक्षा में प्रकृतिवाद की देन

प्राक्कथन

दर्शन की समस्या के रूप में तत्व की खोज तो अनादि काल से हो रही है और इसी आधार पर दार्शनिकों को समूहों में विभाजित कर दिया गया है। जो एक तत्व मानते हैं वे एकतत्ववादी अथवा अद्वैतवादी, जो दो तत्वों में विश्वास करते हैं वे द्वितत्ववादी तथा द्वैतवादी तथा बहुतत्व मानने वाले बहुततत्ववादी कहे जाते हैं। साधारणतया एकतत्ववादी विचारधारा ही प्रबल है। ब्रह्माण्ड का मूल कारण चेतन है अथवा अचेतन? उसका रूप पौदलिक है अथवा मानसिक? इन प्रश्नों का उत्तर यह प्रकट कर देगा कि विचारक विचारवादी है तथा प्रकृतिवादी। विचारवादी प्रत्ययों को शाश्वत मानता है तथा उन सब प्रत्ययों का भी मूल किसी एक प्रत्यय को ही मानता है। यह मूल तत्व उसके अनुसार मानसिक है। यह तत्व चेतन है। इस पर आधारित शिक्षा-प्रणाली उस शिक्षा प्रणाली से भिन्न होगी जो पुद्गल को ही प्रथम कारण मानते हैं तथा साथ-साथ उसे स्वयं प्रेरक, परिवर्तनशील एवं प्रयोजनहीन मानते हैं। यह मूल तत्व पुद्गल है और प्रयोजनहीन है तो शिक्षा का उद्देश्य प्रयोजनशील नहीं हो सकता। केवल जीवन-यापन करने के योग्य बनाना ही शिक्षा का लक्ष्य रहेगा।

एक प्रकृतिवादी विचारधारा यांत्रिक भौतिकवाद से मिलती है। भौतिकवादी के लिए पुद्गल मूल तत्व है, मनस् है मस्तिष्क उसकी क्रिया। पुद्गल ही मनस् का उद्गम है, न कि मनस् पुद्गल का प्रेरक। चेतना इस मस्तिष्क का परिणाम है। भौतिकवादी संसार को एक यंत्र मानते हैं और उनके लिए जीवित प्राणी तो केवल अणु-परमाणु आदि का जोड़ है। प्राकृतिक चुनाव के द्वारा उच्च प्रकार की चेतन-मशीनों की उत्पत्ति संभव है। अत: भौतिकवादियों के लिए मनुष्य एक यंत्र है। प्रयोजनहीन, लक्ष्यहीन तथा निर्माण की शक्ति से च्युत मनुष्य केवल एक यंत्र है एवं मनोविज्ञान के लिए व्यवहारवादी शाखा इस दर्शन की देन है। व्यवहारवादी मनोविज्ञान के अनुसार मनोविज्ञान मनुष्य के केवल बाह्य व्यवहार का अध्ययन करता है और जिन्हें हम मानसिक क्रियायें कहते हैं वे केवल बाह्य उत्तेजन की प्रतिक्रिया मात्र हैं। आत्मा एवं परमात्मा की मान्यता इस विचारधारा के अनुसार नहीं के बराबर है। चार्वाक का मत भी इस विचारधारा से मेल खाता है।

प्रकृतिवाद तथा शिक्षा (Naturalism and Education)

प्रकृतिवाद यह मानता है कि "वास्तविक संसार भौतिक संसार है" (Material word is the real word) इसी कारण हम प्रकृतिवाद को भौतिकवादी दर्शन

भी कह सकते हैं। प्रकृतिवाद इस सृष्टि की रचना के लिए प्रकृति को ही उत्तरदायी मानता है। इसके अनुसार सभी दार्शनिक समस्याओं का प्रत्युत्तर प्रकृति में निहित होता है। (Nature alone Contain the final answer to all philosophical Problems)

दार्शनिक प्रकृति की व्याख्या सामान्यतया इस रूप में करते हैं कि प्रकृति सामान्य एवं स्वाभाविक रूप से विकसित होने वाली एक प्रक्रिया है। इस ब्रह्माण्ड की वह सभी वस्तुएं जिनकी रचना में मनुष्य का शून्य योगदान है, वही प्रकृति है। इसके साथ ही कुछ दार्शनिक विचारधारा मानती है कि प्रकृति वह है जो सर्वत्र सर्वदा विद्यमान है और इसकी गतिविधियां निश्चित व प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित तथा नियंत्रित होती हैं। साथ ही इनका यह भी विचार है कि प्रकृति में विभिन्न पदार्थ होते हैं जिनके परस्पर सहयोग से विभिनन प्रकार की रचनाएं उत्पन्न होती हैं। यह पदार्थ क्रियाशील होते हैं। इसी कारण प्रकृतिवाद, भौतिकवाद भी कहा जाता है। दर्शनशास्त्र में प्रकृति को ही सर्वोपरि सत्ता के रूप में स्वीकार किया जाता है प्राकृतिक दार्शनिक विचारधारा बहुत ही व्यापक रूप में प्रकृति को स्वीकार करती है। एक ओर तो वह प्रकृति की व्याख्या जीव-जगत के रूप में भी की जाती है।

प्रकृतिवादी दर्शन का अर्थ (Meaning of Naturalistic Philosophy)

प्रो. सोर्ले के अनुसार प्रकृतिवाद को नकारात्मक रूप से अच्छी तरह समझाया जा सकता है। यह वह विचारधारा है जिसके अनुसार स्वाभाविक या निर्माण की शक्ति मनुष्य के शरीर को नहीं प्रदान की जा सकती। प्रकृतिवादी विचारक बुद्धि का स्थान मानते हैं, पर कहते हैं कि उसका अर्थ केवल बाह्य परिस्थितियों एवं विचारों पर काबू करना है जो उसकी शक्ति से बाहर जन्म लेते हैं। एक प्रकार से प्रकृतिवादी भी भौतिकवादियों की भांति आत्मा-परमात्मा, स्पष्ट प्रयोजन, इत्यादि की सत्ता में विश्वास नहीं करते। प्रकृतिवाद सभ्यता की जटिलता की प्रतिक्रिया के रूप में हमारे समक्ष आया है। इसके मुख्य नारे "प्रकृति की ओर लौटो", "समाज के बंधनों को तोड़ो" इत्यादि हैं। सभ्यता का लचीलापन समाप्त होने पर यह वाद जन्म लेता है। पर प्रकृति का अर्थ क्या है? सर जान एडम्स ने कहा है कि यह शब्द बड़ा ही कठिन है। इसकी अस्पष्टता के कारण बहुत सी भूलें और अन्धकार का फैलाव होता है। इसका अर्थ तीन प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम अर्थ में प्रकृति का अर्थ है निहित गुण और विशेषकर वे गुण जो जीवन के विकास और उन्नति की ओर

NOTES

ले जाने के लिए सहायक हों। यदि हम बालक को पढ़ाना चाहते हैं तो उसके विकास के नियम हमें ज्ञात होने चाहिए। प्रकृति का इस प्रकार अर्थ करने का गौरव रूसों को प्राप्त है। डॉ. हॉल जिसे बाल-केन्द्रित शिक्षा की संज्ञा देते हैं, उसे रूसो ने प्रेरणा दी थी, यद्यपि उससे पूर्व क्विन्टिलियन भी इसे जानता था। इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि प्रथम अर्थ में प्रकृति का अर्थ बहुत कुछ स्वभाव से लगाया जाता है।

प्रकृति का द्वितीय अर्थ है बनावट के ठीक विपरीत। जिस कार्य में मनुष्य ने सहयोग प्रदान न किया हो वही प्राकृतिक है। यह सत्य है कि मनुष्य प्रकृति में अपनी क्रियात्मकता से परिवर्तन लाता है। पर इसका अर्थ बनावट तो नहीं है। क्योंकि उक्त परिवर्तन अप्राकृतिक कैसे हो सकता है, जबकि मनुष्य स्वयं प्रकृति के कारण जीवित है तथा वह प्राकृतिक प्राणी है। बस इसका अर्थ यह है कि हम आदि काल की बात सोचने लगे। उस समय पशु था अथवा एक साधु अवस्था में, इसका निर्णय करना कठिन है। फिर एक चोर चोरी करने में क्या अपने स्वभाव का सहारा नहीं लेता? फिर उसे सजा क्यों मिलती है? क्या हमें बालक को मूल्य संवेगों की शिक्षा देनी है? हम ठीक नहीं बता सकते। हमारा हृदय केवल उपयुक्त और हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों को ही जीवित रहने में सहायता देना नहीं है बल्कि आधे से अधिक मनुष्यों को जीवित रखने के योग्य बनाना है तथा हम यहाँ प्रकृति को स्वाभाविक तथा बनावटी दोनों ही रूपों में लेते हैं।

प्रकृति का तृतीय अर्थ है सम्पूर्ण विश्व तथा उसकी क्रिया और इस अर्थ में मनुष्य जो कुछ भी करता है वह प्राकृतिक है। शिक्षा में इसका अर्थ होगा विश्व की क्रिया का अध्ययन। इसका अर्थ हुआ कि एक सुस्त और कामचोर को भी इस प्रकार कहने का अवसर मिल सकता है कि वह बहुत से कीटाणुओं की भांति स्वाभाविक रूप से कार्य नहीं कर सकता। इस तरह हिंसक प्रवृत्ति का व्यक्ति अपनी हिंसात्मक कार्यवाहियों को भी प्राकृतिक कहने की धृष्टता कर सकेगा। कुछ विद्वानों का मत है कि मनुष्य को प्रकृति की विकासवादी श्रृंखला में बाधा उत्पन्न नहीं चाहिए वरन् उसे उस क्रिया से अलग ही रहना ठीक है। विकास किसी व्यक्तित्व के बिना नहीं हो सकता, व्यक्तित्व बिना प्रयोजन कार्य नहीं कर सकता। इसलिए हमें कुछ विद्वानों के अनुसार इस विकास के नियम का अध्ययन करना चाहिए तथा प्रकृति का अनुयायी बन जाना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य इस विकास को समझाना तथा इसका अनुयायी बनने में सहायता करना है। शिक्षा संभव हो सके, इसलिए हमें बहुत सी बनावटी बातों पर भी बल देना होगा। इस तरह

हमने देखा कि प्रकृति के अर्थ का निर्णय कठिन है। फिर भी हम इस बात को जानते हैं कि हरबर्ट स्पेसर तथा रूसों को प्रकृतिवादी विचारधारा का समर्थक माना जाता है।

प्रकृतिवादी की परिभाषाएँ (Definition of Naturalism)

प्रकृतिवाद की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं -

जेम्स बार्ड के अनुसार "प्रकृतिवाद वह सिद्धान्त, जो प्रकृति को ईश्वर से पृथक करता है, आत्मा को पदार्थ के अधीन करता है और अपरिवर्तनीय नियमों की सर्वोच्चता प्रदान करता है।"

थॉमस और लेंग के अनुसार- "प्रकृतिवाद आदर्शवाद के विपरीत मन को पदार्थ के अधीन मानता है, और यह विश्वास करता है कि अंतिम वास्तविकता-भौतिक है, आध्यात्मिक नहीं।"

जायस के शब्दों में- "प्रकृतिवाद एक ऐसा दार्शनिक तंत्र है, जिसमें प्रभुत्व विशेषता के रूप में आध्यात्मिक, अन्त ज्ञानात्मक एवं पदार्थ जगत से परे की अनुभूतियों को बहिष्कृत किया जाता है।"

पैरी के मतानुसार- "प्रकृतिवाद, विज्ञान नहीं है, वरन् विज्ञान के बारे में दावा है। अधिक स्पष्ट रूप में यह इस बात का दावा है कि वैज्ञानिक ज्ञान अंतिम है, जिसमें विज्ञान से बाहर या दार्शनिक ज्ञान का कोई स्थान नहीं है।"

ब्राइस के शब्दों में, "प्रकृतिवाद एक प्रणाली है और जो कुछ आध्यात्मिक है, उसका बहिष्कार ही उसकी प्रमुख विशेषता है।"

रस्क के शब्दों में- "प्रकृतिवाद एक दार्शनिक स्थिति है जिसे वे लोग अपनाते हैं, जो दर्शन की व्याख्या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करते हैं।"

प्रकृतिवाद के दार्शनिक स्वरूप (Philosophy Form of Naturalism)

दार्शनिक सिद्धान्त की दृष्टि से प्रकृतिवाद के निम्नलिखित तीन रूप माने जाते हैं :-

(1) **भौतिक जगत का प्रकृतिवाद (Naturalism of Physical Words)** - यह सिद्धान्त मानव क्रियाओं व्यक्तिगत अनुभवों, संवेगों, अनुभूतियों आदि की भौतिक विज्ञान से व्याख्या करना चाहता है। यह भौतिक विज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण जगत की व्याख्या करना चाहता है। इसका शिक्षा के क्षेत्र

पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इसने विज्ञान को ज्ञान में सबसे ऊँचे आसन पर बैठा दिया है। विज्ञान न केवल एक मात्र ज्ञान है बल्कि उसके अलावा कोई ज्ञान संभव नहीं। इस प्रकार भाववाद के रूप में इस सिद्धान्त में दार्शनिक ज्ञान को बेकार माना जाता है।

NOTES

(2) यांत्रिक प्रकृतिवाद (Mechanical Naturalism) – इस सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण जगत एक यंत्र के समान कार्य कर रहा है तथा वह यंत्र जड़तत्व का बना है जिसमें स्वयं उसको चलाने की शक्ति है। इस प्रकार प्रकृतिवाद का यह स्वरूप जड़वाद है। जड़वाद के अनुसार जड़तत्व ही सब कुछ है। व्यक्ति के सक्रिय यंत्र से अधिक कुछ नहीं है। उसमें वातावरण के प्रभाव के कारण कुछ सहज क्रियायें होती हैं। यंत्रवाद के प्रभाव से मनोविज्ञान में व्यवहारवादी सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसके अनुसार सम्पूर्ण मानव-व्यवहार की व्याख्या उत्तेजना और अनुक्रिया के शब्दों में की जा सकती है। व्यवहारवादी जड़तत्व से अलग चेतना का कोई अस्तित्व नहीं मानते तथा चिन्तन, कल्पना, स्मृति आदि सभी मानसिक प्रक्रियाओं की व्याख्या शारीरिक शब्दों के द्वारा करते हैं। इनके अनुसार मनुष्य तथा पशु की क्रियाओं में कोई अन्तर नहीं है, इन दोनों की ही व्याख्या उत्तेजना-अनुक्रिया के शब्दों में की जा सकती है। इस प्रकार व्यवहारवाद सम्पूर्ण मानव-व्यवहार की यांत्रिक प्रक्रिया के रूप में व्याख्या करता है। प्रकृतिवाद के इस रूप ने शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक प्रभाव डाला है।

(3) जैवकीय प्रकृतिवाद (Biological naturalism) – प्रकृतिवाद के इस स्वरूप ने शिक्षा के क्षेत्र को अत्यधिक प्रभावित किया है। इसी ने प्राकृतिक मानव का सिद्धान्त उपस्थित किया। विकासवाद पशु तथा मानव विकास को एक ही क्रम में मानता है। वह मनुष्य की आध्यात्मिक प्रकृति को नहीं मानता और उसकी प्रकृति को मानव पूर्वी से मिला हुआ मानता है। इसलिए मनुष्य तथा पशु स्वभाव में बहुत कुछ समानता है। जैवकीय प्रकृतिवाद के अनुसार जगत में समस्त प्रक्रियाओं और सम्पूर्ण प्रकृति की व्याख्या भौतिक अथवा यांत्रिक क्रियाओं के रूप में नहीं की जा सकती क्योंकि जीव जगत में विकास प्रमुख घटना है। सभी प्राणियों में जीवन की प्रेरणा होती है और इसलिए जीवन का निम्न से उच्च स्तरों की ओर विकास होता है। विकास के सभी लक्षण मानव व्यक्ति के जीवन में देखे जा सकते हैं। वह क्या रूप लेगा और किस प्रकार वृद्धि करेगा यह सब विकास के सिद्धान्तों से निश्चित होता है। जबकि

पशु-जगत में विकास की प्रक्रिया केवल भौतिक स्तर तक ही सीमित है। मानव-प्राणियों में वह सबसे अधिक मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक स्तरों पर ही बढ़ती है। केवल मानव व्यक्ति ही नहीं बल्कि मनव समूहों में भी विकास की प्रेरणा होती है और इसलिए वे विकसित होते हैं तथा उनमें विकास के वे ही नियम लागू होते हैं जो व्यक्ति के विषय में लागू होते हैं। चार्ल्स डार्विन ने विकास की प्रक्रिया में अस्तित्व के लिए संघर्ष (Struggle for Existence) तथा उपयुक्ततम की विजय के सिद्धान्तों को महत्वपूर्ण माना है। इसके अनुसार आत्म-संरक्षण ही प्राकृतिक जगत में सबसे बड़ा नियम है।

प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त (Principles of Naturalism)

प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त निम्नांखित हैं :-

(a) इस सृष्टि का निर्माण वस्तु या तत्व से हुआ है। मानव भी वस्तु का ही एक स्वरूप है।

(b) प्रकृतिवाद में धर्म तथा ईश्वर का कोई स्थान नहीं है।

(c) प्रकृतिवाद के अनुसार समाज व्यक्ति के लाभ के लिए है। अतः समाज का स्थान व्यक्ति के बाद आता है।

(d) मानव की मूल प्रवृत्ति पशुओं की भाँति होती है।

(e) प्रकृति अंतिम सत्ता या वास्तविकता है।

(f) नैतिक मूलप्रवृत्ति, जन्मजात अन्तरात्मा, परलोक, वैयक्तिक अमरता, चमत्कार, ईश्वर-कृपा, प्रार्थना-शक्ति तथा इच्छा की स्वतंत्रता, भ्रम है।

(g) मनुष्य के सांसारिक जीवन की भौतिक परिस्थितियाँ विज्ञान की खोजों तथा मशीनों के आविष्कारों द्वारा बदल दी गई।

(h) विकास की प्रक्रिया में मस्तिष्क एक घटना है। यह उच्चकोटि के जीवों में अधिक विकसित नाड़ी मण्डल का समूह होता है।

(i) विकास की प्रक्रिया में मस्तिष्क एक घटना है। यह उच्चकोटि के जीवों में अधिक विकसित नाड़ी मण्डल का समूह होता है।

(j) प्रत्येक वस्तु का जन्म प्रकृति के ही सान्निध्य में होता है और मृत्युपरांत प्रकृति (पंचतत्व) में ही समा जाता है।

(k) ज्ञान तथा सत्य का आधार-इन्द्रियों का अनुभव है।

(l) प्रकृति के नियम अपरिवर्तनीय हैं। अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियम सब घटनाओं को भली भाँति स्पष्ट करते हैं।

(m) वास्तविकता की व्याख्या केवल प्राकृतिक विज्ञानों द्वारा ही की जाती है।

(n) मस्तिष्क मानव की शक्ति तथा क्रिया का स्रोत है।

प्रकृतिवाद व शिक्षा व उद्देश्य (Naturalism and aims of Education)

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रूसों (Rousseau) ने कहा कि शिक्षा का उद्देश्य मानव को प्रकृति के अनुकूल जीवन यापन करने के लिए योग्य बनाना है। शिक्षा के द्वारा हम मानव में कुछ नया उत्पन्न नहीं करते वरन् मानव की मौलिकता को बनाये रखने का प्रयास करते हैं तथा मानव संसर्ग के कारण उसमें जो कृत्रिमता आ जाती है, उसका विनाश करने का प्रयास करते हैं। रूसों ने कहा कि "रोजमर्रा के व्यवहार को (समाज-सम्मत व्यवार को) बदल डालो और सदा सर्वदा तुम्हारा कृत्य सही होगा।" रूसों ने प्रत्येक स्थान पर सामाजिक संस्थाओं की अवहेलना की है। वह कहता है कि "मानवीय संस्थाएं मूर्खता तथा विरोधाभास के समूह हैं।" परन्तु वह प्रकृति को ईश्वरीय सृष्टि मानता है और मनुष्य को ईश्वरीय रचना।

जैवकीय प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य माने जाते हैं :-

i. व्यक्ति को इस योग्य बनाना जिससे कि वह इस जगत में अपने आपको जीवित रख सके, जीवन के संघर्षों का मुकाबला कर सके तथा सफलता प्राप्त करने के लिए प्रयास कर सके।

ii. शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति में उसके वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता विकसित करना।

iii. बर्नार्ड शॉ के अनुसार, "शिक्षा का उद्देश्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जातीय संस्कृति का संरक्षण, हस्तान्तरण व वृद्धि होना चाहिए। यह उद्देश्य आदर्शवादी उद्देश्य के निकट है।"

संक्षेप में प्रकृतिवाद के अनुसार हम शिक्षा के निम्न उद्देश्य बता सकते हैं –

i. शिक्षा द्वारा बालक को प्राकृत जीवन यापन करने के लिए तैयार करना।

ii. बालक की प्राकृतिक शक्तियों का विकास करना।

iii. बालक को इस प्रकार का ज्ञान व दक्षता प्रदान करना जिससे कि वह अपने पर्यावरण के साथ समायोजन कर सके।

iv. मानव में उचित तथा उपयोगी सहज क्रियाओं को उत्पन्न करना अर्थात् मनुष्य में शिक्षा द्वारा ऐसी आदतों एवं शक्तियों का विकास करना जो मशीन के पुर्जे की भांति अवसरानुकूल प्रयोग की जा सकें।

v. बालक को जीवन संघर्षों के योग्य बनाना।

vi. जातीय निष्पत्तियों का संरक्षण करना तथा विकास करना।

vii. बालक का आत्मसंरक्षण एवं आत्मसंतोष की प्राप्ति।

viii. मूल प्रवृत्तियों का शोधन एवं मार्गान्तरीकरण।

ix. बालक के व्यक्तित्व का विकास करना।

NOTES

प्रकृतिवाद व पाठ्यक्रम (Naturalism of Curriculum)

प्रकृतिवाद के शिक्षा के उद्देश्य के संबंध में स्पेन्सर ने पांच उद्देश्यों की व्याख्या की है। वह प्रकृतिवाद के पाठ्यक्रम को भी इन उद्देश्यों की पूर्ति का एक साधन मानते हुए कहते हैं:- वास्तव में यदि देखा जाए तो प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम का संगठन अपने ही ढंग से करते हैं तथा मानते हैं कि बालक की प्रकृति, नैसर्गिक रूचि, योग्यता, अनुभव व स्वाभाविक क्रियाओं के आधार पर ही पाठ्यक्रम का निर्माण होना चाहिए और पाठ्यक्रम में वह विषय सम्मिलित किये जाने चाहिए जो बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के अनुरूप हों। पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों के संबंध में प्रकृतिवादी विचारधारा इस प्रकार है :-

i. पाठ्यक्रम निर्माण का आधार बाल हो।

ii. पाठ्यक्रम में विज्ञान विषयों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाये।

iii. पाठ्यक्रम व्यावहारिक तथा जीवनोपयोगी होना चाहिए।

iv. पाठ्यक्रम अनुभव-केन्द्रित हो।

NOTES

प्रकृतिवाद व शिक्षण विधियां (Naturalism and Method of Teaching)

प्रकृतिवाद शिक्षण विधियों के परम्परागत प्रारूप की आलोचना करता है तथा इस विचार को मान्यता प्रदान करता है कि शिक्षण विधियों में भी नित्य नवीन परिवर्तन होने चाहिए। रूसो (Rousseau) ने कहा है कि अपने शिक्षार्थी को कोई भी शाब्दिक पाठ न पढ़ाओ बल्कि उसे अनुभव द्वारा सीखने के अवसर दो। (Give you scholar no verbal lesson, he should be taught by experience alone) प्रकृतिवाद का केन्द्रबिन्दु छात्र है। इस कारण वह यह मानते हैं कि जिन विधियों के द्वारा छात्रों को अध्ययन कराया जाये, वह निम्न तीन सिद्धान्तों पर आधारित हों :-

i. विकास या उन्नति का सिद्धान्त (Principal of growth)

ii. छात्र क्रिया का सिद्धान्त (Principal of pupil Activity)

iii. वैयक्तिकता का सिद्धान्त (Principal of Individualization)

स्पेन्सर (Spencer) महोदय ने प्रकृतिवादी शिक्षण विधियों की चर्चा की है, जो निम्नलिखित है:

1. प्रकृति के अनुरूप शिक्षा (Education according to Nature) शिक्षा बालक के लिए संचालित की जाने वाली एक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य बालक का स्वाभाविक रूप से विकास करना है। अत: शिक्षा के द्वारा बालक की शिक्षण प्रक्रिया एवं बालक के अनुभवों के बीस सामंजस्य स्थापित किया जाना चाहिए।

2. **शिक्षा आनन्द प्रदायनी (Education for Enjoyment) :** हम शिक्षण की जो विधि अपनाएं, उसका उद्देश्य बालक में शिक्षण के प्रति रूचि जागृत करना होना चाहिए। चूंकि जब तक बालक किसी चीज में रूचि नहीं लेगा, तब तक वह शारीरिक व मानसिक रूप से किसी भी बात को सीखने के लिए नहीं होगा। इसी कारण प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक ने कहा था कि शिक्षण विधि में अभिप्रेरणा सिद्धान्त, प्रभाव का नियम तथा तत्परता का नियम (Law of Effect) को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

3. **स्वचालित आत्म-क्रिया (Spontaneous self-activity) :** स्पेन्सर का विचार था कि बालक किसी दूसरे के प्रयासों द्वारा नहीं सीखता, बल्कि

NOTES

वह स्वयं अपनी आत्म-क्रिया सीखता है और स्वयं के प्रयासों द्वारा अर्जित ज्ञान ही वास्तविक तथा स्थाई होता है।

4. **शिक्षा में शारीरिक तथा मानसिक विकास का संतुलन (Balance in Physical and mental development) :** शिक्षण विधियां इस बात को ध्यान में रखते हुए अपनाई जानी चाहिए कि शिक्षा को बालक के व्यक्तित्व के दो प्रमुख पक्षों (मानसिक व शारीरिक) का समान रूप से विकास करना है।

5. **नकारात्मक शिक्षा (Negative Education) :** नकारात्मक शिक्षा से तात्पर्य है कि शिक्षा हमें सत्यता व पुण्य का पाठ नहीं पढ़ाये बल्कि हमें असत्यता व पाप से दूर रहना सिखाए। अर्थात् नकारात्मक शिक्षा गुण आरोपित नहीं करती वरन् अवगुणों से बचाती है। यह वह मार्ग प्रशस्त करती है जो व्यक्ति को अवगुणों से दूर रखता है।

6. **शिक्षण विधि आगमनात्मक हो (Teaching Method should be Inductive)** – इस संदर्भ में प्रकृतिवाद ने जिस विधि को जन्म दिया, उसे ह्यूरिस्टिक विधि (Heuristic Method) कहा जाता है। बालक को प्रत्यक्ष रूप से सीखने के अवसर मिलने चाहिए, जिसमें छात्र को एक अन्वेषक या आविष्कारक की भूमिका निभानी पड़ती है। इसी को आगमन विधि कहते हैं।

3.5 प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषताएं (Chief Characteristics of Nature)

1. **प्रकृति ही वास्तविकता है (Nature is Ultimate Reality) :** प्रकृतिवाद प्रकृति को अंतिम सत्ता मानता है तथा मानव प्रकृति पर अधिक जोर देता है। यह इस बात पर विश्वास वास्तविक है, वह प्रकृति है या जो प्रकृति है, वह वास्तविक है। हॉकिंग (Hocking) के अनुसार, "प्रकृतिवाद इस बात को अस्वीकार करता है कि प्रकृति से परे, प्रकृति के पीछे या प्रकृति के अलावा कोई चीज अपना अस्तित्व रखती है, चाहे वह सांसारिक परिधि में हो या आध्यात्मिक परिधि में।" (Naturalism denies existence of anything nature, behind nature such as the supernatural of other worldy)

2. **मन व शरीर में कोई अंतर नहीं है (No distinction between mind and body)** – प्रकृतिवादी विचारधारा मन व शरीर में कोई अंतर नहीं मानती वह यह मानती है कि मानव पदार्थ है, चाहे उसका मन हो या शरीर, दोनों ही इस पदार्थ का प्रतिफल है।

3. **वैज्ञानिक ज्ञान पर बल (Emphasis on Scientific knowledge)** – प्रकृतिवाद यह भी मानता है कि वैज्ञानिक ज्ञान ही उचित ज्ञान होता है तथा हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि हम इस वैज्ञानिक ज्ञान को जीवन से जोड़ सकें।

4. **वैज्ञानिक विधि द्वारा ज्ञान प्राप्ति पर बल (Emphasis on acquiring knowledge through scientific method)** – प्रकृतिवाद में आगमन (Inductive) विधि द्वारा ज्ञानार्जन की व्याख्या की गई है, साथ ही वह इस बात की भी चर्चा करते हैं कि ज्ञान-प्राप्ति का सर्वोच्च तरीका निरीक्षण विधि है।

5. **ज्ञान-प्राप्ति हेतु इन्द्रियों की आवश्यकता (Need of sense for Acquiring Knowledge)** – प्रकृतिवाद यह भी मानता है कि मानव इस जगत पर जो भी ज्ञान प्राप्त करता है, उसका माध्यम इन्द्रियां होती हैं। बिना इन्द्रिय सहयोग के मानव ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

6. **प्रकृति ही वास्तविक सत्ता; (Nature as a big Power)** – प्रकृतिवादी विचार यह भी मानता है कि इस संसार में सर्वोच्च शक्ति प्रकृति के हाथों में ही होती है और प्रकृति के नियम अपरिवर्तनशील हैं।

7. **मानव प्रकृति का ही अंग है (Man is a Segment of Nature)** – प्रकृतिवादी समाज के अस्तित्व के प्रति कोई आस्था नहीं रखते। इस कारण मनुष्य को समाज का अंग नहीं मानते। उनका विचार है कि मानव प्रकृति का ही अभिन्न अंग होता है।

8. **मूल्य प्रकृति में ही निहित है (Value Lie in Nature)** – मूल्य का निर्धारण आदर्शवादी के अनुसार समाज द्वारा होता है। जबकि प्रकृतिवादी यह मानते हैं कि मूल्य प्रकृति में ही विद्यमान होते हैं। और यदि मानव मूल्यों की प्राप्ति करना चाहता है तो उसे प्रकृति से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना होगा।

9. **आत्मा और परमात्मा का कोई महत्व नहीं (No Importance of Soul and God)** – प्रकृतिवाद किसी आध्यात्मिक शक्ति में या आत्मा में विश्वास नहीं रखते। वह मानते हैं कि मानव की रचना प्रकृति के द्वारा हुई है तथा मनुष्य के शरीर का नाश होते ही उसका चेतन तत्व भी समाप्त हो जाता है।

10. **भौतिक सुख की प्राप्ति (To achieve Material Prosperity)** – प्रकृतिवाद मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य भौतिक सम्पन्नता की प्राप्ति

मानता है। इस कारण मानव परिस्थितियों को अपने अनुकूल ढालता है। वह मानव को इस संसार का श्रेष्ठतम पदार्थ मानता है जो बुद्धि, तर्क तथा चिन्तर के कारण अन्य पशुओं से सर्वोपरि है।

11. **वैयक्तिक स्वतंत्रता पर बल (Emphasis on Scientific Knowledge)** – प्रकृतिवाद यह भी मानता है कि व्यक्ति दुःखी इस कारण है चूंकि वह प्रकृति से निरन्तर दूर होता जा रहा है। व्यक्ति को इतनी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए कि वह प्रकृति से निकटता स्थापित कर सके।

NOTES

शिक्षा में प्रकृतिवाद की देन (Contribution of naturalism in education)

1. बालक का प्रमुख स्थान प्रकृतिवाद की विशेषता है। वर्तमान समय में हमें इस बात पर आश्चर्य नहीं होता लेकिन 19वीं शताब्दी के अन्त तक लोग बालक को प्रौढ़ का छोटा स्वरूप मानते थे, उसका अलग व्यक्तित्व मानने को तैयार न थे। 'बाल केन्द्रित शिक्षा' प्रकृतिवाद की देन है।
2. बाल-मनोविज्ञान के अध्ययन की प्रेरणा भी इसी विचारधारा ने दी। बालक को पढ़ाने के लिए उसके मनोविज्ञान को जाने की आवश्यकता की पूर्ति के लिए मनोविज्ञान के क्षेत्र में खोज शुरू हुई। मनोविज्ञान ने बताया कि बालक विकास काल में विभिन्न स्थितियों से होकर गुजरता है। यही नहीं मनोविज्ञान की एक विशेष शाखा-मस्तिष्क विश्लेषण को तो विशेष बढ़ावा मिला। बालक को व्यर्थ ही दबाना नहीं चाहिए। लिंग-भेद की ओर इस मनोविज्ञान की विशेष देन है। इसके प्रति इसने एक स्वस्थ विचारधारा को जन्म दिया।
3. शिक्षा की विधि में प्रकृतिवाद ने शब्दों की तुलना में अनुभवों पर बल दिया। केवल शब्द शिक्षा के लिए आवश्यक गुण नहीं है, अनुभव भी आवश्यक हैं। इसलिए अब भूगोल तथा इतिहास के पाठ केवल कक्षा की चाहरदीवारी के अन्दर न पढ़ाकर परिभ्रमण एवं शिक्षा-यात्राओं के द्वसरा पढ़ाये जाते हैं।
4. शिक्षा में खेल की प्रमुखता इस विचारधारा की ही देन है। इससे पूर्व खेल व्यर्थ की चीज समझा जाता था। प्रकृतिवाद ने खेल को स्वाभाविक एवं आवश्यक सिद्ध किया।
5. 'प्रकृति की ओर लौटो' इस विचारधारा का नारा है। इसका कथन है 'सभ्यता की जटिलता से दूर प्रकृति की शान्तिमयी गोद की ओर चलो।' इस प्रवृत्ति ने प्रकृति-प्रेम को प्रोत्साहन दिया।

6. इस विचार धारा ने पुस्तकीय ज्ञान को हटाकर अनुभव तथा ज्ञान को महत्वपूर्ण स्था दिया।

7. अन्त में यह कह देना आवश्यक होगा कि इंग्लैण्ड में नील के स्कूल में तथा डोरा रसेल के स्कूल में इस प्रक्रियावादी विचारधारा पर आधारित, स्वतंत्रता एवं सरलता के वातावरण में, मूल प्रवृत्ति के आधार पर, स्वयंचालित शिक्षा प्रदान की जाती थी। इन स्कूलों में भेद न होने के कारण तथा स्वस्थ विचारधाराओं के कारण चरित्र संबंधी शिकायत कभी नहीं चलती थी। यहाँ शिक्षा भी खेल के ऊपर आधारित थी। अतः डोरा रसेल के विद्यालय में इस पर अधिक बल नहीं था। लेकिन यह कहना भ्रामक न होगा कि केवल प्रकृतिवाद ही बालक की रूचि पर बल देने वाली विचारधारा नहीं है। आदर्शवाद भी बालक के महत्व को कम न करेगा। यदि प्रकृति को आदर्शवाद का साथ मिल जाये तो पाशविक तथा आध्यात्मिक दोनों अवस्थाओं से मनुष्य का उचित संबंध स्थापित हो जाएगा।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों और पाठ्यक्रम के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. प्रकृतिवादी शिक्षा के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
3. प्रकृतिवादी का क्या अर्थ है? शिक्षा के सिद्धान्त को इसने किस प्रकार प्रभावित किया है?
4. प्रकृतिवादी दर्शन की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं ? स्पष्ट कीजिए।
5. प्रकृतिवादी शैक्षिक उद्देश्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
6. प्रकृतिवाद के विविध रूप कौन-कौन से हैं ? समझाइए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. प्रकृतिवाद की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
2. प्रकृतिवादी दर्शन का क्या अभिप्राय है?
3. प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
4. प्रकृतिवाद के पाठ्यक्रम को स्पष्ट कीजिए।
5. शिक्षा में प्रकृतिवाद की क्या भूमका है ?

5 प्रयोजनवाद (Pragmatism)

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- प्रयोजनवाद और शिक्षा
    - प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, आचार मीमांसा
    - प्रयोजनवाद का अर्थ
    - प्रयोजनवाद की परिभाषाएं
- प्रयोजनवाद की प्रमुख विशेषताएं
- प्रयोजनवाद के आधारभूत सिद्धान्त
    - प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम
    - प्रयोजनवादी शिक्षण पद्धति
- आदर्शवाद व प्रयोजनवाद में अंतर
- प्रकृतिवाद व प्रयोजनवाद में अंतर
- प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे –

- प्रयोजनवाद और शिक्षा
    - प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, आचार मीमांसा
    - प्रयोजनवाद का अर्थ
    - प्रयोजनवाद की परिभाषाएं
- प्रयोजनवाद की प्रमुख विशेषताएं
- प्रयोजनवाद के आधारभूत सिद्धान्त
    - प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम
    - प्रयोजनवादी शिक्षण पद्धति
- आदर्शवाद व प्रयोजनवाद में अंतर
- प्रकृतिवाद व प्रयोजनवाद में अंतर
- प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव

प्राक्कथन

प्रयोगवाद एक आधुनिक अमेरिकी जीवन दर्शन है। यह अमेरिकी राष्ट्र के जीवन तथा विचार का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुतः अमेरिका नव निवासियों का राष्ट्र है। विशेषकर पश्चिमी यूरोप के प्रगतिशील निवासी ही वहाँ जाकर 16वीं-17वीं शताब्दी में बस गए। वहाँ उन्हें सर्वथा नई स्थितियाँ, समस्याओं तथा पर्यावरण का सामना करने के लिए कोई पूर्व निर्मित समाधान नहीं था। इसलिए वे अपने जीवन का मार्ग खुद तैयार किए। जीवनगत समस्याओं का हल भी उन्हें नये तरीके से स्वयं खोजना पड़ा। यहाँ तक कि पूर्व मान्यताएँ स्वतः ही बिखरने लगीं तथा नवीन उपयोगी विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ। यही विचारधारा प्रयोजनवाद के नाम से जानी जाती है। उसके अनुसार वह दर्शन सही है जिसका सम्बन्ध मानव जीवन तथा मानव क्रियाकलापों से ही होता है। प्रयोजनवाद निश्चित तथा शाश्वत मूल्यों के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है। वह तो जीवन तथा समाज के लिए उपयोगी एवं व्यावहारिक सिद्धान्तों को स्वीकार करता है। मानव अपनी जीवनगत समस्याओं का हल खोजने में सफल होता है। यह आसमान को कम, धरती को ज्यादा महत्व देता है।

प्रयोजनवाद के प्रादुर्भाव स्थल अमेरिका है, जहाँ एक दर्शन के रूप में इसका विकास हुआ। चार्ल्स पियर्स तथा विलियम जेम्स इस विचारधारा के जन्मदाता माने जाते हैं। जेम्स ने मानव अनुभव के महत्व को स्पष्ट किया तथा मानव को सभी वस्तुओं और क्रियाओं की सत्यता की कसौटी बताया। जेम्स के बाद अमेरिका के ही एक विचारक जॉन डीवी ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाया। डीवी ने व्यक्ति की इच्छा को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्वीकार किया। उनके अनुसार मानव प्रगति का आधार सामाजिक बुद्धि ही होती है। डीवी के बाद अमेरिका में उनके शिष्य किलपैट्रिक ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाया तथा इंग्लैण्ड में शिलर महोदय ने। इन सबमें डीवी का योगदान सबसे अधिक है। प्रयोजनवादी किसी निश्चित सत्य में विश्वास नहीं करते। उनके विचार से दर्शन भी सदा निर्माण की दशा में रहता है। चूंकि मानव जीवन परिवर्तनशील है, अतः इस प्रकार की शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्य चर्चा आदि का निर्माण न करके उनके निर्माण के सिद्धान्त प्रस्तुत किए गये हैं। इस विचारधारा के प्रमुख दार्शनिक तथा जॉन डीवी माने जाते हैं।

प्रयोजनवाद (Pragmatism)

प्रयोजनवाद एक व्यावहारिक तथा अद्वितीय दर्शन है, जिसमें प्रकृतिवाद एवं आदर्शवाद की प्रमुख विशेषताओं का समावेश करने का प्रयास किया है। जॉन

ड्यूवी ने अर्थ क्रियावाद की उपयोगिता को शिक्षा के क्षेत्र में भी बहुत अधिक माना है। कुछ शिक्षा दार्शनिक तो यहाँ तक कहते हैं कि वर्तमान शिक्षा का युग प्रयोजनवाद का युग है। प्रसिद्ध दार्शनिक ड्यूवी ने शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है, "शिक्षा अनुभव का पुनर्निर्माण एवं पुनर्रचना करने वाली प्रक्रिया है जिससे कि विवृद्ध वैयक्तिक कुशलता के साधन द्वारा उसे अधिक सामाजिक मूल्य प्राप्त होता है।" वह यह मानता है कि मनुष्य की शिक्षा की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। चूंकि अनुभव द्वारा वह कुछ न कुछ ग्रहण करता रहता है। प्रतिदिन मानवीय परिस्थितियां बदलती हैं और मनुष्य उनके अनुकूल अपनी क्रियाओं को भी परिवर्तित कर लेता है। नये वातावरण में व्यक्ति जब अपनी समस्याओं का हल ढूँढ़ता है तो उसके अनुभव विकसित होने लगते हैं। यह समृद्ध अनुभव ही शिक्षा है। जॉन ड्यूवी शिक्षा को एक व्यापक प्रक्रिया मानते हैं जो विद्यालय के साथ ही समाज में भी चलती रहती है। इसी कारण अर्थ क्रियावादी यह मानता है कि शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली एक प्रक्रिया है।

प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, आचार मीमांसा (Metaphysics, Epistemology and Ethics of Pragmatism)

प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा (Metaphysics of Pragmatism)

प्रयोजनवादी इस ब्रह्माण्ड की रचना के संबंध में विचार करने के स्थान पर मानव जीवन के वास्तविक पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। वे इस ब्रह्माण्ड के प्रतिफल में केवल इतना ही कहते हैं कि यह अनेक वस्तुओं तथा अनेक क्रियाओं का प्रतिफल है, वस्तु और क्रियाओं की व्याख्या के झमेले में ये नहीं पड़ते। इस इन्द्रियग्राह संसार के अतिरिक्त ये किसी अन्य संसार के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। ये आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व को भी नहीं मानते इनके अनुसार मन का ही दूसरा स्वरूप आत्मा है और मन एक पदार्थ जन्म क्रियाशील तत्व है।

प्रयोजनवाद की ज्ञान मीमांसा (Epistemology of Pragmatism)

प्रयोजनवादियों के अनुसार अनुभवों की पुनर्रचना ही ज्ञान है। ये ज्ञान को साध्य नहीं बल्कि मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने का साधन मानते हैं। इसकी प्राप्ति सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से स्वयं होती है। कर्मेन्द्रियों

तथा ज्ञानेन्द्रियों को ये ज्ञान का आधार मानते हैं और मस्तिष्क तथा बुद्धि को ज्ञान का नियंत्रक मानते हैं।

प्रयोजनवाद की आचार मीमांसा (Ethics of Pragmatism)

प्रयोजनवादियों के अनुसार अनुभवों की पुनर्रचना ही ज्ञान है। ये ज्ञान को साध्य नहीं बल्कि मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने का साधन मानते हैं। इसकी प्राप्ति सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से स्वयं होती है। कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों को ये ज्ञान का आधार मानते हैं और मस्तिष्क तथा बुद्धि को ज्ञान का नियंत्रक मानते हैं।

प्रयोजनवाद की आचार मीमांसा (Ethics of Pragmatism)

प्रयोजनवादी निश्चित मूल्यों तथा आदर्शों में विश्वास नहीं करते इसलिए ये मनुष्य के लिए कोई निश्चित आचार संहिता नहीं बनाते। इनका स्पष्टीकरण है कि मनुष्य जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है इसलिए उसके आचरण को निश्चित नहीं किया जा सकता। उसमें तो वह शक्ति होनी चाहिए कि वह बदले हुए पर्यावरण के साथ समायोजन कर सके। वे बच्चों में केवल सामाजिक कुशलता का विकास करना चाहते हैं। सामाजिक कुशलता से व्यावहारिकताओं का तात्पर्य समाज में समायोजन करने, अपनी जीविका कमाने, मानव उपयोग की वस्तु तथा क्रियाओं की खोज करने और नई-नई समस्याओं का समाधान करने की शक्ति से होता है।

प्रयोजनवाद का अर्थ (Meaning of Pragmatism)

प्रयोजनवाद आंग्ल भाषा के 'प्रैग्मैटिज्म' (Pragmatism) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है, जिसकी उत्पत्ति ग्रीक भाषा के 'प्रैग्मा' (Prama) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है 'क्रिया' अर्थात् 'व्यावहारिक' या 'व्यवहार्य'। दूसरे शब्दों में प्रयोजनवाद वह विचारधारा है जो उन्हीं बातों को सत्य मानती है, जो व्यावहारिक जीवन में उपयोगी होती हैं प्रयोजनवादी मूर्त वस्तुओं, शाश्वत् सिद्धान्तों और पूर्णता तथा उत्पत्ति में विश्वास नहीं करते। इने अनुसाद सदैव देशकाल तथा परिस्थिति के अनुसार सत्य बदलता रहता है, क्योंकि एक वस्तु जो एक देश, काल तथा परिस्थिति में उपयोगी होती है वह दूसरे में उपयोगी नहीं हो सकती। 'प्रयोजनवाद' का प्रयोगवाद भी कहा जाता है, क्योंकि यह 'प्रयोग' (Experiment) को ही सत्य की एकमात्र कसौटी मानता है। इसे हम

'फलवाद' भी कह सकते हैं, क्योंकि इसमें किसी कार्य का महत्व उसके परिणाम के आधार पर आंका जाता है।

इस प्रकार, "प्रयोजनवाद जिसे हम प्रयोगवाद भी कह सकते हैं, वह विचारधारा है जो उन्हीं क्रियाओं, वस्तुओं, सिद्धान्तों तथा नियमों को सत्य मानती है, जो किसी देश, काल तथा परिस्थिति में उपयोगी हो।"

5.3.3 प्रयोजनवाद की परिभाषाएं (Definition of Pragmatism)

1. **रस्क के मतानुसार (According to Rusk)** – "प्रयोजनवाद एक प्रकार से नवीन आदर्शवाद के विकास की अवस्था है, एक ऐसा आदर्शवाद जो वास्तविकता के प्रति पूर्ण न्याय करेगा, व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का समन्वय करेगा और इसके परिणामस्वरूप उस संस्कृति का निर्माण होगा जिसमें निपुणता का प्रमुख स्थान होगा, न कि उसकी उपेक्षा होगी।"

2. **जेम्स के शब्दों में (According to Jams)** – "प्रयोजनवाद मस्तिष्क का स्वभाव तथा मनोवृत्ति है। यह विचारों की प्रकृति एवं सत्य का भी सिद्धान्त है और अपने अंतिम रूप में यह वास्तविकता का सिद्धान्त है।" (Pragmatism is a tempor of mind an attitude. It is also a thing of nature of ideas and truth and finally it is a thing about reality)

3. **रॉस के शब्दों में (According to Ross)** – "प्रयोजनवाद एक मानवीय दर्शन है जो यह स्वीकार करता है कि मनुष्य क्रिया की अवधि में अपने मूल्यों का निर्माण करता है और यह स्वीकार करता है कि वास्तविकता सदैव निर्माण की अवस्था में रहती है।" (Pragmatism is essently a humanistic philosophy, maintain that man creates his own values in course of activity, that reality is still in making and awaits its past of completion from that future).

4. **जैम्स प्रैट के मतानुसार (According to Jams Prett)** – "प्रयोजनवाद हमें अर्थ का सिद्धान्त, सत्य का सिद्धान्त, ज्ञान का सिद्धान्त और वास्तविकता का सिद्धान्त देता है।" (Pragmatism offers us a theory of meaning, a theory of truth, a theory of knowledge and a theory of Knowledge.)

5. **रोजन के मतानुसार (According to Rosen)** – "प्रयोजनवाद के अनुसार सत्य को उसके व्यावहारिक परिणाम द्वारा जाना जा सकता है। इस कारण सत्य निरपेक्ष न होकर व्यक्तिगत या सामाजिक समस्या है।" (Pragmatism states that truth can be known only through is practical consequence and is thus an Individual or social matter rather than an absolute)

5.4 प्रयोजनवाद की प्रमुख विशेषताएँ (Chief Assertion of Pragmatism)

i. **परम्पराओं व मान्यताओं का विरोधी (Pragmatism, a revolt against traditionalism)**– अर्थ क्रियावाद निर्धारित आस्थाओं का विरोधी है। प्रकृतिवाद द्वारा प्रकृति के अस्थित्व में विश्वास रखना अथवा आदर्शवाद द्वारा एक चिरस्थायी सत्य को यह स्वीकार नहीं करता। यह विचारों की तुलना में क्रिया को अधिक महत्व देता है व यह मानता है कि वास्तविकता एक निर्माणशील प्रक्रिया है तथा उसका संबंध में हम किसी भी सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं। वह यह मानते हैं कि सत्य तो व्यावहारिक परिस्थितियों पर निर्भर होता है और ज्ञान भी क्रियाओं का ही फल है। क्रियाओं को सुचारू रूप से चलाने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है।

ii. **शाश्वत मूल्यों का बहिष्कार (Rejects Ultimate Value)** – प्रयोजनवाद किसी निश्चित अथवा शाश्वत सत्य सिद्धान्त की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह यह मानते हैं कि मूल्य तो मानव की व्यक्तिगत एवं सामाजिक घटनाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं जो सदैव परिवर्तनशील होते हैं। वह यह मानते हैं कि संसार गतिशील है। अतः मूल्य भी गतिशील होते हैं। वास्तव में मूल्यों का निर्माण तो व्यक्ति स्वयं अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप करता है। आज जो 'सत्य' है, वह कल भी 'सत्य' होगा। सोचना गलत है चूंकि सत्य तो देश, काल व परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।

iii. **विचार क्रिया के अधीन होते हैं (Though is Subordinate to Action)** – प्रयोजनवाद क्रिया को महत्वपूर्ण स्थान देता है व यह मानता है कि कोई भी विचार तभी सार्थक हो सकता है जब हम उसे क्रिया रूप में हस्तांतरित करें। वास्तव में देखा जाए तो क्रिया ही विचारों को अर्थ

प्रदान करती है तथा उनका महत्व निर्धारित करती है। इसमें बात को भी स्वीकार किया जाता है कि विचार आंतरिक वस्तु है व क्रिया बाह्य।

iv. **किसी सार्वभौमिक सत्ता में आस्था न होना (No faith in Supreme Power)** – प्रयोजनवाद ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह यह मानता है कि ईश्वर मिथ्या। आत्मा के अस्तित्व को वह मानता अवश्य है लेकिन उसे एक क्रियाशील तत्व के रूप में स्वीकार करता है। उनके अनुसार सर्वोच्च सत्ता समाज की होती है।

v. **उपयोगिता के सिद्धान्त पर बल (Emphasis on Principal of utility)** – प्रयोजनवाद यह मानता है कि किसी भी सिद्धान्त तथा विश्वास की कसौटी उपयोगिता है। यदि कोई सिद्धान्त हमारे उद्देश्यों का पूरक है एवं हमारे लिए लाभकारी है तो ठीक है अन्यथा नहीं। कोई भी सिद्धान्त स्वयं में उपयोगी या अनुपयोगी नहीं होता। अगर उसका फल उपयोगी है तो ठीक है तथा अगर फल अनुपयोगी है तो सिद्धान्त भी ठीक नहीं है।

vi. **व्यक्ति के सामाजिक जीवन पर बल (Emphasis on Individual's School life)** – प्रयोजनवाद व्यक्ति को एक सामाजिक इकाई के रूप में स्वीकार करता है व बालक के व्यक्तित्व के सामाजिक पक्ष के विकास की अधिकांशतया व्याख्या करता है। व्यक्ति समाज में रहकर अपने जीवन को सफल बना सके, इसे वह महत्व प्रदान करता है व इसके लिए यह भी अनिवार्य मानता है कि व्यक्ति में सामाजिक कुशलता का विकास किया जाए।

vii. **मनुष्य एक मनोशारीरिक प्राणी (Man is a Psychological Individual)** – प्रयोजनवाद मनुष्य को एक मनोशारीरिक प्राणी मानता है। इनके अनुसार मनुष्य को विचार तथा क्रिया करने की शक्तियां प्राप्त हैं, जिनके द्वारा मनुष्य समस्या को समझने व उनका समाधान ढूंढ़ने का प्रयास करता है और अन्ततोगत्वा वह स्वयं को अपने पर्यावरण के अनुकूल ढालने का प्रयास करता है।

viii. **बहुतत्ववादी विचारधारा (Pluralist Ideology)** – प्रयोजनवाद यह मानता है कि इस संसार की रचना अनेक तत्वों से मिलकर हुई है तथा इन तत्वों के मध्य क्रिया चलती रहती है, जिसके फलस्वरूप रचनात्मक

कार्य होता है। सबसे बड़ी बात यह है कि यह क्रिया सदैव चलती रहती है एवं संसार की रंचना करती रहती है। इसी कारण प्रयोजनवाद के अनुसार यह संसार सदैव निर्माण की अवस्था में रहता है। मनुष्य इस संसार का सृजनशील प्राणी है। अतः मनुष्य भी सदैव क्रियाशील बना रहता है।

ix. **दर्शन, शिक्षा का सिद्धान्त (Philosophy as the Theory of Education)** – प्रयोजनवाद यह मानता है कि शैक्षिक अभ्यासों के परिणामस्वरूप ही दर्शन का जन्म होता है। जॉन ड्यूवी ने इस संबंध में कहा कि सामान्य रूप से दर्शन शिक्षा का सिद्धान्त है। (Philosophy is the theory of education in its most general phase) वास्तव में दर्शन द्वारा निर्धारित सिद्धान्त ही सत्य व व्यवहार्य होते हैं।

x. **प्रजातंत्र में आस्था (Faith in Democracy)** – अर्थ क्रियावाद प्रजातंत्र शासन व्यवस्था पर जोर देकर उसके प्रति अपनी आस्था प्रकट करता है। वह प्रजातंत्र को जीवन का एक तरीका व अनुभवों को आदान-प्रदान करने की एक व्यवस्था मानता है। वह जीवन, शिक्षा एवं प्रजातंत्र को एक-दूसरे से संबंधित प्रक्रिया मानते हैं।

5.5 प्रयोजनवाद के आधारभूत सिद्धान्त (Fundamental Principles of Pragmatism)

i. **सत्य का सदैव परिवर्तनशील होना (Truth is always Changeable)**– प्रयोजनवाद के अलावा जितनी भी दार्शनिक विचारधाराएं हुई हैं, वे सत्य को अपरिवर्तनशील मानती हैं, लेकिन प्रयोजनवाद के अनुसार सत्य सदैव देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। जो वस्तु एक स्थान पर सत्य है आवश्यक नहीं है कि वह दूसरे स्थान पर भी सत्य होगी। इसी प्रकार जो वस्तु आज सत्य है आवश्यक नहीं कि कल भी सत्य होगी। इस प्रकार प्रयोजनवाद के अनुसार 'सत्य सदा परिवर्तनशील होता है।' प्रयोजनवाद के जन्मदाता विलियम जेम्स के अनुसार, "सत्यता किसी विचार का स्थायी गुण धर्म नहीं है। वह तो अकस्मात् विचार में निर्वासित होता है। "The Truth an idea is not a stagnate property inherent in it. Truth happens in Idea)

ii. **समस्याएं सत्य की प्रेरक हैं (Problem are the motives of Truth)** – प्रयोजनवादियों का मत है कि मानव जीवन में एक न एक नवीन समस्याएं आती रही हैं। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए व्यक्ति अपने जीवन में बहुत से प्रयोग करता है। प्रयोग की सफलता सत्य का स्थान ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार हमारे जीवन की समस्याऐं ही सत्य की खोज के लिए हमें प्रोत्साहन देती हैं।

iii. **सत्य मानव निर्मित होता है (Truth is Man-Made)** – प्रयोजनवादियों के अनुसार सत्य कोई ऐसी चीज नहीं जो पहले से विद्यमान हो। परिस्थितियों में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप मनुष्य के समक्ष अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। जिनकी पूर्ति के लिए मनुष्य चिन्तन करने लगता है, लेकिन चिन्तन में आए सभी विचार तो सत्य नहीं होते, सत्य तो केवल वही विचार होते हैं, जिनका प्रयोग करने पर सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त हो।

iv. **बहुत्ववाद का समर्थन (Vindication of Pluarism)** – अंतिम सत्ता एक है, दो या अनेक इस संबंध में मुख्यत: तीन वाद महत्वपूर्ण हैं। 1. एकत्ववाद (Mononism), 2. द्वैतवाद (Dualism) तथा 3. बहुत्ववाद (Plualism)। प्रयोजनवाद बहुत्ववाद का समर्थक है। रस्क महोदय के मतानुसार, "प्रकृतिवाद प्रत्येक वस्तु को जीवन या (भौतिक तत्व), आदर्शवाद मन या आत्मा मानता है। प्रयोजनवाद इस बात की आवश्यकता नहीं समझता कि संसार का किसी एक तत्व या सिद्धान्त के आधार पर स्पष्टीकरण करे। प्रयोजनवाद अनेक सिद्धान्तों को स्वीकार करने में संतोष अनुभव करता है। इस तरह वह बहुत्ववादी है।"

"Naturalism reduces everything to life, idealism to mind or spirit. Pragmatism sees no necessity for seeking one fundamental principal of explanation. It is quite content to admit several principles and accordingly is pluralistic" – Rusk.

v. **उपयोगिता के सिद्धान्त का समर्थन (To Support the Principal of Utility)** – प्रयोजनवाद के अनुसार केवल वही वस्तु अथवा विचार उचित है जो हमारे लिए उपयोगी है तथा इसके विपरीत जो वस्तु या विचार हमारे लिए उपयोगी नहीं है वह हमारे लिए व्यर्थ है। इस प्रकार प्रयोजनवादी उपयोगिता के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं।

vi. मानवीय शक्ति पर बल (Emphasis on human power) – प्रयोजनवाद मानव की शक्ति पर विशेष जोर देता है, क्योंकि वह उसके द्वारा अपनी आवश्यकताओं के अनुसार पर्यावरण का निर्माण कर लेता है। वह सफलतापूर्वक समस्याओं का समाधान करके अपने लिए सुन्दर वातावरण का निर्माण कर लेता है।

vii. सामाजिक प्रथाओं एवं परम्पराओं की उपेक्षा (Negligence of Social Customs and Traditional) – प्रयोजनवादी समाज में विभिन्न प्रकार की प्रचलित रूढ़ियों, बंधनों एवं परम्पराओं की सदैव उपेक्षा करते हैं। ये लोग 'विचार' की अपेक्षा 'क्रिया' को विशेष महत्व देते हैं, क्योंकि उनका मत है कि विचार हमेशा 'क्रिया' से ही उत्पन्न होते हैं।

viii.आध्यात्मिक तत्वों की उपेक्षा (Negligence of Spiritual Elements) – प्रयोजनवाद के समर्थक व्यावहारिक जीवन से संबंध रखना उचित समझते हैं। ईश्वर, आत्मा, धर्म इत्यादि का व्यावहारिक जीवन से संबंध न होने से इनका कोई महत्व नहीं है। हाँ, यदि व्यावहारिक जीवन में उनकी आवश्यकता अनुभव हो तो वे उन्हें स्वीकार करने में भी नहीं चूकते। कुछ भी हो प्रयोजनवादी आध्यात्मिक तत्वों की अवहेलना करते हैं।

5.5.1 प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम (Pragmatism Curriculum)

प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम निम्नलिखित बातों पर आधारित है :-

i. उपयोगिता सिद्धान्त (Principle of Utility) – प्रयोजनवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम में ऐसे नियमों को स्थान दिया जाना चाहिए जो बालकों के भावी जीवन में काम आये तथा उन्हें ज्ञान एवं सफल जीवन की क्षमता प्रदान करें। इस दृष्टि से उनके अनुसार पाठ्यक्रम में भाषा, स्वास्थ्य विज्ञान, शारीरिक प्रशिक्षण, इतिहास, भूगोल, गणित, गृह-विज्ञान आदि विषयों को स्थान देना चाहिए जो कि मानव उन्नति में सहायक हों।

ii. सानुबंधित का (Principle of Integration) – प्रयोजनवादियों का मत है कि जो विषय पाठ्यक्रम में निर्धारित किए जाएँ उन सबमें आपस में संबंध होना चाहिए, क्योंकि ज्ञान का अलग-अलग विभाजन नहीं होता। उनका विचार है कि बालकों को सभी विषय एक-दूसरे से संबंधित

करके पढ़ाने चाहिए, जिससे न केवल बालकों का ज्ञान प्राप्त करना सार्थक हो बल्कि शिक्षकों को पढ़ाने में भी सुविधा हो।

iii **बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम (Child-Centered Curriculum)** – प्रयोजनवादियों का विचार है कि पाठ्यक्रम का संगठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उसमें बालक की प्राकृतिक अभिरूचियों को पूर्ण स्थान दिया गया हो। बालक की ये अभिरूचियां मुख्य रूप से चार होती हैं- 1. बातचीत करना, 2. खोज करना, 3. कलात्मक अभिव्यक्ति एवं 4. रचनात्मक कार्य करना। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में लिखने, पढ़ने, गिनने, प्रकृति विज्ञान, हस्तकार्य एवं ड्राइंग का अध्ययन करने के साधनों को स्थान दिया जाना चाहिए।

iv. **बालक के व्यवसाय, क्रियाओं एवं अनुभव पर आधारित (On the base of Child's Occupation Activities and Experience)** – प्रयोजनवादियों का विचार है कि पाठ्यक्रम का संगठन बालक के व्यवसायों तथा अनुभव पर आधारित होना चाहिए। उनका मत है कि किताबों को केवल रट लेना शिक्षा नहीं है बल्कि यह तो एक सुविचार प्रक्रिया है, परिणामस्वरूप पाठ्यक्रम में शिक्षा विषयों के अलावा सामाजिक, स्वतंत्र तथा उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं को स्थान दिया जाना चाहिए, जिससे बालकों में नैतिक गुणों का विकास होगा, स्वतंत्रता की भावना का संचार होगा, उन्हें नागरिकता की प्रतिक्षा मिलेगी और उनमें आत्म-अनुशासन की भावना उत्पन्न होगी।

5.5.2 प्रयोजनवादी शिक्षण पद्धति (Pragmatic Method of Teaching)

प्रयोजनवादी शिक्षाशास्त्रियों ने प्राचीन तथा रूढ़िवादी शिक्षा पद्धतियों की उपेक्षा करते हुए वर्तमान शिक्षण विधियों का प्रतिपादन किया। उनका विचार है कि कोई पद्धति इसलिए स्वीकार नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह पहले से शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग होती आ रही है बल्कि उनका पहले मत है कि परिस्थितियों के अनुसार नवीन पद्धतियों का प्रतिपादन किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण से उन्होनें शिक्षण पद्धति के कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं, जिनके आध ार पर उसका निर्माण होना चाहिए। ये सिद्धान्त इस प्रकार हैं :-

NOTES

i. **बाल केन्द्रित पद्धति (Child-Centered Method)** – प्रयोजनवादियों का मत है कि प्रत्येक शिक्षण पद्धति को 'बाल केन्द्रित' (Child-Center) होना चाहिए, अर्थात् शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए जो बालक की अभिरूचियों, आवश्यकताओं, उद्देश्यों आदि के अनुकूल हो, जिससे कि बालक प्रसन्नतापूर्वक अपने जीवन में काम आने वाली शिक्षा प्राप्त कर सके।

ii. **करके सीखने अथवा स्वानुभव से सीखने की पद्धति (Method of Learning by doing or Experience)** – प्रयोजनवादी विचार अथवा शब्द की अपेक्षा क्रिया पर अधिक बल देते हैं। उनका मत है कि बालकों को पुस्तकों की तुलना में क्रियाओं तथा अनुभवों से अधिक सीखना चाहिए जिससे कि उनके ज्ञान का व्यावहारिक मूल्य अधिक हो, परिणामस्वरूप वह 'करके सीखने अथवा स्वानुभव द्वारा सीखने' (Learning by doing or Experience) पर विशेष बल देते हैं।

iii. **सानुबन्धता की पद्धति (Method of Integration)** – प्रयोजनवादियों ने शिक्षा-पद्धतियों के निर्माण का तीसरों सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, जिसे सानुबन्धता का सिद्धान्त (Principal of Integration or Correlation) कहा जाता है। प्रयोजनवादी 'विभिन्नता में एकता के सिद्धान्त' (Principal of Unity in Diversity) का समर्थन करते हुए कहते हैं कि सभी विषयों को परस्पर संबंधित कर पढ़ाना चाहिए, जिससे बालक जो ज्ञान एवं कौशल अजिर्त करते हैं, उनमें एकता स्थापित हो जाती है।

5.6 आदर्शवाद व प्रयोजनवाद में अंतर (Difference Between Idealism and Pragmatism)

दार्शनिक अंतर (Philosophical Difference)

आदर्शवाद (Idealism)	प्रयोजनवाद (Pragmatism)
1. आदर्शवाद एक 'अंतिम सत्ता' (Ultimate Reality) विश्वास करता है।	1. प्रयोजनवाद अनेक सत्ताओं एवं तत्वों के आधार पर संसार की व्याख्या करता है।
2. अंतिम सत्ता आध्यात्मिक स्वरूप की होती है।	2. ये अनेक भिन्न-भिन्न प्रकृति के हो सकते हैं।

NOTES

3. आदर्शवादी शाश्वत मूल्यों तथा सत्यों पर विश्वास करते हैं।	3. प्रयोजनवादियों के अनुसार सत्य सदैव परिवर्तनशील है।
4. आदर्शवादी 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' को शाश्वत मूल्य बताते हैं जो संसार की उत्पत्ति के पहले से भी विद्यमान है।	4. प्रयोजनवादी किसी पूर्व-निश्चित मूल्य को स्वीकार न करके मनुष्य की क्रिया द्वारा मूल्यों की सृष्टि बतलाते हैं।
5. आदर्शवाद के अनुसार अंतिम सत्ता ईश्वर ही है जो संपूर्ण जगत् का नियंत्रण तथा पालन करने वाला होता है।	5. प्रयोजनवादी व्यवहार में ईश्वर की आवश्यकता अनुभव करते हैं तभा ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं।
6. आदर्शवादी विचार को अधिक महत्व प्रदान करते हैं।	6. प्रयोजनवादी विचार की तुलना क्रिया को अधिक महत्व देते हैं।
7. आदर्शवादी बुद्धि को अधिक महत्व प्रदान करते हैं।	7. प्रयोजनवादी बुद्धि के स्थान पर भावना एवं परिस्थितियों को अधिक महत्व प्रदान करते हैं।
8. आदर्शवादी ऐहिक एवं लौकिक जीवन को महत्व न देकर पारलौकिक जीवन को विशेष महत्व प्रदान करते हैं।	8. प्रयोजनवादी लौकिक तथा भौतिक जीवन को अधिक महत्व प्रदान करते हैं।

शैक्षणिक अंतर (Educational Difference)

9. आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य शाश्वत मूल्यों को प्रापत करना होता है।	9. प्रयोजनवाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक तथा व्यावहारिक जीवन उचित रूप से व्यतीत करने के लिए तत्संबंधी गुणों को विकसित करना है।
10. आदर्शवादी पाठ्यक्रम में शाश्वत मूल्यों से संबंधित विषयों को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं।	10. प्रयोजनवादी पाठ्यक्रमें व्यावहारिक जीवन से संबंधित विषयों को अधिक महत्व दिया जाता है।
11. आदर्शवादी शिक्षक को बहुत ही महत्वपूर्ण साधन मानते हैं।	11. प्रयोजनवादी शैक्षिक परिस्थितियों के सृजन के लिए शिक्षक महत्वपूर्ण मानते हैं।
12. आदर्शवाद प्रभावात्मक अनुशासन पर पर अत्यधिक बल देता है।	12. प्रयोजनवाद सीमित मुक्त्यात्मक अनुशासन बल देता है।

5.7 प्रकृतिवाद व प्रयोजनवाद में अंतर
(Difference Between Naturalism and Pragmatism)

NOTES

दार्शनिक अंतर (Philosophical Difference)

1. प्रकृतिवादी 'पुद्गल' (Matter) से संसार की सभी वस्तुओं तथा विचारों की उत्पत्ति मानते हैं। अत: वे एकत्ववादी होते हैं।	1. प्रयोजनवादी संसार की व्याख्या अनेक तत्वों के आधार पर करते हैं। इस प्रकार के बहुत्ववादी विचारधारा को मानते हैं।
2. प्रकृतिवादी पदार्थ विज्ञान संबंधी प्राकृतिक नियमों की 'सार्वभौमिकता' (Generalization) तथा 'वस्तुनिष्ठता' (Objectivity) पर बल देते हैं।	2. प्रयोजनवादी किसी भी सिद्धान्त को सार्वभौमिक तथा वस्तुगत नहीं मानते बल्कि प्रयोजनवादी जेम्स के अनुसार सभी सिद्धान्तों का विकास देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार होता है।
3. प्रकृतिवाद के अनुसार समानता सत्य की कसौटी है।	3. प्रयोजनवाद के अनुसार 'पुन: निरीक्षण' (Observation) सत्य की कसौटी है।
4. प्रकृतिवादी आदर्शों एवं मान्यताओं को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं।	4. प्रयोजनवादी किसी न किसी रूप में आदर्शों एवं मान्यताओं को स्वीकार करते हैं। ड्यूवी के अनुसार यदि पूर्व-निश्चित मान्यताएँ उपयोग तथा अनुभव द्वारा सिद्ध होती हैं तो उन्हें भी स्वीकार कर लेना चाहिए।
5. प्रकृतिवादियों का दृष्टिकोण यांत्रिक तथा अवैयक्तिक है। इसी दृष्टि से ही तो 'व्यवहारवाद' का प्रादुर्भाव हुआ।	5. प्रयोजनवादी मानव की प्रवृत्तियों, अनुभूतियों और भावनाओं पर बल देते हैं। इस दृष्टि से इसे मानवीय विचारधारा कहा जा सकता है।
6. प्रकृतिवादी ईश्वर के अस्तित्व को किसी भी शर्त पर स्वीकार करने को तैयार नहीं है।	6. यदि ईश्वर की मान्यता द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके तो प्रयोजनवादी ईश्वर के अस्तित्व में बहुत विश्वास करते हैं।

शैक्षणिक अंतर (Educational Difference)

7. प्रकृतिवादी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य वैयक्तिकता का विकास मानते हैं।	7. प्रयोजनवादी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक कल्याण को मानते हैं।
8. प्रकृतिवादी बालक में किसी भी प्रकार की आदत निर्मित करने के विरोध में हैं।	8. प्रयोजनवादी कार्य निपुणता या 'स्वभाव निर्माण' को ही शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दु मानते हैं।
9. प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम में उन विषयों को सम्मिलित करने पर बल देते हैं जिनसे आत्म-प्रकाशन तथा आत्म-रक्षा संभव हो सके।	9. प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम में उन विषयों को सम्मिलित करने पर बल देते हैं जिनसे सारे समाज की प्रगति हो।

NOTES

10. प्रकृतिवादी बालक की शिक्षा में शिक्षक की पूर्ण उपेक्षा करते हैं।	10. प्रयोजनवादी बालक में उत्तम गुणों के विकास के लिए शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं।
11. प्रकृतिवादी प्राकृतिक परिणामों के माध्यम से अनुशासन के सिद्धान्त अर्थात् मुक्त्यात्मक अनुशासन का समर्थन करते हैं।	11. प्रयोजनवादी प्राकृतिक दुष्परिणामों से बालक की रक्षा करने की दृष्टि से सीमित मुक्त्यात्मक अनुशासन को महत्वपूर्ण मानते हैं।
12. प्रकृतिवादी शिक्षा नकारात्मक विचारधारा पर आधारित होती है।	12. प्रयोजनवादी शिक्षा सकारात्मक विचारधारा पर आधारित होती है।

उपर्युक्त तीनों विचारधारा में सामंजस्य आवश्यक है –

उपर्युक्त शब्दों का यह निष्कर्ष न निकालना चाहिए कि चूंकि इन तीनों वादों में भिन्नता है। अत: शिक्षा के क्षेत्र में ये तीनों भिन्न-भिन्न कार्य करेंगे। रॉस के शब्दों में – "यदि आदर्शवादी अपने आपको प्रगतिशील रखें तो प्रयोजनवाद एवं आदर्शवाद के बीच का अंतर कम हो जाता है।" जहाँ तक मानव द्वारा निर्मित मूल्यों तथा आदर्शों का संबंध है वहां प्रयोगवाद प्रगतिशील आदर्शवाद से और जहाँ तक बालक एवं उसकी प्रगति अध्ययन का संबंध है वहाँ प्रयोगवाद प्रकृतिवाद से मिलता जुलता है। इसीलिए तो शायद प्रयोगवाद के प्रवर्तक जेम्स ने कहा है कि, "प्रयोगवाद को आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद की मध्यावस्ता कहा जा सकता है।"

"Pragmatism is described as a Via-media between Idealism Naturalism" James

5.8 प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव (Impact of Pragmatism on Modern Education)

दर्शन के रूप में नहीं बल्कि व्यवहार के रूप में प्रयोजनवाद ने वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर बहुत प्रभाव डाला है। शिक्षा एक व्यावहारिक कला है तथा व्यावहारिक दृष्टि से प्रयोजनवाद शिक्षा से पुन: निर्माण में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। प्रयोजनवादी शिक्षा की निम्नलिखित धारणाऐं आज भी भारतीय शिक्षा में स्पष्ट हैं :-

i. शिक्षा व्यापक रूप से विकास वृद्धि या व्यवहार परिवर्तन का रूप लेता है।

ii. शिक्षा के निकट के उद्देश्य बहुत महत्व रखते हों और उनकी प्राप्ति के लिए शिक्षण विधियां क्रियाशील हों।

iii. शिक्षा जीवन केन्द्रित हो और एक प्रगतिशील समाज में वह भी प्रगति का कार्य करें।

iv. शिक्षा के सामाजिक प्रक्रिया और समाज का पोषण है।

v. समाज शिक्षा संस्थाओं को अपने आदर्शों की पूर्ति के लिए स्थापित करता है। अतः शिक्षण संस्थाएं समाज का बन्धु रूप है।

vi. जनतंत्रीय समाज के लिए जनतंत्रीय शिक्षा की आवश्यकता है।

vii. ज्ञान की उत्पत्ति किया से होती है, क्रिया प्रधान है, सफलतापूर्वक क्रिया का संपादन करने के लिए वह ज्ञान आता है तथा बालक क्रिया द्वारा सीखता है।

viii. शिक्षा बालक की नैसर्गिक प्रवृत्तियों, रूचियों, शक्तियों आदि को केन्द्र बनाकर प्रदान की जाये लेकिन उसको साथ ही साथ सामाजिक रूप भी दिया जाये। बालक अपने हित के साथ-साथ समाज का हित करने की क्षमता विकसित कर सकें।

ix. परम्परागत, रूढ़िगत तथा कठोर विधियों व विचारों को शिक्षा में सम्मिलित करके एक लचकदार समाज में एक लचकदार शिक्षा की आवश्यकता है।

x. शिक्षा जीवन की तैयारी ही नहीं जीवन का लक्ष्य है। भविष्य अनिश्चित है। अतः वर्तमान अधिक मूल्य रखता है। शिक्षा द्वारा बालकों को वह गुण, ज्ञान, मनोवृत्तियां व कौशल प्रदान जाएँ जो उन्हें एक बदलते हुए समाज में परिस्थितियों के अनुकूल अपना समाज में स्थान प्राप्त करने योग्य बनाएं।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. प्रयोजनवाद से आप क्या समझते हैं? प्रयोजनवाद एवं शिक्षा के संबंधों की विवेचना कीजिए।
2. प्रयोजनवाद में तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं आचार मीमांसा के बारे में विस्तृत रूप से समझाइए।
3. प्रयोजनवाद की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
4. प्रयोजनवाद के आधारभूत सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।
5. प्रयोजनवादी शिक्षण पद्धति को समझाइए।
6. प्रयोजनवाद की दो परिभाषाएँ देते हुए प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है?

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. प्रयोजनावाद से आपका क्या तात्पर्य है ?
2. प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम का उल्लेख कीजिए।
3. आदर्शवाद तथा प्रयोजनवाद में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. प्रकृतिवाद तथा प्रयोजनवाद में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

6 अस्तित्ववाद (Existentialism)

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
  - अस्तित्ववाद और शिक्षा
    - अस्तित्ववाद का अर्थ
    - अस्तित्ववाद की परिभाषाएं
    - अस्तित्ववाद की विशेषताएं
- अस्तित्ववादी शिक्षा
  - अस्तित्ववादी शिक्षा का अर्थ
  - अस्तित्ववादीमनोविज्ञान
  - अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य
  - अस्तित्ववाद व पाठ्यक्रम
  - अस्तित्ववाद और शिक्षक
  - अस्तित्ववाद और विद्यार्थी
  - अस्तित्ववाद और शिक्षण विधि
  - अस्तित्ववाद और विद्यालय
  - अस्तित्ववाद और अनुशासन
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे –

- अस्तित्ववाद और शिक्षा
  - अस्तित्ववाद का अर्थ
  - अस्तित्ववाद की परिभाषाएं
  - अस्तित्ववाद की विशेषताएं
- अस्तित्ववादी शिक्षा
  - अस्तित्ववादी शिक्षा का अर्थ
  - अस्तित्ववादीमनोविज्ञान
  - अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य
  - अस्तित्ववाद व पाठ्यक्रम
  - अस्तित्ववाद और शिक्षक
  - अस्तित्ववाद और विद्यार्थी
  - अस्तित्ववाद और शिक्षण विधि
  - अस्तित्ववाद और विद्यालय
  - अस्तित्ववाद और अनुशासन

प्राक्कथन

अस्तित्ववाद व्यक्ति के अस्तित्व की संभावना और उसके वर्तमान रूपों से संबंधित है। स्वतंत्रता की भावना को नैसर्गिक तथा स्वतंत्रता को जन्म सिद्ध अधिकार मान लेने के पश्चात् इस यात्रा का प्रारम्भ होता है, जिसके अन्तर्गत मानवीय जीवन की संभावनायें प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुलभ हो सके। सोरेन किर्कगार्ड एवं जीन पॉल सार्त्रे ने अस्तित्ववादी चिन्तन को नवीन नैतिक भूमिका प्रदान की। उन्होंने स्वतंत्रता के प्रश्न को एक मानवीय प्रश्न बनाया और उसे समाज के संगठनात्मक ढांचे में व्यवस्थित करने का प्रयास किया। मानवीय विकास के वर्तमान समय की उसने पहली बार परिस्थितिगत तात्विक व्याख्या की और करीब उसे कार्ल मार्क्स के समान शब्दावली में वर्ग समाज कहा। सार्त्रे मनुष्य की वैयक्तिक इच्छाओं को ही अस्तित्व का महत्वपूर्ण बिन्दु मानता है और वर्तमान विघटनकारी परिस्थितियों के लिए औद्योगिक सभ्यता को उत्तरदायी ठहराता है।

वास्तविकता यह है कि अस्तित्ववाद पिछली दो शताब्दियों के 125 वर्षों में जिस प्रकार के परस्पर विरोधी विचारों को एक साथ सम्मिलित कर एक बिन्दु पर केन्द्रित करता रहा है कि मानवीय अस्तित्व समस्याओं के दौर से गुजर रहा है और मनुष्य के लिए अपने अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न बन गया है। वह समस्त दार्शनिकों की प्रवृतियों का प्रस्थान केन्द्र रहा है। मानवीय अस्तित्व के प्रारूप सम्बन्धी अस्तित्ववाद की धारणा अभी स्पष्ट नहीं है अपितु स्वतंत्रता तथा परिस्थितियों की व्याख्या इसके दो मुद्दे हैं, जहाँ से सब कुछ नियंत्रित होता है। अस्तित्व की निरर्थकता तीसराबिन्दु है जहाँ समस्त विचारक सहमत होते हैं तथा स्वतंत्रता को चरितार्थ करने के प्रश्न पर पुनः गतिरोध उत्पन्न होता है।

6.3 अस्तित्ववाद और शिक्षा (Existentialism and Education)

प्राचीन काल से आज तक दर्शन शास्त्र में जब कहीं अस्तित्व की समस्याओं पर विचार किया जाता है रहा है। प्राचीन उपनिषदों के अन्तर्गत यह समस्या थी कि मनुष्य में वह तत्व क्या है जिसे उसका सच्चा अस्तित्व माना जा सकता है। पूर्व और पश्चिम में सब कहीं दार्शनिक अस्तित्व की प्रकृति के संबंध में विचार करते रहे हैं। संक्षेप में, विश्व में कोई भी दर्शन ऐसा नहीं है जो कि किसी न किसी रूप में अस्तित्ववादी न कहा जा सकता हो। तब फिर समकालीन दर्शन में अस्तित्ववादी दार्शनिक सम्प्रदाय की विशेषता क्या

है? इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि यह दार्शनिक समस्याओं में सत् (Being) से अधिक सम्भूति (Becoming) पर, सामान्य (Universal) से अधिक विशेष (Particulars) पर और तत्व (Essence) से अधिक अस्तित्व (Existence) पर बल देता है। कीर्केगार्ड के अनुसार, "अस्तित्ववादी की मुख्य समस्या यह है कि मैं ईसाई किस प्रकार बनूंगा।"

नास्तिकवादी यहाँ पर ईसाई के स्थान पर प्रमाणिक सत् (Authentic Being) शब्द का प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार अस्तित्ववादियों ने ज्ञान (knowledge) एवं व्याख्या (Explaining) के स्थान पर क्रिया (Action), और चुनाव (Choice) पर बल दिया है, क्या (What) के स्थान पर कैसे (How) को महत्वपूर्ण माना है।

अस्तित्ववादी दर्शन का प्राचीन यूनानी दर्शन से संबंध स्पष्ट करते हुए सुकरात को अस्तित्ववादी माना गया है। डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार, "अस्तित्ववाद एक प्राचीन प्रणाली के लिए एक नया नाम है।" ब्लैकहम के अनुसार, "यह प्रोटेस्टेंट अथवा स्टोइक प्रकार के व्यक्तिवाद की आधुनिक शब्दों में पुनः स्थापना प्रतीत होता है, जो कि पुनर्जागरण युग के अनुभववादी व्यक्तिवाद, आधुनिक उदारतावाद अथवा एपीक्यूरस के व्यक्तिवाद एवं रोम या मास्को तथा प्लेटो की सार्वभौम व्यवस्था के विरूद्ध लड़ा हुआ दिखाई देता है। यह आदर्शों के संघर्ष में मानव अनुभव के आवश्यक सोपानों में से एक की समकालीन पुनर्जागति है, जिसे इतिहास ने अभी समाप्त नहीं किया है।

6.3.1 अस्तित्ववाद का अर्थ (Meaning of Exhistentialism)

अस्तित्ववाद आधुनिक समाज एवं परम्परागत दर्शन की कुछ विशेषताओं के विरूद्ध एक आन्दोलन है। यह अंशतः ग्रीक की विवेकशीलता या शास्त्रीय-दर्शन के विरोध स्वरूप प्रकट हुआ। अस्तित्ववाद प्रकृति तथा तर्क के विरूद्ध वैयक्तिक की संज्ञा द्वारा प्रकट हुआ। यह विचारधारा आधुनिक या प्रौद्योगिक युग की अवैयक्तिक प्रवृत्ति के विरोध स्वरूप प्रकट हुआ। औद्योगिक समाज व्यक्ति को मशीन के अधीन रखने पर जोर देता है। इसलिए यह खतरा उत्पन्न हो गया है कि मानव एक यंत्र या वस्तु बनता जा रहा है। इस प्रकृति के विरोधस्वयप यह विचार उत्पन्न हुआ है। यह वैज्ञानिकवाद एवं प्रत्यक्षवाद की प्रतिक्रिया के कारण विकसित हुआ। वैज्ञानिकवाद एवं प्रत्यक्षवाद मानव की ब्राह्य शक्ति पर जोर देते हैं तथा उसे (मानव को) भौतिक क्रियाओं के रूप में संचालित करता है। इसका अधिनायकवादी प्रवृत्ति के विरोध में विकास हुआ। अतः अस्तित्ववाद एक प्रतिक्रियात्मक सिद्धान्त के रूप में

सामने आया है। व्यक्ति की कठिन परिस्थितियों में उत्पन्न वेदनाओं का अनुभव कर उसे स्वर प्रदान करने के लिए यह विचार एक समयोचित प्रास है, प्रभुत्व और बाह्य दर्शनों का स्वतंत्र के नाम पर विरोध किया तथा स्पष्ट किया कि व्यक्ति अपने राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि संबंधों में स्वतंत्र लेकिन दायित्वयुक्त है। यह विरोध चिन्तन या तर्क बुद्धि की खोज नहीं बल्कि प्रयोग हुए सत्य का परिणाम है, जिसने उनके जीवन को झकझोर दिया।

आधुनिक युग में उद्‌भव के साथ ही धर्म ने विज्ञान को अपनी ज्योतिशलाका थमा दी और विज्ञान ने औद्योगिक तथा प्रौद्योगिक प्रगति के क्रम में व्यक्ति को व्यक्ति नहीं रहने दिया। उसके अस्तित्व का अर्थ उसी की आँखों में पूर्ण कर दिया। इसके साथ ही हीगल के 'विश्व मन' तथा मार्क्स के 'साम्यवाद' ने भी व्यक्ति की विशिष्टता और स्वतंत्रता को कोई महत्व प्रदान नहीं किया। इन सबके साथ मिलकर विश्वयुद्धों ने मूल्यों का विघटन किया। परम्परागत मूल्यों की मृत्यु ने धर्म, नैतिकता, विज्ञान, समानता भ्रातृत्व के सिद्धान्तों को धूल में मिला दिया। इस तरह अस्तित्ववाद शास्त्रीय तथा परम्परागत दर्शन पर एक प्रहार के रूप में विकसित हुआ, जिसने जीवन से असम्बद्ध दर्शन को समाप्त कर दिया। अर्थात् अस्तित्ववाद मानवीय जीवन और नियति का यथार्थ परक विश्लेषण है। सोरेन किर्कगार्ड के अनुसार, अस्तित्व शब्द का उपयोग इस दावे पर बल देने हेतु किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति या इकाई अपने आप में स्वयं जैसी या अद्‌भुत है तथा आध्यात्मिक या वैज्ञानिक प्रक्रिया के संदर्भ में अविश्लेषणीय है। यह अस्तित्वमय है, जो स्वयं चुनाव करता है एवं स्वयं चिन्तन करता है। उसका भविष्य कुछ अंशों में उसके स्वतंत्र चुनाव पर निर्भर है। अतः इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

6.3.2 अस्तित्ववाद की परिभाषाएँ (Definitions of Existentialism)

अस्तित्ववाद की निम्न परिभाषाएं हैं :-

"जीन पॉल सार्त्रे के अनुसार- "अस्तित्ववाद अन्य कुछ नहीं वरन् एक सुसंयोजित निरीश्वरवादी स्थिति से सभी निष्कर्षों को उत्पन्न करने का प्रयास है।"

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के अनुसार- "अस्तित्ववादी दर्शन चिन्तन का वह मार्ग है जो सम्पूर्ण पार्थिव ज्ञान का उपयोग करता है, उसे इस क्रम में परिवर्तित करता है, जिससे मानव पुनः स्वयं जैसा बन सके।"

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार, "अस्तित्ववाद एक प्राचीन प्रणाली के लिए एक नया नाम है।"

6.3.3 अस्तित्ववाद की विशेषताएँ (Characteristics of Existentialism)

अस्तित्ववाद की प्रमुख निम्न विशेषताएँ हैं :-

i. **आदर्शवाद की आलोचना (Criticism of Idealism)** – अस्तित्ववाद आदर्शवाद के विरूद्ध विद्रोह के रूप में विकसित हुआ है। अस्तु, अस्तित्ववादी दार्शनिक आदर्शवाद अथवा प्रत्ययवाद के सिद्धान्त का खण्डन करते हैं। प्रत्ययवाद के अनुसार मानव व्यक्तित्व किसी सार्वभौम सारतत्व अथवा आध्यात्मिक तत्व की अभिव्यक्ति है। इसके बिल्कुल विपरीत अस्तित्वादियों के अनुसार मानव अस्तित्व सार्वभौम सार तत्व (Universal Essence) के पहले होता है। प्रत्ययवाद के अनुसार मानव व्यक्तित्व की स्वतंत्रता सार्वभौम आध्यात्मिक तत्व की स्वतंत्रता पर निर्भर है।

ii. **अन्तर्द्वन्द की समस्या पर जोर (Emphasis on problem of Inner conflict)** – आज के जटिल संसार में सबसे बड़ी समस्या मनुष्य को किसी सिद्धान्त का अनुयायी बनाना नहीं बल्कि उसे उसकी स्वतंत्रता का ज्ञान कराना है। ऐसा होने से आदान-प्रदान सहज हो जाता है। जब तक मानव वस्तु से भी निम्न बना रहेगा तब तक शान्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार अन्य दर्शनों की अपेक्षा अस्तित्ववादी दर्शन अन्द्वन्द की समस्याओं पर विशेष बल देता है। परम्परागत दर्शन इस समस्याओं को महत्वपूर्ण नहीं मानते। मानव की जगत से पृथकता तथा स्वयं अपने से पृथकता से ही दर्शन प्रारम्भ होता है।

iii. **प्रकृतिवाद की आलोचना (Criticism of Naturalism)** – अस्तित्ववादी दार्शनिक एक तरफ आदर्शवाद तथा दूसरी ओर उसके विपरीत दर्शन प्रकृतिवाद की भी आलोचना करते हैं। प्रकृतिवादी दर्शन के अनुसार-मानव का व्यक्तित्व प्राकृतिक नियमों से नियंत्रित होता है तथा वह किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं रखता। दूसरी ओर अस्तित्ववादियों ने मानव को प्रकृति के द्वारा नियंत्रित न मानकर व्यक्तित्व की स्वतंत्रता की स्थापना की है।

iv. **निराशा से उत्पत्ति (Born from Despair)** – हमारे चारों ओर का वातावरण अनेक संघर्षों तथा समस्याओं से भरा हुआ है, लेकिन सामान्य समझदार व्यक्ति इनसे समझौता करके जीवन यापन करता है। अस्तित्ववादी

को यह जीवन असंभव लगता है और वह अपने को असहाय महसूस करता है। वह अत्यधिक चिन्ता से व्याप्त हो जाता है। उसे भय लगता है कि वह कर्तव्यों को पूर्ण नहीं कर सकेगा। उसे प्रतीत होता है कि वह चारों ओर के वातावरण को समझ नहीं पा रहा है। वह समय की आवश्यकताओं को पूरा करने में अपने को असमर्थ पाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुछ लोग इसे असामान्य संवेदनशीलता की संज्ञा देते हैं।

v. **मानव व्यक्तित्व का महत्व (Value of Human Personality)** – अस्तित्ववादी दार्शनिक मानव व्यक्तित्व को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते हैं और वे ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, जगत किसी को भी इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं मानते। मानव व्यक्तित्व का मूल तत्व स्वतंत्रता है। समाज व्यक्ति के लिए है न कि व्यक्ति समाज के लिए है। यदि सामाजिक नियम व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा उत्पन्न करते हों तो व्यक्ति को इन नियमों का विरोध करने का अधिकार है। इस धारणा को लेकर अस्तित्ववादी साहित्यकारों तथा कलाकारों ने अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिए सभी जगह भारी संघर्ष किया है और कर रहे हैं। वे इस स्वतंत्रता को अत्यधिक पवित्र मानते हैं तथा उसे किसी भी कीमत पर बेचने के लिए तैयार नहीं हैं। विभिन्न अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने इस स्वतंत्रता की अलग-अलग प्रकार से विवेचना की है।

vi. **वैज्ञानिक दर्शन की आलोचना (Criticism of Scientific Philosophy)** – प्रत्ययवाद तथा प्रकृतिवादी के अतिरिक्त अस्तित्ववादी दार्शनिक वैज्ञानिक दर्शन के आलोचक हैं। वास्तव में इन तीनों प्रकार के दर्शनों के विरूद्ध प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप ही अस्तित्ववाद का जन्म हुआ है। पाश्चात्य समाजों में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ-साथ नगरीयता बढ़ी। बड़े-बड़े नगरों में मानव का अस्तित्व भीड़ में खो गया। विशालकाय मशीनों के सामने उसका महत्व नगण्य हो गया। कारखाने का एक पुर्जा बनकर वह अपने अस्तित्व को भूल गया। यांत्रिक सभ्यता में उसके मूल्य खो गये। आज वह यंत्रों और मशीनों का गुलाम बन गया है। अस्तित्ववाद मानव के इसी अमानवीयकरण के विरूद्ध एक आन्दोलन है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास का जो विस्तृत रूप सामने आया उसे देखकर साहित्यकारों और कलाकारों ने मानव समस्याओं की ओर ध्यान देना आवश्यक समझा और मानव अस्तित्व के महत्व को फिर से स्थापित करने की आवश्यकता का

अनुभव किया। अतः साहित्य तथा कला के क्षेत्र में और क्रमशः धर्म व दर्शन के क्षेत्र में भी अस्तित्ववादी चिन्तर बढ़ने लगा।

NOTES

vii. दार्शनिक व्यवस्था की रचना नहीं (No Construction of Philosophical system)– प्राचीनकाल से दार्शनिकगण ईश्वर, आत्मा, जगत, देश काल, सृष्टि तथा विकास इत्यादि समस्याओं पर विचार करते रहे हैं। अस्तित्ववादी की समस्या, वर्तमान एवं व्यावहारिक है। वह इन परम्परागत दार्शनिक प्रश्नों पर विचार नहीं करता। इसलिए वह दार्शनिक सिद्धान्त रचना को महत्व प्रदान नहीं करता है।

viii. आत्मनिष्ठता का महत्व (Importance of Subjectivity) – अस्तित्ववादी दार्शनिक कीर्केगार्ड ने कहा था कि सत्य आत्मनिष्ठता है। जबकि विज्ञान से प्रभावित दार्शनिकों ने आत्मनिष्ठता तथा व्यक्तिगत अनुभव को विशेष महत्वपूर्ण माना है। अस्तित्ववादी दर्शन मानव के व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है और उसके प्रत्यक्ष अनुभवों जैसे- भय, आनन्द, घुटन आदि की व्याख्या करके उनमें अन्तर्निहित सत् तत्व के दर्शन कराता है। प्रत्येक व्यक्ति आत्मनिष्ठ होकर ही अपने अन्दर के सम् को समझ सकता है। यह एक रचनात्मक अनुभव है। इसी से मानव मूल्यों का सृजन होता है। यह एकाकीपन की दशा है, जिसमें व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से केवल अपने अस्तित्व के सामने खड़ा होता है।

ix. व्यक्ति और विश्व के संबंध की समस्या पर जोर (Emphasis on the Problem of the individual and word) – अन्त में अस्तित्ववादी दर्शन के अनुसार एक प्रमुख समस्या व्यक्ति तथा विश्व का संबंध है। इसकी जो परम्परागत व्याख्यायें की गयी हैं, इसमें इस समस्या का समाधान नहीं होता। यदि निरपेक्ष सार्वभौम तत्व को हेगेल के समान मान लिया जाये तो व्यक्ति में किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं रहती। अतः, अस्तित्ववादी ऐसे दर्शनों के विरूद्ध है क्योंकि इस प्रकार के दर्शनों के रहते हुए व्यक्ति का कोई नैतिक कर्त्तव्य नहीं बनता। अस्तित्ववादियों के अनुसार मानव को किसी भी नियम के अधीन नहीं किया जा सकता, चाहे वह विश्व का नियम हो, प्रकृति का नियम हो, राज्य का नियम अथवा समाज का नियम। नियम कार्य की प्रमाणिकता नहीं दिखलाता, उल्टे कार्य ही नियमों को प्रमाणिक बनाते हैं।

अस्तित्ववादी दर्शन किसी एक विचारक की सृष्टि नहीं है। यह दर्शन अनेक दार्शनिकों के लेखों में समाहित है जिनमें प्रमुख हैं- नीत्शे (Nietzshe) सोरेन

कीर्केगार्ड (S.Kierkegaard), गैबियल मार्सेल (G. Marchel), मार्टिन हाईडैगर (M.Heideggar) ज्यां पॉल सार्त्र (J.P. Sartre), कार्ल जास्पर्स; (K.Jaspers), एबगनामो (Abbagnamo), बरदाइयेव (Barduaev), कामू (Camus), आदि। इन दार्शनिकों ने अस्तित्व के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार के सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं। सार्त्र अपने दर्शन को विशेष रूप से अस्तित्ववादी कहता है जबकि मार्सेल अपने को अस्तित्ववादी मानने के लिए भी तैयार नहीं है। कीर्केगार्ड तथा मार्सेल दोनों आत्मवादी विचार हैं। कुछ अस्तित्ववादी आस्तिक हैं और कुछ नास्तिक हैं। जास्पर्स और सार्त्र के चिन्तन में दर्शन का मानव से उतना संबंध नहीं है, जितना कि कीर्केगार्ड के दर्शन में दृष्टिगोचर होता है। कीर्केगार्ड, जास्पर्स और मार्सेल ईश्वरवादी हैं। जबकि ओर नीत्शे हाईडेगर और सार्त्र नास्तिक हैं।

6.4 अस्तित्ववादी शिक्षा (Existentialism Education)

अस्तित्ववादी शिक्षा के संबंध में पूर्ण आस्था तथा निश्चय के साथ यह नहीं कहा जा सकता है कि अमुम अस्तित्ववादी ने शिक्षा के संबंध में निश्चित ग्रन्थ में शैक्षिक विचारों को प्रकट किया है। बटलर के अनुसार, "अस्तित्ववादी दर्शन ने शिक्षा में कोई विशेष रूचि प्रकट नहीं की है।"

अत: जिन शैक्षिक उद्देश्यों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, वे अस्तित्ववादी विचारकों द्वारा निष्कर्षित नहीं किए गये हैं।

6.4.1 अस्तित्ववादी शिक्षा का अर्थ (Meaning of Existentialism Education)

अस्तित्ववादी विचारकों का मत है कि हम भौतिक वास्तविकताओं या सत्ताओं के जबत में रहते हैं तथा हमने इन सत्ताओं के सम्बन्ध में उपयोगी तथा वैज्ञानिक ज्ञान का विकास कर लिया है, लेकिन हमारे जीवन में सबसे महत्वपूर्ण पक्ष वैयक्तिक एवं अवैज्ञानिक है। इसलिए अस्तित्ववादी इस बात पर बल देते हैं कि सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रमुख ज्ञान मानवीय दशाओं से संबंधित होता है।

इस विचार के अनुसार शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो स्वतंत्रता के चयन के लिए चेतना विकसित करती है। शिक्षा हममें स्व-चेतना की भावना जागृत करती है। इसी के कारण हम मानव प्राणी कहने के अधिकारी हो जाते हैं।

6.4.2 अस्तित्ववादी मनोविज्ञान (Existentialism Psychology)

अस्तित्ववादी शैक्षिक चिन्तन, सीखने वाले के माध्यमित एवं रजस्वला के उत्तरोत्तर काल पर बल देता है। अस्तित्ववादियों के अनुसार, जब बालक का

जन्म होता है तब बालक के अस्तित्व का प्रादुर्भाव होता है। इसके बाद पूर्व अस्तित्व का पक्ष आता है। इस समय बालक अपने 'स्व' के प्रति चेतनशील नहीं होता है। इसके बाद 'अस्तित्ववादी आन्दोलन' शुरू होता है। इस समय व्यक्ति आकस्मिक रूप से अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में सचेत हो जाता है तथा यह भावना भी विकसित होती है कि पुनः अपनी बाल्यावस्था में जो कि 'स्व' की अज्ञानता का समय होता है। इस भावना को 'Pre-Existentialism Nostaligia' कहते हैं। व्यक्ति इस भावना का बहादुरी के साथ सामना करता है। मनोवैज्ञानिक विचारधारा को निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट किया जा रहा है–

अ	ब	स
Pre-Existentialism Phase		Existentialism Phase

(अ) जन्म (बालक का जन्म)

(ब) वह दशा जिसमें बाल्यावस्था की स्थिति को वापस नहीं लाया जा सकता है।

(स) मृत्यु

6.4.3 अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Existentialism Education)

अस्तित्ववाद का विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति अद्भुत होता है। अतः शिक्षा को व्यक्ति में इस अनोखेपन को विकसित करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को अपने अद्भुत गुणों को विकसित करने के योग्य बनाना चाहिए। अर्थात् असमनुरूपता शिक्षा का एक वांछनीय गुण है।

सार्त्रे की विचारधारा के अनुसार मानव अनुभूति करने में समक्ष होता है। वह जो बनना चाहता है, बनने के लिए स्वतंत्र है। शिक्षा का उद्देश्य उसे अपने मूल्यों के चयन में सक्षम बनाना होना चाहिए। आधुनिक शिक्षा में निम्न उद्देश्यों को शामिल करके शिक्षा को एक नई दिशा प्रदान की जा सकती है–

a. स्वाभाविक वातावरण में शिक्षा प्रदान करना।

b. प्रामाणिक अस्तित्व का निर्माण करना।

c. स्वानुभूतियों के अनुकूल व्यक्तित्व को विकसित करना।

NOTES

d. स्वतंत्रतापूर्वक मूल्यों के चयन के लिए प्रोत्साहन देना।

e. उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना।

f. व्यक्ति को जीवन के लिए तैयार करना।

g. स्वतंत्र एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना।

h. वैयक्तिता का विकास करना।

6.4.4 अस्तित्ववाद व पाठ्यक्रम (Existentialism and Curriculum)

अस्तित्ववादी पाठ्यक्रम की प्रस्तावना में विश्वास नहीं रखते हैं। छात्र स्वयं अपने पाठ्यक्रम का चयन अपनी आवश्यकता, योग्यता तथा जीवन में परिस्थितियों के अनुसार करे। यद्यपि वे ब्रह्माण्ड के विषय में मूलभूत ज्ञान प्रदान करने के पक्ष में नहीं हैं, फिर भी वे पाठ्यक्रम को उन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्य सामूहिक विषयों की तुलना में मानवीय अध्ययनों पर अधिक बल देते हैं। इन मानवीय अध्ययनों के द्वारा मानव दुःख, चिन्ता तथा मृत्यु आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है। सार्त्रे की विचारधारानुसार मानविकी एवं सामाजिक विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाए क्योंकि ये विषय व्यक्ति के रागात्मक पक्ष का विकास करके उसे इस संसार की वास्तविकताओं यथा-पीड़ा, व्यथा, प्रेम, घृणा, पाप, मृत्यु आदि से परिचित कराते हैं। इस प्रकार व्यक्ति जीवन में आने वाले सुख-दुःख के लिए समक्ष बन जाता है।

6.4.5 अस्तित्ववाद व शिक्षक (Existentialism and Teacher)

अस्तित्ववादी विचारधारा में शिक्षक को आरोहण करने वाले व्यक्ति के रूप में नहीं देखा गया है। उससे यह आशा की जाती है कि वह विषय सामग्री को इस प्रकार प्रस्तुत करे कि बालक उसमें निहित सत्य को स्वतंत्र साहचर्य द्वारा खोज सके। शिक्षक बालक का मार्गदर्शन अवश्य करें, लेकिन छात्रों की क्षमताओं एवं योग्यताओं के अनुरूप प्रत्येक बालक का अपना 'स्व' होता है। शारीरिक, मानसिक तथा आंतरिकता से जो कुछ वह है, वही उसका व्यक्तित्व है। बालक का 'स्व' कुण्ठित न होने पाये। वह किसी बात को इसलिए स्वीकार न कर ले कि यह उसको स्वीकार करनी ही है बल्कि वह प्रत्येक बात का परीक्षण, आलोचना तथा जांच करके ही स्वीकार करे। शिक्षक छात्रों को अपनी आंतरिक भावनाओं के विषय में बातचीत करने के लिए प्रोत्साहन दें जिससे वे अपनी सत्ता को स्पष्ट कर सकें।

6.4.6 अस्तित्ववाद व विद्यार्थी (Existentialism and Student)

अस्तित्ववादी सीखने वाले व्यक्ति को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। वे सुव्यवस्थित व्यक्ति या सांजस्यपूर्ण व्यक्तित्व पर बल नहीं देते हैं बल्कि व्यक्ति को अनिर्मित मानते हैं। वह स्वयं को निर्मित करने वाला हैं वह स्वतंत्र रहकर अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहता है। इस कारण सार्त्रे मानव के उत्तरदायित्व को अधिक महत्वपूर्ण मानता है। जिससे वह अपने मूल्यों को निर्मित कर सके। वस्तुत: अस्तित्ववादी शिक्षक-विद्यार्थी के बीच 'मैं-तू' के संबंध को स्थापित करने पर बल देता है।

6.4.7 अस्तित्ववाद व शिक्षण विधि (Existentialism and Teaching Method)

अस्तित्ववादी सुकराती उपागत का समर्थन करता है। वे इसी कारण 'शिक्षक-शिष्य' के मध्य मैं-तू' के संबंध स्थापित करने पर बल देते हैं। इसलिए वे विद्यालयी शिक्षा की तुलना में पारिवारिक शिक्षा को उपयुक्त मानते हैं। डब्ल्यू. आर. निबलैट का विचार है कि अस्तित्ववादी समय-तालिका की बजाए पारस्परिक संपर्क पर अधिक बल देते हैं। सृजनात्मकता के लिए शिक्षा पर अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने अधिक बल दिया है।

सार्त्रे के अनुसार सच्चा ज्ञान वही है जो स्वयं मनुष्य द्वारा अर्जित किया जाये। अत: अस्तित्ववादी शिक्षा में 'करके सीखने के' सिद्धान्त पर बल देते हैं।

6.4.8 अस्तित्ववाद और विद्यालय (Existentialism and School)

अस्तित्ववादियों के अनुसार विद्यालय वह स्थान है जहाँ शिक्षक संवाद एवं विचार-विमर्श कर सकता है। यह विचार-विमर्श चयन तथा जीवन संबंधी मामलों से सम्बन्धित होता है। इस स्थान पर विषयों पर विचार-विमर्श करने के लिए परिस्थितियों को निर्मित किया जा सकता है। विद्यालय में शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनों प्रश्न पूछने, उत्तर सुझाने एवं संवादों में संलग्न रहने के अवसर प्राप्त करते हैं।

6.4.9 अस्तित्ववाद और अनुशासन (Existentialism and Discipline)

सार्त्रे किसी भी आचार-संहिता को स्वीकार नहीं करता। वह बालक को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करता है। ऐसी दशा में यह संभव है कि असंख्या विद्यार्थी मनमानी करें तथा समाज में अव्यवस्था फैल जाये। सार्त्रे के अनुसार वैयक्तिक

चेतना माध्यम से इस समस्या को आसानी से सुलझाया जा सकता है। स्वतंत्र चयन से वैयक्तिक निर्वाह की क्षमता का विकास होता है।

व्यक्ति जो कुछ चयन करेगा, शुभ होगा। इसी प्रकार अशुभ का चयन भी हो जाता है तो उसका भोक्ता वह स्वयं है। इस प्रकार चयन से वैयक्तिक दायित्व उत्पन्न होता है। इस उत्तरदायित्व भाव तथा स्वतंत्रता से अलग कोई नैतिक गुण नहीं होता। इससे ही अनुशासन स्थापित किया जा सकता है। अस्तित्ववाद ऐसा दर्शन है जिसने क्रान्तिकारी विचारों से मानव के अस्तित्व को मिटते देखा तथा वर्तमान युग में मनुष्य के अस्तित्व की प्राथमिकता को बनाए रखते हुए अतिमानव के व्यक्तित्व की कल्पना उभारने का प्रयत्न अस्तित्ववाद ने किया है।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. अस्तित्ववाद का अर्थ बताते हुए अस्तित्ववाद और शिक्षा में संबंधों को स्पष्ट कीजिए।
2. अस्तित्ववाद की विशेषताओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. अस्तित्ववाद की दो परिभाषाएँ दीजिए व अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्यों की व्याख कीजिए।
4. अस्तित्ववाद में पाठ्यक्रम व शिक्षण विधि की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
5. अस्तित्ववादी शिक्षा से आप क्या समझते हैं। अस्तित्ववाद में शिक्षक की भूमिका की स्पष्ट व्याख्या कीजिए।
6. अस्तित्ववाद पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. अस्तित्ववाद से आप क्या समझते हैं?
2. अस्तित्ववादी शिक्षा से आपका क्या आशय है ?
3. अस्तित्ववाद तथा विद्यार्थी को समझाइए।
4. अस्तित्ववाद तथा विद्यालय से आपका क्या तात्पर्य है?

7 मानवतावाद, संरचनावाद तथा सम्बन्धवाद

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- मानवतावाद का अर्थ
- मानवतावाद के अनुसार शिक्षा का अर्थ
- मानवतावादी शिक्षा का उद्देश्य
- मानवतावाद तथा पाठ्यक्रम
- मानवतावाद एवं शिक्षण विधि
- मानवतावादी शिक्षा तथा विद्यार्थी
- मानवतावाद - विद्यालय तथा अनुशासन
- संरचनावाद
- संरचनावाद का इतिहास
- भाषा विज्ञान में संरचनावाद
- नृविज्ञान तथा समाजशास्त्र में संरचनावाद
- द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संरचनावाद
- संरचनावाद पर प्रतिक्रियाएँ
- सम्बन्धवाद
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे –

- मानवतावाद का अर्थ
- मानवतावाद के अनुसार शिक्षा का अर्थ
- मानवतावादी शिक्षा का उद्देश्य
- मानवतावाद तथा पाठ्यक्रम
- मानवतावाद एवं शिक्षण विधि
- मानवतावादी शिक्षा तथा विद्यार्थी
- मानवतावाद - विद्यालय तथा अनुशासन
- संरचनावाद
- संरचनावाद का इतिहास
- भाषा विज्ञान में संरचनावाद
- नृविज्ञान तथा समाजशास्त्र में संरचनावाद
- द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संरचनावाद
- संरचनावाद पर प्रतिक्रियाएँ
- सम्बन्धवाद

प्राक्कथन

मानवतावाद एक अत्यन्त प्राचीन विचारधारा है। चीन, भारत तथा यूनान के प्राचीनकालीन विचारकों तथा दार्शनिकों ने मानवतावाद का समर्थन किया था। इसी प्रकार कम्फ्यूसियसवाद और ताओवाद मानवतावादी विचारधाराएँ हैं। बौद्ध दर्शन तथा बौद्ध धर्म में भी मानवतावाद का प्रतिपादन किया गया था। यूनानी विचारधारा में भी मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास को मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य माना गया है। इन सभी विचारधाराओं में अलौकिक शक्तियों के स्थान पर मानव हितों को प्राथमिकता दी जाती है। इन मानव-हितों को या तो आधिदैविक शक्तियों के आधार पर प्राप्त किया जा सकता है या इन अलौकिक शक्तियों से उत्प्रेरणा प्राप्त किये बिना मानव अपने ही श्रम से इन्हें प्राप्त कर सकता है। इन हितों को या तो पार्थिव माना जा सकता है या आध्यात्मिक। मानवतावादी विचारधारा, मानव की महत्ता, उसके गुणों अर्थात् मानवीयता में आस्था तथा विश्वास रखती है। इसका केन्द्र बिन्दु मानव है। यह मानव के अस्तित्व, उसकी स्वतन्त्रता और उसके कल्याण की पक्षधर है। जहाँ एक ओर विज्ञान तथा तकनीकों अभूतपूर्व विकास कर रही है, सूचनाएँ मन और कल्पना के वेग से चल रही है। इंटरनेट, कम्प्यूटर आदि के द्वारा आज कुछ ही पलों में काम सुन्दर और विश्वसनीय तरीके से हो जाते हैं वही मानव की गरिमा एवं जीविका पर प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। इन सभी चमत्कारिक सफलताओं के जनक मानव जनसामान्य के जीवन को सुखमय बना चुका है किन्तु इन आशातीत सफलताओं को प्राप्त करने के पश्चात् मानव का स्वयं का जीवन सुखमय प्रतीत नहीं हो रहा है। वस्तुतः इस अजीबो-गरीब उपलब्धि, विकास और प्रगति के बीच मानव अस्तित्व फँस सा गया है, उसके द्वारा स्थापित मानवीय मूल्यों का तीव्रगति से वाष्पन हो रहा है। इन परिस्थितियों में मानव की गरिमा और हित सुरक्षित रखने की आवश्यकता ही मानवतावाद के रूप में उभरी है। के. जी. सैयदेन ने सन् 1966 में अपनी कृति में कहा है कि "सभी भारतीय विचारक मनुष्य को मूल्यों का केन्द्र आकर्षक प्रेरक और अनुकरणीय पुण्य रहा है।" भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानवतावाद कोई नवीन विषय नहीं है, यहाँ शास्त्रों में भी ऋषियों तथा मुनियों ने समस्त मानवता के सुख और समृद्धि की कामना की। जब सम्पूर्ण विश्व में सभ्यताओं का नामोनिशान नहीं था, उसी समय विश्व संस्कृतियों के धर्मगुरू भारत के जंगलों से ऋषियों ने समस्त मानवता के सुख तथा कल्याण का उद्घोष किया।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु भा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्॥"

मानवतावाद का अर्थ (Meaning of Humanism)

'मानवतावाद' शब्द से ही स्पष्ट होता है कि यह एक ऐसी विचारधारा है जो मानव तथा उसकी समस्याओं के विवेचन को सर्वाधिक महत्व प्रदान करती है और मनुष्य को ही केन्द्रीय स्थान प्रदान करती है। मानवतावाद के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द ह्यूमैनिज्म की उत्पत्ति ह्यूमैनिटाज से हुई। ह्यूमैनिटाज का अर्थ मानव की शिक्षा के अर्थ में लिया जाता है। मानव की शिक्षा का अर्थ उसे अन्य प्राणियों से भिन्न अनुशासनबद्ध प्राणी बनाना है।

परिभाषाएँ

मानवतावाद की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं –

ब्रूबेकर के अनुसार, "मानवतावाद मानव स्वभाव और मानवीय दृष्टिकोण पर बल देता है।" "Humanism emphasises human nature and the human point of view." – *Brubacher*

मैसलो के अनुसार, "मानवतावाद एक ऐसा शब्द है जो लेखकों द्वारा विविध अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। इनमें से कुछ के अनुसार मनुष्य मानव विचार की पृष्ठभूमि है, ईश्वन नहीं है, कोई अति मानवीय वास्तविकता नहीं है जिससे मनुष्य को जोड़ा जा सके।"

"Human is a word which is used by writers in many different sense. One of these implies than man makes up the entire framework of human thought, that there is not God; no super human reality to which he can be related or can relate himself."

–*Maslow*

लेमन के अनुसार, "मानवतावाद आनन्ददायक सेवा का ऐसा दर्शन है जिसमें समग्र मानवता के कल्याणार्थ बातें निहित होती हैं। इसका विश्वास है कि मनुष्य का कल्याण तर्कना, बुद्धि और लोकतन्त्र द्वारा सम्भव है।"

"Humanism is a philosophy of delightful service to humanity pervading welfare of entire humanity. It believes that welfare of man is possible by ration, intelligence and democracy."

– *Lemon*

डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार– "मानव ही अपने भविष्य का रचियता है।"

"Man is the architect of his own future."

– *Dr. Radhakrishnan*

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि मानवतावाद एक ऐसी विचारधारा है जो मनुष्य की गरिमा, मूल्य, स्थिति, स्वतन्त्रता, संकल्प आदि को प्रमुखता प्रदान करती है। इसमें अमूर्त, निरपेक्ष, आध्यात्मिक तथा अलौकिक शक्तियों के स्थान पर मनुष्य की वास्तविक समस्याओं के वैज्ञानिक समाधान को महत्व दिया जाता है। इसमें मनुष्य के व्यक्तित्व तथा उसके अनुभवों को प्राथमिकता दी जाती है। मानवतावाद लौकिक जगत् के अलावा किसी पारलौकिक जगत्, परलोक, स्वर्ग या नरक आदि में विश्वास करता है। मानवतावाद के चिन्तन और अध्ययन का केन्द्र मनुष्य और उसकी प्रकृति है, इसका नव-मानवतावाद, विकासात्मक प्रकृतिवाद, वैज्ञानिक मानवतावाद तथा इन्द्रियानुभववाद भी कहा जाता है। **कार्लिस लेमाण्ट** के अनुसार, "मानवतावाद विश्व-बन्धुत्व, अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री और मनुष्य के भ्रातृत्व का समर्थक है।"

मानवतावाद के अनुसार शिक्षा का अर्थ
(Meaning of Education by Humanism)

मानवतावाद के शैक्षिक उपागम में मनुष्य की नियति को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है। मानव शरीर, इन्द्रियाँ, बुद्धि विवेक, चेतना तथा सृजनात्मक शक्तियों से मुक्त है। अपनी बुद्धि और चेतना के अनुरूप वह अपने लिए सभ्यता और समाज का निर्माण करता हुआ समाज सेवा को समर्पित होता है। उसमें शक्तियाँ और क्षमताएँ अन्तर्निहित होती हैं और इन्हीं के द्वारा वह अपनी समस्याओं का समाधान करता है। मानव विकासात्मक प्रकृति से उद्धृत हुआ है। मानव स्वतन्त्र है, उसके नैतिक मूल्यों का आधार सांसारिक अनुभव तथा सम्बन्ध है। इनका लक्ष्य सांसारिक सुखों की प्राप्ति है। जन सेवा और विश्व-बन्धुत्व मानवतावाद का लक्ष्य है। मानवतावादी शिक्षा मानव के लिए उसकी अन्तर्निहित शक्तियों और क्षमताओं के विकास के लिए, उसमें जन सामान्य की सेवा तथा विश्व-बन्धुत्व की भावना के विकास के लिए होती है। समस्त प्राणियों में मानव सुन्दरतम् है। स्वर्ग के सुख को त्यागकर वह धरती पर आया। उसकी प्रकृति, योग्यता एवं क्षमता अनुपम है। अतः शिक्षा वह है जो इन सबका विकास कर उसे और श्रेष्ठता प्रदान करे। **सुमित्रानन्दन पन्त** ने कहा है कि–

**"सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर।
मानव तुम सबसे सुन्दरतम्॥"**

भारतीय जनमानस के प्रेरक गोस्वामी तुलसीदास ने दूसरों के हित में समर्पित होने को सबसे बड़ा धर्म माना है। सच्ची शिक्षा वह है जो उनके विचारों तथा

व्यवहारों में अपने को उतारने का अवसर प्रदान करें- परहित सरिस धरम नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहीं अधभाई।

मानवतावादी शिक्षा का उद्देश्य (Aims of Education by Humanism)

मानवतावादी शिक्षा का मूल उद्देश्य मानवीय निर्यात को श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर बनाना, तुलना रूप से अच्छे ढंग से जीवनयापन के योग्य बनाना एवं अपनी समस्याओं को समझकर समाधान निकालने के लिए मनुष्य को तैयार करना है। सुख, प्रगति तथा मंगलमयता के मार्ग पर प्रवर्तन मानवतावादी शिक्षा का मन्तव्य है। इस विचार दर्शन में शैक्षिक प्रक्रिया में निम्नलिखित उद्देश्य शामिल हैं -

1. **शिक्षार्थी की अन्तर्निहित शक्तियाँ और क्षमताओं का विकास–** मानवतावादी शिक्षा का उद्देश्य शिक्षार्थी की अन्तर्निहित शक्तियों और क्षमताओं का विकास करना है ताकि वह श्रेष्ठ मानव बनकर समाज के लिए उपयोगी नागरिक बन सके।

2. **व्यक्ति का सुखमय जीवन–** मानवतावादी नैतिक आदर्श सांसारिक सुखों की प्राप्ति देश, जाति वर्ग निरपेक्ष रूप से सभी को होनी चाहिए जिसके परिणामस्वरूप सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए समानता की भावना का विकास होगा और समानता आधारित सांसारिक सुखों की प्राप्ति की क्षमता का विकास शिक्षा करेगी जिससे व्यक्ति का जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होगा।

3. **शिक्षार्थी का सर्वांगीण विकास–** बालक का सर्वांगीण विकास करना मानवतावादी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। इन्होंने व्यक्ति के व्यक्तित्व को शरीर, मस्तिष्क और चेतना तीन भागों में विभाजित किया और इन्हीं का सम्यक् विकास करने के लिए शारीरिक विकास, मानसिक विकास और चेतनात्मक विकास पर बल दिया है।

4. **सृजनात्मकता का विकास–** मानवतावादी शिक्षा का एक उद्देश्य बालक में सृजनात्मकता का विकास करना भी है। मानवतावादी मानव को पशु से भिन्नता का आधार उसकी बुद्धि, विवेक, कल्पनाशक्ति और सृजनात्मकता को मानते हैं।

5. **नैतिक मूल्यों का विकास–** मानवतावादी विचारक मानवतावाद के अपने नैतिक मूल्य मानते हैं जिनका आधार सांसारिक अनुभव तथा

NOTES

सम्बन्ध है। इन्हें शिक्षा द्वारा विकसित किया जा सकता है।

6. **आत्म-विश्वास जागृत करना–** मानवतावादी शिक्षा आत्म-विश्वास का भाव जागृत करती है क्योंकि इसी के आधार पर व्यक्ति अपनी समस्याओं को समाधान करके जीवन को सुखमय व्यतीत कर सकता है।

7. **जनसेवा की भावना का विकास–** मानवतावाद इस तथ्य को स्वीकार करता है कि वैयक्तिक विकास और पूर्णता जनसेवा द्वारा ही संभव है। अत: व्यक्ति के वैयक्तिक विकास और पूर्णता की प्राप्ति के लिए जनसेवा की भावना का विकास करना आवश्यक है। यह कार्य शिक्षा द्वारा ही हो सकता है।

8. **विश्वबन्धुत्व और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का विकास–** मानवतावादी विचारक मानव में विश्व-बन्धुत्व और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का विकास करने पर बल देते हैं। उनका मानना है कि ऐसी भावना से ही शिक्षार्थी प्रेम, सहयोग, परोपकार जैसे मूल्यों को समझकर समुदाय, सम्प्रदाय तथा राष्ट्र आदि की संकीर्णता से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के मार्ग पर उचित समाधान अग्रसर होगा।

9. **मानवीय समस्याओं के प्रति संवेदनशील भावना का विकास–** मानवतावादी शिक्षा मानवीय समस्याओं के प्रति संवेदनशील भावना का विकास करती है ताकि व्यक्ति दूसरों की समस्याओं को समझकर उनका उचित समाधान कर सके। इनके अनुसार शिक्षा वही है जो समस्याओं के प्रति हार्दिक स्तर पर संवदेनशीलता उत्पन्न करे तथा ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करे जो विज्ञान के सदुपयोग के आधार पर समाज कल्याण हेतु उद्यत हो सकें।

10. **सशक्त एवं जागरूक चेतना का विकास–** मैसलो ने बालक की चेतना को विकसित किये जाने पर विशेष बल देते हुए कहा कि जागरूकता इसलिए आवश्यक है कि वह जीवन के सुन्दर और अनुपम पक्ष के प्रति सजग रहते हुए समाज के परम्परावादी रूढ़िगत एवं समय के प्रतिकूल आचार और विचार के मध्य अन्तर कर यथाआवश्यक मार्ग का चयन कर सके। इसी के द्वारा वह जीवन को सुखपूर्ण बना सकता है।

मानवतावाद और पाठ्यक्रम (Humanism and Curriculum)

मानवतावादी दृष्टिकोण से मानव की अन्तर्निहित शक्तियों तथा क्षमताओं का विकास करना ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। ब्रूबेकर के शब्दों, "मानवतावाद मानव स्वभाव और मानवीय दृष्टिकोण पर बल देता है।" इस प्रकार मानव

स्वभाव और कल्याण दृष्टि आधारित मानवोपयोगी पाठ्यक्रय ही स्वीकार्य है। मानवतावादी विचारकों के पाठ्यक्रम में यद्यपि विविधता का दर्शन होता है लेकिन पाठ्यक्रम चयन में छात्र के निर्णय पर कोई वैषक्य नहीं है। यहाँ उन असमानताओं में जाकर मानवतावाद के समग्र रूप की दृष्टि से पाठ्यक्रम इस प्रकार प्रस्तुत है–

मानविकी विषयों का अध्ययन– संगीत, नाटक, आधुनिक भाषा, साहित्य दर्शन आदि।

प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन– विज्ञान का सामान्य अध्ययन तथा विज्ञान की सभी शाखाओं का अध्ययन, भूगोल, पर्यावरण शिक्षा आदि का अध्ययन।

सामाजिक विषयों का अध्ययन– इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, कला, शिल्प आदि का अध्ययन। इसके अतिरिक्त प्रकृति, प्राकृतिक नियम, स्वास्थ्य चिकित्सा, खेलकूद, व्यायाम, स्वच्छता, खाद्य विज्ञानादि, तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान, कला, साहित्य, संगीत, मानव विज्ञान, मानव समानता आधारित समाज लोक सेवा के विभिन्न कार्य एन.सी.सी., एन.एस.एस. आदि को पाठ्यक्रम में शामिल करने की बात कही तथा विद्यालयों में ऐसे शैक्षिक कार्यक्रमों के संचालन पर बल दिया जिससे अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास हो सके।

मानवतावाद और शिक्षण विधि
(Huamnism and Methods of Teaching)

मानवतावाद का प्रमुख उद्देश्य मानव को विश्व मानव बनाना है, उसमें जन सेवा की भावना उत्पन्न करना है। उसकी अन्तर्निहित शक्तियों तथा क्षमताओं का विकास करना है। इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शिक्षा में अनुदेशन, निरीक्षण, स्वानुभव, परीक्षण? प्रयोग, भ्रमण और योजना विधि आदि को शामिल करने पर बल दिया। मानवतावादी विचारकों का मानना है कि सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली बालक के लिए है न कि बालक शिक्षा प्रणाली के लिए। अत: शिक्षा प्रणाली में मनोवैज्ञानिक विधियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए ताकि बालक में मनन, चिन्तन, एकाग्रता आदि का पूर्ण रूप से विकास हो सके। इन सबके परिणामस्वरूप ही उसका सर्वांगीण विकास होगा।

मानवतावादी शिक्षक और शिक्षार्थी
(Humanism Teacher and Student)

मानवतावादी शिक्षक में ऐसे सद्गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि शिक्षार्थी समाज के लिए उपयोगी बन सके। शिक्षक में तत्परता,

निस्वार्थता, आत्मविश्वास, प्रतिबद्धता, अपरिहार्य आवश्यकताएँ हैं। इसके साथ ही साथ उसे अपने विषय का ज्ञाता तथा नवीन वैज्ञानिक विधियों का भी ज्ञान होना चाहिए। शिक्षक के विषय में मानवतावादी बड़े ही जागरूक हैं। वे मानते हैं कि शिक्षक ही शिक्षार्थी को एक निश्चित दिशा प्रदान कर सकता है। उसका छात्र से सम्बन्ध मानवीय होना चाहिए न कि व्यावसायिक। शिक्षार्थी के विकास में ही उसकी गरिमा निहित है और शिक्षार्थी के संदर्भ में उनका मानना है कि शिक्षार्थी स्वयं की शक्ति से भिज्ञ हो, शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व परिश्रमी हो ताकि उन सभी आदर्शों को अपना सके जो उसे विश्व बन्धुत्व की भावना बनाने के लिए आवश्यक है। मानवतावादी शिक्षार्थी को एक विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न मानव के रूप में स्वीकार करते हैं।

मानवतावाद–विद्यालय और अनुशासन (Humanism–School and Discipline)

मानवतावादी विद्यालय को एक ऐसे स्थान के रूप में स्वीकार करते हैं जहाँ व्यावसायिक एवं नैतिक वृत्तियाँ का विकास होता है। विद्यालय का वातावरण स्वतन्त्र, स्वाभाविक, समानता आधारित मानवता के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए। इसकी पृष्ठभूमि प्रजातान्त्रिक होनी चाहिए वहीं सांस्कृतिक वातावरण को भी एक उचित स्थान दिया जाना चाहिए ताकि बालक की अन्तर्निहित शक्तियों के विकास में पूर्ण सहयोग मिल सके। अनुशासन के सम्बन्ध में मानवतावादी स्वीकार करते हैं कि अनुशासन शिक्षण प्रक्रिया की आत्मा है। मानवतावादी प्रभावात्मक अनुशासन के पक्ष में हैं। वे कठोर दमनात्मक तथा शारीरिक दण्डात्मक अनुशासन के विरोधी हैं। उनका मानना है कि आत्मानुशासन और प्रभावात्मक अनुशासन से ही मानव श्रेष्ठ मानव बन सकता है। वे मानवीय मूल्यों के विकास पर इस प्रकार बल देते हैं कि शिक्षार्थी स्वयं मूल्यों की प्राप्ति के लिए तत्पर रहें। उसे इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि सम्पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रत्यय अनुशासन के अभाव में अर्थहीन है।

संरचनावाद

संरचनावाद (स्ट्रक्चरलिज्म) मानव विज्ञान की एक ऐसी विधि है जो संकेत विज्ञान और सहजता से परस्पर संबद्ध भागों की एक पद्धति के अनुसार तथ्यों का विश्लेषण करने का प्रयास करती है। स्वीडन के प्रसिद्ध भाषाविद फर्दिनान्द द सस्यूर (Ferdinand de Saussure) इसके प्रतिवादक माने जाते हैं, जिन्हें हिन्दी में सस्यूर नाम से जाना जाता है। तर्क के संरचनावादी तरीके को विभिन्न क्षेत्रों जैसे, नृविज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, साहित्यिक आलोचना

NOTES

तथा यहां तक कि वास्तुकला में भी लागू किया गया है। इसने एक विधि के रूप में नहीं बल्कि एक बौद्धिक आंदोलन के रूप में संरचनावाद में प्रवेश किया, जो 1960 के दशक में फ्रांस में अस्तित्ववाद की जगह लेने आया था।

1970 के दशक में, यह आलोचकों के आन्तरिक विरोध का शिकार हुआ, जिन्होंने इस पर बहुत ही 'अनमनीय' तथा 'अनैतिहासिक' होने का आरोप लगाया। हालांकि, संरचनावाद के कई समर्थकों, जैसे कि जैक्स लेकन ने महाद्ववीपीय मान्यताओं तथा इसके आलोचकों की मूल धारणाओं पर बल देकर प्रभाव डालना शुरू किया कि उत्तर-संरचनावाद, संरचनावाद की निरंतरता है।

एलीज़न एसिटर के अनुसार, "संरचनावाद से संबंधित चार आम विचार एक 'बौद्धिक प्रवृत्ति' की रचना करते हैं।"

- सबसे पहले, संरचना वह है, जो पूर्णता के प्रत्येक तत्व की स्थिति को निर्धारित करता है।
- संरचनावादियों का मानना है कि प्रत्येक प्रणाली की एक संरचना होती है।
- संरचनावादी 'संरचनात्मक' नियमों में ज्यादा रुचि लेते हैं जो परिवर्तन की जगह सह-अस्तित्व से संबंधित होते हैं।
- संरचनाएं वे 'असली वस्तुएं' हैं जो अर्थ के धरातल या सतह के नीचे विद्यमान रहती हैं।

संरचनावाद शब्द को अधिकांश एक विशिष्ट प्रकार के मानववादी संरचनावादी विश्लेषण के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है जहाँ तथ्यों को संकेतों के विज्ञान से उल्लेखित किया जाता है। महाद्वीपीय दर्शन में इस शब्द का आम तौर पर इसी तरह प्रयोग किया जाता है।

हालांकि, इस शब्द का प्रयोग संरचनात्मक दृष्टिकोण के विविध सन्दर्भ जैसे कि सामाजिक नेटवर्क विश्लेषण और वर्ग विश्लेषण में भी किया जाता है। इस अर्थ में संरचनावाद संरचनात्मक विश्लेषण या संरचनात्मक समाजशास्त्र का पर्याय बन गया है, जिनमें से बाद वाले को इस प्रकार परिभाषित किया गया है "एक ऐसी पहल जिसमें सामाजिक संरचना, अवरोध तथा अवसरों को अधिक स्पष्ट रूप से देखा जाये यह सांस्कृतिक मानदंडों या अन्य व्यक्तिपरक चीज़ों की अपेक्षा मानव व्यवहार पर अधिक प्रभाव डालता है।

इतिहास

20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में संरचनावाद को शिक्षा में सम्मिलित किया गया और भाषा, संस्कृति एवं समाज के विश्लेषण से संबंधित शिक्षा के क्षेत्रों में यह सबसे अधिक लोकप्रिय बन गया। फर्डिनेन्ड डी सौसर के भाषा शास्त्र से संबंधित कार्य को सामान्य रूप से संरचनावाद का प्रारंभिक बिंदु माना जाता है। फ्रांसीसी मानवविज्ञानी क्लॉड लेवी-स्ट्रॉस के कार्यों में खुद "संरचनावाद" शब्द प्रकट हुआ और फ्रांस में "संरचनावादी आंदोलन" को प्रोत्साहन दिया, जिसने लुई अल्थूजर, मनोविश्लेषक जैक्स लेकन जैसे विचारकों को ही नहीं संरचनावादी मार्क्सवादी निकोल पोलन्टजास के कार्यों को भी प्रेरित किया। इस आंदोलन के अधिकांश सदस्यों ने अपने को ऐसे किसी भी आंदोलन का एक हिस्सा होने के रूप में वर्णित नहीं किया है। संरचनावाद सांकेतिकता से बहुत घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है। उत्तर-संरचनावाद ने खुद को संरचनात्मक विधि के सरल प्रयोग से अलग करने का प्रयास किया है। डिकन्शट्रक्शन (Deconstruction) संरचनात्मक विचारों से स्वयं को अलग करने की कोशिश थी। जैसे- जूलिया क्रिस्टेवा जैसे कुछ बुद्धिजीवियों ने बाद में उत्तर-संरचनावादी बनने के लिए संरचनावाद को एक प्रारंभिक बिंदु के रूप में लिया। सामाजिक विज्ञान में संरचनावाद के प्रभाव की कई स्थितियां हैं: जो समाजशास्त्र के क्षेत्र में बहुत मायने रखता है।

भाषा विज्ञान में संरचनावाद

संरचनावाद बताता है कि मानव संस्कृति को संकेतों की एक प्रणाली समझा जाना चाहिए। रॉबर्ट स्कोल्स ने संरचनावाद को आधुनिकतावादी अलगाव तथा निराशा की प्रतिक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। संरचनावादियों ने एक सांकेतिक विज्ञान विकसित करने का प्रयास किया। फर्डिनेंड डी सौसर 20 वीं सदी के संरचनावाद के प्रवर्तक माने जाते हैं और इसके सबूत हमें उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके छात्रों के नोटों पर आधारित उनके सहयोगियों द्वारा लिखे गये कोर्स इन जनरल लिंग्विलिस्ट में मिल सकते हैं, जिसमें उन्होंने भाषा के इस्तेमाल पर नहीं बल्कि भाषा की अंतर्निहित प्रणाली पर ध्यान केंद्रित किया है और अपने सिद्धान्त को संकेत विज्ञान कहा है।

हालांकि, भाषण की जांच करने के माध्यम से ही अंतर्निहित प्रणाली के खोज की जा सकती है। जैसे कि संरचनात्मक भाषाविज्ञान असल में कोष भाषा विज्ञान का पूर्व स्वरूप है। इस दृष्टिकोण ने यह परीक्षण करने पर ध्यान केंद्रित किया कि वर्तमान में भाषा संबंधित तत्व आपस में किस तरह से

सम्बन्धित हुए हैं, वह ये कि, कालक्रमिक तौर पर न कि 'समकालीन' तरीके से, अंत में, उन्होंने तर्क दिया कि भाषाई संकेत दो भागों में बने हैं, शब्द रूप (शब्द की ध्वनि के लक्षण, या तो मानसिक प्रक्षेपण में, जैसा कि हम कविता की पंक्तियां चुपचाप अपने लिए पढ़ते हैं- या फिर वास्तविक रूप में, वाचक के रूप में भौतिक तौर पर बोलते हुए) और एक अवधारणा के रूप में यह पिछले दृष्टिकोणों से काफी भिन्न था जिसने दुनिया में शब्दों और उनसे सम्बन्धित वस्तुओं के बीच के रिश्ते पर ध्यान केंद्रित किया (रॉय हैरिस और टैलबोट टेलर, लैंडमार्क्स इन लिंग्विस्टिक थॉट, प्रथम अंक [1989].

संरचनात्मक भाषा विज्ञान में प्रतिमान, वाक्य विन्यास और मूल्य कुंजी या मुख्य विचार हैं, हालांकि सौसर के विचार में अभी तक इन विचारों को पूरी तरह से विकसित नहीं किया गया था। एक संरचनात्मक प्रतिमान असल में भाषाई इकाइयों का एकवर्ग है, जो किसी निर्धारित स्थिति में दिए गए भाषाई पर्यावरण में (जैसे कि दिए गए वाक्य में) हो, जो सिन्टैम है। प्रतिमान के इन प्रत्येक सदस्यों के विभिन्न कार्यों की भूमिका को वैल्यू (फ्रेंच में वैल्यूर) कहा जाता है। संरचनावादी आलोचना संरचना के एक बड़े व्यापक साहित्यिक पाठ से संबंधित है जो रूपांकन हो सकता है। एक विशेष शैली, अंतर-वाचनिक संबंधों की श्रेणी, एक सार्वभौमिक वाचिक संरचना का नमूना या आवर्ती या नमूनों या रूपांकन की एक व्यवस्था की कथा की एक धारणा भी हो सकती है।

सौसर के पाठ्यक्रम (कोर्स) ने प्रथम विश्वयुद्ध (WWI) और द्वितीय विश्वयुद्ध (WWII) के बीच कई भाषाविदों को प्रभावित किया था, जैसे- संयुक्त राज्य अमेरिका में लिओनार्ड ब्लूमफिल्ड ने, डेनमार्क में लुई जेमस्लेश ने तथा नॉर्वे में ऑल्फ़ सामरफेल्ट ने अपना निजी संरचनात्मक भाषा विज्ञान विकसित किया। फ्रांस में एनटोनी मिलेट तथा एमिली बेनवेनिस्ट सौसर का कार्यक्रम जारी रखेंगे, हालांकि, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भाषा विज्ञान के प्राग स्कूल के सदस्य, जैसे रोमन जेकॉबसन एवं निकोलाइ ट्रूबेजकोय ने शोध किया, जो काफी प्रभावशाली होगा।

प्राग स्कूल के संरचनावाद का सबसे स्पष्ट उदाहरण स्वनिम के दृष्ट में निहित है। प्राग स्कूल में भाषा की विभिन्न आवाजों का संकलन कर सिर्फ उनकी सूची ही नहीं बनायी जाती थी बल्कि यह जांच भी की जाती थी कि वे आपस में किस प्रकार से सम्बन्धित थे। उन्होंने साबित कर दिया कि भाषा में ध्वनियों का संकलन कर उनके व्यतिरेक की श्रृंखला बनाकर उन्हें विश्लेषित किया जा सकता था। इस प्रकार लगता है कि अंग्रेजी में /पी/ और

/ब/ अलग ध्वनिग्राम का प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि ऐसे मामले हैं जहाँ दोनों के बीच केवल दो विपरीत शब्दों (जैसे 'पैट' और 'बैट') जितना अंतर है। विरोधी वैशिष्ट्यों की दृष्टि से ध्वनियों का विश्लेषण तुलनात्मक क्षेत्र प्रस्तुत करता है, जैसे यह स्पष्ट करता है कि जापानी वक्ताओं को अंग्रेजी की /आर/ और /एल/ ध्वनियों में अंतर करने में जो कठिनाई होती है, वह इसलिए है क्योंकि जापानी में ये ध्वनियां परस्पर विरोधी नहीं हैं। हालांकि यह दृष्टिकोण अब भाषाविज्ञान में मानक है, पर उस समय यह क्रांतिकारी था। ध्वनि विज्ञान विभिन्न क्षेत्रों में संरचनावाद के लिए निर्देशानात्मक आधार बन जाएगा।

नृविज्ञान तथा समाजशास्त्र में संरचनावाद

नृविज्ञान और सामाजिक नृविज्ञान में संरचनात्मक सिद्धांत के अनुसार अर्थ एक संस्कृति के अन्दर विभिन्न तरीकों, घटनाओं तथा गतिविधियों के द्वारा से उत्पादित और पुनरुत्पादित होता है, जिसका महत्वपूर्ण प्रणालियों के रूप में प्रयोग किया जाता हैं। एक संरचनावादी भोजन बनाने एवं परोसने की तैयारी, धार्मिक संस्कारों, खेल, साहित्यिक और गैर साहित्यिक ग्रंथों के रूप में विभिन्न गतिविधियों तथा मनोरंजन के अन्य रूपों का अध्ययन कर एक संस्कृति के भीतर उन गंभीर संरचनाओं का पता लगाता है जिनके द्वारा अर्थ को उत्पादित तथा पुनरुत्पादित किया जाता है। जैसे- संरचनावाद के एक प्रारम्भिक एवं प्रमुख वृत्तिक, नृवंशविज्ञानशास्त्री और मानव विज्ञानी क्लॉड लेवी स्ट्रास ने 1950 में पौराणिक कथाओं, संबंधों (गठबंधन सिद्धांत और कौटुम्बिक व्यभिचार निषेधाों) तथा भोजन की तैयारी सहित सांस्कृतिक घटनाओं का विश्लेषण किया। इन अध्ययनों के अतिरिक्त उन्होंने अधिक भाषायी-केंद्रित लेखन किया जहाँ उन्होंने मानव मस्तिष्क की मौलिक संरचनाओं की खोज के लिए भाषा और पैरोल के बीच सौसर के पार्थक्य का व्यवहार किया, उनका तर्क है कि समाज के "गंभीर व्याकरण" की रचना करने वाली संरचनाएँ हमारे दिमाग में उत्पन्न होती हैं और हमारे अन्दर अनजाने में कार्य करती हैं।

एक अन्य अवधारणा प्राग स्कूल से उधार ली गयी, जिसमें रोमन जैकब्सन तथा अन्य लोगों ने कतिपय विशेषताओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर ध्वनियों का विश्लेषण किया। लेवी स्ट्रास ने इसे अपने मस्तिष्क की सार्वभौमिक संरचनाओं की अवधारणा में सम्मिलित जिसका उसने गर्म-ठंडा, पुरुष-महिला, संस्कृति-प्रकृति, पक्के-कच्चे या विवाह बनाम निषिद्ध औरतों के विपरीत युग्मक जोड़ों पर आधारित प्रवर्तन में उपयोग

किया। एक तीसरा प्रभाव मार्सेल मौस से आया जिसने उपहार विनिमय प्रणाली पर लिखा है। जैसे- मौस के आधार पर लेवी स्ट्रास ने तर्क दिया कि सम्बन्ध प्रणालियां समूहों के बीच महिलाओं के आदान-प्रदान पर आधारित है जैसा कि एडवर्ड इवांस प्रिचर्ड और मेयर फोर्टेस द्वारा वर्णित 'वंश' के सिद्धांत के विरोध में किया गया है।

1960 और 1970 के दशक में अपने इकोले पर्तिकुए हौतेस इतुदेस (Ecole Pratique des Hautes Etudes) चेयर में मार्सेल मौस को हटा कर लेवी स्ट्रास का लेखन बहुत लोकप्रिय हुआ तथा इसने स्वयं "संरचनावाद" शब्द को काफी विस्तार दिया, ब्रिटेन में रॉडने नीद्हम एवं एडमंड लीच जैसे लेखक संरचनावाद द्वारा अत्यधिक प्रभावित थे। फ्रांस में मौरिस गॉडलियर और एमैनुअल टेरी जैसे लेखकों ने मार्क्सवाद को संरचनात्मक नृविज्ञान के साथ जोड़ा, संयुक्त राज्य अमेरिका में मार्शल सलिन्स और जेम्स बून जैसे लेखक मानव समाज का अपना विश्लेषण उपलब्ध कराने के लिए संरचनावाद की सहायता के द्वारा आगे बढ़े, 1980 के दशक में कई कारणों की वजह से संरचनात्मक नृविज्ञान ने अपनी लोकप्रियता खो दी। डी अन्द्रेड (1995) की मान्यता है कि नृविज्ञान में संरचनावाद अंततः त्याग दिया गया क्योंकि इसमें मानव मस्तिष्क की सार्वभौमिक संरचना के सम्बन्ध में प्रमाणित न की जा सकने योग्य मान्यताओं को प्रचलित किया गया था। एरिक वुल्फ जैसे लेखकों ने तर्क दिया कि राजनीतिक अर्थव्यवस्था तथा उपनिवेशवाद को नृविज्ञान के मामले में और अधिक आगे रखा जाना चाहिए। और सामान्य रूप से पियरे और्दिउ द्वारा संरचनावाद की आलोचनाएं इस विचार की ओर ले गयीं कि मानव संस्थाएं तथा व्यवहार किस प्रकार सांस्कृतिक एवं सामाजिक संरचनाओं को परिवर्तित रहे थे, एक ऐसा चलन जिसे शोरी आटनर ने 'अभ्यास सिद्धांत' कहा है।

हालांकि, कुछ नृविज्ञानी सिद्धान्तवादी जो लेवी स्ट्रास के संरचनावाद के संस्करण में उल्लेखनीय गलतियाँ खोज चुके थे, मानव संस्कृति के लिए एक बुनियादी संरचनात्मक आधार से पीछे नहीं हट सके। जीवात्जीवोत्पत्ति संबंध ी संरचनावाद समूह ने तर्क दिया कि संस्कृति के लिए किसी प्रकार का संरचनात्मक आधार होना चाहिए क्योंकि प्रत्येक इंसान के मस्तिष्क के ढाँचे की प्रणाली एक ही तरह की होती है। उन्होंने एक प्रकार के न्यूरोएनथ्रोपोलॉजी को प्रस्तावित किया जा सांस्कृतिक एकरूपता का आधार बनता तथा सांस्कृतिक एंथ्रोपोलॉजी तथा न्यूरोसाइंस के बीच एकीकरण में विभिन्नता कायम करता-एक ऐसा कार्यक्रम जिसे विक्टर टर्नर जैसे सिद्धांतकार ने अपनाया था।

NOTES

साहित्यिक सिद्धांत में संरचनावाद अंतर्निहित अपरिवर्तनीय संरचना की जाँच द्वारा वाचन सामग्री के विश्लेषण करने की व्यवस्था है जो फर्डिनेन्ड डी सौसर की भाषाई संकेत प्रणाली पर आधारित है। संरचनावादियों का माना है कि प्रत्येक पाठ में संरचना होनी चाहिए, जो इसकी व्याख्या करता हैं कि अनुभवी पाठकों के लिए किसी पाठ को समझना किसी गैर अनुभवी पाठके के मुकाबले किस प्रकार से ज्यादा आसान है। इसलिए, वे कहते हैं कि जो कुछ भी लिखा है वह "साहित्य के व्याकरण" के विशिष्ट नियमों द्वारा नियंत्रित प्रतीत होता है, जिसे लोग शैक्षिक संस्थान में सीखते हैं तथा इसे अनावृत किया जाना चाहिए। संरचनावादियों के स्पष्टीकरण की एक संभावित समस्या यह है कि वह बहुत संक्षिप्त हो सकता है जैसा कि विद्वान कैथरीन बेल्सी ने कहा है, "सभी मतभेदों को ढहा देने वाला संरचनावादी खतरा" ऐसे पठन का उदाहरण तब हो सकता है जब कोई छात्र वेस्ट साइड स्टोरी पढ़ने के बाद लिखता है कि लेखक ने "वास्तव" में कुछ नया नहीं लिखा है, क्योंकि उनके लेखनक में शेक्सपियर की रोमियो जूलियट जैसी संरचना है। दोनों ही अवतरणों में एक लड़की तथा एक लड़के में प्यार दर्शाया गया है (उन दोनों के बीच में प्रतीकात्मक ऑपरेटर "सूत्र" होगा **"लड़का + लड़की"**) जबकि वे दोनों ऐसे समूहों से सम्बन्धित थे जो आपस में नफरत करते थे (**"लड़के का समूह-लड़की का समूह" या "विपक्षी गुट"**) और यह संघर्ष उनकी मौत के बाद ही खत्म हुआ। संरचनावादी पाठन में इस बात पर अधिक ध्यान दिया जाता है कि एकल पाठ किस प्रकार से कथा की संरचनाओं में अंतर्निहित तनाव को मिटाता है। अगर एक संरचनावादी पाठन कई पाठों पर केंद्रित होता है, तब उनमें ऐसी कोई सुसंगत प्रणाली अवश्य होनी चाहिए जिससे वे पाठ एक दूसरे से सम्बन्धित बने रहें।

संरचनावाद में ऐसी बहुमुखी प्रतिभा है कि एक ही कहानी को साहित्यिक आलोचना से भिन्न रूप दिया जा सकता है, जैसे कि दो मित्रवत परिवार (**"लड़के का परिवार + लड़की का परिवार"**) अपने बच्चों की शादी तय कर देते हैं, यह जानते हुए कि दोनों बच्चे (**"लड़का - लड़की"**) एक-दूसरे से नफरत करते हैं तथा अन्त में इस शारी से दूर रहने के लिए वे दोनों आत्महत्या कर लेते हैं; इसका निष्कर्ष यह है कि दूसरी कहानी की संरचना पहली कहानी की संरचना के एकदम विपरीत है: दो प्यार करने वाली तथा दोनों जोड़ों के परिवार के रिश्ते में एकदम उल्टा संबंध दिखाया गया है।

संरचनावाद की साहित्यिक आलोचना का तर्क है कि "साहित्यिक पाठ का नवीन मूल्य" नई संरचना के स्थान पर चरित्र विकास एवं आवाज की बारीकियों में विद्यमान हो सकता है, जिससे संरचना व्यक्त की जाती है। साहित्यिक संरचनावाद की एक शाखा, जैसे कि फ्रायडवाद, मार्क्सवाद एवं परिवर्तनकारी व्याकरण, एक गहरी और एक सतही संरचना, दोनों को मानते हैं। फ्रायडवाड और मार्क्सवाद में गहरी संरचना एक कहानी है, फ्रायड के मामले में लड़ाई अंततः जिंदगी सहज मौत की सहज प्रवृति के बीच है और मार्क्स में संघर्ष वर्गों के बीच है जिसकी जड़ें आर्थिक आधार में "निहित" हैं।

साहित्यिक संरचनावाद कथाओं, मिथकों और हाल ही में लघुकथाओं में आधारभूत गहरे तत्वों की तलाश के लिए अक्सर व्लादिमीर प्राप, अलग्रिडस जूलियन ग्रेमस एवं क्लॉड लेवी स्ट्रास के दृष्टान्तों का अनुसरण करते हैं, जो विभिन्न प्रकार से उर-कहानी (ur-story) या उर-मिथकों (ur-myth) के अनेक संस्करणों के उत्पादन से संयुक्त हैं। फ्रायड तथा मार्क्स की तरह लेकिन परिवर्तनकारी व्याकरण के विपरीत ये बुनियादी तत्व अर्थ-वाहक हैं।

संरचनात्मक साहित्यिक सिद्धांत तथा नार्थरोप फ्राई की आद्यप्ररूपीय आलोचना के मध्य काफी समानता है, जो मिथकों के मानवशास्त्रीय अध्ययन का भी ऋणी है। कुछ आलोचकों ने व्यक्तिगत कार्यों के सिद्धांत को भी लागू करने की कोशिश की लेकिन व्यक्तिगत काम में अनूठी संरचनाओं को खोजने का प्रयास संरचनात्मक कार्यक्रम के प्रतिकूल चलता है तथा इसका नई आलोचना से सादृश्य है।

साहित्यिक संरचनावाद की अन्य शाखा सांकेतिकता है तथा यह फर्डिनेन्ड डी सौसर के काम पर आधातिर है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संरचनावाद

1940 एवं 1950 के दशकों में जीन पॉल सारट्रे द्वारा प्रतिपादित अस्तित्ववाद प्रमुख भाव था। फ्रांस में प्रथम विश्वयुद्ध के बाद और विशेष रूप से 1960 के दशक में संरचनावाद सुर्खियों में आया। फ्रांस में संरचनावाद की आरंभिक लोकप्रियता ने इसे दुनिया भर में प्रसारित कर दिया। सामाजिक वैज्ञानिक इससे बहुत अधिक प्रभावित थे।

संरचनावाद ने मानव स्वतंत्रता तथा पंसद की अवधारणा को नकार दिया और इस बात पर बल दिया कि मानव व्यवहार विभिन्न संरचनाओं से निर्धारित

होता है। इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण प्रारंभिक काम क्लॉड लेवी स्ट्रास का 1949 का संस्करण एलिमेंटरी स्ट्रक्चर्स ऑफ किनशिप था। लेवी स्ट्रास प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान न्यूयार्क में जैकब्सन के संपर्क में आए थे और वे जैकब्सन के संरचनावाद और अमेरिकी मानव विज्ञान परंपरा दोनों से प्रभावित थे। एलीमेंट्री स्ट्रक्चर्स में उन्होंने संरचनात्मक दृष्टिकोण से संबंध प्रणाली की जांच की स्पष्ट किया कि वास्तव में विभिन्न सामाजिक संगठन कितनो स्पष्ट रूप से कुछ आधारभूत संबंध संरचनाओं का परिवर्तित रूप है। 1950 के दशक के उत्तरार्द्ध में उन्होंने संरचनावादी मानवविज्ञान प्रकाशित किया जो संरचनावाद के लिये उनके कार्यक्रम की रूपरेखा पर लिखे निबंधों का एक संग्रह है।

1960 के दशक के पूर्वार्द्ध तक संरचनावाद स्वयं एक आंदोलन के रूप में सामने आने लगा तथा कुछ लोगों का मानना था कि यह मानव जीवन के लिए एक ऐसा एकीकृत तरीका प्रस्तुत करता है जो सभी दृष्टिकोणों को गले लगाएगा। रोलाण्ड बर्थेस एवं जैक्स डेरिडा ने इस बात पर ध्यान केंद्रित किया कि संरचनावाद को किस प्रकार से साहित्य में प्रयोग किया जा सकता है।

फ्रायड और डी सौसर का सम्मिश्रण एक फ्रांसीसी (उत्तर) संरचनावादी जैक्स लेकन ने संरचनावाद का मनोविश्लेषण में प्रयोग किया और जीन पिगेट ने अलग तरीके से संरचनावादर को मनोविज्ञान के अध्ययन में शामिल किया। लेकिन जीन पिगेट जो स्वयं को बेहतर रचनावादी के रूप में परिभाषित करते हैं, संरचनावाद को "सिद्धांत नहीं एक विधि" मानते हैं क्योंकि उनके लिए "संरचना के बिना कोई निर्माण नहीं होता, चाहे वह अमूर्त हो या आनुवांशिक"

मिशेल फोकाल्ट की पुस्तक द ऑर्डर ऑफ थिंग्स ने यह पता लगाने के लिए विज्ञान के इतिहास की जांच की कि ज्ञानमीमांसा या ज्ञान की संरचनाओं ने किस प्रकार ऐसा मार्ग बनाया जिससे लोगों ने ज्ञान और जानकारी की कल्पना की (हालांकि फोकाल्ट ने बाद में स्पष्ट रूप से इसके साथ संबद्धता से इनकार कर दिया)

ठीक इसी प्रकार से, विज्ञान के अमेरिकी इतिहासकार थॉमस कून ने अपने मौलिक विज्ञान की संरचनाओं में भी द स्ट्रक्चर ऑफ साइंटिफिक रिवोल्यूशन्स - जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, अपने कठोर संरचनावादी होने का ही अहसास कराया, हालांकि "ज्ञान" ("episteme") से कम सम्बन्ध रखने के बावजूद भी कून ने टिप्पणी की कि वैज्ञानिकों की सभा ने एक मानक 'प्रतिमान' से हटकर केवल परस्पर-विरोधी विसंगतियों की अवस्था में

'सामान्य विज्ञान' को किस प्रकार लागू तथा संचालित किया, जो उनके कार्य के महत्वपूर्ण ढांचे पर सवाल उठाता है।

मार्क्स और संरचनावाद का सम्मिश्रण कर एक अन्य फ्रांसीसी विचारक लुई एल्थुजर ने संरचनात्मक सामाजिक विश्लेषण के अपने निजी ब्रांड से परिचित कराया एवं संरचनात्मक मार्क्सवाद को विस्तार दिया। तब से फ्रांस और विदेशों में अन्य लेखकों ने संरचनात्मक विश्लेषण को प्रत्येक व्यवस्था में व्यावहारिक रूप से विस्तारित किया।

अपनी लोकप्रियता के फलस्वरूप 'संरचनावाद' की परिभाषा भी स्थानांतरित की गयी। एक आंदोलन के रूप में अपनी लोकप्रियता के विस्तृत होने एवं फीके पड़ जाने के पश्चात् कुछ लेखकों ने केवल बाद में इस अवधारणा का त्याग करने के लिए अपने को 'संरचनावादी' माना।

फ्रेंच और अंग्रेजी में इस शब्द का अर्थ कुछ अलग है। जैसे अमेरिका में डेरिडा को उत्तर संरचनावाद का प्रतिमान माना गया है जबकि फ्रांस में उसे संरचनावादी चिह्नित किया गया है। अंततः, कुछ लेखकों के कई भिन्न-भिन्न शैलियों में लिखा।

संरचनावाद पर प्रतिक्रियाएँ

वर्तमान समय में संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और डिकन्शट्रक्शन (deconstruction) जैसे दृष्टिकोणों की अपेक्षा कम लोकप्रिय है। इसके कई कारण हैं। अक्सर, संरचनावाद की आलोचना अनैतिहासिक होने तथा व्यक्तिगत क्षमता से कार्य करने की अपेक्षा नियतात्मक संरचनात्मक का पक्ष लेने के लिए की गई है। 1960 और 1970 के दशक की राजनीतिक हलचल शिक्षा को प्रभावित करने लगी, शक्ति तथा राजनीतिक संघर्ष के मुद्दों को लोगों के ध्यान के केन्द्र में ले जाया गया। एथनोलाजिस्ट (Ethnologist) रॉबर्ट जुलिन ने एक अलग एथनोलॉजिकल विधि को स्पष्ट किया जिसने स्पष्ट रूप से संरचनावाद के विरूद्ध अपने को दागदार बनाया।

1980 के दशक में डिकन्शट्रक्शन (deconstruction) और भाषा की बुनियादी अस्पष्टता पर इसका प्रभाव- अपनी पारदर्शी तार्किक संरचना की तुलना में अधिक लोकप्रिय बन गया। सदी के अंत तक संरचनावाद को विचारों के एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सम्प्रदाय के रूप में देखा जाने लगा लेकिन यह स्वयं संरचनावाद की जगह, इसके द्वारा आरम्भ किये जाने वाले आंदोलन थे, जिन्होंने ध्यान आकर्षित किया था।

NOTES

3.4.3 सम्बन्धवाद अर्थात् संयोजनवाद :

सम्बन्धवाद सम्प्रदाय में साहचर्यवाद तथा प्रकार्यवाद दोनों का मिश्रण पाया गया है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक एडवर्ड ली थॉनडाइक है, उन पर अलेक्ज़ेन्डर बेन के सिद्धान्त जिसमें बेन का मानना था कि 'मानसिक विकास शारीरिक तंत्रिकाओं तथा उनके परस्पर सम्बन्धों के विकास का परिणाम होता है' का प्रभाव थॉर्नडाइक पर पड़ा। बेन का मानना था कि जितने जटिल शरीर की तंत्रिका और उनके सम्बन्ध होते हैं ठीक उसी प्रकार मानसिक प्रक्रियाएँ भी। इस सम्बन्ध में राममूर्ति लूम्बा ने कहा- "सम्बन्धवाद में साहचर्यवाद और प्रकार्यवाद का मिश्रण है। इसका प्रवर्तक एडवर्ड ली थॉर्नडाइक हुआ। यह अलेक्ज़ेन्डर बेन के इस सिद्धान्त से प्रभावित था कि मानसिक विकास शरीर में तंत्रिकाओं तथा उनके परस्पर सम्बन्धों के विकास का प्रतिफल होता है, तथा जितने ही ये सम्बन्ध जटिल होते जाते हैं, उनसे उत्पन्न मानसिक प्रक्रियाएँ भी उतनी ही जटिल होती जाती हैं।" उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि इस सिद्धान्त द्वारा शारीरिक तंत्रिकाओं तथा उनके परस्पर सम्बन्ध ों के संयोजन के विषय में अध्ययन किया गया है। इससे लगता है कि इस सिद्धांत को संयोजनवाद की संज्ञा भी दी गई है। मनोविज्ञान में संयोजनवाद की विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है। इस सिद्धांत में स्पष्ट किया गया है कि सभी मानसिक प्रकार्यों का नियंत्रण तंत्रिकाओं के संयोजनों पर निर्भर होता है। राममूर्ति लूम्बा के अनुसार- "संयोजनवाद का सिद्धान्त है कि सीखना ही मनोविज्ञान का प्रमुख विषय तथा उसकी प्रमुख समस्या है। क्योंकि सभी मानसिक प्रकार्यों का नियंत्रण तंत्रिकाओं के संयोजनों पर निर्भर तंत्रिकीय ध ारा के वहन से होता है, अतः थॉर्नडाइक ने सीखने के अध्ययनों के आधार पर ही सम्पूर्ण व्यवहार सिद्धान्त को आधारित किया। उसने सीखने को प्रयत्नमूल, चयन एवं अन्तर्ग्रथन की प्रक्रिया कहा।" थॉर्नडाइक ने माना कि सीखना ही मनोविज्ञान का प्रमुख विषय है तथा यही इसकी सबसे प्रमुख समस्या भी है। उन्होंने सीखने को प्रयत्नमूल, चयन एवं अन्तर्ग्रथन की प्रक्रिया माना। इस सन्दर्भ में थॉनडाइक का मानना था कि **"सीखने की प्रक्रिया का मुख्य नियम, परिणाम-नियम अर्थात् सुख-प्राप्ति का नियम है।"** इस प्रकार हम पाते हैं कि थॉनडाइक ने सीखने की प्रक्रिया के नियम को सुख-प्राप्ति के नियम की संज्ञा दी है। थॉनडाइक ने सीखने की प्रक्रिया की अवधारणा के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण मत जो जीव की संतुष्टि को दर्शाता है जिसमें थॉर्नडाइक ने कहा है कि "किन्हीं परिस्थितियोंवश की हुई अनेक प्रतिक्रियाओं में से, वे प्रतिक्रियाएँ उस परिस्थिति के साथ अधिक

पक्के रूप से सम्बद्ध को जायेंगी, जिनके साथ-साथ, अथवा जिनके पश्चात्, शीघ्र ही जीव को संतुष्टि की प्राप्ति होगी, उतना ही अधिक यह परिस्थिति-प्रतिक्रिया सम्बन्ध मजबूत हो जायेगा।"

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि अनेक प्रतिक्रियाएँ परिस्थितिवश होती है लेकिन वे प्रतिक्रियाएँ जीव को अधिक संतुष्टि प्रदान करती है जिनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। इस संदर्भ में आगे कहा है कि "उत्प्रेरणामूर्ति के अनेक सफल, असफल प्रयत्नों में असफलता तथा खीझ की ओर ले जाने वाली क्रियाएँ छूट जाती है और सफलता अर्थात् सुखसंतुष्टि की ओर जाने वाली क्रियाएँ पकड़ जाती है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि थॉनडाइक द्वारा प्रतिपादित सम्बन्धवाद अर्थात् संयोजनवाद ने मनोविज्ञान के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। जिसमें उन्होंने शरीर में तंत्रिकाओं और उनके परस्पर सम्बन्धों के विकास के सम्बन्ध में चर्चा की है। उन्होंने सीखना ही मनोविज्ञान का प्रमुख विषय माना है और यह भी बताया है कि सभी मानसिक प्रकार्यों का नियंत्रण तंत्रिकाओं के संयोजन पर निर्भर होता है। जिससे स्पष्ट है कि इस सिद्धांत ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है

"किन्हीं परिस्थितियोंवश की हुई अनेक प्रतिक्रियाओं में से, वे प्रतिक्रियाएँ उस परिस्थिति के साथ अधिक पक्के रूप से सम्बद्ध हो जायेगी, जिनके साथ-साथ, अथवा जिनके उपरान्त, शीघ्र ही जीव को संतुष्टि की प्राप्ति होगी। पुनः जब यह परिस्थिति आयेगी, जीव में उन्हीं प्रतिक्रियाओं के करने की प्रवृत्ति अधिक होगी, अन्य प्रतिक्रियाओं की बहुत कम। जितनी ही अधिक संतुष्टि होगी, उतना ही अधिक यह परिस्थिति-प्रतिक्रिया सम्बन्ध पुष्ट हो जायेगा।"

उपर्युक्त वक्तव्य से स्पष्ट होता है कि अनेक प्रतिक्रियाएँ परिस्थितिवश होती है लेकिन वे प्रतिक्रियाएँ जीव को अधिक संतुष्टि प्रदान करती है जिनके साथ पक्के सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। इस संदर्भ में आगे कहा है कि "उत्प्रेरणापूर्ति के अनेक सफल, असफल प्रयत्नों में असफलता एवं खीझ की ओर ले जाने वाली क्रियाएँ छूट जाती हैं और सफलता अर्थात् सुखसंतुष्टि की ओर जाने वाली क्रियाएँ पकड़ जाती हैं।" उपर्युक्त अध्ययन उपरांत यह पाया गया है कि थॉनडाइक द्वारा प्रतिपादित सम्बन्धवाद अर्थात् संयोजनवाद ने मनोविज्ञान के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका का कार्य किया। जिसमें उन्होंने देह में तंत्रिकाओं और उनके परस्पर सम्बन्धों के विकास के बारे में चर्चा की

है। उन्होंने सीखना ही मनोविज्ञान का प्रमुख विषय माना है और यह भी बताया है कि सभी मानसिक प्रकार्यों का नियंत्रण के संयोजन पर निर्भर है। जिससे मालूम होता है कि इस सिद्धांत ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. मानवतावादी शिक्षा के उद्देश्य बताइए।
2. मानवतावाद और पाठ्यक्रम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. मानवतावाद के सम्बन्ध में एच. जी. गुड के विचार बताइए।
4. संरचनावाद से आप क्या समझते हैं? इसके इतिहास का उल्लेख कीजिए।
5. भाषा विज्ञान में संरचनावाद की समीक्षा कीजिए।
6. नृविज्ञान तथा समाजशास्त्र में संरचनावाद का उल्लेख कीजिए।
7. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संरचनावाद को स्पष्ट कीजिए।
8. सम्बन्धवाद की व्याख्या कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. मानवतावाद से क्या अभिप्राय है ?
2. मानवतावादी शिक्षा के अनुसार पाठ्यक्रम कैसा होना चाहिए?
3. मानवतावादी पाठ्यक्रम का वर्णन कीजिए।
4. मानवतावादी शिक्षक और शिक्षार्थी के सम्बन्ध बताइए।
5. संरचनावाद की प्रक्रियाएँ समझाइए।

8 पुरातन भारतीय परिपेक्ष्य (बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, वेदान्त दर्शन तथा सांख्यदर्शन)

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- बौद्ध का दर्शन अर्थ
- बौद्ध धर्म की विशेषताएँ
- बौद्ध धर्म के सिद्धान्त
- बौद्ध दर्शन तथा शिक्षा
- बौद्ध दर्शन में शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य
- बौद्ध दर्शन तथा शिक्षार्थी
- बौद्ध दर्शन तथा शिक्षक
- बौद्ध दर्शन तथा अनुशासन
- बौद्ध दर्शन तथा पाठ्यक्रम
- बौद्ध दर्शन तिा शिक्षण विधियाँ
- जैन दर्शन की अवधारणा
- जैन दर्शन के सिद्धान्त
- जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा
- शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य
- जैन दर्शन के अनुसार पाठ्यक्रम
- जैन दर्शन तथा शिक्षण विधियाँ
- जैन दर्शन तथा शिक्षक
- जैन दर्शन का ज्ञानप्रसार
- वेदान्त दर्शन का अर्थ एवं परिभाषा
- वेदान्त दर्शन की तत्व मीमांसा
- वेदान्त दर्शन की ज्ञान एवं तर्क मीमांसा
- वेदान्त दर्शन की मूल्य एंव आचार मीमांसा
- वेदान्त दर्शन के मूल सिद्धान्त
- वेदान्त दर्शन तथा शिक्षा

NOTES

- शिक्षा की पाठ्यचर्या
- शिक्षण विधियाँ
- अनुशासन
- शिक्षार्थी
- विद्यालय
- सांख्य दर्शन का अर्थ एवं परिभाषा
- सांख्य दर्शन के मूल सिद्धान्त
- सांख्य दर्शन तथा शिक्षा
- शिक्षा की पाठ्यचर्या
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे-

- बौद्ध का दर्शन अर्थ
- बौद्ध धर्म की विशेषताएँ
- बौद्ध धर्म के सिद्धान्त
- बौद्ध दर्शन तथा शिक्षा
- बौद्ध दर्शन में शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य
- बौद्ध दर्शन तथा शिक्षार्थी
- बौद्ध दर्शन तथा शिक्षक
- बौद्ध दर्शन तथा अनुशासन
- बौद्ध दर्शन तथा पाठ्यक्रम
- बौद्ध दर्शन ताि शिक्षण विधियाँ
- जैन दर्शन की अवधारणा
- जैन दर्शन के सिद्धान्त
- जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा
- शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य
- जैन दर्शन के अनुसार पाठ्यक्रम
- जैन दर्शन तथा शिक्षण विधियाँ
- जैन दर्शन तथा शिक्षक
- जैन दर्शन का ज्ञानप्रसार

- वेदान्त दर्शन का अर्थ एवं परिभाषा
- वेदान्त दर्शन की तत्व मीमांसा
- वेदान्त दर्शन की ज्ञान एवं तर्क मीमांसा
- वेदान्त दर्शन की मूल्य एंव आचार मीमांसा
- वेदान्त दर्शन के मूल सिद्धान्त
- वेदान्त दर्शन तथा शिक्षा
- शिक्षा की पाठ्यचर्या
- शिक्षण विधियाँ
- अनुशासन
- शिक्षार्थी
- विद्यालय
- सांख्य दर्शन का अर्थ एवं परिभाषा
- सांख्य दर्शन के मूल सिद्धान्त
- सांख्य दर्शन तथा शिक्षा
- शिक्षा की पाठ्यचर्या

प्राक्कथन

प्राचीन काल से संसार में दुःख तथा दुःख की निवृत्ति के लिए बड़े-बड़े ऋषियों ने अपनी तापसी प्रकृति से इसे दूर करने के प्रयास किये हैं। बाह्य एवं आभ्यन्तर साधनों के द्वारा ज्ञानी लोग अपनी-अपनी तपस्या में सफल भी हुए हैं। परम तत्त्व के ज्योतिर्मय स्वरूप का उन लोगों ने साक्षात्कार किया है। अपने-अपने अनुभवों को शब्दों के द्वारा लोगों के कल्याण के लिए उन्होंने अपनी शिष्य परम्परा को सिखलाया है। एक व्यक्ति-विशेष की दृष्टि के अनुसार जिस शास्त्र में परम तत्त्व का साक्षात् प्रतिपादन किया गया हो तथा उस अनुभूति के साधन-मार्ग का निर्देश दिया गया हो, वही दर्शनशास्त्र है।

वैदिक काल भारतीय दर्शन का प्राचीनतम एवं आरम्भिक काल है। इस काल में वेद और उपनिषद् जैसे महत्त्वपूर्ण दर्शनों का विकास हुआ है। यह कहना अनुचित न होगा कि सम्पूर्ण भारतीय दर्शन वेद और उपनिषद् की विचारध राओं से प्रभावित है। वेद ईश्वरीय वाणी है। आदिमानव की दार्शनिक विचारधाराओं का मानव-भाषा में सबसे पहला वर्णन वेद में निहित है। चतुर्वेद को आस्तिक दर्शनों ने प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है। उपनिषदों को

NOTES

वेदान्त इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इसमें वेदों का निचोड़ है। उसमें धार्मिक, वैज्ञानिक व दार्शनिक विचार विद्यमान है। इसके अध्ययन से मानव जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। मानवजाति का मार्ग प्रशस्त करने वाली उपनिषदें विश्व-साहित्य के रूप में भी स्वीकृत हुई हैं। भारतीय दर्शन का दूसरा महत्व का काल महाकाव्य काल है। इस काल में ही महाभारत और रामायण जैसे धार्मिक व दार्शनकि ग्रन्थों की रचना हुई है। जैन और बौद्ध धर्म भी इसी काल की देन है।

भारतीय दर्शन का तीसरा काल सूत्र काल के रूप में जाना जाता है। सूत्र-साहित्य के रूप में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, और वेदान्त जैसे महत्वपूर्ण दर्शनों का क्रमिक विकास हुआ। षड्दर्शनों के कारण भारतीय दर्शन मं इस काल को भी महत्त्व दिया जाता है। वेदान्त दर्शन के पश्चात् कई शताब्दियों तक भारत में दर्शन में दृष्टव्य प्रगति ही न हुई। अद्वैत वेदान्त की चरम परिणति के बाद दर्शन की प्रगति का मन्द होना स्वाभाविक था।

भारतीय दर्शन का चौथा काल, यानि वर्तमान काल राजाराम मोहनराय के समय से शुरू होता है। इस काल के मुख्य दार्शनिकों में महात्मा गाँधीजी, रविन्द्रनाथ ठाकुर, डॉ. राधाकृष्णन, के.सी. भट्टाचार्य, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, आदि प्रमुख हैं। इन सभी दार्शनिक विद्वानों ने भारतीय दार्शनिक परम्परा को वेद और उपनिषदों के संदर्भ में पुनर्जीवित किया है।

बौद्ध-दशर्न

ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में विश्व में एक महान् धार्मिक क्रान्ति हुई। इसी काल में अनेकानेक देशों में समाज में आध्यात्मिक और नैतिक अशान्ति हो गयी, और बौद्धिक एवं चिन्तन के अद्वितीय आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। मानव की जिज्ञासा वृन्ति युगों के पंजीभू विश्वासों तथ मतों के आवरण को चीरकर प्रत्येक वस्तु के अन्तःस्तत्व को स्वयं देखना चाहती थी। मानव की तर्कशीलता किसी भी धर्म को अंगीकार कर लेने के पूर्व उसे पूर्णरूपेण जांच लेना चाहती थी। मानव की सत्यान्वेषिणी दृष्टि पुरातन कर्मकाण्ड और धार्मिक व सामाजिक मान्यताओं में शाश्वत् सत्य की खोज करना चाहती थी। मानवी बुद्धि तर्क के सहारे जीवन में गहनातिगहन विषयों की समीक्षा करना चाहती थी। अतः ईसा पूर्व छठी शताब्दी जिज्ञासा तथा तर्कशीलता का युग था, नवीन गवेषणाओं का युग था, सत्य के अन्वेषणों का काल था, इहिलोक और परलोक के रहस्यों के उद्घाटन का काल था। परिणामस्वरूप विश्व में सुधारकों और धर्म प्रवर्तकों ने तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था के

विरोध में अपनी आवाज बुलन्द की और इस व्यवस्था के नवीन आधारों पर पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। विश्व के अनेक देशों में महान् युग व्रवर्तकों का जन्म हुआ। उन्होंने धार्मिक और आध्यात्मिक विचारों पर गहन चिन्तन किया उसके परिणामस्वरूप क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, प्राचीन धर्मों में सुधार हुए, नवीन धर्मां की स्थापना हुई और मनुष्य के जीवन की मान्यताओं का पुनः मूल्यांकन हुआ। इस युग में भारत में भी नवीन विचारों का जन्म हुआ। जिससे क्रान्ति की लहर दौड़ गयी। लोग प्राचीनतम धार्मिक कर्मकाण्डों और सिद्धान्तों से परेशान हो चुके थे। वे उपासना एवं यज्ञ की प्रचलित विधियों तथा इस पार्थिव जीवन के कष्टों से मुक्ति पाने के लिए सतत प्रयत्नशील थे। जिसके परिणाम धर्म और चिन्तन के क्षेत्र में नवीन धर्माचार्यों, चिन्तकों, संन्यासियों, भिक्षुओं, तार्किकी, मीमांसकी श्रमणों, ब्राह्मणों, धर्म-प्रचारकों आदि का जन्म हुआ। ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूम-घूम कर अपने 'वादों' मतों और सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। बौद्ध ग्रन्थ उस युग में प्रचलित ऐसे 62 मतों का वर्णन करते हैं।

ईसा पूर्व की छठी शताब्दी में धार्मिक क्रान्ति और सुधारवादी आन्दोलन के परिणाम स्वरूप बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव था। बौद्ध धर्म के उदय और विकास में ब्राह्मण धर्म को भारी आघात पहुँचाया। महात्मा बुद्ध ने वैदिक धर्म के जटिल और निःसार कर्मकाण्ड एवं यज्ञ-हिंसा के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप एक निवृत्ति मार्गी धर्म की स्थापना की। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में नेपाल राज्य की तराई में बस्ती जिले की पूर्वोत्तरी सीमा पर शक्य क्षत्रियों का एक छोटा-सा गणराज्य था। इसकी राजधानी कपिलवस्तु थी जिसे वर्तमानकाल में तिलोराक़ाट क़हते हैं। कपिलवस्तु में शुद्धोदन नामक एक प्रसिद्ध धन सम्पन्न व्यक्ति थे। इनकी दो पत्नियाँ थी मायादेवी और प्रजापति। मायादेवी युग-प्रसव के लिए अपने मायके देवदह जा रहीं थी। मार्ग में ही कपिलवस्तु से चौदह मील दूर तुम्बनिवन (वर्तमान में रूम्मिनदेई) में उनको 623 ईसा पूर्व में सिद्धार्थ नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह लुम्बिनवन से कपिलवस्तु लौट आयीं तथा प्रसव पीड़ा के कारण सात दिन पश्चात् ही उनका स्वर्गवास हो गया इसलिए सिद्धार्थ की सौतेली माँ प्रजापति गौतमी ने इनका पालन-पोषण किया। कपिलवस्तु के शाक्य सूर्यवंशी क्षत्रिय थे एवं गौतम गोत्र के थे। अतः सिद्धार्थ को शाक्य मुनि एवं गौतम भी कहा जाता है। सिद्धा के जन्म पर कालदेवल नामक तपस्वी और ब्राह्मण कौडिय नाम के एक प्रसिद्ध भविष्य वेत्ता ने उस काल की गृह दशा को देखकर यह भविष्यवाणी की थी-

"इमेहि लक्खगेहि समानन्नागतों अगारं अज्झावसनानों राजाहोति चक्रवर्ती, पब्ब जमानो बुद्धो।" *जातक कथा (अवदूरे निदान) 39ए पृष्ठ 43*

अर्थात् ऐसे लक्षणों वाला व्यक्ति यदि ग्रही हो, तो चक्रवर्ती राजा होगा और यदि प्रवणित हुआ, तो बौद्ध होगा।

सिद्धार्थ जन्म से ही आभायुक्त थे। वे अत्यन्त रूपवान, प्रतिभाशाली एवं क्षणिक काल में सीखने वाले व्यक्ति थे। पुरुजन उन्हें जो कुछ भी सिखाते थे वे उसे बहुत ही कम समय में ही सीख लेते। उनका वैवाहिक जीवन अत्यन्त सुखमय था। लेकिन पूर्वव्यत् राजकुमार अब भी ध्यानस्थ रहा करते थे। जीवन तथा मृत्यु की समस्याओं पर विचार करते थे। उनका मानना था कि संसार में कोई भी वस्तु स्थाई नहीं है। बौद्ध धर्म के प्रणेता युवावस्था में ही संसार के दुःखों को देखकर दुःखी हुए और अपना गृहस्थ जीवन त्यागकर संसार के दुःखों के कारणों को ढूढ़ने निकल पड़े। बेधिसत्व की प्राप्ति के बाद ही सिद्धार्थ महात्मा 'बुद्ध' कहलाए। उनके द्वारा अपने शिष्यों तथा अपने अनुयायियों को दिये गये उपदेश ही बौद्ध धर्म के सिद्धान्त कहलाये। उनके मौखिक उपदेश तीन विभिन्न ग्रन्थों विनयपिटक, सुप्रपिटक और अभिधम्म पिटक में संकलित किये गये। इसे त्रिपिटक कहते हैं। महात्मा बुद्ध के शिष्यों एवं अनुयायिों ने उनके उपदेशों की भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यवस्था की परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म दो दार्शनिक सम्प्रदायों में विभाजित हुआ- हीनयान और महायान।

बौद्ध धर्म
- हीनयान सम्प्रदाय
  - वैभाषिक (बाह्य प्रत्यक्षवाद)
  - सौत्रान्तिक (ब्रहां अनुर्मयवाद)
- महायान सम्प्रदाय
  - योगाचार (विज्ञानवाद)
  - माध्यमिक (शून्यवाद)

जहाँ हीनयान अनुयायी 'व्यष्टि' पर बल देते हुए संकीर्ण विचारों के कारण वैयक्तिक मोक्ष की कामना रखने वाले थे वहीं महायान 'समष्टि' पर बल देते हुए उदार एवं व्यापक विचारों के कारण समष्टि के मोक्ष की कामना करते थे।

बौद्ध-धर्म की विशेषताएँ (Merits of Buddhism)

महात्मा बुद्ध बड़े ही क्रान्तिकारी थे। वास्तव में छठी शताब्दी ईसा पूर्व के क्रान्तिकारियों में उनका सबसे ऊँचा स्थान है। उन्होंने वैदिक धर्म के खिलाफ उसी प्रकार का एक महान् आन्दोलन शुरू किया जिस प्रकार यूरोप के कैथोलिक धर्म के विरुद्ध मार्टिन लूथर ने किया था। वे हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज के दोषों को दिखाकर जनता को एक नये मार्ग की ओर चाहते थे जो आदि, मध्य और अन्त में कल्याणकारी था। जिस धर्म का महात्मा बुद्ध ने प्रचार किया उसकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. **बौद्धिवादी धर्म :** बौद्ध धर्म पूर्णरूपेण बुद्धिवादी था। बुद्ध जी ने वेदों को प्रमाणित ग्रन्थ नहीं माना। वेदों के स्थान पर उन्होंने तर्क का सहारा लिया तथा केवल उन्हीं बातों को स्वीकार करने के लिए तैयार थे जो तर्क-संगत हों। अन्धविश्वासों, रूढ़ियों एवं परम्पराओं के लिए उनके धर्म में कोई स्थान नहीं था।

2. **प्रयोजनवादिता :** बुद्ध के उपदेश एवं प्रयोजनवाद के सिद्धान्त पर निर्भर हैं। इसी कारण उन्होंने चार आर्य सत्यों को माना है एवं उनको जीवन में पूर्व रूप से समझ लेना महत्वपूर्ण माना है। इनको समझने से व्यक्ति मोह रहित हो जाता है और दुःखों से मुक्त होकर मस्तिष्क में शान्ति प्राप्त कर सकता है।

3. **नैतिकता प्रधान धर्म :** बौद्ध धर्म में नैतिकता और आचरण की सभ्यता पर इतना बल दिया गया है कि अनेक विद्वानों ने इसे धर्म की संज्ञा न देकर आचार-संहिता के नाम की संज्ञा दी है। परन्तु यहाँ पर इस तथ्य का विस्मरण नहीं करना चाहिए कि भारतीय दर्शन के अनुसार धर्म और आचार में अन्तर नहीं किया जा सकता। इन दोनों में इतना अविच्छिन्न सम्बन्ध है कि ये एक-दूसरे के पर्यायवाची बन जाते हैं। अतः बौद्ध धर्म को धर्म कहना न्याय संगत तथा तथ्य संगत है।

4. **विश्व धर्म :** यह धर्म अत्यन्त व्यापक सर्वव्यापी था इसीलिए इसे विश्व धर्म की संज्ञा दी जाती है। डॉ. सुजीत कुमार चटर्जी ने इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि "बौद्ध धर्म आदर्श एक महासागर है जिसमें पूर्वीय विचारधारा की भिन्न-भिन्न नदियाँ मिली हैं। यह धर्म अपने वास्तविक स्वरूप में सम्पूर्ण मानवता की संभाव्य उच्चतम प्रतिष्ठा का पोषक और संस्थापक हैं।"

5. **सत्कर्म पर बल :** बौद्ध धर्म की एक बहुत बड़ी विशेषता है 'सत्कर्म पर बल'। उन्होंने वैदिक कर्मकाण्डों का विरोध किया उसके स्थान पर सत्कर्म तथा सदाचार पर बल दिया तथा अहिंसा का पाठ पढ़ाया।

6. **लोकतन्त्रात्मक धर्म :** महात्मा बुद्ध जाति प्रथा के घोर विरोधी थे क्योंकि इसमें ऊँच-नीच का भेदभाव था। उनका धर्म अत्यन्त लोकतन्त्रात्मक बहुजन हिताय, सर्वलोकानन्द-सुखाय के लिए था और इसके द्वारा प्रत्येक जाति के लिए खुले थे।

7. **सीधा तथा सरल धर्म :** यह धम्र बहुत ही सीधा, सरल एवं व्यावहारिक था। उसमें किसी भी प्रकार की सूक्ष्म दार्शनिक व्याख्या न थी। उन्होंने अपनी बात इस प्रकार से कही कि वह एक सामान्य व्यक्ति की भी समझ में आ जाए।

8. **वाद-विवाद से बचना :** यद्यपि बुद्ध अपने सिद्धान्तों को मौलिक रूप से ही समझाते थे लेकिन वह लम्बे-लम्बे भाषण तथा वाद-विवादों को पसन्द नहीं करते थे। आधुनिक वैज्ञानिक की तरह वह अनुभव और प्रयास करने को महत्व देते थे। इसी कारण बुद्ध का दर्शन एवं धर्म स्वयं भी आस्था से कर्तव्यपरायणता पर निर्भर है। वे उन तथ्यों पर कभी वाद-विवाद नहीं करते ीं जिनके निष्कर्ष नहीं निकल सकते, जैसे क्या संसार अनन्त है? क्या संसार नश्वर है? क्या पुनर्जन्म कल्पित है? क्या पुनर्जन्म होता है? क्या आत्मा शरीर से अलग हैं? आदि।

9. **जीवन दुखान्त है :** महात्मा बुद्ध के अनुसार सम्पूर्ण संसार पीड़ाओं से भरा हुआ है। इस कारण प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह अपने आपको पीड़ाओं से मुक्त कर संसार से मुक्ति प्राप्त करे। संसार में आनन्द की खोज करना व्यर्थ है। उन्होंने दु:ख से उबरने के लिए अनन्त विधियाँ बतायी जिससे मुक्ति का मार्ग खुल सके।

बौद्ध-धर्म के सिद्धान्त (Principles of Buddhism)

बौद्ध-धर्म की विशेषताओं का सिंहावलोकन करने के बाद उनके उपदेशों और दार्शनिक सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है। बुद्ध जी के उपदेश क्रियात्मक और व्यावहारिक थे। बुद्ध जी के उपदेश और वार्तालापों का अध्ययन करने के पश्चात् दार्शनिक विचारों का बोध होता है ज़िससे उनके सिद्धान्त स्पष्ट होते हैं-

1. **चत्वारि आर्य सत्यानि में विश्वास :** इस संसार में हम दु:ख देखते हैं। हम जानते हैं कि इस संसार में कोई बात अकारण नहीं होती अत: इस दु:ख का कोई न कोई कारण होता है इसे रोका जा सकता है और रोकने का कोई न कोई उपाय होगा चारों बातों को 'चत्वारि-आर्य-सत्यानि' कहा गया है अर्थात् दु:ख, दु:ख, समुदाय, दु:ख निरोग और दु:ख निरोग मार्ग।

2. **अष्टांग मार्ग :** यह अष्टांग मार्ग सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि निर्वाण प्राप्ति के साधन माने गये हैं।

3. **मजिझमा परिपदा :** महात्मा बुद्ध ने मध्यम पथ के अनुसरण पर बल दिया। मजिझमा परिपदा (मध्यपद) का यह तात्पर्य है कि अति सर्वत्र वर्जयेत् न तो सांसारिक विषय वासनाओं में तल्लीन हो जाना ठीक है तथा न कठोर तपस्या द्वारा शरीर को कष्ट देना चाहिए बल्कि मध्यम पद का अनुसरण करना वांछनीय है।

4. **शील तथा आचरण की प्रधानता :** बुद्ध जी ने नैतिक उपदेशों में शील पर बड़ा बल दिया था। संघ के भिक्षुओं को मनस, वाचा, कर्मणा सर्वथा पवित्रता रखनी पड़ती थी। बुद्ध जी की सबसे बड़ी क्रान्तिकारी घोषणा यह थी कि उनके संदेश सबके लिए थे। नर तथा नारी, युवा और वृद्ध, श्रीमान् एवं कंगाल, ऊँच और नीच सभी समान रूप से उस पर आचरण कर सकते थे।

5. **क्षणिकवाद :** जगत् के सम्बन्ध में बुद्ध का मत क्षणिकवाद था। उनका मानना था कि जगत् की सभी वस्तुएँ क्षणिक और निरन्तर परिवर्तनशील हैं। जिस तरह नदी का जल कभी स्थिर नहीं रहता परन्तु किनारे पर बैठे व्यक्ति को वह स्थिर दिखाई देता है उसी प्रकार प्रतिक्षण परिवर्तित वाली सांसारिक वस्तुओं को भ्रमवश साधारण मनुष्य स्थायी समझता है।

6. **वेदों की प्रमाणिकता का बहिष्कार :** बौद्ध धर्म की गणना नास्तिक धर्मों में होती है। यह लोग वेदों को प्रमाण न मानकर तर्क का अवलम्ब लेते हैं। यह लोग यज्ञ, संस्कारों तथा बलि का विरोध करते हैं।

NOTES

7. **कर्मवाद : कर्मवाद :** बुद्ध जी कर्मवादी थे। उनका मानना था मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही परिणाम उसे भोगना पड़ता है। कर्मों के फल को यज्ञ तथा बलिदान से नहीं मिटाया जा सकता। कर्मों का फल मनुष्य को भोगना ही पड़ता है।

8. **दार्शनिकता की उपेक्षा :** बुद्ध जी दार्शनिक नहीं थे। वे केवल ध र्म सुधारक थे। अतः दार्शनिक कल्पनाओं के जाल में फँसना वे उचित नहीं समझते थे वे जो कुछ आँखों से देखते उसी को सत्य मानते। आत्मा है या नहीं? ईश्वर है या नहीं? आदि प्रश्नों के उत्तर देना मुर्खतापूर्ण समझते। अलग-अलग कल्पनाओं के अनुसार इनके विभिन्न उत्तर दिये गये। इन विभिन्न कल्पनाओं में फँसना उस प्रकार मूर्खता है जिस प्रकार विषैले बाण द्वारा वृद्ध व्यक्ति का यह पूछना कि बाण कहाँ से आया, उसे किसने बनाया तथा किसने फेंका। वास्तव में उस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि बाण को शरीर से तुरन्त निकाल लिया जाये। इसी प्रकार का इस संसार के दु:ख को दूर करने का सीघ्र प्रयास करना चाहिए।

9. **अनीश्वरवाद :** अनेक विद्वानों की यह धारणा है कि बुद्धि जी अनीश्वरवादी थे क्योंकि ईश्वर के सम्बन्ध में किसी प्रकार के वाद-विवाद में पड़ने के लिए वे उद्यत न थे तथा इस सम्बन्ध में वे मौन रहे। इतना तो निर्विवाद है कि बुद्ध जी ईश्वर को इस सृष्टि का कर्ता नहीं मानते थे क्योंकि यदि वे सृष्टिकर्ता के रूप में स्वीकार करते तो उन्हें ईश्वर को दु:ख का भी विधायक मानना पड़ता लेकिन उन्होंने दु:ख को मनुष्य के कर्मों का फल बतलाया है। उनके विचार में सृष्टि की उत्पत्ति के लिए किसी कर्ता की आवश्यकता नहीं बल्कि वह कार्य-कारण की श्रृंखला के निरन्तर चलती रहती है।

10. **अनात्मवाद :** ईश्वर की भांति आत्मा के सम्बन्ध में भी बुद्ध जी मौन रहे। अस्तु उनके इस मौन रहने के कारण दो विचारधाराओं का जन्म हुआ। कुछ लोगों का मानना था कि वे अनात्मवादी थे तथा अन्य लोगों के विचार में वे अनात्मवादी न थे बल्कि स्थायी आत्मा में उनका विश्वास न था। उनके विचार में मनुष्य का व्यक्तिगत कई संस्कारों का संघात है।

11. **पुनर्जन्मवाद :** ईश्वर तथा आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी उन्होंने पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। उनका विचार था कि जन्म आत्मा का नहीं बल्कि अनित्य अहंकार का होता है। यह पुनर्जन्म भी कर्म कार्य-कारण के नियम से संचालित होता है।

12. **कारणवाद :** उनका मानना था कि संसार में अकारण कुछ नहीं होता बल्कि ज्यों कुछ घटना है उसका कोई न कोई कारण आवश्य होता है। इसी बात को बौद्ध धर्म में प्रतीत्य समुत्पाद कहा जाता है। प्रतीत्य का तात्पर्य इसके होने से तथा समुत्पाद का आशय यह उत्पन्न होता है, अर्थात् ऐसा होता है।

13. **प्रयोजनवाद :** बुद्ध जी प्रयोजनवादी थे वे बिना प्रयोजन के एवं निरर्थक वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहते थे बल्कि वे उन्हीं बातों पर चिन्तन और विचार करते थे जो उपयोगी तथा प्रयोजन के हैं।

14. **निवृत्ति मार्ग :** बुद्ध जी ने बौद्धधर्म को निवृत्ति मार्गी बताया है क्योंकि इस धर्म के अनुसार संसार में सर्वत्र दु:ख ही दु:ख हैं। यहाँ तक कि सुख में भी दु:ख की कृष्ण वर्ण रेखा दृष्टिगोचर होती है, अस्तु बौद्ध धर्म में संसार के सुखों से दूर रहने अर्थात् प्रपत्ति मार्ग के स्थान पर निवृत्ति मार्ग पर चलने को आदेश दिया है तथा हम संसार को नश्वर तथा क्षणभंगुर बतलाया है।

15. **आशावाद :** चूँकि बुद्ध जी निवृत्ति मार्गी थे और उन्होंने संसार को दु:खमय बताया अत: अनेक विद्वानों ने उन्हें निराशावादी बतलाया लेकिन यह सत्य नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि वे बहुत बड़े आशावादी थे क्योंकि जहाँ उन्होंने संसार को दु:खमय बताया वहीं उससे वृित्ति का मार्ग भी बताया।

16. **विचार-स्वातन्त्र्य :** बुद्ध जी विचार-स्वातन्त्र्य के पोषक थे। वे न अन्धविश्वासी थे और न ही जड़वादी या हठवादी बल्कि उन्होंने प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर कसकर स्वीकार करने का उपदेश दिया था तथा स्वयं सोच-विचार कर किसी भी बात को स्वीकार करने का उपदेश दिया था।

17. **आत्म-शुद्धि :** बुद्ध जी ने बाह्य आडम्बरों का विरोध करके आत्म-शुद्धि पर बल दिया था। उनका विचार था कि जिस प्रकार पानी में भीगे हुए काठ को गलाया नहीं जा सकता तथा ऐसा करने

वाला व्यक्ति क्लान्ति एवं क्लेश का ही भागी होगा ठीक उसी प्रकार जो लोग कार्या द्वारा काम-वासनाओं में निमग्न हो भ्रमण करते हैं वे परिश्रम करने पर भी दुःख से मुक्ति नहीं पा सकते हैं।

18. **ज्ञान की अपरिहार्यता :** निर्वाण तथा शान्ति के परम-पद को प्रापत करने के लिए नैतिक आचरण के साथ-साथ बुद्ध जी ने ज्ञान की भी आवश्यकता बतायी थी। जब तक मनुष्य अज्ञानता के अन्धकार में निमग्न रहता है तब तक उसका भ्रम दूर नहीं होता तथा वह सत्य का साक्षात्कार नहीं कर पाता।

19. **जाति-प्रथा का विरोध :** जन्म पर आधारित जटिल जाति-व्यवस्था को बुद्ध जी ने स्वीकार नहीं किया। वे ऊँच-नीच के भेदभाव को नहीं मानते थे। सामाजिक एकता तथा समानता में उनका विश्वास था।

20. **अहिंसा परमो धर्म :** बुद्ध जी हिंसा तथा बलि के विरोधी थे और अहिंसा पर बल देते थे। वे प्राणिमात्र पर दया दिखलाने का उपदेश देते थे।

21. **निर्वाण :** बुद्ध जी ने निर्वाण की प्राप्ति को जीवन का चरम लक्ष्य बताया है। यद्यपि अन्य धर्मों में भी मोक्ष की प्राप्ति को जीवन का अन्तिम उद्देश्य बातया है लेकिन बुद्ध जी का निर्वाण अन्य धर्मों के मोक्ष से अलग है। जहाँ अन्य धर्मानुसार मोक्ष की प्राप्ति जीवन की समाप्ति पर ही सम्भव हो सकती है वहाँ निर्वाण की प्राप्ति इस जीवन में ही हो सकती है। बुद्ध जी स्वयं निर्वाण की प्राप्ति के बाद दीर्घकाल तक जीवित रहे और सुख-दुःख से मुक्त होकर चिरशान्ति का उपभोग करते रहे। उनके विचार में निर्वाण परम ज्ञान है। यह जीवन की पूर्ण विशुद्धि है। वह मुक्ति का दूसरा नाम है। उसे पा जाने पर मनुष्य जन्म-मरण बंधन से छूट जाता है।

बौद्ध-दर्शन और शिक्षा (Buddhism and Education)

बौद्ध दर्शन ने देश की शिक्षा के स्वरूप निर्धारण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बौद्ध दर्शन न केवल भारत का बल्कि समस्त विश्व का एक महान् दर्शन है। वेदान्त को छोड़कर अन्य भारतीय दार्शनिक पद्धतियों में बौद्ध दर्शन ही एक ऐसी विचारधारा है जिसने पश्चिमी विद्वानों को बहुत आकर्षित किया है। यह नैतिकवादी तथा विचारवादी दर्शन है। यद्यपि बौद्ध दर्शन अतिन्द्रियवादी है तथा एक ऐसी अवस्था निर्वाण की कल्पना करता है जो परम् सुख की

अवस्था है फिर भी इसी निर्वाण को प्राप्त करने के लिए उसने लोकवादी मानव को नैतिक जीवन यापन करने का प्रयास किया। बौद्ध दर्शन ने नैतिक आदर्शों एवं सामाजिकता और व्यावहारिक जीवन को शिक्षा की आवश्यकता माना। बौद्ध दर्शन ने नैतिक आदर्शों एवं सामाजिकता और व्यावहारिक जीवन को शिक्षा की आवश्यकता माना। बौद्ध दर्शन की शिक्षा प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए **डी. आर. मुकर्जी** ने कहा है, "बौद्ध संसार अपने मठों से पृथक या स्वतंत्र रूप से शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं देता था। धार्मिक या लौकिक सब प्रकार की शिक्षा भिक्षुओं के साथ में होती थी। इसके अतिरिक्त जातक कथाओं से ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक शिक्षा का प्रावधान केवल बौद्ध मतावलम्बियों के लिए ही न होकर सभी जातियों के बालाओं के लिए था उसका प्रारम्भ मठों में धार्मिक शिक्षा के रूप में होता था। चीनी यात्री फाह्यान के विचारों से स्पष्ट होता है कि कुछ समयोपरान्त ब्राह्मणों द्वारा लौकिक शिक्षा के प्रारम्भ करने पर बौद्ध मठों में भी लौकिक शिक्षा प्रदान की जाने लगी। अतः बौद्ध दर्शन लौकिक तथा परमार्थिक दोनों सत्यों में विश्वास करता है-

"द्वे सत्ये समुपश्रित्य बुद्धानां धर्म देशना
लोक संवित्ति सत्यं च सत्यं च परमार्थना।"

– माध्यमिक कारिका 24/8

इस प्रकार शिक्षा एक ऐसी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो मनुष्य को लौकिक तथा परमार्थिक दोनों जीवन के योग्य बनाती है। परमार्थिक जीवन से उसका अर्थ निर्वाण से है इसकी पुष्टि से वास्तविक शिक्षा वह है जो मनुष्य को निर्वाण की प्राप्ति कराये।

बौद्ध दर्शन में शिक्षा को आध्यात्मिक उपलब्धियों का स्रोत माना जाता था। महात्मा बुद्ध ने इस संसार के सभी दुःखों का मूल अविद्या या अज्ञान को माना, अतः उनका मानना था कि शिक्षा द्वारा ही सच्चा ज्ञान प्राप्त होने पर ही मनुष्य को दुःखों से छुटकारा प्राप्त हो सकता है एवं उसे निर्वाण प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार बौद्ध दर्शन में शिक्षा को निर्वाण प्राप्ति का साधन माना गया।

बौद्ध दर्शन में शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य (Buddhism and Aims of Education)

संसार के जन्म-मरण के उद्देश्यों के अवलोकन के पश्चात् गौतम बुद्ध के मन में यह विश्वास निवास कर गया कि संसार में केवल दुःख है और इससे

मुक्ति पाने के लिए गृहत्याग कर संन्यासी बन गये। यह 'सुलझाव' उन्हें बुद्ध होने पर प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धान्त में प्राप्त हुआ। तब आनन्दमय बुद्ध ने रात्रि के पहले पहर में अपना मन सीधे तथा विपरीत क्रम के कारणशृंखला पर लगाया। अविद्या से संसार उत्पन्न होते हैं, नाम रूप से षडायतन उत्पन्न होते हैं। षडायतन से स्पर्श उत्पन्न होता है, स्पर्श से वेदना उत्पन्न होती है, वेदान से तृष्णा एवं तृष्णा से उपादन उत्पन्न होता है। उपादन से भव व भाव से जाति उत्पन्न होती है। जाति से जन्म, मरण, दु:ख, शोक एवं निराशा उत्पन्न होती है। यह सभी दु:खों का प्रारम्भ है। पुन: अविद्या के नाश से जो कि वासना के पूर्ण निरोध से सम्भव है, संस्कार नष्ट हो जाते हैं। षडायतन नष्ट हो जाने व स्पर्श से वेदना नष्ट हो जाती है। वेदान से तृष्णा व तृष्णा से उपादन नष्ट हो जाते हैं। उपादन नष्ट हो जाने से जन्म-मरण कष्ट, शोक दु:ख, निराशा आदि नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार सभी दु:खों का नाश हो जाता है।

शैक्षिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि यह प्रतीत्यसमुत्पाद भवचक्र दार्शनिक न रहकर व्यावहारिक है। इसमें दर्शन से अधिक नीतिशास्त्र को महत्व दिया गया है। इसी कारण सभी दु:खों के निवारण के लिए बुद्ध ने अष्टांग मार्ग को प्रतिपादित किया।

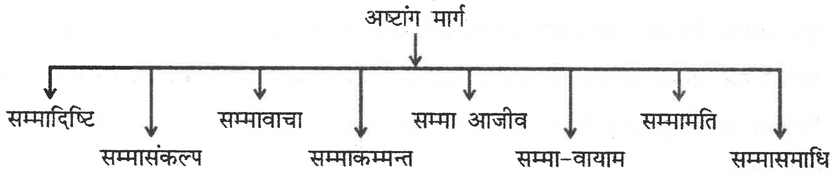

1. **सम्मादिष्टि–** सम्मादिष्टि अर्थात् सम्यक् दृष्टि का अभिप्राय अविद्या के कारण संसार तथा आत्मा के सम्बन्ध में मिथ्या दृष्टि उत्पन्न होती है और हम अनित्य, दु:ख एवं अनात्मक वस्तु को नित्य, सुखद व आत्मरूप समझने लगते हैं। इस मिथ्या दृष्टि को छोड़कर वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप पर ध्यान रखना है। इसका विकास करना ही शिक्षा का उद्देश्य है।

2. **सम्मासंकल्प–** इसके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य इन्द्रियसुखों से लगावा दूसरों की ओर बुरी भावनाओं तथा उनको हानि पहुँचाने वाले विचारों का समूलोच्छेदन करने का निश्चय है। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्पों में परिवर्तित होना चाहिए। इससे त्याग, परोपकार एवं करूणा निहित है।

3. **सम्मावाचा–** सम्मावाचा सम्यक् संकल्प का ही बाह्य रूप है। इसमें मिथ्यावाद, निन्दा, अप्रिय वचन आदि निषेध हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अशुभ से बचकर शुभ वाचन करना चाहिए। इनके अनुसार, "भले लोग शुभ, सत्य व उचित पर स्थिर रहते हैं और शत्रुता को कठोर शब्दों से नहीं बल्कि अच्छी भावनाओं से दूर किया जा सकता है। मन को शान्त करने वाला एक हितकारी शब्द सहस्रों निरर्थक शब्दों से अच्छा है।"

4. **सम्माकम्मन्त्–** "जीव नाश, चोरी, कामुकता, झूठ, अति भोजन, सामाजिक मनोरंजन में जाना, प्रसाधन, आभूषण, आरामदेह बिस्तरों के उपयोग तथा सोना-चाँदी के व्यवहार से बचनपा ही सम्यक् कर्मान्त है।" इन नियमों में प्रारम्भ के पाँच नियम गृहस्थों के लिए हैं। साधारण व्यक्तियों के लिए और विशेष नियम हैं। माता-पिता को अपनी सन्तान को दुर्गुणों से बचाकर सद्गुणों की शिक्षा देनी चाहिए तथा उसके पश्चात् भली प्रकार अन्नादि देकर विवाह कर देना चाहिए। सन्तान को अपने माँ-बाप एवं वृद्धों की सेवा करनी चाहिए। छात्रें को विद्याध्ययन, गुरुजनों का आदर, आज्ञापालन और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए। गुरुओं का भी कर्तव्य है कि वह अपने छात्रों में प्रेमपूर्वक व्यवहार, सद्गुणों का विकास, आदि प्रदान करें।

5. **सम्माआजीव–** इसका आशय शिक्षा का उद्देश्य शुद्ध उपायों से जीवन करना है। सम्यक् आजीविका के बिना सम्यक् कर्मान्त पर पूर्णतः अधि कार नहीं किया जा सकता है। अष्टाशास्त्रादि पशु, मांस, शराब व विष आदि का व्यापार वर्जित है। दवा व धोखा, रिश्वत, अत्याचार, जालसाजी, डकैती, लूट, कृतघ्नता आदि बुरे उपायों से जीवन यापन नहीं करना चाहिए।"

6. **सम्मा-वायाम–** मानसिक तथा नैतिक विकास के लिए बौद्ध दर्शन में शिक्षा के उद्देश्यों में सम्यक् व्यायाम को भी प्रमुख स्थान दिया गया है। कुसंस्कारों व अशुभ विचारों को रोकने के प्रयास को सम्यक् व्यायाम कहा गया है। इसमें आत्म-संयम इन्द्रिय-निग्रह, शुभविचारों को जागृत करने और मन को सर्वभूत हित पर स्थिर रखने का सतत प्रयास शामिल है। दूषित विचारों को रोकने के लिए पाँच विधियाँ यथा- किसी शुभ विचार का चिन्तन करना, बुरे विचार के कर्म में परिवर्तित हो जाने पर परिणाम का चिन्तन, उसके कारणों का विश्लेषण, उसके परिणामों को रोकना एवं शारीरिक चेष्टा की मद से मन पर नियन्त्रण करना, बतायी

गयी है। "धर्म का पालन मन पर निर्भर करता है और धर्म पालन पर बोधि की प्राप्ति निर्भर है।"

7. **सम्मासति–** इस दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षित व्यक्ति शरीर, चित्त, वेदना को उसके यथार्थ रूप में स्मरण रखते हैं। इस यथार्थ रूप के विस्मृत हो जाने से मिथ्या विचार जड़ पकड़ लेते हैं तथा उसके अनुसार क्रियाएँ होने लगती हैं। इससे आसक्ति बढ़ती है, दुःख सहन करना पड़ता है। तन की अशुद्धियाँ, संवेदना, सुख-दुःख, तटस्थ वृत्ति का स्वभाव, लोभ, घृणा एवं भ्रमयुक्त मन का स्वभाव, धर्मों, पंच स्कन्धों, इन्द्रियों तथा उसके विषयों, बोधि के साधनों तथा चार आर्य सत्यों को स्मरण रखना सम्यक् स्मृति है।

8. **सम्मासमाधि–** ऊपर वर्णित सभी आचरणों का पवित्रता से पालन करना तथा अत्यन्त आवश्यक है। इनके पालन से अन्तःकरण की शुद्धि होती है तथा ज्ञान का उदय होता है। यह निर्वाण क्रान्ति का प्रथम सोपान है। इसमें मन एकाग्रचित रहता है।

बौद्ध दर्शन पर आधारित शिक्षा प्रणाली में बाद में आध्यात्मिक उद्देश्यों के साथ-साथ कुछ लौकिक उद्देश्यों को भी महत्व दिया जाने लगा। कुछ आध्यात्मिक और लौकिक उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. निर्वाण प्राप्ति का मार्ग प्रस्तुत करना।
2. अष्टांगिक मार्ग पालन के लिए छात्र को तैयार करना।
3. चार आर्य सत्यों का ज्ञान करना।
4. चरित्र निर्माण करना।
5. उच्च मानसिक समताओं का विकास करना।
6. नैतिक मूल्यों का विकास करना।
7. व्यक्तित्व का विकास करना।
8. शारीरिक विकास।
9. अज्ञान का अन्त एवं ज्ञान की प्राप्ति।
10. मानव व संस्कृति का संरक्षण।

बौद्ध दर्शन और शिक्षार्थी (Buddhism and Student)

इस दर्शन की छात्र संकल्पना का आधार उसका प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त हो सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक वस्तु की प्राप्ति होने पर दूसरी की उत्पत्ति होती है। इस दूसरी वस्तु की प्राप्ति होने पर किसी तीसरी वस्तु की उत्पत्ति होगी। इसके अनुसार छात्र का वर्तमान उसके पूर्व जन्म के कर्म तथा उसके जन्म से लेकर अब तक के संस्कारों का फल होता है, उसका भविष्य उसके पूर्व जन्म के कर्म एवं जन्म से अब तक के कर्म के साथ-साथ वर्तमान में किये जाने वाले कर्मों पर निर्भर होता है। अत: सभी वर्ण के बच्चे मठों में शिखा पाने के अधिकारी हैं। बस उनके माता-पिता उन्हें शिक्षा दिलाने के पक्ष में हों। प्रवेश के लिए केवल उनकी मान्यता नहीं थी जो संक्रामक रोग से पीड़ित, घोर नैतिक अपराधी, अविनम्र, दुराचारी, पलायनकर्ता राज्य कर्मचारी, सैनिक एवं दास थे। छात्र के प्रवेश के समय पबज्जा संस्कार होता था। इसमें बालक का सिर मुड़वाकर पवित्रता धारण करके शरणत्रयी से उसका संघ में प्रवेश करता था उसे कहना होता था–

बुद्धम् शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि
संघ शरणं गच्छामि

इसके साथ उसे दस नियमों का पालन करना पड़ता था, 'दस नियम' को 'दस सिक्खा पदानि' कहा जाता है –

'दस सिक्खा पदानि'

(i) जीव हिंसा न करो।

(ii) किसी की वस्तु न लेना।

(iii) अशुद्ध आचरण से अलग रहना।

(iv) असत्य भाषण न करना।

(v) मादक पदार्थों का सेवन न करना।

(vi) कुसमय भोजन न करना।

(vii) किसी की निन्दा न करना।

(viii) नृत्य-गायन एवं विलासिता से दूर रहना।

NOTES

(ix) सुगन्धित एवं शृंगारिक वस्तुओं का उपयोग न करना।

(x) सोना–चाँदी बहुमूल्य वस्तुओं का दान न लेना।

बौद्ध दर्शन और शिक्षक (Buddhism and Teacher)

बौद्ध दर्शन में शिक्षा देने का अधिकार भिक्षुओं का था और वह भी वे भिक्षु जो कम से कम दस वर्ष भिक्षुक रह चुके हो। साथ ही उनका आचरण शुद्ध, पवित्र, विनम्र तथा मानसिक क्षमता से परिपूर्ण हो, उन्होंने चार आर्यसत्यों को समझ लिया हो। आर्य अर्थात् अर्हत् जिन्हें सत्य रूप से जानते हैं उन्हें आर्यसत्य कहा जाता है।

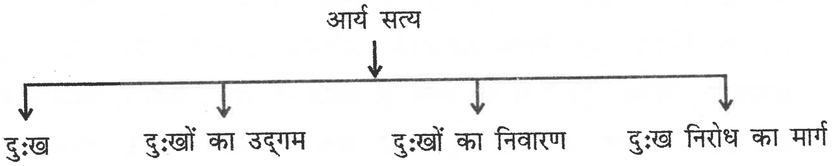

तथा जो अष्टांग मार्ग का अनुसरण करते हैं।

बौद्ध दर्शन में शिक्षकों को दो वर्गों में बाँटा गया है। आचार्य एवं उपाध्याय, आचार्य अर्थात् आचरण की शिक्षा देने वाले, जिनका अनुसरण कर छात्र उच्च आचरण करते थे, उस समय गुरु शिष्यों को उनके आचरण के प्रति जागरूक करते थे और उपाध्याय अर्थात् उद्भट, विद्वान् जिनके निकट बैठकर भिक्षुक शिक्षा प्राप्त करते थे।

बौद्ध दर्शन और अनुशासन (Buddhism and Discipline)

बौद्ध दर्शन में संयमी जीवन को अनुशासन कहा गया है। इसमें संघ की सत्ता सर्वोपरि थी। गुरु एवं शिष्य दोनों संघ में निवास करते थे तथा उन्हें संघ के नियमों का पालन करना होता था। नियमों का उल्लंघन करने पर कठोर शारीरिक दण्ड देने का प्रावधान नहीं था बल्कि स्वयं ही पश्चाताप करना होता था। उन्हें संयमी जीवन व्यतीत करना अनिवार्य था।

बौद्ध दर्शन और पाठ्यक्रम (Buddhism and Curriculum)

शिक्षा-व्यवस्था में दो स्तरों-प्राथमिक और उच्च अलग-अलग पाठ्यक्रम की व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। हर्षवर्धन के समय भारत आने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरणानुकूल प्राथमिक कथाओं में प्रथम छः माह में सिद्धिवस्तु नामक बाल पोथी पढ़ाई जाती थी। इसमें 12 अध्याय तथा वर्णमाला के 49 अक्षर थे जिनको विभिन्न क्रम में रखकर 300 से अधिक श्लोकों की रचना की गई। 16 माह के उपरान्त छात्र को शब्द-विद्या के लिए विद्या, शिल्प स्थान विद्या, चिकित्सा विद्या, आध्यात्म विद्या पढ़ाई जाती थी। यह पाठ्यक्रम लौकिक एवं धार्मिक दोनों ही प्रकार के विषयों को दृष्टि में रखकर बनाया गया था। साथ ही साथ सामान्य गणित को भी सम्मिलित किया गया था।

उच्च शिक्षा में भी धार्मिक और लौकिक दोनों ही विषय पाठ्यक्रम में शामिल थे। धार्मिक पाठ्यक्रम विशेष रूप से भिक्षु तथा भिक्षुणियों के लिए था क्योंकि इनमें धर्म प्रचार एवं निर्वाण प्राप्ति की आशा की जाती थी अतः बौद्ध धर्म, साहित्य, त्रिपिटक विनय, धम्म आदि का ज्ञान देना अनिवार्य माना गया। साथ ही जीविकोपयोगी कुछ विषयों यथा मठों और बिहारों के निर्माण का व्यावहारिक ज्ञान, दान की सम्पत्ति का उचित प्रबन्ध एवं उनका उचित रख-रखाव करना आदि भी पाठ्यक्रम में ही शामिल था। लौकिक पाठ्यक्रम सामान्य नागरिकों के लिए था ताकि वे अच्छे नागरिक बन सकें, उनके पाठ्यक्रम में धर्म, दर्शन, ज्योतिष, आयुर्वेद, न्यायशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, तर्कशास्त्र तथा व्याकरण आदि था। कुशल शिल्पकारों द्वारा शिल्पों की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी।

प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग के मतानुसार, "शिक्षक पाठ्यक्रम का सामान्य अर्थ बताते हैं और छात्रों को सविस्तार पढ़ाते हैं। वे उन्हें परिश्रम के लिए प्रोत्साहित कहते हैं और कुशलता से प्रगति के पथ पर अग्रसर करते हैं। वे

क्रिया शून्य छात्रों को निर्देशित करते हैं और मन्द बुद्धि बालकों को ज्ञानार्जन के लिए उत्सुक करते हैं।"

तत्कालीन बौद्ध विहार स्तूप, इमारतें, अजन्ता-एलोरा के भित्ति चित्र, मूर्तिकला, चित्रकला आदि इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि बौद्ध शिक्षा में धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा के साथ ही व्यावसायिक शिक्षा का भी समावेश रहा होगा। उस समय कला अपने चरमोत्कर्ष पर थी। व्यावसायिक शिक्षा द्वारा हस्तशिल्प, कृषि, वाणिज्य, जलपोत, निर्माण कला, लेखन कला, पशुपालन, भवन निर्माण कला, मूर्तिकला, चित्रकला, प्राविधिक वैज्ञानिक शिक्षा का विकास हुआ। आर. के. मुकर्जी के अनुसार "सिप्पियों के ज्ञान अर्थात् प्राविधिक एवं वैज्ञानिक शिक्षा की माँग सामान्य शिक्षा एवं धार्मिक अध्ययन की माँग से कम नहीं थी।" इसके अतिरिक्त तक्षशिला विश्वविद्यालय में चिकित्साशास्त्र के पृथक् संकाय का होना इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि उस समय चिकित्साशास्त्र का भी अभूतपूर्व विकास हुआ। तक्षशिला में शिक्षा की अवधि सात वर्ष थी। इस काल में धनवन्तरी आदि महान् आयुर्वेदाचार्य हुए। बौद्ध ग्रन्थ महावाग्ग में वर्जित है कि भिक्षुओं को मठों में विभिन्न प्रकार के हस्त शिल्प, सूत कातना, कपड़ा बुनना, वस्त्र सीने आदि की भी शिक्षा दी जाती थी।

बौद्ध दर्शन और शिक्षण विधियाँ (Buddhism and Teaching Methods)

बौद्ध दर्शन में आष्टांगिक मार्ग के अनुसरण पर बहुत बल दिया गया जो कि साधनात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष है। चूँकि बौद्ध शिक्षा में व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जाता था। अतः विधियों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो जाता है। प्रारम्भ में नवीन पाठ याद कराया जाता था, उसके बाद गुरु उसका स्पष्टीकरण करते थे और तब छात्र उसका मनन करके तर्क, विश्लेषण तथा वाद-विवाद की विधियों का प्रयोग करते थे। स्वतन्त्र मानसिक चिन्तन पर बल दिया जाता था। मठों तथा बिहारों के प्रचलित पाठ्यक्रम से निम्नलिखित विधियाँ स्पष्ट होती हैं–

1. **पाठ विधि–** गुरु छोटे समूह में अध्ययन योग्य सामग्री का स्वयं पाठ करते तथा शिष्य उनका अनुसरण करते उसके पढ़ते।
2. **व्याख्यान–** बौद्ध दर्शन में शिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों द्वारा व्याख्यान विधि का उपयोग किया जाता था, विशेषतः विषय के सैद्धान्तिक विवेचन

में विषय-विशेषज्ञ शिक्षक आरम्भ में अपने विषय को व्याख्यान द्वारा प्रस्तुत करके उसके बाद उस पर चर्चा तथा विचार-विमर्श करते थे।

3. **विचार-विमर्श–** गुरु के व्याख्यान के बाद समूह में उस विषय पर विचार-विमर्श किया जाता था, तत्पश्चात् शिष्य परस्पर विचार कर अपनी निःशेष शंकाओं को गुरुओं के समक्ष रखते थे।

4. **प्रश्नोत्तर विधि–** शंका समाधान की दृष्टि से शिष्य प्रश्न करते थे तथा गुरु उन प्रश्नों का उत्तर देकर समाधान करते थे।

5. **सूत्र व्याख्या विधि–** गुरु व्याकरण आदि विषयों में सूत्रबद्ध ज्ञान की व्याख्या करते थे। व्याख्या के बीच शंका समाधान के लिए प्रश्नोत्तर भी चलते थे। तर्क-वितर्क एवं विचार-विमर्श प्रमुख रूप से सभी विषयों में चलते थे चाहे वह तर्कशास्त्र हो या सम्मासमाधि की प्रथमावस्था।

6. **निरन्तर अभ्यास–** बौद्ध शिक्षा में निरन्तर अभ्यास पर बहुत बल दिया जाता था चाहे वह सम्मावस्था की प्राप्ति की बात हो या सम्मावायाम् एवं सम्मा स्मृति की, यह अभ्यास शिष्यों को स्वयं करना होता था। जैसे- सूत्रों की पुनरावृत्ति, तथ्यों का स्मरण, अध्ययन सामग्री को कंठस्थ करना आदि।

7. **प्रत्यक्ष एवं प्रयोग विधि–** भाषा, उद्योग, विज्ञान, कलाओं एवं आष्टांगिक मार्ग के अनुसरण के लिए प्रत्यक्ष और प्रयोग विधि का उपयोग किया जाता था।

बौद्ध दर्शन एक ऐसा दर्शन है जिसने प्राचीन काल में व्याप्त कुरीतियों और पाखण्डों का खण्डन किया। यही नहीं इसने भारत में शैक्षिक प्रशासन, शैक्षिक संगठन, विद्यालयी एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा एवं समूह शिक्षण का प्रारम्भ भी किसा साथ ही उन्होंने जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा की भी नीव रखी। यह बात अलग है कि स्त्री शिक्षा और जन शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था न की। लेकिन फिर भी यह स्मरणीय है कि स्त्री शिक्षा और जनशिक्षा का विकास इसी काल में हुआ।

जैन दर्शन की अवधारणा (Meaning of Jainism)

जैन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'जिन' शब्द से हुई है। 'जिन' का तात्पर्य 'विजेता' से है लेकिन यहाँ इसका आशय 'अपनी इन्द्रियों और विषय-वासनाओं पर नियन्त्रण कर आध्यात्मिक विजय से है अर्थात् इस प्रकार

'जिन' का अर्थ 'जितेन्द्रिय' से है तथा जैन दर्शन का अर्थ जितेन्द्रियों का दर्शन या उनके द्वारा प्रसारित धर्म। जैन धर्म में जैन महात्माओं को 'निर्गन्ध ' कहा गया है। निर्गन्ध का अभिप्राय है सांसारिक ग्रन्थियाँ बन्धनों से मुक्त महात्मा। ये अपने सत्कर्मों से सभी सांसारिक बन्धों को तोड़ देते थे। जैन ध र्म के संस्थापकों तथा प्रवर्तकों को 'तीर्थकर' कहा जाता है। 'तीर्थकर' शब्द दो शब्दों के योग से निर्मित है, तीर्थ + कर। तीर्थ के अर्थ को निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है–

तरति संसार महार्णव येन निमित्तेन तत्तीर्थमिति।

अर्थात् उन विविध नियमों और उपनियमों से जो मनुष्य को इस भवसागर से पार उतार दे और 'कर' शब्द का अभिप्राय 'करने वाला' इस प्रकार 'तीर्थकर' का अर्थ वे ज्ञानवान महापुरुष जिनके द्वारा निर्मित विधियों तथा सिद्धान्तों के अनुकरण करने से मनुष्य संसार सागर को पार कर सकता है। जैन-धर्म में साहित्य और परम्पराओं के अनुसार कुल चौबीस तीर्थकर हुए जिनके नाम निम्नलिखित हैं–

1. ऋषभदेव	2. अजितनाथ	3. सम्भवनाथ
4. अभिनन्द	5. सुमतिनाथ	6. पद्म प्रभु
7. सुपार्श्वनाथ	8. चन्द्रप्रभु	9. पुष्पदत्त
10. शीतलनाथ	11. श्रेयांसनाथ	12. वासुपूज्य
13. विमलनाथ	14. अनन्तनाथ	15. धर्मनाथ
16. शान्तिनाथ	17. कुथनाथ	18. अरहनाथ
19. मल्लिनाथ	20. मुनिसुव्रतनाथ	21. नमिनाथ
22. अरिष्टनैमि	23. पार्श्वनाथ	24. वर्धमान नाथ

जैन धर्म के अनुयायियों का विचार है कि जैन धर्म चौबीस तीर्थंकरों के सिद्धान्तों तथा उपदेशों का सामूहिक प्रतिफल है। जैन-दर्शन का मूल आधार इन तीर्थंकरों के सिद्धान्त हैं जो निम्नलिखित हैं–

जैन-दर्शन के सिद्धान्त (Principles of Jainism)

जैन दर्शन के केवल्य ज्ञान तथा उनके उपदेशों व सिद्धान्तों का संग्रह बारह 'आगम' ग्रन्थों में है। जैन धर्म के ये ग्रन्थ बड़ी श्रद्धा से देखे जाते हैं। वेदों

का जो महत्व ब्राह्म धर्म में है, इन आगम ग्रन्थों का वही महत्व जैन धर्म में है। जैन दर्शन के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. जैन धर्म में निवृत्ति की प्रधानता,
2. व्यक्ति की स्वतन्त्रता,
3. अनेकान्तवाद,
4. स्यादवाद,
5. अनीश्वरवादिता और सृष्टि की नित्यता,
6. द्वैतवादी तत्व ज्ञान,
7. आत्मवादिता,
8. कर्म और पुनर्जन्म,
9. निर्वाण,
10. त्रिरत्न,
11. ज्ञान,
12. पंच अणुव्रत,
13. पंच महाव्रत,
14. व्रत उपवास और तपस्या,
15. नैतिक सदाचारमय जीवन,
16. अहिंसा,
17. ब्राह्मण धर्म का विरोध,
18. नारी की स्वाधीनता,
19. तीर्थंकरों में श्रद्धा-भक्ति एवं विश्वास।

1. **जैन धर्म में निवृत्ति की प्रधानता–** जगत् में मनुष्य अनेक दुःखों से दुःखी है। उसके जीवन में सुख-शान्ति नहीं है। उसका जीवन विविध तृष्णाओं, वासनाओं, कामनाओं से भरा पड़ा है। ये निरन्तर परिवर्द्धित होती रहती हैं एवं कभी भी सन्तुष्ट नहीं होतीं। इनसे हमेशा दुःख एवं कष्ट

उत्पन्न होते रहते हैं। अतः विश्व की मूल समस्या दुःख एवं दुःख का निरोध है। इसीलिए सांसारिक बन्धनों का मोह छोड़कर भिक्षु बनकर इन्द्रिय निग्रह कर तपस्या द्वारा केवल ज्ञान की प्राप्ति की जाये। इस प्रकार इसमें निवृत्ति की प्रधानता है।

2. **व्यक्ति की स्वतन्त्रता–** इसमें मनुष्य को कर्म के अधीन माना गया है। वह स्वयं ही भाग्य विधाता है। निर्वाण प्राप्ति तथा सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने के लिए उसे विभिन्न कर्मकाण्ड और किसी प्रकार के पुरोहित वर्ग पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। वह अपने अणुव्रतों सदाचारमय जीवन एवं काया-क्लेश से कर्मों का क्षय कर निर्ग्रन्थ बन सकता है। वह अपना मार्ग निर्दिष्टि करने के लिए स्वतन्त्र है। इसके अतिरिक्त महावीर ने जैन धर्म में नारियों को भी स्वतन्त्रता प्रदान की। उनका विचार था कि स्त्रियाँ भी निर्वाण प्राप्त करने की अधिकारिणी है। उन्होंने महिलाओं के लिए जैन धर्म और संघ के द्वार खोल दिये। परिणामस्वरूप कई स्त्रियाँ दीक्षित हुईं और उनमें कई विदुषी भी थीं।

3. **अनेकान्तवाद–** अनेकान्ताद का अभिप्राय है जिस प्रकार जीवन भिन्न-भिन्न होते हैं, उसी प्रकार उनमें आत्माएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। यदि सभी जीवों में केवल एक ही आत्मा होती तो वे एक-दूसरे से अलग रूप से नहीं पहचाने जा सकते हैं और न उनकी भिन्न-भिन्न गतिविधि होती। पृथक्-पृथक् ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, कीड़े-मकोड़े, पक्षी एवं सर्प होते हैं सभी मनुष्य और देवता होते। जैन दर्शन के अनुसार सांसारिक जीवन यापन करने वाले तथा नैतिक, पवित्र और सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले दोनों प्रकार के जीव विद्यमान होते हैं। उपनिषदों में वर्णित है कि आत्मा एक है, नित्य है, उसका न कोई आदि है और न कोई अन्त तथा न उसमें कोई परिवर्तन ही होता है, लेकिन विपरीत जैन धर्म का मत है कि आत्मा का स्वयं चिन्तन और अपरिवर्तनशील नहीं है, वह उत्पत्ति तथा विकास या विनाश के अधीन नहीं है। इस अनेकान्तवाद सिद्धान्त का आधार यह है कि जिस वस्तु का अस्तित्व होता है वह केवल अपने पदार्थ की दृष्टि से स्थायी होती है पर उसके गुण उत्पन्न होते हैं तथा नष्ट होते हैं। पदार्थ का अस्तित्व पदार्थ रूप में ज्यों का त्यों विद्यमान रहता है और जिस शरीर में वे रहती हैं उसके अनुसार उनका आकार और स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। चेतनता आत्मा का प्रमुख लक्षण है। यह अविनाशी है, इस विश्व में आत्माएँ तब तक रहती है जब तक कि इस संसार के प्राणियों के शरीर में मूर्त रहती हैं।

4. **स्यादवाद–** जैन दर्शन के प्रवर्तकों ने आत्मवादियों तथा नास्तिकों के एकान्तवादी मतों को त्यागकर मध्यम वर्ग मार्ग अपनाया। इसे जैन धर्म का एकान्तवाद या स्यादवाद कहा जाता है। इसके अनुसार भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखे जाने के कारण सत्य भिन्न-भिन्न हो सकता है। सत्य के अनेक पहलू हो सकते हैं और मनुष्य को दशा के भेद से उसका आंशिक ज्ञान ही उपलब्ध हो सकता है। ज्ञान की विभिन्नता सात प्रकार की हो सकती है- है, नहीं है, है और नहीं है, कहा नहीं जा सकता, है नहीं और कहा जा सकता है। ये सब बातें भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के कारण हो सकती हैं। जैसे- यह कहा जा सकता है कि एक वृक्ष हिलता-डुलता है क्योंकि उसकी शाखाएँ, पत्तियाँ या फूल हिलते-डुलते हैं लेकिन साथ-साथ यह भी कहा जा सकता है कि वृक्ष नहीं हिलता-डुलता क्योंकि यह एक स्थान पर मजबूती से खड़ा है।

5. **अनीश्वरवादिता तथा सृष्टि की नित्यता–** यह धर्म ईश्वर में विश्वास एवं आस्था नहीं रखता उनके लिए इसका अस्तित्व अप्रासंगिक था। उन्होंने ईश्वर को सृष्टिकर्ता के रूप में स्वीकार किया है इसीलिए जैन धर्म को अनीश्वरवादी की संज्ञा दी गई है। उनके अनुसार सृष्टि अनादि तथा अनन्त है जो निरन्तर चलती रहती है और एक शाश्वत् नियम के अनुसार कार्य करती है, उत्थान और पतन की लहरों के दौर से गुजरती रहती है। सृष्टि के विधान में ईश्वर की सहायता व नियन्त्रण एवं हस्तक्षेप की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

6. **द्वैतवादी तत्व ज्ञान–** इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य का व्यक्तित्व भौतिक और आध्यात्मिक दो अंशों से बना है। भौतिक अंश मनुष्य को बुरे कर्मों में फँसाकर नीचे की ओर दबाये रहते हैं और आध्यात्मिक अंश उसे ऊपर उठाते हैं। भौतिक तत्व नाशवान एवं आध्यात्मिक तत्व अनन्त तथा विकासशील है। जब निर्वाण प्राप्त होता है तब भौतिक तत्व नष्ट हो जाते हैं और आत्मिक तत्व सद्कार्यों के कारण चिर शाश्वत् होकर ऊपर चढ़ते हैं। अन्त में वे मनुष्य को सांसारिक बन्धनों से मुक्त कर देते हैं। इसीलिए आध्यात्मिक प्रवृत्ति का अनुकरण करना चाहिए।

7. **आत्मवादिता–** तीर्थंकर महावीर जी अनात्मवादी नहीं थे, वे आत्मा की अमरता में विश्वास करते थे जिसको जड़ कहा जाता है। उसमें भी वे जीवन का अस्तित्व मानते थे। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में चाहे वे भौतिक हो या अभौतिक आत्मा होती है तथा जीवन का उद्देश्य आत्मा की बुद्धि

NOTES

है जो सम्यक् जीवन में आवश्यकता है। इनके अनुसार जीवन केवल मनुष्यों और पशु-पक्षियों में ही नहीं बल्कि पेड़-पौधों, पत्थरों और जल में भी है। जैन मत के अनुसार छः जीव श्रेणियाँ हैं- पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति एवं त्रस।

8. **कर्म और पुनर्जन्म–** सांसारिक विषय वासनाओं और तृष्णाओं से व्यक्ति, जो कर्म करता है, उसकी आत्मा उसके इन कर्मों के बन्धन से बँध जाती है। कर्म आठ प्रकार के होते हैं–

   ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, वेदनीय कर्म, आयु कर्म, नाम कर्म, मोहनीय कर्म, मोटा कर्म, अन्तराय कर्म, अनेक जन्मों में निरन्तर होने वाले ऐसे कर्मों के बन्धन आत्मा को बाँधे हुए हैं। इस जन्म के कर्मों का नहीं बल्कि पूर्वजन्मों के कर्मों के बन्धन भी आत्मा पर हैं। सभी मनुष्य अपने-अपने संचित कर्मों के कारण संसार में भ्रमण करते हैं। उन्हीं के अनुसार अलग-अलग योनियों में बार-बार जन्म लेते हैं और कर्मों का फल भोगते हैं। कर्म ही पुनर्जन्म का कारण है अत: कर्म के बन्धनों से आत्मा को मुक्त करने का प्रयास करना चाहिए।

9. **निर्वाण–** जब व्यक्ति इस जन्म में किसी प्रकार का कर्म-फल संग्रहित नहीं करता है तथा सत्कर्मों से पूर्व जन्मों के कर्मफलों का नाश कर लेता है, तब उसे निर्वाण प्राप्त होती है। पूर्वजन्म के कर्मफल से विमुक्ति ही निर्वाण है। कर्म की शक्तियों का विनाश एवं विकेन्द्रीकरण ही जीव की अन्तिम मुक्ति है। तप करने तथा शरीर को कठोर यन्त्रणाओं के अनुशासन में रखने के लिए नवीन कर्मों का निर्माण नहीं होता है एवं पहले के संचित कर्म भी धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं। कर्म के इस प्रकार के विनाश से आत्मा जीवन-मरण के चक्कर तथा भौतिक तत्वों से मुक्ति हो जाती है। मनुष्य को निर्वाण प्राप्त होता है। निर्वाण आत्मा के भौतिक अंश या शरीर के विनाश का नाम है।

10. **त्रिरत्न–** कर्म के बन्धनों का अन्त करने के लिए या केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए महावीर ने तीन साधनों के अनुकरण करने का आदेश दिया। जैन दर्शन में इन्हें त्रिरत्न कहा जाता है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र। सम्यक् दर्शन का तात्पर्य जैन तीर्थंकरों में विश्वास रखने से, सम्यक् ज्ञान का तात्पर्य सच्चा और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने से और सम्यक् चरित्र का आशय इन्द्रियों एवं कर्मों पर पूर्ण विश्वास से है।

11 ज्ञान– जैन दर्शन में ज्ञान पाँच प्रकार का माना गया है, जैन-मत, ज्ञान, श्रुति ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन पर्याय ज्ञान तथा केवल्य ज्ञान।

12.पंच अणुव्रत– सभी लोग संसार को त्याग कर तपस्या नहीं कर सकते तथा कर्मों के बन्धन के विनाश के लिए निवृत्ति मार्ग नहीं अपना सकते। अतः महावीर से ग्रहस्थी या श्रावकों के लिए पाँच व्रत बताये गये हैं, ये प्रतिज्ञाएँ हैं। जैन धर्म में इन्हें पंच अणुव्रत के नाम सेजाना जाता है।

(i) अहिंसा– प्राणी मात्र के प्रति मन, वचन और कर्म से हिंसा न की जाए और न दूसरों को हिंसा के लिए प्रोत्साहन दिया जाये।

(ii) सत्य– सदासत्य, मधुर और सुन्दर बोलें, क्रोध, भय एवं लोभ के समय मौन रहें।

(iii) अस्तेय– बिना ज्ञान के किसी की वस्तु या धन नहीं लेना चाहिए। बिना अनुमति किसी के गृह में प्रवेश न करें, दूसरों की सम्पत्ति चोरी न करें।

(iv) अपरिग्रह– न तो कोई वस्तु और न किसी प्रकार की सम्पत्ति को संग्रह ही करना चाहिए क्योंकि इससे आसक्ति की भावना मन में उत्पन्न होती है। धन, धान्य, वस्त्र, आभूषण, आदि का लालच से कर्मों के बन्ध नों में अधिकाधिक जकड़ता है।

(v) ब्रह्मचर्य– सभी प्रकार की विषय-वासनाओं का त्याग।

ये पाँच बातें दैनिक व्यावहारिक जीवन के नैतिक नियम हैं।

13. पंच महाव्रत– महावीर ने भ्रमण करने वाले जैन भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए पाँच महाव्रतों का उपदेश दिया। यथा–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य है। भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए गृहस्थों की अपेक्षा इन पाँच नियमों की कठोरता अधिक कर दी।

14. व्रत, उपवास और तपस्या– इसमें व्रत, उपवास और तप पर अधिक बल दिया गया है। जैन साधना में तपस्या के दो प्रकार हैं-ब्रह्म तपस्या एवं आभ्यन्तर तपस्या। ब्रह्म तपस्या में व्रत, उपवास, अनशन, भिक्षाचर्या, रसों का परित्याग और शरीर करो, यातनाएँ और कपट-क्लेश शामिल हैं तथा आभ्यन्तर तपस्या में प्रायश्चित, विनय, सेवा, स्वाध्याय, ध्यान तथा शरीर त्याग है।

15. **भौतिक सदाचारमय जीवन–** महावीर ने जटिल धार्मिक क्रियाविधियों तथा कर्मकाण्ड को निरर्थक बताकर विशुद्ध नैतिक आचरण पर बल दिया था। उन्होंने उत्तराध्ययन 20-52 में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है कि "जो चरित्राचार के गुणों से संयुक्त हो, जो सर्वोत्तम संयम का पालन करता है जिसने समस्त आश्रवों को रोक दिया है, जिसने कर्मों का नाश कर दिया है। वह विपुल उत्तर एवं ध्रुवगति मोक्ष को पाता है।"

16. **अहिंसा–** जैन दर्शन में अहिंसा पर अत्यधिक बल दिया गया है। उनका मानना है कि जड़ एवं चेतन दोनों में जीवन है। जीव छः प्रकार के होते हैं, यथा–पृथ्वीकाय, जलकाय, वायुकाय, अग्निकाय, वनस्पतिकाय और सजीव। इन्हें कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए।

17. **ब्राह्मण धर्म का विरोध–** महावीर ने वेदों की सत्ता-प्रमाणिकता तथा अपौरूषेयता को अंगीकार नहीं किया। उन्होंने वेद-प्रामाण्य को स्वीकार किया, वैदिक क्रिया-विधियों, ब्राह्मण धर्म के बहुसंख्यक देवी-देवताओं, ब्राह्मणों के प्रभुत्व का विरोध किया। हिंसात्मक यज्ञों तथा कर्मकाण्डों, यज्ञों को वे निरर्थक मानते हैं क्योंकि इससे मनुष्य की शुद्धि नहीं होती। उनका मानना है कि व्यक्ति कर्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र होता है। उन्होंने वर्ण और जाति भेदभाव नहीं माना। इसीलिए उन्होंने निर्वाण के द्वार सभी के लिए खोल दिये। सभी जैन धर्म को अपना सकते हैं।

18. **नारी की स्वाधीनता–** जैन दर्शन में नारी की स्वतन्त्रता का समर्थन किया गया। इसमें नारी करे सामाजिक और धार्मिक अधिकारों को प्रदान की बात कहीं। उन्होंने स्त्रियों के लिए धर्म के द्वार खोल दिये। पुरुषों के समान उन्हें निर्वाण-प्राप्ति की अधिकारिणी बताया। क्षत्रियों के दो वर्ण बताये- श्रामणी एवं श्रायिका।

19. **तीर्थंकरों में श्रद्धाभक्ति और विश्वास–** जैन धर्म के अनुयायी परमात्मा और उसकी पूजा उपासना में विश्वास नहीं करते। ये अपने तीर्थंकरों में अखण्ड श्रद्धा भक्ति और विश्वास रखते हैं। उन्हें वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, निर्ग्रन्थ और ईश्वर के समान मानते हैं। उन्हीं की उपासना एवं आराधना करते हैं।

जैन-दर्शन के अनुसार शिक्षा (Education by Jainism)

जैन-दर्शन के विचारकों के अनुसार भी शिक्षा एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो मनुष्य का संवेगात्मक, भावात्मक, ज्ञानात्मक और आध्यात्मिक

विकास करती हुई उस कर्म बन्धन से मुक्ति दिलाती है। इसके सम्यक् दर्शन में मनुष्य की भावात्मक, सम्यक् ज्ञान में ज्ञानात्मक तथा सम्यक् चरित्र में आत्मिक विकास की बात निहित है। इन तीनों पक्षों के विकास का लक्ष्य ही मनुष्य को कर्म बन्धन से मुक्ति दिलाकर निर्वाण की प्राप्ति कराना है। कर्म बन्धनों का अन्त करने के लिए या कैवल्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए त्रिरन्त यथा-सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र की आवश्यकता होती है।

शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य (Objectives and Aim of Education)

शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्यों को समझने से पूर्व प्रो. मैक्समूलर के विचारों से अवगत होना अधिक उचित रहेगा। उनका कथन है कि भारत में दर्शन ज्ञान के लिए नहीं बल्कि उस सर्वोच्च लक्ष्य के लिए था, जिसके लिए मनुष्य इस जीवन में प्रयास कर सकता है। भारतीय दर्शन में शिक्षा का अभिप्राय जीवन का दिव्य रूपान्तर एवं सांसारिक दुःखों से मुक्ति पाना है। चार्वाक के अतिरिक्त सभी भारतीय दार्शनिक मोक्ष प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं और जैन धर्म भी इससे अछूता नहीं है। जैन दर्शन के अनुसार भी शिक्षा का परम् लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति है। काषायो यथा- 'क्रोध, मान, माया, लोभ आदि के कारण जीव के पुद्गल से आक्रान्त हो जाने को जैनों ने बन्धन अथवा बन्ध तत्व की संज्ञा दी है।" जीव का बन्धन मानसिक प्रवृत्तियों के कारण होता है। दूषित मनोभाव ही बन्ध का प्रमुख कारण है और पुदगल आस्रव मनोभाव का प्रतिफल है। बन्धन की अवस्था में जीव और पुद्गल एक-दूसरे में प्रविष्ट हो जाते हैं। आस्रव एवं बन्धन का अवरोधन संवर तत्व करते हैं, ये पहले जीव के रागद्वेष एवं मोह आदि विकारों का निरोध करता है, इसे भाव संवर कहा जाता है। इसके पश्चात् कर्म पुद्गलों का प्रवेश रूक जाता है उसे द्रव्य संवर कहते हैं। कर्म पुद्गलों का प्रवेश एक बार रूकने पर फिर सदैव के लिए रूक जाता है तथा जब जीव के समस्त कर्म पुद्गलों का क्रमशः नाश हो जाता है तो उसे निर्वाण प्राप्त हो जाता है। कर्म-प्रवेश को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय बताये गये हैं-

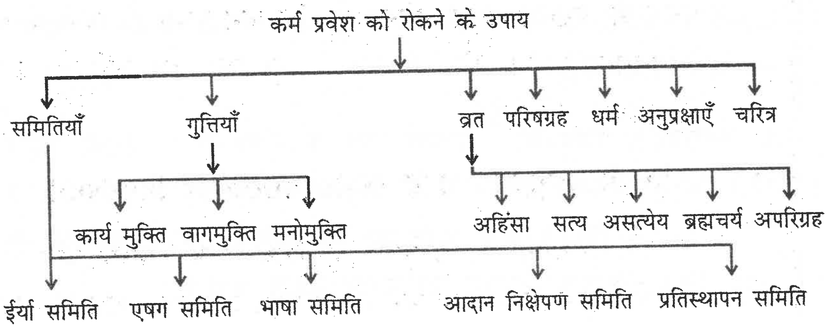

जैन दर्शन में निर्वाण दो प्रकार का माना गया है– भाव निर्वाण, द्रव्य निर्वाण। कर्म पुद्गलों से मुक्त होकर जीवन के सर्वज्ञ और सर्व दृष्टा होकर मुक्ति अनुभव करने का भाव निर्वाण कहलाता है। इसमें चार धातीय कर्म यथा- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एवं गोत्र, वेदनीय का भी नाश होने से द्रव्य निर्वाण प्राप्त होता है। अत: निर्वाण प्राप्त करना इस दर्शन का भी प्रमुख लक्ष्य है और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं-

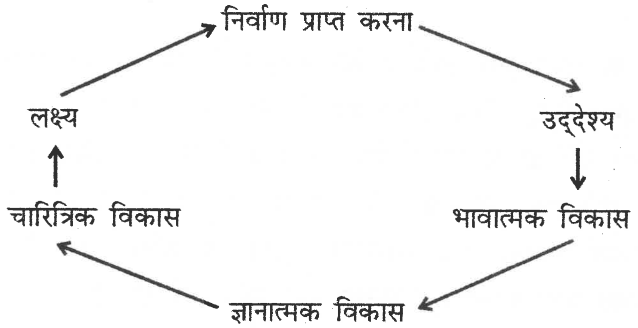

1. भावात्मक विकास– जैन दर्शन में निर्वाण प्राप्ति का प्रमुख चरण भावात्मक विकास है क्योंकि जब तक भावात्मक दृष्टि से मनुष्य शुद्ध एवं तत्पर नहीं होगा तब तक उसे अज्ञान के बन्धन से मुक्ति नहीं मिलेगी। सम्यक् ज्ञान से ही कर्म के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होती है उस कर्म का संवर एवं निर्जर होता है और मनुष्य को निर्वाण प्राप्त होता है। अत: इस प्रकार मनुष्य में भावात्मक विकास की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

2. ज्ञानात्मक विकास– जैन दर्शन में ज्ञान के पाँच प्रकार को उल्लेख किया गया है- मति, ज्ञान, श्रुति, ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनपमभि ज्ञान एवं कैवल्य ज्ञान। यह ज्ञान की चरम अवस्था है केवल ज्ञानी देश काल विषम की सीमा से पार होकर सर्वज्ञ हो जाता है और कर्म बँधन से स्वयं को मुक्त कर लेता है। तत्वों के सविशेष नाम से ही सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है। इसके लिए कर्मो का नाश आवश्यक है। इसके ज्ञान से ही यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है। कषायों से मुक्ति मिलती है और कर्मों के नाश से ही जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

3. चारित्रिक विकास– सम्यर्क ज्ञान के साथ-साथ सम्यक् चरित्र भी आवश्यक है। इसके माध्यम से ही मनुष्य अपने कर्मों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। यह निर्वाण प्राप्त करने का व्यावहारिक तथा क्रियात्मक पक्ष है। इसके लिए उसे पंच अणुव्रत का पालन करना होता है–

NOTES

पंच अणुव्रत के तत्व

अहिंसा | सत्य | अस्तेय | अपरिग्रह | ब्रह्मचर्य

जैन दर्शन के अनुसार पाठ्यक्रम (Curriculum by Jainism)

जैन दर्शन आत्मा और जगत् दोनों को ही सत्य के रूप में स्वीकार करता है। इसलिए इसके पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक तथा सांसारिक दोनों प्रकार के विषयों को शामिल किया गया है। चूँकि इसमें ज्ञान के पाँच प्रकार– मत, श्रुति, अवधि, मतः पर्याय और कैवल्य ज्ञान बताये गये हैं जिसके अनुसार भी पाठ्यक्रम स्पष्ट होता है मति और श्रुति ज्ञान का सम्बन्ध सांसारिक पाठ्यक्रम से है और शेष तीन ज्ञानी का सम्बन्ध आध्यात्मिकता से है। जैन दर्शन के अनुसार पाठ्यक्रम को इस प्रकार समझा जा सकता है।

सम्यक् ज्ञान	**पाठ्य विषय और क्रिया**
अजीव एवं पुद्गल का अध्ययन	– भौतिक विज्ञानों का अध्ययन
अणु एवं संघात का अध्ययन	– अभियंता शिक्षा, विभिन्न कला कौशलों का अध्ययन
अजीव के भेद गतिशीलता	– डायनेमिक्स
स्थिरता	– स्टेटिक्स
आकाश	– स्पेस साइन्स
जीव के भेद	– ब्रह्माण्ड का अध्ययन, जीवविज्ञान, शरीर रचना, शरीर क्रिया का अध्ययन
स्थावर	– भू-विज्ञान इत्यादि का अध्ययन
आस्तिकाय काल का अध्ययन	– इतिहास, सामाजिक और भौतिक परिवर्तनों का अध्ययन
जीव का अध्ययन	– समाजशास्त्र, नागरिकशास्त्र, मनोविज्ञान उद्योग, अर्थशास्त्र का अध्ययन
मुकात्मा का अध्ययन	– आध्यात्मक विज्ञान

इन सभी विषयों के साथ उन्होंने उसके क्रियात्मक पक्ष की करनी पर जोर दिया जो सम्यक् चरित्र क्षरा सम्भव है और सम्यक् चरित्र की प्राप्ति के लिए पंचमहाव्रत यथा– सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का विद्यालयी जीवन में पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए उन्होंने दस गुणों को भी आवश्यक बताया है- क्षमा, मादव, आजव, सत्य, शौच, संयम, तप, व्यायाम, अमरत्व एवं ब्रह्मचर्य, जिनके उपयोग से दैनिक जीवन में सम्यक् चरित्र का निर्माण कर निर्वाण की प्राप्ति की जा सके।

इससे स्पष्ट होता है कि जैन दर्शन के अनुसार पाठ्यक्रम भौतिक तथा प्राकृतिक विज्ञानों से आरम्भ होकर नीति एवं आचारशास्त्र की ओर अग्रसर होता हुआ अपने लक्ष्य आध्यात्मक विज्ञान तक पहुँचता है। इनके द्वारा वर्णित ज्ञान भौतिक और प्राकृतिक विज्ञानों का अध्ययन अनिवार्य है लेकिन अपने आप में लक्ष्य या प्रमुख नहीं। प्रमुख पाठ्यक्रम आचारशास्त्र और आध्यात्मक विज्ञान से सम्बन्धित है क्योंकि पंच अणुव्रत और दस लक्षणों का व्यवहार का अंग बनाकर कर्म बन्धनों का नाश करते हुए निर्वाण की प्राप्ति ही जीवन का अन्तिम एवं प्रमुख लक्ष्य है।

जैन दर्शन एवं शिक्षण विधियाँ
(Jainism and Teaching Methods)

जगत् को यथार्थ मानने वाले इस अनेकान्तवादी दर्शन के अनुसार शिक्षा की सामाजिक आवश्यकता अनुभव की जाती है ताकि आध्यात्मिक उद्देश्य की प्राप्ति भी की जा सके। इन्होंने वास्तविक उन्नति के लिए शिक्षा को एक साध न के रूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार संस्कृति का मानव पर आरोपण आवश्यक है तथा शिक्षा मानव का अधिकार है क्योंकि यही शिक्षा अभ्युदय के द्वारा निःश्रेयस (निर्माण) की ओर ले जायेगी। इस दर्शन में साहित्य में अध्यापन के लिए व्याख्यान विधि, वार्तालाप विधि, स्वाध्याय विधि एवं मौखिक रहने की विधि का उल्लेख मिलता है। जैन आगम स्थानांग में स्वाध्याय विधि का वर्णन मिलता है। वे स्वाध्याय का अभिप्राय उस क्रिया से लगाते हैं जो आत्मा के लिए उन्नतिकारी एवं कल्याणकारी हो। उनके अनुसार स्वाध्याय पाँच प्रकार का होता है।

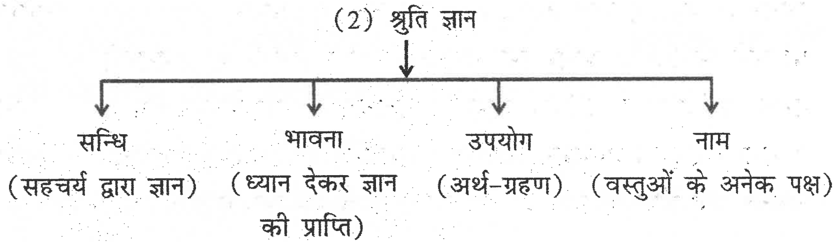

मति ज्ञान विधि का प्रयोग वर्तमान शिक्षा प्रणाली में करते हैं। भाषा, विज्ञान आदि के शिक्षक में प्रत्यक्ष विधि का ही उपयोग प्रमुख रूप से किया जाता है। प्राप्त ज्ञान का परीक्षण प्रत्याभिज्ञान तथा प्रत्यास्मरण द्वारा करते हैं और श्रुति ज्ञान अथवा शब्द ज्ञान व्याख्यान पाठ्यपुस्तकों आदि से प्राप्त होता है। मति और श्रुति ज्ञान हमें शिक्षण-प्रक्रिया एवं शिक्षण विधियों का स्पष्ट बोध कराता है।

जैन-दर्शन और शिक्षार्थी (Jainism and Student)

जैन दर्शन के अनुसार मनुष्य चैतन्य आत्मा से युक्त जीव है। उसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियों और आत्मा निहित होती है एवं शेष जीवों में पंचेन्द्रिय नहीं होती, न ही उनके पास बुद्धि और मन होता है जिससे उनका व्यवहार मूल प्रवृत्तियों से संचालित होता है जबकि मानव मूल प्रवृत्तियों में शोधन और मार्गान्तरीकरण कर बुद्धि और मन से अपने व्यवहार को नियन्त्रित करता है मनुष्य में मन रूप में छठी इन्द्रिय का अस्तित्व भी माना गया है और चूँकि छात्र भी एक मनुष्य ही है अत: इन सभी गुणों से परिपूर्ण है। अत: इस दृष्टि से सभी छात्र समान हैं लेकिन उनमें जो भी पृथकता दिखाई देती है वह कर्म जनित है और इन पूर्वजन्मों के कर्मों के फलस्वरूप शारीरिक लक्षणों के रूप में प्रकट होती है। सामान्यतया अन्य जीवों के व्यवहार को क्षुधा, भय, प्यास, आदि प्राकृतिक शक्तियाँ निर्धारित करती हैं जबकि मनयुक्ता होने के कारण मानव शिशु स्वयं के व्यवहार को नियंत्रित कर सकता है। अत: शिक्षा द्वारा इसके व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन सम्भव है। जैन दर्शन आत्मा का शरीर से भिन्न एक पृथक् चेतन सत्ता के रूप में स्वीकार करता है। इस प्रकार छात्र के व्यक्तित्व निर्माण में दो तत्वों की भूमिका होती है- प्रथम चैतन्य जो समग्र शरीर में व्याप्त है एवं द्वितीय, शरीर जो इन्द्रियों से निर्मित है।

जैन दर्शन में यह भी स्वीकार किया गया है कि जगत् अनेक पौदगलिक अणुओं से बना है। अत: बालक का शरीर एवं वातावरण भी पौदगलिक अणुओं के मिश्रण के परिणामस्वरूप बना है। क्योंकि जैन दर्शन में कर्म भी पुद्‌गल द्रव्य से निर्मित है तथा मनुष्य जिस प्रकार के कर्म करता है उसी प्रकार के कर्म पुद्‌गल उसे आवृत कर लेते हैं। अगले जन्म में उक्त कार्मिक पुद्‌गलों से निर्मित शरीर को जीवात्मा धारण करती है। शिक्षार्थी का शरीर उसके पूर्वजन्मों में अर्जित कर्मों का किवाड़ है जो स्थूल रूप धारण करता है तथा शरीर के अनुसार अपने को समाहित कर लेता है क्योंकि पूर्वजन्म में अर्जित कर्म ही इस जन्म के निर्धारक होते हैं इस कारण कोई भी दो शिक्षार्थी,

NOTES

कर्म समान न होने के कारण समान नहीं होते हैं। बुद्धि शारीरिक शक्ति, इन्द्रिय विकास तथा संवेदनशीलता के क्षेत्र में शिक्षार्थी में विभिन्नता होती है लेकिन आत्मा में नित्य स्वरूप के कारण सभी शिक्षार्थी इस दृष्टिकोण से समान होते हैं। जैने दर्शन में शिक्षार्थी के दो प्रकार बताये गये हैं– पहला श्रमण, दूसरा श्रावक। श्रमण महाव्रती होता है, उसका जीवन स्वयं के लिए न होकर समाज के निमित्त होता है। उसकी शिक्षा पारमार्थिक होती है, उसके जीवन में कठोर अनुशासन एवं महाव्रतों का पालन अनिवार्य होता है तथा श्रावक अणुव्रती होता है उसकी शिक्षा सांसारिक जीवन की पवित्रता से जीवन–यापन के लिए होती है। उसका जीवन श्रमण की अपेक्षा सरल होता है, उसे पंचमहाव्रत का सीमित रूप से ही पालन करना होता है। केवल यह ऐसा कोई आचरण नहीं जिससे दूसरों को हानि पहुँचे। उससे यह आशा की जाती है कि उसके पारिवारिक, सामाजिक, व्यावसायिक जीवन के प्रत्येक पहलू में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, निर्लोलुपता तथा अपरिग्रह परिलक्षित होगा। उसको प्रत्येक ज्ञेय में स्वयं पर नियन्त्रण करना चाहिए।

जैन दर्शन के अनुसार श्रमण के लिए बाहर 'अनुप्रेक्षाओं' या भावनाओं से युक्त रहना आवश्यक है जो इस प्रकार है–

1. अनित्य– धर्म को छोड़कर सभी वस्तुओं को अनित्य मानना।
2. अशरण– सत्य के अतिरिक्त कोई दूसरा शरण नहीं।
3. संसार – जीवन मरण की भावना।
4. एकत्व – जीव अपने कर्मो का भोगी है।
5. अन्यत्व – आत्मा को शरीर से भिन्न मानना।
6. अरुचि – शरीर एवं शारीरिक वस्तुओं को अपवित्र मानना।
7. आस्त्रण – कर्म के प्रवेश की भावना।
8. संवर – कर्म के प्रवेश की भावना।
9. निर्जरा – जीव में प्रविष्ट कर्म पुद्गलों के बाहर निकालने की भावना।
10. लोक – जीवात्मा शरीर और जगत् की वस्तुओं की भावना।
11. धर्मानुप्रेक्षा – धर्म मार्ग से च्युत न होना।

इन दर्शन में छात्र में ग्रहणशीलता पर अत्यधिक बल दिया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र में शिक्षार्थी के निम्नलिखित लक्षण बताये गये हैं –

1. गुरुजनों से विनम्रता से वार्तालाप करें।
2. उसके बराबर आसन न ग्रहण करें।
3. निष्कपट भाव से व्यवहार करें।
4. चंचल एवं कौतुक न हो।
5. गुरुजनों का सम्मान करें।
6. कलहोत्पादक वार्ता न करें।
7. मित्रता का निर्वाह करें, उन पर क्रोध न करें।
8. ज्ञान को प्राप्त करके गर्वोन्मत न हो।
9. गुरुजनों में दोषों को ही न ढूढ़ता रहे।
10. अप्रिय मित्रों के गुणों को भी ग्रहण करें तथा परोक्ष रूप से उनकी भी प्रशंसा करें।
11. वाग्युद्ध एवं शारीरिक युद्ध दोनों से दूर रहें।
12. शिष्टाचार का पालन करें।
13. सभी का आदर करें।
14. इन्द्रियों पर विजयी हों।

जैन दर्शन और शिक्षक (Jainism and Teacher)

जैन दर्शन में शिक्षक एक समन्वित रूप से विकसित व्यक्तित्व होता है। उपर्युक्त वर्णित छात्र-संकल्पना से भी यह स्पष्ट होता है कि इसमें शिक्षक का स्थान बहुत ही उच्च्व है।

"णमों अरिहंताणं, णर्मो सिद्धाणं, णमो आइरयाणं, णर्मो उवाज्याणं, णर्मो लोए सब्व साइण।"

अर्थात् जैन दर्शन में 'पंच परमष्टि' की पूजा में अरहंत एवं सिद्धों के बाद आचार्य एवं उपाध्याय का स्थान है जोकि शिक्षक के महत्वपूर्ण स्थान का सूचक है। अतः उसने निम्न आकांक्षाएँ रखी जाती है-

1. पंच महाव्रत आचार्य के जीवन के अंग होने चाहिए तथा वह उनका मन और कर्म से पालन करें।

2. उसे समाज से मान्य व धर्म से मान्य आचरण का रूप मूर्त स्वरूप प्रस्तुत करना चाहिए।

3. उसे अपने इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए तथा यथासम्भव इन्द्रियों के सुखों को त्याग करते रहना चाहिए।

4. शिक्षक को क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कारणों का सर्वथा त्याग करना चाहिए।

5. उसे काम मुक्ति अर्थात् शारीरिक व्यापार का निरोध, वाग गुप्ति अर्थात् बोलने के व्यापार का निरोध की दृष्टि से संयमित होना चाहिए।

6. आचार्य को दस धर्मों यथा- क्षमा, मृदुता, सरलता, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, औदासनीय, ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। आचार्य को पाँचों समितियों यथा- ईर्या समिति (चलने-फिरने के नियमों का पालन), भाषा समिति (बोलने के नियमों का पालन), एषगा समिति (धार्मिक कार्य के लिए भिक्षा में से कुछ अंश बचाना), प्रतिस्थापना स्थापना समिति (भिक्षा या दान को अस्वीकार करना) इन सभी नियमों का पालन करना चाहिए।)

इस प्रकार जैन दर्शन में शिक्षक की आचरण ज्ञान, वाणी, शरीर, बुद्धि आदि सभी दृष्टियों से आदर्श होना आवश्यक है और एक आदर्श शिक्षक में निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं।

1. पंच महाव्रत उसके जीवन के अंग बन जाते हैं जो निम्नलिखित हैं–

(i) मन, वाणी एवं कर्म द्वारा किसी प्राणी की हिंसा न करना।

(ii) विचार, वाणी एवं व्यवहार में सत्य का पालन करना।

(iii) स्थूल और सूक्ष्म किसी भी प्रकार की चोरी न करना।

(iv) सभी प्रकार के काम भोगों को संयमित करना और इन्द्रिय लोलुपता को नियंत्रित करना।

(v) विषयासति का त्याग करना तथा वस्तुओं के संग्रह को नियन्त्रित करना।

2. पंच समितियाँ यथा– ईर्ष्या, भाषा, एषगा, आदान-निक्षेपण, प्रतिस्थापना समिति का निष्ठापूर्वक पालन करना जिससे कि किसी भी जीव की हत्या न हो।

3. मन, वचन तथा कर्म से संयम होना।

4. दस प्रकार के गुण धर्म जीवन में दृष्टिगोचर होना।

5. जीव और संसार का सही ज्ञान होना और उसके सम्बन्ध की बौद्धिक अवधारणा स्पष्ट होना।

6. भूख, प्यास, शीत, उष्णता आदि के कारण होने वाले कष्टों का सहन करना।

7. जीवन में समता, निर्मलता, निर्लामवृत्ति तथा सच्चरित्रता के गुणों का होना।

8. विषय-विशेषज्ञ और अन्य विषयों का भी सामान्य ज्ञान रखने वाला।

9. छात्रों के व्यक्तित्व का सदाचार करने वाला, उनमें निहित आत्म-तत्व को पहचानने वाला।

10. प्रत्यक्ष व्याख्यान, विचार-विमर्श आदि विभिन्न शिक्षण-विधियों द्वारा छात्रों को ज्ञान प्रदान करने वाला, उनकी समस्याओं का हल करने वाला।

11. छात्र के लिए अनुकरणीय चरित्र वाला।

जैन दर्शन में शिक्षक दो प्रकार के बताये गये हैं –

1. आचार्य,
2. उपाध्याय।

आचार्य जो अनुशासन, चरित्र-निर्माण आदि के उच्चतर पक्ष देखने वाला अर्थात् जीवन में सम्यक् चरित्र के समावेश के लिए जबावदेह होता है, जबकि उपाध्याय का कार्य क्षेत्र सम्यक् ज्ञान है अर्थात् वह अध्ययन-अध्यापन का काम करता है। सभी भारतीय दर्शनों के आदर्श चरित्र व्यक्ति को ही शिक्षकत्व का कार्य सौंपने की आवश्यक शर्त है। यही स्थिति जैन-दर्शन की भी है। इसमें सांसारिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शिक्षाओं को महत्व दिया गया है। अतः एक ओर सांसारिक ज्ञान की शाखाओं के पंडित विषय-विशेषज्ञ शिक्षक चाहिए दूसरी ओर शिक्षक पंचमहाव्रती एवं दस लक्षणों से युक्त होने चाहिए।

जैन दर्शन का ज्ञानसार

जैन दर्शन आत्मा और जगत् दोनों को ही सत्य के रूप में स्वीकार करता है इसलिए इसके पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक तथा लौकिक अथवा सांसारिक दोनों

प्रकार के विषयों को शामिल किया गया है। इसमें आध्यात्मक और विज्ञान के विरोध को समन्वयकारी दृष्टिकोण के आधार पर दूर करने का प्रयास किया गया है। जैन दर्शन में पाठ्यक्रम में जीवन को सुखी बनाने के लिए जहाँ एक ओर संसार के ज्ञान और उसके रहस्यों के अनावरण पर बल दिया गया है वहीं दूसरी ओर उनसे बचने एवं इन्हें त्यागने का आग्रह किया गया है।

ज्ञानार्जन का साधन पाठ्यक्रम है। जैन दर्शन में ज्ञान के महत्व को स्वीकार किया है। "मनुष्य को पहले ज्ञान प्राप्त करना चाहिए" तभी वह अहिंसा का पालन कर सकता है।

आधार जैन दर्शन का प्रमुख प्रत्यय 'जड़ द्रव्य निरूपण' जैन दर्शन में पाठ्यक्रमीय विषयों के विवेचन को दे सकता है। पाठ्यक्रम में विषयों के दृष्टिकोण से पुद्गल अध्ययन भौतिक विज्ञानों के अध्ययन के अन्तर्गत आता है। भौतिक विज्ञानों के द्वारा ही मानव भौतिक जगत् की सूक्ष्मताओं को जानने में सक्षम होता है जिसके परिणामस्वरूप जगत् के साथ सामंजस्य की स्थिति सम्भव होती है। भौतिक द्रव्यों के संघात और मानव कौशल के समन्वय के कारण नव-निर्माण सम्भव होता है। अत: विभिन्न शिल्प, कला, कौशल और अभियान्त्रिक में अध्ययन पुद्गल, अध्ययन के अन्तर्गत आ सकता है। जैन दर्शन में धर्म एवं अधर्म का अध्ययन आधुनिक गणित की दशा विज्ञान और गति विज्ञान के समरूप ही है। पुद्गल का आकाश तत्व शून्य से सम्बन्धित है। अत: अन्तरिक्ष विज्ञान का अध्ययन पाठ्यक्रम में शामिल किया जा सकता है। सभी जीवों के शरीर पुद्गल से बनते हैं, उनमें होने वाले परिवर्तन पौदिलक परिवर्तन कहलाते हैं। जीवों के जैन दर्शन में अन्तिम सत्ता एक विशिष्ट तत्व नहीं है। इस दृष्टिकोण से जैन दर्शन यथार्थवादी दर्शन है।

इसी प्रकार किसी एक सत्ता के न मानने के परिणामस्वरूप इसे बहुतत्ववादी दर्शन भी कहा जा सकता है। जैन दर्शन के अनुसार इस जगत् का निर्माण अनेक द्रव्यों के योग से हुआ, जिन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम जीव द्रव्य जो कि शरीर व आत्मा से निर्मित होता है? द्वितीय अजीव द्रव्य जिसके पाँच भाग होते हैं। इनमें से कुछ तो शरीर तथा मूर्त जगत् का निर्माण करते हैं और कुछ बाह्यपरिस्थिति का निर्माण करते हैं। जड़ द्रव्य निम्न वर्गीकरण से स्पष्ट कर सकते हैं। बाह्य शरीर और उनमें होने ाले परिवर्तनों का अध्ययन आकारिकी तथा शारीरिक कार्य के अन्तर्गत किया जा सकता है। दो, तीन व चार इन्द्रियों से युक्त कीट पतंगों का अध्ययन कीट विज्ञान को नये आयाम दे सकता है। समय के अध्ययन के अन्तर्गत इतिहास, भौतिक

व सामाजिक परिवर्तन का समावेश किया जाता है। जैन दर्शन के काल द्रव्य के स्वतंत्र अध्ययन का भी प्रावधान है। जीव के अध्ययन के दृष्टिकोण से मानव विज्ञान मानव का प्राकृतिक व मानवीय वातावरण में स्थान, मानवीय संस्थाएँ, मनोविज्ञान, मानव धर्म, नीतिशास्त्र आदि विषयों के अध्ययन का भी जैन दर्शन आग्रह करता है। जैने पाठ्यक्रम में कला तथा शिल्प का वर्णन तो मिलता है, लेकिन उनका स्थान गौण है, क्योंकि जैन दर्शन में जीव के अन्तर्गत जड़ और चेतन सभी चीजों का समावेश होने के कारण जीव रक्षा प्रत्यय भी अर्थहीन हो जाता है। जब तक द्रव्यों का पूर्णरूपेण अध्ययन न हो तब तक जीव रक्षा सम्भव नहीं है। सामयिक ज्ञान के रूप में द्रव्यों के सम्बन्ध का ज्ञान यद्यपि जैन दर्शन में है तथापि इसे सामयिक चरित्र के अन्तर्गत ही माना गया है। जैन दर्शन द्वारा प्रस्तुत वैद्य ज्ञान है जो जीवन को उत्तम बनाये, चरित्र को उत्कृष्ट बनाये और अहिंसा के पालन में सहायक सिद्ध हो।

जैन–दर्शन शिक्षा को जीवन भर चलने वाली शिक्षा के रूप में देखता है जो व्यक्ति को संवेगात्मक, भावात्मक, ज्ञानात्मक और आध्यात्मिक विकास करते हुए उसे मुक्ति दिलाने में सहायता करती है। लोकतंत्र एक आदर्श है दूसरों के विचारों को सुनना, समझना तथा वैमत्व को सहिष्णुता से स्वीकार करना है। इसका स्यादवाद इस बात पर आग्रह करता है कि जब हम कुछ कहते हैं तो उसका आधार अवश्य होता है, जबकि अन्य व्यक्ति उसी तथ्य को अपने आधार पर दूसरे रूप में प्रस्तुत करते हैं। अतः दूसरे व्यक्ति के आध ार को समझे बिना उसका तिरस्कार करना उचित नहीं, उसके तथ्य को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

वेदान्त दर्शन का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Vedant Philosophy)

वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों के गूढ़ एवं विस्तृत दार्शनिक चिन्तन का आखरी सार ही वेदान्त दर्शन कहा जाता है। वादरायण व्यास (चौथी शताब्दी) पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने इन सभी ग्रंथों के सार तत्त्व को सूत्र रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार विरचित ग्रंथ का नाम 'ब्रह्म सूत्र' है। इसी को वेदान्त दर्शन का आदि ग्रंथ कहते हैं। वादरायण के कई सौ वर्ष बाद अनेक विद्वानों ने उनके ब्रह्म सूत्र पर भाष्य ग्रंथ लिखे और अपने आधार से ब्रह्म सूत्र में प्रतिपादित वेदान्त की व्याख्या की। इन व्याख्याओं से वेदान्त की अधिकांश उप–शाखाओं का विकास हुआ। इनमें शंकर (9वीं शताब्दी) का अद्वैत, रामानुजाचार्य (12वीं शताब्दी) का विशिष्टाद्वैत, मध्वाचार्य (13वीं शताब्दी)

NOTES

का द्वैत, निम्बार्क (13वीं शताब्दी) का द्वैत, श्री कण्ठ (13वीं शताब्दी) का शैव विशिष्टाद्वैत श्रीपति (14वीं शताब्दी) का वीर शैव विशिष्टद्वैत और बल्लभाचार्य (16वीं शताब्दी) को शृद्धाद्वैत प्रमुख हैं। इनमें शंकर का अद्वैत वेदान्त तो पूर्ण रूपेण वेद एवं उपनिषद् मूलक है, परन्तु शेष सभी दर्शनों की तत्व मीमांसा तो वेद तथा उपनिषदों पर आधारित है, लेकिन उनकी उपासना की पद्धतियाँ वैष्णव, शैव एवं शाक्त आगमों पर आधारित है। वैष्णव, शैव और शाक्त आगमों पर आधारित होने के कारण ही उन्हें क्रमशः वैष्णव, शैव और शाक्त दर्शनों के रूप में जाना जाता है। आज जब हम वेदान्त दर्शन की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय मुख्य रूप से शंकर के अद्वैत वेदान्त से ही होता है। वैसे भी वेदान्त की सभी शाखा एवं उपशाखाओं में सर्वाधिक महत्व शंकर के अद्वैत वेदान्त का ही है।

शंकर का अद्वैत वेदान्त दर्शन भारतीय चिन्तन धारा का चरमोत्कर्ष है। आज भारत में जितने भी दर्शन और धर्म मानव जीवन में उतरे हुए हैं। उन पर वेदान्त का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य है। भारतेतर र्शन एवं धर्मों से भी यह बड़ा मेल खता है। इसका ब्रह्म यहूदी धर्म के जेहोवा, पारसी धर्म के आहुरमज्द, ईसाई धर्म के गौड़ एवं इस्लाम धर्म के अल्लाह के समान निर्गुण एवं सर्वशक्तिमान है। अन्तर केवल इतना है कि जेहोवा, आहुरमज्द, गौड और अल्लाह इस ब्रह्माण्ड के कर्त्ता मात्र हैं, जबकि वेदान्त का ब्रह्म इसका कर्त्ता तथा उपादान, दोनों कारण हैं। जगत के कर्त्ता के रूप में ब्रह्मा को सगुण रूप देकर उसे ईश्वर की संज्ञा से विभूषित कर शंकर ने ईश्वर भक्त लोगों के हृदय को भी स्पर्श किया है। शिक्षा के आधार से भी सर्वाधिक महत्त्व इसी दर्शन का है, अतः यहाँ हम केवल शंकर के अद्वैत वेदान्त पर ही विचार करेंगे।

किसी भी दार्शनिक चिन्तनधारा को समझने के लिए उसकी तत्व मीमांसा (Metaphysics), ज्ञान एवं तर्क मीमांसा (Epistemology and logic) और मूल्य तथा आचार मीमांसा (Axiology and Ethics) को समझना आवश्यक होता है, अतः हम सर्वप्रथम वेदान्त की तत्त्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा और मूल्य एवं आचार मीमांसा को ही समझने का प्रयास करेंगे।

वेदान्त दर्शन की तत्त्व मीमांसा

शंकर ने इस ब्रह्मण्ड के मूल में केवल ब्रह्म की सत्ता मानी जाती है। उनकी दृष्टि से ब्रह्मा ही अन्तिम है। उनका यह ब्रह्मा अनादि, अनन्त और निराकार है। यही ब्रह्मा इस ब्रह्माण्ड का कर्ता और उपादन कारण है। यही शंकर का

अद्वैत है। शंकर के द्वारा सर्वप्रथम ब्रह्म अपनी इच्छा से स्वयं में माया शक्ति का निर्माण करता है और फिर इस माया शक्ति के द्वारा इस नाना वस्तु का निर्माण करता है। शंकर के अनुसार माया ब्रह्म की बीजशक्ति है, यह न सत् है और न असत्, यह अनिर्वचनीय है। संसार के कर्त्ता के रूप में यह ब्रह्मा साकार ब्रह्मा अथवा ईश्वर के नाम से प्रसिद्ध होता है। आत्मा को शंकर ब्रह्मा का अंश मानते हैं और चूँकि ब्रह्म अपने में पूर्ण, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान एवं सर्वज्ञाता है इसलिए शंकर की सम्मति में आत्मा भी अपने में पूर्ण एवं अनन्त है। जीव के विषय में शंकर का मानना है कि शरीर तथा आत्मा समूह के अध्यक्ष और कर्मफल का भोक्ता आत्मा ही जीव है। यही जीव सूक्ष्म शरीर के साथ एक जन्म से दूसरे जन्म में जाता है।

जगत को शंकर नाशवान् एवं असत्य मानते हैं। उनके अनुसार इस जगत् एवं उसमें मानव जीवन की केवल व्यावहारिक सत्ता ही है। पदार्थ की अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं है, पदार्थ तो विचार शक्ति के तीव्र गति से चक्कर काटने से उत्पन्न भंवरजाल है। जिस प्रकार पानी में भंवर का अपना कोई अस्तित्त्व नहीं होता उसी प्रकार पदार्थों का अपना कोई अस्तित्त्व नहीं होता। शंकर का यह मत भारतीय प्रत्ययवाद और प्लेटो के विचारवाद से घनिष्ट सम्बन्ध है।

मनुष्य को शंकर आत्माधारी मानते थे। उनकी दृष्टि से चूँकि आत्मा ब्रह्मा का अंश है। यही कारण है कि वह अपने से पूर्ण, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान एवं सर्वज्ञाता है और एतदर्श मनुष्य अनन्त शक्ति एवं अनन्त ज्ञान का साधन है।

वेदान्त दर्शन की ज्ञान एवं तर्क मीमांसा

शंकर ने ज्ञान को दो भागों में विभाजित किया है– अपरा (लौकिक अथवा व्यावहारिक) तथा परा (आध्यात्मिक)। इस वस्तु जगत एवं मनुष्य जीवन के विभिन्न पक्षों के ज्ञान को उन्होंने अपना ज्ञान की संज्ञा दी है। उनकी दृष्टि से इस ज्ञान की केवल व्यावहारिक उपयोगिता है, इससे मनुष्य अपने जीवन के अन्तिम उद्देश्य 'मुक्ति' की प्राप्ति नहीं कर सकता। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद एवं गीता की तत्त्व मीमांसा को वे परा ज्ञान कहते थे। उनके अनुसार यही सच्चा ज्ञान है, इस ज्ञान से ही मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इन दोनों के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए शंकर ने श्रवण, मन और निदिध्यासन की विधि का समर्थन किया है लेकिन परा ज्ञान के लिए वे श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के साथ साधन चतुष्टय को महत्वपूर्ण मानते थे। उनकी दृष्टि से बिना साधन चतुष्टय (नित्य-अनित्य वस्तु विवेक, भोग विरक्ति, शमदमादि संयम और ममुक्षकत्व) से परा ज्ञान नहीं हो सकता।

वेदान्त दर्शन की मूल्य एवं आचार मीमांसा

शंकर ने मनुष्य जीवन को दो रूपों में विभाजित किया है– एक अपरा (व्यावहारिक) और दूसरा परा (आध्यात्मिक)। व्यावहारिक आधार से उन्होंने मनुष्यों को अपने वर्ण-कर्म को निष्ठा एवं ईमानदारी से करने की सलाह दी है। इनका मानना है कि जो मनुष्य अपने वर्ण-कर्म को जितनी निष्ठा एवं ईमानदारी से करेगा वह व्यावहारिक दृष्टि से उतना ही सफल होगा।

शंकर के अनुसार मनुष्य जीवन का प्रमुख उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना है। मुक्ति से शंकर का तात्पर्य सांसारिक सुख-दु:खों के छुटकारे से है। मुक्ति के शंकर ने दो रूप स्वीकार किए हैं– एक जीवन मुक्ति और दूसरी विदेह मुक्ति। जीवन मुक्ति से शंकर का अभिप्राय जीवन में ही सुख-दु:ख से छुटकारा पाने से हैं और विदह मुक्ति से उनका तात्पर्य जीवन के अन्त में ब्रह्मतत्व की पूजा से होता है। उनके मतानुसार किसी भी प्रकार की मुक्ति के लिए ज्ञान मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के लिए शंकर ने श्रवण, मनन और निदिध्यासन पर बल दिया है और इसके लिए साधन चतुष्टय को आवश्यक माना है। मोक्ष प्राप्त करने के इच्छुक को इन सबका पालन करना चाहिए। दोनों ही साधनों में नैतिकता का महत्वपूर्ण योगदान है।

वेदान्त दर्शन की परिभाषा

वेदान्त दर्शन की तत्त्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा तथा मूल्य एवं आचार मीमांसा के आधार पर हम उसको निम्नलिखित रूप से परिभाषित कर सकते हैं–

वेदान्त दर्शन भारतीय दर्शन की वह विचारधारा है जो इस ब्रह्माण्ड को ब्रह्म द्वारा ब्रह्म से निर्मित है और यह मानती है कि केवल ब्रह्म ही सत्य है और यह वस्तु जगत असत्य है। यह ईश्वर को ब्रह्म का साकार रूप और आत्मा को ब्रह्म का अंश मानती है तथा यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है, जिसे ज्ञान योग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

वेदान्त दर्शन के मूल सिद्धान्त (Fundamental Principles of Vedant Philosophy)

वेदान्त दर्शन के तत्त्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा तथा मूल्य एवं आचार मीमांसा को यदि हम सिद्धान्तों के रूप में क्रमबद्ध करना चाहें तो निम्नलिखित रूप में कर सकते हैं-

1. **यह ब्रह्माण्ड ब्रह्म द्वारा ब्रह्म से निर्मित है** – शंकर के अद्वैत वेदान्त के अनुसार ब्रह्म मुख्य तत्त्व है और ब्रह्म से ब्रह्म के ही द्वारा इस ब्रह्माण्ड का निर्माण होता है और उससे इसमें नित्य दृश्य एवं अदृश्य परिवर्तन होते रहते हैं। जिस प्रकार मकड़ी अपने अन्दर के द्रव्य पदार्थ द्वारा अपने श्रम से स्वयं जाल की रचना करती है ठीक उसी प्रकार ब्रह्म इस जगत का निर्माण करता है। ब्रह्म की वह शक्ति जिसके द्वारा वह ब्रह्माण्ड का निर्माण करता है, उसे शंकर ने माया कहा है। शंकर के अनुसार ब्रह्म अनादि, अनन्त, निर्गुण और निर्वयव है, लेकिन जब उसमें माया से संसार के निर्माण का गुण आरोपित किया जाता है तो वह सगुण हो जाता है। उपासन की दृष्टि से भी हम उसे सगुण ब्रह्म (ईश्वर) के रूप में प्रतिपादित करते हैं, परन्तु है वह निर्गुण ही।

2. **ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है** – शंकर के अनुसार इस जगत का निर्माण होता है और नाश भी; इसमें तो प्रति क्षण परिवर्तन होता रहता है, इसलिए यह अनित्य है, असत्य है। उनके अनुसार केवल ब्रह्म ही नित्य है, सत्य ह। शंकर ने इस जगत की व्यावहारिक सत्ता अवश्य मानी है। इसकी व्यावहारिक सत्ता स्वीकार किए बिना तो मनुष्य के अस्तित्त्व एवं उसके द्वारा ज्ञान, कर्म भक्ति, योग और मोक्ष प्राप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता।

3. **आत्मा ब्रह्म का अंश है** – शंकर की दृष्टि से आत्मा ब्रह्म का अंश है। मूल रूप में इनमें कोई अन्तर नहीं हैं, ब्रह्म की माया शक्ति से आत्मा ब्रह्म से अलग प्रतीत होती है; माया का पर्दा हटते ही आत्मा और ब्रह्म में भेद नहीं दिखाई देता।

4. **मनुष्य अनन्त ज्ञान एवं शक्ति का स्रोत है** – शंकर का स्पष्टीकरण है कि मनुष्य आत्माधारी है और आत्मा ब्रह्म का अंश है, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और सर्वत्र है। यही कारण है कि मनुष्य अपने में अनन्त ज्ञान एवं शक्ति का साधन है, परन्तु माया के कारण मनुष्य अपने इस अनन्त ज्ञान एवं शक्ति को पहचान नहीं पाता। जो मनुष्य अपनी आत्मा को पहचान लेता है वह सब कुछ जान लेता है और सब कुछ करने में समर्थ होता है।

5. **मनुष्य का विकास उसके संचित, प्रारब्ध और संचीयमान कर्मों पर निर्भर करता है** – भौतिकवादी मनुष्य के विकास का प्रमुख आधार उसकी कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों और मस्तिष्क को मानते हैं। वेदान्त मनुष्य

की इन्द्रियों और मस्तिष्क में भिन्नता के कारण की खोज में संचित एवं प्रारब्ध कर्मों की तह तक पहुँच गया। वेदान्त के द्वारा मनुष्य का विकास संचीयमान कर्म (इस जीवन में किए जाने वाले कर्म) के साथ-साथ उसके संचित कर्म (पूर्व जन्म केसंचित कर्म) एवं प्रारब्ध कर्म (पूर्व जीवन के वे संचित कर्म जिनका फल इस जीवन में भोगना है) पर आध ारित है। तभी तो इस जीवन में दो समान मनुष्यों के एक ही परिस्थिति में समान कर्म करने पर असमान फल की प्राप्ति होती है।

6. **मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है–** मुक्ति का शंकर ने विभिन्न रूपों में वर्णन किया है। जब मनुष्य ज्ञान के अनुसार इस संसार की असत्यता से परिचित हो इससे विरक्त होता है और सांसारिक सुख-दु:ख का अनुभव नहीं करता तो उसे जीवनमुक्त कहते हैं। जीवन मुक्त व्यक्ति सब प्राणियों में अपना स्वरूप देखता है इसलिए वह भेदभाव नहीं करता, सत्कर्म उसके व्यक्तित्व का स्वभाव बन जाता है। शंकर के अनुसार इस जीवनमुक्त से आगे की स्थिति है– आत्मा-ब्रह्म में अभेद। इस स्थिति तक पहुँचने पर ही मनुष्य वास्तविक मुक्ति प्राप्त करता है। इसे शंकर ने विदेहमुक्ति कहा है। शंकर के अनुसार जीवन मुक्ति में मनुष्य को आनन्द का अनुभव होता है और विदेह मुक्ति में परमानन्द की अनुभूति होती है।

7. **मुक्ति के लिए ज्ञान आवश्यक है–** शंकर ने अनादि एवं अनन्त ब्रह्म को सत्य जानने को विद्या (ज्ञान) और मायामय संसार को सत्य मानने को अविद्या (अज्ञान) कहा है। शंकर का मत है कि जब तक हम कर्म और भक्ति से अच्छे जीवन की आकाँक्षा करते रहेंगे तब तक हमें वही प्राप्त होता रहेगा, आत्मा-ब्रह्म के अभेद को हम प्राप्त ही नहीं होंगे। इस अभेद को जानने के लिए उन्होंने ज्ञान प्राप्ति पर जोर दिया है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि शंकर कर्म के महत्त्व को स्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने व्यावहारिक जीवन के लिए व्यावहारिक कर्म, चित्त शुद्धि के लिए निष्काम कर्म एवं ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के लिए श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साधन चतुष्टय पर बल दिया है। भक्ति के सन्दर्भ में उनका इतना ही कहना है कि यदि कोई निर्गुण ब्रह्म के ज्ञान के लिए सगुण ब्रह्म (ईश्वर) की भक्ति करता है तो वह भी सत्य है। एक स्थान पर उन्होंने चित्त शुद्धि के लिए भी भक्ति को महत्वपूर्ण माना है।

8. **ज्ञान के लिए श्रवण-मनन-निदिध्यासन आवश्यक है** – शंकर की दृष्टि से ज्ञान दो प्रकार का होता है– अपरा (व्यावहारिक) एवं परा (आध्यात्मिक) और इन दोनों प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने की एक ही विधि है- श्रवण, मनन, निदिध्यासन। शंकर के अनुसार अनादि और अनन्द ब्रह्म को साक्षात् करने के लिए जिस ज्ञान की आवश्यकता है वह वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद एवं गीता के श्रवण अथवा अध्ययन, उस पर मनन और उससे प्राप्त ज्ञान पर नित्य विज्ञान एवं प्रयोग करने पर ही प्राप्त हो सकता है। बिना अनुभूति के, केवल तर्कों के द्वारा वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है।

9. **उत्तम श्रवण-मनन-निदिध्यासन के लिए साधन चतुष्टय आवश्यक है** – शंकर के अनुसार सत्य ज्ञान के जिज्ञासु को श्रवण-मनन तथा निदिध्यासन हेतु साधन चतुष्टय का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। ये चार साधन निम्नलिखित हैं–

(i) नित्य-अनित्य वस्तु विवेक – अर्थात् नित्य (आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म) तथा अनित्य (शरीर, पदार्थ, जगत) वस्तुओं के मध्य भेद करने तथा ब्रह्म और आत्मा की अभिन्नता को समझने का विवेक जागृत करना।

(ii) भोग-विरक्ति – अर्थात् लौकिक एवं पारलौकिक, किसी भी प्रकार के भोगों की इच्छा न करना।

(iii) शमदमादि संयम – अर्थात् सम (मन का संयम), दम (इन्द्रियों पर नियन्त्रण), उपरति (यज्ञ आदि विहित कर्मों का त्याग), तितिक्षा (सुख-दुःख सहन करने की शक्ति) और श्रद्धा (ज्ञान एवं ज्ञानीजन गुरुओं के प्रति श्रद्धा) का अनुसरण।

(iv) ममुक्षकत्व – अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प करना।

वेदान्त दर्शन और शिक्षा
(Vedant Philosophy and Education)

भारत में शिक्षा पर स्वतन्त्र रूप से विचार करना आधुनिक युग की देन है। इससे पहले विचारक तो मनुष्य के जीवन पर समग्र रूप से विचार करते थे। शंकर ने भी शिक्षा पर स्वतन्त्र रूप से विचार नहीं किया है लेकिन उनकी तत्त्व मीमांसा से शिक्षा के उद्देश्य, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा से ज्ञान के स्वरूप एवं ज्ञान प्राप्त करने की विधियों और मूल्य एवं आचार मीमांसा से शिक्षा द्वारा

NOTES

मनुष्य के व्यवहार में किए जाने वाले परिवर्तनों के विषय में जानकारी होती है। यहाँ हम शंकर के शैक्षिक विचारों को क्रमबद्ध करने का प्रयास करेंगे।

शिक्षा का सम्प्रत्यय

शंकर के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है और इसके लिए उन्होंने ज्ञान मार्ग का समर्थन किया है। उनकी दृष्टि से जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि ब्रह्म सत्य है एवं शेष सब असत्य है तभी वह सांसारिक माया मोह से मुक्त होता है, भेद दृष्टि से मुक्त होता है और सबमें स्वयं को और स्वयं में सबको पाता है, और इस ज्ञान की प्राप्ति होती है शिक्षा से। शिक्षा के विषय में उन्होंने उपनिषदीय विचार का समर्थन किया है। उनकी दृष्टि से वास्तविक शिक्षा वह है जो मुक्ति दिलाए (सा विद्या या विमुक्तये)।

शिक्षा के उद्देश्य

शंकर ने मनुष्य जीवन के दो पक्ष बताये हैं– एक अपरा (व्यावहारिक) और दूसरा परा (आध्यात्मिक)। शिक्षा के द्वारा वे मनुष्य के दोनों पक्षों का विकास करने पर बल देते थे, लेकिन इन दोनों पक्षों का विकास मुक्ति के उद्देश्य को सामने रखकर ही किया जाना चाहिए। व्यावहारिक पक्ष में उन्होंने मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास के साथ-साथ उसके वर्ण-कर्म की शिक्षा को शामिल किया है और आध्यात्मिक पक्ष (मुक्ति) के लिए उन्होंने ज्ञान को आवश्यक माना है और ज्ञान प्राप्ति के लिए साधन चतुष्टय के पालन को आवश्यक बताया है। वे इस सत्य को भी जानते थे कि साधन चतुष्टय का पालन करने के लिए मनुष्य का शरीर और मन स्वस्थ होने चाहिए। उनके आधार से शिक्षा को ये सब कार्य करने चाहिए। शंकर के द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के इन उद्देश्यों को हम आज की भाषा में स्थूल से सूक्ष्म के क्रम में निम्नलिखित रूप में अभिव्यक्त कर सकते हैं–

साध्य उद्देश्य–

(1) मुक्ति

साधन उद्देश्य–

(1) शारीरिक विकास और शरीर शुद्धि।

(2) मानसिक एवं बौद्धिक विकास।

(3) नैतिक तथा चारित्रिक विकास।

(4) वर्णानुसार कर्म (व्यवसाय) की शिक्षा।

(5) साधन चतुष्टय में प्रशिक्षण।

(6) पूर्ण व्यक्तित्व का विकास।

(7) ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

शंकर के अनुसार शिक्षा की पाठ्यचर्या में मनुष्य ने अपरा (व्यावहारिक) एवं परा (आध्यात्मिक) दोनों पक्षों से सम्बन्धित ज्ञान और क्रियाओं का समावेश होना चाहिए। व्यावहारिक जीवन के लिए उन्होंने पाठ्यचर्या में व्यावहारिक ज्ञान (भाषा, चिकित्साशास्त्र, गणित एवं वर्ण-क्रम आदि) तथा व्यावहारिक क्रियाओं (आसन, व्यायाम, भोजन एवं ब्रह्मचर्य आदि) को सम्मिलित किया है और आध्यात्मिक जीवन हेतु परमार्थिक विषय (साहित्य, धर्म एवं दर्शन आदि) एवं पारमार्थिक क्रियाओं (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध ारणा, ध्यान एवं समाधि) का समावेश किया है।

व्यावहारिक आधार से मनुष्य-मनुष्य में भेद होता है। शंकर की दृष्टि से यह भेद कर्म जनित है और जगत नियन्ता का विधान है। उनके अनुसार वर्ण भेद भी कर्म जनित है। वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अलग-अलग कर्मों में विश्वास रखते थे और उन्हें अपने-अपने कर्मों का कुशलतापूर्वक सम्पादन करने के लिए अलग-अलग शिक्षा (पाठ्यचर्या) का विधान करने के पक्ष में थे, लेकिन परा विद्या के लिए वे सबको समान ज्ञान एवं समान क्रियाएँ करने पर जोर देते थे।

शिक्षण विधियाँ

ज्ञान और उससे प्राप्ति के साधनों के सम्बन्ध में शंकर ने विस्तृत चर्चा की है। इस सम्बन्ध में उनके विचारों का सार-संक्षेप में प्रस्तुत है।

1. **ज्ञान प्राप्त करने के उपकरण –** शंकर ने ज्ञान प्राप्ति के उपकरणों को दो भागों में विभाजित किया है– **बाह्य उपकरण** और **आन्तरिक उपकरण**। बाह्य उपकरणों में कर्मेन्द्रियाँ एवं ज्ञानेन्द्रियाँ आती हैं और आन्तरिक उपकरणों में मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त आते हैं। शंकर ने चित्त की अलग सत्ता मानी है। वास्तविकता यह है कि इन्द्रियाँ किसी वस्तु अथवा क्रिया के प्रति तभी क्रियाशील होती हैं जब मन उनके तथा

NOTES

वस्तु अथवा क्रिया के मध्य संयोजन करता है। बुद्धि इसमें काट-छाँट कर उसे अहंकार से जोड़ती है और अहम् से ज्ञान अथवा क्रिया चित्त पर अंकित होती है और चित्त से आत्मा को प्राप्त होती है।

2. **ज्ञान प्राप्त करने की स्रोत** – शंकर ने ज्ञान के चार साधन माने हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और तर्क। इन्द्रिय प्रत्यक्ष को ये तब तक स्वीकार नहीं करते जब तक वह आत्मा द्वारा प्रत्यक्ष नहीं हो जाता। अनुमान के अन्तर्गत ये पूर्व अनुभवों के आधार पर नवीन अनुभवों को तर्क द्वारा स्वीकार करने की बात करते हैं। शब्द के रूप में ये निगम (वेद) और आगम (तन्त्र) शब्दों को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। तर्क का अर्थ है बौद्धिक कसौटी, अतः जब तक इन्द्रिय प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द द्वारा प्राप्त ज्ञान बौद्धिक तर्क की कसौटी पर नहीं कसा जाता तब तक उसके विषय में सत्य-असत्य होना स्पष्ट नहीं हो सकता।

3. **ज्ञान प्राप्ति के सोपान** – शंकर के अनुसार ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के तीन सोपान हैं– **श्रवण** (वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं गीता आदि ग्रन्थों का गुरुमुख द्वारा श्रवण अथवा उनका स्वाध्याय), **मनन** (श्रवण अथवा अध्ययन द्वारा प्राप्त ज्ञान पर चिन्तन) तथा **निदिध्यासन** (प्राप्त ज्ञान का नित्य चिन्तन एवं प्रयोग)। ये श्रवण अथवा अध्ययन के पश्चात् प्राप्त ज्ञान पर अधिकारी विद्वानों के साथ वाद-विवाद को भी उत्तम मानते थे।

शिक्षण सम्बन्धी शंकर के इन विचारों को यदि हम आज की भाषा में कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि शंकर शिक्षण के विषय में निम्नलिखित के पक्षधर थे–

(1) इन्द्रियों से प्रत्यक्ष।

(2) इन्द्रियों से प्रत्यक्ष का पूर्वज्ञान के आधार पर अनुमान।

(3) शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त ज्ञान का श्रवण अथवा अध्ययन।

(4) उपरोक्त में से किसी भी प्रकार से प्राप्त ज्ञान पर चिन्तन, वाद-विवाद एवं बौद्धिक तर्क।

(5) प्राप्त ज्ञान का प्रतिदिन प्रयोग एवं उसके द्वारा सत्य का चयन असत्य का त्याग।

अनुशासन

शंकराचार्य के अनुसार बाल प्रकृति की चार प्रमुख अवस्थाएँ हैं–

1. **क्षिप्त** – यह वह अवस्था है जब बच्चा अपनी इन्द्रियों के अधीन रहता है और किसी भी वस्तु, क्रिया अथवा विचार पर अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता।

2. **विक्षिप्त** – यह वह अवस्था है जब बच्चा अपनी इन्द्रियों पर कुछ नियन्त्रण करने लगता और और कुछ समय तक किसी वस्तु, क्रिया अथवा विचार पर अपना ध्यान आकर्षित कर सकता है।

3. **मुधा** – इस अवस्था में बालक का अपनी इन्द्रियों पर काफी नियन्त्रण हो जाता है परन्तु आलस्यवश वह वस्तु, क्रिया अथवा विचार पर अपना पूर्णरूप से ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता।

4. **एकाग्रता** – इस अवस्था है बच्चे की इन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त, सभी पर उसकी आत्मा का नियन्त्रण होता है।

शंकर के अनुसार जो बच्चा इनमें से जिस स्तर पर होता है वह उसी कोटि में अनुशासित कहा जाता है। वास्तविक अनुशासन का अर्थ है– एकाग्रता।

शिक्षक

शंकर के अनुसार गुरु के दो कार्य हैं– शिष्य को व्यावहारिक जीवन के लिए तैयार करना तथा उसे आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति कराना। इनमें से दूसरा कार्य मुख्य और गम्भीर है। वेदान्ती शिक्षक शिष्य को पहले उपदेश देता है– 'तत्वमसि' अर्थात् तू (आत्मा) ही ब्रह्म है। और शिश्य अन्त में यह अनुभव करता है– 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं भी ब्रह्म हूँ। इस ब्रह्मज्ञान हमारी अपनी दृष्टि से तो व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने वाले शिक्षक को भी जीवन मुक्त (सांसारिक सुख-दुःख से विरक्त, अभेद दृष्टि वाला एवं सबसे प्रेम करने वाला) होना चाहिए। आज के शिक्षक यदि शंकर के जीवन मुक्त शिक्षक बन सकें तो फिर समाज का पुनरुत्थान निश्चित है।

शिक्षार्थी

अद्वैत वेदानत के अनुसार प्रत्येक छात्र अनन्त ज्ञान एवं शक्ति का साधन है, उनमें जो शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक भिन्नता दिखाई देती है वह कर्मजनित है। यही भिन्नता उनका ठोस लक्षण है, स्वरूप लक्षण नहीं। इस

प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि से सब छात्र समान हैं और व्यावहारिक दृष्टि से उनमें भिन्नता पायी जाती है। शंकर के अनुसार ब्रह्म ज्ञान के इच्छुक छात्रों को साधन चतुष्टय का अनुसरण करना चाहिए। इस साधन चतुष्टय में इन्द्रिय निग्रह, मन की एकाग्रता, भोग से विरक्ति और गुरु में श्रद्धा का महत्त्व तो व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति की दृष्टि से भी होता है। आज के छात्र यदि शंकर की यह बात पर ध्यान दें तो शिक्षा जगत की सभी समस्याओं का अन्त हो जाए।

विद्यालय

शंकर के समय में व्यावहारिक शिक्षा की व्यवस्था परिवार एवं समुदायों में होती थी और आध्यात्मिक शिक्षा की गुरूगृहों में। वास्तविकता में ये गुरुगृह ही उस समय के विद्यालय थे। शंकर के अनुसार ये गुरुगृह (विद्यालय) जन कोलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में होने चाहिए। यहाँ के शिक्षक जीवन मुक्त और शिष्य ब्रह्मज्ञान के इच्छुक होने चाहिए। विद्यालयों में शिष्यों को साधन चतुष्टय का अनुसरण करना चाहिए।

शिक्षा के अन्य पक्ष

शंकर की दृष्टि से मनुष्य जीवन के दो पक्ष हैं– एक अपरा (व्यावहारिक) और दूसरा परा (आध्यात्मिक)। जीवन के व्यावहारिक पक्ष की रक्षा हेतु उन्होंने वर्णानुसार कर्म की शिक्षा के विधान का समर्थन किया है। शूद्रों के लिए वे किसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं मानते थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे जन शिक्षा की आवश्यकता नहीं समझते थे। परन्तु दूसरी ओर ये प्रत्येक मनुष्य को आत्मधारी मानते हैं और इस बात पर बल देते हैं कि सभी मनुष्यों के जीवन का अन्तिम उद्देश्य इस आत्मा का अनुभव अर्थात् आत्मा-ब्रह्म अभेद को जानना है। परन्तु बिना शिक्षा के यह सब कैसे हो सकता है। स्पष्ट है कि आत्मानुभूति के लिए आध्यात्मिक शिक्षा के सब अधिकारी हैं।

वेदान्त दर्शन की शिक्षा को देन का मूल्यांकन (Evaluation of the Contribution of Vedant Philosophy to Education)

शंकर का अद्वैत वेदान्त भारतीय चिन्तनधारा का चरमोत्कर्ष है। इसने हमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की एकता (ब्रह्म तत्व) एवं अनेकता (ब्रह्म के माया तत्त्व) का स्पष्ट ज्ञान कराकर हमें अपनी अनन्त शक्ति से परिचित कराया है। अपनी

इस अनन्त शक्ति की अनुभूति के लिए जिस साधन मार्ग की चर्चा शंकर ने की है, उसके लिए न केवल भारत के लिए सारा संसार उनका चिर ऋणी रहेगा। हाँ, उसका मायावाद उपनिषद् दर्शन से पृथक है और वही आलोचना का विषय है। जब ब्रह्म सत्य है तो उससे उत्पन्न माया असत्य कैसे हो सकती है, और माया से रचित यह वस्तुजगत असत्य कैसे हो सकता है। लेकिन इस वस्तुजगत एवं उसमें मानव जीवन की व्यावहारिक सत्ता मानकर उन्होंने शिक्षा के विषय में जो तथ्य प्रस्तुत किए है वे सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं।

शंकर ने शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न तो नहीं किया लेकिन उन्होंने उसके उद्देश्य निश्चित करने में महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी दृष्टि से मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य भेद दृष्टि की समाप्ति और अभेद दृष्टि की प्राप्ति होता है। इसे ही उन्होंने मुक्ति कहा है। उनके अनुसार शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य भी यही होना चाहिए। परन्तु इसके साथ-साथ उन्होंने इस जगत और मानव शरीर की व्यावहारिक सत्ता को स्वीकार कर उसके देहिक जीवन सम्बन्धों उद्देश्यों का भी प्रतिपादन किया है। उन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्य के शारीरिक, मानसिक बौद्धिक, नैतिक एवं चारित्रिक, साधन वतुष्टय, पूर्ण व्यक्तित्व के विकास और ब्रह्म ज्ञान, आदि पर बल दिया है, यह बात दूसरी है कि इन सब उद्देश्यों को उन्होंने मुक्ति उद्देश्य का साधक माना है, और यही तो उनकी महत्वपूर्ण देन है।

शिक्षा की पाठ्यचर्या के विषय में भी शंकर का यही विचार है। उन्होंने पाठ्यचर्या में मनुष्य के व्यावहारिक जीवन हेतु व्यावहारिक विषयों एवं क्रियाओं तथा आध्यात्मिक जीवन के लिए आध्यात्मिक विषयों पर क्रियाओं को सम्मिलित करने की बात कही है। लेकिन व्यावहारिक जीवन को भी वे आध्यात्मिकता पर आधारित करना चाहते थे, तभी तो मनुष्य अपने अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति कर सकता है।

शिक्षण विधियों के क्षेत्र में तो वेदान्त का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। आधुनिक मनोविज्ञान जहाँ ज्ञान प्राप्ति के उपकरणों में केवल बाह्य उपकरणों (इन्द्रियों) का वर्णन करता है, वहाँ वेदान्त ने इनके अलावा आन्तरिक उपकरणों-मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त के कार्यो का भी विश्लेषण किया है। जहाँ उपनिषद्, न्याय एवं सांख्य मनुष्य के अन्तःकरण में मन, बुद्धि, अहंकार को महत्व देते हैं और योग इस अन्तःकरण को चित्त कहता है, वहाँ वेदान्त चित्त की अलग सत्ता मानता है। हमें शंकर के इस मनोविज्ञान को

NOTES

समझने का प्रयास करना चाहिए। शंकर केवल श्रवण अथवा स्वाध्याय में विश्वास नहीं करते, वे मनन (चिन्तन्) और निदिध्यासन (नित्य प्रयोग) पर भी बल देते हैं। हमारी दृष्टि से श्रवण अथवा स्वाध्याय, मनन अर्थात् चिन्तन और निदिध्यासन अर्थात् नित्य प्रयोग से अनुभूत ज्ञान ही सच्चा ज्ञान होता है और यही शिक्षण की सर्वोत्तम विधि है।

अनुशासन में मुख्य तत्त्व है शासन। शंकर के मतानुसार जब मनुष्य इन्द्रियों के वश में रहता है तो वह पशु स्तर पर रहता है, जब समाज द्वारा निश्चित नियमों के शासन में रहता है तो वह सामाजिक स्तर पर पहुँच जाता है और जब वह आत्मा के शासन में रहता है तो आध्यात्मिक स्तर पर पहुँच जाता है। उनके अनुसार आत्मानुशासन अनुशासन की उच्चतम सीमा है, हमें इसी को प्राप्त करना चाहिए।

शिक्षक को जीवन मुक्ति और शिष्य को साधन चतुष्टय का निर्देश प्रदान करना शंकर वेदान्त की एक और बड़ी विशेषता है। यदि आज के शिक्षक और शिक्षार्थी शंकर के इस निर्देश का पालन कर सकें तो शिक्षा जगत की समस्त समस्याओं का अन्त हो जाए।

शंकर उच्च, विशिष्ट और आध्यात्मिक शिक्षा के लिए गुरुआश्रमों के समर्थक थे। आज के युग में जनसंख्या और ज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक विस्फोट हुआ है। इस स्थिति में हम गुरुगृह प्रणाली को नहीं मान सकते।

भारत में शंकर के पश्चात् जितना भी चिन्तन हुआ है, वह उनके वेदान्त दर्शन के इधर-उधर ही हुआ है। यदि हम आधुनिक युग के भारतीय चिन्तकों–दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, गाँधी, टैगोर और अरविन्द के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों का विश्लेषण करें तो समझेंगे कि वे वेदान्त के बहुत करीब हैं। स्वामी विवेकानन्द ने तो वेदान्त को जीवन में ढालने का स्तुल्य प्रयास किया है। गाँधी जी ने भी मनुष्य के लौकिक एवं पारलौकिक दोनों जीवन के विकास की बात सही की है। शंकर के समान अरविन्द ने शिक्षा में योग की क्रियाओं को महत्त्व प्रदान किया है। वास्तविकता यह है कि वेदान्त समस्त धर्म एवं दर्शनों का मूल है, उसे यदि सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक दर्शन कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। आज हम जिस वर्गहीन, धर्मनिरपेक्ष एवं समाजवादी व्यवस्था की बात करते हैं, वह वेदान्त को अभेद दृष्टि के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। तब हमें अपनी शिक्षा को वेदान्त पर आध ारित किया जाना ही चाहिए।

सांख्य दर्शन का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Sankhya Philosophy)

सांख्य दर्शन वेद मूलक षट् दर्शनों में सर्वाधिक प्राचीन है। यूँ तो सांख्य दर्शन सम्बन्धी विचार वेद एवं श्वेताश्वेत, कठ, प्रसन्न और मैत्रेय उपनिषदों में पूर्व से ही विद्यमान थे लेकिन इसे एक स्वतन्त्र दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित किया महर्षि कपिल (ई॰ पू॰ 7 वीं शताब्दी) ने। महर्षि कपिल प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने वेद साहित्य में सम्मिलित दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन कर सांख्य दर्शन का प्रतिपादन किया। कपिल की दो रचनाएँ उपलब्ध हैं– एक–**तत्त्व समास** और दूसरी–**सांख्य सूत्र**। तत्त्व समास सांख्य दर्शन की प्राचीन रचना है। इसमें केवल 22 सूत्र हैं। सांख्य सूत्र में 537 सूत्र हैं और उसमें सांख्य दर्शन के सिद्धान्तों का सप्रमाण प्रतिपादन किया गया है। कपिल के पश्चात आसुरि, पश्चसिख, ईश्वर कृष्ण विन्ध्यवासी और विज्ञानभिक्षु ने सांख्य दर्शन की व्याख्या की एवं उसके सिद्धान्तों को स्पष्ट किया। ईश्वर कृष्ण (तीसरी शताब्दी) ने अपनी 'सांख्य कारिका' में इस दर्शन की विषद व्याख्या की है। सांख्य कारिका सांख्य दर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। उनके बाद भी अधिकांश विद्वानों ने सांख्य दर्शन की व्याख्या की है और इस प्रकार सांख्य दर्शन की विचारधारा अबाध गति से लगातार प्रवाहित होती आ रही है।

सांख्य दर्शन द्वारा प्रकृति और पुरुष दो मूल तत्व हैं एवं प्रकृति की 23 विकृतियाँ हैं और इस प्रकार कुल 25 तत्व हैं। कुछ विद्वानों ने तत्त्वों की संख्या बताने के कारण ही इस दर्शन की सांख्य दर्शन कहा है। अन्य विद्वानों के अनुसार सांख्य का अर्थ है– विवेक ज्ञान, प्रकृति-पुरुष के भेद का ज्ञान; और चूँकि सांख्य प्रकृति-पुरुष के अन्तर को स्पष्ट करता है। इसलिए इसे सांख्य कहा जाता है। सांख्य प्रकृति और पुरुष की स्वतन्त्र सत्ता में विश्वास करता है। यही कारण है कि कुछ विद्वान इसे द्वैतवादी दर्शनों की कोटि में रखते हैं। यह प्रत्येक प्राणी में एक स्वतन्त्र आत्मा के अस्तित्व की बात करता है इसलिए कुछ विद्वान इसे अनेकात्मवादी दर्शनों की कोटि में रखते हैं।

सांख्य दर्शन की परिभाषा

सांख्य दर्शन की तत्त्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा और मूल्य एवं आचार मीमांसा के अनुसार हम उसे निम्नलिखित रूप में परिभाषित कर सकते हैं–

सांख्य दर्शन भारतीय दर्शन की वह विचारधारा है जो इस ब्रह्माण्ड को प्रकृति तथा पुरुष के योगफल से निर्मित मानती है और यह मानती है कि प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि और अनन्त हैं। यह ईश्वर के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती एवं आत्मा को पुरुष (चेतन तत्त्व) मानती है और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है जिसे विवेक ज्ञान एवं योग साधना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

सांख्य दर्शन के मूल सिद्धान्त
(Fundamental Principles of Sankhya Philosophy)

सांख्य दर्शन की तत्त्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा आचार मीमांसा को यदि हम सिद्धान्तों के रूप में क्रमबद्ध करना चाहें तो निम्नलिखित रूप में कर सकते हैं—

1. यह सृष्टि प्रकृति एवं पुरुष के योग से निर्मित है – सांख्य के अनुसार यह सृष्टि प्रकृति और पुरुष के योग से निर्मित है। उसका तर्क है कि प्रकृति केवल जड़ तत्त्व है, बिना चेतन के संयोग के उसमें क्रिया नहीं हो सकती तथा बिना क्रिया के सृष्टि की रचना नहीं हो सकती। दूसरी ओर पुरुष केवल चेतन तत्त्व है, बिना जड़ तत्त्व की सहायता के वह क्रिया नहीं कर सकता एवं क्रिया के अभाव में सृष्टि की रचना नहीं हो सकती। इस प्रकार सृष्टि की रचना के लिए प्रकृति-पुरुष का संयोग आवश्यक है।

2. प्रकृति और पुरुष दोनों मूल तत्त्व हैं – सांख्य प्रकृति और पुरुष दोनों को मूल तत्त्व मानता हैं, अनादि और अनन्त मानता है, सत्य मानता है। लेकिन प्रकृति को वह जड़ और पुरुष को चेतन मानता है, प्रकृति को त्रिगुणात्मिका तथा पुरुष को निर्गुण मानता है। सांख्य के अनुसार सृष्टि रचना की दृष्टि से प्रकृति और पुरुष दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

3. पुरुष की स्वतन्त्र सत्ता है और वह अनेक हैं – सांख्य पुरुष अर्थात् आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता मानता है, वह उसे ब्रह्म का अंश नहीं मानता, उसे अपने में मौलिक तत्त्व मानता है। सांख्य प्रत्येक मनुष्य में एक स्वतन्त्र आत्मा की सत्ता स्वीकार करता है, वह अनेकात्मवादी दर्शन है।

4. मनुष्य प्रकृति एवं पुरुष का योग है – सांख्य दर्शन के अनुसार मनुष्य सृष्टि का ही एक अंश है। इस प्रकार उसकी रचना भी प्रकृति-पुरुष के संयोग से होना निश्चित है। कपिल के अनुसार मनुष्य का स्थूल शरीर माता-पिता के

रज-वीर्य से एवं सूक्षम शरीर अन्तःकरण और पाँच तन्मात्राओं के योग से जन्म में प्रवेश करता है। सांख्य के अनुसार मनुष्य के स्थूल और सूक्ष्म शरीर जड़ हैं तथा उनमें निहित चेतन तत्त्व पुरुष हैं। सांख्य मनुष्य जीवन को सप्रयोजन मानता है।

5. मनुष्य का विकास उसके जड़ और चेतन दोनों तत्त्वों पर निर्भर करता है – सांख्य के अनुसार मनुष्य प्रकृति एवं पुरुष का योग होता है और उसका विकास इन्हीं दो तत्त्वों पर निर्भर करता है। सांख्य की दृष्टि से मानव विकास की तीन दिशाएँ होती हैं – शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक।

6. मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है – सांख्य के अनुसार मनुष्य जीवन सप्रयोजन है, उसका उद्देश्य दुःखत्रय से मुक्ति पाना है। इसे ही वह मुक्ति कहता है। दुःखत्रय क्यों होता है? जब पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप को भूल कर अपने को बुद्धि मान बैठता है तब उसे दुःख की अनुभूति होती है अन्यथा तो वह इन सबसे अलग है। जब मनुष्य अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान लेता है तब वह दुःखत्रय से छुटकारा पा जाता है, मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य इसी संसार में दुःखत्रय के अनुभव से मुक्त हो जाता है, उसे सांख्य में जीवन्मुक्त कहते हैं तथा जो शरीर के नाश होने पर दुःखत्रय के अनुभव से मुक्त होता है उसे विदेह मुक्त कहते हैं।

7. मुक्ति हेतु विवेक ज्ञान आवश्यक होता है – सांख्य की दृष्टि से मुक्ति हेतु विवेक ज्ञान अर्थात् प्रकृति-पुरुष के भेद को जानना आवश्यक होता है। उसी स्थिति में पुरुष अपने आप को प्रकृति से अलग कर सुख-दुःख से अलग हो सकता है, कर्मफल भोग से मुक्त हो सकता है।

8. विवेक ज्ञान के लिए योग साधन मार्ग आवश्यक है – सांख्य विवेक ज्ञान के लिए योग द्वारा निर्दिष्ट साधन मार्ग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) को आवश्यक मानता है।

सांख्य दर्शन और शिक्षा
(Sankhya Philosophy and Education)

सांख्य दर्शन में शिक्षा के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से कोई विचार नहीं किया गया है लेकिन उसकी तत्त्व मीमांसा से शिक्षा के अन्तिम उद्देश्य, ज्ञान और तर्क मीमांसा से शिक्षा के स्वरूप, शिक्षा की पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों और मूल्य एवं आचार मीमांसा से शिक्षा के सामानय उद्देश्य, पाठ्यचर्या, अनुशासन तथा शिक्षक-शिक्षाओं सम्बन्ध के बरे में ज्ञान प्राप्त होता है। मनुष्य

NOTES

की बाह्य एवं आन्तरिक रचना के सम्बन्ध में सांख्य मनोविज्ञान आधुनिक मनोविज्ञान से अधिक विकसित है। यहाँ हम सांख्य दर्शन में निहित शिक्षा सम्बन्धी विचारों को क्रमबद्ध करने का प्रयास करेंगे।

शिक्षा का सम्प्रत्यय

सांख्य के सत्कार्यवाद के सिद्धान्तानुसार कार्य कारण में पहले से निहित होता है। इस सिद्धान्तानुसार मानव का विकास पहले से निहित होता है, शिक्षा का कार्य इसे बाहर निकालना है। सांख्य प्रकृति पुरुष दोनों को मूल्य तत्त्व मानता है परन्तु दोनों के मूलभूत अन्तर को भी जानता है। उसकी दृष्टि से वास्तविक शिक्षा वह है जो मनुष्य को प्रकृति-पुरुष के भेद का ज्ञान कराती है।

शिक्षा के उद्देश्य

सांख्य दर्शन के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम मुक्ति है एवं यह मुक्ति प्रकृति-पुरुश के भेद को जानने से प्राप्त होती है। इस प्रकार मनुष्य का विकास इस रूप में होना चाहिए कि वह प्रकृति-पुरुष के भेद को समझ सके, दु:खमय से छुटकारा प्राप्त कर सके, मुक्त हो सके। उसकी दृष्टि से यह शिक्षा का साध्य उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु वह योग साधना मार्ग को आवश्यक मानता है तथा योग साधना के लिए नैतिक आचरण को आवश्यक मानता है। आज की भाषा में हम इन उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं–

साध्य उद्देश्य–

(1) दु:खत्रय से मुक्ति का उद्देश्य (प्रकृति-पुरुष भेद को जानने का उद्देश्य, मुक्ति का उद्देश्य)

साधन उद्देश्य–

(1) शारीरिक विकास का उद्देश्य (कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों एवं तन्मात्राओं का विकास)

(2) मानसिक विकास का उद्देश्य (मन तत्त्व का विकास; विचार को ऊर्ध्वगामी बनाना)

(3) भावात्मक विकास का प्रमुख उद्देश्य (अहंकार तत्त्व का विकास, अहम् में सत् की प्रधानता का विकास)

(4) बौद्धिक विकास का उद्देश्य (बुद्धि तत्त्व का विकास, उसे इन्द्रियों की दासना से हटाना, पुरुष की अनुभूति में संलग्न करना)

(5) नैतिक विकास का उद्देश्य (सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य व्रतों तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और प्राणिधान नियमों के पालन की ओर प्रवृत्त करना)

शिक्षा की पाठ्यचर्या

पाठ्यचर्या तो उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होती है। सांख्य दर्शन मनुष्य के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों को सत्य मानता है और दोनों के विकास को समान महत्त्व प्रदान करता है। उसकी दृष्टि से पाठ्यचर्या में पदार्थ एवं आत्मा दोनों से सम्बन्धित ज्ञान एवं क्रियाओं को स्थान देना चाहिए। सांख्य मनुष्य के विकास क्रम से परिचित है, उसके अनुसार विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यचर्या होनी चाहिए।

सांख्य के अनुसार शिशु अवस्था में बच्चों की कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का विकास बहुत तीव्र गति से होता है। अतः इस काल में सर्वाधिक बल इनके उचित विकास पर ही देना चाहिए। बच्चों की इन्द्रियों के विकास हेतु उचित पर्य्यावरण की आवश्यकता होती है। बच्चों को खुले आकाश के नीचे, खुली हवा में खेलने-कूदने, दौड़ने-उछलने के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए, इससे उनकी कर्मेन्द्रियों का विकास होता है और तन्मात्राओं के अनुभव की शक्ति विकसित होती है। आज के युग में इटली की डॉ॰ माण्टेसरी ने भी इसी तथ्य पर बल दिया है।

सांख्य बाल्य अवस्था के मनोविज्ञान से भी परिचित है। उसके अनुसार इस अवस्था पर बच्चों की इन्द्रियों का विकास संचालित रहता है और इसके साथ-साथ उसके अन्तःकरण (मन, अहम् और बुद्धि) का विकास भी होने लगता है। अतः इन्द्रियों के विकास एवं प्रशिक्षण की प्रक्रिया संचालित रहनी चाहिए और इसके साथ-साथ मन, अहंकार और बुद्धि तत्त्व के विकास के लिए पाठ्यचर्या में भाषा, साहित्य, सामाजिक, विषय, पदार्थ विज्ञान और गणित को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

सांख्य से किशोरावस्था पर अहंकार (स्व प्रत्यय) स्थायी होने लगता है, बुद्धि में निर्णय लेने की शक्ति आने लगती है। अतः इस आयु के बच्चों की पाठ्यचर्या में तर्क आधारित विवेचनात्मक विषयों (ज्यामिति आदि) को महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए।

सांख्य के अनुसार यदि बच्चों को उनके शिशु काल, बाल्य काल और किशोर काल में यथा विकास के उचित अवसर प्रदान किए जाएँ तो युवा अवस्था तक उनकी 'समस्त शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियों का विकास होता है। तब उन्हें धर्म, दर्शन, तर्कशास्त्र आदि की शिक्षा देनी चाहिए, पदार्थ एवं आत्मतत्त्व के ज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए। सांख्य अनेकात्मवादी दर्शन है, व्यक्ति की वैयष्टिकता का सम्मान करने वाला दर्शन है। अत: उसके अनुसार इस आयु वर्ग के बच्चों के लिए उनकी योग्यता, क्षमता एवं रुचि के अनुकूल विशेष अध्ययन की व्यवस्था की जानी चाहिए; जैसे– शरीर विज्ञान, आयुर्वेद विज्ञान एवं ज्योतिषशास्त्र।

शिक्षक

सांख्य शिक्षक को आप्त रूप में देखता है। उसके द्वारा शिक्षक को अपने विषय का पंडित होना चाहिए। उसे यदि प्रकृति-पुरुष के भेद का स्पष्ट ज्ञान हो तो सोने में सुहागा समझिए, उसी दशा में वह शिष्य में विवेक ज्ञान विकसित कर सकता है। सांख्य शिक्षक से यह भी आशा करता है कि उसे ज्ञान प्राप्ति के साधनों का स्पष्ट ज्ञान हो और वह उनकी सहायता द्वारा शिष्यों में ज्ञान का विकास करने में सक्षम हो, निपुण हो। वह शिक्षक को अनुशासन का पालन करने का उपदेश प्रदान करता है।

शिक्षार्थी

सांख्य अनेकात्मवादी दर्शन है, वह छात्र के व्यष्टित्व का सम्मान करता है, वह उसके वैयष्टिक विकास का पक्षधर है। पर वह यह भी मानता है कि आत्मतत्त्व के साथ उसमें प्रकृति तत्त्व भी हैं– सत्, रज और तम गुण भी हैं। अत: वह छात्र को नैतिक आचरण का उपदेश देता है, अनुशासन में रहने का उपदेश प्रदान करता है। उसी स्थिति में शिष्य पदार्थ और आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

विद्यालय

सांख्य दर्शन के अनुसार विद्यालय भौतिक ज्ञान के विकास और योग क्रिया के प्रतिक्षय की प्रयोगशालाओं के रूप में विकसित होने चाहिए।

शिक्षा के अन्य पक्ष

सांख्य मनुष्य के जड़ और चेतन दोनों तत्त्वों को समान महत्त्व प्रदान करता है। वह मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों के विकास का पक्षध

र है। उसके आधार से मानव जीवन सप्रयोजन है, मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है। तब सांख्य की दृष्टि से सभी मनुष्य (स्त्री और पुरुषों) का भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास होना चाहिए।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. बौद्ध दर्शन से क्या अभिप्राय है? इसके अनुसार शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य और शिक्षण विधियों की व्याख्या कीजिए।
2. बौद्ध दर्शन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. बौद्ध दर्शन के अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
4. बौद्ध दर्शन क्या है? इसके अनुसार शिक्षक और शिक्षार्थी की व्याख्या कीजिए।
5. जैन-दर्शन क्या है? इसमें निहित दार्शनिक विचारों को व्यक्त कीजिए।
6. जैन-दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
7. जैन-दर्शन के अनुसार उसकी शैक्षिक विचारधारा का वर्णन कीजिए।
8. जैन-दर्शन और शिक्षा पर निबन्ध लिखिए।
9. जैन-दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों और पाठ्यक्रम का वर्णन कीजिए।
10. शंकर के अद्वैतवाद से आप क्या समझते हैं? उसके शिक्षा पर प्रभाव का वर्णन कीजिए।
11. शंकर के वेदान्त के मूल सिद्धान्त क्या है? इनके आधार पर शंकर द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधियों की व्याख्या कीजिए।
12. शंकर के शैक्षिक विचारों की व्याख्या कीजिए और यह बताइए कि उनके शैक्षिक विचार आधुनिक भारतीय शिक्षा को सही दिशा देने में कहाँ तक सहायक हो सकते हैं ?
13. सांख्य दर्शन का सामान्य परिचय दीजिए और उसके शिक्षा सम्बन्धी विचारों की विवेचना कीजिए।

14. सांख्य दर्शन से आप क्या समझते हैं? उसके शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों सम्बन्धी विचारों की विवेचना कीजिए और यह बताइए कि आज के युग में वे कहाँ तक उपयोगी है।
15. 'सांख्य दर्शन का मनोविज्ञान आधुनिक मनोविज्ञान से अधिक विकसित है'– सीखने-सिखाने के सन्दर्भ में इस कथन की विवेचना कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. बौद्ध दर्शन का अर्थ लिखिए।
2. बौद्ध दर्शन के अनुसार शिक्षा का अर्थ बताइए।
3. बौद्ध दर्शन के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम कैसा होना चाहिए?
4. बौद्ध दर्शन के अनुसार शिक्षण की विधियाँ बताइए।
5. बौद्ध दर्शन की पाँच विशेषताएँ लिखिए।
6. अष्टांग मार्ग क्या है ?
7. मठ में प्रवेश के समय कौन-सा संस्कार होता था ?
8. जैन-दर्शन का क्या अभिप्राय है ?
9. जैन-दर्शन के अनुसार शिक्षा का अर्थ बताइए।
10. जैन-दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य बताइए।
11. जैन-दर्शन में शिक्षक का वर्णन कीजिए।
12. जैन-दर्शन के अनुसार शिक्षार्थी कैसा होना चाहिए?
13. वेदान्त दर्शन के मूल सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।
14. शंकर के अनुसार मनुष्य का विकास किन कर्मों पर निर्भर करता है?
15. शंकर द्वारा प्रतिपादित साधन चतुष्टय की व्याख्या कीजिए।
16. सांख्य दर्शन के मूल तत्त्व–प्रकृति और पुरुष की व्याख्या कीजिए।

9 भारतीय विचारक : श्री अरविन्द का दार्शनिक एवं शैक्षिक चिन्तन

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- श्री अरविन्द का शैक्षिक चिन्तन।
- शिक्षा का सम्प्रत्यय।
- शिक्षा के उद्देश्य।
- शिक्षा की पाठ्यचर्या।
- शिक्षण विधियाँ।
- अनुशासन।
- शिक्षक।
- शिक्षार्थी।
- शिक्षा के अन्य पक्ष।
- श्री अरविन्द के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन।
- श्री अरविन्द का प्रभाव।
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- श्री अरविन्द का शैक्षिक चिन्तन।
- शिक्षा का सम्प्रत्यय।
- शिक्षा के उद्देश्य।
- शिक्षा की पाठ्यचर्या।
- शिक्षण विधियाँ।
- अनुशासन।
- शिक्षक।
- शिक्षार्थी।
- शिक्षा के अन्य पक्ष।
- श्री अरविन्द के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन।
- श्री अरविन्द का प्रभाव।

प्राक्कथन

श्री अरविन्द का जन्म 15 अगस्त, 1872 को कलकत्ता के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। इनके पिता श्री कृष्णघन घोष कलकत्ता के प्रसिद्ध डॉक्टर थे तथा पाश्चात्य संस्कृति के प्रशंसक थे। इनके घर में नौकर तक अंग्रेजी भाषा बोलते थे। परन्तु डॉक्टर साहब बड़े दयालु प्रवृत्ति के थे। ऐसे परिवार में श्री अरविन्द का लालन-पालन हुआ।

श्री अरविन्द का दार्शनिक चिन्तन

श्री अरविन्द गीता के अनन्य भक्त थे। इन्होंने गीता के कर्म योग एवं ध्यान योग की वैज्ञानिक व्याख्या की है। इनकी दृष्टि से मानव एवं दिव्य शक्ति का संयोग ही योग है। दूसरे शब्दों में योग वह साधन है जिससे मानव दिव्य शक्ति की अनुभूति करता है। श्री अरविन्द मानव को योग द्वारा आत्मतत्व की अनुभूति कर ब्रह्म में लीन होने का उपदेश नहीं देते थे, ये इसके द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति को अज्ञान, अंधकार तथा मृत्यु से ज्ञान, प्रकाश और अमृत्व की ओर ले जाना चाहते थे। इसीलिए इनक विचारधारा को सर्वांग योग दर्शन कहा जाता है। श्री अरविन्द के सर्वांग योग दर्शन को समझने के लिए उसकी तत्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा और मूल्य एवं आचार मीमांसा को समझना आवश्यक है।

अरविन्द सर्वांग योग दर्शन की तत्व मीमांसा

श्री अरविन्द के अनुसार इस सृष्टि का कर्ता ईश्वर है। अब प्रश्न उठता है कि ईश्वर इस जगत का निर्माण किस प्रकार करता है। इसकी व्याख्या श्री अरविन्द ने विकास सिद्धान्त के आधार पर की है। इनके अनुसार विकास की दो दिशाएँ हैं- अवरोहण एवं आरोहण। इनका स्पष्टीकरण है कि ब्रह्म अवरोहण द्वारा वस्तु जगत का रूप धारण करता है। इस अवरोहण के इन्होंने सात सोपान बताए हैं- सत् Ä चित्त Ä आनन्द Ä अतिमानस Ä मानस Ä प्राण Ä द्रव्य। इनका तर्क है कि द्रव्य रूप इस जगत में मनुष्य अपने द्रव्य रूप से आरोहण द्वारा जगत् की ओर बढ़ता है। इसके भी इन्होंने सात सोपान बताए हैं- Ä प्राण Ä मानस - अति मानस - आनन्द - चित्त - सत्। ब्रह्म को ये सत् और ईश्वर को सत्-चित्त-आनन्द के रूप में स्वीकार करते थे। आत्मा को अरविन्द ने गीता के पुरुष रूप में स्वीकार किया है। इनकी दृष्टि से आत्मा में परमात्मा के दो गुण होते हैं- आनन्द एवं चित्त तथा यह विभिन्न योनियों से होती हुई मनुष्य योनि में प्रवेश करती है और इस शरीर के माध्यम से सत् की ओर बढ़ती है।

मनुष्य को भी श्री अरविन्द्र ने विकसित प्राणी के रूप में लिया है। इनकी दृष्टि से मनुष्य जन्म से विकास के दो सोपान पर कर मानस सोपान पर पैदा होता है, जन्म के पश्चात् उसे अतिमानस, अतिमानस से आनन्द, आनन्द से चित्त और चित्त से सत् की ओर बढ़ना होता है। श्री अरविन्द के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य सत्+चित्त+आनन्द अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति ही होता है।

मनुष्य के विकास के सम्बन्ध में श्री अरविन्द का मत है कि उसके भौतिक विकास के लिए द्रव्य ज्ञान आवश्यक होता है जो इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और उसके आत्मिक विकास के लिए आत्म ज्ञान आवश्यक होता है जो योग की क्रिया (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। श्री अरविन्द इस सबके लिए तद्नुकूल उचित शिक्षा आवश्यक समझते थे। इनकी दृष्टि से मनुष्य को शिक्षा द्वारा सर्वप्रथम अपने द्रव्य एवं प्राण स्वरूप का ज्ञान करना चाहिए और उसके बाद अतिमानस, आनन्द, चित्त एवं सत् का ज्ञान कराना चाहिए। इस सबके लिए ये स्वस्थ शरीर, निर्मल मन और संयमी जीवन आवश्यक समझते थे।

अरविन्द सर्वांग योग दर्शन की ज्ञान एवं तर्क मीमांसा

श्री अरविन्द के अनुसार भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों तत्वों में मूल तत्व ब्रह्म ही है। इसलिए भौतिक एवं आध्यात्मिक तत्वों के अभेद को जानना ही सच्चा ज्ञान है। प्रयोग की दृष्टि से इन्होंने ज्ञान को दो भागों में बाँटा है- द्रव्यज्ञान और आत्मज्ञान। द्रव्यज्ञान (जगत ज्ञान) को ये साधारण ज्ञान मानते थे और आत्मज्ञान को उच्च ज्ञान। इनकी दृष्टि से वस्तु जगत का ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों द्वारा और आत्मतत्व का ज्ञान अन्तःकरण द्वारा होता है। आत्मतत्व के ज्ञान के लिए ये योग की क्रिया (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि) को आवश्यक मानते थे।

अरविन्द सर्वांग योग दर्शन की मूल्य एवं आचार मीमांसा

श्री अरविन्द ने आरोहण के 7 सोपान बताए हैं- द्रव्य, प्राण, मानस, अतिमानस, आनन्द, चित्त, सत्। इनके अनुसार मनुष्य जन्म से ही द्रव्य, प्राण और मानस के सोपानों के पार कर चुका होता है, जन्म के पश्चात् उसे अतिमानस की स्थिति को प्राप्त कर आनन्द की प्राप्ति करनी होती है। इनके अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य आनन्द+चित्त+सत् की प्राप्ति है।

इसके लिए इन्होंने गीता के कर्म योग एवं ध्यान योग को साधन बताया है। जिसमें योगी संसार (कर्मक्षेत्र) से पलायन नहीं करता अपितु सत्-चित्-आनन्द में ध्यान लगाकर निष्कासन भाव से अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। ऐसे कर्म योगी एवं ध्यान योगी के लिए यह आवश्यक है कि उसका शरीर स्वस्थ हो, मन विकार रहित हो तथा जीवन संयमी हो। इसके लिए अरविन्द ने योग की क्रिया (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि) के महत्त्व को स्वीकार किया है। इनके मत से ये सब मनुष्य के आचरण के अंग होने चाहिए।

श्री अरविन्द का शैक्षिक चिन्तन

श्री अरविन्द एक दार्शनिक के रूप में अधिक विख्यात हैं, लेकिन अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को मनुष्य जीवन में उतारने के लिए इन्हें एक विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता अनुभव हुई। उधर राष्ट्रोत्थान के लिए भी तत्कालीन शिक्षा उपयुक्त नहीं थी। इसलिए इन्होंने शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना प्रस्तुत की। इनके शिक्षा सम्बन्धी ये विचार प्रमुख रूप से इनकी दो पुस्तकों- 'नेशनल सिस्टम ऑफ एजुकेशन' और 'ऑफ एजूकेशन' में प्रकट हुए हैं।

शिक्षा का सम्प्रत्यय

श्री अरविन्द का विश्वास था कि मनुष्य द्रव्य तथा प्राण की अवस्था को पार कर मानस की स्थिति में होता है; जन्म के बाद उसे अतिमानस की अवस्था, उससे आनन्द आनन्द से चित्त और चित्त से सत् की अवस्था पर पहुँचना होता है। अब यदि हम उसे इस विकास की ओर अग्रसर करना चाहें तो हमें उसे ऐसी शिक्षा देनी होगी कि वह अपने द्रव्य, प्राण एवं मानस स्वरूप को जाने एवं उससे आगे के स्वरूप एवं उनकी ओर बढ़ने की विधियों को जाने। श्री अरविन्द के अनुसार यह सब कार्य शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है। एक ऐसी शिक्षा द्वारा जो मनुष्य का भौतिक, प्राणिक, मानसिक, अन्तरात्मिक और आध्यात्मिक विकास करे। ऐसी शिक्षा को ये सम्पूर्ण शिक्षा कहते थे। इनके शब्दों में- 'शिक्षा मानव के मस्तिष्क और आत्मा की शक्तियों का निर्माण करती है और उसमें ज्ञान, चरित्र और संस्कृति को जागृत करती है।

शिक्षा के उद्देश्य

श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा के दो प्रमुख कार्य हैं- पहला कार्य है मनुष्य को उसके अपने विकास क्रम (आध्यात्मिक) का स्पष्ट ज्ञान कराना और

दूसरा कार्य है उसमें सत् तक पहुँचने की शक्ति का विकास करना। श्री अरविन्द ने शिक्षा के उद्देश्यों को इसी विकास क्रम में प्रस्तुत किया है।

1. **भौतिक विकास का उद्देश्य** – इस जगत एवं मानव विकास का प्रथम सोपान द्रव्य है। श्री अरविन्द शिक्षा द्वारा मनुष्य को सर्वप्रथम पंच महाभूतों से बने इस वस्तु जगत एवं उसके स्वयं के भौतिक स्वरूप के सम्बन्ध में ज्ञान करा देना चाहते थे और उसे अपने शरीर की रक्षा एवं विकास की क्रियाओं में प्रशिक्षित करा देना चाहेते थे। इसे ही दूसरे शब्दों में शारीरिक विकास का उद्देश्य कहते हैं। श्री अरविन्द के अनुसार सत्-चित्त-आनन्द की प्राप्ति भी स्वस्थ शरीर से होती है इसलिए शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य शारीरिक विकास होना चाहिए। मनुष्य को अपने द्रव्य स्वरूप की रक्षा के लिए रोटी, कपड़ा एवं मकान की आवश्यकता होती है। अतः शिक्षा द्वारा उसे किसी व्यवसाय अथवा उद्योग का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए। इसे ही दूसरे शब्दों में व्यावसायिक विकास कहते हैं। श्री अरविन्द यह भी जानते थे कि मनुष्य अपने इस भौतिक जीवन को समाज में रहकर जीता है इसलिए ये उसके सामाजिक विकास पर भी बल देते थे तथा इस सबको मनुष्य के भौतिक विकास के अन्तर्गत रखते थे।

2. **प्राणिक विकास का उद्देश्य** – मानव विकास का दूसरा सोपान है प्राण। प्राण का अर्थ उस शक्ति से है जिसके कारण जगत में परिवर्तन होता है। श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का दूसरा उद्देश्य इस प्राण शक्ति का विकास होना चाहिए। इनके अनुसार मनुष्य की प्राण शक्ति को सही दिशा में लगाने के लिए यह आवश्यक है कि उसका नैतिक तथा चारित्रिक विकास किया जाए और उसकी इच्छा शक्ति को दृढ़ किया जाए। यह विकास तभी संभव है जब इन्द्रियों को असत् सत् मार्ग की ओर लगा दिया जाए। अतः इन्द्रियों का प्रशिक्षण शिक्षा का दूसरा उद्देश्य होना चाहिए। इसके लिए ये स्नायु शुद्धि, मानस शुद्धि एवं चित्त शुद्धि आवश्यक समझते थे।

3. **मानसिक विकास का उद्देश्य** – मानस अर्थात् मन मनुष्य के विकास क्रम का तीसरा सोपान है। मन हमारी सत्ता का सबसे चंचल भाग है। अतः शिक्षा द्वारा मनुष्य का मानसिक विकास करना चाहिए। श्री अरविन्द की शिष्या एवं उत्तराधिकारी श्री माताजी के अनुसार मन की समृद्धता बढ़ाना, उच्चतम लक्ष्य की ओर सभी विचारों को संगठित करना, विचारों

को संयमित करना तथा अनष्टि विचारों का त्याग करना और मानसिक स्थिरता का विकास करना। इस सबके लिए श्री अरविन्द योग की क्रिया द्वारा ही मनुष्य की कल्पना, स्मृति, चिन्तन, तर्क और निर्णय की शक्तियों को बढ़ाने पर बल देते थे।

NOTES

4. **अन्तरात्मिक विकास का उद्देश्य** - अतिमानस अर्थात् मनुष्य का अन्तःकरण मानव विकास का चौथा सोपान है। श्री अरविन्द ने इस अन्तःकरण के चार स्तर बताए हैं- चित्, बुद्धि, मन और अन्तर्ज्ञान। श्री अरविन्द ने अनुभव किया था कि इस स्तर पर पहुँच कर मनुष्य बिना ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग किए सब कुछ देख-समझ लेता है। सत् का साक्षात्कार तो होता ही इस अन्तःकरण से है। अतः शिक्षा द्वारा इस अन्तःकरण का विकास किया जाना चाहिए। इस विकास के लिए भी श्री अरविन्द ने योग विधि को आवश्यक माना है।

5. **आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य** - मानव विकास के अन्तिम तीन सोपान हैं- आनन्द, चित् और सत्। श्री अरविन्द के अनुसार आनन्द वह स्थिति है जिसमें मनुष्य सुख-दुःख की अनुभूति ही नहीं करता है; चित् वह चेतना शक्ति है जिससे मनुष्य अपने, जगत के और सत् के स्वरूप को जानता है लक्ष्य सत् शुद्ध अस्तित्व का नाम है। सत् केवल ईश्वर को प्राप्त है इसलिए सत् ही ईश्वर है और ईश्वर ही सत् है। ये तीनों आध्यात्मिक स्तर हैं। इन स्तरों पर पहुँचने के लिए श्री अरविन्द ने कर्म योग एवं ध्यान योग को साधन बताया है और इन दोनों मार्गों पर चलने के लिए मनुष्य के लिए योग क्रिया (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) की आवश्यकता बताई है। इनके अनुसार यह शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य होना चाहिए।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

श्री अरविन्द ने शिक्षा के पाँच उद्देश्य- भौतिक, प्राणिक, मानसिक, अन्तरात्मिक और आध्यात्मिक विकास बताए हैं। इनकी दृष्टि से इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समन्वित रूप से प्रयास करना होता है और इसके लिए इन्होंने एक विस्तृत एवं समन्वित पाठ्यचर्या प्रस्तुत की है। भौतिक विकास के लिए ये पाश्चात्य विज्ञान एवं तकनीकी को आवश्यक समझते थे इसलिए इन्होंने उसे भी पाठ्यचर्या में स्थान दिया है, परन्तु इनका स्पष्टीकरण था कि उससे भी अधिक महत्त्व की वस्तु है हमारी संस्कृति जो योग की संस्कृति है, उसके

अभाव में हम पाश्चात्य भौतिक विज्ञान का दुरुपयोग भी कर सकते हैं। इनके द्वारा प्रस्तुत पाठ्यचर्या को हम निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं–

भौतिक विषय– मातृभाषा एवं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की भाषाएँ, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित, विज्ञान, मनोविज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, कृषि, उद्योग, वाणिज्य और कला।

भौतिक क्रियाएँ – खेल-कूद, व्यायाम, उत्पादन कार्य, शिल्प।

आध्यात्मिक विषय – वेद, उपनिषद्, गीता, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, विभिन्न देशों के धर्म एवं दर्शन।

आध्यात्मिक क्रियाएँ – भजन, कीर्तन, ध्यान एवं योग।

परन्तु इस सब विषयों का अध्ययन एवं क्रियाओं का प्रशिक्षण एक दिन में नहीं किया जाएगा। श्री अरविन्द आश्रम में उसे निम्नलिखित रूप में रखा गया है–

प्राथमिक स्तर – मातृभाषा, अंग्रजी, फ्रेंच, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जन्तु विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, सामाजिक अध्ययन एवं चित्रकला और खेल-कूद, व्यायाम, बागवानी, कृषि अन्य शिल्प, भजन, कीर्तन, ध्यान व योग।

उच्च स्तर – अंग्रेजी साहित्य, फ्रेंच साहित्य, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, विज्ञान का इतिहास, सभ्यता का इतिहास, जीवन का विज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, भारतीय व पाश्चात्य दर्शन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एवं विश्व एकीकरण, कृषि, अन्य शिल्प एवं भजन, कीर्तन, ध्यान व योग।

शिक्षण विधियाँ

श्री अरविन्द विकास सिद्धान्त में विश्वास करते थे। इनके अनुसार विकास के सात सोपान होते हैं– द्रव्य ¤Ä प्राण ¤Ä मानस ¤Ä अतिमानस ¤Ä आनन्द ¤Ä चित्त ¤Ä सत्। मनुष्य इनमें से तीसरे सोपान पर होता है, उसे अति मानस ¤Ä आनन्द ¤Ä चित्त और सत् सोपानों पर चढ़ना शेष रहता है। इसके लिए ये स्वस्थ शरीर, निर्मल मन तथा संयमी जीवन को आवश्यक मानते थे। इस दिशा में बढ़ने के लिए उसे किस ज्ञान एवं कौशल की आवश्यकता होती है उसके लिए भी ये तीन तत्व आवश्यक होते हैं और सामान्य ज्ञान एवं कौशल प्राप्त करने के लिए भी। पर शिक्षण विधियों के

सम्बन्ध में श्री अरविन्द के विचार पूर्णरूप से स्पष्ट नहीं हैं। कहीं तो वे प्राचीन शिक्षा पद्धति के अनुसार क्रमिक विधि अर्थात् एक दो विषयो के अध्ययन के बाद अन्य एक दो विषयों का अध्ययन प्रारम्भ करने की बात करते हैं। तथा कहीं बच्चों के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए अनेक विषयों एवं क्रियाओं की शिक्षा एक साथ करने की बात करते हैं। इसी प्रकार एक ओर तो ये बच्चे की शिक्षा का विधान उसकी भौतिक शक्तियों के आधार पर करने की बात करते हैं और दूसरी ओर उसके लिए योग की क्रिया के महत्व को स्वीकार करते हैं। लेकिन एक बात अवश्य है और वह यह कि ये प्राचीन विधियों को नया रूप देना चाहते थे। ये उपदेश, प्रवचन, व्याख्यान और अन्य मौखिक विधियों के प्रयोग की स्वीकृति तो देते थे लेकिन इस शर्त के साथ कि किसी भी स्थिति में बच्चों को रटाया नहीं जाएगा। बल्कि उन्हें स्वयं के प्रयत्नों से आत्मसात् कराया जाएगा। यह तभी सम्भव है जब शिक्षण रुचिकर हो। इसके लिए ये प्राथमिक स्तर पर कहानी विधि का प्रयोग करने की बात कहते थे। ये पाठ्य-पुस्तक प्रणाली के भी समर्थक थे पर इस सम्बन्ध में इनका यह कहना था कि पहले बच्चों को ज्ञान की खोज के लिए तैयार किया जाना चाहिए एवं फिर उन्हें पुस्तकें पड़ने के लिए कहना चाहिए। पुस्तकों से बच्चे रटेंगे नहीं अपितु उनका प्रयोग सहायक एवं सन्दर्भ ग्रंथ के रूप में करेंगे। स्वाध्याय विधि को अपनाते समय भी ये इस बात पर ध्यान देने के लिए कहते थे। इनकी दृष्टि से योग की क्रिया सीखने की उत्तम विधि है। पर इसमें भी वे स्वक्रिया, चिन्तन और तर्क को आधार मानते थे। इनके शिक्षण सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण करने पर हम निम्नलिखित तथ्यों से अवगत होते हैं-

1. शिक्षण करते समय बच्चों की शारीरिक तथा मानसिक क्षमता तथा उनकी अपनी रुचियों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।
2. रटने के स्थान पर समझने पर बल देना चाहिए।
3. बच्चों को क्रिया करने के अधिक से अधिक अवसर देने चाहिए और उन्हें स्वयं के अनुभव से सीखने देना चाहिए।
4. बच्चों को चित्त वृत्तियों के निरोध, चिन्तन और मनन की क्रिया में प्रशिक्षित करते चलना चाहिए।
5. बच्चों के साथ प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। उन्हें अपने कार्य करने की स्वतन्त्रता भी होनी चाहिए।

6. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए।

7. हर स्तर पर बच्चों के सहयोग से आगे बढ़ना चाहिए।

अनुशासन

श्री अरविन्द की दृष्टि से स्वेच्छा से कर्त्तव्य पालन करना ही अनुशासन है। इनके अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में भी अनुशासन का बड़ा महत्त्व होता है। यह अनुशासन कैसे प्राप्त किया जाए, इस सम्बन्ध में श्री अरविन्द के अपने विचार हैं। अनुशासन का सम्बन्ध ये भावना से जोड़ते थे तथा इस भावना का सम्बन्ध नैतिकता से। इनके अनुसार प्रत्येक शिक्षक का यह उत्तरदायित्व है कि वह बच्चों के मन में ऐसी भावना भरे कि वे अच्छाई की ओर अग्रसर हों, नैतिकता का पालन करें और अपने अध्ययन में एकाग्रता से लगें। इनके विचारानुसार शिक्षक को बच्चों के साथ प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए, कठोरता से वास्तविक अनुशासन की प्राप्ति नहीं की जा सकती। दण्ड को ये अमानवीय कृत्य कहते थे।

इस सन्दर्भ में एक बात और उल्लेखनीय है और वह यह कि श्री अरविन्द प्रभावात्मक अनुशासन में विश्वास करते थे। इनके अनुसार शिक्षकों को बच्चों के सामने आदर्श आचरण प्रस्तुत करना चाहिए, जिसका अनुकरण कर बच्चे पहले तो आदर्श आचरण की ओर अग्रसर हों और फिर वैसा करना अपना कर्त्तव्य समझें।

शिक्षक

श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक का स्थान बच्चे के पथ-प्रदर्शक और सहायक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। इनके अनुसार शिक्षक न तो बच्चों को ज्ञान देता है और न ही उनके अन्दर के ज्ञान को विकसित करता है, बल्कि बच्चों की इस बात में सहायता करता है कि वे स्वयं ज्ञान को प्राप्त करें और अपने अन्दर के ज्ञान को विकसित करें। यह कार्य वही शिक्षक कर सकता है जिसे शिक्षार्थी और पाठ्यचर्या, दोनों का पूरा-पूरा ज्ञान हो। शिक्षार्थी का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे मनोविज्ञान का अध्ययन करना चाहिए और पाठ्यचर्या का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे यथा विषयों का अध्ययन और क्रियाओं में प्रशिक्षण लेना चाहिए। श्री अरविन्द के अनुसार एक अध्यापक को व्यक्ति की आत्मा को आगे बढ़ाने वाला होना चाहिए। यह कार्य वहीं व्यक्ति कर सकता है जिसे अध्यात्म विषय का स्पष्ट ज्ञान हो और जो योग की क्रिया में प्रशिक्षित हो।

शिक्षार्थी

शिक्षार्थी को श्री अरविन्द शिक्षा का केन्द्र मानते थे। इनके अनुसार प्रत्येक बालक कुछ सामान्य शक्तियाँ तथा कुछ विशिष्ट योग्यताएँ अथवा प्रतिभाएँ लेकर जन्म लेता है। बच्चों की इन शक्तियों और योग्यताओं में बड़ी भिन्नता होती है। श्री अरविन्द के अनुसार बच्चों की शिक्षा का विधान उनकी इन शक्तियों के आधार पर ही करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा की व्यवस्था करते समय बच्चों की दृष्टिगत रुचि, रुझान और योग्यताओं का ध्यान रखना चाहिए। श्री अरविन्द के अनुसार सबसे बड़ी चीज जिसे एक बालक लेकर पैदा होता है वह उसकी आत्मा है। श्री अरविन्द के अनुसार यह आत्मा अपने में पूर्ण होती है, इसके कारण ही सम्पूर्ण ज्ञान अन्तर्निहित होता है। इस पूर्ण ज्ञान की अनुभूति तभी हो सकती है जब व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करे और एकाग्रचित होकर ध्यान करे। श्री अरविन्द शिक्षार्थी से यही अपेक्षा करते थे। इनके अनुसार प्रत्येक शिक्षार्थी को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए तथा सत्य ज्ञान की खोज के लिए साधना करनी चाहिए। इसके साथ-साथ श्री अरविन्द बालक के पर्यावरण के प्रभाव को भी स्वीकार करते थे। ये जानते थे कि बालक के विकास में उसके पर्यावरण का बड़ा हाथ रहता है। ये बच्चों को उच्च पर्यावरण में रखना चाहते थे। जिसमें उनकी ज्ञानेन्द्रियों का विकास और प्रशिक्षण हो तथा वे सत्य की खोज के लिए अग्रसर हों।

विद्यालय

श्री अरविन्द के अनुसार प्रत्येक विद्यालय को बच्चों के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विास में सहायक होना चाहिए। ये मनुष्य के भौतिक विकास के लिए विद्यालयों में संसार की सभी श्रेष्ठ भाषाओं, साहित्य, सभ्यता तथा संस्कृति, गणित और विज्ञान आदि की शिक्षा का प्रबन्ध करने और ध्यान करने के अवसर देने पर बल देते थे। इनके अनुसार विद्यालय भौतिक प्रगति और योग साधना के केन्द्र होने चाहिए।

श्री अरविन्द मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं करते थे, ये जाति, धर्म, और रंग किसी भी आधार पर मनुष्य-मनुष्य के अन्तर को स्वीकार नहीं करते थे। इनके अनुसार विद्यालयों में सभी बच्चों को अपनी योग्यतानुसार प्रवेश के समान अवसर दिए जाने चाहिए और उन्हें अपनी भाषा, धर्म और संस्कृति के अध्ययन के लिए सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए। विद्यालयों का पर्यावरण शिवबन्धुत्व की भावना से पूर्ण होना चाहिए। इनके द्वारा स्थापित श्री अरविन्द आश्रम का 'श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र' इसी प्रकार का शिक्षा केन्द्र है।

श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र एक आवासीय सहशिक्षा संस्था है। इसमें शिशु शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा एवं अनुसन्धान तक की व्यवस्था है परन्तु कुछ अपने प्रकार की।

यथा-

1. **शिशु विहार** (कन्डर गार्टन, शिशु स्तर) आयु 3 से 5 वर्ष, पाठ्यक्रम 3 वर्षीय।
2. **भविष्य** (आवनी, प्राथमिक स्तर) आयु 6 से 8 वर्ष, पाठ्यक्रम 3 वर्ष।
3. **प्रगति** (प्रोगे, उच्च प्राथमिक स्तर) आयु 9 से 11 वर्ष, पाठ्यक्रम 3 वर्षीय।
4. **पूर्णतया की ओर** (अंनाबा बैर ला पैर फैक्सिओ, माध्यमिक स्तर) आयु 12 से 17 वर्ष, पाठ्यक्रम 6 वर्षीय।
5. **उच्चर्या** (हायर कोर्स, उच्च शिक्षा स्तर) आयु 18 से 20 वर्ष, पाठ्यक्रम 3 वर्षीय।

विशेष

1. यहाँ शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य है- दिव्य शरीर की प्राप्ति। इसके लिए शिक्षा के सभी स्तरों पर शारीरिक शिक्षा, व्यायाम एवं विभिन्न प्रकार के खेल-कूदों में भाग लेना अनिवार्य है, परन्तु छात्र-छात्राएँ अपनी क्षमता एवं पसन्द के खेलकूद चुनने के लिए स्वतन्त्र हैं।
2. यहाँ शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य है- अनन्त शक्ति की प्राप्ति। इसके लिए शिक्षा के सभी स्तरों पर ध्यान योग अनिवार्य है।
3. यहाँ प्रथम तीन स्तरों पर शिक्षा का माध्यम फ्रेंच भाषा है और अन्तिम दो स्तरों पर फ्रेंच एवं अंग्रेजी दो भाषाएँ हैं।
4. यहाँ शिक्षा की मुक्त प्रणाली है। यहाँ किसी भी स्तर के छात्रों को किसी प्रकार के बन्धन में नहीं रखा जाता, उन्हें अध्ययन विषयों एवं खेल-कूद आदि क्रियाओं के चयन तथा उनको अपनी गति से सीखने एवं करने की पूरी छूट है। उच्च शिक्षा स्तर पर तो छात्र-छात्राओं पर बाहर से कुछ नहीं लादा जाता, उस उन्हें ऐसा पर्यावरण दिया जाता है कि वे अपनी आन्तरिक सत्ता से पथ-प्रदर्शन पाते हैं। इसे ही शिक्षा की मुक्त प्रणाली कहा जाता है।

5. यहाँ किसी भी स्तर पर किसी भी प्रकार की परीक्षाएँ नहीं होतीं, शिक्षकों की संतुष्टि पर ही छात्र-छात्राओं को आगे के अध्ययन में प्रवेश दे दिया जाता है। यहाँ कोई पाठ्यक्रम पूरा करने के बाद किसी प्रकार का प्रमाणपत्र भी नहीं दिया जाता।

शिक्षा के अन्य पक्ष

नैतिक और धार्मिक शिक्षा - श्री अरविन्द साधु थे, सन्त थे एवं एक बहुत बड़े योगी थे। नैतिकता और धर्म में इनकी आस्था थी, इसलिए ये शिक्षा को नैतिकता और धर्म पर आधारित करना चाहते थे। श्री अरविन्द के विचार से धर्म कोई भी हो और कैसा भी हो लेकिन वह मनुष्य को अपने लिए दूसरों के लिए और ईश्वर के लिए जीना सिखाता है। किसी धर्म से घृणा करना, यह धर्म का लक्षण नहीं; यह तो धार्मिक संकीर्णता का परिचायक है। साम्प्रदायिकता का विकास इसी संकीर्णता के कारण होता है। श्री अरविन्द संसार के सब धर्मों को समान दृष्टि से देखते थे तथा किसी देश की शिक्षा को उसके अपने धर्म पर आधारित करना चाहते थे। इनका स्पष्ट मत था कि धर्म के अभाव में मनुष्य अपने आध्यात्मिक स्वरूप को नहीं पहचान सकता।

राष्ट्रीय शिक्षा - श्री अरविन्द अपने देश की परतन्त्रता से दुःखी थे और उस समय की शिक्षा पद्धति से इन्हें बड़ा असन्तोष था। इन्होंने इस बात पर बल दिया कि देश स्वतन्त्र होना चाहिए और इसकी शिक्षा को भारतीय रूप प्रदान करना चाहिए। इन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा की पूरी रूपरेखा तैयार की। इनके अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा वह शिक्षा है जो राष्ट्र के नियन्त्रण में राष्ट्रीय लोगों को राष्ट्रीय पद्धति से प्रदान की जाती है। यही कारण है कि ये शिक्षा को भारतीय भाषाओं के माध्यम से देने पर बल देते थे और उसे ब्रह्मचर्य एवं आध्यात्मिक जीवन पर आधारित करना चाहते थे। इनका कहना था कि मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने से ही उसे जन साधारण के लिए सुलभ किया जा सकता है। ब्रह्मचर्य व्यवस्था और आध्यात्मिक जीवन तो हमारी संस्कृति की आत्मा है, उसे शिक्षा का आधार बनाने से भारतीयों में राष्ट्र की आत्मा का समावेश होगा। यहाँ हमें यह बात समझ लेनी चाहिए कि श्री अरविन्द संकुचित राष्ट्रीयता में विश्वास नहीं करते थे। ये मानवतावादी व्यक्ति थे, इसलिए इनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। ये अन्तराष्ट्रीयता के हामी थे। श्री अरविन्द आश्रम में देश-विदेश की भाषाओं तथा संस्कृतियों को स्थान देना इनकी इस भावना का प्रतीक है।

श्री अरविन्द के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन

किसी वस्तु क्रिया अथवा विचार का मूल्यांकन कुछ निश्चित मानदण्डों के आधार पर किया जाता है। शिक्षा-मनुष्य के विकास की प्रक्रिया है। यह विकास किस प्रकार को हो, यह समाज एवं राष्ट्र विशेष की तत्कालीन परिस्थितियों एवं भविष्य की आकांक्षाओं एवं सम्भावनाओं पर निर्भर करता है। तब किसी शैक्षिक चिन्तन अथवा व्यवस्था का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाना चाहिए कि वह उपरोक्त दृष्टि से उचित शिक्षा के निर्माण में कितनी सहायक हुई है अथवा हो सकती है।

शिक्षा का सम्प्रत्यय

श्री अरविन्द के अनुसार सम्पूर्ण शिक्षा वह है जो मनुष्य को अपने द्रव्य (भौतिक), प्राण (प्राणिक) एवं मानस (मानसिक) स्वरूप का ज्ञान कराए और उससे आगे के स्वरूप अतिमानस अन्तरात्मिक एवं आनन्द-चित्त-सत्त (आध्यात्मिक) को समझने और प्राप्त करने में सहायक हो। उनके अपने शब्दों में- 'शिक्षा मानव के मस्तिष्क और आत्मा की शक्तियों का निर्माण करती है। और उसमें ज्ञान, संस्कृति और चरित्र को जागृत करती है।

इस परिभाषा में दो दोष साफ नजर आते हैं- एक तो यह कि इसमें शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप को स्पष्ट नहीं किया गया है और दूसरा यह कि इसमें उसके कार्यों को भी अपने कुछ विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है जो सामान्य मनुष्य की पहुँच के बराबर हैं।

शिक्षा के उद्देश्य

श्री अरविन्द ने मनुष्य के विकास के सात सोपान बताए हैं- द्रव्य Ä प्राण Ä मानस Ä अति मानस Ä आनन्द Ä चित्त Ä सत्। श्री अरविन्द ने शिक्षा के उद्देश्य इसी क्रम मे निश्चित किए हैं- भौतिक विकास का उद्देश्य, प्राणिक विकास का उद्देश्य, मानसिक विकास का उद्देश्य, अन्तरात्मिक विकास का उद्देश्य और आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य।

यूँ श्री अरविन्द द्वारा निश्चित भौतिक विकास के उद्देश्य में शारीरिक, सामाजिक एवं व्यावसायिक विकास के उद्देश्य निहित हैं, प्राणिक विकास के उद्देश्य में नैतिक एवं चारित्रिक विकास का उद्देश्य निहित है, मानसिक विकास के उद्देश्य में मानसिक शक्तियों के विकास पर बल है, अन्तरात्मिक विकास के उद्देश्य में मन, बुद्धि, चित्त और अन्तर्ज्ञान के विकास पर बल है

तथा आध्यात्मिक विकास के उद्देश्य में योग क्रिया में प्रशिक्षण पर बल है। और इस प्रकार इन उद्देश्यों में शिक्षा के सभी मूल उद्देश्य निहित हैं परन्तु सीधी-सच्ची बात को इतने उलझे हुए रूप में रखकर इन्होंने एक उलझन ही उत्पन्न की है। आज की भाषा में हमें सीधे रूप में कहना चाहिए कि शिक्षा एक बहुउद्देशीय प्रक्रिया है, इसके द्वारा मनुष्यों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक, व्यावसायिक और आध्यात्मिक विकास किया जाता है।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

श्री अरविन्द ने शिक्षा के जिन उद्देश्यों का प्रतिपादन किया है, उनकी प्राप्ति के लिए एक विस्तृत पाठ्यचर्या भी प्रस्तुत की है। इन्होंने भौतिक विषयों में - मातृभाषा एवं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की भाषाएँ, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित, विज्ञान, मनोविज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, कृषि, उद्योग, वाणिज्य एवं कला को, भौतिक क्रियाओं में खेल-कूद, व्यायाप उत्पादन कार्य एवं शिल्प को, आध्यात्मिक विषयों में वेद, उपनिषद, गीता, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, विभिन्न देशों के धर्म एवं दर्शन को तथा आध्यात्मिक क्रियाओं में- भजन, कीर्तन, ध्यान एवं योग को स्थान दिया है और साथ ही शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यचर्या प्रस्तावित की है।

यदि श्री अरविन्द द्वारा प्रस्तावित पाठ्यचर्या को ध्यानपूर्वक देखा-समझा जाए तो स्पष्ट होता है। कि इन्होंने शिक्षा की पाठ्यचर्या को बहुत विस्तृत रूप प्रदान किया है, उसमें प्राचीन एवं अर्वाचीन एवं भारतीय एवं पाश्चात्य सभी उपयोगी ज्ञान एवं क्रियाओं को स्थान दिया है। परन्तु प्रारम्भ से ही बच्चों को मातृभाषा के साथ अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा को पढ़ाने को कोई औचित्य नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का तो बहुत कुछ है लेकिन सामान्य व्यक्ति को उस सबको जानने की क्या आवश्यकता। फिर हर स्तर पर योग की क्रिया को स्थान देना भी वर्तमान परिस्थितियों में सम्भव नहीं है।

शिक्षण विधियाँ

शिक्षण विधियों के सम्बन्ध में श्री अरविन्द के विचार पूर्णरूप से स्पष्ट नहीं हैं, कहीं ये प्राचीन विधियों का समर्थन करते नजर आते हैं तथा कहीं अर्वाचीन विधियों के प्रयोग पर बल देते हैं। पर ये रटने के कट्टर विरोध ी थे, इन्होंने रटने के स्थान पर समझने पर बल दिया है।

श्री अरविन्द की इस बात से कौन असहमत होगा कि बच्चों को रटने के स्थान पर समझाने की ओर अग्रसर करना चाहिए। उनका यह विचार भी अपने में सही है कि योग की विधि समझने की उत्तम विधि है पर वर्तमान में योग को मन की एकाग्रता के रूप में ही लिया जा सकता है, कर्म योग या ध्यान योग के रूप में नहीं।

अनुशासन

श्री अरविन्द के अनुसार स्वेच्छा से कर्त्तव्य पालन करना ही सच्चा अनुशासन है। इस अनुसासन की प्राप्ति के लिए श्री अरविन्द ने दो बातों पर बल दिया है- एक यह कि शिक्षकों को बच्चों के सामने आदर्श आचरण प्रस्तुत करना चाहिए और दूसरी यह कि यदि वे फिर भी अन्यथा आचरण करें तो उन्हें प्रेम से समझना चाहिए। इनका स्पष्ट मत था कि कठोरता से वास्तविक अनुशासन की प्राप्ति नहीं की जा सकती। दण्ड को ये अमानवीय कृत्य मानते थे।

इनमें दो मत नहीं कि वास्तविक अनुशासन की प्राप्ति के लिए विद्यालय की उच्च्व परिपाटी और शिक्षकों का आदर्श आचरण आवश्यक होता है लेकिन यदि फिर भी बच्चे अनुशासनहीनता करें तो केवल प्रेम से काम नहीं चलता, कभी-कभी कुछ दण्ड भी देना आवश्यक होता है, पर यह दण्ड सीमित एवं प्रेम पर आधारित होना चाहिए।

शिक्षक

श्री अरविन्द शिक्षक को न तो बच्चों को ज्ञान देने वाला मानते थे और न उनमें ज्ञान का विकास करने वाला मानते थे, ये तो शिक्षक को बच्चों के स्वतन्त्र विकास में पथ-प्रदर्शक के रूप में स्वीकार करते थे। ये शिक्षकों से यह आशा करते थे कि वे बच्चों को भौतिक ज्ञान की प्राप्ति में सहायता करने के साथ-साथ उनकी आत्मा का भी विकास करें।

बच्चों के स्वतंत्र विकास की बात सुनने-समझने में बड़ी अच्छी लगती है पर वास्तव में इस रूप में औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जा सकती। शिक्षकों से योगी होने की अपेक्षा भी इस युग में सम्भव नहीं। वे अपने कर्त्तव्य का निष्ठा से पालन करें और बच्चों को जीवन के लिए तैयार करें, यही बहुत है।

शिक्षार्थी

श्री अरविन्द बालक के व्यक्तित्व का आदर करते थे। इनका स्पष्टीकरण था कि भौतिक दृष्टि से बच्चों में असमानता होती है और आध्यात्मिक (आत्मा की) दृष्टि से उनमें समानता होती है। अत: शिक्षकों को बच्चों का भौतिक विकास उनकी अपनी क्षमताओं के आधार पर करना चाहिए। तथा उनका आध्यात्मिक विकास उनकी आत्मा की पूर्णता के आधार पर करना चाहिए। इन दोनों प्रकार के लिए ये बच्चों से ब्रह्मचर्य के पालन और सत्य ज्ञान की खोज के लिए साधना की अपेक्षा करते थे।

जहाँ तक शिक्षार्थियों को ब्रह्मचर्य पालन के उपदेश की बात है, यह अपने में एकदम उपयुक्त है उप बच्चों को प्रारम्भ से ही वास्तविक सत्य की खोज के लिए योग साधना की बात आज के युग में व्यावहारिक नहीं है।

विद्यालय

श्री अरविन्द मनुष्य-मनुष्य में जाति, धर्म, अर्थ आदि किसी भी आधार पर भेद नहीं करते थे। इन्होंने विद्यालयों में सभी बच्चों को अपनी योग्यतानुसार प्रवेश का अधिकार देने पर बल दिया। इनकी दृष्टि से विद्यालयों में बच्चों के भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों प्रकार के विकास के लिए सुविधाएँ होनी चाहिए पर उन पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं होना चाहिए। उन्हें विषयों के चयन की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, खेल-कूद एवं व्यायाम क्रियाओं के चयन की छूट होनी चाहिए और अपना कार्य अपनी गति से पूरा करने की छूट होनी चाहिए। इसे ये शिक्षा की मुक्त प्रणाली कहते थे।

श्री अरविन्द की यह बात भले ही सभी को स्वीकार न हो कि विद्यालय योग साधना के केन्द्र होने चाहिए परन्तु अपना मत तो यह है कि जब मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास में सन्तुलन नहीं किया जाता तब तक वह वास्तविक सुख एवं शान्ति की प्राप्ति नहीं कर सकता। विद्यालयों में प्रारम्भ से ही बच्चों के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए।

शिक्षा के अन्य पक्ष

धार्मिक शिक्षा - श्री अरविन्द शिक्षा को धर्म पर आधारित करना चाहते थे। श्री अरविन्द का तर्क था कि संसार के सभी धर्म मनुष्य को अपने लिए दूसरों के लिए और ईश्वर के लिए जीना सिखाते हैं। अत: किसी भी देश की शिक्षा उसके धर्म पर आधारित होनी चाहिए। परन्तु वर्तमान लोकतन्त्रीय धर्मनिरपेक्ष

भारत में शिक्षा को किसी धर्म विशेष या यहाँ प्रचलित समस्त धर्मों पर आधारित करना सम्भव नहीं है। वर्तमान की माँग तो सर्वधर्म समभाव अर्थात् धार्मिक सहिष्णुता के विकास की है। यदि हम बच्चों में सर्वधर्म सम्मत नैतिक नियमों का विकास ही कर सकें तो यह हमारी बहुत बड़ी सफलता होगी।

राष्ट्रीय शिक्षा - श्री अरविन्द के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा वह शिक्षा है जो राष्ट्र के नियन्त्रण में राष्ट्र के समस्त लोगों को राष्ट्रीय पद्धति से दी जाती है। इन्होंने इस आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा की पूरी योजना भी तैयार की थी। परन्तु इन्होंने अपने पांडिचेरी (पडुचेरी) आश्रम में जिस शिक्षा की व्यवस्था की थी वह योग साधना की दृष्टि से तो भारतीय थी परन्तु अपनी पाठ्यचर्या की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय थी, उसमें देश-विदेश की अनेक भाषाओं एवं ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन की आज भी व्यवस्था है। यदि हम पांडेचेरी (पुडुचेरी) के श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र की शिक्षा को ध्यानपूर्वक देखें-समझें तो स्पष्ट होता है कि वह संकुचित राष्ट्रीयता के दायरे से बाहर की शिक्षा है, वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा है लेकिन उसकी आत्मा योग शिक्षा ही है।

श्री अरविन्द का प्रभाव

एक दार्शनिक के रूप में श्री अरविन्द ने भारतीय दर्शन को वैज्ञानिक बाना पहनाने का प्रयत्न किया है और कुछ लोग उनके विचारों से बड़े प्रभावित भी हुए हैं। ये स्थान, जाति, धर्म, अर्थ और रंग आदि किसी भी आधार पर मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं करते थे, ये विश्वबन्धुत्व में विश्वास करते थे। इनके द्वारा स्थापित पांडेचेरी (पुडुचेरी) आश्रम में देश-विदेश के, विभिन्न जातियों के, विभिन्न धर्मों को मानने वाले और विभिन्न आर्थिक स्तर से आए लोग रहते हैं, सभी शारीरिक श्रम करते हैं, सभी अपनी-अपनी योग्यतानुसार भौतिक जीवन को चलाने के लिए भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं, उत्पादन करते हैं और सभी इस सबके साथ-साथ ध्यान योग करते हैं, भौतिक जीवन की रक्षा करते हुए आध्यात्मिकता की ओर बढ़ते हैं। इससे भौतिकता प्रधान एवं धर्मप्रधान समाज एवं संस्कृतियों की दूरी कम हो रही है और समाज से वर्गभेद समाप्त हो रहा है।

श्री अरविन्द का यह दर्शन केवल भारतीय सीमा तक सीमित नहीं है। पांडेचेरी (पुडुचेरी) आश्रम की शाखाएँ देश-विदेश में स्थापित हैं जो पूरे संसार में भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के बीच समन्वय स्थापित करने की ओर प्रयत्नशील हैं। योग अब भूमण्डलीय विषय हो गया है।

हाँ, शिक्षा के क्षेत्र में श्री अरविन्द का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। प्रारम्भ में इन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन में भाग लिया जिसका प्रभाव कुछ ही वर्षों तक रहा। उसके बाद ये योग साधना की ओर प्रवृत्त हो गए और कुछ वर्ष बाद इन्होंने अपने आश्रम में एक शिक्षा संस्था स्थापित की। यह संस्था 'श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र' के रूप में विकसित है लेकिन इसमें शिक्षा की जो मुक्त प्रणाली है उसे सर्वसाधारण की शिक्षा में लागू नहीं किया जा सकता है।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों के सन्दर्भ में श्री अरविन्द के विचारों की विवेचना कीजिए।
2. 'श्री अरविन्द दार्शनिक के साथ-साथ शिक्षाशास्त्री भी थे।' इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. श्री अरविन्द के शैक्षिक विचार आधुनिक भारत में कहाँ तक उपयोगी हैं?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. श्री अरविन्द के विकास सिद्धान्त को संक्षेप में समझाइए।
2. श्री अरविन्द ने मनुष्य को किस रूप में प्रतिष्ठित किया है?
3. मनुष्य के विकास के सम्बन्ध में श्री अरविन्द के क्या विचार थे?
4. श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र के मुख्य अभिलक्षणों का उल्लेख कीजिए।
5. श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र की मुक्त शिक्षा प्रणाली का परिचय दीजिए।
6. शिक्षा में अनुशासन के सम्बन्ध में श्री अरविन्द के क्या विचार थे?
7. श्री अरविन्द शिक्षक को किस रूप में देखना चाहते थे?
8. श्री अरविन्द शिक्षार्थियों को किस रूप में देखना चाहते थे?

NOTES

10 महात्मा गाँधी जी का दार्शनिक चिन्तन

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- महात्मा गाँधी का दार्शनिक चिन्तन
- महात्मा गाँधी का शैक्षिक चिन्तन
- शिक्षा के उद्देश्य
- शिक्षा की पाठ्यचर्या
- महात्मा गाँधी के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन
- गाँधी जी का प्रभाव
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- महात्मा गाँधी का दार्शनिक चिन्तन
- महात्मा गाँधी का शैक्षिक चिन्तन
- शिक्षा के उद्देश्य
- शिक्षा की पाठ्यचर्या
- महात्मा गाँधी के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन
- गाँधी जी का प्रभाव

NOTES

महात्मा गाँधी का दार्शनिक चिन्तन

महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 में वर्तमान गुजरात प्रदेश के पोरबन्दर नामक स्थान पर एक वैष्णव धर्माचलम्बी, सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित परिवार में हुआ है। इनका वास्तविक नाम होहनदास कर्मचन्द गाँधी था। इनके कर्मचन्द गाँधी पोरबन्दर राज्य के दीवान थे और बड़े धार्मिक एवं सात्विक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। इनकी माता श्रीमती पुतलीबाई भी बड़ी धार्मिक एवं सात्विक प्रवृत्ति की महिला थी। महात्मा गाँधी पर अपने इस पारिवारिक पर्यावरण का वड़ा प्रभाव पड़ा।

गाँधी जी को अपने परिवार में वैष्णव धर्म की शिक्षा मिली थी। अपने बचपन में ही इन्होंने मनुस्मृति का एक अनुवाद पढ़ डाला था। गीता तो ये नित्य पढ़ते थे। इग्लैण्ड में इन्होंने बाईबिल एवं लाइट ऑफ पढ़ी थी और श्रीमती एनी बेसेट का सत्संग किया था। इस सबके आधार पर इनके धार्मिक एवं दार्शनिक विचार बने। पर मूल रूप में इनका जीवन दर्शन गीता पर आधारित है। गीता को ये 'गीता माता' कहते थे।

गाँधी जी ने किसी नए दर्शन का निर्माण नहीं किया। इन्होंने भारतीय दर्शन की मूलभूत बातों को ही व्यावहारिक रूप दिया है। पर यह व्यावहारिक रूप इनकी अपनी सूझ-बूझ का परिचायक है, इसलिए उसे आज **गाँधी दर्शन, गाँधीवाद** अथवा **सर्वोदय दर्शन** के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ गाँधी जी के सर्वोदय दर्शन की तत्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा और मूल्य एवं आचार मीमांसा प्रस्तुत है।

गाँधी सर्वोदय दर्शन की तत्त्व मीमांसा

गाँधी जी गीता को तत्त्व ज्ञान का सर्वोत्तम ग्रंथ मानते थे। गीता के अनुसार मूल तत्त्व दो है-पुरूष (ईश्वर) और प्रकृति (पदार्थ), और इनमें ईश्वर श्रेष्ठ है। गाँधी जी गीता की इस बात को मानते थे। इन्होंने स्पष्ट किया कि ईश्वर की श्रेष्ठता दो बातों से स्पष्ट होती है। पहली यह कि यह प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है लेकिन प्रकृति ईश्वर में व्याप नहीं है। दूसरी यह कि ईश्वर इस जगत का निर्माणकर्ता और पालनकर्ता है और वही इसका संहारकर्ता है। गाँध ी जी ने गीता के इस तथ्या को उजागर किया है कि ईश्वर इस जगत का कर्ता है और कृति इसकी उपादान कारण है। ईश्वर को यहे सत्य का अर्थ हुआ जिसका-अस्तित्व है, जो नित्य है। गाँधी जी का विश्वास था कि ईश्वर अपरिवर्तनशील है और नित्य है इसलिए सत्य है और प्रकृति (पदार्थ) परिवर्तनशील है तथा अनित्य है इसलिए असत्य है।

आत्मा को ये परमात्मा का अंश मानते थे। इनका विश्वास था कि जब परमात्मा नित्य एवं सत्य है तो आत्मा भी नित्य एवं सत्य है। गाँधी जी आत्मा, परमात्मा और सत्य, इन सभी को उस अनादि एवं अनन्त शक्ति के रूप में स्वीकार करते थे।

मनुष्य को गाँधी जी शरीर, मन और आत्मा का योग मानते थे और यह माते थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मज्ञान, ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष है। इन्होंने मनुष्य जीवन को दो पक्षों में विभाजित किया-एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। इनकी दृष्टि से ये दोनों पक्ष एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं और एक के विकास के बिना दूसरे का विकास नहीं किया जा सकता, मनुष्य के इन दोनों पक्षों का विकास एक साथ करना चाहिए।

अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य के इन दोनों पक्षों-भौतिक एवं आध्यात्मिक का एक साथ विकास कैसे किया जा सकता है। गाँधी जी का उत्तर है कि मनुष्य के भौतिक पक्ष का विकास करने के लिए मूल रूप से भौतिक ज्ञान एवं क्रियाओं की आवश्यकता होती है जिसे इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है तथा मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष के विकास के लिए मूल रूप से आध्यात्मिक ज्ञान एवं क्रियाओं की आवश्यकता होती है जिसे धर्म ग्रंथों के पाठ, भजन, सत्संग एवं समाज सेवा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। ये मनुष्य के दोनों पक्षों के सही रूप में विास करने के लिए एकादश व्रत (सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पृश्यता निवारण, कायिक श्रम, सर्वधर्म समभाव और विनम्रता) के पालन को भी आवश्यक समझते थे।

गाँधी सर्वोदय दर्शन की ज्ञान एवं तर्क मीमांसा

गाँधी जी ने ज्ञान को दो वर्गों में बाँटा-भौतिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान। भौतिक ज्ञान के अन्तर्गत इन्होंने भौतिक जगत एवं मनुष्य जीवन के विभिन्न पक्षों (सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक) के ज्ञान को रखा है और आध्यात्मिक ज्ञान के अन्तर्गत सृष्टि-सृष्टा और आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी तत्त्व ज्ञान को रखा है। गाँधी जी की दृष्टि से मनुष्य को दोनों प्रकार का ज्ञान आवश्यक है, भौतिक जीवन के लिए भौतिक ज्ञान आवश्यह है और आत्म ज्ञान अथवा ईश्वर प्राप्ति अथवा मोक्ष के लिए आध्यात्मिक ज्ञान आवश्यक है।

गाँधी जी के अनुसार भौतिक ज्ञान की प्राप्ति इन्द्रियों द्वारा की जा सकती है तथा आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति गीता पाठ, भजन-कीर्तिन और सत्संग द्वारा की जा सकती है। गीता को ये आध्यात्मिक ज्ञान का श्रेष्ठतम ग्रंथ मानते थे।

NOTES

गाँधी सर्वोदय दर्शन की मूल्य एवं आचार मीमांसा

गाँधी जी मनुष्य को शरीर, मन और आत्मा का योग मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य सत्य अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति है। इसी को यह मुक्ति कहते थे। लेकिन ये मनुष्य को पहले अपने भौतिक विकास करने और अपने को भौतिक अभावो से मुक्त करने पर बल देते थे। आध्यात्मिक मुक्ति के लिए इन्होंने गीता के अनाशक्ति योग को सर्वश्रेष्ठ साध न माना है और भौतिक जीवन की सुख-समृद्धि के लिए श्रम, नैतिकता एवं चरित्र के महत्त्व को स्वीकार किया है। और इन दोनों की प्राप्ति के लिए एकादश व्रत (सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पर्शता निवारण, कायिक श्रम, सर्वधर्म समभाव तथा विनम्रता) के पालन पर बल दिया है। ये इन्हें ही मानव जीवन के मूल्य मानते थे।

सत्य गाँधी जी के लिए साध्य एवं साधन दोनों हैं। साध्य रूप में सत्य वह है जिसका अस्तित्व है, जिसका कभी अन्त नहीं होता, अर्थात् ईश्वर। और साध न रूप में सत्य से गाँधी जी का तात्पर्य सत्य विचार, सत्य आचरण और सत्य भाषण से है। अहिंसा से इनका अर्थ सभी जीवधारियों के प्रति कुविचार के अभाव से है। गाँधी जी की दृष्टि से केवल जीव हत्या ही हिंसा है। इनके विचार से अहिंसा के अभाव में न सत्य का पालन हो सकता है और न सत्य की प्राप्ति हो सकती है। अहिंसा को ये भौतिक एवं आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति के लिए परम आवश्यक मानते थे। ब्रह्मचर्य को ये इन्द्रिय निग्रह द्वारा मन को अपने वश में करने के अर्थ में लेते थे। इन्द्रिय भोग के रस से दूर रहना ही अस्वाद है। अस्तेय का अर्थ है-चोरी न करना। अपरिग्रह का अर्थ है-संग्रह न करना। अभय का अर्थ है-किसी भी प्रकार के भय से मुक्त होना। अस्पृश्यता निवारण का अर्थ है-जन्म के आधार पर किसी को शुद्र न समझना। कायिक श्रम का अर्थ है-बिना श्रम किए किसी वस्तु का भोग न करना। सर्वध र्म समभाव का अर्थ है-सब धर्मों को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानना। एवं विनम्रता का अर्थ है अहंकार एवं क्रोध का त्याग तथा दया एवं क्षमा शक्ति का विकास। गाँधी जी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को इन व्रतों का पालन करना चाहिए। जो व्यक्ति इन व्रतों का पालन करेगा। वही सभी प्राणियों के उदय की बात सोचेगा और वही सच्चे अर्थों में सर्वोदयी होगा। गाँधी जी के विचार से ऐसा उदार हृदय व्यक्ति ही भौतिक जीवन में सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है और आत्म तत्त्व की अनुभूति कर सकता है।

महात्मा गाँधी का शैक्षिक चिन्तन

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी केवल राजनैतिक नेता ही नहीं थे बल्कि एक बहुत बड़े धर्म मर्मज्ञ एवं समाज सुधारक भी थे। इन्होंने अपने समय की पुस्तकीय,

सैद्धान्तिक, संकुचित और परीक्षा प्रधान शिक्षा में सुधार के लिए भी अनेक सुझाव दिए थे। शिक्षा जगत में ये शिक्षाशास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

गाँधी जी शिक्षा को व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे और मनुष्य की किसी भी प्रकार की, भौतिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति के लिए इसे उतना ही आवश्यक मानते थे जितना बच्चे के शारीरिक विकास के लिए माँ का दूध। यही कारण है कि इन्होंने एक निश्चित आयु तक के बच्चों के लिए सामान्य शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य रूप से करने पर बल दिया और उसे निःशुल्क करने की बात कही। इनका स्पष्ट मत था कि यह शिक्षा विदेशी भाषा अंग्रेजी के माध्यम से नहीं दी जा सकती, यह शिक्षा मातृ भाषा के द्वारा ही दी जा सकती है। वैसे भी ये अंग्रेजी को मानसिक दासता बढ़ाने वाली भाषा मानते थे। यह शिक्षा द्वारा मनुष्य को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे, उसे अपनी रोजी-रोटी कमाने योग्य बनाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने हस्तकौशलों की शिक्षा पर विशेष बल दिया। साथ ही ये मनुष्य की आत्मिक उन्नति भी करना चाहते थे, इसलिए इन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्य को एकादश व्रत (सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पृश्यता निवारण, कायिक श्रम, सर्वधर्म समभाव और विनम्रता) पालन की ओर प्रवृत्त करने पर बल दिया। गाँधी जी ने अपने इस शिक्षा दर्शन के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा का स्वरूप निश्चित किया और उसे बेसिक शिक्षा का नाम दिया।

शिक्षा का सम्प्रत्यय

गाँधी जी केवल साक्षरता को शिक्षा नहीं मानते थे। इनके अपने शब्दों में- "साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न प्रारम्भ है। यह केवल एक साध न है जिसके द्वारा पुरुष और स्त्रियों को शिक्षित किया जा सकता है।" गाँध ी जी मनुष्य को शरीर, मन, हृदय और आत्मा का योग मानते थे। इनका स्पष्ट मत था कि शिक्षा को मनुष्य के शरीर, मन, हृदय और आत्मा विकास करना चाहिए। गाँधी जी ने 3R^S की शिक्षा को 3H^S (Hand, Head and Heart) की शिक्षा में बदल दिया और कहा कि शिक्षा का कार्य मनुष्य को केवल पढ़ना, लिखना और गणित सिखाना ही नहीं है बल्कि उसके हाथ, मस्तिष्क और हृदय का विकास करना भी है। इनके अपने शब्दों में- "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा के उच्चतम विकास से है।"

शिक्षा के उद्देश्य

गाँधी जी के विचार से मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है। मुक्ति को इन्होंने बड़े व्यापक अर्थ में लिया है। ये पहले शारीरिक, मानसिक, आर्थिक

और राजनैतिक मुक्ति की बात करते थे तथा फिर आत्मिक मुक्ति की। इनका तर्क था कि जब तक मनुष्य को शरीरिक दुर्बलता, मानसिक तनाव, आर्थिक अभाव और राजनैतिक दासता से मुक्ति नहीं मिलती तब तक वह आध्यात्मिक मुक्ति की प्राप्ति नहीं कर सकता। यही कारण है कि ये शिक्षा द्वारा मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा का उच्चतम विकास करना चाहते थे। शिक्षा और उनके उद्देश्यों के सम्बन्ध में गाँधी जी ने जो विचार व्यक्त किए हैं उनको हम निम्नलिखित क्रम में अभिव्यक्ति कर सकते हैं–

1. **शारीरिक विकास :** मनुष्य जीवन का कोई भी उद्देश्य क्यों न हो उसकी प्राप्ति इस शरीर द्वारा ही होती है अत: इसका विकास अवश्य होना चाहिए। अपने विद्यालयी जीवन में ही गाँधी जी ने शिक्षा के इस उद्देश्य की आवश्यकता अनुभव कर ली थी। आगे चलकर इन्होंने इसे आत्मिक विकास के लिए भी आवश्यक समझा।
2. **मानसिक एवं बौद्धिक विकास :** गाँधी जी के अनुसार शरीर के साथ मन और आत्मा का भी विकास होना चाहिए। इनका कहना था कि जिस प्रकार शारीरिक विकास के लिए माँ के दूध की आवश्यकता होती है उसी प्रकार मानसिक विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती है।
3. **वैयष्टिक एवं सामाजिक विकास :** गाँधी जी व्यक्ति के वैयष्टिक और सामाजिक, दोनों प्रकार के विकास पर बल देते थे। व्यक्ति के वैयक्ति विकास को ये व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी के विकास के लिए आवश्यक मानते थे। इनकी दृष्टि से वैयष्टिक विकास का उच्चतम रूप आत्मिक विकास है और आत्मिक विकास के लिए मनुष्य का सामाजिक विकास आवश्यक है। सामाजिक विकास से गाँधी जी का तात्पर्य मनुष्य को समाज में प्रेम और सहयोग के साथ रहना सिखाने से था। इनका विश्वास था कि मानव मात्र से प्रेम करने और मानव मात्र की सेवा करने से ही आत्मिक विकास सम्भव है।
4. **सांस्कृतिक विकास :** गाँधी जी के अनुसर संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा से होता है और यह मनुष्य के व्यवहार में प्रकट होती है। ये मनुष्य के व्यवहार को नियन्त्रित करने और उसकी आत्मिक उन्नति के लिए उसके सांस्कृतिक विकास को आवश्यक समझते थे तथा इसे शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानते थे।
5. **नैतिक एवं चरित्रिक विकास :** गाँधी जी चरित्र बल के महत्त्व को जानते थे। ये शिक्षा द्वारा इसके विकास पर बल देते थे। एक

उत्तम चरित्र में ये सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह एवं निर्भयता- इन गुणों का होना आवश्यक समझते थे। विद्यालयों को ये चरित्र निर्माण की उद्योगशाला कहा करते थे। चरित्र निर्माण के सम्बन्ध में इन्होंने लिखा है कि सभी ज्ञान का उद्देश्य उत्तम चरित्र का निर्माण होना चाहिए।

6. **व्यावसायिक विकास :** आर्थिक अभाव से मुक्ति पाने के लिए गाँधी जी शिक्षा के व्यावसायिक उद्देश्य पर बल देते थे। ये प्रत्येक मनुष्य को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे तथा इसके लिए उसे किसी हस्तकौशल अथवा उद्योग की शिक्षा देने पर बल देते थे। इन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि बेसिक शिक्षा द्वारा बच्चों को कम से कम अपनी जीविका कमाने योग्य बनाया जाना चाहिए।

7. **आध्यात्मिक विकास :** गाँधी जी के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति, आत्मानुभूति, आत्म ज्ञान अथवा आत्मबोध है। जिन शारीरिक, मानसिक, वैयष्टिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक और व्यावसायिक विकास की हमने ऊपर चर्चा की है, इन सबका अन्तिम उद्देश्य भी मनुष्य को आत्म ज्ञान करने में सहायता करना है। इसके लिए गाँधी जी धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की भी आवश्यकता समझते थे। इस सम्बन्ध में गाँधी जी गीता से प्रभावित थे। ये ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग इन सब पर समान बल देते थे। अहिंसा और सत्याग्रह को ये इनका मूर्त रूप मानते थे।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

गाँधी जी देश की आधारभूत आवश्यकताओं के प्रति सजग थे। इन्होंने इन आवश्यकताओं की पूर्ति और वर्गविहीन समाज के निर्माण के लिए क्रिया प्रध ान पाठ्यचर्या के निर्माण पर बल दिया। अपने द्वारा प्रस्तावित बेसिक शिक्षा (कक्षा 1 से कक्षा 8 तक) के लिए इन्होंने पाठ्यचर्या में हस्तकौशल एवं उद्योग को सर्वप्रमुख स्थान दिया। इनके बाद क्रमशः मातृभाषा, हिन्दुस्तानी, व्यावहारिक गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान, संगती, चित्रकला, स्वास्थ्य विज्ञान तथा आचरण शिक्षा को रखा।

शिक्षण विधि

गाँधी जी मनुष्य को शरीर, मन और आत्मा का योग मानते थे और यह मानते थे कि उसके सर्वांगीण विकास के लिए इन सबका विकास होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में मनुष्य का विकास इन तीनों- शरीर, मन और आत्मा पर निर्भर करता है। यही कारण है कि इन्होंने शिक्षण की प्रक्रिया में अनुष्य के

NOTES

शरीर, मन और आत्मा, तीनों की क्रियाओं को स्थान दिया है। इन्होंने मनोविज्ञान का अध्ययन तो नहीं किया था पर ऐसा लगता है कि ये व्यावहारिक मनोविज्ञान के पण्डित थे। शिक्षण के क्षेत्र में ये सबसे अधिक बल क्रिया पर देते थे। इनके अनुसार करके सीखना तथा स्वयं के अनुभव से सीखना ही उत्तम सीखना होता है। वैसे वेदान्त द्वारा प्रतिपादित श्रवण, मनन और निदिध्यासन की विधि में भी इनका विश्वास था। ज्ञान को पूर्ण इकाई के रूप में प्रस्तुत करना और उसे किसी क्रिया के माध्यम से विकसित करना इनकी शिक्षण विधि के मुख्य आधार थे। इसे सहसम्बन्ध विधि (Correlction Method) कहते हैं। पर गाँधी जी इन सब शिक्षण विधियों को स्वाभाविक रूप से प्रयोग करने पर बल देते थे। यहाँ हम इस पर थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यकत समझते हैं-

1. **अनुकरण विधि :** गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि अनुकरण बच्चों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, वे प्रारम्भ में अनुकरण द्वारा ही सीखते हैं; अतः प्रारम्भ में उन्हें इसी विधि से सिखाना चाहिए। गाँधी जी सदाचरण की शिक्षा के लिए इसे सर्वोत्तम विधि मानते थे। इनके विचार से सदाचरण की नींव शिशु काल में ही रखनी चाहिए, इस समय विकसित संस्कार बड़े स्थायी होते हैं। इन्होंने इस बात पर बहुत बल दिया कि माता-पिता एवं शिक्षक बच्चों के साथ सदैव प्रेमपूर्ण व्यवहार करें जिससे वे प्रेम करना सीखें और उनके सामने सदैव सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपिरग्रह, अभय, अस्पृश्यता, कायिक श्रम, सर्वधर्म समभाव एवं विनम्रतापूर्ण आचरण करें जिसका अनुकरण कर वे सदाचार करें।

2. **क्रिया विधि :** गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि क्रिया भी बच्चों की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, वे सदैव कुछ न कुछ करते रहते हैं; अतः किसी भी विषय अथवा कला-कौशल की शिक्षा क्रिया द्वारा देनी चाहिए। गाँधी जी ने किसी भी ज्ञान अथवा कौशल को, जहाँ तक सम्भव हो, स्वयं करके स्वयं के अनुभव से सीखने पर बल दिया। आज की खेल विधि और प्रयोग विधि अपने में क्रिया विधि याँ ही हैं। गाँधी जी कला, संगीत एवं हस्त कौशलों की शिक्षा के लिए इन विधियों के प्रयोग पर बल देते थे।

3. **मौखिक विधि :** मौखिक विधियों में व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद आदि विधियाँ आती हैं। गाँधी जी इन विधियों का प्रयोग सहयोगी विधियों के रूप में ही करने की आज्ञा देते थे। इन्होंने स्पष्ट किया कि बच्चे बड़े जिज्ञासु होते हैं, आप किसी भी विधि से शिक्षण करें,

वे बीच-बीच में आपसे प्रश्न पूछते ही हैं, उनके प्रश्नों के उत्तर तुरन्त देने चाहिए और उनकी शंकाओं का समाधान करना चाहिए; लेकिन एक सावधानी के साथ कि बच्चे शारीरिक तथा मानसिक, दोनों दृष्टियों से सदैव क्रियाशील रहें, केवल निष्क्रिय श्रोता ही न हों।

4. **सहसम्बन्ध विधि :** गाँधी जी ने इस बात पर बहुत बल दिया कि बच्चों को जो कुछ भी सिखाया जाए वास्तविक परिस्थितियों में वास्तविक रूप से सिखाया जाए। इसके लिए इन्होंने बच्चों के प्राकृतिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण अथवा उनके जीवन से जुड़े किसी हस्त कौशल को शिक्षा का केन्द्र बनाकर समस्त ज्ञान एवं क्रियाओं की शिक्षाा इनके द्वारा देने पर बल दिया। पाठ्यचर्या के सभी विषयों एवं क्रियाओं को एक-दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाने की विधि को सहसम्बन्ध विधि कहते हैं। तब बच्चों के प्राकृतिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण अथवा हस्त कौशल को केन्द्रीय विषय मानकर पाठ्यचर्या के समस्त विषयों एवं क्रियाओं की शिक्षा इनसे सम्बन्ध स्थापित करके देने की विधि को केन्द्रीकरण विधि कहना चाहिए। लेकिन सामान्य प्रयोग में इसे भी **सहसम्बन्ध** अथवा **समवाय विधि** कहते हैं। गाँधी जी के अनुसार इस विधि में बच्चे अपने वास्तविक जीवन की वास्तविक क्रियाओं में भाग लेते हैं और इस प्रकार स्वाभाविक रूप से सीखते हैं, इस प्रकार सीखने में उनकी शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं में समन्वय होता है और वे वास्तविक जीवन के लिए तैयार होते हैं।

5. **श्रवण-मनन-निदिध्यासन :** श्रवण-मनन-निदिध्यासन हमारी प्राचीन शिक्षण विधि है। इस विधि में सर्वप्रथम शिक्षार्थी श्रवण करते थे, गुरु के मौखिक उपदेश सुनते थे, फिर उस पर चिन्तन करते थे तथा अन्त में उसका अभ्यास करते थे। वास्तव में ज्ञान का तब तक कोई अर्थ नहीं जब तक वह हमारे व्यावहारिक जीवन का अंग बनकर हमारे विकास में सहायक नहीं होता। गाँधी जी ने धर्म और दर्शन जैसे विषयों के ज्ञान के लिए इस विधि की उपयोगिता स्वीकार की है, पर कुछ परिवर्तन के साथ। इनके अनुसार जब बच्चे बड़े हो जाएँ तब सत्संग करें, उपदेश सुनें, अध्ययन करें, चिन्तन करें, बुद्धि और विवेक से सत्य की खोज करें और जो सत्य हो उसको व्यावहारिक जीवन में नित्य प्रयोग करें। लेकिन इस विधि का प्रयोग तभी किया जा सकता है जब बच्चे चिन्तन करने योग्य हो जाएँ।

अनुशासन

गाँधी जी अनुशासन के महत्त्व को स्वीकार करते थे। इनकी दृष्टि से सच्चा अनुशासन आत्मप्रेरित होता है। इस अनुशासन की प्राप्ति के लिए ये दमनात्मक विधि का विरोध करते थे। इनकी दृष्टि से सच्चे अनुशासन का विकास प्रभावात्मक विधि द्वारा ही किया जा सकता है। ये बच्चों को शुद्ध प्राकृतिक वातावरण तथा उच्च सामाजिक पर्यावरण में रखने पर बल देते थे। इन्हें विश्वास था कि इस प्रकार के पर्यावरण में बच्चे अनुकरण द्वारा उच्च आदर्शों एवं उच्च आचरण को ग्रहण करेंगे। लेकिन यदि फिर भी बच्चे गलत रास्ते पर चलते हैं तो उन्हें सही रास्ते पर लाने के लिए शिक्षकों को अपने आत्मबल का प्रयोग करना चाहिए। परन्तु यह आत्मबल यों ही नहीं आ जाता। इसके लिए शिक्षकों को स्वयं ब्रह्मचर्य जीवन का पालन करना होता है।

शिक्षक

गाँधी जी की दृष्टि से शिक्षक को समाज का आदर्श व्यक्ति, ज्ञान का पुँज और सत्य आचरण करने वाला होना चाहिए। इनकी दृष्टि से इस व्यवसाय को केवल व्यवसाय के रूप में स्वीकार करने वाला व्यक्ति कभी आदर्श शिक्षक नहीं हो सकता। एक शिक्षक आदर्श शिक्षक तभी हो सकता है जब वह इस व्यवसाय को सेवा कार्य के रूप में स्वीकार करे। उसे बच्चों के पिता, मित्र, सहयोगी और पथ प्रदर्शक, अनेक रूपों में कार्य करना होता है इसलिए उसे सहिष्णु, उदारचेता एवं धैर्यवान होना चाहिए।

शिक्षार्थी

शिक्षार्थी तो शिक्षा की प्रक्रिया का केन्द्र होता है। गाँधी जी के विचार से शिक्षार्थी को अनुशासित रहना चाहिए और उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। गाँधी जी बच्चों को उनके वैयष्टिक विकास की पूरी-पूरी छूट देते थे पर उनके सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास को दृष्टि में रखते हुए। गाँध ी जी प्रारम्भ से ही बच्चों में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक बल का विकास करने और उन्हें आत्मनिर्भर बनाने पर बल देते थे।

विद्यालय

इनके अनुसार विद्यालय ऐसी कर्मशालाएँ होने चाहिए जहाँ शिक्षक सेवा भाव से पूर्ण निष्ठा के साथ शिक्षण कार्य करें और उनके तथा विद्यार्थियों के संयुक्त प्रयास से उनमें इतना उत्पादन कार्य हो कि वे आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हों। ये विद्यालयों को सामुदायिक केन्द्र बनाने पर भी बल देते थे। इनका कहना था कि विद्यालयों में समुदाय की विभिन्न क्रियाएँ होनी चाहिए और

समुदाय के लोगों को यहाँ पढ़ने और कार्य करने की सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए। यहाँ रात्रि पाठशालाएँ लगाकर प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था भी की जाए।

शिक्षा के अन्य पक्ष

- **जनशिक्षा :** गाँधी जी के समय भारत में लगभग 13% लोग साक्षर थे। विद्यालयी शिक्षा के अभाव में उनमें न आत्मविश्वास था और न जागरूकता थी। तब हम प्रगति कैसे करते। गाँधी जी ने अशिक्षा के अभिशाप से बचने के लिए जन शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा और स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया। जन शिक्षा दो रूप में होगी–एक तो बालकों को शिक्षित करने के लिए इन्होंने बेसिक शिक्षा योजना प्रस्तुत की। यह शिक्षा की राष्ट्रीय योजना थी जिसमें 7 वर्ष से 14 वर्ष तक के बालकों की अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा पर बल दिया गया था। इस शिक्षा को गाँध ी जी ने हस्त कौशलों पर केन्द्रित किया, एक तो इसलिए कि हस्त कौशल हमारे जीवन के आधारभूत कार्य हैं और दूसरे इसलिए कि इनके द्वारा विद्यालयों का खर्च निकल सकता है और यह शिक्षा सबके लिए सुलभ की जा सकती है। जन शिक्षा के प्रसार के लिए गाँधी जी का दूसरा कदम था प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था। इनके विचार से अशिक्षित प्रौढ़ों की शिक्षा का उत्तरदायित्व समाज का है। इन्होंने सामाजिक नेताओं, सामाजिक संगठनों और विद्यार्थियों का प्रौढ़ शिक्षा की पाठ्यचर्या में साक्षरता के साथ-साथ सफाई, स्वास्थ्य रक्षा, बौद्धिक विकास, नैतिक विकास, उद्योग, व्यवसाय, समाज कल्याण और संस्कृति से सम्बन्धित कार्यों को रखा था।
- **स्त्री शिक्षा :** गाँधी जी स्त्री को ईश्वर की श्रेष्ठतम रचना मानते थे। गाँध ी जी ने इस बात को स्पष्ट किया कि यद्यपि पुरुष और स्त्री का कार्य क्षेत्र थोड़ा भिन्न होता है लेकिन उनकी सांस्कृतिक आवश्यकताएँ समान होती हैं इसलिए दोनों को अपने-अपने विकास के समान अवसर देने चाहिए। इन्होंने स्पष्ट किया कि मुख्य रूप से स्त्री को पत्नी, माता और समाज के निर्माता के रूप में कार्य करना होता है। पहले दो कार्यों में वह पुरुष से भिन्न अवश्य होती है पर अपने तीसरे उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए उसे अपनी सभ्यता और संस्कृति का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। परन्तु कसी भी स्थिति में ये स्त्रियों को संगीत और नृत्य से दूर रखना चाहते थे। इनका मत था कि ये क्रियाएँ वासना को बढ़ावा देती हैं। ये स्त्री और पुरुष की शिक्षा में केवल इतना ही अन्तर करते थे कि स्त्रियों को गृह कार्य की अतिरिक्त शिक्षा दी जाए।

- **सह शिक्षा :** गाँधी जी ने लड़के-लड़कियों को एक साथ रखकर पढ़ाने के प्रयोग किए थे और उनके आधार पर सह शिक्षा की सम्भावना स्वीकार की थी। गाँधी जी के अनुसार प्राईमरी और उच्च स्तर पर सह शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है परन्तु किशोरावस्था पर यह उचित नहीं होती। अपने इस मत को व्यक्त करते समय ये प्रत्येक समाज को यह छूट देते हैं कि वह अपने पर्यावरण को दृष्टि में रखते हुए सह शिक्षा को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के लिए स्वतन्त्र होना चाहिए। इस प्रकार सह शिक्षा के सम्बन्ध में गाँधी जी सामाजिक पर्यावरण पर निर्भर करते थे।

- **व्यावसायिक शिक्षा :** गाँधी जी पुस्तक प्रधान सैद्धान्तिक शिक्षा के विरोधी थे, उन्होंने क्रिया प्रधान व्सावहारिक शिक्षा पर बल दिया, ऐसी शिक्षा पर जो मनुष्य को कर्म के सभी क्षेत्रों में कुशलता के साथ कार्य करने की क्षमता प्रदान करे। ये मनुष्य की मूल आवश्यकताओं-रोटी, कपड़ा और मकान के प्रति भी सचेत थे, इसलिए उन्होंने स्पष्ट किया कि भारत कृषि और कुटीर उद्योगल धन्धों को देश है इसलिए यहाँ बच्चों को कृषि, बागवानी और हस्त कौशलों की शिक्षा देनी चाहिए। ये चाहते थे कि बेसिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद बच्चे आत्मनिर्भर हों, अपनी रोजी-रोटी स्वयं कमा सकें। और जो बच्चे बड़े उद्योगों और व्यवसायों की शिक्षा लेना चाहें उनके लिए ऐसी शिक्षा की व्यवस्था भी होनी चाहिए। गाँधी जी के अनुसार इस शिक्षा की व्यवस्था औद्योगिक एवं व्यावसायिक केन्द्रों पर होनी चाहिए। इस हेतु गाँधी जी ने वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा का समर्थन किया है।

- **धर्म शिक्षा :** गाँधी जी धार्मिक विचारधारा के व्यक्ति थे; प्रार्थना, भजन और गीता पाठ इनकी दैनिक क्रियाओं के अंग थे। परन्तु विद्यालयों में किसी धर्म विशेष की शिक्षा देने के ये पक्ष में नहीं थे। इन्हें इस बात का भय था कि विभिन्न धर्मों के इस देश भारत में धार्मिक शिक्षा देने से साम्प्रदायिकता और अधिक बढ़ सकती है। अत: इन्होंने सभी धर्मों के सामान्य सिद्धान्तां और नैतिक शिक्षा को ही पाठ्यचर्या में स्थान दिया। ये सत्य को ईश्वर मानते थे। इस सत्य की प्राप्ति के लिए इन्होंने सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य की शिक्षा पर सबसे अधिक बल दिया है। मानव सेवा को ये सबसे बड़ा धर्म मानते थे। इनके विचार से बच्चों को मानव सेवा की ओर प्रवृत्त करना ही वास्तविक धर्म शिक्षा है।

- **राष्ट्रीय शिक्षा :** अंग्रेजों ने हमारे लिए जिस शिक्षा का विधान किया था उसके दो ही उद्देश्य थे-पहला शासन कार्य में सहयोग करने हेतु अंग्रेजी

पढ़े-लिखे बाबू तैयार करना और दूसरा ऐसे व्यक्तियों का निर्माण जो तन से भारतीय हों पर मन से अंग्रेज परस्त हों। इसकी पाठ्यचर्या भी बड़ी दोषयुक्त थी, इसका भारतीय जन जीवन एवं संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं था। पाठ्य विषयों में सबसे अधिक बल अंग्रजी भाषा और साहित्य को दिया जाता था और अंग्रेजी भाषा ही उस समय शिक्षा का माध्यम थी। और यह शिक्षा भी कुछ बड़े नगरों में ही सुलभ थी। इसके अतिरिक्त यह व्यय साध्य भी थी। परिणामतः उच्च वर्ग के लोग ही इसे प्राप्त कर सकते थे। और दुःख की बात तो यह है कि इस शिक्षा को प्राप्त करने के बाद लोग अशिक्षित लोगों का शोषण करते थे।

स्वतन्त्रता की लड़ाई के साथ-साथ गाँधी जी ने तत्कालीन शिक्षा में सुधार के लिए भी कार्य किया। सर्वप्रथम इन्होंने 1921 में अपने साथियों के सामने राष्ट्रीय शिक्षा का प्रस्ताव रखा, परन्तु तब इसे मूर्त रूप नहीं दिया जा सका। 1937 में भारत के सभी प्रान्तों में स्वसरकारों का गठन हुआ और 11 में से 7 प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्री मण्डल बने। अक्टूबर, 1937 में वर्धा में राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें गाँधी जी ने राष्ट्रीय शिक्षा की रूपरेखा प्रस्तुत की जिसे **बेसिक शिक्षा** कहते हैं। यहाँ उसका वर्णन प्रस्तुत है।

बेसिक शिक्षा की रूपरेखा

प्रारम्भ में बेसिक शिक्षा निम्नलिखित रूप में स्वीकार की गई थी–

1. 7 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए।
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।
3. सम्पूर्ण शिक्षा किसी आधारभूत शिल्प अथवा उद्योग पर आधारित हो।
4. शिल्प का चुनाव बच्चों की योग्यता और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के आधार पर किया जाए।
5. बच्चों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग हो और उनसे आर्थिक लाभ किया जाए, स्कूलों का व्यय पूरा किया जाए।
6. शिल्पों की शिक्षा इस प्रकार दी जाए कि उससे बच्चे जीविकोपार्जन कर सकें।
7. शिल्पों की शिक्षा में आर्थिक महत्त्व के साथ-साथ उसके सामाजिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व को स्थान दिया जाए।

NOTES

बेसिक शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त

बेसिक शिक्षा निम्नलिखित आधारभूत सिद्धान्तों पर विकसित की गई थी-

1. **शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क बनाने का सिद्धान्त :** गाँधी जी शिक्षा को मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि किसी भी बच्चे को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखना उसके अधिकार का हनन है, यह कार्य असत्य है और मानवीय कसौटी पर हिंसा है। उन्होंने सर्वप्रथम इस बात पर ही बल दिया कि राज्य को 7 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।
2. **सत्य, अहिंसा और सर्वोदय का सिद्धान्त :** गाँधी जी सत्य और अहिंसा के पुजारी थे। वे समाज में होने वाले किसी भी प्रकार के शोषण को हिंसा मानते थे। और उस समय अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति सामान्य व्यक्तियों का शोषण कर रहे थे। तथी गाँधी जी ने सबके लिए समान शिक्षा के सिद्धान्त को स्वीकार किया, इसमें छोटे-बड़े का भेद नहीं होगा, कोई किसी का शोषण नहीं करेगा, सबको अपने उत्थान के समान अवसर प्राप्त होंगे।
3. **शिक्षा को जीवन से जोड़ने का सिद्धान्त :** उस समय अंग्रेजी शिक्षा का भारतीयों के वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं था। गाँधी जी ने शिक्षा को बच्चों के वास्तविक जीवन, उनके प्राकृतिक तथा सामाजिक पर्यावरण और घरेलू एवं क्षेत्रीय उद्योग धन्धों पर आधारित कर उसे उनके वास्तविक जीवन से जोड़ने पर बल दिया।
4. **शिक्षा का माध्यम मातृभाषा बनाने का सिद्धान्त :** गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि मातृभाषा पर बच्चों का स्वाभाविक अधिकार होता है, उसी के माध्यम से जन शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है। यही कारण हे कि बेसिक शिक्षा में अभिव्यक्ति के आधारभूत माध्यम मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना सिद्धान्त स्वीकार किया गया।
5. **शिक्षा को हस्तकौशलों पर केन्द्रित करने का सिद्धान्त :** शिक्षा को किसी हस्तकौशल अथवा उद्योग पर केन्द्रित करने के पीछे गाँध ी जी के कई विचार थे। पहला यह कि वे बच्चों को कायिक श्रम का महत्त्व बताना चाहते थे। दूसरा यह कि वे बच्चों को स्वालम्बी बनाना चाहते थे, उन्हें जीविकोपार्जन करने योग्य बनाना चाहते थे। तीसरा यह कि वे बसका उदय करना चाहते थे। चौथा यह कि वे

शिक्षा को गाँवों के जीवन से जोड़ना चाहते थे। और पाँचवां एवं अन्तिम यह कि वे शिक्षा को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे।

6. **ज्ञान को एक इकाई के रूप में विकसित करने का सिद्धान्त :** यदि भौतिक दृष्टि से देखें तो शिक्षा का एक ही लक्ष्य होती है-मनुष्य को वास्तविक जीवन के लिए तैयार करना। तब पाठ्यचर्या के सभी विषयों एवं क्रियाओं का सम्बन्ध मनुष्य के वास्तविक जीवन से होना चाहिए। इसी दृष्टि से गाँधी जी ने ज्ञान को पूर्ण इकाई के रूप में विकसित करने पर बल दिया था। उनके इसी विचार ने शिक्षण की सहसम्बन्ध विधि को जन्म दिया। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी ज्ञान पूर्ण इकाई होता है, उसे पूर्ण इकाई के रूप में ही विकसित करना चाहिए।

बेसिक शिक्षा के उद्देश्य

बेसिक शिक्षा का अर्थ है- बच्चों को आधारभूत ज्ञान एवं कौशल प्रदान करना, उन्हें सामान्य जीवन के लिए तैयार करना। इस के लिए बेसिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निश्चित किए गए–

1. **शारीरिक एवं मानसिक विकास :** गाँधी जी इस तथ्य से अवगत थे कि मनुष्य एक मनोशारीरिक प्राणी है इसलिए उन्होंने सर्वप्रथम उसके शारीरिक एवं मानसिक विकास पर बल और तद्नुकूल शिक्षा की पाठ्यचर्या का निर्माण करने पर बल दिया।

2. **सर्वोदय समाज की स्थापना :** मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः शिक्षा द्वारा मनुष्य का सामाजिक विकास होना चाहिए। पर गाँधी जी का सामाजिक विकास से एक विशिष्ट अर्थ था। वे एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें कोई किसी का शोषण नहीं करेगा, सब एक-दूसरे से प्रेम करेंगे, सब एक-दूसरे का सहयोग करेंगे, सब एक-दूसरे की उन्नति में सहायक बनेंगे, सबाक विकास होगा।

3. **सांस्कृतिक विकास :** उस काल में उच्च वर्ग के भारतीय पाश्चात्य संस्कृति के प्रशंसक होते जा रहे थे। तब गाँधी जी ने बड़े बलपूर्वक लिखा था कि यदि किसी स्थिति में पहुँचकर कोई पीढ़ी अपने पूर्वजों के प्रयासों से पूर्णतया अनभिज्ञ हो जाती है या उसे अपनी संस्कृति पर लज्जा आने लगती है तो वह नष्ट हो जाती है। इसलिए उन्होंने अपनी भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए बेसिक शिक्षा का विधान कया था।

4. **चारित्रिक एवं नैतिक विकास :** गाँधी जी चरित्र बल के महत्त्व को जानते थे। उनके साथियों ने भी शिक्षा द्वारा बच्चों के चरित्र निर्माण पर बल दिया। यह बेसिक शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है।

5. **नागरिकता का विकास :** राष्ट्र की दृष्टि से व्यक्ति नागरिक कहा जाता है। किसी भी राष्ट्र के नागरिकों के लिए यह आवश्यक होता है कि वे राष्ट्र के नियमों का पालन करें, राष्ट्र के प्रति वफादार हों, अपने कर्त्तव्यों का पालन करें, अपने अधिकारों की रक्षा करें। किसी भी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का यह प्रमुख उद्देश्य होता है। बेसिक शिक्षा एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना है, इसका यह उद्देश्य होना स्वाभाविक है।

6. **आध्यात्मिक विकास :** गाँधी जी के मतानुसार, "शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा के सर्वांगीण और सर्वोत्कृष्ट विकास से है।", तब स्पष्ट है कि गाँधी जी शिक्षा द्वारा मनुष्य का आध्यात्मिक विकास भी करना चाहते थे। पर इसके लिए वे किसी धर्म की शिक्षा दिए जाने के पक्ष में नहीं थे, सर्वध र्म समभाव द्वारा इसकी प्राप्ति पर बल देते थे।

बेसिक शिक्षा की पाठ्यचर्या

बेसिक शिक्षा के उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्नांकित क्रियाप्रधान पाठ्यचर्या का निर्माण किया गया-

1. **हस्तकौशल एवं उद्योग** (कताई, बुनाई, बागवानी, कृषि, काष्ठ कला, चर्म कार्य, पुस्तक कला, मिट्टी का काम और मछली पालन आदि)।
2. **मातृभाषा**
3. **हिन्दुस्तानी (हिन्दी),** उनके लिए जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है।
4. **व्यावहारिक गणित** (नाप-तौल, अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित)।
5. **सामाजिक विषय** (इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र एवं सामाजिक अध्ययन)।
6. **सामान्य विज्ञान** (प्रकृति निरीक्षण, बागवानी, वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान और गृह विज्ञान)।
7. **संगीत**

8. **चित्रकला**

9. **स्वास्थ्य विज्ञान** (सफाई, व्यायाम एवं खेलकूद)।

10. **आचरण शिक्षा** (नैतिक शिक्षा, सामाजिक और राष्ट्रीय उत्सवों का मनाना और समाज सेवा कार्य)।

विशेष :

1. इसमें सर्वाधिक महत्त्व हस्तकौशल एवं उद्योगों को दिया गया था। प्रारम्भ में इसके लिए 5 घण्टे 30 मिनट में से 3 घण्टे 20 मिनट प्रतिदिन का समय निश्चित किया गया था, बाद में यह समय घटा दिया गया।

2. कक्षा 5 तक सबके लिए समान पाठ्यचर्या। कक्षा 6 में छात्राएँ आध रभूत शिल्प में गृह विज्ञान ले सकती थीं। बाद में कक्षा 7 और 8 में वाणिज्य, संस्कृत और आधुनिक भारतीय शिक्षा की व्यवस्था भी की जाने लगी।

3. बेसिक शिक्षा की पाठ्यचर्या में धार्मिक शिक्षा को स्थान नहीं दिया गया है, केवल सर्वधर्मसम्मत नैतिक शिक्षा को ही स्थान दिया गया है।

बेसिक शिक्षा की शिक्षण विधि

बेसिक शिक्षा में परम्परागत कथन तथा पुस्तक प्रणाली के स्थान पर क्रियाप्रध ान शिक्षण विधि पर बल दिया गया है। इस विधि की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. बेसिक शिक्षा में क्रिया एवं अनुभवों को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। बच्चों को प्रकृति का निरीक्षण करने और सामाजिक कार्यों में भाग लेने के अवसर दिए जाते हैं और इस प्रकार उन्हें स्वयं अनुभव द्वारा सीखने के अवसर दिए जाते हैं।

2. बेसिक शिक्षा में बच्चों को जीवन की वास्तविक क्रियाओं के माध्यम से वास्तविक ज्ञान कराया जाता है।

3. बेसिक शिक्षा में मातृभाषा का ज्ञान भी स्वाभाविक रूप से कराया जाता है। पहले मौखिक भाषा (सुनना-बोलना) सिखाई जाती है उसके बाद लिखित भाषा (पढ़ना और लिखना) सिखाई जाती है।

4. बेसिक शिक्षा में बच्चों को आत्मभिव्यक्ति के स्वतन्त्र अवसर प्रदान किए जाते हैं।

बेसिक शिक्षा में शिक्षक

राष्ट्रीय बेसिक शिक्षा में प्राथमिक स्तर पर पुरुष शिक्षकों के स्थान पर महिला शिक्षिकाओं को वरीयता दी गई। साथ ही इस बात पर बल दिया गया कि प्राथमिक शिक्षा कम से कम मैट्रिक पास हों और शिक्षण प्रशिक्षण प्राप्त हों।

महात्मा गाँधी के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन

किसी वस्तु, क्रिया अथवा विचार का मूल्यांकन किन्हीं पूर्व निश्चित मानदण्डों के आधार पर किया जाता है। शिक्षा मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया है, उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि करने की प्रक्रिया है; उसके आचार, विचार तथा व्यवहार को उचित दिशा प्रदान करने की प्रक्रिया है। तब किसी शैक्षिक चिन्तन अथवा व्यवस्था का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाना चाहिए कि वह उपरोक्त दृष्टि से उचित शिक्षा के निर्माण में कितनी सहायक हुई अथवा हो सकती है। हमने यहाँ ऐसा ही प्रयास किया है।

गाँधी जी इस युग के सबसे महान् व्यक्ति थे। मानव जीवन से सम्बन्धित ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिसमें इन्होंने कार्य न किया हो। देश को राजनैतिक स्वतन्त्रता दिलाने, समाज में अछूतों का उद्धार करने, वर्ग विहीन समाज का निर्माण करने एवं संसार को सत्य, अहिंसा एवं प्रेम का पाठ पढ़ाने के लिए ये तब तक याद किए जाएँगे जब तक यह माव सभ्यता जीवित रहेगी। इन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में भी अनेक प्रयोग किए थे तथा देश के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना तैयार की थी। शिक्षा जगत में ये एक शिक्षाशास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

गाँधी जी किसी नए दर्शन के प्रतिपादक नहीं हैं। इन्होंने प्राचीन भारतीय दर्शन को व्यावहारिक रूप दिया है। लेकिन इसे व्यावहारिक रूप देने में इनकी अपनी मौलिकता है इसलिए आज उसे गाँधी दर्शन के रूप में माना जाता है। गाँधी जी आत्मा और परमात्मा में विश्वास करते थे और मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य इस आत्मा की मुक्ति मानते थे। इस मुक्ति के लिए ये मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास की आवश्यकता समझते थे। यहाँ इनके शैक्षिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

शिक्षा का साम्प्रत्यय

गाँधी जी ने शिक्षा को मनुष्य के सर्वांगीण विकास के साधन के रूप में स्वीकार किया है। इनकी दृष्टि से साक्षरता शिक्षा नहीं है, यह न तो शिक्षा का प्रारम्भ है और न अन्त, यह तो स्त्री-पुरुषों को शिक्षित करने का साधन है। गाँधी जी के शब्दों में, "शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा के उच्चतम विकास से है।"

शिक्षा की इस परिभाषा से उसके उद्देश्य एवं कार्य तो स्पष्ट होते हैं लेकिन उसके स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। वैसे गाँधी जी शिक्षा को एक प्रक्रिया ही मानते थे, उसे मनुष्य की स्वाभाविक क्रिया के रूप में ही स्वीकार करते थे। काश ये शिक्षा के गतिशील तथा विकासशील पक्ष को भी उजागर करते तो यह शिक्षा के सच्चे व्याख्याकार माने जाते।

शिक्षा के उद्देश्य

गाँधी जी मनुष्य को शरीर, मन तथा आत्मा को योग मानते थे और उसके इन तीनों पक्षों के विकास पर बल देते थे। इस दृष्टि से इन्होंने शिक्षा के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक, वैयष्टिक एवं सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक, व्यावसायिक और आध्यात्मिक विकास के उद्देश्यों पर बल दिया है।

यदि गाँधी जी के द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यानपूर्वक देखा-समझा जाए तो स्पष्ट होता है कि ये सभी उद्देश्य सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक उद्देश्य हैं। हाँ, गाँधी जी उस समय शासनतन्त्र एवं नागरिकता की शिक्षा तथा राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति की बात नहीं सोच पाए। सोचते भी कैसे, उस समय हमारे देश में अंग्रेजों का शासन था और हमारे सामने केवल एक ही राष्ट्रीय लक्ष्य था-स्वतन्त्रता की प्राप्ति। गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्यों में यदि इन दो उद्देश्यों को और जोड़ दिया जाए तो उनमें हमारी आज की शिक्षा के सभी उद्देश्य आ जाएँगे।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

अपने द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए गाँधी जी ने जिस पाठ्यचर्या का निर्माण किया वह कुछ इस प्रकार था- हस्त कौशल एवं उद्योग काष्ठ कला, चर्म कार्य, पुस्तक कला, मिट्टी का काम और मछली पालन आदि), मातृ भाषा, हिन्दुस्तानी (आज की दृष्टि से राष्ट्रभाषा हिन्दी, उनके लिए जिनकी मातृ भाषा हिन्दी नहीं है), व्यावहारिक गणित (अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित और नाम-तौल आदि), सामाजिक विषय (इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र और समाज का अध्ययन), सामान्य विज्ञान (बागवनी, वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान, रसायन विज्ञान और भौतिक विज्ञान), संगीत, चित्रकला, स्वास्थ्य विाान (सफाई, व्यायाम और खेल-कूद आदि) और आचरण शिक्षा (नेतिक शिक्षा समाज सेवा एवं अन्य सामाजिक कार्य), और इसमें सबसे अधिक बल हस्त कौशलों पर दिया था और उसके पश्चात् मातृभाषा पर।

यदि गाँधी जी द्वारा प्रस्तावित पाठ्यचर्या को ध्यानपूर्वक देखा-समझा जाए तो इसकी दो विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं-पहली यह कि यह काफी विस्तृत है तथा दूसरी यह कि इसमें मातृभाषा के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है और उसी को शिक्षा का माध्यम बनाया गया है। लकिन इनके द्वारा प्रस्तावित इस पाठ्यचर्या में सबसे अधिक बल हस्त कौशलों पर दिया गया है। ऐसा लगता है कि ये भारत को कुटीर उद्योग धन्धों का ही देश बनाए रखना चाहते थे। उच्च शिक्षा की पाठ्चयर्या के सम्बन्ध में तो इन्होंने कोई स्पष्ट विचार प्रस्तुत ही नहीं किए हैं।

शिक्षण विविधाँ

यूँ गाँधी जी ने मनोविज्ञान का अध्ययन नहीं किया था लेकिन शिक्षण के सम्बन्ध में इनके विचार पूर्णरूपेण मनोवैज्ञानिक हैं। इन्होंने सबसे अधिक बल स्वयं करके स्वयं के अनुभव से सीखने पर दिया है। इसके साथ-साथ दो बातों पर और बल दिया है-पहली यह कि बच्चों को जो कुछ भी सिखाया जाए उन्हें वास्तविक परिस्थितियों में रखकर सिखाया जाए, और दूसरी यह कि सम्पूर्ण ज्ञान एवं क्रियाओं को पूर्ण इकाई के रूप में सिखाया जाए, और इसके लिए इन्होंने सहसम्बन्ध विधि के प्रयोग पर बल दिया है। गाँधी जी ने प्राचीन शिक्षण विधियों-अनुकरण, मौखिक, क्रिया और श्रवण, मनन, निदिध्यासन को भी कुछ इस प्रकार प्रयोग करने पर बल दिया है कि उनमें छाों की क्रियाशीलता निरन्तर बनी रहे।

समस्त ज्ञान को किसी हस्त कौशल अथवा प्राकृतिक या सामाजिक पर्यावरण को केन्द्र मानकर पूर्ण इकाई के रूप में विकसित करने की बात सिद्धान्ततः बहुत अच्छी लगती है परन्तु व्यावहारिक रूप में इस विधि की असफलताएँ ही देखी गई हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लगभग 30 वर्षों तक इस क्षेत्र में बहुत कार्य हुआ, समवाय विधि के अनेक प्रारूप तैयार किए गए, पर हाथ कुछ भी न लगा। शिक्षण के सम्बन्ध में हमें गाँधी जी की इतनी ही बात माननी चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो बच्चों को करके सीखने के अवसर प्रदान किए जाएँ और जहाँ तक सम्भव हो सहसम्बन्ध विधि से पढ़ाया जाए। जबरदस्ती सहसम्बन्ध स्थापित करने के हम पक्ष में नहीं हैं।

अनुशासन

गाँधी जी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुशासन का होना आवश्यक मानते थे पर ये आत्मप्रेरित अनुशासन के पक्षधर थे। विद्यालयों में इस अनुशासन के विकास के लिए इन्होंने प्रभावात्मक विधि का समर्थन किया है। इनके अनुसार शिक्षकों को च्चों के सामने आदर्श आचरण प्रस्तुत करना चाहिए

जिसका अनुकरण कर बच्चे अनुशासन में रहना सीखें। और यदि कोई बच्चा फिर भी अच्छा आचरण न करे तो शिक्षक उसे अपने आत्मबल से सही मार्ग पर लयें।

अनुशासन स्थापित करने की विधियों को एडम महोदय ने तीन वर्गों मे बाँटा है-दमनात्मक, प्रभावात्मक और मुक्त्यात्मक। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनमें सबसे अच्छी विधि प्रभावात्मक विधि ही है। पर इस सन्दर्भ में पहली बात तो यह है कि हम सभी शिक्षकों से आदर्श आचरण की अपेक्षा नहीं रख सकते और दूसरी बात यह है कि आज विद्यालयों में छात्रों की संख्या इतनी अधिक होती है कि आदर्श शिक्षक उन सबके सम्पर्क में नहीं आ पाते। आज की परिस्थितियों में यदि विद्यालयों के नियम बनाकर विद्यार्थियों से उनका पालन कराया जा सके तो इसी को बहुत बड़ी उपलब्धि मानना चाहिए। और इसके लिए दण्ड व्यवस्था आवश्यक है। पर छात्रों को दण्ड बड़ी सावधानी से देना चाहिए, उन्हें यह अनुभव होना चाहिए कि उन्हें जो भी दण्ड दिया जा रहा है उनकी स्वयं की भलाई के लिए दिया जा रहा है, किसी द्वेषवश नहीं। लेकिन किसी भी स्थिति में कठोर दण्ड देना उचित नहीं।

शिक्षक

गाँधी जी के अनुसार शिक्षक को समाज का आदर्श व्यक्ति होना चाहिए, सत्य आचरण करने वाला होना चाहिए और समाज सेवक होना चाहिए। इनकी दृष्टि से किसी भी व्यक्ति को यह कार्य केवल व्यवसाय के रूप में नहीं अपनाना चाहिए अपितु उसके पीछे समाज सेवा का भाव होना चाहिए। ऐसे ही व्यक्ति बच्चों का सही मार्ग दर्शन कर सकते हैं।

जहाँ तक शिक्षकों से आदर्श आचरण की अपेक्षा की बात है, प्राय: सभी समाज यह अपेक्षा करते हैं। पर वर्तमानकाल में शिक्षकों से यह अपेक्षा करना कि वे उच्च वेतन की मांग न करें और इस कार्य को सेवा भाव से करें, केवल सैद्धान्तिक बात है। यदि शिक्षक अपना कार्य ईमानदारी से करें तो वही पर्याप्त होगा।

शिक्षार्थी

गाँधी जी छज्ञत्रों से यह अपेक्षा करते थे कि वे ब्रह्मचर्य का पालन करें, विद्यालयों के नियमों का पालन करें, समाज सेवा कार्यों में भाग लें और आत्मनिर्भर बने।

वर्तमान युग में बच्चों से ब्रह्मचर्य के पालन की अपेक्षा तो नहीं की जाती परन्तु उनसे विद्यालयों के नियमों के पालन करने की अपेक्षा सभी करते हैं।

और छोटे बच्चों से समाज सेवा कार्य की अपेक्षा करना और उनसे आत्मनिर्भर होने की अपेक्षा करना स्पप्नमात्र है।

विद्यालय

विद्यालयों के विषय में गाँधी जी का एक नया दृष्टिकोण था। प्रथमतः तो ये विद्यालयों को ऐसी कार्यशालाओं के रूप में विकसित करना चाहते थे जहाँ शिक्षक और शिक्षार्थी सभी श्रम करें, जहाद्द हस्त कौशलों द्वारा वस्तुओं का निर्माण हो और विद्यालयों में निर्मित वस्तुओं से विद्यालयों का व्यय निकले वे आत्मनिर्भर हों और विद्यालयों में निर्मित वस्तुओं से विद्यालयों का व्यय निकले, वे आत्मनिर्भर हों। दूसरे ये इन्हें सामुदायिक केन्द्रों के रूप में विकसित करना चाहते थे। ये चाहते थे कि विद्यालय तथा समुदाय के बीच सहयोग हो और ये दोनों एक-दूसरे के क्रिया-कलापों में भाग लें। विद्यालयों से ये यह भी अपेक्षा करते थे कि वे रात के समय प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था करें।

जहाँ तक विद्यालयों को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने की बात है, गाँध ी जी का यह विचार कोरी कल्पना साबित हुई। बेसिक स्कूलों में कच्चे माल की किस तरह बरबादी हुई, इस सबसे हम परिचित हैं। फिर छोटे-छोटे हाथों से विक्रय योग्य उत्पादन की आशा करना भी युक्ति संगत नहीं। हाँ, विद्यालयों को सामुदायिक केन्द्रों के रूप में विकसित करने, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, इस पर सब एक मत हैं। पर आज तो हमारे देश के विद्यालयों के शिक्षक अपने विद्यालयी उत्तरदायित्वों को ही पूरा नहीं करते, उनसे सामुदायिक उत्तरदायित्व की अपेक्षा करना व्यर्थ है। देश को आज राष्ट्रीय चरित्र की आवश्यकता है।

शिक्षा के अन्य पक्ष

जन शिक्षा : जन शिक्षा को गाँधी जी ने बड़े व्यापक रूप में लिया है, इसमें 7 से 14 वर्ष तक के बच्चों की सामान्य, अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा दोनों को सम्मिलित किया है। प्रौढ़ शिक्षा को भी इन्होंने थोड़े व्यापक रूप में लिया है, इसमें साक्षरता के साथ-साथ काम-धन्धों की शिक्षा को भी सम्मिलित किया है। गाँधी जी के प्रयास से इस देश में जन शिक्षा का प्रसार प्रारम्भ हुआ। यह बात दूसरी है कि आज ज्ञान का क्षेत्र बहुत बढ़ जाने से अब सामान्य शिक्षा का स्तर कक्षा 8 से बढ़ाकर कक्षा 10 तक करना आवश्यक हो गया है।

स्त्री शिक्षा : गाँधी जी ने स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर भी बहुत बल दिया था। इन्होंने स्त्रियों को पुरुषों की भांति किसी भी प्रकार की शिक्षा देने का नारा

बुलन्द किया। बस ये उन्हें गृह विज्ञान की अतिरिक्त शिक्षा देने की बात और कहते थे। पिछले 60 वर्षों में इस क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है और आज स्थिति यह है कि स्त्रियाँ स्वयं अपने अधिकारों की माँग कर रही हैं। हमारी अपनी दृष्टि से अब देश में स्त्री–पुरुष सभी को सामान्य शिक्षा अनिवार्य रूप में और विशिष्ट शिक्षा बिना किसी भेद भाव के योग्यता के आधार पर सुलभ करानी चाहिए।

व्यावसायिक शिक्षा : व्यावसायिक शिक्षा के सन्दर्भ में गाँधी जी के विचार समीचीन नीं कहे जा सकते। पहली बात तो यह है कि 7 से 14 वर्ष तक की आयु वर्ग के बच्चों को हस्त शिल्पों, कृषि या अन्य कुटीर उद्योग धन्ध ों में दक्ष नहीं किया जा सकता और दूसरी बात यह है कि आज ज्ञान–विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में इतना अधिक विकास हुआ है कि बिना उसके ज्ञान के हम इन कुटीर उद्योगों को भी अधिक सफलता के साथ नहीं चला सकते। तभी शिक्षा की नई संरचना 10+2+3 में सामान्य व्यवसायों की शिक्षा +2 पर और विशेष व्यवसायों की शिक्षा +3 पर दिए जाने का विधान किया गया है।

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा : यूँ गाँधी जी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे परन्तु विद्यालयों में किसी धर्म विशेष की शिक्षा दिए ाजने के पक्ष में नहीं थे। इनको भय था कि इससे अन्य धर्मावलम्बी नाराज होंगे। धर्म शिक्षा के नाम पर इन्होंने मानव मात्र की सेवा की शिक्षा का समर्थन किया है। इस सन्दर्भ में हम गाँधी जी से सहमत नहीं हैं। गाँधी जी द्वारा प्रस्तावित सर्वधर्म समभाव के विकास के लिए भी हम विद्यालयों में विभिन्न धर्मो के मूल सिद्धान्तों की शिक्षा की आवश्यकता समझते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा : महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में जिस बेसिक शिक्षा का निर्माण किया था, वह उस युग के अनुकूल अवश्य थी परन्तु वर्तमान में वह अर्थहीन हो चुकी है। यहाँ उसके गुण–दोषों का विवेचन प्रस्तुत है।

बेसिक शिक्षा के गुण

सच बात तो यह है कि सिद्धान्त रूप में तो यह योजना बड़ी उपयोगी नजर आती है परन्तु प्रयोग रूप में एकदम अनुपयुक्त रही है। इसके सिद्धान्तों को ही हम इसके गुण मान सकते हैं।

1. **आत्मनिर्भर योजना :** उस समय सरका के पास अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए पर्याप्त धन नहीं था। बेसिक शिक्षा को हस्तकौशलों पर आधारित कर उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विक्रय से स्कूलों का व्यय निकालने का विचार बड़ा उपयोगी लगता था। ऐसा नहीं हो पाया, यह दूसरी बात है।

2. **मनुष्य के सर्वांगीण विकास पर बल :** बेसिक शिक्षा में मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक, व्यावसायिक और आध्यात्मिक विकास पर बल दिया गया है। यह बात दूसरी है कि हम इसके द्वारा इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सके।

3. **वास्तविक जीवन की तैयारी :** हमारा देश ग्रामों का देश है। बेसिक शिक्षा में उच्चों को ग्रामीण उद्योग-कृषि एवं पशुपालन आदि और ग्रामीण हस्तकौशलों-कताई एवं बुनाई आदि की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाने की व्यवस्था की गई थी और यह आशा की गई थी कि इसे प्राप्त करने के बाद वे अपनी जीविका कमा सकेंगे। सिद्धान्ततः यह बात बहुत अच्छी है। यह बात दूसरी है कि हम बेसिक शिक्षा द्वारा ऐसा नहीं कर सके।

4. **वर्ग भेद की समाप्ति :** हमारे देश में जाति, धर्म और श्रम आदि अनेक आधारों पर अनेक प्रकार के वर्ग हैं। बेसिक शिक्षा में सबके लिए समान शिक्षा और सबके लिए समान सेवा कार्य की व्यवस्था की गई है। इस सबसे वर्ग भेद यदि समाप्त नहीं तो कम तो किया ही जा सकता है।

5. **शारीरिक एवं मानसिक श्रम के अन्तर की समाप्ति :** उस समय अंग्रेज हमें थोड़ी सी अंग्रेजी सिखा कर बाबू बना देते थे, हमारा ओहदा ऊँचा कर देते थे। इसका दृष्परिणाम यह हुआ कि मानसिक श्रम करने वाले शारीरिक श्रम करने वालों को हेय समझने लगे। बेसिक शिक्षा में सभी बच्चों के लिए हस्तकौशल अथवा उद्योग की शिक्षा और समाज सेवा कार्य अनिवार्य किए गए। जब सब श्रम करेंगे तो श्रम करने वालों की हेय कौन समझेगा। इससे वर्ग भेद की समाप्ति होनी चाहिए थी। यह बात दूसरी है कि ऐसा कुछ नहीं हो पाया।

6. **क्रियाप्रधान शिक्षण विधि :** बेसिक शिक्षा में वास्तविक परिस्थितियों में वास्तविक क्रियाओं में भाग लेते हुए स्वयं के अनुभव से सीखने के अवसर दिए जाते हैं। यह सीखने की मनोवैज्ञानिक विधि है। इस प्रकार सीखा हुआ ज्ञान एवं कौशल स्थायी होता है।

7. **शिक्षा का माध्यम मातृभाषा :** यूँ उस समय तक अंग्रेजों ने भी प्राथमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषाओं) को ही बना दिया था, पर इसके साथ अंग्रेजी माध्यम के प्राथमिक स्कूल भी

चला रहे थे। गाँधी जी ने केवल मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने पर बल दिया। तभी तो समानता आ सकती है।

8. **विद्यालय और समाज में निकट का सम्बन्ध :** अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में विद्यालयों का भारतीय जन-जीवन से निकट का सम्बन्ध नहीं था। बेसिक शिक्षा में विद्यालयों और समाज के इस अन्तर को समाप्त किया गया। विद्यालयों में समाज की भाषा, समाज के हस्तकौशल, समाज के उद्योग, समाज के उत्सव और समाज की अन्य क्रियाओं को स्थान दिया गया। इससे विद्यालय और समाज में निकट का सम्बन्ध स्थापित हुआ।

बेसिक शिक्षा के दोष

सैद्धान्तिक दृष्टि से बेसिक शिक्षा के चाहे जितने गुण गिनाए जाएँ और चाहे जितनी उसकी प्रशंसा की जाए, पर व्यावहारिक रूप में यह एकदम असफल रही है। इसमें निम्नलिखित दोष हैं-

1. **अपूर्ण योजना :** यूँ तो इसे राष्ट्रीय शिक्षा योजना कहा जाता है परन्तु वास्तव में यह केवल अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की योजना ही है। फिर इसमें केवल ग्रामीण बच्चों की आवश्यकतओं का ध्यान रखा गया है, नगरीय बच्चों की आवश्यकताओं का नहीं।

2. **उच्च शिक्षा से सम्बन्ध का अभाव :** बेसिक शिक्षा 7 से 14 आयु वर्ग के बच्चों की शिक्षा है। इसकी पाठ्यचर्या केवल इसी आयु वर्ग के बच्चों की और वह भी ग्रमीण क्षेत्रों के बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाई गई है। इसका निर्माण करते समय इसका माध्यमिक और उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या से सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया, उसे उच्च शिक्षा का सही आधार नहीं बनाया गया। ऐसा लगता है कि इसके बाद बच्चे पढ़ेंगे ही नहीं। शिक्षा तो क्रमबद्ध रूप से चलनी चाहिए।

3. **नगरीय क्षेत्रों के लिए अनुपयुक्त :** यह माना कि भारत ग्रामों का देश है, परन्तु प्राथमिक शिक्षा की पाठ्यचर्या को केवल ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति तक सीमित करना उपयुक्त नहीं है। नगरीय बच्चों के जीवन से इसका कोई सम्बन्ध न होना, इसका एक बड़ा दोष है। ऐसा लगता है कि बेसिक केवल भारत की निर्धन जनता के लिए ही बनाई गई थी।

4. **हस्तकौशलों पर अत्यधिक बल :** बेसिक शिक्षा में सबसे अधिक बल हस्तकौशलों की शिक्षा पर दिया गया है। इसे पाठ्यचर्या का

केन्द्रीय विषय बनाया गया है और इसी के माध्यम से अन्य बस विषयों एवं क्रियाओं की शिक्षा देने पर बल दिया गया है। जाकिर हुसैन समिति ने तो इसके लिए स्कूली समय के 5 घण्टे 30 मिनट में से 3 घण्टे 20 मिनट निर्धारित किए थे। ऐसा लगता है कि बेसिक शिक्षा के निर्माता भारत को हस्तकौशलों का देश बनाना चाहते थे। फिर स्कूली शिक्षा में किसी विषय अथवा क्रिया को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देने का अर्थ है दूसरे विषयों एवं क्रियाओं को कम महत्त्व देना। उस स्थिति में बच्चों का सर्वांगीण विकास कैसे किया जा सकता है।

5. **कच्चे माल की बरबादी :** छोटे-छोटे बच्चों से उत्पादन की आशा करना कोरी कल्पना का विषय है। जो कुछ भी बच्चे स्कूलों में बनाते हैं, वह उपयोग करने योग्य नहीं होता, उसे बाजार में नहीं बेचा जा सकता। इस योजना में कच्चे माल की बदबादी के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगा।

6. **समय और शक्ति का अपव्यय :** प्राथमिक स्तर पर बच्चों को हस्तकौशलों में दक्षता प्रदान करना सम्भव नहीं। बेसिक शिक्षा में न तो बच्चों को किसी हस्तकौशल में दक्ष किया जा सका और न उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं से स्कूलों का व्यय निकाला जा सका। इसमें कच्चे माल की बरबादी के साथ-साथ बच्चों के समय और शक्ति का अपव्यय भी होता है।

7. **शृंखलाबद्ध शिक्षण असम्भव :** यदि पाठ्यचर्या के कुछ विषयों एवं क्रियाओं को समन्वित रूप से विकसित करना सम्भव भी होता है तो दूसरी समस्या उपस्थित होती है, किसी विषय अथवा क्रिया को उसके तार्किक क्रम में प्रस्तुत करने की। समवाय विधि द्वारा क्रमबद्ध शिक्षण किया ही नहीं जा सकता।

8. **धार्मिक शिक्षा का अभाव :** वेसिक शिक्षा को भारत की आधारभूत शिक्षा कहा जाता है और आश्चर्य की बात यह है कि इसमें भारतीय समाज के आधारभूत धर्म की शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया गया है, केवल नैतिक शिक्षा को स्थान दिया गया है। गाँधी जी को भय था कि धार्मिक शिक्षा के नाम पर कहीं द्वेष न फैल जाए। क्या कोई धर्म द्वेष की शिक्षा देता है।

गाँधी जी का प्रभाव

गाँधी जी सर्वोदय सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। ये मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं करते थे, ये वर्ग प्रधान समाज के स्थान पर वर्गविहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे और इस कार्य में ये काफी सफल हुए। इन्होंने सर्वप्रथम दक्षिणी अफ्रीका में गोरे-काले के वर्गभेद को समाप्त करने के लिए आन्दोलन किया और उसके बाद भारत में जन्म आधारित ऊँच-नीच की वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने के लिए आन्दोलन किया। इनके प्रयास से भारत में जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था के स्थान पर वर्गविहीन समाज की स्थापना शुरू हुई, यह बात दूसरी है कि बोट की राजनीति करने वालों ने वर्ण भेद के स्थान पर वर्ग भेद का पौधा रोप दिया है जो राष्ट्रीय एकता में बड़ा बाधक है। गाँध ी जी ने धर्म संकीर्णता के स्थान पर सर्वधर्म समभाव के लिए प्रयत्न किया, इसका भी दूरगामी प्रभाव पड़ा। यदि वोट की राजनीति करने वाले धार्मिक संकीर्णता को पानी न देते तो आज देश का नक्शा ही कुछ और होता।

शिक्षा के क्षेत्र में भी गाँधी जी का प्रभाव पड़ा। अपने देश भारत में सामान्य, अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की ओर कदम बढ़े। साथ ही प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था में भी तेजी आई। जहाँ तक गाँधी जी द्वारा प्रस्तावित बेसिक शिक्षा की बात है, स्वतन्त्र होने से पहले ही यह कई प्रान्तों में लागू कर दी गई थी, स्वतन्त्र होने के बाद तो यह सभी प्रान्तों में लागू कर दी गई। देखते-देखते समस्त प्राथमिक विद्यालयों पर बेसिक प्राईमरी विद्यालय के बोर्ड लग गए। पाठ्यचर्या में बेसिक क्राफ्टों पर बल और इस सबके लिए सरकार से सामग्री और धन। समवाय विधि से कैसे पढ़ाया जाए, इस पर आए दिन वर्कशापों का आयोजन। पर हाथ कुछ भी न लगा। न इससे बच्चों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास हुआ औश्र न नैतिक एवं चारित्रिक विकास। इसके द्वारा बच्चों को अपनी रोजी-रोटी कमाने योग्य भी नहीं बनाया जा सका। वर्ग भेद मिटाने की बात तो दूर रही, इससे वर्ग भेद और बढ़ा। यह निम्न कोटि की शिक्षा मानी गई और इसे प्राप्त करने वाले भी निम्न कोटि के माने गए। और सच बात भी यही है कि यह निम्न कोटि की ही साबित हुई। इसके द्वारा गाँधी जी का एक भी स्वप्न साकार नहीं किया जा सका। हाँ, गाँधी जी द्वारा स्थापित गुजरात पीठ (अहमदाबाद) और हिन्दुस्तानी तालीम शिक्षा केन्द्र (सेवाग्राम) आज भी इनके आदर्शों के मूर्त रूप हैं और वहाँ एक ओर ग्राम सुधार के कार्यक्रम चलते हैं और दूसरी ओर आत्मबोध के कार्यक्रम चलते हैं। पर इस प्रकार की शिक्षा से राष्ट्र का आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। आज आवश्यकता है जीवन के किसी भी क्षेत्र में दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने की।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों के सन्दर्भ में गाँध ी जी के विचार की विवेचना कीजिए।
2. 'गाँधी जी का शैक्षिक चिन्तन अपनी योजना में प्रकृतिवादी, उद्देश्यों में आदर्शवादी और अपनी कार्य पद्धति में प्रयोजनवादी है' आप इस कथन से कहां तक सहमत हैं? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क प्रस्तुत कीजिए।
3. गाँधी जी के शैक्षिक विचारों और प्रयोगों का मूल्यांकन कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. गाँधी जी के मनुष्य के विषय में क्या विचार थे?
2. गाँधी के अनुसार मनुष्य का विकास कैसे होता है?
3. सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह से गाँधी जी का क्या तात्पर्य था?
4. गाँधी जी की तीन एच (3H^{s}) की शिक्षा से आप क्या समझते हैं?
5. गाँधी जी द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
6. धर्म शिक्षा के सम्बन्ध में गाँधी जी के क्या विचार थे?

11 रवीन्द्रनाथ टैगोर का दार्शनिक चिन्तन

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- टैगोर का दार्शनिक चिन्तन
- टैगोर का शैक्षिक चिन्तन
- शिक्षा के उद्देश्य
- शिक्षा की पाठ्यचर्या
- शिक्षण विधियाँ
- टैगोर के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- टैगोर का दार्शनिक चिन्तन
- टैगोर का शैक्षिक चिन्तन
- शिक्षा के उद्देश्य
- शिक्षा की पाठ्यचर्या
- शिक्षण विधियाँ
- टैगोर के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन

NOTES

टैगोर का दार्शनिक चिन्तन

श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म कोलकाता (कलकत्ता) के एक समृद्ध एवं प्रतिष्ठित परिवार में 6 मई, 1861 को हुआ था। इनके पिता श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर बड़े विद्वान, कलाप्रेमी, धर्मप्रिय, समाज सेवक, राष्ट्रभक्त प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। रहीसी, पर सादा जीवन और उच्च विचार इनके परिवार की विशेषता थी। श्री रवीन्द्रनाथ पर इस सबका अमिट प्रभाव पड़ा।

गुरुदेव ने अपने बचपन में ही वेद और उपनिषद् पढ़ डाले थे। उपनिषदों के तत्त्व ज्ञान का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। आगे चलकर यही इनके स्वयं के जीवन का आधार बना। वैसे गुरुदेव ने न तो किसी नए दर्शन का प्रतिपादन किया है और न ही किसी दर्शन की व्याख्या में अपनी शक्ति लगाई है; लेकिन एक वक्ता, लेखक और कवि के रूप में इन्होंने जिन विचारों की अभिव्यक्ति की है उनसे इनके दार्शनिक चिन्तन की स्पष्ट तस्वीर दृष्टिगोचर होती है।

गुरुदेव उपनिषदीय दर्शन के पोषक थे। उपनिषदीय दर्शन को भी इन्होंने मानवीय दृष्टिकोण से देखा-समझा है। ये संसार के सही प्राणियों में उस परमात्मा की व्याप्ति मानते थे और इस आधार पर संसार के सभी प्राणियों में एकात्म भाव उत्पन्न करने पर बल देते थे। तभी कुछ विद्वान गुरुदेव के दार्शनिक चिन्तन को **'विश्वबोध दर्शन'** कहते हैं।

कुछ विद्वान गुरुदेव के दार्शनिक चिन्तन को पाश्चात्य दर्शन के परिपेक्ष्य में देखने-समझने की भूल करते है। गुरुदेव आत्मा-परमात्मा में विश्वास करते थे इसलिए कुछ विद्वान इन्हें आदर्शवादी मानते हैं। गुरुदेव इस भौतिक जगत को वास्तविक मानते थे, यथार्थ मानते थे, इसलिए कुछ विद्वान इन्हें यथार्थवादी मानते हैं। गुरुदेव प्रकृति के प्रेमी थे, ये उसे सरल, शुद्ध एवं आनन्ददायी मानते थे इसलिए कुछ विद्वान इन्हें प्रकृतिवादी मानते हैं। गुरुदेव मनुष्य जीवन के व्यावहारिक पक्ष पर भी बल देते थे इसलिए कुछ विद्वान इन्हें प्रयोजनवादी मानते हैं। इस सन्दर्भ में हमारा निवेदन यह है कि गुरुदेव पर उपनिषदों का प्रभाव अधिक था और इन्होंने उपनिषदीय दर्शन को ही मानवीय दृष्टिकोण से देखने-समझने का प्रयास किया है; इनका दार्शनिक चिन्तन पूर्णरूपेण भारतीय है, उसे चाहो तो विश्वबोध दर्शन कह सकते हो। लेकिन पाश्चात्य दर्शनों—आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रकृतिवाद और प्रयोजनवाद से इनके दार्शनिक चिन्तन का कोई सम्बन्ध नहीं है; किसी एक-दो समान तत्त्वों के आधार पर इन्हें आदर्शवादी, यथार्थवादी, प्रकृतिवादी अथवा प्रयोजनवादी कहना भ्रामक है। यहाँ गुरुदेव के दार्शनिक चिन्तन की तत्त्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा और मूल्य एवं आचार मीमांसा की व्याख्या की गयी है।

टैगोर के विश्वबोध दर्शन की तत्त्व मीमांसा

गुरुदेव इस सृष्टि को ईश्वर के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मानते थे। इनके अनुसार ईश्वर द्वारा निर्मित यह जगत उतना ही सत्य है जितना ईश्वर अपने आप में सत्य है। ईश्वर को इन्होंने निराकार एवं साकार, दोनों रूपों में स्वीकार किया है। इनके अनुसार बीज रूप में वह निराकार है और सृष्टि (प्रकृति) रूप में साकार है। गुरुदेव प्रकृति के कण-कण में ईश्वर के दर्शन करते थे।

आत्मा को गुरुदेव ने उपनिषदों के आधार पर तीन रूपों में स्वीकार किया है। अपने प्रथम रूप में यह मनुष्यों को आत्म रक्षा में प्रवृत्त करती है, दूसरे रूप में ज्ञान-विज्ञान की खोज और अनन्त ज्ञान की प्राप्ति की ओर प्रवृत्त करती है और तीसरे रूप में अपने अनन्त रूप को समझने की ओर प्रवृत्त करती है। गुरुदेव के अनुसार ये तीनों कार्य आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। इनमें आत्मानुभूति को गुरुदेव मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मानते थे।

मनुष्य को गुरुदेव आत्माधारी प्राणी मानते थे तथा यह मानते थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति है। इन्होंने मनुष्य जीवन को दो पक्षों में विभाजित किया है, एक भौतिक एवं दूसरा आध्यात्मिक। मनुष्य के भौतिक पक्ष में इन्होंने उसके स्वयं के शरीर, उसके प्राकृतिक पर्यावरण एवं पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक जीवन को रखा है तथा आध्यात्मिक पक्ष में उसकी आत्मा को रखा है।

मनुष्य के विकास के सम्बन्ध में गुरुदेव का स्पष्ट कथन था कि उसके भौतिक विकास के लिए भौतिक साधनों की आवश्यकता होती है और उसके आध्यात्मिक विकास के लिए समाज सेवा एवं प्रेम योग साधना आवश्यक होते हैं। इन्होंने स्पष्ट किया कि मानवमात्र के प्रति प्रेम ही हमें एकात्म भाव की अनुभूति करा सकता है।

टैगोर के विश्वबोध दर्शन की ज्ञान एवं तर्क मीमांसा

हमारे भारतीय दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों पक्षों को महत्व देना है। इस सन्दर्भ में ईशोपनिषद् का निम्नलिखित सूक्त उद्धरणीय है-

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रतः।।

अर्थात् जो लोग केवल अविद्या अर्थात् संसार की ही उपासना करते हैं वे अन्ध तमस् में प्रवेश करते हैं और उससे अधिक अन्धकार में वे प्रवेश करते हैं जो केवल मात्र ब्रह्म विद्या में ही निरत हैं।

गुरुदेव इसी मत के पोषक थे। ये भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों प्रकार के ज्ञान को समान महत्त्व देते थे। ये भौतिक जगत के ज्ञान को उपयोगी ज्ञान तथा आध्यात्मिक जगत के ज्ञान को विशुद्ध ज्ञान कहते थे। इनकी दृष्टि से संसार को सभी जड़ वस्तुओं और जीवों में एकात्म भाव ही अन्तिम सत्य है और इसकी अनुभूति ही मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

ज्ञान प्राप्ति के साधनों के सम्बन्ध में गुरुदेव ने स्पष्ट किया कि भौतिक वस्तुओं तथा क्रियाओं का ज्ञान भौतिक माध्यमों (इन्द्रियों) द्वारा प्राप्त होता है और आध्यात्मिक तत्त्वों (आत्मा-परमात्मा) का ज्ञान सूक्ष्म मध्यमों (योग) द्वारा प्राप्त होता है। सूक्ष्म माध्यमों में इन्होंने प्रेम योग के महत्त्व को स्वीकार किया है। इन्होंने स्पष्ट किया कि आध्यात्मिक तत्त्व के ज्ञान के लिए सबसे सरल मार्ग प्रेम मार्ग है, प्रेम ही हमें मानव मात्र के प्रति संवेदनशील बनाता है, यही हमें एकात्म भाव की अनुभूति कराता है और यही हमें आत्मानुभूति तथा ईश्वर की प्राप्ति कराता है।

टैगोर के विश्वबोध दर्शन की मूल्य एवं आचार मीमांसा

गुरुदेव मनुष्य को भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का योग मानते थे और उसके दोनों प्रकार के विकास पर समान बल देते थे। इसके लिए ये मनुष्य को पहले अच्छा मनुष्य बनाने पर बल देते थे; ऐसा मनुष्य जो शरीर से स्वस्थ हो, मन से निर्मल और संवेदनशील हो, सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति उसके हृदय में प्रेम हो और जो प्रकृति के कण-कण से प्रेम करता हो। ये प्रेम को सार्वभौमिक मूल्य मानते थे और इसे मनुष्य के आचार-विचार का आधार बनाना चाहते थे। इनका तर्क था कि प्रेम ही वह भावना है जो मनुष्य को मनुष्य के प्रति संवेदनशील बनाती है और मनुष्य को मनुष्य की सेवा की ओर प्रवृत्त करती है। इनका विश्वास था कि प्रेम से भौतिक जीवन भी सुखमय बनाया जा सकता है तथा आध्यात्मिक पूर्णता भी प्राप्त की जा सकती है। यही कारण है कि गुरुदेव के सभी कार्यक्रम-ग्राम सेवा, समाज सेवा, राष्ट्र सेवा और अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध, प्रेम पर ही आधारित रहते थे। इनका तर्क था कि प्रेम के अभाव में मानव सेवा की बात तो दूर मानव सेवा का भाव भी जागृत नहीं हो सकता। मानव सेवा को गुरुदेव ईश्वर सेवा मानते थे।

टैगोर का शैक्षिक चिन्तन

गुरुदेव बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। इनकी सबसे अधिक ख्याति साहित्य के क्षेत्र में है। संस्कृत साहित्य में जो स्थान महाकवि कालिदास का है और हिन्दी साहित्य में कविकुल चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास का है; वही स्थान बंगला साहित्य में कवीन्द्र रवीन्द्र बाबू का हैं लेकिन अन्य क्षेत्रों में भी गुरुदेव

का बड़ा योगदान रहा है। देश में समाज सुधार, राष्ट्रीय जागरण एवं अन्तर्राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए इन्होंने जो कार्य किए हैं, उनके लिए हम इनके चिर ऋणी रहेंगे। गुरुदेव ने अपने समय की शिक्षा में सुधार के लिए भी बहुत कार्य किया था। शिक्षा जगत में ये शिक्षाशास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित है।

शिक्षा के क्षेत्र में गुरुदेव के अपने अनुभव थे। इन्हें अपने बचपन में अपनी घरेलू शिक्षा के बन्धन एवं अपने समय की स्कूली शिक्षा की बुराइयों को सहन करना पड़ा था। आगे चलकर ये अनुभव ही इनके शिक्षा दर्शन के आधार बने। 1892 में जब ये केवल 31 वर्ष के थे, इन्होंने 'शिक्षार हेरफेर' की रचना की और इसके द्वारा लोगों का ध्यान तत्कालीन शिक्षा के दोषों की ओर आकर्षित किया। साथ ही इन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में सुधार लेकिन अपने सुझाव भी दिए। 19वीं शताब्दी के अन्त तक गुरुदेव की अनेक साहित्यिक रचनाएँ और शिक्षा सम्बन्धी लेख प्रकाशित हो चुके थे। 1901 में इन्होंने अपने शैक्षिक विचारों को मूर्त रूप देने के उद्देश्य से बोलपुर के निकट स्थापित 'शान्ति निकेतन' आश्रम में शान्ति निकेतन ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना की। इसके बाद इनके सामने दो ही कार्य मुख्य थे- एक साहित्य साधना तथा दूसरा शान्ति निकेतन का विकास। 1901 से 1941 तक गुरुदेव ने शिक्षा के विषय में भी खूब सोचा और खूब लिखा। शिक्षा से सम्बन्धित इनकी मुख्य रचनाओं में शिक्षार हेरफेर-1892 के बाद, हिन्दू विश्वविद्यालय-1911, धर्म शिक्षा-1912, शिक्षा विधि-1912, स्त्री शिक्षा-1915, माई स्कूल-1915, विश्व भारती-1919, श्री निकेतन-1927, आइडियल्स ऑफ एजूकेशन-1929, शिक्षा सार कथा-1930, माई एजूकेशनल मिशन-1931, टू दि स्टूडेण्ट्स-1935, शिक्षा और संस्कृति-1935 और गुरुकुल कांगड़ी-1941 प्रमुख हैं।

गुरुदेव ने अपने समय की अंग्रेजी माध्यम से चलने वाली शिक्षा को अव्यावहारिक बताया तथा मातृ भाषा के द्वारा शिक्षा देने पर बल दिया। इन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि शिक्षा द्वारा जन साधारण की भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए। यहाँ गुरुदेव के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत है।

शिक्षा का सम्प्रत्यय

गुरुदेव शिक्षा को मनुष्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मानते थे। इनकी दृष्टि से शिक्षा वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य भौतिक प्रगति करता है और आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त करता है। भौतिक दृष्टि से गुरुदेव ने शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है- 'वास्तविक शिक्षा वह है जो

उपयोगी वस्तुओं की वास्तविक प्रकृति को जानने और उनके उपयोग करने और उनसे वास्तविक जीवन की रक्षा करने में सहायता करती है' पर साथ ही गुरुदेव सृष्टि के कण-कण में ईश्वर को व्याप्त मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य इस आध्यात्मिक एकात्म भाव की अनुभूति करना है। इनकी दृष्टि से यह शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य अथवा कार्य है। इनके अपने शब्दों में- 'सर्वोच्च शिक्षा वह है जो हमारे जीवन और सम्पूर्ण सृष्टि के बीच समरसता स्थापित करती है)।

शिक्षा के उद्देश्य

गुरुदेव ऐसी शिक्षा के समर्थक थे जो मनुष्य का भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास कर सके और इन्हीं को ये शिक्षा के उद्देश्य मानते थे। शिक्षा के उद्देश्य सम्बन्धी इनके विचारों को निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध किया जा सकता है-

1. **शारीरिक विकास** - गुरुदेव ने सर्वाधिक बल मनुष्य के शारीरिक विकास पर दिया है। शारीरिक विकास को गुरुदेव ने थोड़े व्यापक रूप में लिया है। इनकी दृष्टि से मनुष्य का शरीर स्वस्थ एवं सुन्दर होना चाहिए, उसकी मांस पेशियाँ सुदृढ़ होनी चाहिए एवं इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्य में सक्षम होनी चाहिए। इनका मत था कि शारीरिक विकास के लिए यदि अध्ययन कार्य को भी छोड़ना पड़े तो कोई विशेष बात नहीं। वे चाहते थे कि बच्चों को प्रकृति के सुरम्य वातावरण में रखा जाए, उन्हें पेड़ों पर चढ़ने दिया जाए, तालाबों में डुबकियाँ लगाने दी जाएँ तथा प्रकृति के साथ नाना प्रकार की शरारतें करने दी जाएँ; इन क्रियाओं से उनका स्वाभाविक रूप से शारीरिक विकास होगा।
2. **बौद्धिक विकास** - गुरुदेव मनुष्य के बौद्धिक विकास पर भी बल देते थे। लेकिन बौद्धिक विकास से इनका तात्पर्य कुछ विषयों के ज्ञान मात्र से नहीं था बल्कि विभिन्न मानसिक शक्तियों- स्मरण, कल्पना, चिन्तन एवं तर्क आदि के विकास और इनके उस शक्तिशाली संगठन से था जिसके द्वारा मनुष्य विभिन्न प्रकार का ज्ञान प्राप्त करता है, उसमें से उपयोगी और अनुपयोगी तथ्यों को अलग-अलग करता है, नए-नए उपयोगी तथ्यों की खोज और निर्माण करता है और अपने भौतिक जीवन को सुखमय बनाने एवं आध्यात्मिक पूर्णता की अनुभूति करने में सफल होता है। इनके विचार से यह बौद्धिक विकास जीवन की वास्तविक क्रियाओं में सक्रिय भाग लेने से ही हो सकता है।

3. **वैयष्टिक एवं सामाजिक विकास** - गुरुदेव मनुष्य की वैयष्टिक भिन्नता में विश्वास करते थे। इनका कथन था कि शिक्षा द्वारा बच्चों का विकास उनकी अपनी रुचि, रुझान तथा क्षमताओं के अनुसार किया जाना चाहिए। लेकिन यह विकास होगा समाज में ही। इनके विचार से एक मनुष्य की दूसरे मनुष्य के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध होता है जिसके कारण ही वे एक-दूसरे की कल्याण कामना से प्रेरित होकर सामाजिक संगठनों का निर्माण करते हैं। शिक्षा द्वारा मनुष्य में कल्याण भावना का विकास होना ही चाहिए।

4. **सांस्कृतिक विकास एवं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय भावना का विकास** – गुरुदेव राष्ट्रीय जागृति के जन्मदाता थे। इन्होंने शिक्षा द्वारा भारतीयों को अपनी मूलभूत संस्कृति से परिचित कराने और उन्हें तद्नुकूल आचरण की ओर प्रेरित करने पर विशेष बल दिया। इनका विश्वास था कि इससे ही राष्ट्रीय एकता का विकास किया जा सकता है। इनको भय था कि संकीर्ण राष्ट्रीयता मनुष्य के उत्थान में बाधक हो सकती है इसलिए इन्होंने शिक्षा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के विकास पर भी बल दिया। इनका तर्क था कि मानव की विभिन्न सभ्यता तथा संस्कृतियों में जो भिन्नता है वह हमें अलग नहीं करती बल्कि वह हमें संसार की विविधता का ज्ञान कराती है। इसी आधार पर इन्होंने शान्तिनिकेतन में देश-विदेश की विभिन्न भाषाओं तथा संस्कृतियों को स्थान दिया था।

5. **नैतिक विकास** – गुरुदेव मानवतावादी व्यक्ति थे। ये मानव को अच्छा मानव बनाने पर बल देते थे। अच्छे मानव का इनका अपना सम्प्रत्यय था, एक ऐसा मानव जो विश्वभर के मानवों में अन्तर नहीं करता। इसके लिए गुरुदेव ने अनेक नैतिक नियमों-ब्रह्मचर्य, अनुशासन, ध्यान और साधना आदि की चर्चा की है तथा उनके पालन के लिए आन्तरिक शक्ति, आन्तरिक स्वतन्त्रता, आत्मानुशासन और ज्ञान को आवश्यक माना है।

6. **व्यावसायिक विकास** – गुरुदेव मनुष्य को आर्थिक कुशलता भी प्रदान करना चाहते थे, इसके लिए इन्होंने हस्तकार्य, शिल्प एवं कृषि शिक्षा पर सर्वाधिक बल दिया है।

7. **आध्यात्मिक विकास** – गुरुदेव के अनुसार उच्चतम शिक्षा वह है जो हमें सम्पूर्ण संसार की एकता से परिचित कराए। इनके अनुसार जब मनुष्य विश्व भर के प्राणियों में एक आत्मा के दर्शन करने लगे तब

समझो कि उसको आत्म तत्त्व की अनुभूति हो गई। इसी चरम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इन्होंने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृतियों के ज्ञान पर बल दिया है। इन्होंने स्पष्ट किया कि पहले हम सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता की अनुभूति करें, इसके पश्चात् ही आत्मिक एकता की अनुभूति होगी।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

गुरुदेव ने मनुष्य के प्राकृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक, तीनों प्रकार के विकास पर समान बल दिया है और इनके समुचित विकास के लिए क्रिया प्रधान पाठ्यचर्या का निर्माण किया है। दूसरी बात यह है कि इन्होंने अपनी भाषा तथा संस्कृति के साथ-साथ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की भाषा एवं संस्कृतियों के ज्ञान पर भी बल दिया है। प्रकृति और ललित कलाओं के तो ये अनन्य प्रेमी थे। इनको तो इन्होंने पाठ्यचर्या में मुख्य स्थान दिया है। इन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि सहपाठ्यचारी क्रियाएँ बालक के विकास में महत्वपूर्ण योग देती है। अतः खेल-कूद और अभिनय आदि की पाठ्यचर्या में स्थान देना चाहिए। इनके इस व्यापक दृष्टिकोण के कारण ही इनके द्वारा निर्मित पाठ्यचर्या बहुत विस्तृत है। इन्होंने प्रारम्भ में अपने शान्तिनिकेतन के लिए जिस क्रिया प्रधान पाठ्यचर्या को रखा था, उसका रूप निम्नलिखित था-

1. **विषय-** मातृ भाषा, संस्कृत, अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल, प्रकृति अध्ययन, विज्ञान, कला एवं संगीत।
2. **उपयोगी क्रियाएँ-** बागवानी, कृषि, क्षेत्रीय अध्ययन, भ्रमण, विभिन्न वस्तुओं का संग्रह और प्रयोगशाला कार्य।
3. **अन्य क्रियाएँ-** खेल-कूद, नाटक, संगीत, नृत्य, मौलिक रचना, ग्रामोत्थान एवं समाज सेवा कार्य।

और जैसे-जैसे शान्तिनिकेतन का विस्तार होता गया तैसे-तैसे उसमें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की भाषा, साहित्य एवं संस्कृतियों को उसकी पाठ्यचर्या में शामिल किया जाने लगा। आज तो यह विश्वभारती विश्वविद्यालय के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय उदार और तकनीकी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बन गया है। इसमें पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च्व एवं तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था है और विभिन्न स्तरों के लिए विभिन्न पाठ्यचर्या निश्चित है। कक्षा 1 से 12 तक की पाठ्यचर्या 10+2+3 शिक्षा संरचना के अनुकूल है पर इसमें सहपाठ्यचारी क्रियाएँ एवं समाज सेवा कार्य अनिवार्य हैं। यहाँ की पाठ्यचर्या की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ देशी-विदेशी का अन्तर

नहीं है। इस सन्दर्भ में गुरुदेव की स्पष्ट अभिव्यक्ति थी कि ज्ञान किसी देश के व्यक्तियों के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के लिए है। यही कारण है कि विश्व भारती विश्वविद्यालय में देश-विदेश की भाषाओं, संस्कृतियों, ज्ञान, विज्ञान और तकनीकी की शिक्षा की व्यवस्था है। विदेशी छात्रों के लिए कुछ विशेष पाठ्यक्रम (भारतीय संगीत आदि) भी चलाए जाते हैं।

शिक्षण विधियाँ

गुरुदेव मनुष्य को भौतिक एवं आध्यात्मिक तत्त्वों का योग मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य का विकास उसकी इन दोनों शक्तियों पर निर्भर करता है। इन्होंने शिक्षण की किसी नई विधि का निर्माण तो नहीं किया लेकिन अपने समय की शिक्षण विधियों में सुधार के लिए सुझाव अवश्य दिए हैं। इन्होंने अपने समय की पुस्तकीय एवं कथन विधियों का कड़ा विरोध किया और इस बात पर बल दिया कि बच्चों को जो कुछ भी सिखाया जाए उन्हें जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में रखकर, स्वयं करके, स्वयं के अनुभवों द्वारा सिखाया जाए। इन्होंने अपने समय की अंग्रेजी माध्यम वाली शिक्षा का भी कड़ा विरोध किया और मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दिए जाने पर बल दिया। इनके द्वारा स्थापित विश्व भारती में आज पूर्व प्राथमिक से लेकन कक्षा 12 तक की शिक्षा मातृभाषा बंगाली के माध्यम से ही प्रदान की जाती है। उच्च स्तर पर अंग्रेजी को माध्यम बनाए रखना विवशता है। गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित इन शिक्षण सिद्धान्तों को हम निम्नलिखित रूप में स्पष्ट कर सकते हैं-

1. बच्चों को जबरन कुछ मत सिखाओ, उन्हें पहले सीखने के लिए प्रेरित करो।
2. बच्चों को जो कुछ भी सिखाना हो, जीवन की वास्तविक क्रियाओं द्वारा सिखाओ।
3. बच्चों को ज्ञानेन्द्रियों के प्रयोग के अवसर दो, उन्हें स्वयं करके स्वयं के अनुभव से सीखने दो।
4. बच्चों को अंग्रेजी के स्थान पर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दो।
5. किसी भी शिक्षण विधि का प्रयोग करो पर वह रुचिपूर्ण हो और शिक्षार्थी उसमें सक्रिय रूप से भाग लें।
6. बच्चों को कठोर नियन्त्रण से मुक्त रखो, उन्हें कार्य करने एवं सोचने की स्वतन्त्रता दो।

7. किसी भी स्थिति में बच्चों के साथ प्रेम एवं सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करो।

गुरुदेव ने शिक्षण की प्राचीन तथा तत्कालीन विधियों को जिस रूप में प्रयोग किए जाने पर बल दिया और जिस रूप में इन्होंने स्वयं उनका प्रयोग किया, उस पर भी थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यक है।

1. **मौखिक विधि** – प्राचीन काल में गुरु अपने शिष्यों का उपदेश, व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद एवं तर्क आदि मौखिक विधियों द्वारा ही पढ़ाते थे। गुरुदेव ने इन विधियों के महत्त्व को स्वीकार किया परन्तु इस सावधानी के साथ कि इन विधियों का प्रयोग तभी किया जाए जब बच्चों को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में स्वयं करके, स्वयं के अनुभवों से सीखना सम्भव न हो।
2. **स्वाध्याय विधि** – यह सीखने-सिखाने की अत्यन्त प्राचीन विधि है। गुरुदेव ने स्वयं इस विधि द्वारा अधिक सीखा-समझा था। इन्होंने अपने पिता और बड़े भ्राता के मार्गदर्शन में दूर करते हैं। इनके द्वारा स्थापित विश्व भारती का सम्पूर्ण परिवेश संस्कार प्रधान है, शिक्षक तथा छात्र सभी सादा जीवन जीते हैं और सभी पूर्णरूप से अनुशासित रहते हैं।

शिक्षक

शिक्षक के विषय में गुरुदेव के विचार पूर्णरूपेण परम्परावादी थे। इनकी दृष्टि से शिक्षक को ज्ञानी, संयमी और बच्चों के प्रति समर्पित होना चाहिए। ये कहा करते थे कि विद्यार्थी शिक्षकों के द्वारा दिए जाने वाले ज्ञान की अपेक्षा उनके मनोभावों और आचरण की विधियों को शीघ्र सीखते हैं। इसलिए शिक्षकों को ज्ञानी, ब्रमचारी, चरित्रवान और आदर्श आचरण करने वाला होना चाहिए। ये शिक्षक से यह भी आशा करते थे कि वह अपने विद्यार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नता को समझकर उनके लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था करें, उनके साथ सदैव प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करें। निरंकुश शिक्षकों को ये जेल वार्डन कहते थे। गुरुदेव राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के हामी थे। इनकी दृष्टि से शिक्षकों में राष्ट्र प्रेम होना चाहिए और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव होना चाहिए। ऐसे ही शिक्षक बच्चों में राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास कर सकते हैं। इस सबके लिए ये शिक्षकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता समझते थे।

शिक्षार्थी

गुरुदेव शिक्षार्थी के व्यष्टित्व का आदर करते थे तथा उनके लिए उनके अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था पर बल देते थे। परन्तु दूसरी ओर उनके ब्रह्मचर्य

व्रत पालन करने की अपेक्षा करते थे। ब्रह्मचर्य व्रत में इन्द्रिय निग्रह; मन, वचन व कर्म की शुद्धि तथा सादा एवं प्राकृतिक जीवन का विशेष महत्व है। गुरुदेव के अनुसार विद्यार्थियों को नित्य प्रातः काल उठना चाहिए, अपने शरीर की सफाई करनी चाहिए, नियमों एवं आदेशों का पालन करना चाहिए, व्यवहार में विनम्र होना चाहिए, प्रकृति एवं सौन्दर्य का उपासक होना चाहिए और सांसारिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति का इच्छुक होना चाहिए। जब तक वे स्वयं से प्रेरित होकर और गुरु में श्रद्धा रखकर सीखने के लिए आगे नहीं बढ़ेंगे तब तक वे कुछ नहीं सीख सकेंगे।

विद्यालय

गुरुदेव के विचार से विद्यालय प्राचीन गुरु आश्रमों की भाँति नगर के कोलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थित होने चाहिए। इनका विश्वास था कि शान्त पर्यावरण में ही शिक्षक एवं शिक्षार्थी शिक्षा की साधना कर सकते हैं। ये इस बात पर बहुत बल देते थे कि विद्यालय राष्ट्र के प्रतिनिधि होने चाहिए और इनमें राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति की सही शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके साथ-साथ इनमें अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की भाषा एवं संस्कृतियों की शिक्षा की व्यवस्था भी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी विश्वबोध कर सकें। इनका विश्व भारती विश्वविद्यालय इनकी इन सब भावनाओं का मूर्त रूप उपस्थित कर रहा है।

विश्वभारती में आज पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा तक की व्यवस्था है। यह विश्वविद्यालय इस समय दो प्रांगणों में चल रहा है- शान्तिनिकेतन में और श्रीनिकेतन में। श्रीनिकेतन शान्तिनिकेतन से 3 मिमी. की दूरी पर स्थित है। ये दोनों ही स्थान जन कोलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में सिति हैं। इस समय विश्व भारती में विभिन्न स्तरों की विभिन्न प्रकार की शिक्षा के लिए अलग-अलग भवन हैं जिन्हें अब विभिन्न विभागों में विभाजित कर दिया गया है।

1. **मृनलिनी आनन्द पाठशाला** – यह शान्तिनिकेतन के पाठ भवन से संलग्न है। इसमें के.जी. कक्षाएँ लगती हैं।
2. **सन्तोष पाठशाला** – यह श्रीनिकेतन के शिक्षा सत्र से संलग्न है। इसमें के.जी. कक्षाएँ लगती हैं।
3. **पाठ भवन** (माध्यमिक विद्यालय) – यह शान्तिनिकेतन में स्थित आवासीय और सहशिक्षा संस्था है। इसमें कक्षा 1 से कक्षा 10 तक की शिक्षा की व्यवस्था है।

4. **शिक्षा सत्र** (माध्यमिक शिक्षा) – यह श्रीनिकेतन में स्थित सहशिक्षा संस्था है। इसमें भी कक्षा 1 से 10 तक की शिक्षा की व्यवस्था है।

5. **उत्तर शिक्षा सदन** (उच्चतर माध्यमिक विद्यालय) – यह शान्तिनिकेतन में स्थित आवासीय और सहशिक्षा संस्था है। इसमें +2 (कक्षा 11 तथा 12) की शिक्षा की व्यवस्था है।

6. **विद्या भवन** (इन्स्टीटयूट ऑफ ह्यूमैनिटीज एण्ड सोशल साइंसिज़) – यह शान्तिनिकेतन में स्थित है और इनमें ह्यूमैनिटीज एण्ड सोशल साइंसिज के स्नातक, परास्नातक, डिप्लोमा और सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम चलते हैं और परास्नातक के सभी विषयों में शोध की व्यवस्था है।

7. **शिक्षा भवन** (इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस) – यह भवन भी शान्तिनिकेतन में स्थित है और परास्नातक के सभी विषयों में शोध की व्यवस्था है।

8. **कला भवन** (इन्स्टीट्यूट ऑफ फाइन आर्ट्स) – यह भवन भी शान्तिनिकेतन में स्थित है। इसमें कला में स्नातक, परास्नातक, डिप्लोमा और सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम चलते हैं और परास्नातक के सभी विषयों में शोध की व्यवस्था है।

9. **संगीत भवन** (इन्स्टीट्यूट ऑफ म्यूजिक, डान्स एण्ड ड्रामा) – यह भवन भी शान्तिनिकेतन में स्थित है। इसमें संगीत में स्नातक, परास्नातक, डिप्लोमा और सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम चलते हैं और परास्नातक के सभी विषयों में शोध की व्यवस्था है।

10. **विनय भवन** (इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन) – यह भवन भी शान्तिनिकेतन में स्थित है। इसमें बी.एड. और एम.एड. पाठ्यक्रम चलते हैं और शिक्षा विषय में शोध की व्यवस्था है।

11. **रवीन्द्र भवन** (इन्स्टीट्यूट ऑफ टैगोर स्टडीज, म्यूजियम एण्ड आर्चीव्ज) – यह भवन भी शान्तिनिकेतन में स्थित है। इसमें किसी प्रकार का शिक्षण कार्य तो नहीं होता परन्तु समस्त रवीन्द्र साहित्य उपलब्ध है और अब तक रवीन्द्र पर किए गए शोध प्रबन्ध उपलब्ध हैं। यह रवीन्द्र पर शोध कार्य करने वालों का अध्ययन केन्द्र है।

12. **रूरल एक्सटेन्शन सेन्टर** (डिपार्टमैन्ट ऑफ एडल्ट एण्ड कन्टीन्यूइंग एजूकेशन एण्ड एक्सटेन्शन) – यह श्रीनिकेतन परिसर में स्थित है। इसमें ग्रामीण युवकों को साक्षरता के प्रसार, सामाजिक शिक्षा और जनसंख्या शिक्षा कार्यों के सम्पादन में प्रशिक्षित किया जाता है और साथ ही ग्रामीण महिलाओं को हस्तकौशलों में प्रशिक्षित किया जाता है। इसमें राष्ट्रीय

शिक्षा नीति, 1986 के तहत जन शिक्षा निलियम की स्थापना की गई है और उसके माध्यम से प्रौढ़ शिक्षा, सतत् शिक्षा और जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम चलाए जाते हैं।

13. **शिल्प भवन** (सेन्टर ऑफ रूरल इन्डस्ट्रीज) – यह भवन श्रीनिकेतन परिसर में स्थित है। इसमें हैंडलूम वीविंग, वुड वर्क, पौटरी और हैन्ड मेड पेपर के डिप्लोमा और सर्टिफिकेट प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं।

14. **पल्ली चर्चा केन्द्र** (सेन्टर फॉर रूरल स्टडीज) – यह केन्द्र भी श्रीनिकेतन में स्थित है। इसमें रूरल डवलपमैंट और एनथ्रोपोलॉजी में दो वर्षीय परास्नातक पाठ्यक्रमों और ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के क्षेत्र में शोध कार्य की व्यवस्था है।

15. **डिपार्टमैन्ट ऑफ सोशल वर्क** – यह विभाग श्रीनिकेतन परिसर में स्थित है। इसमें बैचलर ऑफ सोशल वर्क (BSW) और मास्टर ऑफ सोशल वर्क (MSW) पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं और सोाल वेल फेयर और रूरल डवलपमेन्ट के क्षेत्र में शोध कार्य कराए जाते हैं।

16. **पल्ली शिक्षा भवन** (इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर) – यह भवन भी श्रीनिकेतन में स्थित है। यह अपने में कृषि महाविद्यालय है। इसमें कृषि में स्नातक और परास्नातक पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं और साथ ही कृषि में शोध कार्य कराए जाते हैं।

17. **एग्रो-इक्नोमिक रिसर्च सेन्टर** – यह शोध संस्थान भी श्रीनिकेतन परिसर में स्थित है। इस संस्थान में कृषि एवं ग्रामीण अर्थशास्त्र के क्षेत्र में शोध कार्य किए जाते हैं।

18. **शिक्षा चर्चा** (प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र) – यह संस्था भी श्रीनिकेतन परिसर में स्थित है। इसमें प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था है।

शिक्षा के अन्य पक्ष

गुरुदेव ने शिक्षा के अन्य पक्षों पर भी अपने विचार व्यक्त किए हैं। यहाँ इनके जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, धर्म शिक्षा और राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा सम्बन्धी विचार प्रस्तुत है।

1. **जन शिक्षा** – गुरुदेव ने तत्कालीन भारत की दीन-हीन दशा देखी थी और साथ ही पाश्चचात्य देशों का वैभवशाली जीवन देखा था। इन्होंने यह

भी अनुभव किया कि हमारे इस पिछड़ेपन का मूल कारण शिक्षा का अभाव है। अत: इन्होंने जन शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। जन शिक्षा को गुरुदेव ने थोड़े व्यापक रूप में लिया है। प्रथमत: तो गाँव और शहर के सभी बच्चों के लिए समान, सामान्य, अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए और दूसरे अशिक्षित प्रौढ़ों को पढ़ने-लिखने का ज्ञान कराया जाए। गुरुदेव ने स्पष्ट किया कि हमारे देश की 70% जनसंख्या गाँवों में निवास करती है इसलिए शिक्षा में ग्राम्य जीवन की समस्याओं को विशेष स्थान दिया जाए। गुरुदेव के अनुसार भारत का उत्थान ग्रामाद्धार द्वारा ही सम्भव है। प्रौढ़ शिक्षा के लिए गुरुदेव ने रात्रि पाठशालाएँ खोलने पर बल दिया और कहा कि प्राथमिक पाठशालाओं के शिक्षकों और माध्यमिक पाठशालाओं के शिक्षार्थियों को इन पाठशालाओं में प्रौढ़ों को पढ़ाने का कार्य करना चाहिए।

2. **स्त्री शिक्षा** – गुरुदेव ने स्त्री शिक्षा के महत्व को स्पष्ट किया और उनकी शिक्षा को पूरी रूपरेखा तैयार की। गुरुदेव के अनुसार प्राथमिक शिक्षा लड़के-लड़कियों सबके लिए समान होनी चाहिए। माध्यमिक स्तर पर लड़कियों के लिए गृह विज्ञान अनिवार्य होना चाहिए क्योंकि उन्हें पत्नी और माताओं की भूमिका अदा करनी होती है और उच्च शिक्षा लड़के-लड़कियों के लिए समान होनी चाहिए। गुरुदेव ने इस बात पर बहुत बल दिया कि लड़के-लड़कियों, दोनों को किसी भी प्रकार की शिक्षा के समान अवसर और समान सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए। इन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक देश के सभी स्त्री-पुरुष शिक्षित नहीं होते और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर नहीं चलते तब तक देश का उत्थान नहीं किया जा सकता।

3. **व्यावसायिक शिक्षा** – गुरुदेव ने स्पष्ट किया कि देश के आर्थिक विकास के लिए व्यावसायिक शिक्षा अति आवश्यक है और चूँकि हमारा देश कृषि प्रधान देश है और कुटीर उद्योग प्रधान देश है इसलिए यहाँ कृषि एवं कुटीन उद्योगों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था होनी चाहिए। आधुनिक विज्ञान और तकनीकी से भी ये वंचित नहीं रहना चाहते थे और भारी उद्योगों के लिए इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था आवश्यक समझते थे।

4. **धर्म शिक्षा** – धर्म के सम्बन्ध में गुरुदेव का दृष्टिकोण बहुत विस्तृत था। इनके अपने शब्दों में- धर्म असीम के प्रति एक तीव्र इच्छा है और उसकी आनन्दमयी अनुभूति है। ये अन्धविश्वासों, पूजा-पाठ की आडम्बरयुक्त

विधियों और कर्म काण्ड के विरोधी थे। इन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि सच्ची धार्मिकता जप-तप में नहीं; मनुष्य को मनुष्य मानने में है, मानवमात्र की सेवा करने में है, विश्वकल्याण की भावना में है, विश्वभर में एकात्म भाव की अनुभूति करने में है। गुरुदेव ने स्पष्ट किया कि इस धर्म की शिक्षा उपदेश, व्याख्यान अथवा पुस्तकों के माध्यम से नहीं दी जा सकती, इसकी शिक्षा तो इसे जीवन का अंग बनाकर ही दी जा सकती है। इसके लिए इन्होंने विद्यालयों का प्रारम्भ प्रातःकालीन प्रार्थना से करने, सभी धर्मों के पैगम्बरों के जन्मदिन मनाने और उनके उपदेशों से बच्चों को परिचित कराने, प्रकृति, कला और संगीत के सौन्दर्य में ईश्वरीय तत्त्व की अनुभूति करने, दीन-हीनों की सेवा करने, गिरे हुओं को ऊँचा उठाने और समाज, राष्ट्र और विश्व हित के कार्यों को करने पर बल दिया।

5. **राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा –** यूँ गुरुदेव ने राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा की कोई योजना प्रस्तुत नहीं की है परन्तु इनके तत्सम्बन्धी फुटकर विचारों से यह बात स्पष्ट होती है कि ये देशवासियों को सर्वप्रथम अपनी भाषा, अपने साहित्य और अपने धर्म एवं दर्शन से परिचित कराना चाहते थे। परन्तु ये संकीर्ण राष्ट्रीयता के पक्षधर नहीं थे; ये तो अन्तर्राष्ट्रीयता के हामी थे। इन्होंने अपनी भाषा, साहित्य और ध र्म-दर्शन के साथ-साथ विश्व की अन्य भाषाओं, साहित्यों, धर्मों और दर्शनों के अध्ययन पर भी बल दिया है।

टैगार के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन

किसी वस्तु, क्रिया अथवा विचार का मूल्यांकन किन्हीं पूर्व निश्चित मानदण्डों के आधार पर किया जाता है। शिक्षा मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया है, उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि करने की प्रक्रिया है और उसके आचार, विचार और व्यवहार को उचित दिशा प्रदान करने की प्रक्रिया है। तब किसी शैक्षिक चिन्तन अथवा व्यवस्था का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाना चाहिए कि यह इस प्रकार की उपयोगी शिक्षा के निर्माण में कितनी सहायक हुई है अथवा हो सकती है।

इस युग में हमारे देश में जो महान् पुरुष हुए हैं उनमें बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्तियों में दो व्यक्ति शीर्षासन पर विराजमान हैं और वे हैं- महात्मा गाँध ी और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर। यूँ गुरुदेव की सबसे अधिक ख्याति साहित्य के क्षेत्र में है परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में भी इनका योगदान कम नहीं है। शिक्षा

के क्षेत्र में यह महान् शिक्षाशास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित हैं। यहाँ इनके शैक्षिक विचारों और कार्यों का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

शिक्षा का सम्प्रत्यय

गुरुदेव पहले भारतीय चिन्तक हैं जिन्होंने शिक्षा को सामाजिक एवं बहुउद्देशीय प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया और शिक्षा के स्वरूप (कि यह सामाजिक प्रक्रिया है) और उसके कार्य (कि यह बहुउद्देशीय प्रक्रिया है) दोनों को स्पष्ट किया। इनके अनुसार- 'वास्तविक शिक्षा वह है जो उपयोगी वस्तुओं की वास्तविक प्रकृति को जानने और उनके उपयोग करने और उनसे वास्तविक जीवन की रक्षा करने में सहायता करती है' और 'सर्वोच्च शिक्षा वह है जो हमारे जीवन और समस्त सृष्टि के बीच समरसता स्थापित करती है'।

यदि हम गुरुदेव द्वारा प्रस्तुत शिक्षा की इन दो परिभाषाओं की बारीकी से देखें-समझें तो स्पष्ट होता है कि गुरुदेव शिक्षा को इस भौतिक जीवन की तैयारी और आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति, दोनों का साधन मानते थे। आज संसार के अधिकतर शिक्षाशास्त्री इसी मत के हैं।

शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा के उद्देश्यों को गुरुदेव ने दो वर्गों में विभाजित किया है- भौतिक विकास एवं आध्यात्मिक विकास। भौतिक विकास के अन्तर्गत इन्होंने शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक तथा व्यावसायिक विकास के उद्देश्यों को स्थान दिया है और आध्यात्मिक विकास के अन्तर्गत धार्मिक विकास एवं समाज सेवा को स्थान दिया है।

यदि गुरुदेव द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यानपूर्वक देखा-समझा जाए तो स्पष्ट होता है कि ये शिक्षा के सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक उद्देश्य हैं। जो लोग इनमें से किसी भी उद्देश्य को अनावश्यक मानते हैं, हमारी दृष्टि से जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण उतना ही अधूरा है। हाँ, कुछ उद्देश्य समयानुसार भी होने आवश्यक होते हैं; जैसे- देश के शासनतन्त्र एवं नागरिकता की शिक्षा तथा राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति। उस समय हमारा देश परतन्त्र था, शायद इसीलिए गुरुदेव का ध्यान इन उद्देश्यों की ओर नहीं जा पाया।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

विस्तृत उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए गुरुदेव ने विस्तृत पाठ्यचर्या का निर्माण किया था। विषयों के अन्तर्गत इन्होंने भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल, प्रकृति अध्ययन, विज्ञान, कला और संगीत को स्थान दिया है; उपयोगी क्रियाओं के

अन्तर्गत बागवानी, कृषि, शिल्प, क्षेत्रीय अध्ययन, भ्रमण, विभिन्न वस्तुओं के संग्रह और प्रयोगशाला कार्य को स्थान दिया है और अन्य क्रियाओं के अन्तर्गत खेल-कूद, नाटक, संगीत, नृत्य एवं मौलिक रचना और ग्रामोत्थान एवं समाज सेवा कार्यों को स्थान दिया है। माध्यमिक एवं उच्च स्तर की पाठ्यचर्या में इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की भाषाओं, धर्म, दर्शन और संस्कृतियों के शिक्षण को भी स्थान दिया है। इनके द्वारा स्थापित विश्व भारती विश्वविद्यालय में इसी प्रकार की पाठ्यचर्या है। आज उसमें तकनीकी शिक्षा की भी व्यवस्था की गई है।

इसमें दो मत नहीं कि पाठ्यचर्या में समस्त ज्ञान-विज्ञान को स्थान मिलना चाहिए परन्तु एक साथ अनेक भाषाओं, ग्रामोत्थान एवं समाज सेवा कार्यों पर अत्यधिक बल देना आज के सन्दर्भ में आवश्यक होते हुए भी व्यावहारिक नहीं जान पड़ता।

शिक्षण विधियाँ

शिक्षण के सन्दर्भ में गुरुदेव प्राचीन और अर्वाचीन विधियों के गुण-दोष बताने तथा कुछ मूलभूत सिद्धान्तों-बच्चों को जबरन कुछ मत सिखाओ, इन्हें वास्तविक परिस्थितियों में रखकर इन्द्रियानुभव द्वारा सीखने के अवसर प्रदान करो, मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण करके शिक्षण विधि को रुचिकर बनाओ, सीखने में बच्चों को स्वतन्त्रता दो और उनके साथ प्रेम तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करो, पर बल देने तक सीमित रहे। इन्होंने किसी नई शिक्षण विधि का निर्माण नहीं किया।

यदि हम ध्यानपूर्वक देखें-समझें तो स्पष्ट होता है कि गुरुदेव के शिक्षण सम्बन्धी विचारों का भारतीय विद्यालयों की शिक्षण पद्धतियों पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष, दोनों रूपों में कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है। अंग्रेजी के स्थान पर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा की शुरुआत हुई और शिक्षण की प्राचीन विधियों को नए रूप में प्रयोग किया जाने लगा।

अनुशासन

जहाँ तक शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन की बात है गुरुदेव इसकी आवश्यकता पर बल देते थे और इसकी प्राप्ति के लिए उच्च सामाजिक पर्यावरण और अध्यापकों के आदर्श आचरण को आवश्यक मानते थे। परन्तु यदि कोई छात्र तब भी अन्यथा आचरण करे तब क्या किया जाए? गुरुदेव प्रेम और सहानुभूति की बात करते थे। इनका तर्क था कि प्रेम और सहानुभूति पूर्ण पर्यावरण में छात्र अपनी भूलों को स्वयं स्वीकार करते हैं और स्वयं अपने

आचरण में सुधार करते हैं। गुरुदेव किसी भी स्थिति में बच्चों को दण्ड देने का विरोध करते थे।

हमारी दृष्टि से गुरुदेव का अनुशासन सम्बन्धी उपरोक्त विचार व्यष्टि शिक्षण में तो प्रभावी हो सकता है परन्तु समूह शिक्षण में नहीं। हमारा अनुभव तो यह है कि दण्ड व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए परन्तु वह प्रेम और सहानुभूति पर आधारित होनी चाहिए। बच्चों को यह अहसास होना चाहिए कि अनुचित आचरण करने पर उन्हें जो दण्ड दिया जा रहा है, उनकी स्वयं की भलाई के लिए दिया जा रहा है।

शिक्षक

शिक्षक के विषय में गुरुदेव के विचार एक ओर परम्परावादी थे और दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक। इनकी दृष्टि से शिक्षकों को ज्ञानी, संयमी और शिक्षार्थियों के प्रति समर्पित होना चाहिए। ये शिक्षकों से यह अपेक्षा भी करते थे कि वे शिक्षार्थियों की वैयष्टिक भिन्नता को समझें और उनके लिए तद्नुकूल शिक्षा की व्यवस्था करें और उनके साथ सदैव प्रेम, सहानुभूति और सहयोगपूर्ण व्यवहार करें। निरंकुश शिक्षकों को ये जेल वार्डन कहते थे। गुरुदेव राष्ट्रीयता के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीयता के हामी थे इसलिए शिक्षकों में राष्ट्र प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीयता सद्भाव का होना भी आवश्यक समझते थे।

यदि गुरुदेव के शिक्षक सम्बन्धी विचारों को ध्यानपूर्वक देखा-समझा जाए तो स्पष्ट होता है कि शिक्षकों को सचमुच ऐसा ही होना चाहिए। परन्तु इस भौतिकवादी युग में यह सब सम्भव नहीं। यदि शिक्षक अपने कर्त्तव्य का पालन ईमानदारी और निष्ठापूर्वक करें तो वही पर्याप्त है।

शिक्षार्थी

शिक्षार्थियों के सम्बन्ध में भी गुरुदेव के विचार परम्परावादी के साथ-साथ आधुनिक थे। ये एक ओर शिक्षार्थियों से ब्रह्मचर्य के पालन की अपेक्षा करते थे और दूसरी ओर उनके व्यष्टित्व का आदर करते थे, उनकी वैयष्टिक भिन्नता के आधार पर उनकी शिक्षा की व्यवस्था करने पर बल देते थे।

आज लोग ब्रह्मचर्य शब्द से भले ही चौंकें परन्तु एक शिक्षार्थी में ये सब गुण होने अवश्य चाहिए। कम से कम उन्हें श्रेष्ठ आचरण का अनुकरण करना चाहिए और दोषपूर्ण आचरण से बचना चाहिए। और यदि इन्द्रिय निग्रह कर सकें, गुरुओं में श्रद्धा रख सकें और अध्ययन के प्रति समर्पित हो सकें तो फिर कहना ही क्या।

विद्यालय

गुरुदेव के अनुसार विद्यालय प्राचीन गुरु आश्रमों की तरह जन कोलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थित होने चाहिए। ये यह भी चाहते थे कि विद्यालय राष्ट्र के सच्चे प्रतिनिधि होने चाहिए और इनमें राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति की शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। परन्तु साथ ही यह भी चाहते थे कि इनमें अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की भाषा एवं संस्कृतियों की शिक्षा की भी व्यवस्था हो जिससे शिक्षार्थी विश्वबोध कर सकें।

गुरुदेव की पहली बात तो आज सम्भव नहीं है। शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने हेतु यह आवश्यक है कि विद्यालयों की व्यवस्था जन के बीच ही की जाए। हाँ, विद्यालयों को राष्ट्र के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में विकसित करने का प्रयास अवश्य करना चाहिए, उसी स्थिति में राष्ट्र की अस्मिता की रक्षा हो सकती है। आज का युग अन्तर्राष्ट्रीयता का युग है अतः विद्यालयों का पाठ्यक्रम एवं पर्यावरण ऐसा हो कि वह अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के विकास में सहायक हो।

शिक्षा के अन्य पक्ष

जन शिक्षा – गुरुदेव जन शिक्षा के महत्त्व को स्पष्ट किया। इन्होंने बताया कि हमारे समस्त दुःखों का मूल कारण अशिक्षा है। जन शिक्षा को भी इन्होंने बहुत व्यापक रूप में लिया। इनके अनुसार प्रथमतः तो सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए और दूसरे अशिक्षित प्रौढ़ों को कम से कम पढ़ने-लिखने का ज्ञान कराना चाहिए। गुरुदेव के इन विचारों का प्रभाव तत्काल पड़ना शुरू हो गया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो हम ये दोनों ही प्रयास कर रहे हैं और उनका कुछ अच्छा परिणाम भी सामने आया है। स्वतन्त्र होने के समय देश में साक्षरता प्रतिशत केवल 14% था, जो 2001 में बढ़कर 65.58% हो गया था और 2007 में लगभग 74% हो गया होगा।

स्त्री शिक्षा – गुरुदेव स्त्री शिक्षा के बड़े समर्थक थे। इन्होंने स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में स्पष्ट किया कि प्राथमिक और उच्च शिक्षा तो स्त्री-पुरुषों की समान होनी चाहिए। हमारे देश में आज तक गुरुदेव के विचारानुकूल ही स्त्री शिक्षा की व्यवस्था रही है परन्तु अब कुछ शिक्षाशास्त्री स्त्री-पुरुषों की शिक्षा में किसी भी स्तर पर किसी भी प्रकार का अन्तर करने के पक्ष में नहीं हैं। हमारा अपना भी यही मत है।

व्यावसायिक शिक्षा – व्यावसायिक शिक्षा के विषय में गुरुदेव के विचार बहुत व्यापक थे। ये भारतीयों को भारतीय हस्त-कौशलों और कृषि की शिक्षा के साथ योग्य बच्चों को भारी उद्योगों की शिक्षा देने के पक्ष मे थे। हम उनके दिखाए गए मार्ग पर चले, परिणाम यह है कि हम निरन्तर आर्थिक विकास की ओर अग्रसर हैं।

धार्मिक शिक्षा – धर्म शिक्षा के बारे में गुरुदेव का दृष्टिकोण आज के परिप्रेक्ष्य में एक दम ग्रहण करने योग्य है। आज बुद्धिप्रधान युग में धर्म को पूजा-पाठ की विधियों के घेरे में बाँधकर नहीं रखा जा सकता, धर्म तो वह है जो जन कल्याण के लिए धारण किया जाता है, जिससे मनुष्य, समाज, राष्ट्र और समूचा संसार भौतिक एवं आध्यात्मिक श्री को प्राप्त करता है। टैगोर ने मानव सेवा को सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक धर्म के रूप में प्रतिष्ठित कर मानव जाति का बड़ा कल्याण किया है। आज के धर्मनिरपेक्ष भारत में धर्म को इसी रूप में स्वीकार करना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा – इसमें दो मत नहीं कि गुरुदेव राष्ट्रीय जागरण के अग्रदूत थे, इन्होंने सोये हुए भारत को जगाया था और लोगों में राष्ट्रीय चेतना का मन्त्र फूँका था परन्तु ये भविष्य दृष्टा भी थे। इन्होंने तब समझ लिया था कि भविष्य में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग के बिना कोई राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकेगा, ऊँचा नहीं उठ सकेगा। यही कारण है कि इन्होंने राष्ट्रीय भाषा-साहित्य, ज्ञान-विज्ञान और धर्म-दर्शन के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के भाषा-साहित्य, ज्ञान-विज्ञान और धर्म-दर्शन की शिक्षा पर बल दिया। वैसे भी गुरुदेव संसार के समस्त प्राणियों में परमात्मा को व्याप्त मानते थे और इस दृष्टि से विश्वकल्याण की बात करते थे। इस प्रकार ये राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्वकल्याण के प्रणेता थे, विश्वपुरुष थे, महामानव थे।

टैगोर का प्रभाव

गुरुदेव मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं करते थे। ये सब मनुष्यों में एकात्म भाव की अनुभूति पर बल देते थे। इससे हमारे देश भारत में वर्गविहीन समाज के निर्माण में बड़ा सहयोग मिला। ये धार्मिक संकीर्णता के स्थान पर धार्मिक सहिष्णुता के पक्षधर थे। इससे हमारे देश में धार्मिक कट्टरता दूर होनी शुरू हुई। ये सब संस्कृतियों का आदर करते थे। इससे हमारे देश में सांस्कृतिक सहिष्णुता के विकास में बड़ा सहयोग मिला।

गुरुदेव का सबसे बड़ा कार्य प्राचीन भारतीय आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम' को अर्वाचीन आदर्श 'अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव' के रूप में प्रस्तुत करना है। ये देश-विदेश की समस्त भाषाओं, साहित्यों, संस्कृतियों एवं कलाओं को आदर

की दृष्टि से देखते थे। इन्होंने अपने द्वारा स्थापित 'विश्व भारती' में देश-विदेश की विशेष भाषाओं, साहित्यों और कला, संगीत एवं नृत्य की विधाओं के अध्ययन एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की। इन्होंने विदेशियों को अपनी भारतीय भाषाओं, साहित्यों, संस्कृतियों, धर्म व दर्शन तथा कला, संगीत व नृत्य की विधाओं से परिचित कराया। परिणाम स्वरूप विदेशों में भारतीय भाषाओं, साहित्यों, धर्म व दर्शन कला, कौशल एवं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया शुरू करने वालों में गुरुदेव का नाम प्रथम पंक्ति में आता है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी गुरुदेव का बहुत प्रभाव पड़ा। देश में देशी-विदेशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था की जाने लगी और जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा व्यावसायिक और इन सबके साथ प्रौढ़ शिक्षा की समुचित व्यवस्था करने की ओर कदम बढ़े। पाठ्यक्रम के क्षेत्र में देशी-विदेशी का विचार ध राशायी हो गया इसके स्थान पर सब कुछ मानवमात्र का है और जो कुछ अच्छा है वह मानवमात्र के लिए है। इस विचारधारा ने स्थान ले लिया। अब भारत के प्राय: सभी विश्वविद्यालयों में अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की भाषाओं, साहित्यों, कला-कौशलों एवं ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था है।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. टैगोर के विश्वबोध दर्शन की व्याख्या कीजिए।
2. शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों के सन्दर्भ में टैगोर के विचारों की विवेचना कीजिए।
3. 'टैगोर आधुनिक भारत में शैक्षिक पुनरुत्थान के सबसे बड़े पैगम्बर थे' इस कथन की विवेचना कीजिए।
4. टैगोर की भारतीय शिक्षा को देन का मूल्यांकन कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. एकात्मक भाव से गुरुदेव टैगोर का क्या आशय था ?
2. मनुष्य के विषय में गुरुदेव के क्या विचार थे ?
3. मनुष्य के विकास के विषय में गुरुदेव के क्या विचार थे ?
4. भारतीय समाज के स्वरूप और संस्कृति पर गुरुदेव के विचारों का क्या प्रभाव पड़ा?

NOTES

5. गुरुदेव शिक्षा के क्षेत्र में भूमण्डलीयकरण की प्रक्रिया शुरू करने वाले क्यों माने जाते हैं ?
6. जन शिक्षा के सम्बन्ध में गुरुदेव के क्या विचार थे ?
7. स्त्री शिक्षा के सन्दर्भ में गुरुदेव के क्या विचार थे ?

NOTES

12 जे. कृष्णमूर्ति का दार्शनिक चिन्तन

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- जे. कृष्णमूर्ति का दार्शनिक चिन्तन।
- जे. कृष्णमूर्ति का शैक्षिक चिन्तन।
- शिक्षा के उद्देश्य एवं काय।
- शिक्षा की पाठ्यचर्या।
- जे. कृष्णमूर्ति के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन।
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे-

- जे. कृष्णमूर्ति का दार्शनिक चिन्तन।
- जे. कृष्णमूर्ति का शैक्षिक चिन्तन।
- शिक्षा के उद्देश्य एवं काय।
- शिक्षा की पाठ्यचर्या।
- जे. कृष्णमूर्ति के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन।

प्राक्कथन

जे. कृष्णमूर्ति का जन्म 11 मई, 1895 को मदानपल्ली गाँव के एक तेलगू भाषी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका पूरा नाम जिड्डू कृष्णमूर्ति था। इनके पिता श्री जिड्डू नरायनिह और माता श्रीमती जिड्डू संजीवम्मा दोनों ही ध ार्मिक स्वभाव के व्यक्ति थे। ऐसे परिवार में जे. कृष्णमूर्ति में प्रारम्भ से ही धार्मिक संस्कार पड़ने स्वाभाविक थे। जब ये केवल 10 वर्ष के थे, इनकी माता का निधन हो गया। इन परिस्थितियों ने जे. कृष्णमूर्ति को भावुक बना दिया। माँ के देहान्त के 4 वर्ष बाद इनके पिता सरकारी नौकरी से रिटायर हो गए। रिटायर होने के बाद ये अडयार (मद्रास, चेन्नई) चले गए। इस समय जे. कृष्णमूर्ति की आयु 14 वर्ष की थी।

अडयार में जे. कृष्णमूर्ति थियोसोफिकल सोसाईटी की अध्यक्ष डॉ. एनी बेसेंट के सम्पर्क में आए। यूँ ये स्वभाव से बड़े संकोची थे और कुछ दबे-दबे से रहते थे परन्तु एनी बेसेंट को इनकी प्रतिभा पहचानने में देर नहीं लगी। उन्होंने घोषणा की कि यह बच्चा आगे चलकर मानव जाति को कल्याण का मार्ग दिखाएगा और उन्होंने इनकी शिक्षा-दिक्षा का भार स्वयं अपने ऊपर ले लिया। एनी बेसेंट ने इन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैण्ड भेजा। यहाँ इन्हें अंग्रेजी साहित्य पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। इन्हें कीट्स, शैली और शैक्सपीयर का साहित्य बहुत पसन्द आया।

1922 में जे. कृष्णमूर्ति को गहरी आध्यात्मिक अनुभूति हुई। इन्हें उस करूणा की अनुभूति हुई जिससे सारे कष्ट एवं दुःख दूर हो जाते हैं। बस क्या था, ये मानव कल्याण के लिए आतुर हो उठे और मनुष्य को दुःखों से मुक्त होने का मार्ग दिखाने लगे। इन्होंने भारत, इंग्लैण्ड, हालैण्ड, आस्ट्रेलिया एवं अमेरिका का दौरा किया और बौद्धिक वर्ग के मध्य व्याख्यान दिए और उनमें आलोचनात्मक रूचि पैदा की। इन्होंने सबसे अधिक बल प्यार (Love) पर दिया। इनके अपने शब्दों में- 'यदि आपके हृदय में प्यार है तो फिर किसी ईश्वर की तलाश करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि प्यार ही ईश्वर है, इनकी दृष्टि से हृदय में सच्चा प्यार उत्पन्न करने के लिए आत्माज्ञान और आत्मशोध आवश्यक है और मनुष्य को इस सद्भार्ग की तरफ अग्रसर करने के लिए उचित शिक्षा की आवश्यकता है। इनके अपने शब्दों में- 'शिक्षा द्वारा ही मनुष्य को जीवन का सही अर्थ समझाया जा सकता है और शिक्षा द्वारा ही उसे गलत रास्ते से सही रास्ते पर लाया जा सकता है। इसके लिए इन्होंने तत्कालीन शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन करने पर बल दिया। देखते-देखते

इनकी ख्याति विश्व भर में फैल गई, देश-विदेशों में इनके अनुयायियों का एक समूह खड़ा हो गया, एक ऐसा समूह जो न किसी धर्म के बन्धन में था, न किसी वाद के बन्धन में था, बस मानव कल्याण में विश्वास करता था।

जे. कृष्णमूर्ति ने न तो किसी दार्शनिक सम्प्रदाय का विकास किया है और न ही किसी पूर्व दार्शनिक विचारधारा की व्याख्या की है। ये तो वाद (Ism) से दूर थे। हाँ, मनुष्य जीवन के प्रति इनका अपना दृष्टिकोण था, उसी को हम इनका दार्शनिक चिन्तन कह सकते हैं। यहाँ हम इनके इस दार्शनिक चिन्तन को उसकी तत्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा और मूल्य एवं आचार मीमांसा के रूप में समझने का प्रयास करेंगे।

जे. कृष्णमूर्ति के दर्शन की तत्त्व मीमांसा

जे. कृष्णमूर्ति मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों में विश्वास करते थे और साथ ही ईश्वर में भी विश्वास करते थे लेकिन इनका ईश्वार वह ईश्वर नहीं है। जिसे विभिन्न धर्मों ने गढ़ा है। इनकी दृष्टि से प्रेम ही ईश्वर है। ये किसी पूर्व निश्चित सत्य में भी विश्वास नहीं करते थे। इनकी दृष्टि से सत्य वह नहीं है 'जो है', सत्य वह है जो 'जो है' की समझ उत्पन्न करता है। मनुष्य का क्रोध, उसकी क्रूरता, उसकी हिंसावृत्ति, उसकी निराशा, उसकी वेदना एवं उसका दु:ख जिसमें वह जीता है, उस सबकी समझ ही सत्य है। इनकी दृष्टि से मनुष्य जीवन अपने आप में एक असाधारण साक्षरता है; मनुष्य जीवन का अर्थ बिना किसी निराशा, कष्ट और उलझन के सस्नेह जीवन यापन करता है। ये कर्म के सिद्धान्त में भी विश्वास नहीं करते थे। इनका तर्क था कि कर्म सिद्धान्त हमें सीमा में बाँधता है, जबकि मनुष्य को किसी भी प्रकार की सीमाओं के बन्धन से दूर अपनी चेतना के आधार पर कार्य करना चाहिए।

जे. कृष्णमूर्ति के दर्शन की ज्ञान एवं तर्क मीमांसा

जे. कृष्णमूर्ति ने ज्ञान को तीन भागों में विभाजित किया है- वैज्ञानिक, सामूहिक और वैयष्टिक। इन्होंने वैज्ञानिक ज्ञान की श्रेणी में उस ज्ञान को रखा है जो तथ्यों के विश्लेषण पर आधारित होता है, सामूहिक ज्ञान की श्रेणी में उस ज्ञान को रखा है जो मनुष्य के और मनुष्य के प्रकृति के प्रति सम्बन्ध ों से सम्बन्धित होता है और वैयष्टिक ज्ञान की श्रेणी में उस ज्ञान को रखा है जो मनुष्य के अन्त:करण से सम्बन्धित होता है। इनकी दृष्टि से किसी भी प्रकार का ज्ञान बुद्धि से प्राप्त होता है और वास्तविक ज्ञान बुद्धि के निष्पक्ष

होने से प्राप्त होता है। इन्होंने आगे स्पष्ट किया कि वास्तविक ज्ञान आन्तरिक सत्ता का प्रतीक है, जीवन का मार्गदर्शक है एवं इसको चेतना द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

जे. कृष्णमूर्ति के दर्शन की मूल्य एवं आचार मीमांसा

जे. कृष्णमूर्ति ने अनुभव किया कि मनुष्य भौतिक दृष्टि से साधन सम्पन्न होने के बाद भी दु:खी है, वह तृष्णा, प्रतिस्पर्द्धा, द्वेष और हिंसा के बोझ से दबा जा रहा है। इतना ही नहीं अपितु वह धर्म के नाम पर भी मूर्ख बनाया जा रहा है। इन्होंने मानवमात्र को बाह्य विकास के साथ-साथ आन्तरिक विकास करने का उपदेश दिया जिसमें तड़क-फड़क नहीं, सादगी होगी; तृष्णा नहीं तुष्टि होगी; द्वेष नहीं, प्रेम होगा; हिंसा नहीं, सहयोग होगा और ध र्म के आडम्बरों के स्थान पर प्राणीमात्र के प्रति प्रेम होगा, और एक ऐसे समाज का निर्माण होगा जिसमें जाति, धर्म, समाज, संस्कृति व देश आदि किसी भी आधार पर व्यक्ति विभाजित नहीं होंगे, अपितु प्रेम के आधार पर सब आपस में बँधे होंगे। इसके लिए इन्होंने मनुष्यों को पहला उपदेश साद्गी का दिया और दूसरा उपदेश प्रेम का दिया। प्रेम ही वह अस्त्र है जो मनुष्य के जाति, धर्म, संस्कृति और क्षेत्र आदि के बन्धनों को काट सकता है। पर ऐसा भी नहीं है कि इन्होंने जीवन की सत्यता से मुँह मोड़ा हो, जीवन जीने के लिए मनुष्य को व्यवसाय भी करने होंगे, व्यवसायो की उन्नति के लिए विज्ञान एवं तकनीकी का प्रयोग भी करना होगा और प्रयोग वह तभी कर सकेगा जब उसे इनका ज्ञान होगा, परन्तु किसी भी वैज्ञानिक सिद्धान्त और तकनीकी का प्रयोग मानव मात्र के कल्याण के लिए करना होगा।

जे. कृष्णमूर्ति का शैक्षिक चिन्तन (Educational Thought of J. Jrishnamurti)

जे. कृष्णमूर्ति के समय विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में नए-नए आविष्कार हो रहे थे और संसार के प्राय: समस्त देशों में विज्ञान की शिक्षा पर बल दिया जा रहा था और उसमें मानवीय पक्ष की अवहेलना होती जा रही थी। बच्चे परिवार एवं समाज में जिस मानवीय शिक्षा को प्राप्त कर रहे थे वह जाति, धर्म, संस्कृति और क्षेत्र के बन्धन में बँधी थी, यह बच्चों में संकीर्ण दृष्टिकोण पैदा कर रही थी। जे. कृष्णमूर्ति ने मानव को वास्तव में मानव बनाने के लिए शिक्षा में अधिक से अधिक परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया। इनके शिक्षा सम्बन्धी विचार मुख्य रूप से इनकी रचनओं- शिक्षा

एवं जीवन का तात्पर्य, शिक्षा संवाद, स्कूलों के नाम पत्र और सीखने की कला में देखने को मिलते हैं। यहाँ उनका क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत है।

शिक्षा का सम्प्रत्यय

जे. कृष्णमूर्ति तथ्यों को रटने, परीक्षा उत्तीर्ण करने और उपाधियाँ प्राप्त करने को शिक्षा नहीं मानते थे। इनकी दृष्टि से यह शिक्षा का एक पक्ष है जो उसे केवल रोजी-रोटी कमाने योग्य बनाता है। वास्तविक शिक्षा है जो मनुष्य को आत्मज्ञान कराए। इनके अपने शब्दों में- 'अन्तःमन का ज्ञान ही शिक्षा है।'

शिक्षा के उद्देश्य एवं कार्य

जे. कृष्णमूर्ति ने शिक्षा के उद्देश्य एवं कार्यों पर विस्तार से विचार प्रकट किए हैं। इन्होंने सर्वप्रथम तत्कालीन शिक्षा के दोष उजागर किए और कहा कि आधुनिक शिक्षा प्रतियोगितोन्मुख है, यह मनुष्य में महत्वाकांक्षा, लालसा और कुण्ठाओं को जन्म दे रही है, यह मनुष्य को निराशा की तरफ ले जा रही है, यह मनुष्य को जीवन का वास्तविक अर्थ नहीं बता रही है, यह उसका समग्र रूप से विकास नहीं कर रही है, यह उसे चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार नहीं कर रही है, यह एकांगी है। इसके बाद इन्होंने शिक्षा के उद्देश्य एवं कार्यों पर प्रकाश डाला और मानव (Total Human Being) अर्थात् ऐसे चेतनायुक्त मानव जो बाह्य एवं आन्तरिक दोनों दृष्टियों से पूर्ण हो के विकास की बात कही है और कहीं एकीकृत मानव (Integrated Man) अर्थात् ऐसे मानव जो जीवन को समग्र रूप से जीने में सक्षम हो, के विकास की बात कही है। कहीं आत्मज्ञान (Self knowledge) की बात कही है, कहीं घृणा (Hate) और हिंसा (Violence) आदि वृत्तियों के अन्त पर बल दिया है तो कहीं प्रेम (Love) के विकास पर बल दिया है। कहीं वैज्ञानिक बुद्धि (Scientfine Mind) के विकास पर जोर दिया है तो कहीं आध्यात्मिकता (Sprituality) के विकास पर बल दिया है और कहीं इन दोनों में समन्वय करने पर बल दिया है। स्थान-स्थान पर अनेक अन्य गुणों के विकास पर भी बल दिया है। यहाँ हम उन सब उद्देश्यों को शीर्षकरबद्ध कर संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

मूल उद्देश्य

सम्पूर्ण मानव का विकास (Development of total Human Being)

सम्पूर्ण मानव से इनका तात्पर्य एक ऐसे मानव से है जो चेतनायुक्त हो, जो जाति, संस्कृति, धर्म व क्षेत्र आदि किसी भी आधार पर पूर्वाग्रहों एवं पूर्वध

NOTES

ारणाओं से मुक्त हो, जो घृणा वथा हिंसा आदि दुर्भावनाओं से मुक्त हो और जो प्रेम भावना से युक्त हो, जो जीवन का अर्थ एवं उद्देश्य समझ सके, जो वैज्ञानिक बुद्धि एवं आध्यात्मिकता में सही समन्वय कर सके और जो अपने लिए नए मूल्यों एवं नई संस्कृति का निर्माण कर सके एवं मानव मात्र के जीवन को सुखी बना सके।

सहायक उद्देश्य

जे. कृष्णमूर्ति की दृष्टि से उपर्युक्त मूल उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति आवश्यक है। इन्हें हम सहायक उद्देश्य कह सकते हैं। जिन सहायक उद्देश्यों पर जे. कृष्णमूर्ति ने जोर दिया है उन्हें हम निम्नलिखित रूप में शीर्षकबद्ध एवं क्रमबद्ध कर सकते हैं-

1. **संवेदनशीलता का विकास (Development of Sensativeness) :** जे. कृष्णमूर्ति ने एक स्थान पर इस बात पर बहुत बल दिया है कि शिक्षा बच्चों को विभिन्न अनुशासनों का ज्ञान कराने के साथ-साथ उन्हें संवेदनशील बनाए। संवेदनशीलता को इन्होंने बहुत व्यापक रूप में लिया है। इनकी दृष्टि से बच्चों में प्रकृति और मानव मात्र के प्रति प्रेम उत्पन्न करना ही सच्ची संवेदनशीलता है। ऐसी संवेदनशीलता में घृणा, द्वेष, क्रोध और हिंसा को कोई स्थान नहीं होगा, अच्चें भय और प्रतिस्पर्द्धा से मुक्त होंगे और तब संसार में युद्ध नहीं होंगे, हिंसा नहीं होगी।

2. **सृजनात्मकता का विकास (Development of Creativity) :** सृजनात्मकता को भी जे. कृष्णमूर्ति ने बहुत व्यापक रूप में लिया है। सृजनात्मकता से इनका तात्पर्य शरीर, मन और आत्मा, तीनों की सृजनशीलता से है। इनकी दृष्टि से बच्चों पर दूसरों के विचार नहीं थोपे जाएँ, उन्हें अपने आप निर्णय करने एवं कार्य करने के स्वतन्त्र अवसर दिए जाएँ। इसके लिए भयमुक्त वातावरण आवश्यक होता है।

3. **वैज्ञानिक बुद्धि का विकास (Development of Scientific Mind)** : जे. कृष्णमूर्ति विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के विरोधी नहीं थे, ये तो विज्ञान एवं तकनीकी का मानव विरोधी प्रयोग करने के विरोधी थे। ये चाहते थे कि इनका प्रयोग मानव मात्र के कल्याण के लिए हो। वैज्ञानिक बुद्धि से इनका तात्पर्य तथ्यों के वास्तविक स्वरूप को जानने से था।

4. **आध्यात्मिकता का विकास (Development of Spirituality) :** आध्यात्मिकता के विकास से इनका तात्पर्य किसी धर्म विशेष को मानने

से नहीं था। ये तो इस बात पर आश्चर्य करते थे कि जिस धर्म का निर्माण मनुष्य ने स्वयं किया है वह उस धर्म का गुलाम बनकर रह गया है और धर्म विशेष की गुलामी में उसका स्वयं का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है।

5. **वैज्ञानिक बुद्धि एवं आध्यात्मिकता में समन्वय (Synthesis between Seientific Mind and Spirituality) :** जे. कृष्णमूर्ति ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि मनुष्य की वैज्ञानिक बुद्धि एवं उसकी आध्यात्मिक चेतना, दोनों का लक्ष्य मानव मात्र का कल्याण होना चाहिए, विज्ञान एवं तकनीकी का प्रयोग रचनात्मक कार्यों में किया जाना चाहिए और आध्यात्मिक चेतना का प्रयोग मानव मात्र के कल्याण के लिए किया जाना चाहिए।

6. **व्यावसायिक प्रशिक्षण (Vocational Training) :** जे. कृष्णमूर्ति यह तथ्य स्वीकार करते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका के लिए कोई न कोई व्यवसाय अवश्य करना पड़ता है। ये शिक्षा द्वारा उन्हें किसी न किसी व्यवसाय में प्रशिक्षित करना आवश्यक मानते थे।

7. **नई संस्कृति का निर्माण (Creation of a New Culture) :** जे. कृष्णमूर्ति ने स्पष्ट किया कि अनेक संस्कृतियाँ हमें संकीर्णता के दायरे में रखती हैं। आज एक ऐसी संस्कृति एवं मूल्यों की आवश्यकता है जो पूर्वाग्रहों एवं पूर्वधारणाओं से मुक्त हो और मानव मात्र के कल्याण की ओर उन्मुख हो। इनकी दृष्टि से शिक्षा का एक उद्देश्य मनुष्य में ऐसी शक्ति एवं अन्तःचेतना का विकास करना होना चाहिए जो मनुष्य में ऐसी चेतना विकसित करे कि वे पूर्वाग्रहों के विरुद्ध दृढ़तापूर्वक खड़े हो सकें और नई संस्कृति एवं नए मूल्यों का निर्माण कर सकें जिससे एकीकृत मानव (Integrated Man) का निर्माण हो, एक ऐसे मानव का जो जीवन को समग्ररूप से इस प्रकार व्यतीत करें कि संसार भर के मनुष्य सुख-शान्ति से रह सकें।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा की पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए जो सम्पूर्ण मानव का विकास कर सके। इन्होंने भौतिक ज्ञान एवं व्यावसायिक शिक्षा हेतु विज्ञान एवं तकनीकी, जीवन यापन हेतु व्यावसायिक प्रशिक्षण और सौन्दर्य बोध एवं सृजनात्मकता के विकास के लिए कला, संगीत व कविता को पाठ्यचर्या में स्थान देने पर जोर दिया है।

NOTES

शिक्षण विधि

जे. कृष्णमूर्ति की दृष्टि से शिक्षण एक ऐसा अनुभव है जिसमें शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों एक ही अनुभव में हिस्सा ग्रहण कर रहे होते हैं। इनकी दृष्टि से शिक्षण चाहे जिस विधि से किया जाए पर उसमें ध्यान (Attention), श्रवण (Listening) और भय मुक्त वातावरण का बड़ा महत्व है, शान्ति का बड़ा महत्त्व है, प्रेम का बड़ा महत्त्व है और सौहाद्रपूर्ण वातावरण का बड़ा महत्त्व है। ये सबसे अधिक बल निरीक्षण, परीक्षण, अनुभव और स्वाध्याय पर देते थे।

अनुशासन

जे. कृष्णमूर्ति आत्मानुशासन के परम्परागत सिद्धान्तों को नहीं मानते थे। इनके अनुसार इस प्रकार का अनुशासन तथ्य और ईश्वर को पहचानने में बाधक होता है। इनकी दृष्टि से बच्चों को बाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार की स्वतंत्रता होनी चाहिए। स्वतंन्त्रता का अर्थ स्वच्छन्दता से नहीं है, स्वच्छन्दता से तो अव्यवस्था फैलती है, स्वतन्त्रता का अर्थ दूसरे व्यक्तियों का ध्यान रखते हुए अपने कार्यो का सम्पादन करना है। स्वतन्त्रता में दूसरों के प्रति नम्रता, विवेकशीलता और परिवेश के प्रति सजगता होना आवश्यक है। इनकी दृष्टि से वास्तविक रूप में स्वतन्त्र वह व्यक्ति है जो विचारों के साथ-साथ लालच, ईर्ष्या, महत्त्वाकांक्षा और निर्दयता जैसे दोषों से दूर हो, स्वतन्त्र हो।

शिक्षक

जे. कृष्णमूर्ति के मत से शिक्षक को सही रूप में एकीकृत मानव (Integrated Man) होना चाहिए। इनकी दृष्टि से बालकों के साथ शिक्षक का व्यवहार प्रेमपूर्ण होना चाहिए तथा धैर्यपूर्ण होना चाहिए। शिक्षक का कार्य छात्र को स्वयं सीखने में सहायता करना है, उसे अपनी ओर से बताना नहीं है। इनकी दृष्टि से अच्छा शिक्षक वह है जो बच्चों का प्रेम व विश्वास जीत लेता है।

शिक्षार्थी जे. कृष्णमूर्ति बालक के व्यक्तित्व का आदर करते थे, ये उसके ऊपर बाहर से कोई नियम, सिद्धान्त, अथवा मूल्य थोपने का विरोध करते थे, उसके ऊपर किसी भी प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक पूर्वाग्रहों को थोपने का विरोध करते थे। ये शिक्षार्थियों में ऐसी चेतना विकसित करने पर जोर देते थे जो उन्हें स्वयं नियम, सिद्धान्त एवं मूल्यों का चयन करने में सहायक हो।

विद्यालय

जे. कृष्णमूर्ति विद्यालयों की आवश्यकता स्वीकार करते थे। इनकी दृष्टि से विद्यालय शान्त वातावरण में स्थापित होने चाहिए, इनमें छात्र-छात्राओं की संख्या सीमित होनी चाहिए और इनके प्रशासन में शिक्षक एवं शिक्षार्थियों की भूमिका होनी चाहिए। विद्यालयों में शिक्षक परिषद का निर्माण हो, यह परिषद विद्यालयों की समस्याओं पर विचार करे। साथ ही छात्र परिषद का भी निर्माण किया जाए जिसमें शिक्षकों का प्रतिनिधित्व हो। छात्र परिषद पर विद्यालय की सफाई, विद्यालय अनुशासन, भोजन आदि का कार्यभार सौंपा जाए। विद्यालयों में ऐसे वातावरण का निर्माण होना चाहिए जिसमें बच्चे स्वयं को पहचान सकें, अपनी शक्तियों को पहचान सकें और अपनी समस्याओं का हल स्वयं कर सकें। जे. कृष्णमूर्ति फाउन्डेशन द्वारा स्थापित विद्यालय-द भगीरथी वैली स्कूल, रानारी (उत्तरकाशी उत्तरांचल), ऋषि वैली स्कूल (चिन्नूर, आन्ध्र प्रदेश); राजघाट एनी बेसेंट स्कूल, राजघाट, वाराणसी (उ० प्र०); बसन्त कॉलेज फार वूमैन, राजघाट, वाराणसी (उ. प्र.); द स्कूल-दामोदर गार्टनस, बसन्त एवेन्यु, मद्रास (चेन्नई); द वैली स्कूल हरिद्वानम, 17 के. एम. कनकपुरा रोड, थालगुनी (बैंगलोर); सहयाद्रि स्कूल, डोगर्षि रोड, बम्बई; ब्राक वुड पार्क स्कूल, बेमडीन, हेन्यशायर (यू. के.) और द ऑफ ग्रोव स्कूल, ओजई, कैलिफोर्निया (यू. एस. ए.) इसी प्रकार के विद्यालय हैं।

शिक्षा के अन्य पक्ष

जन शिक्षा- यूँ जे. कृष्णमूर्ति ने कहीं भी जन शिक्षा का प्रश्न नहीं उठाया है पर वे जिस समाज का निर्माण करना चाहते थे वह बिना जन शिक्षा के नहीं हो सकता।

स्त्री शिक्षा - जे. कृष्णमूर्ति ने स्त्री शिक्षा पर भी अलग से विचार व्यक्त नहीं किए हैं। इससे ज्ञात होता है कि वे स्त्री-पुरुष की शिक्षा में भेद नहीं करते थे।

व्यावसायिक शिक्षा - जे. कृष्णमूर्ति की दृष्टि से व्यावसायिक शिक्षा जीवन की आवश्यकता है पर यह एक अधूरी शिक्षा है, पूर्ण शिक्षा तो इनकी दृष्टि से वही है जो समस्त मानव का विकास करे, उसके बाह्य स्वरूप एवं अन्त:करण दोनों का विकास करे।

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा - जे. कृष्णमूर्ति किसी भी धर्म के पूर्व निश्चित नियमों के पालन को धार्मिक शिक्षा नहीं मानते थे। ये ऐसी धार्मिक शिक्षा पर

बल देते थे जो बच्चों में दूसरे व्यक्तियों के विषय में समझ पैदा करे, वस्तुओं एवं प्रकृति के विषय में समझ पैदा करे, उनमें बौद्धिक स्वतन्त्रता का विकास करे और उन्हें अनुशासन के परम्परागत सिद्धान्तों एवं बन्धनों से मुक्त करे।

जे. कृष्णमूर्ति के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन

(Evaluation of Educational Thought of J. Krishnamurti)

किसी वस्तु, क्रिया अथवा विचार का मूल्यांकन कुछ पूर्व निश्चित मानदण्डों के आधार पर किया जाता है। शिक्षा मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया है अत: शिक्षा सम्बन्धी किसी भी विचार अथवा प्रयोग का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाना चाहिए कि वह मनुष्य के निर्माण में कहाँ तक सहायक है, उपयोगी है, एक ऐसे मनुष्य के निर्माण में जैसे मनुष्य का निर्माण समाज विशेष चाहता है। हम जे. कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन इसी कसौटी पर करेंगे।

शिक्षा का सम्प्रत्यय

जे. कृष्ण मूर्ति तथ्यों के रटने, परीक्षा उत्तीर्ण करने और उपाधियाँ प्राप्त करने को शिक्षा नहीं मानते थे, इनकी दृष्टि से सच्ची शिक्षा वह है जो अन्त:मन का विकास करे, अन्त:चेतना का विकास करे।

इस सन्दर्भ में पहली बात तो यही है कि जे. कृष्णमूर्ति ने शिक्षा को साधन के रूप में ही परिभाषित किया है, उसके प्रक्रिया स्वरूप को स्पष्ट नहीं किया है और दूसरी बात यह है कि साधन रूप में भी उसे अनत:मन और अन्त:चेतना के विकास तक सीमित रखा है, शिक्षा के माध्यम तो मनुष्य का सर्वागींण विकास होना चाहिए।

शिक्षा के उद्देश्य

जे. कृष्णमूर्ति ने स्थान-स्थान पर शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा की है और अलग-अलग रूप में की है। उस सब चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि ये शिक्षा द्वारा मनुष्य को पूर्ण मनुष्य में परिवर्तित करना चाहते थे, उसे संवेदनशील बनाना चाहते थे, सृजनशीलता बनाना चाहेते थे, उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना चाहते थे, उसमें आध्यात्मिक चेतना का विकास करना चाहते थे, उसमें वैज्ञानिक बुद्धि व आध्यात्मिक चेतना में समन्वय स्थापित करना चाहते थे और उसे व्यावसायिक प्रशिक्षण देना चाहते थे। इन्होंने

शिक्षा द्वारा बच्चों में नई संस्कृति और नए मूल्यों का निर्माण करने की क्षमता विकसित करने पर भी बहुत बल दिया है।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए जो सम्पूर्ण मानव का विकास कर सके। इसके लिए इन्होंने पाठ्यचर्या में विज्ञान तथा तकनीकी, व्यावसायिक प्रशिक्षण, कला, संगीत एवं कविता को स्थान दिया है।

साफ जाहिर है कि इन्होंने जो पाठ्यचर्या निर्मित की है, उसके द्वारा व्यक्ति को सामान्य व्यक्ति भी नहीं बनाया जा सकता, सम्पूर्ण मानव की तो बात ही क्या है। फिर सम्पूर्ण मानव से इनका अपना अर्थ था, उसमें अन्त:चेतना के विकास पर बहुत बल है। और इस अन्त:चेतना के विकास हेतु पाठ्यक्रम में कोई प्रावधान नहीं है।

अनुशासन

जे. कृष्णमूर्ति आत्मानुशासन के परम्परागत सिद्धान्तों को नहीं मानते थे। इनके अनुसार पूर्व निश्चित सिद्धान्तों से वास्तविक अनुशासन की प्राप्ति नहीं की जा सकती। इनकी दृष्टि से वास्तविक अनुशासन की प्राप्ति स्वतन्त्र वातावरण में ही हो सकती है, बच्चों को बाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार की स्वतन्त्रता देने से ही हो सकती है। पर यह स्वतन्त्रता, स्वच्छन्दता नहीं होनी चाहिए, यह स्वतन्त्रता विवेकपूर्ण होनी चाहिए और विनयपूर्ण होनी चाहिए।

जे. कृष्णमूर्ति ने स्वयं ही तो अन्त:चेतना से निर्देशित होने की बात कही है और स्वयं ही आत्मचेतना तत्व से स्थापित अनुशासन को अनुशासन नहीं माना है, यह विरोधाभास नहीं तो और क्या है? हमारी दृष्टि से वास्तविक अनुशासन की प्राप्ति हेतु स्वतन्त्रता एवं नियन्त्रण दोनों की आवश्यकता है, कब कितनी स्वतन्त्रता दी जाएगी और इसका स्वरूप क्या होगा, कब कितना नियन्त्रण किया जाएगा और इसका आकार क्या होगा, यह परिस्थिति विशेष पर निर्भर करता है, इसी के चयन में शिक्षकों को निपुण होना चाहिए।

शिक्षक

जे. कृष्णमूर्ति के मत से शिक्षक को स्वयं पूर्ण मानव (Total Human Beign) एवं एकीकृत मानव (Integrated) होना चाहिए, उसी स्थिति में वह बच्चों को पूर्ण मानव एवं एकीकृत मानव बना सकता है। इन्होंने दो बातों पर और बल दिया है- एक यह कि शिक्षक को बच्चों से प्रेम करना चाहिए, उनके साथ

NOTES

प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए और दूसरी यह कि उसे शिक्षार्थियों की सीखने में सहायता भर करनी चाहिए, सीखेंगे तो वे स्वयं ही।

शिक्षार्थी

जे. कृष्णमूर्ति शिक्षार्थियों पर पूर्व निश्चित मूल्य एवं सिद्धान्त थोपने के विरुद्ध थे। इन्होंने कहा कि छात्रों को पूर्व निश्चित मूल्य एवं सिद्धान्तों के चयन एवं नए मूल्य एवं सिद्धान्तों के निर्माण की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

बच्चों से यह आशा करना कि वे सही मल्यों एवं सिद्धान्तों का चयन कर सकेंगे, एक दिवा स्वप्न है। वे नए मूल्यों एवं सिद्धान्तों का निर्माण स्वयं करें, यह सोच भी युक्ति संगत नहीं है। प्राचीन के अभाव में नवीन ज्ञान का निर्माण कैसे किया जा कसता है, नीव पर ही तो इमारत खड़ी की जाती है।

विद्यालय

जे. कृष्णमूर्ति की दृष्टि से विद्यालयों का वातावरण शान्त होना चाहिए, यह तभी संभव है जब उनका निर्माण शान्त वातावरण में किया जाए और उनमें छात्र-छात्राओं की संख्या अधिक न हो। दूसरी बात जिस पर इन्होंने बल दिया है वह है- छात्रों और शिक्षकों में निकट का सम्बन्ध। यह भी तभी सम्भव है जब छात्रों की संख्या कम हो। तीसरी बात जिस पर इन्होंने बल दिया है वह है विद्यालयों के प्रशासन में शिक्षक एवं शिक्षार्थियों की भागीदारी। और सबसे अधिक बल है प्रेमपूर्ण व्यवहार एवं सोचने-समझने के स्वतंत्र अवसरों पर।

उचित शिक्षा व्यवस्था के लिए तो विद्यालयों का स्वरूप ऐसा ही होना चाहिए जैसा जे. कृष्णमूर्ति चाहते थे परन्तु हमारे देश की तो विडम्बना है, यहाँ जनसंख्या अधिक और साधन कम हैं।

शिक्षा के अन्य पक्ष

जे. कृष्णमूर्ति का चिन्तन मुख्य रूप से शिक्षा के उद्देश्यों की ओर उन्मुख रहा है पर जब वे मानवमात्र के कल्याण की बात करते हैं तो उससे स्पष्ट हो जाता है कि वे जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा के पक्षधर थे। वैसे भी इन्होंने व्यावसायिक प्रशिक्षण की बात स्वीकार की है। धार्मिक शिक्षा की चर्चा तो इन्होंने यत्र-तत्र की है परन्तु धार्मिक शिक्षा के नाम पर किसी धर्म अथवा किन्हीं धर्म अथवा सभी धर्मों के सिद्धान्तों की शिक्षा का इन्होंने विरोध किया है। ये धार्मिक शिक्षा के नाम पर बच्चों को ऐसी शिक्षा दने पर बल देते थे जो

दूसरे व्यक्तियों के विषय में सही समझ पैदा करे, वस्तुओं तथा प्रकृति के विषय में सही समझ पैदा करे, उनमें स्वतन्त्र बुद्धि का विकास करे।

इससे स्पष्ट है कि इन्होंने जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा किसी के भी स्वरूप को स्पष्ट नहीं किया है। धार्मिक शिक्षा का तो इन्होंने अर्थ ही बदल दिया है। इन्होंने कुछ नया कहा है, इस दृष्टि से इनकी वाह-वाह भले की कीजिए पर इन्होंने जो कहा है, वह कितना स्टीक है इसकी दृष्टि से इनकी वाह-वाह नही की जा सकती।

जे. कृष्णमूर्ति का प्रभाव

जे. कृष्णमूर्ति का विशेष रूप से बुद्धिवादियों पर प्रभाव पड़ा। कुछ बुद्धिवादियों को उनकी यह बात बड़ी आकर्षक लगी कि मनुष्य को किसी धर्म, दर्शन, जाति, समाज व राष्ट्र के बन्धन से निकल कर मानव मात्र के कल्याण की ओर बढ़ना चाहिए। इनकी दृष्टि से यह तभी सम्भव है जब मनुष्यों को प्रारम्भ से ही इनकी संकीर्णता से निकल कर उनकी आत्मचेतना से निर्देशित होने का प्रशिक्षण दिया जाए। इनके आत्मज्ञान, आत्मचेतना और आत्मबोध के सम्प्रत्यय भी कुछ शिक्षा प्रेमियों को बहुत अच्छे लगे। 'कृष्णमूर्ति फाउन्डेशन' अपने द्वारा स्थापित विद्यालयों में इसके लिए प्रयत्नशील भी है, परन्तु बिना पूर्व आधार के हाथ कुछ कम ही लगा है।

उपसंहार

जे. कृष्णमूर्ति पर प्रारम्भ में घर के संस्कार पड़े, इसके बाद इनके ऊपर एनी बेसेंट का प्रभाव पड़ा और जब इंग्लैण्ड पहुँचे तो इन पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ा। लगता है कि जब ये घर में पड़े संस्कारों की दृष्टि से देखते थे तो इन्हें एनी बेसेंट द्वारा दिखाया गया मार्ग गलत जान पड़ता था, जब एनी बेसेंट की सोच से देखते थे तो परिवार एवं इंग्लैण्ड के प्रभाव असत्य दिखाई पड़ते थे और जब इंग्लैण्ड के प्रभाव में भारतीय धर्म दर्शन को देखते थे तो इन्हें ये सब असत्य दिखाई देते थे। इसलिए इन्होंने इन सबसे ऊपर उठने के लिए अन्तःचेतना का सहारा लिया। भूत एवं वर्तमान की मान्यताओं का विरोध करने वाले प्रायः पूजे जाते हैं; लगता है यही जे. कृष्णमूर्ति के साथ हुआ है। आप ही बताएँ-द्वेष के स्थान पर प्रेम का उपदेश किसने नहीं दिया, संघर्ष के स्थान पर सहयोग का उपदेश किसन नहीं दिया, युद्ध के स्थान पर शान्ति का उपदेश किसने नहीं दिया। बस इन्हीं बातों को कुद अपने तरीके से प्रस्तुत करने में जे. कृष्णमूर्ति का महत्वपूर्ण योगदान है।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. जे. कृष्णमूर्ति का जीवन परिचय दीजिए और उनके दार्शनिक विचारों की विवेचना कीजिए।

2. जे. कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचारों की विवेचना कीजिए।

3. जे. कृष्णमूर्ति के शैक्षिक चिन्तन एवं शिक्षा जगत को उनकी देन का मूल्यांकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. जे. कृष्णमूर्ति का पूर्ण मानव से क्या तात्पर्य था?

2. जे. कृष्णमूर्ति का एकीकृत मानव से क्या तात्पर्य था?

3. जे. कृष्णमूर्ति पूर्वाग्रहों एवं पूर्वधारणाओं से मुक्त रहने को क्यों कहते थे?

1 विविधता की अवधारणा

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- भारत में विविधता
- हम विविधता को कैसे समझें
- विविधता का अर्थ
- वर्तमान समय में देश में विविधता
- अक्षमता
- सीखने तथा खेल में विविधता
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे-

- भारत में विविधता
- हम विविधता को कैसे समझें
- विविधता का अर्थ
- वर्तमान समय में देश में विविधता
- अक्षमता
- सीखने तथा खेल में विविधता

प्राक्कथन

जाति व्यवस्था असमानता का एक उदाहरण है। इस व्यवस्था में समाज को अलग-अलग समूहों में बांटा गया। इस बँटवारे का आधार था कि लोग किस-किस तरह का काम करते हैं। लोग जिस जाति में पैदा होते थे, उसे बदल नहीं सकते थे। उदाहरण के लिए अरग आप कुम्हार के घर में पैदा हो गई तो आपकी जाति कुम्हार ही होती और आप बस वही बन सकते थे। कोई व्यक्ति जाति से जुड़ा अपना पेशा भी नहीं बदल सकता था, इसलिए उस ज्ञान के अलावा किस अन्य ज्ञान को प्राप्त करना आवश्यक नहीं समझा जाता था। इससे गैर-बराबरी उत्पन्न हुई।

भारत में विविधता

भारत विविधताओं को देश है। हम विभिन्न भाषाएँ बोलते हैं। अलग-अलग त्यौहार मनाते हैं और भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन करते हैं। लेकिन गहराई से सोचें तो वास्तव में हम एक ही तरह की चीचें करते हैं केवल हमारे करने के तरीके भिन्न हैं।

हम विविधता को कैसे समझें?

लोग जब नई जगह में बसना शुरू करते थे तो उनके रहन-सहन में थोड़ा परिवर्तन आ जाता था। कुछ चीजें वे नई जगह की अपना लेते थे और कुछ चीजों में वे पुराने ढर्रे पर ही चलते रहत थे। इस प्रकार की भाषा, भोजन, संगीत, धर्म आदि में नए तथा पुराने का मिश्रण होता रहता था। उनकी संस्कृति तथा नई जगह की संस्कृति में आदान-प्रदान होता और धीरे-धीरे एक मिश्रित यानी मिली-जुली संस्कृति उभरती।

ठीक इसी प्रकार लोग अलग-अलग तरह की भौगोलिक स्थितियों से किस प्रकार सामंजस्य बैठाते हैं, उससे भी विविधता उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए समुद्र के पास रहने में और पहाड़ी इलाकों में रहने में बड़ा अन्तर है। न केवल वहाँ के लोगों के कपड़ों एवं खान-पान की आदतों में फर्क होगा, बल्कि जिस तरह का काम वे करेंगे, वे भी अलग होंगे। शहरों में अक्सर लोग यह भूल जाते हैं कि उनका जीवन उनके भौतिक वातावरण से किस तरह घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है। ऐसा इसलिए कि शहरों में लोग विरले ही अपनी सब्जी या अनाज उगाते हैं। वे इन चीजों के लिए बाजार पर ही निर्भर रहते हैं।

आइए, भारत के दो भागों- लद्दाख और केरल के उदाहरण के माध्यम से यह समझने की कोशिश करें कि किसी क्षेत्र की विविधता पर उसके ऐतिहासिक तथा भौगोलिक कारकों का क्या असर पड़ता है।

लद्दाख : जम्मू एवं कश्मीर के पूर्वी हिस्से में पहाडियों में बसा एक रेगिस्तानी क्षेत्र है। यहाँ पर बहुत ही कम खेती संभव है, क्योंकि इस क्षेत्र में बारिश बिल्कुल नहीं होती और यह इलाका हर वर्ष काफी लम्बे समय तक बर्फ से ढका रहता है। इस क्षेत्र में बहुत ही कम पेड़ उग पाते हैं। पीने के पानी के लिए लोग गर्मी के महीनों में पिघलने वाली बर्फ पर निर्भर रहते हैं। यहाँ के लोग एक खास किस्म की भेड़ पालते हैं जिससे पश्मीना ऊन मिलता है। यह ऊन कीमती है, इसलिए पश्मीना शाल बड़ी महँगी होती है। लद्दाख के लोग बड़ी सावधानी से इस ऊन को एकत्रित करके कश्मीर के व्यापारियों को बेच देते हैं। मुख्यतः कश्मीर में ही पश्मीना शालें बुनी जाती हैं।

NOTES

यहाँ के लोग दूध से बने पदार्थ, जैसे मक्खन, चीज (खास तरह का छेना) एवं मांस का सेवन करते हैं। हर एक परिवार के पास कुछ गाय, बकरी और याक होते हैं। रेगिस्तान होने का यह मतलब नहीं कि व्यापारी यहाँ आने के लिए आकर्षित नहीं हुए। लद्दाख तो व्यापार के लिए एक अच्छा रास्ता माना गया क्योंकि यहाँ कई घाटियाँ हैं जिनसे गुजरकर मध्य एशिया के काफिले उस क्षेत्र में पहुँचते थे आज तिम्बत कहते हैं। ये काफिले अपने साथ मसाले, कच्चा रेशम, दरियाँ आदि लेकर आते थे।

लद्दाख के रास्ते ही बौद्ध धर्म तिब्बत पहुँचा। लद्दाख को छोटा तिब्बत भी कहते हैं। करीब चार सौ साल पहले यहाँ पर लोगों का इस्लाम धर्म से परिचय हुआ तथा अब यहाँ अच्छी-खासी संख्या में मुसलमान रहते हैं। लद्दाख में गानों और कविताओं का बहुत ही समृद्ध मौखिक संग्रह है। तिब्बत का ग्रंथ केसरसागा लद्दाख में बहुत प्रचलित है। उसके स्थानीय रूप को मुसलमान तथा बौद्ध दोनों ही लोग गाते हैं और उस पर नाटक खेलते हैं।

केरल भारत के दक्षिणी-पिश्चमी भाग में बसा हुआ राज्य है। यह एक तरफ समुद्र से घिरा हुआ है और दूसरी तरफ पहाडियों से। इन पहाड़ियों पर विविध प्रकार के मसाले जैसे कालीमिर्च, लौंग, इलायची आदि उगाए जाते हैं। इन मसालों के कारण यह क्षेत्र व्यापारियों के लिए बहुत ही आकर्षक बना। सबसे पहले अरबी एवं यहूदी व्यापारी केरल आए। ऐसा मा‍ा जाता है कि ईसामसीह के धर्मदूत संतथॉमस लगभग दो हजार साल पहले यहाँ आए। अरब से कई व्यापारी यहाँ आकर बस गए। इब्नबतूता ने, जो करीब सात सौ साल पहले यहाँ

NOTES

आए, अपने यात्रा वृत्तात में मुसलमानों के जीवन का विवरण देते हुए लिखा है कि मुसलमान समुदाय की यहाँ बड़ी इज्जत थी।

वास्को डि गामा पानी के जहाज से यहाँ पहुँचे तो पुर्तगालियों ने यूरोप से भारत तक का समुद्री रास्ता जाना। सभी ऐतिहासिक प्रभावों के कारण केरल के लोग विभिन्न धर्मों का पालन करते हैं जिनमें यहूदी, इस्लाम, ईसाई, हिन्दू एवं बौद्ध धर्म सम्मिलित हैं। चीन के व्यापारी भी केरल आए। यहाँ पर मछली पकड़ने के लिए जो जाल इस्तेमाल किए जाते हैं वे चीनी जालों से हू-ब-हू मिलते हैं और उन्हें 'चीना-वला' कहते हैं। तलने के लिए लोग जो बर्तन इस्तेमाल करते हैं उसे -चीनाचट्टी' कहते हैं। इसमें 'चीन' शब्द इस बात की ओर इशारा करता है कि उसकी उत्पत्ति कहाँ हुई होगी। केरल की उपजाऊ जमीन तथा जलवायु चावल की खेती के लिए बहुत उपयुक्त है तथा वहाँ के अधि कतर लोग मछली, सब्जी और चावल का सेवन करते हैं।

जहाँ केरल और लद्दाख की भौगोलिक स्थितियाँ एक-दूसरे के बिल्कुल भिन्न हैं, वहीं हम यह भी देखते हैं कि दोनों क्षेत्रों के इतिहास में एक ही प्रकार के सांस्कृतिक प्रभाव हैं। दोनों ही क्षेत्रों को चीन और अरब से आने वाले व्यापारियों ने प्रभावित किया। जहाँ केरल की भौगोलिक स्थिति ने मसालों की खेती संभव बनाई, वहीं लद्दाख की विशेष भौगोलिक स्थिति तथा ऊन ने व्यापारियों को अपनी ओर आकर्षित किया। इस तरह पता चलता है किसी भी क्षेत्र के सांस्कृतिक जीवन का उसके इतिहास और भूगोल से प्रायः घनिष्ठ रिश्ता होता है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अलग-अलग परिवेशों के लोग शामिल सम्मिलित थे। उन्होंने एक जुट होकर आंदोलन किया, इकट्टे जेल गए तथा अंग्रेजों का अलग-अलग तरीकों से विरोध किया। अंग्रेजों ने सोचा था कि वे भारत के लोगों में फूट डाल सकते हैं क्योंकि उनमें काफी विविधताएँ हैं और इस तरह उनका राज चलता रहेगा। मगर लोगों ने दिखला दिया कि वे एक-दूसरे से चाहे कितने ही भिन्न हों, अंग्रेजों के खिलाफ लड़ी जाने वाली लड़ाई में वे सब एक थे।

दिन खून के हमारे, प्यारे न भूल जाना
खुशियों में अपनी हम पर, आँसू बहा के जाना
सैयाद ने हमारे, चुन-चुन के फूल तोड़े
वीरान इस चमन में, कोई गुल खिला के जाना

दिन खून के हमारे-गोली खा के सोये, जलियाँबाग में हम
सूनी पड़ी कब्र पर, दिया जला के जाना
दिन खून के हमारे-हिंदुओं मुस्लिमों की, होती है आज होली
बहते हैं एक रंग में, दामन भीगो के जाना
दिन खून के हमारे-कुछ जेल में पड़े हैं, कुछ कब्र में गड़े हैं
दो बूँद आँसू उन पर, प्यारे बहा के जाना
दिन खून के हमारे --*भारतीय जन नाट्यसंघ (इप्टा)*

यह गीत अमृतसर में हुए जलियाँवाला बाग हत्याकांड के बाद गाया जाता था। इस हत्याकांड में एक ब्रिटिश जनरल ने उन शांतिप्रिय, निहत्थे लोगों पर खुले आम गोलियाँ चलवा दी थी जो बाग में इकट्ठे होकर सभा का आयोजन कर रहे थे। महिला-पुरुष, हिंदू-मुसलमान एवं सिख-कितने सारे लोग थे जो अंग्रेजों की की पक्षपातपूर्ण नीति का विरोध करने के लिए एकत्रित हुए थे। उसमें से बहुत लोगों की जानें गई और उससे भी ज्यादा घायल हुए। यह गीत उन्हीं शहीदों की याद में गाया गया था।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ही भारत के झंडे की परिकल्पना की गई थी। इस झंडे को सारे भारत में लोगों ने अंग्रेजी के खिलाफ प्रयोग किया था। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी किताब भारत की खोज में लिखा कि भारतीय एकता कोई बाहर से थोपी हुई चीज नहीं है, बल्कि यह बहुत ही गहरी है जिसके अंदर अलग-अलग तरह के विश्वास तथा प्रथाओं को स्वीकार करने की भावना है। इसमें विविधता को पहचाना और प्रोत्साहित किया जाता है। यह नेहरू ही थे जिन्होंने भारत के विविधता का वर्णन करते हुए 'अनेकता में एकता' का विचार प्रस्तुत किया था।

विविधता का अर्थ

विविधता एक बहुआयामी शब्द है। विविधताओं से असमानताओं का जन्म होता है। भारतीय संविधान समानता पर बल देता है। भारत में विविध प्रकार की विभिन्नताएँ या विविधता विद्यमान हैं। विविधता विकास के मार्ग में बाध ा उत्पन्न करती है। समानता की पोषक रही भारतीय संस्कृति वर्तमान में असमानताओं से त्रस्त है। समानता का अर्थ- जन्म, वंश, स्थान, लिंग, धर्म, जाति, पद प्रतिष्ठा आदि के आधार पर सभी नागरिकों से समान व्यवहार करने से है। वर्तमान परिस्थितियों में अपने देश में प्रत्येक क्षेत्र में भेदभाव प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। सरकार हर तरह की असमानताओं को दूर करने के लिए निरंतर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। सरकार हर तरह की असमानताओं

NOTES

को दूर करने के लिए निरंतर अग्रसर है, परन्तु इसकी जड़ें भारतीय लोगों में इस तरह बैठ गई हैं कि पक्षपात के बगैर किसी कार्य में होने ही हम कल्पना भी नहीं कर सकते। विविधता व्यक्तियों के समान अवसरों में अवरोध पैदा करती है। जिससे व्यक्ति का सर्वांगीण विकास संभव नहीं हो पाता है।

अपने समाज में व्याप्त विभिन्न असमानताओं को दूर करने में शिक्षा अपनी महती भूमिका का निर्वाह कर सकती है। इन विभिन्नताओं को दूर करने का शिक्षा का प्रथम लक्ष्य होना चाहिए। कानून के समक्ष सभी नागरिक समान हैं। संविधान भारतीय नागरिकों को विभिन्न प्रकार की स्वतंत्रतायें प्रदान करता है ताकि उनका सर्वांगीण विकास हो सके। अज्ञानता के कारण समाज का एक बड़ा वर्ग अपने अधिकारों से वंचित है। इनके अधिकारों के लिए निरंतर आवाजें उठती रही हैं फिर भी देश में सभी व्यक्तियों को समान अवसर उपलब्ध नहीं हो पाये हैं।

गरशेल ने विविधता को परिभाषित करते हुए लिखा है कि विविधता का अर्थ, योग्यता, जाति, लिंग, प्रजाति, भाषा, चिन्ता, स्वर, सामाजिक, आर्थिक स्तर विकलांगता या धर्म से संबंधित होता है।

अतः कहा जा सकता है कि यह संसार विभिन्न प्रकार की विविधता से भरा हुआ है। यहां व्यक्तियों, उनके व्यवहार व जीवनशैली, वातावरण तथा अन्य क्षेत्रों में विविधता पाई जाती हैं जैसा मनोविज्ञान यह मानता है कि कोई दो बालक एक समान नहीं होते हैं। इसी तरह विभिन्न व्यक्तियों को उनकी जाति, धर्म, लिंग, शारीरिक क्षमता, विचारधाराओं, सामाजिक, आर्थिक स्तर, मौन अभिवृत्ति मदभेदों के द्वारा पहचाना जा सकता है।

वर्तमान समय में देश में विविधता

1. **प्राकृतिक विविधता :** भारत एक विशाल देश है। भौगोलिक स्थिति के अनुसार विभिन्न भागों में विभाजित है। कहीं रेगिस्तान है तो कहीं विशाल जंगल। इसी प्रकार कहीं समतल मैदान तो कहीं पठार एवं ऊंची-ऊंची पर्वत मालाएं। जलवायु के अनुसार भी भारत श्रेणियों में विभाजित है। कोई प्रदेश ठण्डा है तो कोई अत्यधिक गर्म तो कहीं लगातार वर्षा होती है। भारत की विविधता यहां के निवासियों के रहन-सहन, भाषा, संस्कृति आदि को प्रभावित करती है।

2. **राजनैतिक विविधता :** शासन की सुविधा के अनुसार देश को 29 राज्यों एवं 7 केन्द्र शासित प्रदेशों में बाँटा गया है। अपने देश में

प्रजातांत्रिक सरकार चुनी जाती है जिसके लिए यहां अनेकों राजनैतिक दल विद्यमान हैं। संविधान सभी नागरिकों को समान राजनैतिक अधिकार देता है। परंतु अशिक्षा के कारण लोगों में राजनैतिक चेतना आज तक नहीं आ पाई। सामन्तीवादी ताकतें एंव समाज का उच्च वर्ग अपने धन एवं बाहुबल के आधार पर मतदान प्रभावित करते हैं तथा गरीब एवं अज्ञान लोगों का शारीरिक शोषण करते हैं। इस प्रकार देश में राजनैतिक विविधता के कारण भेदभाव अपने चरम पर है।

3. **सामाजिक विविधता :** भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही ऊंच नीच की भावना विद्यमान है। वर्ण व्यवस्था के कारण भारतीय समाज कभी भी समान स्थिति में नहीं आ पाया। सामान्तरवाद के कारण समाज में समानता की संकल्पना कभी साकार नहीं हो सकी। निर्बल एवं गरीब वर्ग सदैव शोषित रहे हैं। समाज के उच्च वर्ग का संसाधनों पर अधिकार रहा है। जिसके कारण निम्न वर्ग का जीवन कष्टमय रहा है। भारतीय समाज में जाति प्रथा ने भी पाव पसार रखे हैं। स्मिथ ने भारत में अत्यधिक जातियाँ होने के कारण देश को 'प्रजान्त्रीय अजायबघर' कहकर पुकारा है। यहाँ धर्म, जाति, लिंग, जन्मस्थान आदि के नाम पर सदैव भेदभाव चलता रहा है। नौकरी, व्यवसाय, राजनीति आदि में भाई-भतीजाबाद एवं लालफीताशाही के कारण सामाजिक भेदभाव निरन्तर बढ ही रहा है। जातियों के अतिरिक्त समाज कई वर्गों में विभाजित है।

4. **सांस्कृतिक विविधता :** भारतीय सांस्कृतिक विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में से एक हैं। अपनी परिवर्तनशीलता के गुण के कारण भारतीय संस्कृति सदैव अपनी पहचान रही है। हजारों वर्षों से यहाँ अनेक विदेशी शासक, तथा आक्रमणकारी आये और अपनी संस्कृति को भी साथ लाये। परन्तु भारतीय संस्कृति अपनी मौलिकता को आज भी संजोये हुए है। संस्कृति के एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी के हस्तान्तरण होने से सांस्कृतिक परम्परायें भारत में चली आ रही हैं। यहाँ भिन्न-भिन्न प्रजाति, एवं धर्म के कारण लोगों की आस्थाएँ, विश्वास, मान्यताओं एवं अनुस्ठान भी विविधता लिए हुए हैं। कई बार एक दूसरे की संस्कृति में निष्ठता के लिए लडाईयाँ भी हुई हैं। लेकिन समयचक्र में सब कछ समय के अनुकूल रहा है। संस्कृति के यहाँ के लोगों के रहन सहन जीवन शैली को भ प्रभावित किए हैं। संस्कृति की विविधता के बावजूद भी इसने समाज को जोड़े

रखने में अपनी उचित भूमिका का निर्वाह किया है। विभिन्न धार्मिक अवसरों एवं पर्वों पर हम भेदभाव भूलकर आपस में गले मिलकर संगठित होने का संदेश देते हैं।

5. **भाषायी विविधता :** भाषा एक अभिव्यक्ति का माध्यम है। भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है। यहाँ लगभग 1700 भाषाएँ बोली जाती हैं। भारतीय संविधान 22 भाषाओं को कानूनी रूप से सरकारी कार्यों के लिए मान्यता प्रदान करता है। इन भाषाओं के अतिरिक्त यहाँ अनेक बोलियाँ भी प्रचलित हैं जो कि एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र विशेष में बोली जाती हैं। भाषायी विविधता के कारण यह कहा गया है कि-

   चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर वानी।
   बीस कोस पर पगड़ी बदले, तीस कोस पर छानी॥

   भारतीय संविधान के अनुसार हिन्दी को राजभाषा का स्थान दिया गया है परन्तु दक्षिणी प्रान्तों में हिन्दी का विरोध खुलकर सामने आया है। इस कारण देश में हिन्दी, अंग्रेजी के अतिरिक्त क्षेत्रीय भाषा को सदैव प्रमुखता दी गई है। विभिन्न वर्गों के कारण उनकी भाषा भी प्रचलन में आई जिसके कारण साहित्य भी प्रभावित हुआ। अधिकांश प्रजातियों की अलग-अलग भाषा के पश्चात् भी देश में भाषायी एकता बनी रही है। अत्यधिक भाषाओं के कारण भाषायी विविधता का वर्गीकरण निश्चित नहीं रह पाया है जिसके सभी भाषाओं में एक दूसरी भाषा का मिला जुला अंश पाया जाता हे जो संगठित रखता है।

6. **लैंगिक विविधता :** सेक्स (Sex) तथा जेंण्डर (Gender) का अलग-अलग अर्थ होता है। सेक्स जन्मजात विभिन्नताओं को प्रकट करने में प्रयोग किया जाता है। लैंगिक विभिन्नता में पुरूष एवं महिलाओं में विभेद किया जाता है। समाज में जहाँ पुरुषों की स्थिति उच्च है। वहीं महिलाओं को हीन समझा जाता है। लैंगिक विभिन्नता द्वारा महिलाओं की समाज में दयनीय स्थिति है। विवाह से पूर्व उसे अपने पिता के संरक्षण में विवाह के उपरान्त उसे अपने पति के अधीन एवं वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना पड़ता है। भारतीय समाज में महिलाओं ने अधिकांश क्षेत्रों में प्रगति की है। फिर भी उनके प्रति सामाजिक जागरूकता एवं आर्थिक हिंसा बनी है। महिला शिक्षा को बढ़ावा देकर महिलाओं को उन्नति के समुचित अवसर

प्रदान करने की तत्काल आवश्यकता है।

7. **धार्मिक विविधता :** धर्म संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष हो भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। संविधान सभी धर्मों को समान रूप से मान्यता देता है। हालांकि भारत एक हिन्दू बाहुल्य राष्ट्र है लेकिन यहाँ सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना रखी जाती है। धर्मनिरपेक्ष में सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता का भाव रखा जाता है। धार्मिक विविधता के पश्चात भी राष्ट्रीय एकता के धर्मों के लोगों को एक मंच पर लाकर दृढ़ता का परिचय दिया है। देश के समस्त धर्म सम्प्रदाय अपनी–अपनी मान्यताओं द्वारा धार्मिक कार्यकलाप करने के लिए स्वतंत्र है। राष्ट्र का अपना कोई धर्म नहीं है। परन्तु यहाँ सभी धर्मों के पर्वों को समान रूप से मनाया जाता है। विविधता के उपरोक्त प्रकारों के अतिरिक्त विशेष बालकों को भी समान रूप से मनाया जाता है। विविधता के उपरोक्त प्रकारों के अतिरिक्त विशेष बालकों को भी समाज में विभिन्नता की नजरों से देखा जाता है। विशेष या विशिष्ट बालक वे होते हैं जो साधारण व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित गुणों से इस हद तक विभिन्नतायें लिए होते हैं। जिनके कारण व्यक्ति विशेष पर अतिरिक्त ध्यान देने की आवश्यकता होती है। विशिष्ट बालक सामान्य स्तर का कार्य करने में असमर्थ होते हैं। विशेष प्रकृति के बालकों को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है। अधिकांश विशेष बालक बाहय रूप से सामान्य बालकों के समान ही दिखते हैं लेकिन कई प्रकार की बाधाओं के कारण वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं का कार्य स्वयं नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार के बालकों को समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित करने के लिए समाज की सोच बदलनी होगी। समाज में व्याप्त अज्ञानता को समाप्त कर वैकल्पिक विभिन्नता के प्रति जागरूकता की तत्काल आवश्यकता है। विशिष्ट बालक सामान्य बालकों से सामाजिक मानसिक, शारीरिक व संवेगात्मक दृश्टि से निम्न होते हैं। अतः इनकी देखेरख करना तथा इनकी शिक्षा का विशिष्ट प्रावधान करना शैक्षिक अवसरों की समानता, सामाजिक न्याय एवं राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन विशिष्ट बालकों के लिए विशेष शिक्षा का प्रावधान किया गया है।

NOTES

आर्थिक विविधता

भारत में आर्थिक दृष्टि से भी विविधता पायी जाती है। यहाँ धन का असमान वितरण है। एक ओर ऐसा वर्ग है, जो कठिन परिश्रम के पश्चात् दो वक्त की रोटी लायक पैसा नहीं कमा पाता हे, वहीं दूसरी ओर ऐसा भी वर्ग है, जिसकी आर्थिक स्थिति इतनी मजबूत तथा आय इतनी अधिक है कि इस वर्ग के व्यक्तियों की गणना विश्व के धनाढ्य व्यक्तियों में की जाती है।

अक्षमता (Disability)

मानव शरीर एवं मस्तिष्क जितनी क्षमता अन्य किसी भी प्राणी में नहीं है। अत: अक्षमता ज्ञात करने के लिए क्षमता की जानकारी होना जरूरी है। मानव शरीर के किसी भी अंग, तान्त्रिका तंत्र अथवा मस्तिष्कीय भाग के क्षति ग्रस्त होने के कारण उससे सम्बन्धित क्रियाओं में अक्षमता आती है तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में शारीरिक या मानसिक सीमितता आ जाती है। ये जन्म जात नहीं होती बल्कि इससे व्यक्तिगत वन सामाजिक क्रियात्मक जिम्मेदारी को निभाने में असमर्थता आ जाती है अर्थात् अक्षमता व्यक्ति के पूरे शरीर की कार्य क्षमता की कमी से सम्बन्धित है।

International classification of impairment, disabilities and handicapped के अनुसार, "जब किसी कार्य को करने के तरीके में सामान्य व्यक्ति जैसी क्रिया नहीं दिखती अर्थात कार्य करने में बाधा या क्षति पहुँचाती है। अक्षरता को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस प्रकार परिभाषित किया है। अक्षमता मनोवैज्ञानिक, संवेगात्मक, या शरीर के किसी अंग की क्षति होती है।"

भारत में अत्यधिक विविधता है। उसे वंश, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, जाति, संप्रदाय, समुदाय, सामाजिक समूह, आर्थिक स्थिति, योग्यता के स्तर, स्वास्थ्य, पेशों, भौगोलिक क्षेत्र, जलवायु और राजनीतिक झुकाव के स्तरों द्वारा प्रकट किया जाता है। पारम्परिक रूप से, विविधता को कभी-कभी अंतर के रूप में और समस्या को संसाधन न मान न मान समस्या के रूप में महसूस किया जाता है। जबकि, विविधता को एक सकारात्मक के रूप में लेना विद्यालय के शैक्षिणिक में सुधार करने हेतु महत्वपूर्ण है।

विद्यालय के लिए विविधता का प्रबंधन और विद्यालय समुदाय में प्रत्येक छात्र को उचित अवसर और सार्थक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना एक बड़ी चुनौती होती है। अभी अपेक्षाकृत हाल ही में, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (ncf) और राइट टू एजूकेशन एक्ट 2009 (RtE) के लागू होने के साथ,

अनेकता को स्पष्ट रूप से अपनाया गया है। विद्यालय प्रमुख से यह निश्चित करने की अपेक्षा की जाती है कि विविधता को स्टाफ और छात्रों द्वारा विद्यालय और हर कक्षा में सीखने के एक संसाधन के रूप में देखा जाय। इसके अतिरिक्त उनसे, सामाजिक पूँजी, मूल संरचना, पाठ्यचर्या संबंधी इनपुटों और सुविधाओं के विकास के लिए, आवश्यक पहले कदम के रूप में अपने छात्रों और अभिभावकों के बारे में विस्तृत जानकारी संगठित करने की अपेक्षा की जाती है।

NOTES

उनके विद्यालयों में विविधता सीमा स्पष्ट और अच्छी समझ का विकास करने की कुंजी डेटा का प्रयोग करना है। विविधता पर डेटा विद्यालय प्रमुख की निम्नलिखित में मदद करता है-

- महत्वपूर्ण क्षेत्रों और मुद्दों की पहचान करने में।
- विद्यालय प्रबंधन कमेटी (एसएमसी) के साथ संयुक्त रूप से कार्य योजना का विकास करता है।
- अन्य शिक्षकों और स्थानीय समुदाय के साथ कार्य योजना का कार्यान्वयन करना।
- विद्यालय के अन्तर्गत गुणवत्तापूर्ण अध्यापन और सीखने की प्रक्रिया के समान वितरण को सुनिश्चित करने हेतु किए गए परिवर्तनों के प्रभाव की निगरानी और मापन करना।

इस इकाई में आप अपने विद्यालय के स्थानीय सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृति और भाषाई सन्दर्भ का अन्वेषण करेंगे। साथ ही आप इस डेटा के संग्रहण और प्रयोग पर भी विचार करेंगे जिससे सुनिश्चित हो कि आप, शिक्षक, अभिभावक, छात्र और स्टाफ विविधता के प्रति जागरूक हों, और से समझें एवं मान्यता दें, और वह कैसे सभी छात्रों की सीखने की प्रक्रिया परिणामों को प्रभावित करती और गहरा असर डालती है।

सीखने तथा खेल में विविधता

दलित और आदिवासी बच्चों के सरकारी स्कूल में बड़ी संख्या में आगमन को उच्च जाति के लोग सहानुभूति से नहीं देखते। जबकि साक्षरता अभियान जैसे कार्यक्रमों ने दलित, आदिवासी शिक्षा को वैधता दिलाई। जिससे ऊँची जाति की प्रतिक्रियाएँ कम दिखती हैं। फिर भी कोरकू गाँव के एक ऊँची जाति के पालक कहते मिले, "आदिवासी बच्चों के स्कूल में प्रवेश द्वारा

NOTES

स्कूलों का स्तर काफी गिर गया है। यदि मेरे पास साधन होता तो अपने बच्चे को दूसरे स्कूल में डालता। परन्तु इस क्षेत्र में सिर्फ एक ही स्कूल है।"

हरदा के प्रत्येक स्कूलों में और उज्जैन की वाल्मीकि बस्ती की सरकारी शाला (पारगंज) के अन्तर्गत जाति आधारित भेदभाव स्पष्ट रूप से व्याप्त है। उच्च वर्ण के शिक्षकों और बच्चों द्वारा दलित और आदिवासी बच्चों को बेवजह डांटना और अपमानित करना आम बात है। एक खास बस्ती में बच्चों के स्कूल से भागने का प्रमुख कारण छुआछूत पाया गया। इन स्कूलों में मित्रता का प्रमुख आधार जाति है, एक ही जाति के बच्चे, कक्षा और उसके बाहर भी एक समूह में एकत्रित रहते हैं।

पाठ्योत्तर गतिविधियाँ केवल दो उच्च शालाओं में पायी गयी। ऐसी गतिविधि यों में भी हरदा की शाला के अन्तर्गत कक्षा की भेदभाव वाली स्थिति ही दोहराई जाती है। स्कूल परिसर और कक्षा की सफाई, चाय के बर्तन धोने जैसे काम आदिवासी दलित छात्रों को दिये जाते हैं। जबकि ऊंची जाति के छात्रों का कार्य कक्षा में ताला लगाना, शिक्षकों के लिए याय तैयार करना, पानी पिलाना, आदि होता है। इस घोर जातिवादी समाज में पानी पिलाने जैसे काम विशेष महत्व रखता है, दलित और आदिवासी बच्चों को पानी पिलाने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

सामान्यत: शिक्षकों को सरोकार चन्द तेज छात्रों से होता है। सम्पूर्ण कक्षा को साथ लेकर चलना या उसे पठन-पाठन में सम्मिलित करना, दुर्लभ दृश्य है। यह पाया गया कि दलित और आदिवासी छात्र कक्षा में सबसे पीछे और चुपचाप बैठे रहते हैं। संयोग से किसी शिक्षक का ध्यान उधर जाता भी है तो केवल उनकी अयोग्यताओं को याद दिलाने के लिए।

वाल्मीकि और आदिवासी समुदाय से आए बच्चों की शैक्षिक क्षमता (एडुकैबिलिटी) पर उच्च जाति के शिक्षक हमेशा सवाल उठाते पाए गए। शिक्षक के अनुसार वाल्मीकि व आदिवासी छात्र अयोग्य हैं, इनका मानसिक स्तर कम होता है। इस तर्क को वे न पढ़ाने के बहाने के आधार पर भी इस्तेमाल करते हैं। चिन्ता की बात यह है कि मूल्यांकन के परम्परागत तरीकों द्वारा कुछ छात्रों के अच्छे प्रदर्शन के बावजूद शिक्षक अपने वर्ताब पर कायम रहे हैं। यही शिक्षकों की सामाजिक पृष्ठभूमि है। स्कूल में भी वह इसलिए कायम रहता है क्योंकि वहाँ कोई समान्तर प्रतिरोधी मूल्य नहीं है।

आरक्षण के बावजूद, गिनती में ऊँची जाति की अपेक्षा दलित-आदिवासी शिक्षक कम हैं। शिक्षकों और सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले छात्रों के

सामाजिक परिवेश की बुनियादी विसंगति यही से प्रारम्भ होती है। शिक्षक दलित-आदिवासी समुदाय के बच्चों को पढ़ाने के प्रति असन्तोष प्रकट करते हैं। एक वाक्य जो अक्सर सुनने को मिलता है, इन बच्चों में कोई संस्कार नहीं है। इन बच्चों को नहीं नहाने, कंघी नहीं करने, साफ गणवेश नहीं पहनने आदि के लिए हमेशा दण्डित होना पड़ता है।

NOTES

शिक्षकों की यह टिप्पणी छात्रों में 'सांस्कृति पूँजी' के अभाव से मिलती है। सांस्कृतिक पूँजी की अवधारणा को फ्रांसीसी समाजशास्त्री बूर्दो ने विकसित किया। जिसका तात्पर्य ऊँची संस्कृति में संस्कारिक होना है। सामाजिक चतुराई, शालीन भाषा, शिष्टाचार और फैशन आदि इस पूँजी के महत्वपूर्ण अंग हैं। यही वह सांस्कृति पूँजी है जो प्रभुत्वशाली वर्ग के बच्चों को शैक्षणिक संस्थानों में विशेष स्थान दिलाती है। भाषा का ही उदाहरण ले-चूंचड़ा की प्राथमिक और माध्यमिक शाला में भाषा को लेकर काफी परेशानी है। ऐसी दिक्कतें अधिकतर कोरकू बच्चों को होती हैं। क्योंकि कोरकू और हिन्दी में बहुत अन्तर है। बच्चे इस स्कूली भाषा का प्रयोग अपने घर में नहीं करते। इसलिए वे कक्षा में बोलने से घबराते हैं। उनकी सम्प्रेषण क्षमता का विकास नहीं होता है, शैक्षिणि विकास रुक जाता है। कक्षा की भाषा को न समझ और बोल पाने से वे कक्षा से अलग महसूस करते हैं। ऐसे बच्चों का अलग ही समूह बन जाता है।

इस प्रकार स्कूल की अपेक्षाओं के मापदण्ड और बच्चों के घर की स्थिति में अत्यधिक फर्क है। स्कूल लगने का समय सभी स्कूलों में निर्धारित है। इसको परिवर्तित करने का अधिकार स्कूलों को नहीं है (ई.जी.एस. शालाओं को छोड़कर)। यह समय, उन बच्चों व समुदाय की दिनचर्या से संबंधित है या नहीं, जो स्कूल आ रहे हैं, इस पर ध्यान नहीं जाता। ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों को मवेशी चराने या खेत में मदद करनी पड़ती हैं। लड़कियों के जिम्मे घर के काम होते हैं। इस प्रकार से बच्चों के लिए घर के काम अनिवार्य हैं। स्कूल का शैक्षिक कैलेण्डर अगर समुदाय के अनुरूप हो तो स्कूल में बच्चों की साझेदारी बढ़ेगी इसमें कोई शंका नहीं। फसल की कटाई के समय महीनों कक्षाएँ खाली रहती हैं। आदिवासी गाँवों में प्रवास करते हैं। यही समय स्कूलों में वार्षिक परीक्षा का भी होता है। चूंचड़ा के स्कूल न जाने वाले कुछ ऐसे बच्चे मिले जो प्रवास से परीक्षा नहीं दे सके और स्कूल से बाहर हो गए।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. विविधता की समझ की सविस्तार व्याख्या कीजिए।
2. विविधता से आप क्या समझते हैं? वर्तमान समय में देश में किन-किन क्षेत्रों में विविधता विद्यमान है? स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. असक्षमता से आप क्या समझते हैं?
2. सीखने तथा खेल में विविधता से आपका क्या तात्पर्य है?

NOTES

2 विभिन्न सीखने की आवश्यकताओं का सम्बोधन

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों से अभिप्राय
- सामान्य कार्यशीलता में निर्णायक क्षेत्र
  - दृष्टि
  - श्रवण शक्ति
  - गतिशीलता
  - संप्रेषण
  - सामाजिक-भावात्मक संबंध
  - बुद्धिमत्ता
  - आर्थिक रूप से सुविधवंचित बच्चे
- क्षति, अपंगता एवं क्षमता
- अपंग व्यक्तियों के प्रति हमारी मान्यताएँ एवं अभिवृत्तियाँ
- अशिक्षित बनाम अशिक्षणीय
- विभिन्न प्रकार के अनुभव एवं उनकी प्रकृति
  - कुछ भाव ;पी.आर. रामानुजम)
- बच्चे पर अपंगता का प्रभाव
  - बच्चे के शैक्षिक कार्यक्रम की योजना बनाना
  - अभिभावकों के साथ संपर्क रखना
- मानसिक अपंगता
  - मानसिक मन्दता क्या है?
  - मानसिक मन्दता के स्तर
  - मानसिक मन्दता वाले बच्चों के कुछ लक्षण
  - मानसिक मन्दता मानसिक रोग नहीं है
  - मंदबुद्धि बच्चों को पहचानना
  - मानिसिक मन्दता के कारण
  - मानसिक रूप से अक्षम बच्चों के साथ कार्य करना
  - बुद्धि बालकों की शिक्षा
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे-

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों से अभिप्राय
- सामान्य कार्यशीलता में निर्णायक क्षेत्र
  - दृष्टि
  - श्रवण शक्ति
  - गतिशीलता
  - संप्रेषण
  - सामाजिक-भावात्मक संबंध
  - बुद्धिमत्ता
  - आर्थिक रूप से सुविधवंचित बच्चे
- क्षति, अपंगता एवं क्षमता
- अपंग व्यक्तियों के प्रति हमारी मान्यताएँ एवं अभिवृत्तियाँ
- अशिक्षित बनाम अशिक्षणीय
- विभिन्न प्रकार के अनुभव एवं उनकी प्रकृति
  - कुछ भाव ;पी.आर. रामानुजम)
- बच्चे पर अपंगता का प्रभाव
  - बच्चे के शैक्षिक कार्यक्रम की योजना बनाना
  - अभिभावकों के साथ संपर्क रखना
- मानसिक अपंगता
  - मानसिक मन्दता क्या है?
  - मानसिक मन्दता के स्तर
  - मानसिक मन्दता वाले बच्चों के कुछ लक्षण
  - मानसिक मन्दता मानसिक रोग नहीं है
  - मंदबुद्धि बच्चों को पहचानना
  - मानिसिक मन्दता के कारण
  - मानसिक रूप से अक्षम बच्चों के साथ कार्य करना
  - बुद्धि बालकों की शिक्षा
- परीक्षापयोगी प्रश्न

इस इकाई में हम पढ़ेंगे कि ''विशिष्ट बच्चे'' अथवा ''विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चे'' से हमारा क्या अभिप्राय है? इन बच्चों की विशेष जरूरतें, उनके विकास और उनकी दैनिक कार्यशीलता को कैसे प्रभावित करती हैं? इन बच्चों के प्रति समाज का सामान्यत: क्या रवैया होता है? यदि आपके केंद्र में कोई विशिष्ट बच्चा हो तो कार्यकर्ता होने के नाते आप क्या कर सकते हैं?

6.0 विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों से अभिप्राय :-

बाल विकास के विद्यार्थी के लिए शब्द ''विशिष्ट बच्चे'' का एक अलग ही अर्थ है। इसे समझने के लिए आइए, कुछ देर के लिए अपने बचपन की यादों को तरोताजा करें। संभवत: बचपन में आप पढ़ाई के मामले में अपनी बहन से आगे रहे हों, शायद आपका मित्र लोगों में आसानी से घुल-मिल जाता होगा जबकि आप एक अंतर्मुखी बच्चे की तरह हमेशा शर्माते हों और धीरे-धीरे ही लोगों के साथ खुलते हों। शायद आपका कोई सहपाठी रहा होगा जिसे अन्य साथी ''दिन में सपने देखने वाला'' कहते होंगे - जिसका ध्यान हमेशा कहीं और लगा रहता होगा, या शायद कोई साथी ऐसा रहा हो जो लोगों के साथ हमेशा लड़ता रहता हो, या फिर कोई सहपाठी जो 'ड' को 'ब' लिखता होगा, किंतु धीरे-धीरे, शिक्षक के धैर्यपूर्ण रवैये और अथक प्रयास के कारण, ठीक ढंग से लिखना सीख गया होगा।

ऐसी ही भिन्नताओं के कारण हर बच्चे का अपना-अपना अलग एक व्यक्तित्व होता है। हमारा प्रतिदिन का घर और स्कूल माहौल व वातावरण इन भिन्नताओं से निपट सकता है। वह बच्चा जो स्वप्नदर्शी होता है तथा उसे कार्य करने के लिए कई बार याद दिलाना पड़ता है, अंत्त: वह अपने काम कर लेता है। उसकी दिन में स्वप्न देखने की आदत उसके आसपास के लोगों को थोड़ा परेशान कर सकती हैं, किंतु उसकी यह आदत उसकी कार्यशीलता में बहुत ज्यादा बाधक नहीं होती। इसी प्रकार, भले ही आपकी बहन पढ़ने में आप से अच्छी न रही हो, फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में उसकी उपलब्धि अन्य कई बच्चों के बराबर रही होगी। आखिरकार, स्कूल जाने वाले सभी बच्चों के कौशल और योग्यताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। स्कूल का वातावरण इन भिन्नताओं से निपटने योग्य होता है। लेकिन, कुछ बच्चों के व्यवहार के निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण पर गौर करें :

NOTES

रूपा आठ वर्षीय बालिका है। पहली बार देखने पर वह किसी अन्य आठ वर्षीय बच्चे की तरह लगती है, लेकिन कुछ देर बाद आपको लगेगा कि वह एक ही तरपफ टकटकी लगाकर घूरती रहती है। उसकी आँखें, अन्य आम लोगों की तरह, आसपास की चीजों का अवलोकन नहीं करती है। यदि आप उससे बात करें तो आप पाएँगे कि वह आपकी ओर मुँह करके आपसे आँखें नहीं मिलाती, अपितु अपना मुँह थोड़ा पफेर कर रखती है। वह किसी भी अन्य आठ वर्षीय बच्चे की भाँत बोलती है और बुद्धिमतापूर्ण बात करती है। वह नेत्रहीनों के स्कूल में दूसरी कक्षा की छात्रा है। जब मैं उसके घर गई तो उसने मुझे अपनी कुछ किताबें दिखाई जो ब्रेल ;नेत्रहीनों की लिपिद्ध में लिखी हुई थी। जब वह पुस्तक में से कुछ पढ रही थी, तो उसका छोटा भाई कुछ शरारत करने के इरादे से वहाँ आया। उसने रूपा को छेड़ा और उसकी पुस्तक छीन ली। रूपा अपनी किताबें लेने उसके पीछे भागी और फिर आम घरों की तरह, बहन-भाई के बीच होने वाले शोरगुल और लड़ाई का दृश्य सामने आया। रूपा काफी सहज़ता से इधर-उधर घर में घूम रही थी - अपने भाई का पीछा करते समय वह फर्नीचर से टकराई नहीं।

श्याम आठ वर्षीय बालक है। उससे मिलने के बाद सबसे पहली बात जिसकी ओर ध्यान जाता है वह यह है कि वह किसी भी वस्तु या कार्य पर कुछ सैकण्ड से अधिक ध्यान स्थिर नहीं कर पाता। उसका ध्यान एक चीज़ से दूसरी की ओर अतिशीघ्र विचलित हो जाता है - कुछ समय के लिए वह अध्ययन की ओर ध्यान देता है; फिर उसका ध्यान पेंसिल पकड़े हुए एक बच्चे की ओर चला जाता है; जैसे ही वह उस बच्चे की ओर बढ़ने लगता है, उसका ध्यान खिड़की में से नज़र आने वाले पंछी की ओर आकर्शित हो जाता है, खिड़की की ओर पहुँचने के लिए वह तेज चलना शुरू करता है लेकिन अचानक कुछ सोचता है और दूसरी ओर कमरे से बाहर चला जाता हैं। श्याम की बोली साफ नहीं है, हालांकि जब आप एकबार उससे बात करने लगें तो आप उसकी बोली समझ सकते हैं। वह अपनी जरूरतों के बारे में दूसरों को बता सकता है। श्याम को रंग, नंबर, आकृति तथा वर्णमाला की पहचान नहीं है। उसे एक दिन पूर्व की घटित घटनाएँ केवल थोड़ी बहुत ही याद रहती हैं। जब कार्यकर्ता अपने समूह के बच्चों के साथ कोई परिचित बालगीत शुरू करती है तो श्याम मात्र कुछ शब्द बुदबुदाता हुआ कमरे की ओर वापस भागता है। गीत गाते हुए कार्यकर्ता के हाव-भाव का अनुकरण वह बहुत जोश से करता है, किंतु उसके चेहरे से ऐसा व्यक्त होता है कि वह गीत को ज्यादा नहीं समझ रहा है। निश्चित रूप से, अन्य बच्चों की अपेक्षा, उसे पूरा गीत नहीं आता। आठ वर्ष का होते हुए भी वह किंडरगार्टन में ही है।

चार वर्षीय सोमू अपने घर की नज़दीक वाले नर्सरी स्कूल में जाता है, वहाँ पर वह पिछले छः महीने से पढ़ रहा है। उसकी शिक्षिका का कहना है कि सोमू शांत बालक है, वह कक्षा में न तो किसी से बात करता है और न ही उसका कोई मित्र है। खेल के समय वह एक कोने में खड़ा रहता है या स्वयं अपने आप खेलता रहता है। कक्षा में शिक्षिका जैसा कहती है सोमू वैसा ही करता है और सभी निर्देशों का पालन करता है। जब बच्चे गीत गाते हैं तो वह समूह में सम्मिलित हो जाता है, किंतु गाता कभी-कभार ही है। शालापूर्व केन्द्र (preschool) की शिक्षिका समूह के साथ जो भी क्रियाकलाप करती है, सोमू उसे ग्रहण करता है और समझता है। सोमू की माँ बताती है कि घर पर सोमू के बहुत मित्र हैं – वह उनके साथ और अपने बड़े भाई के साथ खेलता है प्रतिदिन स्कूल से घर लौटने पर वह स्कूल में सिखाए गए गीत गाता है और अपनी माँ को स्कूल की दिनचर्या के बारे में बताता है। उसकी माँ को यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ जब उन्हें शिक्षिका ने बताया कि स्कूल में सोमू का व्यवहार घर से बिल्कुल अलग है।

उपयुक्त विवरणों से यह काफी स्पष्ट हो गया है कि तीनों बच्चे अन्य कई बच्चों से मूल रूप से भिन्न हैं आपके विचार में इन विवरणों से कौन -कौन से अंतर दृष्टिगत हो रहे है।

अब इस पर अपनी टिप्पणियाँ लिखें।

इन्हीं भिन्नताओं के कारण इन बच्चों के पालन-पोषण में कुछ भिन्न या विशिष्ट तरीके अपनाने की आवश्यकता होगी, उनकी शिक्षा के लिए विशेष योजना बनानी होगी और यह सुनिश्चित करना होगा कि उनके अनुकूलतम विकास को बढ़ावा मिले। अभिभावकों और शिक्षकों को इन बच्चों को बोलना सिखाने, चलने-फिरने, मित्र बनाने और वे कौशल और संकल्पनाएँ, जो सामान्य बच्चे के विकास के दौरान सहज और स्वाभाविक रूप से प्राप्त कर लेते हैं, अर्जित करने और सिखाने के लिए विशेष प्रयास करने होंगे। इन बच्चों की कुछ ऐसी आवश्यकताएँ हैं जो अधिकांश बच्चों की जरूरतों से भिन्न होती हैं, अर्थात् उनकी कुछ विशेष जरूरतें होती हैं। आइए, रूपा, श्याम, और सोमू की विशेष आवश्यकताओं को पहचानें।

रूपा हमारे सामान्य विद्यालयों में अध्ययन नहीं कर पाएगी क्योंकि वह पढ़ नहीं सकती। वह केवल ब्रेल में लिखी पुस्तकें ही पढ़ सकती हैं। अतः उसे एक विशेष विद्यालय में पढ़ने की आवश्यकता है। उसे अपने घर में चलना-फिरना, यहाँ तक की दौड़ना भी, आसान लगता है क्योंकि वहाँ की व्यवस्था से वह परिचित है। किन्तु जब वह किसी नए स्थान में जाएगी तो,

NOTES

कम से कम प्रारंभ में उसकी गतिशीलता काफी सीमित हो जाएगी।

श्याम की एक समस्या तो यह है कि वह साफ नहीं बोल पाता। उसे एक वाक्-चिकित्सक की मदद की आवश्यकता है। श्याम के एक ही कार्य पर अपना ध्यान स्थिर न कर पाने के कारण किंडरगार्डन में संभवत: समूह के सभी बच्चों को बाधा होती है और वह स्वयं भी शालापूर्व केन्द्र में हो रही गतिविधियों का अधिक लाभ नहीं उठा पाता। उसे एक ऐसे शिक्षक/शिक्षिका की आवश्यकता है जो, कम से कम आरम्भिक अवस्था में, केवल उसी के साथ काम करे और उस पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दें। सोमू के विषय में हमें यह समझने की आवश्यकता है कि नर्सरी स्कूल में वह अन्य बच्चों के साथ क्यों नहीं बोलता और उनसे अंत:क्रिया क्यों नहीं करता। त्तपश्चात्, उसे वहाँ सामंजस्य स्थापित करने में सहायता करनी होगी।

दूसरे शब्दों में, इन बच्चों की सामान्य बच्चों के समान आवश्यकताओं के अतिरिक्त कुछ विशेष आवश्यकताएँ भी हैं। धीरे-धीरे आपको ''विशिष्ट बच्चों'' की संकल्पना शायद स्पष्ट हो रही होंगी। ये ऐसे बच्चे हैं जिनमें कुछ असमर्थताएँ होती हैं, जो परिवार, समाज या विद्यालय में ठीक प्रकार से कार्य करने के रास्ते में बाधक होती हैं। इन्हीं कठिनाईयों के कारण इन्हें पूर्ण रूप से समर्थ होने में समस्या आती है। ये कठिनाईयाँ/असमर्थताएँ शारीरिक, संज्ञानात्मक, भाषायी, सामाजिक, भावात्मक या मनोवैज्ञानिक हो सकती हैं। इन कठिनाईयों से निपटने के लिए इन बच्चों पर विशेष और अतिरिक्त ध्यान देने व प्रयास करने की आवश्यकता है।

डाउनज सिंड्रोम वाले बच्चे को सीखने के लिए विशेष सहायता की जरूरत होती है।

सामान्य कार्यशीलता में निर्णायक क्षेत्र

यदि आप थोड़ा सोचे, तो आप पाएँगें कि सामान्य रूप से कार्य करने के लिए छः क्षेत्र निर्णायक हैं। इनमें से किसी एक क्षेत्र में भी कठिनाई व्यक्ति के लिए बाधा उत्पन्न कर सकती है और व्यक्ति को इस असमर्थता से निपटने के लिए अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता होती है। कोई बच्चा अथवा व्यक्ति जो इन क्षेत्रों में से एक या उससे अधिक क्षेत्रों में कोई कठिनाई महसूस करता है, वह विशिष्ट बच्चा/व्यक्ति कहलाता है। क्या आप कार्यशीलता के इन निर्णायक क्षेत्रों को पहचान सकते हैं ? हम इन्हें एक-एक करके पढ़ेंगे।

दृष्टि

यदि कोई व्यक्ति दृष्टिहीन हो तो उसकी कौन सी गतिविधियाँ / क्रियाएँ सबसे अधिक प्रभावित होंगी? मुख्य रूप से चलने - फिरने, पढ़ने और लिखने की क्षमता पर असर पड़ेगा। अन्य शब्दों में, घर और कक्षा में सीखने-पढ़ने के लिए दृष्टि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हम सभी की दृष्टि तीक्ष्णता अलग-अलग होती है। हम में से कुछ लोगों की नजर बहुत बढ़िया होती है और वे काफी दूर के चिन्हों को पढ़ने में भी समर्थ होते हैं। हम में से अधिकतर लोगों की नजर औसत होती है और ये बिना चश्मा लगाए अच्छी काम कर सकते हैं। जिन लोगों की नजर औसत से कम होती है, उन्हें चश्मे की आवश्यकता होती है। लेकिन जैसे-जैसे नजर और कमजोर होनी शुरू होती है, तब चश्मा भी ज्यादा लाभ नहीं पहुँचा पाता और तब यह एक समस्या का रूप लेने लगती है। जब नजर इतना कम हो जाए कि वस्तु 200 फीट की दूरी पर लानी पड़े ताकि वह व्यक्ति उसे देख सके, तो वह व्यक्ति कानूनी तौर पर नेत्रहीन माना जाता है। ऐसे व्यक्ति केवल तभी पढ़ सकते हैं जब मुद्रित अक्षर बड़े हों। दूसरे शब्दों, में इन व्यक्तियों की आंशिक दृष्टि होती है। लेकिन कई ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो बिल्कुल ही नहीं देख सकते।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि दृष्टि-तीक्ष्णता की विभिन्न श्रेणियाँ होती हैं - श्रेणी के एक छोर पर वे व्यक्ति हैं जिनकी नजर उत्तम है और दूसरे छोर पर वे व्यक्ति है जो बिल्कुल नहीं देख सकते।

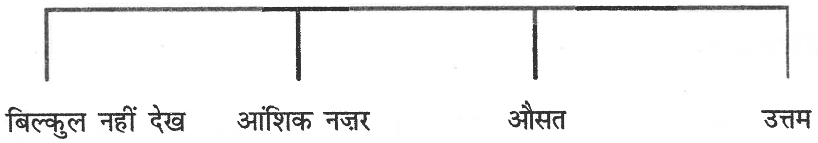

चित्र : दृष्टि तीक्ष्णता की श्रेणी

जब बच्चे की नजर इतनी कमजोर हो जाए कि वह सामान्य मुद्रित अक्षर न पढ़ सके और उसे पढ़ने में सहायता के लिए विशेष साधनों की आवश्यकता हो, तो उसे विशिष्ट आवश्यकताओं वाला बच्चा माना जाता है।

श्रवण शक्ति

सुन पाना अनुकूलतम वृद्धि एवं विकास के लिए उतना ही महत्वपूर्ण हैं जितना कि दृष्टि। यदि कोई बालिका सुन नहीं सकती, तो उसके लिए बोलना सीख पाना मुश्किल हो जाता है। ऐसा भी संभव है कि वह कभी भी बोल पाना न सीख पाए।

हम श्रवण इंद्रिय को भी नजर की भांति श्रेणीबद्ध कर सकते हैं। एक ओर बहुत कम ऐसे लोग होते हैं जिनकी श्रवण इंद्रिय इतनी तीव्र होती है कि वे ऐसी भी ध्वनि पकड़ लेते हैं जो हम में से कई सुन भी नहीं सकते। हममें से कुछ ऐसे हैं जो कोई भी ध्वनि सुन नहीं सकते। ऐसे व्यक्ति श्रेणी के दूसरे छोर पर हैं। इन दोनों छोरों के बीच भिन्न स्तर की श्रवण शक्ति वाले व्यक्ति आते हैं। हम में से अधिकांश औसत श्रवण शक्ति वाले व्यक्ति होते हैं। जैसे-जैसे किसी को सुनने में कठिनाई महसूस होने लगती है, वह समस्या श्रेणी में आ जाता है। ऐसे व्यक्ति को श्रवण में सहायक उपकरणों या वाक्-चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। जब व्यक्ति कोई सार्थक ध्वनि सुन ही नहीं सकता, तो उसे अपने विचारों के आदान-प्रदान के लिए अन्य माध्यमों पर निर्भर होना पड़ता है। वे बच्चे जिनकी श्रवणशक्ति समस्या श्रेणी में आती है, वे विशिश्ट बच्चे होते हैं और उन्हें कुछ सहायता की आवश्यकता होती है।

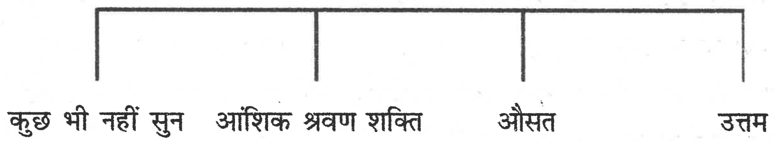

चित्र : श्रवण क्षमता की श्रेणी

गतिशीलता

अनुकूलतम विकास के लिए यह तीसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र है। अन्य सामान्य व्यक्तियों की तरह चल फिर पाना एक बच्चे के जीवन को कई प्रकार से प्रभावित करता है। संभवतः कुछ बच्चे जो आम बच्चों की तरह नहीं चल

पाते हैं, वे लकड़ी अथवा बैसाखी अथवा पहियों वाली कुर्सी द्धव्हील चेयरऋ की मदद से इधर-उधर घूम सकते हैं। कुछ लोग बिल्कुल ही नहीं चल सकते और पूर्ण रूप से गतिहीन हो जाते हैं। वे सभी बच्चे जिनके लिए सामान्य व्यक्तियों की भांति सामान्य रूप से चल फिर पाना संभव नहीं होता, विशिष्ट बच्चे होते हैं क्योंकि उन्हें अपनी इस कठिनाई को दूर करने के लिए विशेष उपकरण का सहारा लेना पड़ता है।

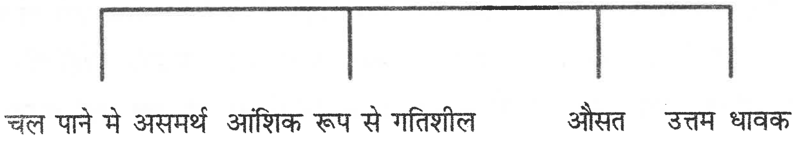

चित्र : गतिशीलता की श्रेणी

संप्रेषण

संप्रेशण से हमारा तात्पर्य को समझने और स्वयं को समझा पाने द्धअपने विचारों को अभिव्यक्त कर पानेऋ की क्षमता से है। विभिन्न संकल्पनाओं की समझ विकसित करने तथा लोगों के साथ संबंध बनाने के लिए स्पष्टत: सम्प्रेषण करना बहुत ही महत्वपूर्ण है। संप्रेषण के लिए हम प्रमुख तौर पर शब्दों पर निर्भर करते हैं। अत: वे लोग जिन्हें बोलने या सुनने में कठिनाई होती है, उनका संप्रेषण द्ध विचारों के आदान-प्रदान ऋ की समस्या होती है। कुछ बच्चे बिल्कुल ही नहीं बोल पाते और कुछ अन्य बोल तो लेते हैं परन्तु कठिनाई से बोलते समय वे रूक-रूक कर या हकलाकर बोलते हैं। कुछ मामलों में, बच्चों की बोली और श्रवण शक्ति तो ठीक होती है किन्तु दिमाग के किसी हिस्से के क्षतिग्रस्त होने के कारण भाषा समझने में उन्हें कठिनाई होती है। ऐसे बच्चे को भी श्रेणीबद्ध किया जा सकता है - एक छोर पर तो अच्छे संप्रेशक हैं और दूसरे छोर पर वे लोग जो सम्प्रेषण कर ही नहीं सकते। इस संदर्भ में, हम केवल शब्दों द्वारा सम्प्रेशण की बात कर रहे हैं वे बच्चे जिन्हें सम्प्रेषण में कुछ समस्या होती है, विशिष्ट बच्चे होते हैं।

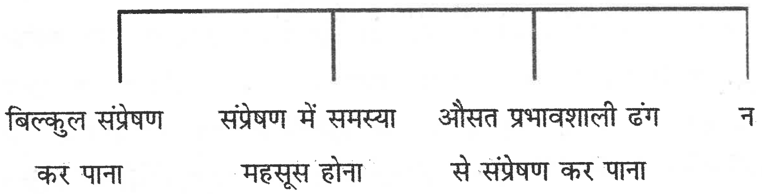

चित्र 6.4 : सम्प्रेषण क्षमता की श्रेणी

सामाजिक-भावात्मक संबंध

इस आयाम से अभिप्राय है कि अपने दैनिक जीवन में हम दूसरों के साथ कैसे संबंध स्थापित करते हैं, किस प्रकार भावात्मक बंधन बनाते हैं और रोजमर्रा की ज़िन्दगी में दूसरों के साथ कैसे अंत:क्रिया करते हैं। कुछ व्यक्ति आसानी से दूसरों से संबंध स्थापित कर लेते हैं - उन्हें सभी पसंद करते हैं और वे लोकप्रिय होते हैं। हम में से अधिकांश व्यक्तियों के आपसी संबंधों में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं और हम इनसे निपटते रहते हैं। कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जिनके किसी के साथ भी संबंध सौहार्द्रपूर्ण / मैत्रीपूर्ण नहीं होते। यह व्यक्ति अत्यन्त शर्मिला हो सकता है जो किसी से भी बात नहीं करता, जिनका कोई मित्र नहीं होता और जो आत्म-केन्द्रित होकर अपने आप में रहना पसंद करता है; अथवा बहुत उग्र स्वभाव का व्यक्ति हो सकता है; अथवा ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो अन्य व्यक्तियों द्वारा बढ़ाए गए मित्रता के हाथों का तिरस्कार कर देता है।

किसी व्यक्ति को सामाजिक-भावात्मक समस्या है या नहीं - यह स्पष्ट रूप से कह पाना बहुत ही कठिन है। इसका एक कारण तो यह है कि सामाजिक-भावात्मक संबंध बनाने में कठिनाई कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे मापा जा सके, जैसे नेत्रहीनता या बधिरता के स्तर को मापा जा सकता है। दूसरा, एक ही व्यक्ति के बारे में अलग-अलग व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न राय होती है। एक व्यक्ति जो दूसरों पर बहुत ही हावी रहना चाहता है और केवल अपनी बात मनवाना चाहता हो, संभव है कि आपके विचार में उसे सामाजिक-भावात्मक समस्या हो, लेकिन आपके ही साथी इस व्यक्ति के व्यक्तिव के बारे में आपकी इस राय से असहमत हों और वे यह मानते हों कि अपनी बात मनवा पाना उस व्यक्ति के व्यक्तिव का सकारात्मक पहलू है। इन दोनों कारणों की वज़ह से यह निश्चित रूप से कह पाना कठिन हो जाता है कि किसी व्यक्ति विशेष को सामाजिक-भावात्मक क्षेत्र में समस्या है। इसलिए, यह निर्धारित करने के लिए कि किसी व्यक्ति की सामाजिक-भावात्मक समस्या है या नहीं, हमें कुछ समय तक उस व्यक्ति का भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अवलोकन करना होगा और यह देखना होगा कि वह व्यक्ति अलग-अलग स्थिति में कैसा व्यवहार करता है ? कुछ व्यक्तियों के संदर्भ में तो आसानी से ज्ञात हो जाता है कि उन्हें सामाजिक-भावात्मक क्षेत्र में कुछ कठिनाई है, परन्तु कुछ व्यक्तियों के संदर्भ में यह अनुमान लगाना कठिन होता है।

जब किसी बच्चे को अन्य लोगों के साथ संबंध बनाने और इन संबंधों को बनाए रखने में कठिनाई होती है, तो उसे सहायता की आवश्यकता होती है। ऐसे बच्चे विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चे होते हैं।

व्यक्तियों से संबंध स्थापित कर पाना	संबंध बनाने और बनाए रखने में कठिनाई महसूस करना	औसत	बहुत अच्छी प्रकार घुल-मिल जाना

चित्र : सामाजिक-भावनाओं क्रिया की श्रेणी

बुद्धिमत्ता

यह ऐसा शब्द है जिसके अभिप्राय को तो हम सभी समझते हैं किन्तु इसे परिभाषित कर पाने में कठिनाई अनुभव करते हैं। हम सभी प्राय: ऐसा कहते हैं कि ''वह एक होशियार लड़का है'', या ''वह एक चुस्त व स्मार्ट लड़की है'', और यह मानकर चलते हैं कि हम सभी इन शब्दों के अभिप्राय को समझते हैं। काफी हद तक हमारी बुद्धिमत्ता हमारी शैक्षिक उपलब्धि, हमारी चुनौतियों का सामना कर पाने और कठिन परिस्थितियों से निपटने और स्वयं को वातावरण के अनुकूल ढालने की क्षमता निर्धारित करती है।

हम सभी का ऐसे व्यक्तियों से सामना हुआ होगा जो अक्सर निर्देश भूल जाते हैं, जिनके साथ हमें बातें सरलता से करनी पड़ती है, जो अपनी आसपास घटित घटनाओं को समझ नहीं पाते और जो एक निश्चित सीमा के बाद, कुछ भी नया नहीं सीख पाते। यदि हम बुद्धिमत्ता की विशेषता को श्रेणी के रूप में निरूपित करें तो हम पाएँगे कि हम में से कुछ अत्यन्त बुद्धिमान होते हैं, कई बौद्धिक क्षमता में औसत और कुछ औसत से कम होते हैं।

वे व्यक्ति/बच्चे जो बौद्धिक कार्यशीलता (बुद्धिमत्ता) में औसत से कम होते हैं, उन्हें अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में कठिनाई होती है। उनकी विशेष जरूरतें होती हैं। हो सकता है उन्हें पैसों को संभालने में कठिनाई हो; वे साधारण / सामान्य निर्देश अथवा संकल्पनाएँ समझ न पाएँ और दिन-प्रतिदिन की परिस्थितियों से निपटने में भी उन्हें सहायता की आवश्यकता हो। यह पता लगाने के लिए कि कोई बच्चा/व्यक्ति विशेष, बुद्धिमत्ता के आयाम में समस्या श्रेणी में आता है या नहीं, यह देखना चाहिए

कि वह अपनी आयु के अन्य सामान्य बच्चों/व्यक्तियों की तरह कार्य करता है या नहीं।

बौद्धिक स्तर अत्यंत निम्न	बौद्धिक कार्य करने की क्षमता औसत से नीचे	औसत	अत्यन्त बुद्धिमान

चित्र : बौद्धिक कार्य करने की श्रेणी

आर्थिक रूप से सुविधावंचित बच्चे

ये बच्चे निर्धनता में जीवनयापन करते हैं और इसी कारण जीवन के कई अनुभवों से वंचित रह जाते हैं। वे स्कूल नहीं जा सकते क्योंकि उन्हें बचपन से ही काम शुरू करना पड़ता है ताकि वे परिवार की आय बढ़ा सकें। लड़कियों को अक्सर घर पर ही रोक लिया जाता है ताकि वे छोटे भाई-बहनों द्धबच्चोंऋ का ध्यान रख सकें और घर के कामकाज कर सकें। इन बच्चों की उस प्रकार की समस्याएँ तो नहीं होतीं जिनकी हमने ऊपर चर्चा की है, किन्तु निर्धनता उन्हें अनुभवों से वंचित कर देती हैं। हमें उनकी सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को बेहतर बनाना है ताकि उन्हें भी एक ऐसा बचपन मिल सकें जिसमें उन्हें अपने संपूर्ण कौशलों व सामर्थ्य को विकसित करने के हर अवसर मिल सकें।

अब तक आपको स्पष्ट हो गया होगा कि विशिष्ट बच्चों से हमारा क्या अभिप्राय है। ये वे बच्चे हैं जिन्हें विकास के दौरान विशेष कठिनाई /कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जो उनकी कार्यशीलता के रास्ते में अवरोधक होती हैं और जो उनको अपनी पूर्ण क्षमता तक पहुंचने में बाधक होती हैं। चूंकि स्कूल, परिवार या समाज के दायरे में सीखने या काम करने के संदर्भ में उन्हें कठिनाइयाँ आती हैं, इस कारण ये ''विशिष्ट'' की श्रेणी में आ जाते हैं और इसके लिए उन्हें और किसी प्रकार के अन्त:क्षेप की आवश्यकता पड़ती है। अन्त:क्षेप से हमारा तात्पर्य हमारे उन सब प्रयासों से है जो हम विशिष्ट बच्चों की सहायता के लिए करते हैं ताकि वे स्वयं और परिवेश के बीच सामंजस्य स्थापित कर सकें। कुछ विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चे जिनकी हम सहायता कर सकते हैं, वे हैं - आंशिक रूप से दृष्टि

वाले एवं नेत्रहीन; कम सुनने वाले एवं बधिर ; चलने-फिरने की समस्याओं वाले बच्चे; मंदबुद्धि बच्चे; व्यवहार संबंधी समस्याओं से ग्रस्त बच्चे; आर्थिक रूप से सुविधावंचित बच्चे ; सीखने में असमर्थ बच्चे; भावात्मक समस्या से ग्रस्त बच्चे।

इस पाठ्यक्रम में हम उन बच्चों के विषय में पढ़ेंगे जिन्हें देखने, सुनने, चलने-फिरने में समस्याएँ आती हैं, जो मंदबुद्धि हैं और जो व्यवहार संबंधी समस्याओं से ग्रस्त हैं।

एक क्रियाकलाप

आपने कभी किसी विशिष्ट बच्चे के साथ अंत:क्रिया अवश्य की होगी। शायद आपके पड़ोस, कार्य-स्थल या परिवार में कोई विशेश बच्चा/ बालिका होगा / होगी। इस बच्चे की गतिविधियों का कुछ दिनों के लिए अवलोकन करें और ध्यान दें कि आम बच्चों की जरूरतों के अलावा उसकी और विशेष जरूरतें क्या हैं ?

क्षति, अपंगता एवं क्षमता

आपने विशिष्ट बच्चों के संदर्भ में प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्द शायद सुने होंगे – क्षति, अपंगता, विकलांग बच्चे, अक्षमता और अक्षम बच्चे। तथापि, प्रत्येक शब्द का एक विशेष प्रयोग एवं अर्थ है। हम प्राय: सभी शब्दों का समान अर्थ में प्रयोग करते हैं। इन शब्दों में अन्तर को समझना महत्वपूर्ण है चूंकि यह इन समस्याओं से पीड़ित बच्चों के प्रति हमारे दृष्टिकोण को प्रभावित करेगा।

क्षति से अभिप्राय एक बीमार अथवा दोषपूर्ण ऊतक ԁtissueԀ अथवा ऊतक के दोषपूर्ण भाग से है। उदाहरण के तौर पर, यदि आँख का कॉर्निया ԁश्वेत मंडलԀ सूख जाए एवं उसमें झुर्रियाँ पड़ जाएँ, तो उसमें खरीबी आ जाती है और वह क्षतिग्रस्त हो जाता है। यदि बच्चे को जन्म के समय पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन न मिल पाई हो, तो हो सकता है कि दिमाग का कोई ऊतक ԁtissueԀ क्षतिग्रस्त हो जाए। यदि पैर का ऊतक रोगग्रस्त होने के कारण सड़ जाए, तो वह क्षतिग्रस्त हो जाता है। उपर्युक्त उदाहरण क्षति के उदाहरण हैं। क्षति के लिए अन्य शब्द जो इस पाठ्यक्रम में प्रयुक्त होंगे, वे हैं –दोष, हानि, क्षीणता, विकार।

अपंगता से अभिप्राय है शरीर अथवा अंग के किसी विशेष भाग का न होना अथवा शरीर के किसी भाग के कार्य करने की क्षमता का कम होना। यदि बच्चे की आँख का कॉर्निया सूख जाए और झुर्रीदार हो जाए, जैसा विटामिन "ए" की कमी से हो जाता है, तो बच्चे की नज़र धीरे-धीरे चली जाएगी। अत: कॉर्निया का क्षतिग्रस्त होना द्धउसका सूखना और झुर्रीदार होनाऋ अपंगता को जन्म देता है द्ध दिखाई देना बंद हो जाना अर्थात् आँख का काम न करना ऋ एक व्यक्ति जो, दिमाग के एक विशेष हिस्से के खराब हो जाने के कारण द्धअर्थात, दिमाग के किसी ऊतक के क्षतिग्रस्त होने के कारण ऋ बोलने के लिए अपेक्षित कोशिकाओं पर नियंत्रण नहीं रख पाता, वह संप्रेषण कर पाने में असमर्थ होता है। एक व्यक्ति जिसका पैर गैंगरिन द्धएक क्षतिऋ की वज़ह से काट दिया गया हो, शारीरिक रूप से अपंग हो जाएगा। परन्तु जन्मचिह्न द्धएक क्षतिऋ किसी अपंगता को जनम नहीं देता, क्योंकि जन्मचिह्न के कारण व्यक्ति के दैनिक जीवन के कार्य करने में कोई बाधा नहीं पड़ती। इसी प्रकार, यदि किसी व्यक्ति के कान में कोई प्रभाव नहीं पड़ता, तो कान की वह क्षति अपंगता नहीं मानी जाएगी। यहाँ पर इस बात पर ज़ोर डाला जा रहा है कि एक क्षति के कारण व्यक्ति अपंग हो भी सकता है और नहीं भी।

अक्षमता से आशय क्षतिग्रस्त या अपंग व्यक्तियों को अत:क्रिया करने और परिवेश में सामंजस्य स्थापित करने में होने वाली समस्याओं से है। यदि नेत्रहीन व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन के कार्यकलापों के दौरान कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है या उसकी नेत्रहीनता उसके अन्य लोगों के साथ संबंध बनाने, विद्या अर्जित करने में और त्तपश्चात् नौकरी में बाधा उत्पन्न करती है, तो उसकी अपंगता द्धनेत्रहीनताऋ अक्षमता का कारण बन जाती है। तथापि, यदि उसे नेत्रहीनता के कारण कोई समस्या नहीं होती अथवा बहुत कम/ न्यूनतम समस्या होती है, तो वह अपंग होने के बावजूद भी अक्षम नहीं है। आपने शायद शारीरिक रूप से अपंग व्यक्तियों को दूर-दराज की जगहों पर भ्रमण हेतु यात्रा की योजना बनाते देखा होगा। निश्चित रूप से उन्हें इस भ्रमण के लिए किसी विशेष उपकरण की अथवा अपने निकट संबंधियों की सहायता की आवश्यकता पड़ती होगी, परन्तु वे आम व्यक्ति की भांति कई काम कर लेते हैं। तो क्या आप ऐसे व्यक्तियों को अक्षम कहेंगे ? यदि किसी व्यक्ति के चेहरे पर जन्मचिह्न है, तो संभवत: फिल्मों में काम कर पाने के नज़रिए से वह जनमचिह्न उसके लिए बाधा बन सकता है। परन्तु चूँकि यह क्षति व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन के जीवन को प्रभावित नहीं करती और

उसकी दैनिक कार्यों में बाधा नहीं डालती, अतः जन्मचिह्न को अक्षमता नहीं माना जाएगा। अक्षमता से हमारा तात्पर्य अपंगता अथवा क्षति के प्रभावों से है। यदि प्रभाव सूक्ष्मतम/ उपेक्षणीय/ कम हैं, तो व्यक्ति क्षति अथवा अपंगता के साथ आसानी से समझौता कर लेता है। यही हमारा लक्ष्य भी होना चाहिए – जहाँ तक संभव हो सके क्षति अथवा अपंगता के प्रभाव को कम करना, ताकि व्यक्ति स्वयं महसूस न करे। चर्चा के दौरान हम अक्षमता के लिए स्थान-स्थान पर 'विकलांग' व 'बाधाग्रस्त' शब्दों का प्रयोग भी करेंगे।

अक्षमता के प्रति एक दृष्टिकोण

चर्चा के इस चरण पर, आइए अक्षमता के प्रश्न को एक बिल्कुल ही दूसरे दृष्टिकोण से देखें। इससे ऊपरी चर्चा भी स्पष्ट हो जाएगी।

जैसा कि हमने कहा है, अक्षमता वह है जो व्यक्ति को अपने परिवेश के साथ सफल रूप से अंतःक्रिया करने में बाधा पहुँचाती है। जैसा कि आप जानते हैं कि ''परिवेश'' से हमारा तात्पर्य केवल भौतिक परिवेश न होकर सामाजिक परिवेश भी है; अर्थात् हमारे आसपास के लोग तथा उनके साथ हमारे संबंध। शायद आप किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में जानते होंगे जिसका उग्र स्वभाव है और जिसे बहुत जल्दी गुस्सा आ जाता है और उसे लोगों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने में काफी समस्या होती है। क्या यह व्यक्ति अपने सामाजिक संबंधों को बनाए रखने में अक्षम नहीं है, यद्यपि उसमें उस प्रकार की कोई अपंगता नहीं है, अपंगता नहीं, जिनकी अभी तक हमने इस इकाई में चर्चा की है ? एक अन्य महिला जिसे अपने पर भरोसा नहीं है, जिसमें आत्म-विश्वास की कमी है तथा निर्णय लेने में हिचकिचाती है, उसे ऐसी परिस्थितियों में जहाँ पर त्तकाल निर्णय लेना अहम होता है, अक्षमता महसूस हो सकती है। यद्यपि उस महिला में किसी प्रकार की क्षति अथवा अपंगता नहीं है, फिर भी वह निश्चित तौर पर कुछ परिस्थितियों में अक्षम है, और शायद नेत्रहीनता तथा शारीरिक विकलांगता से पीड़ित व्यक्ति से कहीं अधिक अक्षम है।

पारंपरिक तौर पर और दैनिक भाषा में हम न केवल 'अपंगता' और अक्षमता शब्दों का फेरबदल करके प्रयोग करते हैं, बल्कि इनका सीमित ढंग से भी प्रयोग करते हैं। अर्थात् इन शब्दों का प्रयोग केवल उन व्यक्तियों के संदर्भ में किया जाता है जिन्हें बोलने, सुनने,ारीर के अंगों जैसे हाथों और पैरों का

प्रयोग करने में, बौद्धिक कार्य करने में या कोई व्यवहार संबंधी कठिनाई महसूस होती है। किन्तु यदि हम ''अक्षमता'' के प्रति इस प्रकार का दृष्टिकोण रखें जैसे कि अभी हमने उपर्युक्त अनुच्छेद में विवेचना की है, तो हमारा नज़रिया पूरी तरह से बदल जाएगा। इस स्थिति में कोई व्यक्ति अक्षम है या नहीं, यह उस व्यक्ति की परिस्थिति तथा उस व्यक्ति का परिस्थिति से मुकाबला कर पाने की योग्यता/क्षमता पर निर्भर करता है।

अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई क्षति अथवा अपंगता व्यक्ति को कुछ क्षेत्रों में अक्षम बना सकती है परन्तु अन्य क्षेत्रों में वह उस क्षति या अपंगता के कारण अक्षम नहीं होता। एक नेत्रहीन व्यक्ति को चलने-फिरने में बाधा महसूस हो सकती है, विशेषकर अनजानी ज़गहों पर किन्तु, उदाहरण के लिए, गाना गाने के क्षेत्र में वह स्वयं को अक्षम नहीं महसूस करता।

अक्षमता के प्रति ऐसा दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है क्योंकि यह अपंग बच्चों और लोगों के प्रति हमारे रवैये को प्रभावित करेगा। यदि आपको इस बात का अहसास हो कि आप भी अपने कुछ व्यवहार पद्धतियों के कारण कुछ परिस्थितियों में अक्षमता महसूस करते हैं, तो आप किसी अपंग व्यक्ति की भावनाओं को समझने में और उसके प्रति सहानुभूति महसूस करने में अधिक समर्थ होंगे। आपको यह अहसास हो जाएगा कि अपंग व्यक्ति आप से अलग नहीं होते और न ही उनकी उपेक्षा की जानी चाहिए। ऐसा नज़रिया होने पर ''हम'' और ''वे;'' ''सामान्य'' द्धवे; अक्षमत्रः की भावना नहीं होगी। अपंग व्यक्ति, सामान्य व्यक्तियों से अलग नहीं होते। अपंगों के प्रति हमारी धारणाएँ, मान्यताएँ तथा अभिवृत्तियाँ द्धरवैयात्रः अगले दो उपभागों में चर्चा का विषय रहेगा।

अपंग व्यक्तियों के प्रति हमारी मान्यताएँ एवं अभिवृत्तियाँ

अधिकांशत: एक अपंग बच्चा/ व्यक्ति अन्य सभी से अलग नज़र आता है। हालाँकि, कभी-कभी बधिर बच्चों अथवा ऐसे बच्चों को जिनकी बौद्धिक कार्य करने की क्षमता औसत से केवल थोड़ी सी ही कम है,उन्हें पहली बार देखने से पता नहीं चलता कि वे अपंग हैं। हम सभी की विशिष्ट बच्चों के प्रति अलग-अलग प्रतिक्रिया होती हैं - कुछ उनके प्रति सुग्राही होते हैं, कुछ की उनके प्रति सहानुभूति की भावना होती हैं, तटस्थ रहते हैं और कुछ लोग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। हम विशिष्ट बच्चों या वयस्कों को देखकर

किस प्रकार की प्रतिक्रिया दिखाते हैं, यह काफी हद तक हमारे अपने जीवन के अनुभवों, हमारे आसपास के व्यक्तियों के अभिवृत्तियों पर निर्भर करता है।

कुछ निर्दयी व्यक्तियों को अपंगों का मज़ाक उड़ाने में मज़ा आता है। उनके लिए शारीरिक रूप से अपंग व्यक्ति मनोरंजन का स्त्रोत होता है। हकलाने वाला व्यक्ति, नकल उतारने अथवा उपहास का पात्र बन जाता है। छोटे बच्चे अक्सर पहली बार किसी अपंग साथी को अपनी कक्षा में देखने पर इसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। यह रवैया बच्चे घर में बड़ों को ऐसा करते देखकर सीखते हैं। लोकप्रिय फिल्मों में हास्य अभिनेता अक्सर हकलाता है, अस्पष्ट उच्चारण करता है – अर्थात् यह दर्शाया जाता है कि हकलाना इत्यादि मनोरंजन का कारण है। कुछ फिल्मों में, हास्य अभिनेता या अभिनेत्री को औसत से कम बुद्धि वाला/वाली दिखाते हैं, जिसके ''सनकी''/ मूर्खतापूर्ण'' और उपहासास्पद कथन मनोरंजन का स्त्रोत होते हैं।

हममें से कुछ लोग अपंगों से घृणा करते हैं, विशेषकर यदि उनकाशरीर विक्षत होता है, जिसके कारण वह भद्दा लगता है। उनकी उपस्थिति से परेशानी या असुविधा अनुभव करने पर हम उस स्थिति से निकलने /बचने का प्रयास करते हैं और इस कारण, जहाँ तक हो सके, उनसे कम से कम अंत:क्रिया करते हैं।

इसके विपरीत, दया एक अन्य भावना है जो कुछ व्यक्ति अपंगों के प्रति अनुभव करते हैं। ऐसे व्यक्ति अपंग बच्चों को देखकर अक्सर यह कहते हैं- ''बेचारा बच्चा ! कितने अफ़सोस की बात है, सच में दुर्भाग्य की बात है।'' ऐसे व्यक्ति बच्चे की हँसी नहीं उड़ाते, न ही वे बच्चे को अन्य लोगों के साथ अंत:क्रिया के लिए रोकते हैं और स्वयं भी उन बच्चों के साथ अंत:क्रिया करते हैं। किन्तु इसके अलावा वे और कुछ भी नहीं करते। व्यावहारिक रूप से वे बच्चे के लिए कुछ भी नहीं करते, क्योंकि वे यह सोचते हैं कि बच्चे की स्थिति दु:ख प्रकट करना ही पर्याप्त है और इस प्रकार उन्होंने अपना फर्ज़ निभा दिया है।

हम में से कुछ व्यक्ति अपंगों की उपस्थिति में आकुल हो जाते हैं, असमंजस में पड़ जाते हैं और हमें समझ नहीं आता कि हम क्या करें। हम सोचते हैं कि हमें उनकी कुछ मदद करनी चाहिए और यह विचार इस भावना को जन्म देती है : ''क्या मैं इसकी मदद करूँ ? लेकिन मेरे ऐसा करने से कहीं उसके आत्म-सम्मान को ठेस तो नहीं पहुँचेगी? मुझे इसकी मदद करनी चाहिए या

नहीं ?" जब हमारे मन में यह दुविधा उत्पन्न होती है, तो हम उस व्यक्ति की उपस्थिति को नज़रअंदाज़ करते हैं या ऐसा दिखावा करते हैं जैसे सब कुछ सामान्य है।

अपंगों के प्रति अंधविश्वास और भय का दृष्टिकोण बिल्कुल निराधार है; उपहास करना या नकल उतारना अक्षम व्यक्ति की जरूरतों एवं भावनाओं के प्रति संवेदनशून्यता को प्रतिबिंबित करता है। इसका विकलांग व्यक्ति पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यद्यपि दया की भावना उनके प्रति चिंता दर्शाती है, वास्तव में यह भावना व्यर्थ है, चूँकि यह आपको विकलांग व्यक्ति के लिए कुछ ठोस कदम उठाने के लिए प्रेरित नहीं कर पाई हैं।

अशिक्षित बनाम अशिक्षणीय

अपंग व्यक्तियों के प्रति हमारी प्रमुख धारणाओं में से एक सामान्य धारणा यह है कि उनके कार्य करने के स्तर को बढ़ाने में उनकी कोई सहायता नहीं की जा सकती। हम यह मान कर चलते हैं कि एक व्यक्ति जिसका दायाँ हाथ नहीं है, कभी भी लिखना नहीं सीख सकता, या एक नेत्रहीन साइकिल नहीं चला सकता। निम्नलिखित कथन आमतौर पर सुनने को मिलते हैं :

- राजू तो बहरा है। उससे बात करने का कोई फायदा नहीं है।
- उसे यह पुस्तक न ही दो तो अच्छा है। उसे ज्यादा कुछ समझ नहीं आता और यह उसके किसी काम नहीं आएगी।
- क्या कमला तैरने के लिए जा सकती है ? लेकिन वह तो प्रमस्तिष्क स्तंभ (Cerebral Palsy) से आक्रांत बालिका है। तुम्हें मालूम है कि उसकी भुजाओं में समन्वय नहीं है।
- वह क्या काम करेगा ? कोई भी ऐसे व्यक्ति को नौकरी नहीं देगा जिसके दाहिने अंग को लकवा मार गया हो।
- राजू को स्कूल भेजना धन बर्बाद करना है। वह न तो सुन सकता है, न ही बात कर सकता है।
- इसे संख्या संबंधी कोई समस्या है। मैंने इसे जोड़ करने के मूल सिद्धांत को सिखाने की चेष्टा की है, लेकिन लगता है वह सब निरर्थक है। मैंने अब छोड़ दिया है। हिसाब इसकी समझ से बाहर है।

- लेकिन वह नेत्रहीन है। उसके लिए "लावर शो" ले जाने का क्या फायदा है ? वह केवल चीजों को ठोकर मारेगा।

इन कथनों से ऐसा आभास होता है कि अपंग बच्चों की कठिनाइयों को दूर करने के लिए तथा उनके कार्य करने के स्तर को सुधारने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता। पर क्या आपकी स्वयं के बारे में ऐसी धारणाएँ हैं ? यदि आप बुनना नहीं जानते तो क्या आप कहेंगे कि आप कभी भी सीख नहीं सकते ? शायद कोई वजह रही होगी कि आपने कभी बुनना सीखने का कभी प्रयास नहीं किया, किन्तु निश्चित तौर पर आप यह नहीं मानते होंगे कि आप में कुछ कमी है जो आपको बुनाई सीखने से रोकती है। उसी प्रकार से किसी व्यक्ति ने यदि साइकिल चलाना नहीं सीखा, तो उससे हमें यह निश्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि वह प्रयास करने पर भी साइकिल चलाना सीख ही नहीं सकता। तब हम यह क्यों मान लेते हैं कि एक अपंग बच्चे की कार्यशीलता का स्तर अपरिवर्तनीय ही रहेगा और उसे सुधारा नहीं जा सकता ? हर व्यक्ति पहले एक शिक्षार्थी होता है; बाद में वह कुछ और है। हर व्यक्ति की अपनी-अपनी सीमा होती है कि वह कितना और कैसा ‍‌‌ढकितना अच्छाऋ सीख सकता है; लेकिन ऐसा कोई नहीं है जिसकी कार्य-क्षमता सुधारने में मदद नहीं की जा सकती।

चर्चा के इस मोड़ पर यह पुनः स्मरण कर लेना उपयुक्त होगा कि कोई भी व्यक्ति किस प्रकार से काम करता है, यह दो कारकों द्वारा निर्धारित होता है :

क्षमता (Capacity) : इससे आशय है हमारी सक्षमताओं एवं अंतनिर्हित विशेषताओं से है जो आनुवांशिकता और जन्म-पूर्व तथा प्रारम्भिक वातावरण द्वारा निर्धारित होती है।

विभिन्न प्रकार के अनुभव एवं उनकी प्रकृति (Range and nature of expriences) :

इससे आशय घर, परिवार के विस्तृत दायरे, आस-पड़ोस और समाज़ में हमारे अनुभवों से है।

ये दो कारक परस्पर अंत:क्रिया करते हुए हमारी कार्य करने के स्तर को निर्धारित करते हैं। उदाहरण के लिए, हो सकता है एक व्यक्ति में एक अच्छा धावक बनने की योग्यता हो, परन्तु परिवार में शारीरिक कौशल के

NOTES

विकास को प्रोत्साहित करने वाला वातावरण न मिल पाने के कारण, वह व्यक्ति अपनी इस क्षमता को विकसित नहीं कर पाएगा।

यद्यपि हम किसी व्यक्ति की क्षमता अथवा उसके प्रारम्भिक अनुभवों के स्वरूप के बारे में कुछ नहीं कर सकते द्ध अर्थात उन्हें अब बदल नहीं सकतेझ्र, हम उसकी कार्यशीलता के वर्तमान स्तर को स्वीकार करते हुए उसके भावी अनुभवों तथा कार्यशीलता के संबंध में बहुत कुछ कर सकते हैं। यह बात सभी व्यक्तियों पर लागू होती है तथा शिक्षा का भी यही लक्ष्य है।

इस संदर्भ में उपर्युक्त चर्चा महत्वपूर्ण बन जाती है। यदि हम यह मानकर चलें कि अपंग बच्चे को पढ़ाया ही नहीं जा सकता, तो हम इस बारे में प्रयास भी बहुत कम करेंगे। लेकिन यदि हम सोचते हैं कि वह अशिक्षित हैं तो हम यह कह रहे हैं कि उसे शिक्षित किया जा सकता है। पहला दृष्टिकोण यह संप्रेषित करता है कि अपंग व्यक्ति का भविष्य पूर्वनिर्धारित और आशाहीन है। लेकिन दूसरा दृष्टिकोण इस बात पर ज़ोर डालता है कि अपंग बच्चे हर क्षेत्र में उस हद तक सफल हो सकते हैं जिस हद तक वे प्रयास करते हैं और परिवार और समुदाय उनकी सहायता करते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि हम यह मानें कि अपंगता व्यक्ति की क्रियाओं में बाधक नहीं होती। निश्चित रूप से अपंगता व्यक्ति के कार्य के क्षेत्र को सीमित करती है। लेकिन अपंग बच्चे क्या कर सकते हैं, इस संबंध में हमारे विचार मुक्त होने चाहिए क्योंकि काफी हद तक संभव है कि अपंग बच्चे के बारे में हमारे अवलोकन बिल्कुल गलत हों। मानव-तंत्र अत्यंत जटिल है। उत्प्रेरण, आशावादिता, धैर्य, प्रोत्साहन, स्नेह तथा उचित अनुभव वास्तव में चमत्कार कर सकते हैं। एक महिला जिसका पैर कटा हुआ है, उसके द्वारा लकड़ी के पैर सारे शास्त्रीय नृत्य का अध्ययन जारी रखना और इसमें श्रेष्ठता हासिल करना, इसी चमत्कार उदाहरण है। आप समझ ही गए होंगे कि हम किसी और की नहीं अपितु सुधा चन्द्रन की बात कर रहे हैं। ऐसी उपलब्धियाँ निश्चित ही 'चमत्कार' लगती हैं। लेकिन ऐसे ''चमत्कार'' अपंग व्यक्ति की कड़ी मेहनत और पक्की लगन का ही परिणाम है तथा परिवार की ओर से मिलने वाली सहायता तथा प्रोत्साहन से ही संभव है। कोई लड़की जो चल नहीं पाती थी, अगर वह घुटनों के बल चलना शुरू कर देती है तो हम यह नहीं कह सकते कि वह चलने में असमर्थ हैं। यदि एक बधिर लड़का इशारों तथा सांकेतिक भाषा का प्रयोग करते हुए ''बोल'' सकता है, तो हम यह नहीं कह सकते कि वह '' संचार करने योग्य नहीं है।''

मिलजुल कर घर बनाना :

अवसर दिए जाने पर मानसिक रूप से मंद बच्चे भी सृजनात्मक रूप से खेल सामग्री का प्रयोग करते हैं

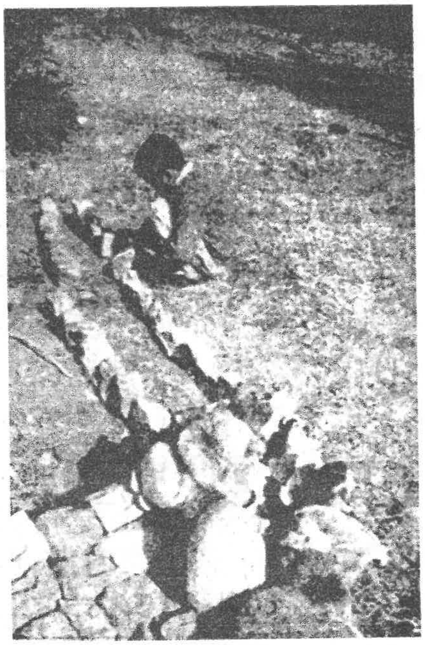

उन बच्चों के प्रति जो क्षतिग्रस्त या अपंग होने के कारण अन्य की तुलना में कम भाग्यशाली हैं, उनके प्रति हमारा रवैया सहानुभुतिपूर्ण होना चाहिए। ऐसे

दृष्टिकोण वाला व्यक्ति मानता है कि जैसे हर सामान्य बच्चे की अपनी योग्यताएँ और कमजोरियाँ होती हैं, उसी प्रकार अपंग बच्चे की अपनी योग्यताएँ और कमजोरियाँ होती है। हमारा प्रयास बच्चे की योग्यताओं को और मज़बूत बनाना और उसकी कठिनाइयाँ दूर करने में उसकी मदद होना चाहिए। जिस प्रकार अधिकांश बच्चे दुलार, प्रोत्साहन तथा सहायता के वातावरण में पलते व बढ़ते हैं, उसी प्रकार का सकारात्मक वातावरण अपंग बच्चे को भी मिलना चाहिए।

अपंग व्यक्तियों के प्रति समाज के उपरोक्त रवैये के विवरण में आप स्वयं को कहाँ पाते हैं ? उनके बारे में आपके क्या विचार और धारणाएँ हैं ? इस मुकाम पर एक निष्पक्ष आत्म-मूल्यांकन की आवश्यकता है। यदि आप अपना दृष्टिकोण एवं भावनाएँ नीचे लिखें, तो इससे आपको उनसे अवगत होने में मदद मिलेगी, और यदि आवश्यकता पड़ी तो, अनावश्यक अभिवृत्तियों को बदल पाएंगे।

कुछ भाव पी.आर.रामानुजम

मुझे अच्छी तरह से याद है कि किस प्रकार मुझे गाँव के ईसाई मिशनरी प्राथमिक स्कूल में भर्ती किया गया था। मेरी माँ मुझे प्रधानाध्यापक के पास ले गई जिन्होंने मुझसे प्रश्न पूछे ''तुम्हारा नाम क्या है' ? तुम कितने वर्ष के हो ? तुम्हारे पिता का क्या नाम है ? तुम्हारी माता का क्या नाम है ?'' उत्तर देने पर मुझे झट से भर्ती कर लिया गया। मैं अपने सहपाठियों के साथ जाकर बैठ गया, जो मिलकर एक साथ तमिल वर्णमाला दोहरा रहे थे। उसी दिन से सीखना मेरी धुन बन गया, यद्यपि वही शक्ति अब मेरे में नहीं है। यह सब हमारे घर आने वाले बूढ़े दूधवाले के बार-बार आग्रह करने से हुआ। वह प्रतिदिन हमारी गाय भैसों का दूध लेने आता था, तो मुझसे बातें किया करता था। उसी ने मेरी दादी और माँ को समझाया। वह मेरी दादी और माता-पिता से कहा करता था कि ''इस लड़के को स्कूल में भर्ती करवा दो। यदि इसकी आठवीं तक पढ़ाई पूरी हो जाती है, तो इसे किसी परचूनिए की दुकान पर लिपिक या लेखाकार की नौकरी मिल जाएगी। फिर इसे जिन्दगी जीने के लिए किसी का मोहताज़ नहीं होना पड़ेगा। जब तक यह बच्चा है और जब तक आप लोग जीवित हैं, सब ठीक है; लेकिन आपके बाद, इसका क्या होगा ? क्या यह दूसरों से उसी प्यार और सहायता की उम्मीद रख सकता है जो आप इसे देते हो ? इसलिए, बेहतर यही है कि इसे स्कूल में डाल दो।'' बूढ़ा व्यक्ति अनपढ़ जरूर था लेकिन था समझदार।

मेरे स्कूल की पढ़ाई मेरी माता के लिए ध्यानाकर्षण साबित हुई, जिसकी बहुत जरूरत थी। जब भी मेरी माँ के पास खाली समय होता, वह मुझे कठोर व्यायाम करवाती। मुझसे बात करते हुए बीच-बीच में अक्सर रो देती। मेरे रोग को ठीक करने हेतु वह सभी देवताओं से प्रार्थना करती। जब अन्य लोग मेरी प्रगति के बारे में पूछते, वह उन्हें हमेशा आशापूर्ण उत्तर देते हुए कहती कि उसका बेटा अब किसी भी समय सामान्य रूप से चलना शुरू कर देगा – शायद कुछ दिनों अथवा ह"तों की बात है कि वह फिर से चलेगा और कूदेगा, ठीक उसी प्रकार जैसे मैं 15 महीनें की आयु में करता था – यही उसका सपना था। आज साठ वर्ष से ज्यादा उम्र में भी वह यही सपना संजोए है।

पोलियोमाइलिटिस मेरे गाँव में एक महामारी की तरह फैल गया था। मेरी उम्र के लगभग 32 बच्चे इस बीमारी के शिकार हो गए थे। मेरा सबसे गंभीर मामला था। मेरे पिता आज भी दूसरे बच्चों की विख्रति के, जो मेरे साथ पीड़ित हुए थे, विभिन्न कोटियों का विवरण दे सकते हैं। अन्य बच्चे आंशिक रूप से या पूरी तरह से दोबारा स्वस्थ हो पाए, किंतु मेरी टांगों तथा बाएँ हाथ की शक्ति छिन पाई थी। मेरी माँ कहती है कि वास्तव में 10 दिनों तक मैं मौत के मुँह में था। उनके बुलाने पर मेरा कुछ अंत:क्रिया कर पाना ही उनके आशा की एकमात्र किरण थी।

मेरी माँ के दु:ख,प्रेम और ममता व स्नेह से मुझे अपनी अपंगता से लड़ने की शक्ति व सुदृढ़ता मिली। मेरी माँ मुझे चारपाई के सहारे खड़ा करवा कर चलना सिखाती थी। वह मुझे बताती कि यदि मैं चल सकूं तो मैं क्या कुछ कर सकता हूं। कभी-कभी वह ''अंधे देवताओं'' को कोसती जिन्होंने उसके बच्चे के साथ – जो पहले ''शेर के बच्चे'' की तरह घूमता था – यह सब कुछ होने दिया। जब कभी मैं उनकी आँखों में आँसू देखता, मै उन्हें ढांढस बँधाता : माँ, मैं सारे व्यायाम करूँगा, दोबारा चलूंगा, मजबूत बनूंगा अच्छी तरह पढ़ूंगा और डॉक्टर बनूंगा या फिर सेना में भर्ती हो जाऊंगा। ''तब मेरी माँ मुझे गले लगाकर और'' भी रोती''।

स्पष्टत: शारीरिक रूप से अपंग होने पर भी मैने विशेष कठिनाईयाँ महसूस नहीं कीं। मैं अपने बचपन में मित्रों के साथ घुटनों के बल चलता हुआ घूमता था। मुझे कभी यह अहसास नहीं हुआ कि मैं उनसे (सामान्य बच्चे से) अलग हूँ, और न ही मुझे ऐसा कोई क्षण याद आता है जब मेरे बचपन के मित्रों ने मुझसे कभी भेदभाव बरता हो। किंतु वयस्कों, प्रौढ़ व्यक्तियों और रिश्तेदारों की बात अलग थी। वे मेरी विकलांगता को अलग-अलग नजरिए से देखते थे। ''शालीन'' व्यक्ति मेरे बारे में बात करते समय मुझे हमेशा

NOTES

''रंगराजन'' या ''वह लड़का जो चल नहीं सकता'' कहकर पुकरते थे। लेकिन कुछ अन्य व्यक्ति और वे जिन्हें मेरे माता-पिता के प्रति कोई दुर्भावना थी, मेरे लिए अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करते थे। मुझे कहना चाहिए मैं खुशकिस्मत था कि मुझे सभी अध्यापक अच्छे मिले। अधिकांश अध्यापकों ने मुझे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित ही किया; यदि मुझे चलने-फिरने में मदद की आवश्यकता होती, तो वे मेरी मदद ही करते थे। वह प्राथमिक स्कूल जिसमें मैने शिक्षा प्राप्त की, हमारे घर से ज्यादा दूर नहीं था। मैं तीन पहियों वाले लकड़ी के वॉकर के सहारे स्कूल जाता था। लेकिन जब मैं उच्च स्कूल में गया, तो मुझे दुगना चलना पड़ता था। तब एक छोटी ठेला गाड़ी (चार पहियों वाली) का प्रबंध किया गया। मैं उसमें बैठ जाता था और मेरे घर का कोई सदस्य, ज्यादातर मेरे भाई-बहन, और मेरे मित्र उसे खींचते थे। 14-15 वर्ष की आयु में मद्रास के अपंगचिकित्सा केन्द्र में मेरा इलाज चला, जहाँ मैने बैसाखियों और कैलीपर (चलने में सहायक उपकरण) के सहारे चलना सीखा। आठवीं कक्षा की सालाना परीक्षा देने के पश्चात् उसी वर्श मई की गर्मी की छुट्टियों में, मुझे अस्पताल में भर्ती किया गया और अगले वर्ष जनवरी में मुझे अस्पताल से छुटी मिली। मेरे सभी सहपाठी नवीं कक्षा की सालाना परीक्षा की तैयारी में व्यस्त थे। चूँकि मैं नवीं कक्षा के दो-तिहाई शैक्षिक वर्ष में अनुपस्थित रहा, अतः मैं इस बात के लिए तैयार था कि मुझे पढाई का एक साल गंवाना पड़ेगा। लेकिन तब ही एक अप्रत्याशित घटना घटी।

''पोंगल'' की छुट्टियों के पश्चात् स्कूल खुला। मैं अपने मित्रों और शिक्षकों से मिलने विद्यालय गया। उस दिन जिले के शैक्षणिक अधिकारी स्कूल का दौरा करने आए हुए थे। जब वे कक्षाओं का निरीक्षण करने आए तब मैं नवीं कक्षा में बैठा था। मेरी बैसाखियों और कैलीपर्स के कारण उनका ध्यान मेरी ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने मेरे इलाज के बारे में पूछा। मैंने उस दोपहर उनसे मिलने का समय माँगा। मैंने उनसे निवेदन किया कि कक्षा में मेरी उपस्थिति की अनिवार्यता की शर्त खत्म कर दी जाए और मुझे सालाना परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाए। वह मेरा निवेदन सुनकर पहले तो कुछ हैरान हुए, किन्तु फिर उन्होंने एकदम से कहा कि यदि मेरे में सफलतापूर्वक परीक्षा देने का आत्म-विश्वास है तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। मैंने दो महीने पश्चात होने वाली परीक्षाएँ दी और मैं सभी परीक्षाओं में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुआ। इस प्रकार मैंने अपना पूरा एक साल बचाया।

जब मैं दसवीं कक्षा में गया तो मेरा विद्यालय हमारे गाँव से दो किलोमीटर की दूरी पर स्थानान्तरित हो गया। अब यातायात एक अहम मुद्दा बन गया।

खतरनाक और खराब पायदान तथा ड्राइवर और संवाहकों की जल्दी मचाने की आदत के कारण, प्रतिदिन बस में सफर करना कठिन और जोखिम भरा था। ऐसी स्थिति में मैं अपने मित्रों पर आश्रित था जो मुझे अपनी साईकिल पर ले जाते थे। जी हाँ, मैं साईकिल के कैरियर पर बैठ जाता था, यद्यपि कभी-कभी यह बहुत खतरनाक साबित हुआ। किसी-किसी दिन मैं पैदल भी चला जाता था। इस दूरी को तय करने में मुझे दो घंटे लगते थे। मैं पैदल चलने को एक व्यायाम के रूप में लेता था। हाँ, मुझे प्रतिदिन चलने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इस विषय में मुझे सबसे अधिक सहायता अपने मित्र गोपालस्वामी से मिली। मैं उसकी और अपने अन्य मित्रों की सहायता करने की भावना को कभी भूल नहीं सकता।

एस.एस.एल.सी. में 75 प्रतिशत अंक मिलने कि बजह से मुझे कॉलेज में प्रवेश मिलने में कोई परेशानी नहीं हुई। मदुरई में दाखिला मिलने पर मैंने पहली बार कॉलेज देखा। मेरे लिए यह किसी अज्ञात ग्रह को खोजने के बराबर था। मुझे भवनों के आकार, खान-पान, आवास और रहन-सहन एवं दैनिक दिनचर्या के बारे में कुछ भी नहीं पता था। दूसरे शब्दों में, मैं कॉलेज के वातावरण से पूर्णतः अनभिज्ञ था। मुझे इस बात का अनुभव नहीं था कि मैं अपनी व्यवस्था किस हद तक खुद कर पाऊँगा और किस हद तक दूसरों पर निर्भर रहना होगा। किन्तु जब मैंने वास्तव में कॉलेज जीवन में प्रवेश किया तो, कुछ दैनिक कार्यकलापों को छोड़कर मुझे कॉलेज का जीवन वास्तव में बडा रोमांचकारी लगा। वहाँ विकलांगों के लिए प्रसाधन की विशेष सुविधाएँ नहीं थीं। छात्रावास और कक्षा के बीच की दूरी, कम से कम मेरे लिए तो, काफी थी और इस समस्या के समाधान के लिए कॉलेज में परिवहन की भी कोई सुविधा नहीं थी। मैं इतना धनवान नहीं था कि इस कठिनाई को दूर करने के लिए कोई विशेष व्यवस्था कर सकूँ। अपने आप को कॉलेज की इन परिस्थितियों के अनूकूल बनाना ही इसका एकमात्र हल था। मैं स्नानागार में एक फोल्डिंग अथवा लकड़ी की कुर्सी का इस्तेमाल करता था। सुबह 5. 00 बजे जब अन्य लोग सो रहे होते, तब मैं उठ जाता ताकि स्नानागार गीला, गंदा और फिसलन भरा होने से पहले मैं उसका उपयोग कर सकूँ। सुबह 7. 30 बजे मैं भोजन कक्ष की ओर चलना आरम्भ कर देता, जो कक्षाओं के समीप ही था। प्रातः 8.00 बजे तक अन्य छात्र नाश्ते के लिए आ जाते। नहाने के बाद भोजन कक्ष पहुँचने के लिए सुबह 30 मिनट तक चलना कोई मज़ाक नहीं है। मैं जब तक कक्षा में पहुँचता तो पसीने से मेरी कमीज़ लगभग भीगी होती थी और कई बार शारीरिक रूप से मैं पूरी तरह थक चुका होता था। परन्तु मेरे इस कठिन परिश्रम के लिए मुझे प्रोत्साहन भी मिला और इसका

NOTES

अच्छा परिणाम भी हुआ। मासिक परीक्षा में अंग्रेजी में सबसे अधिक अंक मुझे प्राप्त हुए और इस कारण मैं बहुंत जल्दी मशहूर हो गया। पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम में, हालांकि मैं गणित, भौतिकी और रसायन शास्त्र पढ़ना चाहता था किन्तु मेरे प्राचार्य ने भौतिकी और रसायनशास्त्र में प्रयोग के लिए आवश्यक प्रयोगशाला संबंधी व्यावहारिक कठिनाईयों के कारण मुझे गणित, अर्थशास्त्र और वाणिज्य पढ़ने की राय दी। इस बात से मैं कुछ निराश हो गया कि मुझे स्वयं यह जाँचने का अवसर नहीं दिया गया कि मैं प्रयोगशाला संबंधी कार्य कर पाऊँगा या नहीं। बहरहाल, अर्थशास्त्र और वाणिज्य में मेरा कार्य निष्पादन काफी अच्छा रहा। वास्तविकता तो यह है कि कॉलेज में अर्थशास्त्र में मैंने प्रथम स्थान प्राप्त किया।

अपने कॉलेज के दिनों में मैंने यह महसूस किया कि समय पर मित्रों की थोड़ी सहायता मिलने से मैं उन सभी बाधाओं को दूर कर सका जो शारीरिक रूप से अपंग व्यक्तियों के लिए अलंघ्य हैं। बस, लारी, ट्रक, रेलगाड़ी, साइकिल और यातायात में सफर करना तब उतना मुश्किल नहीं लगता, जब आपके मित्र आपको इस बात का अहसास ही न होने दें कि आप अपंग हैं। मित्रों का सहायता करने का यह दृष्टिकोण और बिना कहे सहायता करने का तरीका, अपने मित्रों के इतना निकट ले आता है कि आप परिणाम की परवाह न करते हुए किसी भी चुनौती का सामना करने के लिए अपने को समर्थ समझते हैं। ऐसे कई अवसर आए जब मेरे मित्रों ने मुझे स्वयं उठाकर लारी आदि के अंदर बिठाया, भवन की दूसरी या तीसरी मंजिल तक उठाकर ले गए, परन्तु ऐसा करते हुए उन्होंने मुझे किसी प्रकार की शर्म या एहसान कि भावना महसूस नहीं होने दी। हमारी मित्रता विश्वास और समानता पर आधारित थी। अगर आप मुझसे मेरे जीवन का सबसे अच्छा समय पूछें तो मैं यही कहूँगा कि अपने कॉलेज के इन छः वर्षों में मैने जीवन के बारे में सीखा - इन वर्षों में मुझे वह शिक्षा मिली जिसने मुझे एक ओर तो प्रबल रूप से से आत्मनिर्भर बना दिया तो दूसरी ओर मुझे अपने मित्रों के साथ इतनी सहज़ता से जोड़ दिया कि मुझे वास्तव में अपनी शारीरिक विकलांगता कभी भी बाधा नहीं लगी।

अपनी जिन्दगी में कोई भी व्यक्ति सदैव मित्रों के साथ रहने की आशा नहीं कर सकता। कॉलेज/विश्वविद्यालय की पढ़ाई के बाद, व्यक्ति को जिन्दगी का सामना अलग ढंग से करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति की जिन्दगी में अपनी अलग-अलग जरूरतें और बंधन होते हैं। सबको अपनी-अपनी राह स्वयं चलनी होती है। नौकरी का चयन करते समय मेरे लिए परिवहन और संचार के माध्यम की उपलब्धता सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं - बाकी सभी

चीजों का बिना अधिक परेशानी के प्रबंध किया जा सकता है। बड़े शहरों के संदर्भ में, जहाँ मानवीय संबंध बहुत वैयक्तिक होते हैं, यह बात और भी सही है। आज भी, मुझे केवल सम्प्रेषण के माध्यम की उपलब्धता की चिंता होती है – यदि आप अपने मित्रों से और सहकर्मियों से सम्पर्क नहीं कर सकते, तो आपकी पहल की प्रवृत्ति कम होती जाती है। जब तक आपको सहायता या सूचना मिलती है, जिसकी आपको अत्यंत आवश्यकता थी, आप अपने काम में निश्चित रूप से पिछड़ जाते हैं – चाहे वह कार्य शैक्षिक हो अथवा सामाजिक। परन्तु फिर भी, अन्य कई लोगों के लिए भी, जो मेरी तरह विकलांग नहीं है, जीवन का यही रूप है।

अपंग व्यक्तियों के प्रति हमारी कई नकारात्मक भावनाएँ अपंगता के प्रति हमारे अल्पज्ञान अथवा अपंग व्यक्ति के लिए कुछ भी न कर सकने की हमारी विवशता से जन्म लेती है। इस खंड तथा अगले खंड में इन्हीं दो पहलुओं पर चर्चा की गई है। अगले खंड की प्रत्येक इकाई एक विशिष्ट अपंगता के बारे में है। इससे उस अपंगता के कारणात्मक कारकों और लक्षणों की व्याख्या की गई है तथा बताया गया है कि एक पूर्व प्राथमिक शिक्षिका/शिक्षक अथवा अभिभावक के रूप में आप किस तरह से उनकी मदद कर सकते हैं। यदि एक शिक्षक/शिक्षिका के रूप में आप विशिष्ट बच्चों के साथ प्रत्यक्ष रूप से काम न भी कर रहे हों, तब भी उनके लिए आप बहुत कुछ कर सकते हैं। एक प्रबुद्ध नागरिक होने के नाते, आप कई प्रकार से अपंग बच्चों और व्यक्तियों के लिए कार्य कर सकते हैं।

सामान्यतः आमतौर पर बच्चों में अपंग बच्चों के प्रति नकारात्मक भावनाएँ नहीं होती। सामान्यतः वे अपंग बच्चे को इस आधार पर महत्व देते हैं कि वे वह बालक/बालिका क्या कर सकता/सकती है। यदि एक बालिका जिसे चलने-फिरने में कठिनाई होती है, अगर नम्बर गेम (खेल) में अच्छी है तो निश्चित रूप से ऐसे खेल के समय अन्य बच्चे उसे ज्यादा महत्व देंगे। उसकी उम्र के अधिकांश बच्चे उसे अपने ग्रुप में लेना चाहेंगे। तथापि वे यह जरूर पहचानते हैं कि उनमें और उस बालिका में अंतर है। हो सकता है कि कभी-कभार उसे इस बारे में ताने भी मारें और व्यंग्य कसें। यह रूढ़िबद्ध धारणाएँ और नकारात्मक भावनाएँ जो बच्चे अपने विकलांग साथियों की ओर दिखाते हैं, अधिकतर अपने बड़ों से सीखते हैं। बच्चे इन गलत धारणाओं और नकारात्मक भावनाओं को बड़ों की अपेक्षा जल्दी छोड़ भी सकते हैं। एक संवेदनशील वयस्क बच्चों की अपंग व्यक्तियों के प्रति इन नकारात्मक और पूर्वाग्रही भावनाओं से छुटकारा दिलवा सकता है। कार्य करने अथवा खेल के

NOTES

दौरान बच्चे वयस्कों की तुलना में अपंग साथियों को आसानी से स्वीकार कर लेते हैं।

बच्चे पर अपंगता का प्रभाव

स्पष्टतः अपंग व्यक्ति ही अपनी अपंगता से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। अपंगता के शारीरिक और स्पष्ट परिणामों से भी अधिक गंभीर उसके मानसिक प्रभाव हो सकते हैं।

एक अपंग बालिका कुछ काम अन्य बच्चों के समान कर लेती है; दूसरे कार्य वह अन्य बच्चों से कुछ ज्यादा समय लेकर या कुछ शारीरिक पीड़ा सहते हुए कहती है, किन्तु उन्हें सक्षमता से कर लेती है; और कुछ ऐसे कार्य हैं जो वह बिल्कुल भी नहीं कर सकती। अपंग बच्चे को यह तथ्य स्वीकार करना होगा। लेकिन यह बात कहने में जितनी आसान है, करने में उतनी ही मुश्किल। यह स्वीकार कर पाना तब और भी कठिन हो जाता है जब बालिका जन्म से ही अपंग न हो अपितु उसमें यह अपंगता जन्म के कुछ वर्षों बाद आई हो। यदि जन्म से ही अपंगता हो, तो उससे समझौता करना कुछ हद तक थोड़ा आसान होता है। लेकिन जो बालिका पहले कुछ वर्षों में सामान्य रूप से कार्य करने की आदी हो और अचानक अपंग हो जाने के कारण उसके कार्यों पर प्रतिबंध लग जाए, तो उस स्थिति के साथ समझौता करना बहुत कठिन हो सकता है। यह उसे मानसिक आघात भी दे सकता है। जो कार्य उसे अपंगता से पहले करना बड़ा स्वाभाविक लगता था और जो सहज़ ही हो जाता था, अब वही कार्य करने के लिए विस्तार से योजना बनाना और सरल काम करने के लिए भी दूसरों पर निर्भर रहना किसी पीड़ा से कम नहीं है। इसी कारण उसके बहुत से क्रियाकलाप कम हो जाएँगे और जीवन का मज़ा जाता रहेगा।

तथापि, किसी प्रकार की अपंगता, चाहे बाद में आए या जन्म से ही हो, बच्चे के जीवन पर गहरा प्रभाव डालती है। बालिका निश्चित रूप से अपने आप को दूसरों से अलग मानती है। उसमें हीन भावना पैदा हो सकती हैं, और इसी कारण हो सकता है वह लोगों से मिलना-जुलना भी बंद कर दे। संभव है कि वह अपरिचित व्यक्तियों से मिलने में हिचकिचाए - उसे शर्म महसूस हो या वह और लोगों से अलग-थलग रहे। दूसरी ओर उसकी अपंगता उसे कठिनाइयों का सामना करने और उनसे निपटने के लिए प्रेरित भी कर सकती है। अक्सर बच्चे ही निर्भय और दृढ़ निश्चयी होने की पहल करते हैं और उनका यह सकारात्मक रवैया परिवार को भी उनकी सहायता करने के लिए विवश करता है।

NOTES

मैं भी चल सकता हूँ

बालिका अपनी अपंगता की ओर किस प्रकार की प्रतिक्रिया ज़ाहिर करती हैं, वह काफी हद तक इस बात पर निर्भर करेगा कि उसके जीवन में उन महत्वपूर्ण व्यक्तियों (माता-पिता, भाई और बहन, मित्र व अन्य रिश्तेदारों) का उसके प्रति कैसा व्यवहार है ? उनका रवैया बहुत हद तक यह सुनिश्चित करता है कि बालिका अपनी अपंगता से किस प्रकार सामंजस्य स्थापित कर पाएगी।

आप जानते हैं कि बच्चे में स्व-योग्यता और आत्म-सम्मान की भावनाओं के विकास का एक आधार है - दूसरे लोगों की प्रतिपुष्टि। यदि अभिभावक सहायक और प्रोत्साहित करने वाले हैं और बच्चे को यह संप्रेषित कर पाते हैं कि वे प्रत्येक परिस्थिति में उसके साथ हैं तो धैर्य, आशीर्वाद और समझदारी से बच्चे की अपंगता के कई नकारात्मक प्रभावों पर काबू पाया जा सकता है। ऐसे वातारण में बालिका अपने बारे में सकारात्मक विचार और पर्याप्ता की भावना विकसित करती है।

NOTES

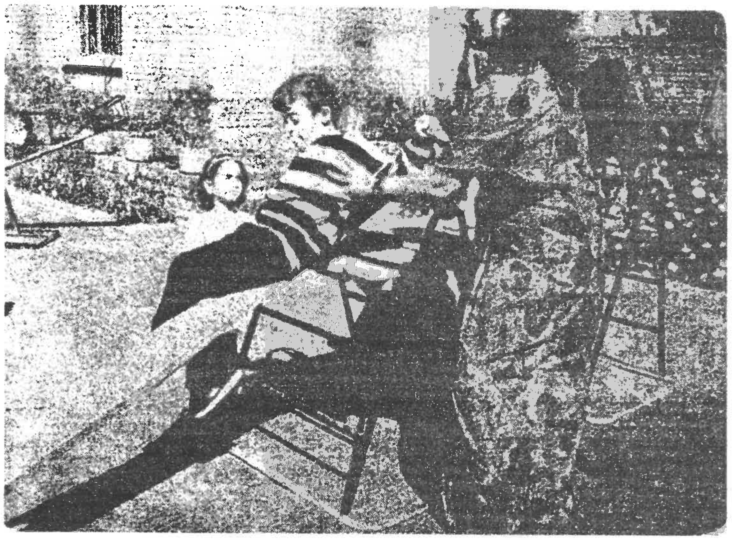

थोड़ी सी मदद मिलने पर, डाउनज़ सिंड्रोम वाला बच्चा बाहरी खेलों का आनंद ले सकता है।

इस सकारात्मक नज़रिए के ठीक विपरीत कुछ अभिभावक अपंग बच्चे का मज़ाक उड़ाते हैं या उसे शर्मिंदा करते हैं या बच्चे को यह जतलाते हैं कि वह किसी काम का नहीं है। कुछ अन्य माता-पिता स्वयं को अपने बच्चे की अपंगता का जिम्मेदार ठहराते हैं और इस कारण दोषी महसूस करते हैं। इस कारण वे अपने बच्चे को जरूरत से ज्यादा सुरक्षित रखने का प्रयास करते हैं और उसे कुछ भी अपने आप नहीं करने देते। यद्यपि वे सोचते हैं कि ऐसा हानिकारक सिद्ध हो सकता है। यदि उनका यही रवैया ज्यादा देर तक ज़ारी रहता है, तो बच्चे को अपनी प्रतिभा विकसित करने का अवसर ही नहीं मिलता। कुछ अभिभावक अपने अपंग बच्चे के प्रति शर्म महसूस करते हैं। संभवत: वे बच्चे को सबके सामने नहीं अपनाएँ और घर पर यदि कोई मिलने आए, तो उसे छुपा दें। ऐसे हर मामले में अभिभावक अप्रत्यक्ष रूप से अपने अपंग बच्चे को यह संप्रेषित कर रहें हैं कि उनके विचार में वह सामान्य नहीं है और न ही दूसरे बच्चों की भांति है। इसका बच्चे पर अवश्य ही नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

परिवार के सदस्यों के अपंग बच्चे के प्रति रवैये कितने भिन्न हो सकते हैं, यह निम्नलिखित दो स्थितियाँ बहुत ही स्पष्ट रूप से दर्शाती है।

छह वर्षीय नीलू गेंद को दीवार पर टिप्पा मारकर पकड़ने का प्रयास कर रही थी। गेंद बार-बार नीचे गिर जाती क्योंकि नीलू के दाहिने हाथ की तीन

अंगुलियाँ नहीं थी। कुछ समय तक प्रयास करने के बाद हारकर, नीलू ने गेंद छोड़ दिया और उदास हो बगीचे की तरपफ जाने लगी। नीलू का दस वर्षीय बड़ा भाई उसे देख रहा था। उसे निराश हो जाता देख वह उसके पास जाकर बोला : आओ मेरे साथ खेलो ! मैं गेंद फेंकता हूँ और तुम उसे पकड़ने का अभ्यास करो। इसके बाद तुम दीवार पर टिप्पा मारकर पकड़ने की कोशिश करना। अपने भाई की बात सुन नीलू की आँखों में चमक आ गई। वह वापिस आई ओर दोनों कुछ देर तक गेंद से खेलते रहे।

इनके सम्भावित परिणाम निम्नलिखित हो सकते है- इससे संकल्पनाओ को सीखने में भी विलंब हो सकता है, जिसकी वजह से कक्षा में उसका कार्य निष्पादन औसत से कम हो सकता है। बार - बार अल्प कार्य निष्पादन के कारण उस पर मंदबुद्धि का लेबल भी लग सकता है। यदि इस बच्चे की अपंगता को समय पर ही पहचान लिया जाता और उसे श्रवण में सहायक उपकरण दे दिए जाते, तो ऐसे नकारात्मक परिणाम होते।

इसी प्रकार से यदि नेत्रहीन बच्चे शीघ्र ही पहचान लिए जाते है। जबकि वे बच्चे जिनकी दृष्टि आंशिक रूप से खराब है, उन्हें पहचानने में बहुत समय लग सकता है।

सामान्यता ऐसे सूचक होते है जिनसे पता लग जाता है कि बच्चे को कोई समस्या है, किन्तु अज्ञानता के कारण, कई अभिभावक इन सूचकों की ओर ज्यादा ध्यान नहीं देते। बच्चे की अपंगता न पहचान पाना दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अभिभावक अपंगता को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं। यह चकित लगने वाला तथ्य अवश्य लग सकता है। लेकिन यह एक आम प्रतिक्रिया है। अभिभावकों को यह संदेह हो सकता है कि बच्चा पूरी तरह से ठीक नहीं है। लेकिन वे इस बात को स्वीकार नहीं करते और यह आशा करते है कि अपंगता धीरे -धीरे अपने आप ही गायब हो जाएगी। किन्तु ऐसा कभी नहीं होता और स्थिति बद से बदतर हो जाती है। अभिभावकों को बच्चे की अपंगता के बारे में बताना आपका कर्तव्य है। निश्चित रूप से यह सभी आपको बड़ी संवेदनशीलता के साथ करना होगा। इस खण्ड की अगली इकाइयों तथा अगले खण्ड में आप कुछ अपंगताओं से संबंध लक्षणों के बारे में पढ़ेंगे। और अभिभावकों को यह पता चलने के बाद कि उनके बच्चे को कोई समस्या है, आप इस समस्या का सामना करने मे किस प्रकार मदद कर सकते हैं। इसके बारे में भी पढ़ेंगे।

NOTES

बच्चे के शैक्षिक कार्यक्रम की योजना बनाना

यद्यपि यह उस व्यक्ति का कार्य है, जिसे अपंग बच्चों के साथ काम करने की विशेषज्ञता प्राप्त हो। आपको यह ध्यान रखना है कि बच्चे को इस प्रकार के विशेषज्ञ से मदद मिलने में कॉफी समय लग सकता है। इस अंतराल में आपको इस बच्चे के लिए उसकी योग्यताओं और कमियों के आधार पर अपनी शिक्षा नीति को भी बदलने की आवश्यकता होगी ताकि वह आपके शिशुगृह या शाला पूर्व केन्द्र मे आने का लाभ उठा सके। अगले खण्ड की प्रत्येक इकाई में विशिष्ट अपंगताओं का वर्णन है,जिससे हमने कुछ तरीके बताए हैं जिनको अपनाकर आप केन्द्र के दिनचर्या के अंतर्गत अपंग बच्चो की जरूरतो को पूरा कर सकते हैं। और उनके लिए उद्दीपन प्रदान करने वाली क्रियाएं आयोजत कर सकते हैं।

अभिभावकों के साथ संपर्क रखना

जैसा कि हमने पहले कहा है कि अभिभावकों को बच्चे की अपंगताओं के बारे में सूचित करने का काम आपको करना पड़ सकता है। यह संवेदनशील मामला है और इसमें बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। अभिभावक अलग - अलग तरीके से प्रतिक्रिया जाहिर करेंगे। और यह आप पर निर्भर करेगा कि अभिभावक बच्चे की अपंगता को कैसे स्वीकार करेंगे।

अभिभावकों के साथ अंतक्रिया यहीं नहीं समाप्त होती। एक अपंग बच्चे की मदद करना एक अकेले व्यक्ति का कार्य नही, यह सामूहिक कार्य है। बच्चे को, परिवार को और आपको आपसी तालमेल के साथ बच्चे के हित के लिए काम करना होगाा। आपको अभिभावकों से नियमित रूप से संपर्क करना होगा ताकि बच्चे के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सके। माता-पिता के साथ मिलकर आपको बच्चे को उसकी अक्षमता का सामना करने के लिए नीतियां बनानी होंगी।

यह एक छोटी सी घटना है। लेकिन यह दर्शाती है कि एक भाई (या कोई अन्य साथी) कितना सवेदनशील हो सकता है। ऐसे प्रोत्साहन प्रदान करने वाले अनुभव यदि बार - बार हो तो इससे बच्चे को यह समझ में आने लगता है। कि थोड़े से अतिरिक्त प्रयास करने से वह अपनी अक्षमता की सीमाओं को लांघ सकती है।

उपरोक्त घटना से आगे वर्णित स्थिति से तुलना कीजिए।

एक परिवार के तीन बच्चों को पड़ोस में हो रही जन्मदिन की पार्टी में आमंत्रित किया गया था। माँ ने सबसे बड़े और सबसे छोटे बच्चे को तो जाने के लिए प्रोत्साहित किया किन्तु बीच वाले को जाने से रोक दिया। ' तेरा जाने का क्या फायदा ' उसने कहा। 'तुम देख तो सकते नहीं न ही दूसरे बच्चों के साथ खेल पाओगे। तुम घर पर रहो और मेरे साथ मटर छीलने में मेरी मदद करो।

यदि ऐसे अनुभव का सामना अक्षम बच्चों को अक्सर करना पड़े, तो वे न केवल अस्वीकृत महसूस करेंगे अपितु यह भी सोचे की वे असमर्थ और अयोग्य हैं उनके मन मे निरर्थकता और अयोग्यता की भावना पैदा होगी। उपरोक्त तरह के कथन भविष्य में आत्मापूरक वाणी का काम करते हैं। अपंग बच्चा यह सोचने लगता है कि वह निकम्मा है और इस कारण वह अप्रभावी व्यवहार करने लगता है और इस अप्रभावी व्यावहार से बच्चे की अपने बारे में नकारात्मक भावनाएं और भी प्रबल हो जाती हैं। इस तरह यह दुश्कर्म चलता रहता है।

एक क्रियाकलाप

यदि संभव हो तो अवलोकन करें की किसी विशिष्ट बच्चे/वयस्क का परिवार उसके साथ कैसा व्यवहार करता है। आपके विचार में क्या परिवार ने सकारात्मक रूप से बच्चे या वयस्क की मदद की है।

मानसिक अपंगता

आपको ध्यान होगा कि "विशिष्ट बच्चों को समझना", में आपने मनुष्य के सामान्य कार्यों को करने में शारीरिक क्रियाओं के महत्व के विषय में पढ़ा था। इन कार्यों में से एक कार्य जो शामिल था, वह था- मानसिक रूप से काम कर पाना। इस इकाई में हम उन बच्चों/व्यक्तियों के विषय में पढ़ेंगे जिनकी बौद्धिक रूप से कार्य कर पाने की क्षमता सामान्य से निम्न होती है और इसी कारण उनकी विशेष आवश्यकताएँ होती हैं।

एक 14 वर्ष की बालिका की कल्पना कीजिए। चलिए हम उसका नाम ममता रख लेते हैं। वह अपने माता-पिता के साथ रहती है। उसके दो भाई

NOTES

हैं और दोनों ही उससे छोटे हैं। ममता स्कूल जाती है, किन्तु वह अपनी आयु के अन्य बच्चों की तरह नौवीं कक्षा में न होकर, तीसरी कक्षा में ही है। सात वर्ष की होने तक भी वह स्कूल नहीं जा पाई थी। उसके बाद उसे तीसरी कक्षा तक पहुँचने में छह वर्ष लगे। ममता ढाई साल की उम्र तक नहीं चल पाई थी और पाँच वर्ष की उम्र तक वह ज्यादा बोल भी नहीं पाती थी। उसकी माँ कहती है कि सामान्य दैनिक कार्यों जैसे भोजन करने, हाथ धोने, कपड़े पहनने, जूते पहनने आदि में भी उसे बारह वर्ष की आयु तक ममता की सहायता करनी पड़ती थी। केवल पिछले दो वर्षों में ही ममता ने कुछ हद तक आत्मनिर्भर होना सीखा हैं। 14 वर्ष को आयु में ममता लगभग वह सब कार्य कर लेती है जो कि अधिकतर 6-7 साल तक के बच्चे कर लेते हैं। उसको स्कूल के वह पाठ समझ में आते हैं जोकि एक आठ वर्ष का सामान्य बच्चा समझ लेता हैं। स्पष्ट ही है कि ममता की मानसिक क्षमताएँ उसकी आयु के अनुपात में विकसित नहीं हुई है। उसका बौद्धिक स्तर अपनी आयु के अन्य बच्चों की तुलना में काफी निम्न है। ममता अपनी आयु के अन्य बच्चों की तुलना में मानसिक रूप से अक्षम है, अर्थात उसकी बौद्धिक कार्यशीलता सामान्य से कम है। ऐसी स्थिति **मानसिक मन्दता** कहलाती है।

मानसिक मन्दता क्या है?

जब मानसिक (बौद्धिक) काम करने की क्षमता स्थायी रूप में कम होती हैं तो उसे मानसिक अक्षमता या मानसिक मन्दता कहते हैं। मानसिक अक्षमता एक ऐसी स्थिति है जो कि मानसिक विकास और शारीरिक वृद्धि कि गति को धीमा कर देती है। यह कोई रोग या बीमारी नहीं है, वरन् मस्तिष्क के पूरी तरह से विकसित न हो पाने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न एक स्थिति है। वे बच्चे जिनमें यह स्थिति पाई जाती है, वे मन्दबुद्धि या मानसिक रूप से अक्षम बच्चे कहलाते हैं। हो सकता है कि बच्चे में मानसिक मन्दता जन्म से ही हो अथवा जन्म के समय या जन्म के बाद आए।

जिस प्रकार बच्चे के शरीर की वृद्धि और विकास उसकी आयु के अनुरूप होता है, उसी प्रकार मानसिक योग्यताएँ भी आयु के साथ-साथ बढ़ती जाती है। बच्चे की मानसिक योग्यताओं के विकास की दर उसकी ''मानसिक आयु'' (Mental age) कहलाती है। सामान्य बच्चों में, वर्षो के आधार पर आँकी गई आयु द्धजिसे कालानुक्रामिकत्रः आयु भी कहा जाता है; (Chro-

nological age) व मानसिक आयु साथ-साथ बढ़ती हैं। यदि यह कहा जाता है कि किसी बच्चे का मानसिक विकास सामान्य है, तो इसका अर्थ यह होता है कि उसकी मानसिक क्षमताएँ उसकी आयु अधिकतर अन्य सामान्य बच्चों के स्तर की हैं। किन्तु एक मानसिक रूप से मन्द बच्चे में, मानसिक विकास की दर धीमी पड़ जाती है तथा उसकी मानसिक आयु उसकी कलानुक्रमिक आयु से कम रह जाती है। उदाहरण के लिए, एक बालिका जो छह वर्ष की है, उसका मानसिक विकास तीन वर्श के बच्चे के बराबर हो सकता है। मानसिक रूप से अक्षम बच्चों को चलना शुरू करने, खाना खा पाने, बोलना शुरू कर पाने व विकास के अन्य निर्धारित मानदंडों (Milestone) तक पहुंचने मे सामान्य बच्चों की अपेक्षा अधिक समय लगता है। संभव है कि मानसिक रूप से अक्षम बच्चा, जो कि पाँच वर्ष का है, एक तीन वर्श के बच्चे अथवा दो वर्ष के बच्चे के समान या उससे भी कम आयु के बच्चे के समान, बात व व्यवहार करें। कुछ मंदबुद्धि बच्चों का विकास अन्य मंदबुद्धि बच्चों की तुलना में ज्यादा तेज गति से होता है। लेकिन निश्चय ही, सभी मानसिक रूप से मन्द बच्चों का विकास उसी आयु के समान्य बच्चों की तुलना में धीरे होता है। यह जाँचने के लिए कि कोई बच्चा मानसिक रूप से मन्द है या नहीं, एक संकेत यह है कि कई क्षेत्रों में उस बच्चे का विकास विलम्ब से होगा। कई क्षेत्रों में उसका विकास उसकी आयु के आधार पर अपेक्षित विकास से धीरे होगा। कुछ क्षेत्र जो मंदबुद्धि की स्थिति में सामान्य रूप से प्रभावित होते हैं, वे निम्नलिखित प्रकार हैं:

1. **सम्प्रेषण :** मानसिक रूप से अक्षम बच्चे को भाषा और क्रिया, दोनों के माध्यम से संप्रेषण में कठिनाई होती है। वास्तव में, मानसिक रूप से मन्द बच्चे सामान्य बच्चों की तुलना में देर से बोलना सीखते हैं। उनका शब्द भण्डार कम होता है और उन्हें ठीक तरह शब्दों का उच्चारण करने में भी कठिनाई होती है। उनका उच्चारण अस्पष्ट हो सकता है और इसलिए, संभव है कि दूसरों को उनकी बात समझ न आए।

2. **क्रियात्मक विकास :** मानसिक रूप से मन्द बच्चों की स्थूल एवं सूक्ष्म क्रियात्मक गतिविधियों में समन्वय का अभाव होता है। क्रियात्मक विकास के निर्धारित मानदंडों तक पहुँचने में सामान्य

NOTES

बच्चों की अपेक्षा विलंब हो सकता है।

3. **स्वयं की देखभाल :** मानसिक रूप से मन्द बच्चों को अपनी दैनिक आवश्यकताओं के कार्यो को करना सीखने में अधिक समय लगता है जैसे–स्वयं खाना खा पाना, नहाना, तैयार होना या शौचालय जाना आदि।

4. **सामाजिक कौशल :** मानसिक रूप से मन्द बच्चों को औरों के साथ अंत: क्रिया करने में कठिनाई होता हैं। उनमें अन्य बच्चों एवं बड़ों के साथ अंत:क्रिया करने के कौशल प्रशिक्षण तथा प्रयासों द्वारा विकसित किए जा सकते हैं।

5. **आत्म-निर्देश :** मन्द बुद्धि बच्चों के कार्य उद्देश्य पूर्ण (purpose-ful) नहीं होते। वे बिना किसी कारण के कोई कार्य कर सकते हैं, जैसे बैठे-बैठे अपने आपको हिलाना शुरू कर सकते हैं या बिना किसी कारण कुछ करना प्रारम्भ कर सकते हैं।

6. **स्वास्थ्य एवं सुरक्षा :** मानसिक रूप से मंद बच्चों को वयस्क हो जाने पर भी अपने स्वास्थ्य एवं सुरक्षा का ध्यान रखने के लिए औरों की सहायता की आवश्यकता होती है। कुछ मानसिक रूप से अक्षम /मन्द व्यक्तियों को, असुरक्षित स्थानों पर अकेले छोड़ा ही नहीं जा सकता, भले ही वे वयस्क हो गए हों।

7. **शैक्षिक कार्य :** सामान्यत :, जब बच्चे अपेक्षित आयु पर पढ़ना व लिखना नहीं सीख पाते, तो हम यह मानते हैं कि उनका मानसिक विकास उनकी आयु की तुलना में धीमा है। हो सकता है इनमें से कुछ अपनी मानसिक सीमाओं के कारण कभी भी स्कूल नहीं जा पाएँ, जबकि अन्य मंदबुद्धि बच्चे प्राथमिक स्तर की शिक्षा पूरी करने में ही अपनी आयु के अन्य सामान्य बच्चों की तुलना में अधिक समय लगाएँ। मन्दबुद्धि कहलाए जाने वाले बच्चों में भी योग्यताओं की श्रेणियाँ /कोटियाँ स्तर होते /होती हैं।

8. **आराम एवं काम :** मानसिक रूप से मन्द बच्चे अधिकतर मनोरंजनात्मक सुविधाओं एवं आनन्द प्राप्त करने के अन्य अवसरों

का लाभ नहीं उठा पाते हैं। उनमें किसी काम को स्वतन्त्र रूप से प्रारम्भ कर पाने के लिए पहल करने का भी अभाव होता है। वे एकाग्रचित होकर किसी काम को नहीं कर पाते और इसलिए वे लापरवाह प्रतीत होते हैं। इसलिए उनको कुछ कार्य करने के लिए परिवार के सदस्यों, पड़ोसियों या सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

उपरोक्त चर्चा में बताई गई मानसिक रूप से मन्द बच्चों की सीमाओं के बारे में पढ़ने के बाद; संभवत: आपको ऐसा लगे कि मानसिक रूप से मन्द बच्चे कुछ भी कर पाने योग्य नहीं होते। परन्तु यह धारणा गलत है। वे कई प्रकार से और कई क्षेत्रों में काफी सक्षम भी होते हैं। इसके अतिरिक्त, सभी मानसिक रूप से मन्द बच्चों को उपरोक्त वर्णित सभी क्षेत्रों में कठिनाइयाँ नहीं होंगीं। साथ ही, किसी क्षेत्र में विकास किस सीमा तक प्रभावित होगा, यह भी प्रत्येक बच्चे के संदर्भ में भिन्न -भिन्न होगा। यह बच्चे की मन्दता की दर पर निर्भर करेगा। मन्दता का स्तर बहुत कम भी हो सकता है और बहुत अधिक भी। वास्तव में मन्दता का यह स्तर काफी हद तक बच्चे की क्रियाशीलता /काम करने के स्तर को निर्धारित करता है। ऊपर पूर्वोक्त वाक्य ''मानसिक रूप से मन्द बच्चों में भी योग्यताओं की श्रेणियाँ /कोटियाँ होती है'', का भी यही अर्थ है।

मानसिक मन्दता के स्तर

मोट तौर पर, मन्दबुद्धि व्यक्तियों को उनकी बौद्धिक एवं सामाजिक क्रियाशीलता के आधार पर चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। मानसिक मन्दता अल्प, मध्यम, गंभीर या अति गम्भीर स्तर की हो सकती है।

(क) अल्प स्तर की मन्दता

जब किसी बच्चे की मानसिक योग्यताएँ उसकी आयु के अनुसार अपेक्षित क्षमताओं के आधे से अधिक परन्तु तीन चौथाई से कम होतीं हैं, तो उसमें अल्प स्तर की मन्दता होती है। उदाहरणस्वरूप, दस वर्ष की बालिका में छह-सात वर्ष की बालिका के बराबर की मानसिक योग्यताएँ एवं व्यवहार का होना अल्प मंदता है। इसमे बुद्धि लब्धि (I.Q.) 50 से 70 के बीच होता है

(ख) मध्यम स्तर की मन्दता

जब किसी बच्चे का मानसिक विकास उसकी आयु के अनुसार अपेक्षित विकास के एक चौथाई से अधिक परन्तु आधे से कम हो तो, उसमें मध्यम स्तर की मन्दता होती है। उदाहरणस्वरूप, एक 12 वर्ष के बच्चे में 4-5 वर्ष के बच्चे के स्तर की मानसिक योग्यताएँ होना। इसमे बुद्धि लब्धि 25 से 50 के बीच होता है

(ग) गंभीर स्तर की और अति गंभीर स्तर की मन्दता

जब किसी बच्चे का मानसिक विकास उसकी आयु के अनुसार अपेक्षित विकास के एक चौथाई से भी कम हो, तो मन्दता गंभीर कहलाती है। इससे भी कम मानसिक विकास को अति गम्भीर मन्दता कहते हैं। इसमें बुद्धि लब्धि 25 से कम होती है

आइए, नीचे दी गई तालिका में देखते हैं कि मानसिक मन्दता के इन विभिन्न स्तरों के प्रमुख लक्षण क्या होते हैं, जो हमें इन बच्चों को सामान्य बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग पहचानने में सहायता कर सकते हैं।

मानसिक मन्दता वाले बच्चों के कुछ लक्षण

तालिका 7 (क) : मानसिक रूप से मन्द बच्चों के कुछ लक्षण

मानसिक मन्दता (6-18 वर्षा) का स्तर	शालापूर्व आयु में (0-5 वर्ष)	स्कूलगामी आयु के दौरान
अल्प मन्दता	कई बार ऐसे बच्चों में और सामान्य रूप से विकसित हो रहे बच्चों में, छोटी उम्र में, विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। स्कूल जाना प्रारम्भ होता है; भाषा के विकास में कुछ विलम्ब होता है किन्तु ये बच्चे संप्रेषण के तरीके विकसित कर पाने में समर्थ होते हैं; इनको शालापूर्व केन्द्र में जाना चाहिए	किशोरावस्था तक छठी कक्षा के बच्चों के लिए अपेक्षित शैक्षणिक कौशल अर्जित कर पाते हैं; अन्य लोगों के साथ पारस्परिक व्यवहार करना सीख सकते हैं, कुछ सीमित स्थानों तक अपने आप स्वतन्त्र रूप से आ-जा सकते हैं।

मध्य मन्दता	सामान्य बच्चों की तुलना में सीखने व समझने में काफी धीमी गति और इसलिए छोटी उम्र से ही अन्य सामान्य बच्चों से भिन्न दिखाई देते हैं। ये बच्चे बात करना सीख सकते हैं; क्रियात्मक विकास धीमा होता है किन्तु ये बच्चे इसे क्षेत्र में स्वावलम्बी बन सकते हैं; बच्चे को अपनी दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं (नहाना, खाना, तैयार होना इत्यादि) को स्वयं पूरा करने के लिए प्रशिक्षित करना संभव से बच्चे को नियंत्रित किया जा सकता है, इसलिए वह शालापूर्व केन्द्र में जा सकता है।	इन बच्चों का सामाजिक एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रशिक्षण संभव है; संभवतः दूसरी कक्षा के स्तर से अधिक शैक्षिक योग्यता न अर्जित कर पाएँ; जानी-पहचानी जगहों पर अकेले जाना सीख सकते हैं। वयस्क होने पर किसी के पर्यवेक्षण में दिन-प्रतिदिन (Routine Daily Work) के काम (जैसे नहाना, खाना खा पाना) कर सकते हैं।
गंभीर मन्दता	अपर्याप्त क्रियात्मक विकास; भाषा का अपर्याप्त विकास; स्व-देखभाल के लिए भी (जैसे नहाने, खाने आदि के लिए) दूसरों पर आश्रित; पारस्पारिक क्रिया व्यवहार संबंधी कौशल बहुत कम या बिल्कुल नहीं हर समय सहायता की आवश्यकता होगी।	बात करना व पारस्परिक क्रिया व्यवहार करना सीख सकते हैं; नहाने जैसी स्वास्थ्य संबंधी मूल आदतों के विकास के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है, आदत डलवाने हेतु व्यवस्थित रूप से दिए जाने वाले प्रशिक्षण से लाभान्वित हो सकते है; विशेष बच्चों के लिए चलाए जा रहे प्रशिक्षण केन्द्र में भेजे जा सकते हैं।
अति गम्भीर मन्दता	अपना ध्यान रखने, दैनिक जरूरतों व इधर -उधर जाने के लिए पूर्ण रूप से दूसरों पर आश्रित; घर पर पूरी देखभाल की आवश्यकता।	क्रियात्मक विकास में थोड़ी सी प्रगति संभव है। स्व-देखभाल संबंधी साधारण आदतें सिखाई जा सकती हैं। विशेष रूप से अपंग बच्चों के लिए चलाए जा रहे केन्द्र में जाने से लाभान्वित हो सकते हैं।

NOTES

अति गम्भीर मन्दता कई बार ऐसे बच्चों में और सामान्य रूप से विकसित हो रहे बच्चों में, छोटी उम्र में, विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। स्कूल जाना प्रारम्भ होता है ; भाषा के विकास में कुछ विलम्ब होता है किन्तु ये बच्चे संप्रेषण के तरीके विकसित कर पाने में समर्थ होते हैं; इनको शालापूर्व केन्द्र में जाना चाहिए क्योंकि इससे इनकी सभी क्षमताओं के विकास में सहायता मिलेगी।

सामान्य बच्चों की तुलना में सीखने व समझने में काफी धीमी गति और इसलिए छोटी उम्र से ही अन्य सामान्य बच्चों से भिन्न दिखाई देते हैं। ये बच्चे बात करना सीख सकते हैं; क्रियात्मक विकास धीमा होता है किन्तु ये बच्चे इसे क्षेत्र में स्वावलम्बी बन सकते हैं। बच्चे को अपनी दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं (नहाना, खाना, तैयार होना इत्यादि) को स्वयं पूरा करने के लिए प्रशिक्षित करना संभव से बच्चे को नियंत्रित किया जा सकता है, इसलिए वह शालापूर्व केन्द्र में जा सकता है।

अपर्याप्त क्रियात्मक विकास; भाषा का अपर्याप्त विकास; स्व-देखभाल के लिए भी (जैसे नहाने, खाने आदि के लिए) दूसरों पर आश्रित; पारस्पारिक क्रिया/व्यवहार संबंधी कौशल बहुत कम या बिल्कुल नहीं हर समय सहायता की आवश्यकता होगी।

अपना ध्यान रखने, दैनिक जरूरतों व इधर-उधर जाने के लिए पूर्ण रूप से दूसरों पर आश्रित; घर पर पूरी देखभाल की आवश्यकता। किशोरावस्था तक छठी कक्षा के बच्चों के लिए अपेक्षित शैक्षणिक कौशल अर्जित कर पाते हैं; अन्य लोगों के साथ पारस्परिक व्यवहार करना सीख सकते हैं, कुछ सीमित स्थानों तक अपने आप स्वतन्त्र रूप से आ-जा सकते हैं;

अपनी दैनिक आवश्यकताओं को स्वयं। पूरा कर सकते हैं; वयस्क होने पर इनसे आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होने की आशा की जा सकती है।

इन बच्चों का सामाजिक एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रशिक्षण संभव है;

संभवतः दूसरी कक्षा के स्तर से अधिक शैक्षिक योग्यता न अर्जित कर पाएँ; जानी-पहचानी जगहों पर अकेले जाना सीख सकते हैं। वयस्क होने पर किसी के पर्यवेक्षण में दिन-प्रतिदिन (Routine Daily Work) के काम (जैसे नहाना, खाना खा पाना) कर सकते हैं।

बात करना व पारस्परिक क्रिया/व्यवहार करना सीख सकते है; नहाने जैसी स्वास्थ्य संबंधी मूल आदतों के विकास के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है, आदत डलवाने हेतु/व्यवस्थिंत रूप से दिए जाने वाले प्रशिक्षण से

लाभान्वित हो सकते हैं; विशेष बच्चों के लिए चलाए जा रहे प्रशिक्षण केन्द्र में भेजे जा सकते हैं।

क्रियात्मक विकास में थोड़ी सी प्रगति संभव है। स्व- देखभाल संबंधी साधारण आदतें सिखाई जा सकती हैं। विशेष रूप से अपंग बच्चों के लिए चलाए जा रहे केन्द्र में जाने से लाभान्वित हो सकते हैं।

परम्परागत, किसी व्यक्ति की बुद्धिमता या बौद्धिक कार्य-क्षमता का स्तर मानकीकृत बुद्धि परीक्षणों (Standardised Intelligence Test) के आधार पर मापा जाता है, जिससे कि किसी व्यक्ति की बुद्धिलब्धि (Intelligence Quotient; I. Q; आई. क्यू.) का पता लगता है। आई. क्यू. के आधार पर किसी व्यक्ति को ''प्रतिभावान'', ''सामान्य बुद्धिमता वाला'', ''अल्प'', ''मध्यम'', ''गम्भीर'' या ''अति गम्भीर मन्दता'' स्तर वाला कहा जाता है। इन परीक्षणों का एक व्यक्ति कितनी अच्छी तरह निष्पादित कर पाता है, इसी आधार पर उसकी मानसिक मन्दता की कोटि का अनुमान लगाया जाता है। ये परीक्षण मुख्य रूप से पश्चिमी देशों द्वारा विकसित किए गये हैं। इनको भारत में प्रयोग करने हेतु, कुछ भारतीय विद्वानों ने इन परीक्षणों के प्रश्नों में कुछ रूपांतरण किया है, ताकि ये परीक्षण भारत के संदर्भ में अधिक उपयुक्त बन सकें। बुद्धि लब्धि कि मात्रा 70 से कम हाने पर मंद बुद्धि की श्रेणी मे रखा जाता है

मानसिक मन्दता मानसिक रोग नहीं है

चर्चा के आगे बढ़ने से पहले यह समझ लेना बहुत आवश्यक है कि मानसिक मन्दता और मानसिक रोग में बहुत अन्तर हैं। आमतौर पर ऐसा पाया गया है कि मानसिक रूप से मन्द व्यक्ति को मानसिक रोगी के रूप में देखा जाता है और पुकारा जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योकि, सरसरी तौर पर, मानसिक रूप से बीमार और मानसिक रूप से मन्द व्यक्तियों के कुछ व्यवहार एक से प्रतीत होते हैं। किन्तु आपको इस संदर्भ में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है तथा अपने आसपास के लोगों के प्रति भी सतर्क रहने की जरूरत है, ताकि यदि वे बच्चे की मन्दता को गलत दृष्टिकोण से द्धयानी रोग में ऋ देख रहें हैं, तो आप उन्हें उनकी गलती का अहसास दिला सकें।

मानसिक रूप से रोगी वयस्क/बच्चे की बुद्धिमता का स्तर, मानसिक रूप से मन्द बच्चे/ वयस्क की अपेक्षा, सामान्य या उच्च कोटि का हो सकता है। तथापि, तनावपूर्ण अनुभवों या मस्तिष्क को प्रभावित करने वाली बीमारी के कारण--उसमें कुछ अवांछनीय व्यवहार विकसित हो जाते हैं।

NOTES

मानसिक रोग एक बीमारी है जो कि किसी भी आयु में, किसी को भी, हो सकती है। मानसिक रोग के कारण बच्चे/वयस्क ऐसा व्यवहार प्रदर्शित कर सकते हैं जिसमें वे लगातार लम्बी अवधि तक शरीर को आगे-पीछे हिलाते रहते हैं द्धrocking behaviourऋ दीवार पर सिर मारते हैं और अपने को नुकसान पहुँचाने वाले अन्य व्यवहार कर सकते हैं। कुछ इस प्रकार के मानसिक रोग भी होते हैं जिनमें बच्चे/वयस्क यह कल्पना करने लगते हैं, कि उन्हें अजीब आवाजें सुनाई दे रही हैं या कुछ दृश्य दिखाई दे रहे हैं। आप उन्हें समझाने का चाहे कितना भी प्रयास करें कि ऐसा वास्तव में नहीं है, परन्तु वे आपकी बात का विश्वास नहीं करेंगे। कुछ अन्य मामलों में मानसिक रोग से ग्रस्त बच्चे/वयस्क अपने आसपास के परिवेश से अपने आप को बिल्कुल अलग कर लेते हैं और अकेला व चुपचाप रहना पसंद करते हैं।

एक मन्दबुद्धि बालिका, विशेष रूप से वह जिसमें गंभीर या अति गम्भीर कोटि की मन्दता है, वह भी शरीर को आगे-पीछे हिलाने का व्यवहार प्रदर्शित कर सकती है या अपना सिर दीवार से मार सकती है, किन्तु वह निश्चित रूप से ऐसी कल्पना नहीं करती कि उसे आवाजें सुनाई दे रही हैं या दृश्य दिखाई दे रहे हैं। न ही वह आमतौर पर स्वयं को लोगों से दूर कर लेती है। जब एक मानसिक रूप से मन्द बालिका असामान्य रूप से व्यवहार करती है, जो कि एक मानसिक रोगी के व्यवहार के सामने ही लगता है, तो वह ऐसा इसलिए कर रही है क्योंकि उचित व्यवहार करने का तरीका वह सीख ही नहीं पायी है घर या स्कूल में उपयुक्त प्रशिक्षण द्वारा उसके ऐसे व्यवहार को कम किया जा सकता है व अधिकतर मामलों में ऐसे व्यवहार को समाप्त करने में भी उसकी सहायता की जा सकती है। किन्तु मानसिक रोगियों के संदर्भ में प्रशिक्षण द्वारा ऐसे व्यवहारों को सुधारना संभव नहीं है।

एक मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति को चिकित्सकीय उपचार की आवश्यकता पड़ती है, जिससे कि उसका रोग कम या बिल्कुल ठीक हो सकता है। दूसरी तरपफ, मानसिक रूप से मन्द व्यक्ति को मुख्य रूप से अपनी योग्यताओं को विकसित करने/सुधारने के लिए शिक्षा एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। कुछ मंदबुद्धि व्यक्तियों को थोड़े बहुत चिकित्सकीय इलाज की भी आवश्यकता हो सकती है, किन्तु कहने का मतलब यह है कि मानसिक मन्दता का चिकित्सा द्वारा उपचार नहीं किया जा सकता। मानसिक रूप से अक्षमता बच्चे बड़े होने पर अन्य बच्चों की तरह सामान्य नहीं हो सकते। परन्तु उनको सीखने के लिए प्रेरित व प्रशिक्षित किया जा सकता है।

अब आप यह समझ सकते हैं कि यदि मन्दबुद्धि बालिका को मानसिक रोगी का नाम दिया जाए, तो माता-पिताशायद उसको शिक्षा देने व प्रशिक्षित करने

का प्रयत्न ही नहीं करेंगे, क्योकि उनको इस बात में विश्वास नहीं कि शिक्षा तथा प्रशिक्षण द्वारा उसमें सुधार लाया जा सकता है। यदि माता-पिता ऐसा दृष्टिकोण अपना लेते हैं, तो बच्चे के प्रारम्भिक वर्षो का मूल्यवान समय नष्ट, हो जाएगा। इसलिए ठीक से लक्षणों को पहचानना और शीघ्र ही बच्चे के विकास में सकारात्मक अंतःक्षेप करना, मानसिक रूप से अक्षम बच्चों के संदर्भ में बहुत ही महत्वपूर्ण है।

मंदबुद्धि बच्चों को पहचानना

बहुत से मन्द बुद्धि बच्चे अन्य बच्चों की तरह ही लगते हैं, विशेष रूप से वे जिनकी मन्दता अल्प स्तर की होती है। अत: यह पता लगाने के लिए कि बच्चे में मन्दता है या नहीं, कई बातों को ध्यान में रखना होगा।

बच्चे का बाह्य स्वरूप

बच्चे के आकार की तुलना में उसका सिर बहुत बड़ा या बहुत छोटा हो सकता है। कुछ बच्चों की आँखें तिरछी, माथा संकीर्ण (छोटा) और जीभ बाहर को निकली हो सकती है। हो सकता है उसकी आँखों में तेजहीन भाव हो (Dull Expression) या उन्हें कम सुनाई देता हो। गंभीर और अति गंभीर रूप से मन्द बच्चे तुरंत ही अपने बाह्रय स्वरूप के कारण अन्य बच्चों से अलग पहचाने जाते हैं।

उपरोक्त चित्र में बालिका के व्यवहार का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने से यह पता लगाया जा सकता है कि क्या वह अन्य बच्चों की तुलना में मानसिक रूप से धीमी गति से काम करती है या नहीं। आमतौर पर, शालापूर्व आयु के मंदबुद्धि बच्चे में आगे वर्णित कुछ विशेषताएँ अवश्य होंगी। (यहाँ आपको यह अवश्य ध्यान रखना होगा कि किस सीमा तक ये विशेष किसी बच्चे में विद्यमान होंगी, यह उसकी मन्दता के स्तर पर निर्भर करेगा।)

NOTES

(क) बालिका की वाक् क्षमता (Speech) बहुत कम है। यदि है भी, तो वह बहुत कम बोलेगी और बोलते समय केवल कुछ शब्दों या छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करेगी। उदाहरणतया, ''राधा, मुझे गुड़िया दे दो'' बोलने के स्थान पर वह ''राधा गुड़िया'' ही बोलेगी। साथ ही, बोली भी स्पष्ट नहीं होगी।

(ख) बालिका दिए गए निर्देशों को सरलता से नहीं समझती; उसे समझाने के लिए इन निर्देशों को बार-बार दुहराना पड़ता है।

(ग) किए जा रहे अपने काम की ओर पूरा ध्यान न दे पाना भी मन्दता का एक लक्षण है। बालिका अधीर, चिड़चिड़ी या बेचैन हो सकती है। उसमें कुछ क्षण पहले बताई गई बात को भूलने की प्रवृत्ति भी हो सकती है।

(घ) हो सकता है बलिका अपने मल और मूत्र पर पूरा नियंत्रण न हासिल कर पाई हो।

(ड.) मन्दबुद्धि बच्चे, सहायता के बिना, अन्य बच्चों के साथ सक्रिय रूप से नहीं खेल सकते। कुछ बच्चे अन्य बच्चों का साथ पसन्द नहीं करते और वे दूसरों से दूर भागते हैं। वे खेलते समय अपनी ओर से पहल नहीं करते और न ही खेल के दौरान कल्पनाशीलता दर्शाते हैं। वे खेलते हुए एक ही क्रिया को दोहराते हैं।

(च) यदि आप ध्यान से अवलोकन करें तो पाएँगे कि उनकी शारीरिक गतिविधयाँ आपको कुछ अटपटी लगेंगी। वे सक्षमतापूर्वक हाथो का प्रयोग नहीं करते। छोटी चीजों, जैसे खिलौनों या पेन्सिल, को पकड़ना या इस्तेमाल करना उनके लिए सामान्यत : कठिन होता है। उनका क्रियात्मक विकास कमजोर होता है और क्रियाओं में समन्वय का अभाव है और यह निम्नलिखित लक्षणों से स्पष्ट होता है :

- झटके से अथवा असमन्वित रूप से क्रियाएँ करना,
- एक ही साथ दोनों बाँहों को हिलाने में कठिनाई,
- उन्हें अपने हाथों को एक ओर से दूसरी ओर ले जाने में कठिनाई। उदाहरणस्वरूप, बच्चे को अपने सीधे हाथ का प्रयोग करते हुए शरीर के बाएँ तरपफ रखे हुए खिलौने को उठाने में कठिनाई होगी।

- अपर्याप्त संतुलन जो कि बच्चे के बार-बार गिरने, लोगों से टकराने या चीजों को गिराने से विदित होता है।
- उन कौशलों या क्रियाओं में कठिनाई जिनमें ऊंगलियों या कलाई का प्रयोग होता है। उदाहरणस्वरूप, बालिका बटन नहीं बन्द कर सकती, पेन्सिल ठीक से नहीं पकड़ पाती और कैंची का प्रयोग नहीं कर पाती।
- आँखों व हाथों के बीच समन्वय स्थापित करने में कठिनाई, जो कि तब स्पश्ट पता लगती है जब कि बालिका चिपकाने की या गेंद पकड़ने की क्रिया आदि कर रही हो या किसी गतिशील वस्तु को देखने के लिए, एकदम झटके से आँखें उस ओर ले जाती हो।

(च) मंदबुद्धि बच्चों में व्यवहार संबंधी समस्या भी हो सकती है। वे बिना किसी कारण के आक्रामक व्यवहार Aggresive Behaviour) क्रोधावेश (Temper Tantrum), जिद्दीपन, विनिवर्तित व्यवहार (Withdrawn Behaviour) या नई स्थिति के प्रति विरोध प्रदर्शित कर सकते हैं।

(छ) मंदबुद्धि बच्चों को सीखने में कठिनाई होगी।

मानसिक मन्दता के कारण

यहाँ एक प्रश्न यह उठ सकता है कि बच्चे जन्म से ही मंदबुद्धि होते हैं या फिर बड़े होते-होते उनमें मन्दता आती जाती है। इस भाग में हम उन कुछ कारकों के संबंध में पढ़ेंगे जो मानसिक अक्षमता का कारण बन जाते हैं। इस चर्चा से हमें यह समझने में भी सहायता मिलेगी कि किस प्रकार मन्दता से बचा जा सकता है या उसे नियंत्रित किया जा सकता है।

मोटे तौर से, मानसिक मन्दता के दो प्रकार के कारण होते हैं। एक प्रकार की मानसिक मंदता तो वह है जिसे बच्चे माता- पिता से आनुवंशिक रूप में प्राप्त करते है। और इसे अनुवांशिक कारण कहते हैं। दूसरे प्रकार के कारण परिवेश के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

1. अनुवंशिक कारक (Genetic Factors) :

आपने पढ़ा है कि गर्भधारण के समय 'जीन' (Gene) माता-पिता से सन्तान में आ जाते हैं 'जीन' में ही विकास के कोड (Code) निहित होते हैं, जिसके कारण माँ के गर्भ में एक निशेचित अंडाणु एक बच्चे के रूप में विकसित होता है।

NOTES

यह संभव है कि माता अथवा पिता या माता-पिता दोनों, के 'जीन' के माध्यम से नवजात में कुछ दोष भी संचरित हो जाएँ। इसका अर्थ है कि माता-पिता दोनों में, या माता अथवा पिता में से किसी एक में ऐसी दोषपूर्ण 'जीन' है जिसके कारण मन्दता आई है। **अतः, यदि माता या पिता, अथवा माता-पिता दोनों में, दोषपूर्ण 'जीन' है जिसके कारण माँ के गर्भ में विकसित हो रहे बच्चे के मस्तिष्क को क्षति पहुँचती है, तो स्थिति को परिवर्तित नहीं किया जा सकता।** सौभाग्यवश, ऐसे माता-पिता की संख्या, जिनमें ऐसे दोषपूर्ण 'जीन' हैं, बहुत ही कम होते हैं। वास्तव में वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा इस बात का पता लगाना संभव हो गया है कि माता-पिता में ऐसी दोषपूर्ण 'जीन' है या नहीं। अतः इस प्रकार के कारणों से होने वाली मानसिक मन्दता से बचा जा सकता है। यदि माता-पिता में से किसी एक के परिवार (चाहे वह पति पक्ष हो या पत्नी पक्ष का) में भी मानसिक मन्दता का इतिहास हो, तो उन्हें गर्भधारण से पहले ही अनुवांशिक-परामर्श (Genetic Counseling) लेना चाहिए। इससे दम्पत्ति को पता लग सकेगा कि सामान्य बच्चे को जन्म देने की कितनी संभावना है।

एक अन्य संभावना यह है कि गर्भधारण के समय कोशिका विभाजन या गुणन की प्रक्रिया में विकार आ गया हो और इस प्रकार गर्भ धारण किए गए बच्चे में कोई दोष आ गया हो, चाहे माता-पिता दोनों में से किसी की भी 'जीन्स' में इस प्रकार का दोष न रहा हो। इस प्रकार की स्थिति का एक उदाहरण ''डाउन'' सिंड्रोम (Down's syndrome) है। इस स्थिति में बच्चे में गुणसूत्रों (Chromo-some) की संख्या संबंधी दोष आ जाता है द्धआवश्यकता से एक अधिक गुणसूत्र होता हैंॠ, जिसके परिणामस्वरूप बच्चे के चेहरे की बनावट विशेष प्रकार की होती है, जिससे कि बच्चे को देखते ही पहचाना जा सकता है कि वह डाउन सिंड्रोम वाला बच्चा है। इस स्थिति के कारण मानसिक मन्दता भी आ जाती है। बच्चे की आँखें तिरछी, नाक छोटी व चपटी, गोल सिर व चेहरा, छोटी किन्तु चौड़ी ऊंगलियाँ व हथेली पर खुरदरी त्वचा होती है।

2. परिवेश संबधी कारक

जैसा कि आप जानते हैं, परिवश में हमारा तात्पर्य उन सब व्यक्तियों, घटनाओं, अनुभवों और वस्तुओं से है जो बच्चे को तबसे प्रभावित करना प्रारम्भ कर देतीं हैं जब बच्चा माँ के गर्भ में भ्रूण के रूप में होता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि गर्भ धारण के दौरान माता का स्वास्थ्य और उसकी मनोवैज्ञानिक स्थिति, गर्भ में विकसित हो रहे बच्चे को प्रभावित करती है। जन्म लेने के पश्चात, भौतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जगत बच्चे का परिवेश निर्मित करते हैं। **इस प्रकार जन्म से पूर्व, जन्म के दौरान तथा जन्मोत्तर के परिवेश संबंधी कारक, बच्चे की मानसिक अक्षमता का कारण बन सकते है।**

(क) जन्मपूर्व कारक : आपने पढ़ा है कि गर्भवती महिला को पौष्टिक भोजन खाना चाहिए, स्वस्थ रहना चाहिए तथा मानसिक तनाव से बचना चाहिए। उसे पर्याप्त विश्राम भी करना चाहिए। इसका कारण यह है कि माँ के गर्भ में बढ़ रहे शिशु का विकास उसके भोजन, उसके क्रियाकलापों व उसके स्वास्थ्य से प्रभावित होता है।

जहाँ कुछ द्रव्य/पदार्थ माता तथा गर्भस्थ शिशु दोनों को नुकसान पहुँचा सकती हैं, वहीं कुछ अन्य द्रव्य/पदार्थ माता को प्रभावित न करके, केवल गर्भस्थ शिशु को प्रभावित करते हैं। इनका प्रभाव इतना तीव्र भी हो सकता है कि गर्भस्थ शिशु के मस्तिष्क को क्षति पहुँच जाए और, परिणामस्वरूप बच्चे में मानसिक मन्दता आ जाए। माता के पौष्टिक भोजन के अभाव से, डाक्टर के परामर्श के बिना औषधियों का प्रयोग करने से, माता द्वारा मद्यपान या धूम्रपान करने से, एक्स-रे कराने से, विशेष रूप से गर्भधारण के पहले तीन महीनों के दौरान, व माता को किसी प्रकार का भावात्मक धक्का लगने से अथवा दुर्घटना के कारण, गर्भस्थ शिशु के मस्तिष्क को क्षति पहुँच सकती है।

यदि माता को कोई संक्रामक रोग हो जाता है जैसे- जर्मन खसरा (रूबैला) या सिफलिस, तो उससे भी बच्चे का मस्तिष्क प्रभावित हो सकता है तथा उसको क्षति पहुँच सकती है। यदि माता को मधुमेह (Diabetes) या हार्मोन विकार संबंधी किसी प्रकार की शिकायत है, तो उससे भी गर्भस्थ शिशु में मानसिक मन्दता आ सकती है।

निरोधक उपाय

1. सबसे अच्छा यह होगा कि माता 20 से 35 वर्ष की आयु में बच्चों को जन्म दे। इस दौरान स्वस्थ बच्चे को जन्म देने

की संभावना अधिक होती है। जीवन के इस चरण में प्रजनन तंत्र पूर्णतः विकसित होता है तथा गर्भ में आए नए जीव के विकास को ग्रहण कर लेता है।

2. आपने शायद कभी यह सोचा हो कि गर्भवती महिला को परिवार के सदस्य कोई सदमा क्यों नहीं पहुंचने देते या कोई बुरी खबर क्यों नहीं देना चाहते तथा क्यों परिवार के बड़े-बूढ़े गर्भवती महिला को प्रसन्नचित्त व शान्त (तनावरहित) रहने का परामर्श देते हैं। इसका एक वैज्ञानिक कारण है- बहुत से त्तव माँ के रक्त से गर्भस्थ शिशु के रक्त में जा सकते हैं। जिसमें माँ के हार्मोन भी शामिल हैं। माता की भावात्मक स्थिति द्धप्रसन्नता या व्यग्रताऋ से उसके हार्मोनों के स्तर में भी परिवर्तन आता है। यदि वह प्रसन्न होती है, तो स्तर में अच्छाई के लिए परिवर्तन आता है; किन्तु यदि वह क्रोधित या परेशान है, तो उसका हार्मोनों के स्तर पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है। बहुत ही व्यग्र माताओं में समय से पूर्व ही शिशु को जन्म देने, जन्म के समय कठिनाई या जन्म उपरान्त समस्याएँ होने की संभावना अधिक रहती है और यह सभी स्थितियाँ बच्चे के लिए बहुत जोखिमपूर्ण होतीं हैं। कुछ मामलों में इनके परिणामस्वरूप, नवजात शिशु के मस्तिष्क को भी क्षति पहुँच सकती है।

(ख) प्रसवकालीन कारक (जन्म के दौरान के कारक) : अधिकांश महिलाएँ सामान्य रूप से बच्चे को जन्म देतीं है, चाहे वे घर पर हों या अस्पताल में। **फिर भी, बहुत सी ऐसी महिलाएँ भी हैं जिनको बच्चे को जन्म देने में बहुत कठिनाई होती है और कठिनाई पूर्ण प्रसव के परिणामस्वरूप भी शिशु में मानसिक मन्दता आ सकती है।** यदि माता 24 घंटों से अधिक प्रसव पीड़ा में रहती है और बच्चा पैदा नहीं होता, यदि प्रसव के दौरान बच्चे का सिर ज्यादा दब जाए, यदि शिशु के सिर का आकार बहुत बड़ा हो, यदि नाभि- रज्जु बच्चे के गले के चारों तरपफ लिपट गई हो, यदि प्रसव जल्दी करने के लिए दवाइयों का प्रयोग किया गया है, यदि शिशु को जन्म देने के लिए औजारों का प्रयोग किया हो और उनके प्रयोग से शिशु के मस्तिष्क को क्षति पहुँची हो, यदि शिशु जन्म के फौरन बाद

रोया नहीं, यदि शिशु का जन्म समय पूर्व ही हो गया हो (यानी गर्भवस्था के 36 सप्ताह से पहले) - तो इन सबसे शिशु के मस्तिष्क को क्षति पहुँचने की संभावना हो सकती है। इस प्रकार की परिस्थितियों में, यदि विशेष ध्यान नहीं रखा गया हो, तो मस्तिष्क की क्षति संभव है, जिसका एक प्रभाव शिशु में मानसिक मन्दता हो सकती है।

इसलिए, यह बहुत आवश्यक है कि प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा ही प्रसव कराया जाए, चाहे जन्म घर पर हो या अस्पताल में, जिससे कि यदि कोई आकस्मिकता आए तो उसका सामना किया जा सके।

(ग) **जन्मोपरान्त कारक :** शिशु के सामान्य रूप से जन्म लेने के बाद भी परिवेश संबंधी कारकों से बाल्यावस्था में बच्चे में मानसिक मन्दता आ सकती है। प्रथम कुछ वर्षो में कुपोषण- जिसमें बालिका गंभीर प्रोटीन-कैलोरी की कमियों से ग्रस्त होती है और आहार में अनिवार्य विटामिनों का अभाव रहता है- के कारण मन्दता सहित कई गम्भीर परिणाम हो सकते है। **संक्रमण, जिनसे** मस्तिष्क **ज्वर हो जाता है**- जैसे तंत्रिका-शोध (मैनिनजाइटिस) या मस्तिष्क शोथ (Encephalitis)- मस्तिष्क को क्षति पहुँचती हैं। गिरने या पीटे जाने के परिणामस्वरूप सिर को लगी चोट भी बहुत खतरनाक सिद्ध होती है। अतः उससे शिशु को बचाना चाहिए। तेज ज्वर के साथ दौरे पड़ना, बहुत अधिक दस्त तथा शरीर में पानी की कमी से भी मानसिक मन्दता आ सकती है।

निरोधक उपाय

1. ध्यान रखें कि छोटे बच्चे करवट लेते हुए बिस्तर या पालने से नीचे न गिरें। उन्हें सीढ़ियों आदि के पास अकेला न छोड़ें।
2. जन्म के समय से ही, शिशुओं को उनकी आयु के अनुरूप समुचित पौष्टिक आहार दिया जाना चाहिए। आहार में प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज आादि पौष्टिक त्तव सम्मिलित होने चाहिए। जब तक संभव हो, बच्चे को स्तनपान कराइए। तथापि, चौथे माह के उपरान्त स्तनपान के साथ-साथ पूरक आहार देना भी प्रारम्भ कर दीजिए।

3. बच्चों को संक्रामक रोगों से बचाव के टीके निर्धारित आयु पर अवश्य लगवाएँ। फिर भी, यदि बच्चे को संक्रमण हो जाता है, तो त्तकाल चिकित्सीय सहायता ली जानी चाहिए ताकि स्थिति को बिगड़ने से रोका जा सके।
4. यदि स्वास्थ्य व सफाई के सामान्य नियमों का पालन किया जाए, तो अधिकांश संक्रमणों से बचा जा सकता है।
5. यदि बच्चे को तेज ज्वर हो जाता है या दौरे पड़ते हैं, तो स्वास्थ्यकर्ता से परामर्श लें। बच्चे के हाथों, पैरों तथा माथे पर ठंडा गीला कपड़ा रखें।

बच्चों को कभी भी सिर पर नहीं मारना चाहिए क्योंकि इन प्रहारों से मस्तिष्क को क्षति पहुँच सकती है। वास्तव में, बच्चों को कभी भी मारना ही नहीं चाहिए।

मानसिक रूप से अक्षम बच्चों के साथ कार्य करना

मानसिक रूप से अक्षम बच्चों की देखभाल करने तथा उन्हें शिक्षा और प्रशिक्षण देने संबंधी चर्चा हम दो संदर्भों में करेंगे। घर के संदर्भ में, जबकि माता-पिता को यह मालूम हो चुका हो कि बालिका में मानसिक मंदता है, तथा प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षण केन्द्र के संदर्भ में, जब बालिका वहाँ जाना प्रारम्भ कर दें। दोनों स्थितियों में आपकी भूमिका महत्वपूर्ण होगी।

आपको माता-पिता को घर पर ही बच्चे के केन्द्र में जाना प्रारम्भ करने से पूर्व, बच्चे को उद्दीप्त करने वाले अनुभव (Stimulate) प्रदान करने के संबंध में मार्गदर्शन करना होगा। केन्द्र में आप एक शिक्षिका/शिक्षक के रूप में बच्चे की योग्यताओं के अधिकतम विकास में सहायक हो सकते हैं।

कुछ सिद्धांत

हम सबसे पहले कुछ ऐसे पहलुओं का वर्णन करेंगे जिन्हें आपको मन्दबुद्धि बच्चों के साथ काम करते समय हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। ये सिद्धांत घर पर बच्चे के साथ कार्य करते हुए तथा केन्द्र में- दोनों स्थितियों में - समान रूप से लागू होते हैं।

तालिका 7(ग) : कुछ सिद्धांत

पद्धति (विधि)	व्याख्या
1. जैसे ही यह पता लगे कि बालिका मानसिक रूप से मन्द है, तो जल्दी से जल्दी उसे **प्रेरण तथा प्रेरक अनुभव, प्रशिक्षण तथा शिक्षा प्रदान कराना प्रारम्भ कर दीजिए।**	प्रारम्भिक वर्षों में, बालिका की सभी क्षेत्रों में विकास की गति तीव्र होती है तथा वह सकारात्मक अनुभवों (तथा नकारात्मक अनुभवों) के प्रति अतिसंवेदनशील होती है। इस प्रारंभिक वर्षों में यदि समय को खो दिया, तो बाद में इसकी पूर्ति करना संभव नहीं हो पाता।
2. **जब भी बालिका कोई काम ठीक से करे, तो उसकी प्रशंसा कीजिए, उसे गोद में लीजिए या कोई पुरस्कार दीजिए।** उसके छोट से छोटे प्रयास की भी प्रशंसा की जानी चाहिए। पुरस्कार के रूप में टॉफी न दें, तो बेहतर होगा।	प्रशंसा से बच्चे को खुशी मिलती है। काम ठीक न कर पाने पर डाँट पड़ने की अपेक्षा, काम ठीक होने पर मिलने वाली प्रशंसा बच्चे को और बेहतर काम करने के लिए प्रोत्साहित करती है। यदि वह कोई कार्य करने में सफल न हो, तो उसे फिर से कोशिश करने के लिए प्रोत्साहित कीजिए।
3. **सीखने की प्रक्रिया को मनोरंजक बनाइए।** यह प्रयास कीजिए कि सीखने की क्रिया में बालिका को आनन्द व मजा आए। खेल खेल में तथा खेल पूर्ण ढंग से बच्चों को सिखाना सबसे अच्छा तरीका है। एक क्रिया को तब तक करें, जब तक कि बच्चे को उससे आनन्द मिलता है व उसकी रूचि बनी रहती है। जब वह उसमें रूचि दिखाना बन्द कर दें, तो क्रिया को बदल दीजिए या कुछ समय के लिए उस क्रिया को स्थगित कर दीजिए।	बच्चे सबसे अच्छी तरह तब ही सीखते हैं जब उन्हें की जा रही क्रिया में आनन्द आता है।
4. बच्चे को केवल उतनी ही सहायता कीजिए जितनी की आवश्यकता हो। उसका सारा काम मत कीजिए। चाहे उसे स्वयं कार्य करने में आपकी अपेक्षा अधिक समय लगे, लेकिन जहाँ तक संभव हो, उसे कार्य अपने आप करने दीजिए। इससे बचचे का आत्मबल बढ़ेगा। आपकी ऐसी नीति अपनाने से जब उसकी मदद के लिए कोई नहीं होगा, तब भी वह क्रियाएँ करने का प्रयास करेगी।	पूरा प्रोत्साहन व थोड़ी सहायता देना बच्चे को धीरे-धीरे स्वावलम्बी बनाने के लिए एक अच्छी नीति है।

5. बालिका को नियमित रूप से शिक्षा प्रदान कीजिए व प्रोत्साहित कीजिए।	मानसिक रूप से मन्द बच्चों को सीखने व समझने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। उनकी स्मरण शक्ति भी कम होती है और वे
6. क्रिया को कई बार दोहराईए।	एक दिन पहले सिखाई गई बात को भूल भी सकते हैं। यदि प्रशिक्षण व प्रेरण नियमित नहीं होगा, तो बालिका पहले बताई गई बातें भूल जाएगी और आपको सब फिर सिखाना पड़ेगा।
7. क्रिया को कई चरणों में विभक्त कर लीजिए और एक समय पर एक ही चरण सिखाइए। यह सिद्धांत किसी भी क्षेत्र की किसी भी क्रिया के दूसरे चरण की ओर तभी अग्रसर हों जब बच्चे ने पहला चरण अच्छी तरह से सीख लिया हो। जब बालिका दूसरा चरण सीख लें, तो पहले व दूसरे चरण को दोहराइए जिससे बालिका पहले चरण और दूसरे चरण के बीच संबंध बना सकें। उसके बाद भी तीसरी चरण की ओर बढ़े।	अधिकतर सभी बच्चे इस प्रकार ही सीखते हैं; लेकिन हम आमतौर पर किसी क्रिया को इतनेचरणों के रूप में नहीं देखते क्योंकि समान्य बच्चे जब जल्द ही क्रिया सीख लेते हैं और सभी चरणो को एक साथ आसानी से कर लेते है। चूँकि मन्द बुद्धि बच्चे बात को समझने में समय लेते हैं, इसलिए कुछ भी सीखने में उसके साथ प्रत्येक चरण पर अधिक समय लगाने की आवश्यकता होती हैं।
8. बालिका के साथ करते समय धैर्य रखिए। उसके साथ सीखने के लिए जबरदस्ती मत कीजिए। बच्चे की हंसी मत उड़ाईए और उसे दण्ड मत दीजिए। यदि बालिका आपके द्वारा बताया काम न कर पाए, तो क्रिया को थोड़ी देर के लिए छोड़ दीजिए और थोड़ी देर बाद फिर उसे शुरू कीजिए। एक ही दिन में किसी परिणाम की आशा मत कीजिए। प्रगति धीमी होने पर भी निराश मत होइए।	जब बालिका कोई कार्य नहीं कर पा रही हों, उस काम को पूरा करने के लिए दबाव डालने से, वह आत्मविश्वास खोने लगती है तथा, सकता है, वह फिर से कोशिश करने में हिचकिचाहट महसूस करें। उस पर हँसने व उसका मज़ाक उड़ाने से उसमें अपने संबंध में हीन भावना आती है।
9. सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि बालिका को यह अहसास व विश्वास दिलाइए कि उसे प्यार किया जाता है और सब लोग उसे चाहते हैं।	जब बच्चे ऐसे परिवेश में रहते है जहाँ वे भावात्मक रूप से सुरक्षित महसूस करते है, तो उनका अनुकूलतम विकास होता है।

आइए, अब देखते हैं कि वे कौन से क्षेत्र हैं जिनमें मानसिक रूप से मन्द बच्चों को सहायता की आवश्यकता होती है और उनकी कार्यशीलता को सुधारने (घर पर व केन्द्र में) के लिए क्या किया जा सकता है। माता-पिता

घर पर ही बच्चे को प्रशिक्षण देना प्रारम्भ कर सकते हैं। उपभाग 6.7.3 में यह बताया गया है कि बच्चे के साथ केन्द्र में काम करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए। तथापि यह बातें घर में बच्चे को प्रशिक्षण देने पर भी लागू होती हैं।

प्रत्येक क्षेत्र में बच्चे को कितनी कठिनाई का अनुभव होता है यह उसकी मानसिक मन्दता के स्तर पर निर्भर करता है। अल्प स्तर की मन्दता वाले बच्चों को बहुत ही कम कठिनाई होगी। इसी प्रकार, बच्चों को कुछ सिखाने के लिए आपको उसके साथ कितना समय व्यतीत करना पड़ेगा तथा कितना परिश्रम करना पड़ेगा, यह उसकी मानसिक मन्दता के स्तर से प्रभावित होगा। एक मध्यम कोटि की मानसिक मन्दता वाली बालिका गम्भीर मन्दता वाली बालिका की तुलना में इन कौशलों को बहुत जल्दी सीख लेगी।

मंद बुद्धि बालकों की शिक्षा

स्किनर ने मंदबुद्धि बच्चों की शिक्षा के तीन रूप बताए हैं-

1. स्वयं की देखभाल का प्रशिक्षण
2. सामाजिक गुणों का प्रशिक्षण
3. स्वावलंबन का प्रशिक्षण

परीक्षापयोगी प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों से आपका क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
2. मानसिक मन्दता क्या है?
3. मानसिक मन्दता के स्तरों का वर्णन करें।
4. मानसिक मन्दता किन कारणों से होती है? समझाइये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों से आपका क्या अभिप्राय है? सविस्तार व्याख्या कीजिए।

2. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए-
   (क) श्रवणशक्ति
   (ख) संप्रेषण
   (ग) गतिशीलता
3. क्षति, अपंगता एवं क्षमता से आप क्या समझते हैं?
4. "अशिक्षित बनाम अशिक्षणीय" स्पष्ट करें।

3 विविधता : वैश्विक परिप्रेक्ष्य

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- वैश्वीकरण।
- वैश्वीकरण की परिभाषाएँ।
- वैश्वीकरण की विशेषताएँ।
- वैश्वीकरण की आवश्यकता।
- वैश्वीकरण से लाभ।
- वैश्वीकरण से हानियाँ।
- वैश्वीकरण के मार्ग में बाधाएँ।
- वैश्वीकरण की प्रक्रियाएँ।
- बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ।
- वैश्वीकरण की नीतियाँ।
- वैश्वीकरण का शिक्षा पर प्रभाव।
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- वैश्वीकरण।
- वैश्वीकरण की परिभाषाएँ।
- वैश्वीकरण की विशेषताएँ।
- वैश्वीकरण की आवश्यकता।
- वैश्वीकरण से लाभ।
- वैश्वीकरण से हानियाँ।
- वैश्वीकरण के मार्ग में बाधाएँ।
- वैश्वीकरण की प्रक्रियाएँ।
- बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ।
- वैश्वीकरण की नीतियाँ।
- वैश्वीकरण का शिक्षा पर प्रभाव।

NOTES

प्राक्कथन

सन् 1500 के बाद धीरे-धीरे पूरी दुनिया व्यापार, युद्ध, साम्राज्य, संचार आदि सूत्रों से बंधने लगी। कोई भी क्षेत्र या देश या समूह चाहे वह कितने ही सुदूर अंचल का हो, इससे अछूता नहीं रह सका। इसी प्रक्रिया का एक चरम है वैश्वीकरण का वर्तमान दौर।

वैश्वीकरण

वैश्वीकरण का सामान्य रूप से अर्थ विश्व की सम्पूर्ण आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षिक गतिविधियों का ज्ञान सभी होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, संसार में विकसित एवं विकासशील देशों द्वारा परस्पर मिलकर विकास के पथ पर अग्रसर होते हैं। किसी एक देश की प्रगति में बाधक तत्वों का निराकरण, किसी दूसरे देश के सहयोग के द्वारा किया जाता है। यह वैश्वीकरण का प्रमुख ज्वलन्त उदाहरण है।

भारत जब स्वयं आतंकवाद से गस्त था, तब तक वह मात्र उसकी अपनी समस्या थी। लेकिन जब शक्तिशाली देश अमेरिका पर 11 सितम्बर, सन् 2001 में आतंकवादी हमला हुआ तब यह समस्या सम्पूर्ण विश्व की बन गयी और इस प्राकृतिक आपदा से सम्पूर्ण विश्व के देशों ने अपनी समस्या मानकर सहायता का कार्य पीड़ित रूपेण सहयोग किया। यही वैश्वीकरण सद्भाव का ज्वलन्त उदाहरण है।

संसार के सभी देशों की धीरे-धीरे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय समस्याओं का समाधान विश्व के एक मंच पर किया जाने लगा। इस कार्य में हमारी सूचना प्रौद्योगिकी का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान है। सूचना प्रौद्योगिकी ने विश्व की सभी दिशाओं को एक निश्चित क्षेत्र में सीमित कर दिया है। वर्तमान समय में निर्माण कार्य हो या विद्युत उत्पादन की तकनीकी, जिस देश के पास उन्नतिशील अवस्था है वह दूसरे देशों के विकास के लिए अपना सहयोग करता है, जैसे- भारत के अभियन्ताओं का अमेरिका में प्रशिक्षण प्राप्त करना, तेल उत्पादक देशों का सभी देशों को पैट्रोलियम पदार्थों का वितरण करना।

ग्लोग जिस प्रकार अपनी धुरी पर घूमता है, ठीक उसी प्रकार समस्त पृथ्वीा की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक क्रियाएँ एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा वर्तमान व्यवस्था में कोई भी देश किसी भी समस्या के लिए अकेला नहीं है बल्कि सम्पूर्ण ग्लोब (पृथ्वी) उसके साथ है। दूसरे शब्दों में संसार के मानचित्र में सभी देश एक-दूसरे के विकास के लिए एवं समस्या के समाधान के लिए कटिबद्ध हैं। सार्क शिखर सम्मेलन, WHO, UNO, I.M.P. आदि संगठन वैश्वीकरण के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।

वैश्वीकरण की परिभाषाएँ

वैश्वीकरण की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

1. जे. पी. श्रीनिवास के शब्दों में, "विश्व की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय समस्याओं का समाधान जब विश्व के एक औचित्य मंच पर होता है, तब वैश्वीकरण का संकेत मिलता है।"
2. प्रो. जी. के माधवन के मतानुसार, "विश्व की अर्थव्यवस्था का विकास एवं सामाजिक विकास राज्य के नियंत्रण की सीमितता के अन्तर्गत होता है, तब यह प्रक्रिया वैश्वीकरण कहलाती है।"
3. प्रो. के. मनस्वी के अनुसार, "उदारीकरण, आर्थिक विकास एवं निजीकरण के सामंजस्य की विश्वस्तरीय प्रक्रिया को वैश्वीकरण कहते हैं।"

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण मुख्य रूप से मानव के आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित प्रक्रियाओं से है जो कि उसके विभिन्न प्रकार के पक्षों से सम्बन्धित है।

वैश्वीकरण के उद्देश्य

मानव आज के युग में विकास एवं उच्च जीवन स्तर के लिए वैश्वीकरण का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है। वैश्वीकरण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. **विकास के लिए नवीन साझेदारी**- वैश्वीकरण में विकास के लिए विकास के विभिन्न प्रकार के संगठनों का सहयोग एवं नवीन सन्धियाँ विकासशील देशों को सर्वत्र विकास के पथ पर अग्रसर कर रही हैं। जिससे विश्व की एक नवीन विकसित संरचना दिखाई देती है।
2. **आर्थिक समानता** - वैश्वीकरण का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक असमानता को दूर करते हुए, विकासशील देशों को विकसित देश बनाना है। संसार के पटल पर किसी भी प्रकार की असमानता नहीं रहनी चाहिए एवं आर्थिक विकास समान रूप से होना चाहिए। इसके अन्तर्गत आर्थिक रूप से पिछड़े देशों को आर्थिक सहायता से पिछड़े देशों का विकास सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है।
3. **उदारीकरण** - उदारीकरण के क्षेत्र में भी वैश्वीकरण का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। सम्पूर्ण विश्व में आर्थिक सुधारों, सामाजिक सुधारों एवं शैक्षिक सुधारों का श्रेय वैश्वीकरण को जाता है। रूस जैसे देश में आर्थिक सुधारों का श्रेय वैश्वीकरण को ही जाता है।

4. **गरीबी उन्मूलन** - आर्थिक असमानता के कारण गरीबी से जूझते हुए देशों में आर्थिक सुधारों एवं सहायता के माध्यम से गरीबी का समाप्त करना वैश्वीकरण का उद्देश्य है। विश्व बैंक द्वारा विभिन्न योजनाओं के लिए गरीब देशों को अनुदान प्रदान करना इसका प्रमुख उदाहरण है।

5. **अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग** - अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की अविरल धारा जो संसार में प्रवाहित हो रही है, यह वैश्वीकरण का ही परिणाम है। पाकिस्तान द्वारा गैस पाइप लाइन को अपने क्षेत्र से होकर जाने की अनुमति प्रदान करना भी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना का उत्कृष्ट उदाहरण है जो कि वैश्वीकरण का ही परिणाम है।

6. **विश्व बन्धुत्व की भावना** - विश्व बन्धुत्व की भावना को जन्म देने का श्रेय वैश्वीकरण को जाता है। वर्तमान में जब किसी समस्या के समाधान के लिए सभी देश एक-दूसरे के साथ होते हैं। यह वैश्वीकरण का ही प्रभाव है। गुजरात के भूकम्प में पुनर्निर्माण तथा बचाव कार्य के लिए प्रचुर मात्रा में धन उपलब्ध कराना एवं मानवीय सहायता उपलब्ध कराना इसका एक उदाहरण है।

7. **सन्तुलित विकास** - संसार के पटल पर किसी भी क्षेत्र में विकास असन्तुलित रूप से न हो इसक लिए विभिन्न मानकों का निर्धारण वैश्वीकरण के द्वारा सम्भव हुआ है। अफगानिस्तान के विकास के लिए भारत जैसे देश द्वारा आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना वैश्वीकरण का उद्देश्य है।

8. **उच्च जीवन स्तर** - गरीबी रेखा से ऊपर उठाकर व्यक्ति को उच्च जीवन स्तर तक पहुँचना भी वैश्वीकरण का उद्देश्य है। मानव समाज के लिए मूलभूत आवश्यकताओं को उपलब्ध कराना तथा इस कार्य के लिए धन उपलब्ध कराना वैश्वीकरण के द्वारा ही सम्भव हुआ है। विकासशील देशों द्वारा आर्थिक रूप से कमजोर देशों को विद्युत एवं सड़क योजना के लिए ऋण प्रदान करना भी वैश्वीकरण का ही उदाहरण है।

9. **सरकारी नियन्त्रण की सीमितता** - वैश्वीकरण ने विभिन्न देशों में सरकारी नियन्त्रण का सीमित कर दिया है। अब सरकारी नियन्त्रण उद्योगों की सुरक्षा एवं धन उपलब्ध कराने तक ही सीमित है। दूसरे शब्दों में सरकार का कार्य विभिन्न प्रकार के उद्योगों एवं संगठनों का संरक्षण ही माना जाता है। आयात कर एवं निर्यात कर में कमी, इसका प्रमुख उदाहरण है।

10. **निजीकरण** – निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त एवं औद्योगिक क्षेत्र में निजीकरण का श्रेय वैश्वीकरण को जाता है। वर्तमान में विभिन्न स्तरों पर कार्य कुशलता को बढ़ाने के लिए, विश्व स्तर पर किये गये प्रयासों का परिणाम निजीकरण द्वारा ही सम्भव हुआ है। स्तर समूह के होटलों का निजीकरण इसका प्रमुख उदाहरण है।

वैश्वीकरण की विशेषताएँ

वैश्वीकरण की अवधारणा एवं उद्देश्यों पर दृष्टिपात किया जाय तो निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं–

1. **सद्भावना पर आधारित** – वैश्वीकरण में समत्व की भावना पायी जाती है, इसमें प्रत्येक मानवीय कार्य के लिए सद्भाव की अवस्था रहती है। शत्रुता भाव का अभाव इस अवस्था में पाया जाता है।

2. **सहयोग पर आधारित** – वैश्वीकरण की अवधारणा का अवलोकन करने पर पता चलता है कि वैश्वीकरण सहयोग की भावना पर आधारित है। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक–दूसरे देश की सहायता पर विशेष बल दिया जाता है। भूकम्प, बाढ़, सुनामी आदि दैवीय आपदा के समय अन्तर्राष्ट्रीय सहायता सहयोग पर ही आधारित है।

3. **एक ही समस्या सभी की समस्या** – किसी भी देश की समस्या को केवल उसी की समस्या न मानकर सभी देश उसे अपनी समस्या मानते हैं, जैसे भारत की आतंकवाद की समस्या को सभी देशों द्वारा अन्ततः स्वीकार करना ही पड़ा है।

4. **सूचना तकनीकी का विकास** – आज संसार में सूचना प्रणाली का जो जाल फैला हुआ है यह वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषता है। आज घर बैठे ही सूचना देश के किसी कोने में भेज सकते हैं तथा वहाँ की सूचना अपने पास मँगा सकते हैं।

5. **विचारधाराओं का महत्व** – विभिन्न प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक आयोजनों में सभी के विचारों को एक मंच पर सुना जाता है और आवश्यकता के अनुसार महत्व भी प्रदान किया जाता है।

6. **तकनीकी शिक्षा का विकास** – वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें तकनीकी शिक्षा का विकास तीव्र गति से होता है, क्योंकि एक देश को तकनीकी यन्त्रों के माध्यम से ही दूसरे देशों में पहुँचाया जा सकता है। एक देश दूसरे देशों को तकनीकी का आदान–प्रदान भी करते हैं।

7. **मानवता का विकास** - वैश्वीकरण के अन्तर्गत मानवतावादी विचारधारा को अधिक महत्व दिया जाता है। मानव कल्याण के लिए कई अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को प्रभावशाली बनाया जा रहा है। यूनीसेफ को सशक्त बनाना इसी विशेषता को प्रदर्शित करता है।

8. **समस्या समाधान में एकता** - समस्या चाहे किसी भी देश की हो उसके समाधान का दायित्व सभी देशों का होता है। रूस के विखण्डन के बाद की उत्पन्न स्थिति में अमेरिका भारत जैसे देशों का सहयोग वैश्वीकरण की इस विशेषता को प्रदर्शित करता है।

9. **विकसित देशों का नियन्त्रण** - वैश्वीकरण की वर्तमान व्यवस्था में प्राय: यह देखा जाता है कि विकसित देशों का प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार से वैश्वीकरण में विकसित देशों का हस्तक्षेप को अति गम्भीर दोष के रूप में भी देखा जाता है। अमेरिका के बढ़ते वर्चस्व को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

10. **अधिक सरकारी हस्तक्षेप अनुचित** - वैश्वीकरण में सरकारी हस्तक्षेप की अधिकता को अनुचित बताया है। व्यवस्था के अन्तर्गत एक आत्मानुशासन की भावना होनी चाहिए नियन्त्रण की अधिकता के आधार पर किसी प्रकार का विकास सम्भव नहीं हो सकता है। अत: सरकारी नियन्त्रण सामान्य पाया जाता है।

वैश्वीकरण की आवश्यकता

वैश्वीकरण की आवश्यकता क्यों हुई? यह कैसे हुआ? यह एक मुख्य प्रश्न है। जब तक किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती है तब तक उसके जन्म की सम्भावना नहीं होती है। दूसरे शब्दों में "आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है।" इसी व्यवस्था में निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम में वैश्वीकरण की आवश्यकता पर विचार करने की आवश्यकता है-

1. **बेरोजगारी की समाप्ति के लिए** - जनसंख्या प्रधान देशों में बेरोजगारी की समस्या विकराल रूप धारण करती जा रही है। सम्पन्न देशों द्वारा उद्योगों में अपनी पूँजी विनिवेश करके वहाँ के व्यक्तियों को रोजगार प्रदान कराया जा रहा है। यह व्यवस्था वैश्वीकरण के जन्म के कारण ही सम्भव हुई हैं।

2. **गरीबी उन्मूलन के लिए** - बहुत से देशों में नागरिक गरीबी रेखा के नीचे जीवन जी रहे हैं उनके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष जैसे संगठनों द्वारा अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। प्रयासों के परिणामस्वरूप वैश्वीकरण का प्रार्दुभाव हुआ।

3. **सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के लिए** - आज के युग में कोई देश अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाना चाहता है तो उसको किसी न किसी विकासशील देश से व्यापार एवं सहयोग की आवश्यकता जरूर होगी। इस प्रकार की विचारधारा ने वैश्वीकरण को जन्म दिया है।

4. **तकनीकी शिक्षा के विकास के लिए** - तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में असमानता की स्थिति होने के कारण वैश्वीकरण की आवश्यकता हुई। जैसे जापान तकनीकी शिक्षा की दृष्टि से बहुत आगे है। उसने भारत में मारुति उद्योग के लिए अपनी तकनीक प्रदान करके भारत को भी लाभान्वित किया है।

5. **प्राकृतिक संसाधनों के समान वितरण के लिए** - प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से सभी देशों की स्थिति एक जैसी नहीं है। किसी देश में तेल भण्डार है तो किसी देश में कोयला का भण्डार है। वैश्वीकरण के माध्यम से ही समस्त देश एक-दूसरे को आवश्यकतानुसार तेल एवं कोयला उत्पादन करके वितरित करते हैं। ईरान द्वारा गैस देने का भारत के लिए प्रस्ताव इसी का उदाहरण है।

6. **आर्थिक संरक्षण के लिए** - जिन देशों के पास आर्थिक संसाधन उपलब्ध नहीं है। वह अपना विकास किस प्रकार करेंगे? उन देशों के सामने यह संसार निरन्तर बढ़ती जा रही है। इस समस्या को समाप्त करने के लिए विकासशील देश आगे आये तथा उनकी सहायता की। अतः इस आवश्यकता के कारण भी वैश्वीकरण को प्रोत्साहन मिला।

7. **पर्यावरण संरक्षण के लिए** - विभिन्न देशों द्वारा किये जा रहे परमाणु परीक्षण एवं प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के कारण पर्यावरण में असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हुई, जो मानव समाज के लिए पूर्णतः घातक सिद्ध हो रही है। इस समस्या के समाधान का वैश्वीकरण ने किसी सीमा तक खोज निकाला है।

8. **सन्तुलन स्थापना के लिए** - वैश्वीकरण की आवश्यकता विश्व में बढ़ते हुए राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय असन्तुलन को देखते हुए उत्पन्न हुई। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सभी देशों की दृष्टि एक-दूसरे की ओर देख रही थी। परिणामस्वरूप वैश्वीकरण का प्रार्दुभाव हुआ।

9. **राजनैतिक एवं शैक्षिक विकास के लिए** - जब एक ही मंच पर किसी राजनैतिक समस्या का समाधान होता है तो विश्व स्तर के विद्वानों के विचार प्रस्तुत होते हैं। शैक्षिक गोष्ठियों में विद्वानों के विचार प्रस्तुत

किये जाते हैं, जिससे सभी देशों की शिक्षा व्यवस्था की जानकारी एक-दूसरे को होती है तथा सभी देश इससे लाभ उठाते हैं।

10. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिए** - विभिन्न प्रकार के देशों की सामाजिक व्यवस्था एवं सांस्कृतिक व्यवस्था को जानने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है, जिसमें एक-दूसरे की परम्परा एवं नियमों की जानकारियों का आदान-प्रदान होता है। यह सभी व्यवस्थाएँ वैश्वीकरण के माध्यम से सम्भव हुई हैं।

वैश्वीकरण के लाभ

वैश्वीकरण के द्वारा आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विकास की समीक्षा इस प्रकार से हैं-

1. **अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास** - वैश्वीकरण के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसी विचारधारा का जन्म हुआ है जो 'सर्वजन हिताय' की स्थिति को प्रतिपादित करती है। सभी देशों को एक-दूसरे के प्रति आर्थिक-सामाजिक सहयोग की भावना को बल मिलता है। अतः समाज को वैश्वीकरण का यह सबसे बड़ा लाभ है।
2. **युद्ध की समाप्ति** - वैश्वीकरण का प्रमुख लाभ यह है कि सभी समस्याओं का समाधान विचार-विमर्श के माध्यम से किया जाता है। इसमें सभी देश मध्यस्थता करके या लाभ करके समस्या का समाधान करते हैं। युद्ध की स्थिति को हर सम्भव रोकने का प्रयास किया जाता है, जिससे युद्ध प्रायः समाप्त हो सके।
3. **भय मुक्त समाज** - आज के वैश्वीकरण की व्यवस्था में कोई भी छोटा देश अपने आप को असुरक्षित नहीं रख सकता है, क्योंकि अनावश्यक रूप से उस पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता, क्योंकि सभी को अपने देश की व्यवस्था चलाने का अधिकार है। कुवैत पर ईराक द्वारा जब आक्रमण किया गया तो विश्व के कई देशों ने कुवैत का साथ दिया। इस प्रकार संसार में भय मुक्त समाज की स्थापना वैश्वीकरण के द्वारा सम्भव हुई।
4. **सन्तुलित पर्यावरण का विकास** - मानव द्वारा अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति से हमेशा छेड़-छाड़ की जाती है जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण की सम्भावना भी बढ़ती जा रही है। लेकिन वैश्वीकरण के माध्यम से सभी देशों ने इसे गम्भीर समस्या माना है, किसी एक देश की समस्या न होकर यह सभी देशों की समस्या है। इसके सम्बन्ध में जब

प्रयास शुरू किये गये तो आज विश्व पर्यावरण सन्तुलन स्थित है। 'पर्यावरण दिवस' इस दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

5. **मानव कल्याण की भावना का विकास** - आज विश्व के अन्तर्गत एक ही विचारधारा पर बल दिया जा रहा है, वह मानव कल्याण की भावना है। प्रत्येक देश में राज्य स्तर पर केन्द्र स्तर पर मानव अधिकार संगठनों का गठन हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी मानवाधिकार की चर्चा होती है। जापान पर भारत और अन्य देशों द्वारा लगाया गया आर्थिक प्रतिबन्ध इसी क्षेत्र के महत्व को प्रदर्शित करता है।

6. **सूचना तकनीकी का विकास** - आज विश्व का कोई भी देश ऐसा नहीं है, जिसने सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उन्नति नहीं की है। विश्व के सभी देशों ने सूचना तकनीकी को एक विषय मानकर के इस क्षेत्र में विकास किया है। तकनीकी के आदान-प्रदान के द्वारा ही यह सम्भव हुआ है। इसकी प्रगति का श्रेय वैश्वीकरण को जाता है।

7. **वैज्ञानिक विधियों का विकास** - शैषिक सामाजिक एवं कृषि के क्षेत्र में परम्परागत विचारधारा को छोड़कर नवीन वैज्ञानिक विधियों को अपनाना वैश्वीकरण की ही देन है। कृषि उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि एवं शैक्षिक क्षेत्र में नवीन विधियों द्वारा तकनीकी शिक्षा प्रदान करना वैश्वीकरण की ओर संकेत करता है। इसका लाभ प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय जनमा के साथ-साथ विश्व की जनता को भी मिलता है।

8. **समस्याओं का समाधान** - विश्व के सभी विकासशील देशों की राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान एक ही मंच पर अन्य विकसित देशों द्वारा मिलकर किया गया है। भारत में जम्मू कश्मीर एवं आतंकवाद की समस्याओं को बातचीत के द्वारा सुलझाने का प्रयास करना तथा अमेरिका द्वारा हर सम्भव भारत की सहायता का आश्वासन देना इसी दिशा में किया गया महत्वपूर्ण प्रयास है।

9. **गरीबी उन्मूलन** - सभी विकसित देशों द्वारा मिलकर विकासशील देशों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लिए अपनी पूँजी विनिवेश करके रोजगार उपलब्ध कराना है। इस क्षेत्र में विश्व बैंक की अनुदान प्रणाली सभी देशों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण तथा लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। भारत में गरीबी उन्मूलन के प्रयास विश्व-बैंक की सहायता से ही सफल हुए हैं।

10. **जीवन स्तर में सुधार** - वैश्वीकरण के द्वारा विकासशील देशों के नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है। औद्योगिक उन्नति के

फलस्वरूप प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि हुई है। जिससे सभी प्रकार की सुविधाओं में भी उन्नति हुई है। भारत एवं पाकिस्तान जैसे देशों में प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि वैश्वीकरण का ही परिणाम है।

11. **सन्तुलित आर्थिक विकास** - वैश्वीकरण का सबसे प्रमुख लाभ सन्तुलित आर्थिक विकास है, क्योंकि किसी एक-दूसरे के सहयोग के बिना अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ एवं सन्तुलित नहीं बनाया जा सकता है। यह वैश्वीकरण द्वारा ही सम्भव हुआ है। विश्व-बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष अर्थव्यवस्था को सन्तुलित बनाने में निरन्तर प्रयत्न कर रहा है।
12. **मानवीय दृष्टिकोण का विकास** - वैश्वीकरण के द्वारा ही विश्व स्तर पर मानवीय दृष्टिकोण विकसित हुआ है। आज किसी भी देश की मानवीय समस्या हो, कुपोषण की हो या भुखमरी की सभी देश उसका मिलकर सामना करते हैं। ईरान का भूकम्प सिर्फ ईरान की समस्या नहीं बल्कि सभी देशों की समस्या थी और सभी देशों ने ईरान की सहायता की।

उपरोक्त तथ्यों के अध्ययन से यह पूर्ण रूप से विदित होता है कि वैश्वीकरण की प्रवृत्ति सम्पूर्ण विश्व के लिए आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक तथा सामाजिक प्रगति का सन्देश लेकर आया है।

वैश्वीकरण से हानियाँ

प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन के अनुसार, "प्रत्येक क्रिया के विपरीत प्रतिक्रिया होती है।" इसी प्रकार वैश्वीकरण के लाभ के साथ-साथ कुछ हानियाँ भी होती हैं, जिनको विश्व पटल पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इससे हमारी विश्व राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था भी अलग नहीं है। वैश्वीकरण से होने वाली हानियाँ निम्नांकित हैं-

1. **तानाशाही** - आज विश्व स्तर पर अमेरिका एवं उसके सहयोगी देशों का तानाशाहीपूर्ण व्यवहार सभी के समक्ष उपस्थित है। प्रत्येक क्षेत्र में अमेरिका एवं उसके सहयोगी देश अपनी मनमानी करके विश्व के सामने अपने अभद्र व्यवहार का प्रदर्शन कर रहे हैं जो कि वैश्वीकरण के लिए उचित नहीं है।
2. **समानता के दृष्टिकोण का अभाव** - विश्वस्तर पर दोहरे मानदण्डों का अपनाना कोई नयी बात नहीं है। अमेरिका द्वार हमेशा भारत एवं पाकिस्तान के विवादों में दोहरा मानदण्ड अपनाया गया है। परमाणु परीक्षण के समय अमेरिका एवं यूरोपीय देशों द्वारा लगाया गया आर्थिक

एवं व्यापारिक प्रतिबन्ध इसी तथ्य की ओर संकेत करता है कि वैश्वीकरण में दोहरे मानदण्ड का दोष भी उपस्थित रहता है।

3. **अविकसित देशों की उपेक्षा** – जो देश विकास के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं, विकसित देशों द्वारा समय-समय पर उनकी उपेक्षा की जाती है। उनके विकास के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न कर दी जाती हैं। ईरान द्वारा भारत को गैस का निर्यात पाकिस्तान के रास्ते से होने की सम्भावना है लेकिन अमेरिका द्वारा पाकिस्तान पर अप्रत्यक्ष रूप से दबाव डालकर इसमें बाधा उत्पन्न की जा रही है। यह वैश्वीकरण की प्रमुख हानि है।

4. **विकसित देशों का एकाधिकार** – विकसित देशों द्वारा अपने लाभ के लिए विभिन्न प्रकार के व्यापारिक एवं राजनैतिक संगठनों का गठन कर लिया है। जिससे वे विकासशील देशों के हितों की रक्षा के स्थान पर अपने स्वार्थ में लगे रहते हैं। इससे राजनैतिक एवं आर्थिक असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है। यूरोपीय व्यापार संगठन का गठन एवं सुरक्षा परिषद् में फ्रांस, चीन, इंग्लैण्ड, रूस एवं अमेरिका को वीटो पावर का अधिकार देना इसका प्रमुख उदाहरण हैं।

5. **शक्ति का केन्द्रीयकरण** – आज विश्व की समस्त सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक शक्ति एक ध्रुवीय हो गयी है। रूस के विखण्डन के बाद अमेरिका का विश्व स्तर पर बढ़ता प्रभाव शक्ति के केन्द्रीयकरण को प्रदर्शित करता है। यह विश्व के लिए उचित माना जा सकता है, क्योंकि एकाधिकार की स्थिति हमेशा अनुचित निर्णय के लिए ही जानी जाती है।

7. **नौकरशाही का दुरुपयोग** – अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सम्बन्धित अधिकारियों का विकासशील देशों के क्रिया-कलापों में हस्तक्षेप करना इस श्रेणी की हानि के अन्तर्गत आता है। यदि कोई अधिकारी सुझाव देता है तब तक तो सही तथ्य है लेकिन जो कार्य उपयुक्त एवं उचित ढंग से चल रहा है, उसमें अपने मान-सम्मान को सामने रखकर या भ्रष्टाचार की आकांक्षा से जो हस्तक्षेप होता है, वह नौकरशाही का दुरुपयोग माना जाता है।

वैश्वीकरण के मार्ग में बाधाएँ

वैश्वीकरण के मार्ग में अनेक बाधाएँ ऐसी हैं जो इसका पूर्णतः और सही अर्थों में विकास नहीं होने देती हैं। जिससे होने वाले लाभ कम हो जाते हैं और इसका पूर्ण प्रभाव एवं लाभ सभी को प्राप्त नहीं होता है। वैश्वीकरण की प्रमुख बाधाओं को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है-

1. **पर्यावरणीय दबाव** - अपने-अपने स्वार्थ के लिए समस्त देशों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके पर्यावरण को असन्तुलित कर दिया है। प्रत्येक देश अपनी-अपनी स्वार्थ साधना में लगे हुए हैं। परमाणु परीक्षणों को होना वैश्वीकरण के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है।

2. **जनसंख्या वृद्धि** - भारत और चीन जैसे बढ़ती हुई आबादी वाले देशों में अभूतपूर्व ढंग से हो रही जनसंख्या वृद्धि का घुन समस्त विकास प्रक्रिया को चट कर जाता है। दूसरे शब्दों में संसाधनों पर इतना बोझ बढ़ गया है कि विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की सहायता भी ''ऊँट के मुँह में जीरा'' सिद्ध हो रही है। अत: वैश्वीकरण के विकास में जनसंख्या वृद्धि सबसे प्रमुख बाधा है।

3. **साम्प्रदायिकता** - विभिन्न प्रकार के सम्प्रदायों में देशों का विभाजन होना वैश्वीकरण के मार्ग में महत्वपूर्ण बाधा है। देशों में हिन्दू सम्प्रदाय, ईसाई सम्प्रदाय, जैन सम्प्रदाय आदि विभिन्न सम्प्रदायों के अलग-अलग संयम एवं परम्पराएँ विकास के मार्ग को अवरुद्ध करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक एवं सामाजिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है। मुस्लिम बाहुल्य देशों में प्रत्येक देश अपनी पूँजी लगाने में संकोच करते हैं।

4. **धार्मिकता** - वैश्वीकरण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा धर्म है। विभिन्न धर्मों के व्यक्तियों में धार्मिक सहिष्णुता की कमी पायी जाती है। जिसके परिणामस्वरूप आपसी सहयोग एवं प्रगति के मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है। धार्मिक संकीर्णता की भावना के कारण अपने धर्म को श्रेष्ठ तथा दूसरे धर्म के धर्म को हीन समझते हैं जिसके कारण मानवता और नैतिकता के उद्देश्य को झटका लगता है तथा वैश्वीकरण के मार्ग में बाध ा उपस्थित होती है।

5. **जातिवाद** - विभिन्न प्रकार की भाषा धर्म के आधार पर जातियों का निर्माण हुआ है। इससे जातिवाद की भावना को बल मिला है। यह स्थिति देश स्तर पर ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी है, जैसे- यहूदी, मुस्लिम, सिक्ख एवं ईसाई आदि जाति के लोग अपने विकास एवं उत्थान के लिए एक-दूसरे को दबाकर आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं, यह वैश्वीकरण के मार्ग में, जातिवाद प्रमुख बाधा है, जैसे- भारत के एक अग्निकाण्ड में मरने वालों में सवर्णों को ₹2 लाख तथा दलितों को ₹5 लाख मुआवजे की घोषणा करना लेकिन बाद में उसे निरस्त करना। यह जातिवाद का प्रमुख उदाहरण है।

6. **भाषावाद** – जिन देशों में एक प्रकार की भाषाएँ बोलने का प्रचलन है, उन देशों में सामाजिक सांस्कृतिक एकता की सम्भावना रहती है। उन देशों का एक जुट होकर अपने स्वार्थ के लिए अन्य भाषायी देशों का शोषण करना या उनके विकास के मार्ग में बाधा उपस्थित करना या उनको किसी प्रकार का सहयोग न देना वैश्वीकरण के विकास की प्रमुख बाधा है।

7. **क्षेत्रवाद** – अपने-अपने क्षेत्र को लेकर विश्व का विभाजन हो गया है। यूरोपीय देश अपनी बात कहते हैं, अफ्रीकन संघ अपनी बात कहता है, कोई किसी की बात न सुनकर सिर्फ अपने क्षेत्र की बात कहते हैं। 5 अगस्त, सन् 2005 को अफ्रीकन संघ द्वारा भारत की सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता का विरोध करना तथा अपने देशों के लिए वकालात करना क्षेत्रवाद का प्रमुख उदाहरण है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अफ्रीकन संघ की कितनी संकीर्ण मानसिकता है जबकि भारत ने अफ्रीकी नेता नेलसन मंडेला के लिए कितना सहयोग एवं संघर्ष अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किया था।

वैश्वीकरण की प्रक्रियाएँ

1980 व 1990 के दशकों में महत्वपूर्ण तकनीकी क्रांतियाँ हुईं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण रही परिवहन, सूचना व संचार की क्रांति। इनके चलते सामान को एक जगह से दूसरी जगह लाना ले जाना आसान और सस्ता हो गया और सूचनाओं को पाना, प्रेषित करना व उनका विश्लेषण करना त्वरित हो गया। आज किसी भी सूचना को दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक या जितने भी कोनों तक तत्काल या तुरंत भेजा जा सकता है।

इसके साथ-साथ औद्योगिक उत्पादन कार्य और काफी हद तक कृषि उत्पादन भी लगभग पूरी तरह मशीनों की मदद से हो रहा है। जिसके कारण उत्पादन या परिवहन में मानवीय श्रम का महत्व नगण्य हो गया है। तो मनुष्यों के पास क्या काम बचा? मनुष्य के पास अब मुख्य रूप से ज्ञान या सोच-विचार आधारित काम रह गया है। समस्याओं को पहचानना, उनका निदान खोजना और उन्हें क्रियान्वित करना – यह मनुष्यों का सबसे बड़ा काम बन गया है। इसके लिए जरूरी सूचनाओं को एकत्रित करना, उनका विश्लेषण करना और पंप्रेषित करना – यह सब इलेक्ट्रॉनिकी के मदद से किया जा रहा है। ज्ञान आधारित दूसरे तरह का काम है नए विचार, नई चीजें, नई योजनाएँ तैयार करना यानी सृजनात्मकता का काम। पिछले 50-60 वर्षों में उत्पादन कार्य में सीधे मशीनों के उपयोग से मानवीय श्रम की जरूरत न्यनतम रह गई है। अत:

इसी दौरान तृतीय कार्य - जिन्हें सेवाएँ भी कहते हैं, महत्वपूर्ण हो गया। शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यटन, एंटरटेनमेंट, फुटकर व्यापार, प्रशासन, मीडिया, आज महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। इन सेवाओं में ज्यादा लोग अपनी जीविका पा रहे हैं। इनमें भी भारी मानवीय श्रम की जगह मशीनों का उपयोग होता है और मनुष्यों का काम मुख्यत: वैचारिक -सृजनात्मक व विश्लेषणात्मक होता जा रहा है।

तकनीकी व अन्य विकासों के चलते उत्पादन का विखण्डन या किकेन्द्रीकरण भी हो रहा है। पहले के समय में एक विशाल कारखाने में हजारों मजदूर मिलकर एक चीज (कपड़ा, मोटरगाड़ी आदि) के सभी हिस्से बनाकर उन्हें जोड़कर तैयार करते थे। कहीं -कहीं कुछ कलपुर्जे आस-पास के कारखानों में बन जाते थे। लेकिन आज इस तरह के कारखाने विरले ही रह गए हैं। आज उत्पादन कई टुकड़ों में हो रहा है। उत्पाद के कई हिस्से विभिन्न देशों के छोटे कारखानों में से तैयार होकर आते हैं और किसी एक देश में इन्हें जोड़कर उत्पाद को पूरा किया जाता है, और बेचा जाता है।

इन सब के कारण आज उत्पादन विशाल कारखानों की जगह दुनिया भर में फैले छोटे-छोटे कारखानों में हो रहा है। इन छोटे कारखानों में स्वचालित मशीनों से काम होता है और उनमें बहुत कम मजदूरों की जरूरत होती है।

सूचना तकनीकी आज बहुत महत्वपूर्ण होती जा रही है। इसकी मदद से ये सारी स्वचालित मशीनें चलती हैं, दूर-दराज में फैले छोटे कारखाने एक दूसरे के संपर्क में तथा कंपनी के मालिकों के संपर्क में रहते हैं। सूचना तकनीकी की मदद से कहाँ क्या किस मात्रा में उत्पादन करना है व बेचना है, इस बात का निर्णय लिया जाता है, विविध समस्याओं का हल निकाला जाता है। जैसा हमने ऊपर देखा सूचनाओं को फौरन एक जगह से दूसरी जगह भेजा जा सकता है। उदाहरण के लिए न्यूयार्क (अमरीका) के किसी अस्पताल के रोजनाना खर्च का लेखा-जोखा भारत के हरियाणा राज्य के गुडगांव में रखा जाता है। यानी यह सूचना उद्योग भी तकनीकी विकास के चलते कुटीर उद्योग की तरह काम कर सकता है।

बहुर्राष्ट्रीय कंपनियाँ

ये वो कंपनियाँ हैं जो बनी तो किसी एक देश में और वहां उनका मूल पंजीकरण भी हुआ है लेकिन उनका कारोबार पूरी दुनिया में फैला है। उनके अंशधारक (शेयरहोल्डर) पूरी दुनिया में फैले हैं, उनके कारखाने दुनिया के विविध देशों में लगे हैं, उनके कामगार व उच्च्व मैनेजर कई देशों के रहने वाले हैं। उनका माल दुनिया भर में बिकता है और उनकी संपत्ति पूरी दुनिया

में है। ऐसे में वे किसी एक देश के प्रति निष्ठावान नहीं हो सकते हैं, न किसी एक देश पर निर्भर हैं। उनका कारोबार कई छोटे व मध्यम देशों की अर्थव्यवस्था से जुड़ा है। यूं तो 30000 से अधिक ऐसी कंपनियाँ हैं मगर इनमें से कुछ 50 भीमकाय कंपनियाँ व बैंक हैं जो लगभग सभी छोटी-बड़ी कंपनियों में पूंजी निवेश द्वारा उन पर नियंत्रण रखते हैं। कई अर्थशास्त्रियों का मानना है कि इस बात के बावजूद कि वे किसी एक देश पर निर्भर नहीं है, आमतौर पर यह पाया जाता है कि इन कंपनियों की वित्तीय स्थिति उनके मूल देश की नीतियों व राजनैतिक दबदबे से काफी प्रभावित होती है।

हाल के तकनीकी क्रांतियों का भरपूर फायदा बहुराष्ट्रीय कंपनियां तथा पूंजी निवेश करने वाले बैंक आदि उठा रहे हैं। वे ऐसे देशों में अपना पूंजी निवेश करते हैं जहाँ शासकीय नीतियाँ लचीली हों और कंपनियों पर पाबंदी कम हो, जहाँ शासन अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप कम-से-कम करे और शासकीय खर्च कम-से-कम हो (यानी कर कम-से-कम हो), जहाँ श्रम कुशल सस्ता हो और मगर असंगठित हों, जहाँ बुनियादी सुविधायें जैसे सड़क, बिजली व यातायात व्यवस्थित हों। पूंजी निवेश दो तरीके से होता है, पहला, उद्योग लगाकर और दूसरा शेयर बाजार आदि में निवेश करके जिसमें सट्टेबाजी की गुंजाईश होती है।

सब सरकारें जानती हैं कि अगर उनके देश से पूंजी निकल जाए तो उनकी अर्थव्यवस्था कमजोर हो जाएगी, कारखाने बंद हो जाएँगे, नई तकनीक नहीं मिल पाएगी, विकास के लिए पूंजी की कमी पड़ जाएगी और लोग बेरोजगार हो जाएँगे। इसलिए हर देश के शासक इसी प्रयास में रहते हैं कि किसी-न-किसी तरीके से इन परिस्थितियों को निर्मित करें ताकि पूंजी निवेश हो और किसी प्रकार से निवेश का विरोध न हो पाए। अन्यथा यह पूंजी किसी अन्य देश में जा सकती है। कई लोगों का मानना है कि 16वीं शताब्दी से बनना शुरू हुए राष्ट्र-राज्य भी अब इस अर्थव्यवस्था के सामने कमजोर पड़ रहे हैं और वे अपने अधिकारों को ताक में रखकर पूंजी निवेश को बढ़ाने पर मजबूर हैं।

वैश्वीकरण की नीतियाँ

जैसे हमने पहले देखा, वैश्वीकरण के लिए जरूरत है कि देशों के बीच बाधाएँ नहीं हों और देश के अंदर शासन का हस्तक्षेप और खर्च कम-से-कम हो। इनके महत्व को समझने के लिए हमें 1990 से पहले की अर्थव्यवस्थाओं के प्रमुख बिन्दुओं को समझना होगा। उन दिनों राष्ट्र-राज्य दूसरे देशों से सामान के आयात को कम करने तथा अपना निर्यात बढ़ाने की नीति अपनाते थे

NOTES

ताकि उनके अपने उद्योगों का माल अपने देश में बिके और उनसे किसी और देश के उद्योग स्पर्धा न कर सकें। वे ऐसी भी नीतियाँ बनाते थे कि दूसरे देशों से खाद्यान्नों का आयात नहीं हो ताकि अपने देश के किसानों को अनाज की अच्छी कीमत मिलती रहे। वे ऐसी नीतियाँ भी अपनाते थे जिससे अपने देश के उद्योगपतियों, व्यापारियों व किसानों को शासन की तरफ से विभिन्न अनुदान व छूट का लाभ मिले जो दूसरे देश के किसानों-उद्योगपतियों आदि को नहीं मिलता। ये देश खुद कई सारे उद्योग चलाते थे जो उनकी नजर में राष्ट्र के लिए जरूरी थे। इन सब के साथ-साथ राष्ट्र - राज्य अपने नागरिकों को कई तरह की सेवाएं उपलब्ध करवाने में खर्च करते थे, जैसे सड़क, बिजली, शिक्षा, अस्पताल, टीवी, रेडियो आदि।

वैश्वीकरण ने इन राष्ट-राज्यों को मजबूर किया कि वे इन नीतियों को क्रमशः त्याग दें और एक बे-रोकटोक अर्थव्यवस्था निर्मित करें। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण नीतियाँ थीं- आयात पर करों को बहुत ही कम करना और किसी सामान के आयात पर पाबंदी न लगाना। दूसरा, शासकीय खर्च को न्यूनतम करना, और तीसरा पूंजी निवेश संबंधी तथा श्रमिकों के वेतन व नौकरी की सुरक्षा संबंधी कानूनों को बदलना।

इस तरह के नीतिगत बदलावों के कारण गरीब तबके के लोगों को नुकसान होगा, यह देखते हुए कई अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने शुरुआती दौर में भारत जैसे विकासशील देशों को वित्तीय सहायता व उधार दिया। उनकी अपेक्षा थी कि इसकी मदद से सरकारें अपने गरीब लोगों के बीच शिक्षा को फैलाएँगे जिसकी मदद से लोगों की कार्यकुशलता बढ़ेगी और वे वैश्वीकरण से लाभ उठा पाएँगे। इसी नीति के तहत भारत में भी 1992 से लगभग 10 साल जिला शिक्षा परियोजना जैसी योजनाएँ चलीं जो शिक्षा को हर बच्चे तक पहुँचाने के प्रयास थे। इस तरह के कार्यक्रम किस हद तक सफल हुए और उनका परिणाम क्या हुआ, हम बाद में देखेंगे।

जाहिर है कि ये नीतियाँ राष्ट्र-राज्यों के बुनियादी सिद्धांत- राष्ट्र की संप्रभुता, अपने हित में कानून बनाने के अधिकार को चोट पहुँचाता है, लेकिन आज कोई भी देश नहीं है जो इन नीतियों को नकार सके क्योंकि सभी देश पूंजी निवेश के महत्व को जानते हैं।

विद्वानों के बीच यह बहस का विषय बना हुआ है कि क्या इस तर के बदलावों के चलते राष्ट-राज्यों का कोई विषय है या नहीं। क्या राष्ट्र-राज्य इनके चलते महत्वहीन होकर खत्म हो जाएँगे। ज्यादातर विद्वान यह मानते हैं कि राष्ट्र राज्यों की भूमिका में भारी परिवर्तन तो आएगा और वे अपने कई

अधिकार अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को सौंप देंगे। लेकिन साथ ही ये राज्य नई भूमिकाओं को निभाएँगे जिनमें सबसे प्रमुख होगा उनमें रहने वाले लोगों की शिक्षा, स्वास्थ्य, और कानून व्यवस्थाएँ। यह माना जाता है कि वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में राष्ट्रों के पास सबसे महत्वपूर्ण उनकी श्रम शक्ति है – वे कितने स्वस्थ, कुशल, सृजनशील आदि हैं इस पर निर्भर होगा कि उनका देश इन नए हालातों का फायदा उठा पाएगा या नहीं।

वैश्वीकरण की सीमाएँ या दूसरा पक्ष

एक तरफ जहाँ वैश्वीकरण हो रहा है, वहीं दूसरी ओर हम देखते हैं कि उत्पादन का एक काफी बड़ा हिस्सा और लोगों का जीविका अर्जन अनौपचारिक घरेलू काम धंधों से हो रहा है। वैश्वीकरण के चलते जो पुराने उद्योग धंधे बंद हो रहे हैं उनके कामगार व उनके परिवार अपनी जीविका चलाने के लिए इस तरह के काम करने पर मजबूर हो रहे हैं। दूसरा वैश्वीकरण के तहत काफी बड़ा उत्पादन का हिस्सा जैसे रेडीमेड कपड़ा उद्योग आज मुख्य रूप से घरेलू उत्पादन पर निर्भर है। इसमें कम-से-कम पूंजी की लागत में हर घर के लोग, खासकर महिलाएं व बच्चे काम कर रहे हैं और उन्हें अपने श्रम का बहुत ही कम मूल्य मिलता है। लेकिन इनके द्वारा बनाया गया सामान दुनिया के बड़े माने गए बाजारों में बिकने जाता है। इसी तरह ये लोग बहुत बड़े पैमाने पर फुटकर बिक्री, घरेलू सेवा आदि का काम कर रहे हैं।

अतः वैश्वीकरण से हमें सिर्फ यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि सब लोगों को बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों में काम मिल जाएगा या सब लोगों को सूचना क्रांति के तहत बौद्धिक श्रम ही करना पड़ रहा है या फिर यह कि बेरोजगारी या बेकारी खत्म हो जाएगी। इसका उल्टा ही हुआ है- बहुत बड़े पैमाने पर लोग पुराने कारखानों या कंपतियों से बेदखल हुए हैं और विवश होकर वे घरेलू या अनौपचारिक कामकाज में लगे हैं।

शिक्षा पर प्रभाव

इन सारी बातों का शिक्षा पर गहरा असर पड़ेगा यह तो निश्चित है। वैश्वीकरण का असर पूरे विश्व की शिक्षा पर कई मायनों में देखने को मिलता है। पहला तो यह है कि शासन अपने खर्च की कटौती के दबाव के कारण शिक्षा में जरूरत से कम धन खर्च कर पा रहा है। इस कारण पूरे विश्व में बड़े पैमाने पर शिक्ष का निजीकरण हो रहा है। यानी पालक खुद अपने खर्च से निजी शालाओं या महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों में अपने बच्चों को पढ़ा रहे हैं। लेकिन यह मौका केवल उन लोगों को मिल पाता है जो ध

NOTES

नी हैं व साधन संपन्न हैं। इसका एक मतलब यह है कि सारे बच्चे एक तरह की शालाओं में न पढ़कर अपने पालकों के आर्थिक हैसियत के अनुरूप शिक्षा प्राप्त करते हैं। इससे शिक्षा के माध्यम से मसान नागरिकों को तैयार करने की राष्ट्रवादी राज्यों की योजना बुरी तरह प्रभावित हो रही है।

वैश्वीकरण नीतियों के तहत यह माना गया है कि शालेय शिक्षा को बेहतर बनाने के लिए उनके विकेन्द्रीकृत संचालन की जरूरत है। शिक्षा विभागों द्वारा केन्द्रीय प्रबंधन व संचालन महंगा मड़ता है और इससे शालेय स्तर पर जवाबदेही कमजोर रह जाती है। अत: यह सुझाया जाता रहा है कि पंचायत, नगरपालिका व पालक समितियों को शाला संचालन करना चाहिए। चूंकि पालकों व स्थानीय लोगों के बच्चे इन शालाओं में पढ़ते हैं, इसलिए वे स्थानीय स्तर पर नजर रखेंगे और शिक्षकों की जवाबदेही को सुनिश्चित करेंगे। इससे शालाओं की कार्यकुशलता बढ़ेगी। यह भी सुझाया जा रहा है कि अगर शालाओं को चलाने के लिए कुछ संसाधन स्थानीय स्तर पर ही जुटाए जाते हैं तो इससे भी शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है क्योंकि पालक अपने पैसों से फिजूल खर्ची होने नहीं देंगे और उसका सदुपयोग हो सही प्रयास करेंगे।

कई विद्वानों का मानना है कि इन नीतियों के बुनियाद में शासकीय खर्च को कम करना तथा समाज में शासन के हस्तक्षेप को कम करना ही है इनके पीछे शैक्षिणिक सुधार की सोच नहीं है बल्कि वित्तीय सुधार की ही सोच है। इसका एक नतीजा यह देखा गया है कि जिन क्षेत्रों में या तबकों में साध नहीनता है वहाँ के बच्चों को कमजोर शिक्षा मिल रही है। जो क्षेत्र साधन संपन्न हैं और जो लोग धनवान हैं और प्रभावशाली हैं उनके बच्चों को बेहतर शिक्षा मिल रही है।

शासन के वित्तीय भार को कम करने की जुगत का शिक्षकों के वेतन पर बुरा प्रभाव पड़ते हुए भी देखा गया है। सामान्य शिक्षकों की जगह कम वेतन वाले व अप्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति हो रही है जिसके चलते शिक्षा की गुणवत्ता पर बुरा असर हो रहा है। यह माना जाता है कि शिक्षा मूलत: शिक्षकों की समझ, प्रतिबद्धता व निष्ठा पर निर्भर है। अगर शिक्षक अपने जीविका के लिए दूसरे कामों (खेती, दुकानदारी, टयूशन आदि) पर निर्भर हैं तो वह शिक्षण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाएँगे। इसी तरह शिक्षा में क्या सुधार होना चाहिए, शिक्षकों के सामने क्या समस्यायें आ रही हैं, आदि मुद्दों पर विचार-विमर्श करके कार्यक्रम बनाना और उसके लिए संसाधन लगाना शासन का ही काम हो सकता है और अगर इसमें कटौती की जाती है तो शिक्षा की गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव ही पड़ेगा।

वैश्वीकरण का दूसरा प्रभाव यह है कि लगातार शिक्षित और उच्च शिक्षा प्राप्त कामगारों की जरूरत बढ़ रही है। इसके कारण सरकारें प्राथमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा को बढ़ाने तथा बालिका शिक्षा पर जोर देने लगे हैं। वे जानते हैं कि उनके देश में पूंजी निवेश को सुनिश्चित करने के लिए शिक्षित कामगारों की सख्त जरूरत है। पूरी दुनिया में भाषाई कुशलता, गणितीय सोच, वैज्ञानिक तर्क, कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग आदि उच्च क्षमताओं की मांग बढ़ी है और यह देखने को मिल रहा है कि ऐसे कार्यों में दक्ष लोगों को अन्य कामगारों से काफी अधिक आमदनी मिल पाती है। आँकड़े यह बताते हैं कि कोई भी व्यक्ति जो अपनी उच्च शिक्षा में धन निवेश करता है उसे प्रति रुपया अन्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक आय मिलती है। इस कारण विश्वभर में प्राथमिक शिक्षा तथा विज्ञान व गणित शिक्षा को अधिक महत्व दिया जा रहा है और साथ ही अंग्रेजी शिक्षा को भी। इस कारण इन विषयों की उच्च शिक्षा के लिए होड़ बढ़ रही है। इस शिक्षा को वे ही छात्र हासिल कर पाते हैं जो पहले से संपन्न हैं और आमतौर पर अधिक फीस वाले निजी शालाओं में पढ़ रहे हैं। इस तरह शिक्षा में असमानता पाटने की क्षमता होने के बावजूद असमानता ही बढ़ रही है।

वैश्वीकरण का तीसरा प्रभाव है विभिन्न शिक्षा व्यवस्थाओं के बीच तुलना और यह प्रयास कि सारे देशों की शिक्षा अंतर्राष्ट्रीय मापदण्डों के अनुरूप चलें। आज के दौर में यह माना जा रहा है कि शिक्षा संबंधी आँकड़ों से हम शिक्षा की गुणवत्ता की जाँच कर सकते हैं और इसके आधार पर उपचारात्मक कदम उठा सकते हैं। इस कारण दुनियाभर में शिक्षा संबंधी जानकारी व आँकड़ें एकत्रित करने पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है और यह भी प्रयास है कि ये आंकड़े अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तुलनीय हो। इसके तहत छात्रों की उपलब्धि का आंकलन काफी महत्वपूर्ण होता जा रहा है। इनके आधार पर यह देखा जाता है कि शिक्षा में कितनी लागत आ रही है और इससे क्या उपलब्धि हासिल हो रही है। यह पूरे राष्ट्रीय शिक्षा तंत्र की नीतियों के लिए और साथ-साथ शाला स्तर पर सुधार के लिए उपयोगी माना जा रहा है। इस बात को लेकर जरूर बहस चल रही है कि इस तरह के आँकड़े किस हद तक शैक्षिक गुणवत्ता का आंकलन कर सकते हैं और इन आंकड़ों की विश्वसनीयता कैसे सुनिश्चित करें और क्या ऐसे आंकड़े इकट्ठा करने से छात्रों की उपलब्धि स्तर में कोई सुधार आता है।

NOTES

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वैश्वीकरण से आप क्या समझते हैं? इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
2. वैश्वीकरण की आवश्यकता से आपका क्या अभिप्राय है? इसके लाभों की व्याख्या कीजिए।
3. वैश्वीकरण का शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है, स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वैश्वीकरण की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. वैश्वीकरण की हानियाँ बताइए।
3. वैश्वीकरण के मार्ग में आने वाली बाधाओं का उल्लेख कीजिए।
4. वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं का उल्लेख कीजिए।
5. बहुर्राष्ट्रीय कम्पनियों से आप क्या समझते हैं?
6. वैश्वीकरण की नीतियों को समझाइए।

1 शिक्षा का सार्वभौमीकरण (Universalization of Education)

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- शिक्षा के सार्वजनीकरण का अर्थ
- प्रारम्भिक शिक्षा के लोक व्यापीकरण के उद्देश्य
- प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की आवश्यकता एवं महत्व
- सार्वभौम शिक्षा के तत्व
- सार्वभौम शिक्षा के कार्यक्रम
- शिक्षा के अधिकार के प्रावधान
- शिक्षा के अधिकार का महत्व
- शालेय शिक्षा का लोकव्यापीकरण
- शिक्षा में लोकव्यापीकरण की अवधारणा
- लोकव्यापीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के उपाय
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे-

- शिक्षा के सार्वजनीकरण का अर्थ
- प्रारम्भिक शिक्षा के लोक व्यापीकरण के उद्देश्य
- प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की आवश्यकता एवं महत्व
- सार्वभौम शिक्षा के तत्व
- सार्वभौम शिक्षा के कार्यक्रम
- शिक्षा के अधिकार के प्रावधान
- शिक्षा के अधिकार का महत्व
- शालेय शिक्षा का लोकव्यापीकरण
- शिक्षा में लोकव्यापीकरण की अवधारणा
- लोकव्यापीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के उपाय

प्राक्कथन

शिक्षा व्यक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नति के लिए एक अपरिहार्य आवश्यकता है। शिक्षा की अनिवार्यता देश की सभ्यता एवं संस्कृति के विकास हेतु एवं राष्ट्रीय उद्देश्यों के अनुकूल समाज के पुनर्निर्माण के लिए अपेक्षित है। शिक्षा को प्रायः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है- विद्यालयी शिक्षा तथा उच्च्च शिक्षा। विद्यालयी शिक्षा के दो स्तर होते हैं- प्राथमिक शिक्षा जिसमें उच्च्च प्राथमिक शिक्षा शामिल है तथा माध्यमिक शिक्षा। प्राथमिक शिक्षा वह आधारशिला है जिस पर शिक्षा के सुदृढ़ भवन का निर्माण किया जाता है। सामाजिक परिवर्तन हेतु, यदि प्रत्येक व्यक्ति को आधारभूत प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध नहीं होगी तो जो भौतिक संस्कृति में सामाजिक परिवर्तन तेजी से आ रहे हैं, उनके अनुकूल अभौतिक संस्कृति अर्थात् मूल्यों तथा मान्यताओं में परिवर्तन नहीं आ सकते परिणामस्वरूप संस्कृति विलम्बना उत्पन्न होकर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जायेगी। प्राथमिक शिक्षा इस सांस्कृतिक विडम्बना का निराकरण कर सामाजिक प्रक्रिया को पूर्ण करने में सहायक होगी। प्रस्तुत अध्याय में प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का विस्तार से वर्णन किया जा रहा है।

शिक्षा के सार्वजनीकरण का अर्थ (Meaning of Universalization of Education)

शिक्षा के सार्वजनीकरण या सार्वभौमिकता (Universalization) का शाब्दिक अर्थ है शिक्षा का किसी निश्चित स्तर तक सभी लोगों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क रूप से उपलब्ध होना। शिक्षा के सार्वजनिकरण की संकल्पना भारत में प्राचीन काल में ही विकसित हो चुकी थी जैसा कि आगे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में उसके सर्वेक्षण द्वारा ज्ञात होगा। यद्यपि मध्यकाल एवं ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत आधुनिक काल में शासकों की उपेक्षा के कारण इसकी गति अवरुद्ध रही, लेकिन विदेशी शासन में विरुद्ध स्वाधीनता आन्दोलन के समय इसकी मांग प्रबल हुई। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् संविधान में इसका प्रावधान किया गया।

शिक्षा के सार्वजनीकरण की संकल्पना देश-काल के परिप्रेक्ष्य में शनैः-शनैः विकसित हुई तथा इसके अर्थ में स्पष्टता तथा व्यापकता आती गई। शिक्षाविदों के विचार, देश की आर्थिक दशा, जनसाधरण की मनोवृत्ति, शिक्षा-प्रणाली आदि घटकों को शिक्षा के सार्वजनीकरण की धारणा में परिवर्तन एवं संशोध न होता रहा। निम्नांकित कथनों द्वारा शिक्षा के सार्वजनीकरण की संकल्पना स्पष्ट होती है।

जे.पी. नायक के अनुसार, "शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम बनाने तथा इसे राष्ट्रीय विकास से सम्बद्ध करने की आवश्यकता है। शिक्षा को भारत के जनसाधारण के उस वर्ग की और उन्मुख करना है जो गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं ताकि उनमें आत्मचेतना जागृत हो और उनकी उत्पादक क्षमताएँ प्रस्फुटित होकर उन्हें राष्ट्र निर्माण के कार्य में प्रभावी रूप से सहभागी बनने योग्य बनाया जा सके।

योजना आयोग के सदस्य एस. चक्रवर्ती का कथन है कि "सामाजिक पुनः निर्माण करने की दृष्टि से, जिके लिए देश की प्रतिबद्धता है, प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की समस्या का निःसन्देह निर्णायक महत्व है।"

प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की प्रक्रिया के तीन सोपानों का उल्लेख करते हुए उपेन्द्रनाथ दीक्षित तथा निदेश चन्द्र जोशी ने कहा है कि प्राथमिक शिक्षा का प्रसार प्रायः तीन सोपानों में होता है और ये सोपान एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक बालक के लिए उसके घर से कम दूरी पर प्राथमिक शाला की व्यवस्था की जा सके। यह सोपान सार्वत्रिक प्रावधान (Universal Provision) के नाम से जाना जाता है। जब बालकों के लिए स्कूल की व्यवस्था हो जाये तो दूसरा चरण सब बच्चों के दाखिले सार्वत्रिक प्रवेश (Universal Enrolment) का है जिसके अन्तर्गत यह प्रयास किया जाता है कि निर्धारित आयु सीमा में कोई भी बालक शिक्षा से न छूट पाये। तीसरा प्रयास इस बात का होना चाहिए कि जिन बच्चों ने स्कूल में प्रवेश पा लिया है वे प्राथमिक शिक्षा समाप्त किये बिना स्कूल न छोड़ें। इसको सार्वत्रिक धारण शक्ति (Universal Retention) के नाम से जाना जाता है।

डॉ. एस. माथुर ने कहा है कि "एक निश्चित स्तर तक शिक्षा का सार्वजनीकरण ही निरक्षरता की वृद्धि को रोकने तथा विकास की गति को तेज करने का एकमात्र उपाय है।–

कोठारी शिक्षा आयोग ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में निदिष्ट शिक्षा के सार्वजनीकरण के प्रावधान सम्बन्धी नीति-निर्देशक तत्व के संदर्भ में कहा है, "संविधान के अनुच्छेद 45 में निदिष्ट निर्देशक तत्व की पूर्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि राज्य को 14 वर्ष तक के बच्चों की निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास करना चाहिए। इसकी पूर्ति 1960 तक हो जानी चाहिए थी। लेकिन इसमें पर्याप्त साधनों की कमी, जनसंख्या में भारी वृद्धि, लड़कियों की शिक्षा में रुकावटें, पिछड़े वर्गों के बच्चों की बहुसंख्या, लोगों की सामान्य गरीबी तथा जनकों (Parents) की निरक्षरता और उदासीनता जैसी बड़ी-बड़ी दिक्कतों की दृष्टि में प्राथमिक

शिक्षा में प्रगति करना संभव न हुआ एवं संविधान के निर्देश की पूर्ति न हो पाई। दुनिया के अग्रवर्ती देशों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विकास का ध्यान से अध्ययन करने पर पता चलता है कि यह कार्यक्रम तीन अवस्थाओं में विभाजित है, जिनमें निम्नलिखित बातें अपेक्षित हैं-

(i) प्रत्येक बच्चे घर से आसानी से पार करने योग्य दूरी पर स्कूल की व्यवस्था की जाये।

(ii) विहित आयु के हर बच्चे का प्रचार द्वारा, समझाकर जरूरी हो तो दण्डात्मक कार्यवाही करके भी किसी स्कूल की कक्षा 1 में नामांकन किया जाये।

(iii) प्रत्येक नामांकित बच्चे को स्कूल में तब तक रोके रखा जाये, जब तक वह विहित आयु का न हो जाये या विहित पाठ्यक्रम पूरा न कर ले।

सार्वजनीन व्यवस्था, सार्वजनीन नामांकन एवं सार्वजनीन रूप से स्कूल में रखने की तीन अवस्थाएँ हैं। ये आपस में एक-दूसरे से विलग नहीं हैं और साधारणतया एक-दूसरे से सम्बन्धित हो जाती हैं। साथ ही उनमें शिक्षा के गुणनात्मक सुधार के कार्यक्रम की सहवर्ती कार्यान्विति का पुर्वानुमान किया जाता है, क्योंकि सार्वजनीन नामांकन को रोके रखना, ज्यादातर स्कूल के आकर्षक होने पर तथा रोककर रखने की शक्ति पर निर्भर करता है।

उपर्युक्त उद्धरणों से शिक्षा के सार्वजनीकरण की संकल्पना स्पष्ट होती है। 6-14 आयु-वर्ग की प्राथमिकता शिक्षा को सार्वजनीय बनाना ही सर्वप्रथम हमारा संवैधानिक लक्ष्य है। शिक्षा के सार्वजनीकरण में उसके तीन सोपान-सार्वजनीन प्रावधान, सार्वजनीन प्रवेश एवं सार्वजनीन धारणा शक्ति उसके विभिन्न अंग हैं। इन तीनों अंगों की समाप्ति पर ही शिक्षा का निध ीरित स्तर तक सार्वजनीकरण सार्थक हो सकता है। उस लक्ष्य को शीघ्रताशीघ्र प्राप्त करने के उपायों पर अभी तक मदभेद बने हुए हैं। एक वर्ग परम्परागत शिक्षा-प्रणाली द्वारा ही इस लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है, जबकि दूसरा वर्ग परम्परागत प्रणाली के स्थान पर अधिक व्यावहारिक प्रणाली अपनाने पर जोर देता है। जिसमें एकल-बिन्दु प्रवेश के स्थान पर बह-बिन्दु प्रवेश की पद्धति अपनाई जाये, प्रतिवर्ष कक्षानुगत कक्षोन्नति की विशेषता में स्थान पर अनौपचारिक समयावधि के पाठ्यक्रम का समावेश किया जाये, पूर्णकालिक शिक्षा के स्थान पर अंशकालिक शिक्षा को अपनाया जाये एवं पूर्णकालिक शिक्षक के स्थान पर उपलब्ध सभी स्थानीय शिक्षण संसाधनों को प्रयुक्त किया जाये। परम्परागत शिक्षा, प्रणाली के स्थान पर इस दूसरे का विकल्प का

सुझाव जे. पी. नायक ने दिया था जो शिक्षा के प्राथमिक स्तर तक सार्वजनीकरण के लक्ष्य की प्राप्ति में उपयोगी हो सकता है।

प्रारम्भिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के उद्देश्य (Aims of Universalization of Elementary Education)

शिक्षा को लोकव्यापी बनाने के उद्देश्यों को हम निम्नलिखित तथ्यों द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं-

1. **राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास करना :** लोकव्यापी शिक्षा से देशभक्त भावी नागरिकों का निर्माण होता है। जो देश राष्ट्रीय विकास को महत्व देते हैं, वे लोकव्यापी शिक्षा के प्रसार को भी अत्यधिक प्राथमिकता देते हैं। इसके अतिरिक्त यह शिक्षा राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता को भी जन्म देती है। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ में भारत में निरक्षरता का बोलबाला था, लेकिन जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार होता गया भारतीयों में राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित हुई। लोकव्यापी शिक्षा से नागरिकों में उचित संवेगों का विकास होता है जिनसे भावात्मक शिक्षा को बल मिलता है। इस शिक्षा में भारतीय नागरिकों का दृष्टिकोण इतना व्यापक हो जाता है कि वे निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को बनाये रखने का प्रयास करते हैं।

2. **साम्प्रदायिकता की समाप्ति :** साम्प्रदायिकता इस प्रकार घुन है, जो सामाजिक जीवन में अराजकता उत्पन्न करने के साथ-साथ नागरिकों के मन में वैमनस्यता की भावना को जाग्रत है, जिससे निरक्षर व्यक्ति की साम्प्रदायिकता के शिकार होते हैं। अतः इस विष को समाप्त करने के लिए लोकव्यापी शिक्षा का प्रसार करना अत्यन्त आवश्यक है। डॉ. सीताराम जायसवाल के मतानुसार, "शिक्षा द्वारा साम्प्रदायिकता का निराकरण होता है तथा आपस में राग-द्वेष त्याग कर जातीयता के बन्धन से मुक्त धर्म-निरपेक्ष का निर्माण करने में समर्थ हो सकते हैं।"

3. **राजनीतिक जागरूकता के लिए :** यह शिक्षा नागरिकों में कर्तव्य तथा अधिकारों के प्रति उत्तरदायित्वों की भावना को जन्म देती है, परन्तु इसके साथ-साथ प्रजातन्त्र की सफलता के लिए राजनीतिक जागरूकता भी आवश्यक है। प्रायः निरक्षर व्यक्ति स्वार्थी राजनीतिज्ञों के बहकावे में आकर अपने मतदान का उचित प्रयोग नहीं कर पाते, इलिए प्रजातन्त्र का उद्देश्य भी सफल नहीं पाता है।

NOTES

4. **जनतन्त्र को सफल बनाने के लिए आवश्यक :** जनतन्त्र की सफलता के लिए लोकव्यापी शिक्षा का क्या महत्व है? इस सन्दर्भ में डॉ. प्रकाश चन्द्र का कथन है, "किसी भी जनतान्त्रिक देश के विकास के लिए शिक्षा का अधिक से अधिक प्रचार आवश्यक है। जनतन्त्र में सामाजिक एवं आर्थिक विकास की सफलता वहाँ की जनता की बुद्धिमत्ता एवं विवेक पर निर्भर करती है। किसी भी राष्ट्र की शिक्षा प्रक्रिया की आधारशिला वहाँ की प्राथमिक शिक्षा होती है। यह शिक्षा अनिवार्य रूप से देश के प्रत्येक बालक को बिना किसी भेदभाव से प्राप्त होनी चाहिए। अत: प्राथमिक शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है "देश के भावी नागरिकों को साक्षर बनाकर उन्हें अपने कर्तव्य, अधिकार तथा उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक बनाना, जिससे उनमें जीवन की सामान्य समस्याओं के समाधान की क्षमता का विकास हो सके।"

5. **सामाजिक समानता तथा न्याय की स्थापना में सहायक :** वर्तमान काल में समाज में अनेक भेदभाव हैं अर्थात् कुछ व्यक्तियों को ही विकास के समान अधिकार मिल पाते हैं। अधिकांश व्यक्ति निरक्षरता के कारण प्रतिभाशाली होते हुए भी अपना उचित विकास नहीं कर पाते। इसका प्रमुख कारण शिक्षा का जनव्यापी न होना है। शिक्षा की इस व्यवस्था के कारण योग्य तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति राष्ट्र एवं समाज की उचित सेवा करने से वंचित रह जाते हैं। इसका समाधान जनसाधारण के लिए शिक्षा को सुलभ बनाकर ही किया जा सकता है।

प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की आवश्यकता एवं महत्व (The Need and Importance of Universalization of Education)

शिक्षा के सार्वजनीकरण का अर्थ समझने के बाद उसकी आवश्यकता एवं महत्व का उल्लेख किया जाना आपेक्षित होगा। सार्वजनीकरण की प्रगति एवं उससे सम्बद्ध उपलब्धियों का आकलन उसकी आवश्यकता, महत्व एवं ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि के आधार पर भली-भाँति किया जा सकता है। शिक्षा के सार्वजनीकरण की आवश्यकता एवं महत्व के निम्नलिखित कारण हैं-

1. **व्यक्ति का विकास (Development of Individual) :** व्यक्ति के विकास हेतु न्यूनतम एक निश्चित आयु एवं अवधि तक शिक्षा प्राप्त करना उसकी अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि उनकी जन्मजात मूल प्रवृत्तियों का शोधन एवं नियमन शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव

है अन्यथा वह अपने पशुवत् अनियन्त्रित स्वेच्छाचारी व्यवहार द्वारा असामाजिक प्रणाली बन सकता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है- इस तथ्य में ही शिक्षा की अनिवार्यता निहित है।

NOTES

2. **समाज का विकास (Development of the Society) :** शिक्षित व्यक्ति ही समाज के उपयोगी नागरिक बन सकते हैं तथा समाज की प्रगति में अपना योगदान दे सकते हैं। समाज के विकास के लिए व्यक्ति को न्यूनतम प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करना वांछनीय है ताकि वह अपने दायित्वों को समझकर समाज का एक जागरूक नागरिक बन सके।

3. **राष्ट्रीय विकास (National Development) :** जिस प्रकार समाज के सदस्य के रूप में स्वयं के तथा समाज के विकास के लिए प्राथमिक शिक्षा आवश्यक है, उसी प्रकार राष्ट्र के नागरिक होने के नाते व्यक्ति को अपने अधिकार तथा कर्तव्यों को भली-भाँति समझने तथा उनके अनुकूल राष्ट्र के विकास में अपना योगदान देने हेतु उसे एक न्यूनतम अवधि की शिक्षा उपलब्ध होनी चाहिए।

4. **लोकतन्त्रीय व्यवस्था (Democratic Order) :** जो समाज तथा राष्ट्र लोकतन्त्रीय व्यवस्था पर आधारित हो, उस देश के नागरिकों के लिए तो प्रारम्भिक प्राथमिक शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत लोकतांत्रिक व्यवस्था है जिसमें शिक्षित नागरिक ही परस्पर विचारों का आदान-प्रदान कर विचार-विमर्श के माध्यम से अपनी समस्याओं का निष्पक्ष समाधान खोज सकते हैं तथा लोकतंत्रीय संस्थाओं में प्रक्रिय भाग ले सकते हैं। प्राथमिक शिक्षा व्यक्ति को साक्षर बनाकर उसे लोकतंत्रीय जीवन-शैली अपनाने में सहायक होती है।

5. **व्यावसायिक प्रगति (Vocational Progress) :** अपने व्यवसाय-धन्धे में कार्य कुशलता लाकर अधिक उत्पादन करने में प्राथमिक शिक्षा का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं होता। शिक्षित व्यक्ति नवीन तकनीकी एवं उपकरणों के प्रयोग द्वारा अपनी कार्यक्षमता में वृद्धि कर अधिक समृद्धि प्राप्त कर सकता है तथा राष्ट्र की उत्पादकता बढ़ाकर उसके विकास में सहायक होता है।

6. **माध्यमिक शिक्षा की तैयारी (Preparation for Secondary Education) :** आगामी माध्यमिक स्तर एवं उच्च शिक्षा आवश्यक है। औपचारिक तथा अनौपचारिक विधि से आगे की शिक्षा का आधार प्राथमिक शिक्षा ही है।

7. **स्व शिक्षा (Self Education) :** प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर व्यक्ति में अभिवृत्ति, कौशल एवं आकांक्षा विकसित हो जाती है जो उसे किसी शिक्षा संस्था में पढ़ने के अवसर प्राप्त न होने पर भी, स्वाध्याय द्वारा स्व-शिक्षा के लिए प्रोत्साहन देती है। अंशकालीन शिक्षा (Part Time Education), पत्राचार द्वारा शिक्षा (Education throught Correspondence) अथवा स्वयं पाठी (Private Candidate) के रूप में शिक्षा प्राप्त करने की अनेक योजनाएँ चल रही हैं जिनके द्वारा प्राथमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अपने व्यवसाय को करते हुए भी, अपना अध्ययन निरन्तर बनाये रख सकता है।

8. **दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति (Fulfilment of Day to Day Needs) :** कम से कम प्राथमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अपने दैनिक जीवन की पूर्ति हेतु आत्मनिर्भर बन जाता है। अपने सम्बन्धियों एवं मित्रों को पत्र लिखने व पढ़ने, घर या व्यवसाय का हिसाब-किताब रखने, क्रय-विक्रय करने? समाचार-पत्र पढ़ने, देश-विदेश की घटनाओं से अवगत होने, आदि ऐसी दैनिक जीवन की आवश्यकताएँ जिनकी पूर्ति प्राथमिक स्तर की शिक्षा द्वारा सहज में ही संभव है।

9. **साक्षरता का प्रसार (Progation of Literacy) :** प्राथमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति स्वयं तो साक्षर है ही किन्तु वह अपने परिवार के बच्चों व स्थानीय समुदाय के निरक्षर प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का प्रयास कर सकता है।

10. **अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की विकास (Development of International Understanding) :** देश की घटनाओं एवं समस्याओं के प्रति राष्ट्रीय दृष्टिकोण के निर्माण के अतिरिक्त विश्व के विभिन्न राष्ट्रों की अन्त:निर्भरता तथा मानवतावादी कार्यों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के विकास में भी प्राथमिक शिक्षा सहायक होती है। साक्षर व्यक्ति राष्ट्र तथा विश्व का एक अच्छा नागरिक बनने की अधिक क्षमता रखता है।

सार्वभौम शिक्षा के तत्व (Factors of Universal Education)

सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा की अवधारणा अत्यन्त व्यापक है। इसका प्रमुख उद्देश्य यह है कि प्रत्येक बालक विद्यालय में जाए, और वहाँ से शिक्षा प्राप्त करके ही समाज में वापस आयें। इसी आधार से सार्वभौम शिक्षा के प्रमुख पक्ष निम्नलिखित हैं-

(a) प्रवेश (Enrolment) तथा सार्वभौमिक प्रवेश (Universal Enrolment)

(b) धारणा (Retention) तथा सार्वभौमिक धारणा (Universal Retention)

(c) प्रगति (Success) तथा सार्वभौमिक प्रगति (Universal Success)

1. **सार्वभौमिक प्रवेश (Universal Enrolment) :** प्रत्येक प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश अत्यन्त अनिवार्य पक्ष है। प्राथमिक विद्यालयों में 6-11 वर्ष के प्रत्येक बालक को प्रवेश दिया जाना चाहिए। नामांकन कढ़ने से ही शिक्षा को गति मिलती है। सच तो यह है कि नामांकन के विषय में ही हम पिछड़ गये हैं। अनिवार्य रूप से नामांकन कराने की सूचना के पश्चात् भी अभिभावक अपने बच्चों को विद्यालयों में नहीं भेजते हैं। अभिभावक बन्धु निर्धनता, अज्ञानता, अशिक्षा तथा जगरूकता के कारण शिक्षा के महत्व को नहीं समझते। वे बालक को आर्थिक इकाई के रूप में समझते हैं। इस आधार से यदि बालक विद्यालय जाता है तो उनके घर में आने वाला धन रुक जायेगा। परिणामस्वरूप विद्यालयों में नामांकन कम होता है।

सरकारी आँकड़ों के अनुसार, 1950-51 में 43%, 1960-61 में 62.4%, 1970-71 में 76%, 1980-81 में 85.5%, 1985-86 में 85% नामांकन 6-11 वर्ष के बालकों का प्राथमिक कक्षाओं के लिए हुआ। 1950-51 में 12.9%, 1960-61 में 22.5%, 1970-71 में 33.4%, 1980-81 में 41.9%, 1985 में 48.3% नामांकन 11-14 वर्ष के बालकों को हुआ। सभी के लिए शिक्षा के शिखर सम्मेलन के प्रतिवेदन के अनुसार, 1992 में 18 करोड़ बच्चों के नामांकन का आँकलन किया गया। शिक्षक-छात्र अनुपात 1:40 रखा गया जिससे 45 लाक्ष शिक्षक तथा 11 लाख कमरों की आवश्यकता दर्शायी गई।

बढ़ती जनसंख्या, घटती सुविधाओं तथा संकल्प के अभाव तथा सामाजिक ईमानदारी के अभाव के कारण नामांकन के लक्ष्य को पूरा नहीं किया जा सका।

लक्ष्य प्राप्ति के उपाय-

आचार्य राममूर्ति समिति ने सार्वभौम नामांकन के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में संशोधन करके निम्नलिखित उपाय प्रस्तुत किए-

1. सुपात्र संस्थाओं के विद्यालय संचालित करने के लिए सरकार सहायता देगी।

NOTES

2. दुर्गम क्षेत्रों के अन्तर्गत विद्यालय स्थापित करना, स्वैच्छिक विद्यालयों की व्यवस्था करना, स्वैच्छिक संस्थाओं को शिक्षा के लिए साधन, उपलब्ध कराना।
3. समुदाय द्वारा अनुदेशकों की नियुक्ति की जाये।
4. स्वैच्छिक संस्थाएँ 150 की जनसंख्या वाले गाँवों में कम से कम 30 छात्रों के लिए विद्यालय खोलेगी।
5. जो छात्र पूर्ण समय तक विद्यालय में नहीं रह सकते, उनके लिए अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था की जाये तथा लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाये।
6. अनौपचारिक पाठ्यक्रमों को ओपन स्कूल प्रणाली से जोड़ा जायेगा।
7. अनुदेशकों को जिला शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, राज्य शैक्षिक अनुसंध ान तथा प्रशिक्षण परिषद् तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान द्वारा शिक्षित बनाया जाये।
8. बालकों को अनौपचारिक पद्धति द्वारा औपचारिक पद्धति में प्रवेश दिया जाये।
9. अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली को सार्वजनिक पुस्तकालयों एवं जन शिक्षण नियम से जोड़ा जाये।
10. अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली द्वारा बालकों को व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिया जाये।

2. सार्वभौमिक धारणा (Universal Retention) : धारणा से तात्पर्य, बालकों का विद्यालय में नियमित रूप से रहना है। प्राय: किसी न किसी कारण से बालक अनुत्तीर्ण रहते हैं। एक से अधिक वर्ष तक बालक का एक ही कक्षा में बने रहना, उसकी शिक्षा की उन्नति में अत्यन्त बाध क होता है। 1 से 5 तक मध्य में ही पढ़ाई छोड़ने वाले बालकों का 47% है। 1 से 8 तक के मध्य पढ़ाई छोड़ने वाले बालकों का प्रतिशत 64. 5 है। लड़कियों की सहभागिता अत्यधिक होने के बाद पर्याप्त असमानता अवरोधन में पायी जाती है। अनुपात के आधार से पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जाति, जनजाति वर्गों की शिक्षा में सहभागिता में वृद्धि हुई है। प्राथमिक विद्यालयों के अन्तर्गत मध्य में ही पढ़ाई छोड़ने या फेल होने के निम्नलिखित कारण हैं-

1. बालकों की आयु में विसंगति का होना।

2. उपस्थिति में अनियमितता बरतना।
3. पूरे वर्ष प्रवेश देना।
4. पुस्तकीय शिक्षा पर जोर देना।
5. साधनों तथा उपकरणों की कमी होना।
6. कक्षाओं में छात्र-छात्राओं की संख्या में वृद्धि होना।
7. दूषित शिक्षा प्रणाली।
8. विद्यालय का वातावरण दूषित होना।
9. अनुपयुक्त पाठ्यक्रम पर बल देना।
10. मनोवैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली का अभाव।
11. अनौपचारिक प्रणाली में शिक्षा प्राप्त बालकों को व्यावसायिक तथा प्राविधिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश प्रदान किया जाये।
12. अनौपचारिक प्रणाली द्वारा शिक्षित बालकों को बाद में औपचारिक प्रणाली में प्रवेश प्रदान किया जायेगा।
13. अनुदेशकों को जिला शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, राज्य शैक्षिक अनुसंध ान एवं प्रशिक्षण परिषद् तथा राष्ट्रीय अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के द्वारा शिक्षित किया जायेगा।
14. अनौपचारिक पाठ्यक्रमों को ओपन स्कूल प्रणाली से जोड़ा जाये।

बालक विद्यालय में बने रहें इसके लिए निम्नलिखित उपाय प्रस्तुत किये गये हैं–

1. रुचिपूर्ण शिक्षा एवं शिक्षण प्रणाली मनोवैज्ञानिक होनी चाहिए।
2. सभी बालकों के लिए एक किलोमीटर के क्षेत्र में विद्यालय होना चाहिए।
3. प्रवेश सत्र के प्रारम्भ में ही दिया जाए।
4. बालकों को ड्रेस, पुस्तकें, बालाहार पोषण, स्टेशनरी सुविधाएँ प्रदान की जायें।
5. विद्यालयी शिक्षा के अन्तर्गत अभिभावकों को भी प्रेरित किया जाये। कुछ राज्यों ने शत-प्रतिशत उपस्थिति के लिए नकद रकम अथवा 5 किलो राशन बालक को दिया जाता है। इसके परिणाम अच्छे रहे हैं।

NOTES

3. **सार्वभौमिक प्रगति (Universal Success) :** शिक्षा के सार्वभौमिकरण की प्रगति तभी संभव है, जब देश का प्रत्येक बालक शिक्षित हो तथा वह एक योग्य नागरिक बन जाये। हेनरी डब्ल्यूख होम के मतानुसार, "राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का प्राथमिक कार्य यह है कि वह देश के नवयुवकों को वयस्क जीवन में प्रवेश करने के लिए तैया करे। ऐसा करने के लिए उसे प्रत्येक बालक तथा बालिका को किसी कार्य या रोजगार के लिए प्रेरित करना चाहिए या उसे उन्हें किसी कार्य का व्यवसाय के लिए उपर्युक्त शिक्षा दी जानी चाहिए। साथ ही वह उन्हें लोकतान्त्रिक नागरिकता के लिए तैयार करें तथा सुखमय जीवन के लिए उन्हें व्यक्तिगत साधन सम्पन्नता से सुसज्जित करें।

सार्वभौम शिक्षा के कार्यक्रम

1. **अनौपचारिक शिक्षा (Nonformal Education) :** अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा के सार्वभौम लक्ष्य की पूर्ति के लिए कामकाजी बालक-बालिकाओं को शिक्षा देने के लिए की गई। अनौपचारिक शिक्षा को, औपचारिक शिक्षा के विकल्प के रूप में ग्रहण किया गया। इसमें 6-14 वर्ष के बालक-बालिकाओं को, जो कि किसी भी कारण से औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाये, उन्हें समान शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई।

2. **आपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना (Operational Black-board Scheme)** : सार्वभौम शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालय के अन्तर्गत न्यूनतम सुविधाओं का अभाव सबसे बड़ी बाधा है। अतः ब्लैकबोर्ड योजना आरम्भ की। इसमें निम्न बातें प्रस्तुत की गई-

    1. प्रत्येक विद्यालय में कम से कम दो शिक्षक तथा एक शिक्षिका का होना अत्यन्त आवश्यक है।
    2. लड़के एवं लड़कियों के लिए शौचालय की व्यवस्था अलग-अलग होनी चाहिए। एक बरामदे सहित कम से कम दो पर्याप्त बड़े-बड़े कमरों की व्यवस्था हो।
    3. ब्लैक-बोर्ड, नक्शा, चार्ट, खिलौनों तथा कार्यानुभव के लिए उपकरणों सहित आवश्यक पठन सामग्री की व्यवस्था होनी चाहिए।

औपरेशन ब्लैक-बोर्ड के अन्तर्गत एक लाख श्रेणी कक्षों का निर्माण किया गया। 853.95 करोड़ की व्यवस्था इस मद में की गई। इसमें सभी विद्यालयों को शामिल करने का निर्णय लिया गया। 100 छात्रों वाले

विद्यालयों के अन्तर्गत तीन शिक्षक, तीन कक्ष तैयार करने का निर्णय लिया गया। योजना विस्तार करते हुए प्रत्येक कक्षा एवं सेक्शन के लिए एक-एक कमरे, प्रधानाध्यापक का कक्ष तथा कार्यालय, शौचालय सुविधएँ, पुस्तकालय, शिक्षक तथा सामान्य खर्च की व्यवस्था के लिए आकस्मिक-अनुदान उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया।

3. **जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (District Primary Education Programme, DPEDP) :** सभी को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए, जिला प्राथमिक शिक्षा प्रणाली प्रारम्भ की गई। इसके अन्तर्गत जिले में लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। कार्य नीति तैयार की जाती है, सहभागी क्रियाओं का निर्णय किया जाता है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत केन्द्र सरकार 85% आर्थिक सहायता देती है।

4. **न्यूनतम शिक्षण स्तर (Minimum Level of Learning MLL) :** शिक्षा की सार्वभौमिकता इस पर निर्भर करती है कि न्यूनतम शिक्षण स्तर का निर्धारण करना है। समानता एवं गुणवत्ता बनाये रखने के लिए प्राथमिक शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर कार्यनीति अपनायी जाये। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किये जाने चाहिए-
   1. शिक्षक-निर्देशिका तैयार की जानी चाहिए।
   2. उपलब्ध शैक्षिक स्तर का निरीक्षण करना।
   3. यूनिट एवं मूल्यांकन परीक्षा तैयार करना।
   4. स्थानीय उपलब्धियों को अनुकूल बनाये रखने के लिए न्यून शिक्षण स्तर में संशोधन करना।
   5. पाठ्यम तथा पाठ्यपुस्तकों में संशोधन करते समय न्यूतम स्तर का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

5. **अन्य उपाय (Other Efforts) :** कोठारी आयोग तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने राष्ट्र के निर्माण के लिए शिक्षा की सार्वभौमिकता के महत्व को स्पष्ट किया है। प्राथमिक शिक्षा की समस्या का समाधान करने के लिए इनके उपाय निम्नलिखित हैं-
   1. सार्वभौमिक नामांकन के लिए बालकों तथा अभिभावकों को प्रोत्साहित करना। यह प्रोत्साहन धन, अनाज, ड्रेस, स्टेशनरी, पुस्तकें तथा छात्रवृत्ति के रूप में प्रदान किया जाये।
   2. नामांकन के लिए प्रचार-प्रसार एवं दण्डात्मक उपाय अपनाये जायें।

NOTES

3. विद्यालय प्रत्येक छात्र की पहुँच में हो।
4. अंशकालिक शिक्षा की व्यवस्था की जाये।
5. कक्षा 8 तक व्यापक मूल्यांकन नीति अपनायी जाये।
6. खेल द्वारा शैक्षिक प्रविधियों को अपनाया जाये।

अत: 6-14 वर्ष आयु वर्ग के बालकों के लिए जो मजदूरी या अन्य आर्थिक कार्य करते हैं, उनके लिए भी अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

अपव्यय तथा अवरोधन की समस्याएँ (Problems of Wastage and Stagnation)

अपव्यय तथा अवरोधन की समस्या भारतीय प्राथमिक शिक्षा के लिए नवीन समस्या नहीं है। सन् 1927 ई. में साइमन कमीशन की उप-समिति 'हर्टाग कमेटी' ने इस समस्या का अध्ययन किया और इनसे होने वाली हानि का अनुमान लगाया। इस कमेटी ने सन् 1922-23 के आँकड़े एकत्रित करके निष्कर्ष निकाला कि 100 छात्रों में से मात्र 18 छात्र ही प्राथमिक शिक्षा पूर्ण कर पाते हैं, शेष बीच में ही शिक्षा छोड़ देते हैं। इसी प्रकार 1959 ई7 में स्त्री शिक्षा पर राष्ट्रीय समिति के निष्कर्ष निकाला कि 100 बालकों में से 66 बालक बीच में ही अध्ययन छोड़ देते हैं। इससे राष्ट्र के एक विशाल मानव श्रम का विनाश होता है।

1. **अपव्यय (Wastage) :** "अपव्यय से हमारा तात्पर्य शिक्षा पूरी किये बिना ही प्राथमिक शिक्षा के किसी स्तर से विद्यालय छोड़ देना है।" ऐसा अपव्यय बालकों की श्रम शक्ति, प्रयास तथा अभिभावकों के धन की हानि करता है जो बालक के प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने के कारण होती है। यदि हम सम्पूर्ण का पता लगायें तो हय हानि उन आँकड़ों से काफी अधिक होगी, जो हमारे समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं।
2. **अवरोधन (Stagnation) :** अवरोधन प्राथमिक शिक्षा की दूसरी प्रमुख समस्या है। अवरोधन से हमारा अभिप्राय है बच्चे का फेल होने या अन्य किसी कारण से एक ही कक्षा में एक वर्ष से अधिक समय के लिए रुकना। भारत में एक बड़ी मात्रा में छोटे-छोटे अबोध बालक एक ही कक्षा में एक से अधिक वर्ष के लिए रुक जाते हैं। इस क्षति के सम्बन्ध में श्री के. जी. मैयदेन ने निम्नलिखित आँकड़े दिये हैं-

NOTES

कक्षाएँ	उत्तीर्ण छात्रों का औसत प्रतिशत	
	1927-28 से 1935-36	1936-37 से 1944-45
	1. पहली	48.05 51.83
	2. दूसरी	69.09 68.91
	3. तीसरा	65.45 68.87
	4. चौथी	67.30 70.17
	5. पाँचवीं	59.47 65.07

इसी प्रकार मुम्बई राज्य एक सर्वेक्षण यूनेस्को द्वारा किया गया वह यह है कि 10,00,000 छात्रों ने प्राथमिक शिक्षा की प्रथम वर्ष में पहली कक्षा पास कर पाये तथा इन छात्रों में से 2,122 छात्रों ने दो वर्षों में पहली कक्षा से छूटकारा पाया तथा 1,408 छात्र तीन या तीन से अधिक वर्ष तक एक ही कक्षा में पड़े रहे। इसी सम्बन्ध में आगे ज्ञात हुआ कि 1,932 छात्रों को पहली कक्षा में पास किये बिना ही विद्यालय छोड़ देना पड़ा।

अपव्यय तथा अवरोधन के कारण (Causes of Wastage and Stagnation)

अपव्यय एवं अवरोधन के निम्नलिखित कारण हैं-

1. **आर्थिक कारण (Economic Causes) :** देश के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में जितना अपव्यय एवं अवरोधन है उसका प्राय: 50% केवल अभिभावकों की आर्थिक विषय परिस्थति है। आर्थिक कारण में महँगाई, शिक्षा का उच्च व्यय स्तर, बालकों द्वारा धनोपार्जन तथा बालिकाओं द्वारा गृह कार्य करना आदि।

2. **सामाजिक कारण (Social Causes) :** रूढ़िवादिता, अछूत-प्रथा, जाति-प्रथा, बाल-विवाह तथा पर्दा-प्रथा आदि अनेक ऐसे सामाजिक कारण हैं, जिनमें अपव्यय एवं अवरोधन को प्रोत्साहन मिलता है। अभिभावकों की अशिक्षा, समाज को कम महत्व, समाज का अभिभावकों को उचित सम्मान आदि अन्य कारण भी शामिल हैं।

3. **शैक्षिक कारण (Educational Causes) :** प्राथमिक शिक्षा अनाकर्षक, अनुपयोगी तथा अव्यावहारिक है, परिणामस्वरूप न तो छात्र ही और न अभिभावक ही इस शिक्षा के लिए इतने अधिक लालायित होते हैं। अनुभवहीन तथा अप्रशिक्षित अध्यापक, दूषित पाठ्यक्रम, अमनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियाँ, शारीरिक दण्ड, दूषित परीक्षा-प्रणाली एवं विद्यालयों का अनाकर्षक वातावरण इसमें शामिल है।

NOTES

4. **प्रशासकीय कारण (Administrative Causes) :** विभिन्न प्रशासकीय कारणों से भी अपव्यय एवं अवरोधन को बढ़ावा मिलता है। अस्पष्ट शिक्षा नीति, विद्यालयों में अवैज्ञानिक विधि द्वारा पढ़ाना, निरीक्षण का अभाव, कहीं आवश्यकता से अधिक एवं कहीं आवश्यकता से अत्यन्त कम विद्यालयों का होना तथा अनिवार्यता के नियमों का शक्ति से पालन न करना आदि ऐसे कारण हैं, जिन्हें हम प्रशासकीय कारणों में सम्मिलित कर सकते हैं।
5. **शारीरिक कारण (Physical Causes) :** विभिन्न शारीरिक तत्वों के कारण भी बालकों को प्राथमिक शिक्षा या तो छोड़ देनी पड़ती है या उन्हें एक ही कक्षा में एक वर्ष से अधिक समय के लिए रुकना पड़ता है। बीमारी, दुर्बलता, अस्वस्थता, अपरिपक्व मानसिक विकास आदि इसमें शामिल किये जाते हैं।

समाधान हेतु उपाय (Solution for Means)

उपर्युक्त कारणों के समाधान के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं-

1. **आर्थिक विषमताओं का समाधान :** वे बालक जो गरीबी के कारण पढ़ नहीं पाते हैं या फिर प्राथमिक शिक्षा को बीच में ही छोड़ देते हैं, इनके लिए निम्नलिखित उपाय किये जाने चाहिए-
   (i) फसल बोने तथा काटने के समय लम्बी छुट्टियाँ।
   (ii) नि:शुल्क शिक्षा, भोजन तथा वस्त्र देने की व्यवस्था।
   (iii) सन्ध्याकालीन विद्यालयों की व्यवस्था श्रमिक बस्तियों में की जाए।
   (iv) बालकों को उस समय लम्बी छुट्टियाँ दी जायें जब अनेक अभिभावक सामाजिक रूप से व्यवसाय में व्यस्त रहते हैं।
2. **सामाजिक बुराइयों का समाधान :** इन बुराइयों को दूर करने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं-
   (i) बालकों के खाने की आदतें बदलने के लिए जन-जागरण कराया जाये।
   (ii) बाल-विवाह निषेध अधिनियम, 1930 का शक्ति के साथ पालन किया जाये।
   (iii) रूढ़िवादिता समाप्त करने के लिए व्यापक रूप से जन-आन्दोलन किये जायें।
3. **शिक्षा-प्रणाली में सुधार :** शिक्षा प्रणाली में सुधार हेतु निम्नलिखित कार्य किये जा सकते हैं-
   (i) मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियाँ अपनायी जायें।

(ii) परीक्षा प्रणाली में आवश्यक सुधार किया जाये।

(iii) अनुभवी व प्रशिक्षित अध्यापकों को नियुक्त किया जाये।

(iv) विद्यालय का वातावरण प्रदूषण रहित हो।

(v) व्यावहारिक तथा जीवन में सम्बन्धित पाठ्यक्रम निर्धारित किये जायें।

(vi) प्रति अध्यापक कक्षा में कम छात्र रखें जायें।

4. **अन्य समाधान :** कुछ अन्य समाधान निम्नलिखित हैं–

(i) विद्यालय प्रवेश को नियमित किया जाये।

(ii) अधिकाधिक प्रवेश को नियमित किया जाये।

(iii) अनिवार्य शिक्षा अधिनियमों का पालन किया जाये।

(iv) प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार प्रचार किया जाये।

(v) स्वास्थ्य निरीक्षण की उचित व्यवस्था की जाये।

NOTES

शिक्षा का अधिकार

शिक्षा जगत के इतिहास में 1 अप्रैल 2010 सदैव रेखांकित होता रहेगा। यह दिन है जिस दिन संसद द्वारा पारित निःशुल्क और अनिवार्यशिक्षा का अधि कार अधिनियम 2009 देश में लागू किया गया। शिक्षा के अधिकार की पहली मांग का लिखित इतिहास 18 मार्च 1910 है। इस दिन ब्रिटिश विध नपरिषद के समक्ष गोपाल कृष्ण गोखले ने भारत में निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान प्रस्तुत किया था।

एक सदी बीत जाने के पश्चात् आज हम यह कहने की स्थिति में हैं कि यह अधिनियम भारत के बच्चों हेतु सुखद भविष्य के लिए मील का पत्थर सिद्ध होगा।

चित्र : शिक्षा का अधिकार

शिक्षा के अधिकार के प्रावधान

इस अभिलेख में लागू अधिनियम की दो धाराओं को केन्द्र में रखकर बाल केन्द्रित संभावनाओं पर विमर्श करने की कोशिश की गई है।

धारा 17.(1) किसी भी बच्चे को शारीरिक रूप से दंडित या मानसिक उत्पीड़न नहीं किया जाएगा।

(2) जो कोई उपखण्ड (1) के प्रावधानों का उल्लघंन करता है वह व्यक्ति पर लागू होने वाले सेवा नियमों के अन्तर्गत अनुशासनात्मक कार्यवाही हेतु उत्तरदायी होगा।

धारा 30 (जी) बच्चे को भय, सदमा और चिन्ता मुक्त बनाना और उसे अपने विचारों को खुल कर व्यक्त करने में सक्षम बनाना।

इसके साथ ही इस ऐतिहासिक कानून द्वारा बच्चों को निम्नलिखित सुविधाएँ प्राप्त होंगी-

1. देश के प्रत्येक 6 से 14 साल की उम्र के बच्चे को मुफ्त शिक्षा प्राप्त होगी यानी हर बच्चा पहली से आठवीं कक्षा तक मुफ्त और अनिवार्य रूप से पढ़ेगा।
2. सभी बच्चों को घर के समीप स्कूल में दाखिला हासिल करने का अधिकार होगा।
3. सभी प्रकार के स्कूल चाहे वे सरकारी हों, अद्धसरकारी हों, सरकारी सहायताप्राप्त हों, गैर सरकारी हों, केन्द्रीय विद्यालय हों, नवोदय विद्यालय हों, सैनिक स्कूल हों, सभी तरह के स्कूल इस कानून के अन्तर्गत आएँगे।
4. एडमिशन का चक्र पूर्ण हो जाने के नाम पर बच्चे के एडमिशन को मना नहीं किया जा सकता।
5. गैरसरकारी स्कूलों को भी 25 प्रतिशत सीटें गरीब वर्ग के बच्चों को मुफ्त प्रदान करानी होंगी। जो ऐसा नहीं करेगा उसकी मान्यता रद्द की जाएंगी।
6. आवश्यक दस्तावेज (डॉक्यूमेंट्स) के अभाव में किसी बच्चे को एडमिशन देने से नहीं रोका जा सकता है।
7. सभी स्कूल शिक्षित-प्रशिक्षित अध्यापकों को ही भर्ती करेंगे और अध्यापक-छात्र अनुपात 1:40 रहेगा।

8. समस्त स्कूलों में मूलभूत सुविधाएँ होनी अनिवार्य हैं। इसमें रूम, टॉयलेट, खेल का मैदान, पीने का पानी, दोपहर का भोजन, पुस्तकालय आदि शामिल हैं।
9. स्कूल प्रवेश के लिए किसी भी प्रका का डोनेशन नहीं ले सकता। अगर इस तरह का कोई मामला सामने आया तो स्कूल पर 25,000 से 50,000 रुपये तक का जुर्माना अदा किया जाएगा।
10. निजी ट्यूशन पर पूर्ण रूप से रोक होगी और किसी बच्चे को शारीरिक सजा नहीं दी जा सकेगी।

शिक्षा के अधिकार की आवश्यकता

अधिनियम में इन धाराओं से बच्चों के कौन से अधिकार सुरक्षित हो जाते हैं बच्चे क्या कुछ प्रगति कर पाएंगे? इससे पूर्ण यह जरूरी होगा कि हम यह विमर्श करें कि आखिर इन धाराओं को शामिल करने की आवश्यकता क्यों पड़ी?

यह कहना उचित न होगा कि मौजूदा शिक्षा व्यवस्था बच्चे में अत्यधिक प्रभाव डालती है। स्कूल जाने का पहला ही दिन मासूम बच्चे को दूसरी दुनिया में जाता है। अमूमन हर बच्चे के ख्यालों में स्कूल की वह अवधारणा होती ही नहीं। जिसे मन में संजोकर वह खुशी-खुशी स्कूल जाता है। इससे कई बच्चे ऐसे हैं जो पहले दिन स्कूल जाने से इंकार कर देते हैं। इसका अर्थसीधा सा है। अधिकार स्कूलों का कार्य-व्यवहार ऐसा है, जो बच्चों में अपनत्वपैदा नहीं करता। यह तो संकेत भर है। प्रत्येक साल परीक्षा से पहले और परीक्षापरिणाम के बाद बच्चों पर क्या गुजरती है। यह किसी से छिपा नहीं है। यही नहीं हर रोज न जाने कितने बच्चों की पवित्र भावनाओं का विचारों का और आदतों का कक्षा-कक्ष में गला घोंटा जाता है।

उपरोक्त वर्णित परिस्थितियों से यह महसूस किया जा सकता है कि बहुत से कारणों में से नीचे दिये गए कुछ हें, जिनकी वजह से अधिनियम में बच्चे को भयमुक्त शिक्षा प्रदान किये जाने का स्पष्ट वर्णन किया गया है-

- स्कूल में प्रवेश देने से पहले प्रबंधन-शिक्षक बच्चे से परीक्षा-साक्षात्कार असहज बातचीत की जात रही है। एक तरह से छंटनी जैसा का किया जाता रहा है। कुल मिलाकर निष्पक्ष और पारदर्शिता का भाव न्यून रहा है।
- वंचित बच्चे और कमजोर वर्ग के बच्चे परिवेशगत और रूढ़िगत कुपरंपराओं के चलते स्वयं ही असहज पाते रहे हैं। हलके से दबाव

NOTES

तथा कठोर अनुशासनात्मक कार्य वाही के संकेत मात्र से स्वयं ही असहज होते रहे हैं।

- लैंगिक रूप से तथा सामाजिक स्तर पर भी विविध वर्ग-जाति के बच्चों को स्कूल की चाहरदीवारी के भीतर तनाव का सामना करना पड़ता रहा है।
- कई बार स्कूल में पिटाई से तंग आकर कई बच्चे स्वयं ही स्कूल छोड़ते रहे हैं। वहीं कई अभिभावक अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते हैं अथवा स्कूल भेजना बंद कर देते हैं।
- विकलांग और मानसिक तौर पर आसामान्य बच्चों के साथ कक्षा-कक्ष में जाने-अनजाने में ऐसा व्यवहार किया जाता रहा है, जिसके कारण थक-हार कर ऐसे बच्चे शाला त्याग देते हैं।
- परिस्थितियों के चलते कई बच्चे एक सत्र में कई बार अनुपस्थिति रहते आए हैं। कठोर नियम के चलते उनका नाम काट दिया जाता है। अनवरत् उपस्थिति की विवशता की मानसिक स्थिति का सामना करते-करते कई बच्चों को स्कूल से हटादिया जाता रहा है। इस तरह के स्थाई विच्छेदन के लिए प्रचलित संज्ञाएं भी बेहद निराशाजनक रही हैं। 'तेरा नाम काट दिया गया है', 'तूझे स्कूल से निकाल दिया है', 'टी.सी. काट कर हाथ में दे दी जाएगी', 'अब स्कूल मत आना', जैसे जुमले आए दिन बच्चे सुनते रहते रहे हैं।
- स्कूल में मानसिक तथा शारीरिक प्रताड़ना के चलते कई बच्चे आजीवन के लिए अपना आत्मविश्वास खो देते हैं। इस प्रताड़ना के कक्षा-कक्षों में ही ऐसी प्रतिस्पर्धा जन्म ले लेती है, जिसमें बच्चे असहयोग और व्यक्तिवादी प्रगति की ओर उन्मुख हो जाते हैं।
- अभी तक बच्चों की शिकायतों को सुना नही नहीं जाता था। यदि हाँ भी तो स्कूल प्रबंधन स्तर पर ही उसका अस्थाई निवारण कर दिया जाता था। शिकायतों के मूल में जाने का प्राय: प्रयास ही नहीं किया जाता था भेदभाव, प्रवेश न देने के मामले और पिटाई के हजारों प्रकरण स्कूल से बाहर जाते ही नहीं थे।
- राज्यों में बाल अधिकारों की सुरक्षा के राज्य आयोग धीमी चाल से चलते आए हैं। बहुत कम मामले ही इन आयोग तक पहुँचते हैं। स्कूल प्रबंधन ऐसा वातावरण बनाने में जब तक सफल रहा है कि अब तक पीड़ीत बच्चे या उनके अभिभावक आयोगतक शिकायतें प्राय: ले जाते ही नहीं हैं।

- विद्यालयी बच्चों के मामलों में अब तक गैर-सरकारी संगठन तथा जागरूक नागरिक प्राय: कम ही रुचि लेते रहे हैं। स्कूल में बच्चों के हितों को लेकर अंगुलियों में गिनने योग्य ही संगठन हैं जो बहुत ही कम अवसरों पर शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों के अधिकारों के प्रचार-प्रसार की बात करते रहे हैं। ऐसे बहुत कम मामले हैं, जिनमें इन गैर सरकारी संगठनों ने बच्चों के अधिकारों के हनन के सम्बन्ध में पैरवी की हो।

- अब तक स्कूल केवल पढ़ने-पढ़ाने का केन्द्र रहे हैं। अब यह अधि नियम स्कूल को बाध्य करता है कि वह बाल केन्द्रित भावना के अनुरूप कार्य करे। कुल मिलकार स्कूल अब तक बच्चों की बेहतर देखभाल करने के केन्द्र तो नहीं बन सके हैं।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि मौजूदा शिक्षा व्यवस्था में कई झोल हैं। फलस्वरूप शिक्षा के अधिकार में इन खामियों-कमियों-असफलताओं कमजोर पक्षों को दूर करने के लिए कुछ बाध्यताएं रखी गई हैं आशा की जाती है कि यह अधिनियम काफी हद तक बाल मन: स्थिति को समझते हुए ही तैयार किया गया है। यदि समाज, शिक्षक और अभिभावक अधिनियम की मूलभावना का सम्मान करते हुए बच्चे के साथ सुगमकर्ता के रूप में, दोस्त के रूप में और एक सहयोगी के रूप में पेश आएंगे तो निश्चित रूप से बाल जीवन सुखद होगा और यही बच्चे राष्ट्र की प्रगति में आगे चलकर महत्वपूर्ण योगदान दे सकेंगे।

शिक्षा के अधिकार का महत्त्व

इस अधिनियम में शामिल की गई धाराओं के बाद हम ऐसी आशा रखते हैं कि शिक्षा तथा शिक्षण के बहुत सारे पक्षों में आशातीत सफलता प्राप्त होगी। यही नहीं बच्चे, बाल जीवन और स्कूल से जुड़ी कई समस्याएँ धीरे-धीरे हाशिए पर चली जाएंगी। विशेष रूप से निम्नांकित परिवर्तन हैं, जो इस अधि नियम का पालन करने पर हमें समाज में स्कूल में तथा घर परिवार में धीरे-ध ीरे दिखाई देंगे।

i. समाज में फैली जातिगत और सामुदायिक असमानता आखिरकार दूर होगी।

ii. शिक्षक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए अपने कार्य व्यवहार में परिवर्तन लाएंगे।

iii. सभी के लिए स्कूल के द्वार खुलेंगे और स्कूल विविधताओं से भरे बच्चों की एक पौधशाला के रूप में दिखाई देंगे।

NOTES

iv. स्कूल न केवल शिक्षा के औपचारिक केन्द्र रहेंगे बल्कि उचित देखभाल और सुरक्षित संस्थान के रूप में स्थापित होंगे। यही नहीं डर के अभाव में स्वतः ही बच्चों की नियमित उपस्थिति रहेगी।

v. स्कूल शिक्षा प्राप्त करने का ऐसा आनन्दालय होगा जहां निष्पक्षता, पारदर्शिता और असमानता रहित नियम के साथ बच्चे सहभागिता करेंगे।

vi. किसी एक भी बच्चे के मन में कभी यह बात घर नहीं करेगी कि स्कूल में समान अवसर नहीं दिये जाते। पर्याप्त अवसर नहीं मिलते।

vii. बच्चे स्कूल में मिल रही शिक्षा पर खुद भी टिप्पणी कर सकेंगे। स्कूल से कई मसलों पर बच्चे अब खुल कर अपनी राय दे सकेंगे। यह सब इसलिए हो सकेगा कि अब बच्चों के मन से मारपीट-पिटाई और दण्ड का भय नहीं रहेगा।

viii. परिवार के बाद स्कूल ही दूसरा ऐसा बड़ा क्षेत्र है जो बच्चों पर सर्वाधिक प्रभाव डालता है। यदि स्कूल भय रहित, दण्डरहित होगा तो निश्चित ही विद्यालय आनंदालय बन जायेगा।

ix. यह ऐतिहासिक पहल है कि बच्चे स्कूल में अब ऐसी शिक्षा के हकदार हैं, जो शिक्षक के द्वारा उनके व्यक्तित्व में पूर्ण निखार लाने में संपूर्णरूप से जिम्मेदारी निभाएगा।

x. शारीरिक रूप से दंडित करने तथा मानसिक पीड़ा पहुंचाने के स्कूली मामले खत्म हो जाएंगे। इससे स्कूल में बच्चे में सीखने की गति बढ़ेगी। बच्चों में स्वतः सीखने की पृवत्ति का विकास होगा।

xi. अब विद्यार्थियों में शिक्षक की सहायता से समग्रता से सोचने, कारण जानने, सीखने की क्षमता बढ़ाने, दूसरों का सम्मान करने तथा समानता का भाव मन में संजोने में आशातीत वृद्धि होगी।

xii. इसमें कोई दो राय नहीं कि निकट भविष्य में शिक्षण संस्थान बच्चों के लिए सबसे सुरक्षित एवं संरक्षित केन्द्र माने जाएंगे। जहां बच्चे सुकून से अपनी समझ विकसित करेंगे। बाल मैत्रीपूर्ण शिक्षा और स्वयं करके सीखने के साथ-साथ उनकी अभिव्यक्त करने की क्षमता का भी समग्र विकास होगा।

xiii. आज कई शिक्षण संस्थाएं छात्र उत्पीड़न-दण्ड-भव के कारण विवादों में आती रही है। अब जब अधिनियम उपरोक्त धाराओं के क्रम में बच्चों के साथ नम्रता से पेश आने की सिफारिश ही नहीं करता बल्कि

शिक्षकों पर बाध्यकारी है। इसके भी दूरगामी न्यायालय आदि के प्रकरणों से मुक्त होकर स्वाध्याय तथा अध्यापन में अधिक समय दे सकेंगे।

xiv. बच्चों को सजा न देने, उन्हें भयभीत न करने को लेकर शिक्षकों और शिक्षण संस्थाओं में वर्तमान में जो संशय है, वह भी कमोबेश धीरे-ध ीरे दूर होता चला जाएगा। दुनिया तेजी से परिवर्तित हो रही है। शिक्षक को भी आ रहे इस परिवर्तन के चलते अपनी शिक्षण पद्धति भी बदलनी होगी। यकीनन इस परिवर्तन से शिक्षकों की लोकप्रियता ही बढ़ेगी।

xv. बच्चों को भयमुक्त रखने, उन्हें मानसिक रूप से स्वस्थ रखने की कवायद में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है।

xvi. शिक्षक के आचरण में सख्ती की जगह मैत्रीपूर्ण व्यवहार, कड़े अनुशासन की जगह लचीली व्यवस्था, बच्चों को चिन्ता से उनमुक्त रखने से परिणाम यह होगा कि समाज में शिक्षक की आज की भूमिका भी परिवर्तित हो जाएगी।

xvii. भविष्य में समाज शिक्षक को बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा और निगरानी का महत्वपूर्ण हिस्सा मानने लगेगा। यह प्रत्येक शिक्षक के लिए गौरव की बात होगी।

xviii. यह कहना गलत होगा कि भय के बिना बच्चे सीखते नहीं है। शोध बताते हैं कि भयमुक्त वातावरण में बच्चा सहजता से तथा तीव्रता से सीखता है। यही नहीं भय और दबाव के मुक्त कक्षा-कक्ष में शिक्षक की शिक्षण शैली अधिक प्रभावशाली और गुणवत्तापरक होती है।

xix. भय एवं दण्ड के अभाव में बच्चों में सीखने की एक समान सामर्थ्य को बल मिलेगा। शिक्षाविद् मानते भी हैं कि बच्चों में सीखने के लिए एक समानसामर्थ्य होती हैं। लेकिन बेहतर परिणाम से यदि बच्चे पिछड़ रहे हैं तो यह समस्या बच्चों के साथ नहीं है, बल्कि भिन्न वातावरण, अभियमित व्यवहार और शिक्षण का बहुआयामी तरीका न होने से उत्पन्न हुई है। इसके पीछे कहीं ने कहीं मनोवैज्ञानिक, मानसिक दबाव तथा भय भी कारक होते हैं। भयमुक्त वातावरण में बच्चों की सीखने की सामर्थ्य बढ़ेगी।

यह परिणाम जो उपरोक्त इस अधिनियम के पक्ष में दिये गए हैं उदाहरण मात्र हैं। सटीक तथा वृहद कारण तो धीरे-धीरे अब कक्षा-कक्ष से समक्ष आएंगे। सकारात्मक शिक्षकों की भी यह जिम्मेदारी है कि वह भयमुक्त वातावरण से

NOTES

बच्चों में जो भी परिवर्तन देख रहे हैं, उसका प्रचार-प्रसार करें। आशा की जानी चाहिए कि किसी भी शिक्षक के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही इस आशय से नहीं होगी कि उस शिक्षक ने अधिनियम का उल्लंघन करते हुए बच्चों को दण्ड दिया अथवा मानसिक पीड़ा पहुंचाई। यही इस अधिनियम की सफलता भी होगी।

शालेय शिक्षा का लोकव्यापीकरण (Universalization of School Education)

शिक्षा का जन-जन तक प्रचार एवं प्रसार करना ही शिक्षा का लोकयापीकरण है। भारत जैसे जनतान्त्रिक राष्ट्र में शिक्षा के लोकव्यापीकरण का महत्व और भी अधिक है क्योंकि शिक्षा ही सफल जनतंत्र का ठोस आधार तैयार करती है।

शिक्षा का लोकव्यापीकरण : लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए शिक्षित नागरिकों की आवश्यकता है। लोकतंत्रीय देशों में प्रत्येक व्यक्ति को प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करना अनिवार्य माना गया है। जब भारत 1947 में स्वतंत्र हुआ तब उसकी जनसंख्या का 85 प्रतिशत भाग निरक्षर था तथा 6-11 आयु वर्ग के केवल 31 प्रतिशत बच्चे विद्यालयों में थे। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने संविधान में यह प्रावधान किया कि राज्य को 14 वर्ष तक के सभी बच्चों की नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयत्न करना चाहिये तथा इसकी पूर्ति 1960 तक हो जानी चाहिये। लेकिन इसमें पर्याप्त साधनों की कमी, जनसंख्या में भारी वृद्धि, लड़कियों की शिक्षा में रूकावटें, पिछड़े वर्गों के बच्चों की बहुसंख्या, लोगों की सामान्य गरीबी तथा माता-पिता की निरक्षरता जैसी कठिनाइयों एवं बाधाओं के कारण संविधान के निर्देश की पूर्ति आज तक नहीं हो पाई। चारों ओर से निर्देश की पूर्ति की मांग होती रही है। यह मांग सामाजिक न्याय तथा लोकतंत्र दोनों ही दृष्टिकोण से अत्यन्त आवश्यक है। अत: वर्तमान समय में प्रत्येक बच्चे के लिए नि:शुल्क तथा सार्वजनिक शिक्षा सबसे अग्रता वाला शैक्षिक लक्ष्य है।

शिक्षा के लोकव्यापीकरण की अवधारणा : लोकव्यापीकरण का तात्पर्य समाज के सभी वर्गों के लिये जन-जन तक शिक्षा की पहुंच सुनिश्चित करना है। प्रारम्भिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लिए चार बातों का होना आवश्यक है-

- **पहुँच (Access) :** राज्य के निर्धारित मापदण्ड के अनुसार प्रत्येक बस्ती में एक किलोमीटर की परिधि में प्राथमिक शिक्षा की सुविधा तथा प्रत्येक बस्ती को तीन किलोमीटर की परिधि में माध्यमिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराना।

- **नामांकन (Enrolment) :** समस्त छः से चौदह वर्ष के बच्चों को शालाओं में प्रवेश कराना।
- **ठहराव (Retention) :** अध्ययनरत बच्चों को शालाओं में वर्षभर नियमित उपस्थिति।
- **सफलता (Success) :** शालाओं में प्रवेश एवं नियमित उपस्थित बच्चों के शैक्षिक उपलब्धि में गुणवत्ता युक्त वृद्धि करना। अर्थात्

शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लिए हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है-

(अ) विद्यालयी सुविधाओं को लोकव्यापी बनाना।

(ब) नामांकन को लोकव्यापी बनाना।

(स) छात्रों की निर्धारित अवधि तक स्कूल में रखना।

(द) शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना।

(अ) विद्यालयी सुविधाओं को लोकव्यापी बनाना : सन् 1950 से इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किये गये हैं। लेकिन जनसंख्या के विस्फोट ने सभी प्रयासों एवं उपलब्धियों को अर्थहीन बना दिया है। सीमित साधनों के कारण हम जनसंख्या वृद्धि गति के साथ विद्यालयी सुविधाओं को प्रदान करने में असमर्थ रहे। 1981 की जनगणना के अनुसार भारत, 5,57,117 पूर्ण रूप से बसे तथा 48,107 अर्द्ध बसे ग्राम थे। इसमें से 3,18,611 ग्राम ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या 500 से कम है। अखिल भारतीय द्वितीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार 2,40,048 ग्रामों में प्राथमिक विद्यालय नहीं थे। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लिए अभी हमें देश के सुदूरतम क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयों (मिडिल या जूनियर हाईस्कूलों) की व्यवस्था करनी है। साथ ही उन छात्रों के लिए भी विद्यालयी सुविधाओं की व्यवस्था करनी है जो शाला-त्यागी (Drop-out) है। लड़कियों के लिए भी अलग विद्यालयों की व्यवस्था करनी है, क्योंकि बहुत से क्षेत्रों की सामाजिक परम्पराएँ उनको लड़कों के साथ अध्ययन करने की अनुमति प्रदान नहीं करती है। फिर भी वर्तमान स्थिति में विद्यालयों तक पहुँच को काफी हद तक लोकव्यापी कर लिया गया है। सर्वशिक्षा अभियान तथा आर.टी.ई. 2009 के अन्तर्गत विद्यालयीन सुविधाओं का लोकव्यापीकरण किया जा रहा है।

(ब) **नामांकन को लोकव्यापी बनाना :** शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लिए सभी क्षेत्रों के बच्चों के लिए विद्यालयी सुविधाएँ प्रदान कर देना ही आवश्यक नहीं है बल्कि इसके साथ-साथ नामांकनों की संख्या बढ़ाने का प्रयास भी करना आवश्यक है। नामांकन का लोकव्यापीकरण न होने का प्रमुख कारण बच्चों की आर्थिक स्थिति का खराब होना है। जो अपने माता-पिता की जीतिकोपार्जन में सहायता करते हैं। वे विद्यालय जाने की बजाय अपने परिवार की आय की पूर्ति के लिए खेतों, दुकानों तथा कारखानों में कार्य करते हैं। लड़कियाँ जीविकोपार्जन में प्रत्यक्ष रूप से सहायता न देकर घर के कामकाज तथा छोटे-भाई-बहिनों की देखभाल करती हैं। ऐसे बच्चे विद्यालय जाने में असमर्थ रहते हैं क्योंकि इनको परिवार की दृष्टि से किसी न किसी कार्य के लिए आवश्यक समझा जाता है। साथ ही माता-पिता की उदासीनता तथा अप्रासांगिक तथा नीरस विद्यालय पाठ्यक्रम और सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ नामांकन के लोकव्यापीकरण के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती हैं।

(स) **छात्रों को निर्धारित अवधि तक स्कूल में रखना (ठहराव) :** विद्यालय में हर बच्चे का नामांकन करने के पश्चात् यह देखना आवश्यक है कि वह सालभर नियमित रूप से विद्यालय में उपस्थिति रहकर प्रगति करता रहे अर्थात् अवरोध न आने पाये तथा वह विहित आयु तथा कक्षा तक अपना अध्ययन पूरा किये बिना स्कूल न छोड़े। लोकव्यापीकरण की प्रक्रिया में अपव्यय तथा अवरोध महत्वपूर्ण है। आप यह जानकर आश्चर्य चकित हो जायेंगे कि कक्षा 1 में प्रवेश करने वाले 100 बच्चों में से कठिनाई से 40 बच्चे कक्षा 6 पास कर पाते थे तथा इनमें से 25 प्रतिशत कक्षा 8 पास कर पाते थे। इस प्रकार कक्षा 5 तथा 60 प्रतिशत और कक्षा 8 तक 75 प्रतिशत अपव्यय हो जाता था। अवरोधन छात्रों तथा उनके अभिभावकों पर बड़ा ही दूषित प्रभाव डालता था। यह स्वयं में अपव्यय है क्योंकि इससे समय, शक्ति तथा संसाधन पर्याप्त मात्रा में समाप्त हो जाते हैं। आज सर्वशिक्षा अभियान व आर.टी.ई. 2009 के कारण अपव्यय एवं अवरोधन में कमी आई है। प्रारम्भिक स्तर पर होने वाले अपव्यय तथा अवरोध के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

1. छात्रों की आयु-रचना में विषमरूपता।
2. कई राज्यों में यह नियम है कि नये दाखिले स्कूल सत्र के पहले महीने में न करके पूरे साल करते रहना।

3. उपस्थिति में अनियमितता।
4. विद्यालय में तथा बच्चों के पास शैक्षिक उपकरणों की कमी।
5. कक्षाओं में बहुत ज्यादा बालकों की संख्या।
6. पुस्तकीय शिक्षा।
7. अनुपयुक्त पाठ्यक्रम यह छात्रों के जीवन तथा उनकी आवश्यकताओं एवं समस्याओं से पूर्ण रूप से सम्बन्धित नहीं है।
8. खेल-कूद में पढ़ाने की तकनीकें अपनाने में अध्यापकों की असमर्थता, जो बच्चों को रोचकता के साथ विद्यालय जीवन का अभ्यस्त बनाने में सहायता प्रदान कर सकती है।
9. परीक्षाओं की गलत विधि जिसे वर्तमान में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के द्वारा दूर किया जा रहा है।
10. शिक्षक की उदासीनता उसकी अपर्याप्त तैयारी तथा शिक्षण की गलत प्रविधियाँ।
11. विद्यालय आनन्दरहित का अस्वस्थ वातावरण। आर.टी.ई - 2009 में कक्षा का वातावरण आनन्ददायी रखने का सतत् प्रयास किया जा रहा है।

(द) **शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार :** शालाओं में दर्ज एवं नियमित उपस्थित छात्र अपनी-अपनी कक्षाओं के लिए निर्धारित दक्षताओं का न्यूनतम अधिगम स्तर प्राप्त करे तथा उपब्धि स्तर में गुणात्मक सुधार हो। अतः सभी स्तर की शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार का प्रयास किया जाना होगा। एक ऐसी शिक्षा गुणवत्ता विकसित करनी होगी जो श्रम के महत्व को आत्मसात करने में सहायक हो, जो सम्प्रेषण क्षमता में वृद्धि करती हो, जो सामाजिक तथा राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत हो, जो आर्थिक विकास में सहायक हो, जो विश्वबन्धुत्व का भाव उत्पन्न करती हो, जो आत्मविश्वास व गौरव की अनुभूति कराती हो तथा जो विघटनकारी शक्तियों का सामना करने के लिए तैयार करती हो।

- **लोकव्यापीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के उपाय :** शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लिए राज्यों की योजनाओं में महत्वपूर्ण कदम उठाने के लिए विभिन्न उपायों का सुझाव दिया गया है। ये निम्नलिखित हैं-

1. उपलब्ध सुविधाओं के प्रयोग का विस्तार करना जिनमें विद्यालय में पढ़ाई के घण्टों का समायोजन शामिल है जो स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार एक दिन में 3-4 घण्टे से अधिक न हों। आर.टी.ई. 2009 के अन्तर्गत शिक्षकों के लिए सप्ताह में 4-5 घण्टे कार्य करने का प्रावधान किया गया है।
2. नई विद्यालयी सुविधाओं की व्यवस्था जो आर्थिक रूप से व्यवहार्य तथा शैक्षिक रूप से सुसंगत हो।
3. नामांकन के लोकव्यापीकरण के लिए बच्चों को समुचित प्रोत्साहन जैसे- मध्याह्न भोजन, स्कूल की वर्दी, निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें, शिक्षा प्राप्त करने की सभी सामग्री मुफ्त में प्रदान करना और समय की कीमत के एवज में अनुसूचित जातियों के परिवारों की लड़कियों को पर्याप्त छात्रवृत्ति प्रदान करना आदि।
4. प्रत्येक बच्चे के घर से आसानी से पार करने योग्य बाधारहित दूरी पर विद्यालय की व्यवस्था करना।
5. विहित आयु के हर बच्चे का प्रचार द्वारा, समझाकर, प्रोत्साहन के साथ विद्यालयों की कक्षा 1 में नामांकन कराना।
6. 11-14 आयु-वर्ग के सभी बच्चों को जो विद्यालय नहीं जा रहे हैं तथा जो शिक्षा का प्राथमिक स्तर पूरा करके काम चलाऊ रूप से साक्षर नहीं बन पाये हैं। उनको कम से कम एक साल की साक्षरता कक्षाओं में उपस्थित होने के लिए बाध्य करना।
7. साक्षरता कक्षाओं के अतिरिक्त उक्त प्रकार के बच्चों के लिए अशंकालिक शिक्षा की व्यवस्था करना। इस अशंकालिक शिक्षा का पाठ्यक्रम लचीला हो। इसका निर्धारण बच्चों की आवश्यकताओं तथा उनके दृष्टिकोणों के अनुकूल स्वरोजगारमूलक करना होगा।
8. प्रारम्भ में अशंकालिक शिक्षा में उपस्थिति को स्वैच्छिक रखना। लेकिन धीरे-धीरे इसे बाध्यकर नियमित उपस्थिति में परिवर्तित करना।
9. कक्षा 8 तक के लिए गुणवत्ता पर सतत् व्यापक मूल्यांकन की नीति को अपनाकर, आर.टी.ई. 2009 में किसी भी छज्ञत्र को आठवीं तक किसी भी कक्षा में न रोकने की मनाही है। किसी भी छात्र को परीक्षा की असफलता के आधार पर न रोकना।

NOTES

10. औपचारिक विद्यालयों में बहु-बिन्दु प्रवेश (Multiple-pointentry) नीति को अपनाना।
11. कक्षा 1 तथा 2 में खेल-विधियों को अपनाना।
12. प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम को उन्नत बनाना। इसके लिए इसमें समाज उपयोगी उत्पादक कार्य को स्थान दिया जाये। सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई. आर.टी.) द्वारा निर्मित पाठ्यक्रम को लागू करना।

उपर्युक्त जिन उपायों को बताया गया है वे औपचारिक शिक्षा के द्वारा शिक्षा के लोकव्यापीकरण से संबंधित हैं लेकिन ऐसे बहुत से बालक हैं जो विद्यालयों से बाहर हैं और वे विद्यालयों में पुनः प्रवेश नहीं ले सकते हैं। लेकिन इन लोगों के लिए भी निर्धारित शिक्षा का होना आवश्यक है। ऐसे बच्चों के लिए अनौपचारिकेत्तर शिक्षा (Non-formal Education) पर विचार किया जाय। सम्पूर्ण देश में अनौपचारिकेत्तर शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की जाये। अनौपचारिकेत्तर शिक्षा निम्नलिखित तीन प्रकार के बच्चों के लिए उपलब्ध करायी जाये-

(अ) समाज के निर्बल वर्गों के बच्चों के लिये;

(ब) 6-14 आयु-वर्ग की लड़कियों के लिये;

(स) 6-14 आयु-वर्ग के उन बच्चों (लड़कों व लड़कियों) के लिए जो आर्थिक कार्यों में लये हुये।

देशव्यापी, निरक्षरता तथा औपचारिक विद्यालयों में अपव्यय तथा अपरोधन की भारी मात्रा को देखते हुए साक्षरता को बढ़ाने तथा लोकव्यापीकरण के लिए अनौपचारिकेत्तर शिक्षा की विभिन्न योजनाएँ चालू की गई थी। शिक्षा-आयोग (1964-66) तथा राष्ट्रीय शिक्षा-नीति (1986) के अनुसार अनौपचारिकेत्तर शिक्षा-व्यवस्था को प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा का अटूट अंग माना गया था। यह निश्चित है कि मात्र औपचारिक शिक्षा-पद्धति के द्वारा देश के सभी बच्चों को शिक्षित नहीं किया जा सकता है। इस कारण विद्यालय स्तर पर अनौपचारिकेत्तर शिक्षा का महत्व तथा बिन्दु प्रवेश-प्रणाली जैसी व्यवस्थाओं को लागू किया गया। अनेक माध्यमिक शिक्षा-मण्डलों ने काफी समय से पत्राचार द्वारा शिक्षा को सफलतापूर्वक अपनाया है। इस प्रकार आशंकालीन विद्यालय भी स्थापित किये गये जो प्राय: सायंकालीन या फिर दो या तीन पारियों में चलते हैं। बहुबिन्दु प्रवेश-विधि अभी केवल प्रयोगात्मक स्तर पर ही है। इस दिशा में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने

NOTES

अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र भूमियादार में प्रारम्भ किया था जिसका अन्य क्षेत्रों तथा राज्यों में विस्तार किया गया था।

अनौपचारिकेत्तर शिक्षा को आकाशवाणी द्वारा विशेष शैक्षिक कार्यक्रम के द्वारा लागू किया गया था। साथ ही आज इसके लिए दूरदर्शन का भी प्रयोग किाय जाने लगा। विद्यालय-स्तर के लिए महाविद्यालयों, ऐच्छिक संगठनों आदि के द्वारा भी अनौपचारिकेत्तर शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रम चलाये जाते हैं। एस.एन. डी.टी. महिला विश्वविद्यालय, बम्बई, डी.ई.आई. (डीम्ड विश्वविद्यालय) दयालबाग, भारतीय महिला-शिक्षा-परिषद् तथा अन्य संस्थाएँ अशिक्षित एवं कामगर महिलाओं एवं शाला त्यागी बच्चों के लिए अनौपचारिकेत्तर शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रम चला रही हैं।

सन् 1985 से संचालित इंदिरागाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू), उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एवं राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयीन संस्थान (NIOS) विद्यालयीन शिक्षा के क्षेत्र में दूरस्थ-शिक्षा के द्वारा जन-जन तक शिक्षा के लोकव्यापीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

परीक्षापयोगी प्रश्न

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. क

NOTES

2 गुणवत्ता एवं समता के पहलू (Issues of Quality and Equity)

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- शैक्षिक समानता के अवसर व शिक्षा में उत्कृष्टता सम्बन्धी मुद्द, गुणवत्ता व संख्यात्मक सम्बन्धी शैक्षिक पहलू व समता
- शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ
- भारत में शैक्षिक अवसरों की समानता
- शिक्षा में समानता व उत्कृष्टता सम्बन्धी मुद्द
- संवैधानिक प्रावधान
- भारत में शिक्षा के अवसरों की विषमताएं
- शैक्षिक अवसरों की समानता की आवश्यकता
- भारत में गुणवत्ता व संख्यात्मक सम्बन्धी शैक्षिक पहलू व समता उपाय
- विश्व मानवीय अधिकार
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- शैक्षिक समानता के अवसर व शिक्षा में उत्कृष्टता सम्बन्धी मुद्द, गुणवत्ता व संख्यात्मक सम्बन्धी शैक्षिक पहलू व समता
- शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ
- भारत में शैक्षिक अवसरों की समानता
- शिक्षा में समानता व उत्कृष्टता सम्बन्धी मुद्द
- संवैधानिक प्रावधान
- भारत में शिक्षा के अवसरों की विषमताएं
- शैक्षिक अवसरों की समानता की आवश्यकता
- भारत में गुणवत्ता व संख्यात्मक सम्बन्धी शैक्षिक पहलू व समता उपाय
- विश्व मानवीय अधिकार

NOTES

प्राक्कथन

समानता की धारणा लोकतंत्रीय धारणा है। लोकतंत्र स्वतंत्रता, समानता और शान्ति के तरीकों में विश्वास करता है। युद्ध तथा राजनैतिक अथवा अन्य प्रकार के तनावों के बीच समाज की प्रगति नहीं हो सकती। लोकतंत्रीय का यह विश्वास है कि पारस्परिक द्वेष, संघर्ष व तनाव की अवस्थाएं शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाई जा सकती हैं। युद्ध की अपेक्षा शान्ति की विजय अधिक चिरस्थायी है। सहयोग, सहिष्णुता, पारस्परिक आदान-प्रदान, न्याय और दृष्टिकोण की विशालता को सामाजिक समस्याओं के समाधान करने तथा अच्छे मानवीय सम्बंधों को स्थापित करने में समर्थ होता है। लोकतंत्र विरोध ी विचारों व दृष्टिकोणों की भिन्नताओं का अनादर नहीं आदर करता है। लोकतंत्र का यह विश्वास है कि विचारों व दृष्टिकोणों के अन्तरों का आदर होना, यही उनके सामान्य लक्षणों तथा गुणों का मिलन होता है और विरोध समन्वय की ओर अग्रसर होता है।

स्वतंत्रता एवं समानता के सम्बंध में भ्रमपूर्ण विचार होने के कारण लोग बहुध ा उनका गलत अर्थ निकालते हैं और उनका दुरुपयोग करते हैं। इन दोनों का अर्थ लोग अपने स्वार्थवश गलत लगा बैठते हैं। स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् हम स्वयं अपने देश में ही देख रहे हैं कि स्वतंत्रता का कितना गलत अर्थ लगाया जा रहा है तथा उसका कितना दुरूपयोग हो रहा है। हम स्वतंत्रता को उच्छृंखलता समझ बैठे हैं। हम यही नहीं अनुभव करते कि 'स्वतंत्र' होना अपने ऊपर स्वयं द्वारा अधिक नियंत्रण चाहता है। परतंत्र होने में तो दूसरे का नियंत्रण हमें स्वीकार करना पड़ता है और यदि हम अपराध करते हैं तो हमें दण्ड भोगना पड़ता है। स्वतंत्र होने पर हमें अपना नियंत्रण स्वीकार करना पड़ता है तथा यदि हम ऐसा नहीं करते तो उसके दुष्परिणाम हम को ही भोगने पड़ते हैं। नियंत्रण के बिना किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं चल सकती, चाहे वह नियंत्रण दूसरों का हो तो परतंत्रता की अवस्था में होता है, तथा चाहे वह अपना हो तो स्वतंत्रता की अवस्था में होता है। यह मानव दृष्टिकोण की संकीर्णता एवं कठोरता है।

वास्तविक स्वतंत्रता दोनों सिरों के मिलन बिन्दु पर है। स्वतंत्रता अनुशासनहीनता नहीं है बल्कि स्वतंत्रता दूसरों की स्वतंत्रता को हानि न पहुँचाये यह आवश्यक है। लोकतंत्रीय स्वतंत्रता इसी बीच के मिलन बिन्दु पर खड़ी है। लोकतंत्रीय व्यवस्था के पैर दोनों ओर हैं और व दोनों पर चढ़कर ही चलती है, एक पर नहीं चढ़कर वह उसी प्रकार नहीं चल सकती जिस तरह एक पहिए पर गाड़ी नहीं चल सकती। इसी प्रकार के भ्रम समानता के सम्बन्ध में भी हैं और लोग इसका आशय अधिकारों और अवसरों तथा सुविधाओं के समान विभाजन से

लगाते हैं चाहे कोई उनका लाभ उठा सके अथवा नहीं। सब मनुष्यों में एक सी शक्ति नहीं होती और सब लोग अवसरों व सुविधाओं से समान लाभ नहीं उठा सकते। अतः सबको बराबर बांट कर देने का परिणाम यह होगा कि कुछ उनका लाभ उठा सकेंगे तथा कुछ नहीं, कुछ उनका दुरूपयोग करेंगे तो कुछ को अधिक अवसरों व सुविधाओं की आवश्यकता होगी। समानता का आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को उतनी सुविधा या अवसर दिए जाएं जिनका वह लाभ उठा सकें तथा यदि वह उनसे लाभ न उठा सकें तो उसे वे उतनी मात्रा में न दिए जाएं। समानता का अर्थ सबके लिए समान नीति से है, सबको समान बनाने से नहीं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है–

हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में .... एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत तथा आत्मसमर्पित करते हैं। बाद में इसमें समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता भी शामिल कर लिये गये।

यह प्रस्तावना हमारे राष्ट्रीय जीवन, राजनीति तथा शैक्षिक उद्देश्यों या मूल्यों को परिभाषित करने वाले शब्द-प्रतीक हैं।

शैक्षिक समानता के अवसर व शिक्षा में उत्कृष्टता सम्बन्धी मुद्दे, गुणात्मक, परिमाणात्मक व समता सम्बन्धी शैक्षिक पहलू

शैक्षिक अवसरों की समानता का विचार लोकतंत्र की देन है। लोकतंत्र स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धान्तों पर आधारित होता है। यह सामाजिक न्याय का पक्षधर है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्मान करता है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के स्वतंत्र अवसर देता है। लोकतंत्रीय इस भावना के आधार पर सर्वप्रथम 1870 में ब्रिटेन में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य किया गया तथा उसे सर्वसुलभ बनाया गया। भारत में इस प्रकार का विचार सर्वप्रथम ब्रिटिश शासन काल में उठा। 15 अगस्त, 1947 को हमारा देश स्वतंत्र हुआ तथा 26 जनवरी, 1950 को हमारे देश में हमारा अपना संविधान लागू हुआ। इस संदर्भ में हमारे संविधान में दो घोषणाऐं की गई हैं। संविधान के अनुच्छेद 45 में यह घोषणा की गई है कि राज्य इस संविधान के लागू होने के समय से 10 वर्ष के अन्दर 14 वर्ष तक की आयु

के सभी बच्चों की अनिवर्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेगा तथा इसके अनुच्छेद 29 में यह घोषणा की गई है कि राज्य द्वारा पोषित तथा आर्थिक सहायता प्राप्त किसी भी शैक्षिक संस्थान में किसी भी बच्चे को ध र्म, मूल, वंश एवं जाति के आधार पर प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा। यह बात दूसरी है कि हम इसे अभी तक अपने सही रूप में अंजाम तक नहीं पहुँचा सके हैं। भारत में इस समस्या पर सर्वप्रथम विचार किया कोठारी आयोग (1964-66) ने। उसने सुझाव दिया कि शैक्षिक अवसरों की समान सुविधा प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम 6 से 14 आयुवर्ग के बच्चों की कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा अनिवार्य एवं नि:शुल्क की जाए तथा किसी भी वर्ग के बच्चों की इस शिक्षा प्राप्त करने में आने वाली समस्याओं का समाधान किया जाए।

शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ

शैक्षिक अवसरों की समानता का अभिप्राय है देश के सभी बच्चों को बिना किसी भेद-भाव के शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर तथा समान सुविध एं देना परन्तु समान अवसर और समान सुविधाओं के सम्बंध में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। कुछ विद्वान शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर और समान सुविधाओं का अर्थ देश के सभी बच्चों के लिए एक समान शिक्षा अर्थात् समान पाठ्यक्रम से लगाते हैं। आप ही विचार करें कि विविधता पूर्ण इस देश भारत में ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है। फिर सामान्य शिक्षा तो सबके लिए समान हो सकती है और होती भी है, लेकिन विशिष्ट शिक्षा तो बच्चों की रूचि, रूझान, योग्यता तथा क्षमता के आधार पर ही दी जा सकती है। इसके विपरीत कुछ विद्वान् इसका अर्थ शिक्षा संस्थाओं के समान प से लेते हैं। वे सरकारी, गैर सरकारी और पब्लिक स्कूलों के अन्तर को समाप्त करने के पक्ष में हैं। इनका तर्क है कि उसी दशा में सभी को शिक्षा के समान अवसर मिल सकते हैं। अन्यथा धनी वर्ग के बच्चे पब्लिक स्कूलों की अच्छी शिक्षा प्राप्त करते रहेंगे तथा निर्धन वर्ग के बच्चे सरकारी एवं गैर-सरकारी स्कूलों की निम्न स्तर की शिक्षा ही प्राप्त कर पायेंगे। शैक्षिक अवसरों की समानता से अर्थ शिक्षा की किसी भी स्तर पर सभी बच्चों को प्रवेश की सुविधा प्रदान करने से लेते हैं। इनका तर्क है कि शिक्षा मनुष्य का मौलिक अधिकार है। लेकिन यह धारणा भी गलत है। अधिकार के साथ कर्तव्य जुड़ा होता है। समान अवसरों की पीछे समान योग्यता एवं समान क्षमता का भाव निहित होता है। जहाँ तक अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की बात है उसके अवसर तो सभी को प्रदान कराना आवश्यक है लेकिन उसके आगे की शिक्षा के अवसर योग्यता एवं क्षमता के आधार पर ही प्राप्त होने चाहिए।

शिक्षा में समानता व उत्कृष्टता सम्बन्धी मुद्दे (Equality in EducationOpportunity and Excel-lence)

'समानता' शब्द से तात्पर्य उन समान परिस्थितियों से है, जिनमें सभी व्यक्तियों को विकास के सामन अवसर उपलब्ध हो और सामाजिक भेदभाव का अंत हो सके तथा सामाजिक न्याय (Social Justice) के लक्ष्य की प्राप्ति भी सम्भव हो सके। प्रसिद्ध राजनीतिविद् प्रो. लास्की के अनुसार "समानता का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाए अथवा सभी को समान वेतन दिया जाए। यदि एक पत्थर ढोने वाले का वेतन एक प्रसिद्ध गणितज्ञ या वैज्ञानिक के समान कर दिया जाए तो इससे समाज का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा। अत: समानता का अर्थ यह है कि विशेष अधिकार वाला वर्ग न रहे और सबको उन्नति के समान अवसर मिलें। "शैक्षिक अवसरों की समानता का अभिप्राय सभी के लिए समान शिक्षा नहीं है, बल्कि प्रत्येक बालक को शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, नैतिक परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा प्रदान करता है। इसका तात्पर्य राज्य द्वारा व्यक्तियों की शिक्षा के संदर्भ जाति, रूप, रंग, प्रान्तीयता तथा भाषा, धर्म आदि के मध्य असमानता न करने से भी है।

शिक्षा (Education) के क्षेत्र में 'समानता' की अवधारणा को स्थापित करने के लिए निम्नलिखित प्रयत्न किये गये हैं –

(i) एक निश्चित अवधि तक भेदभाव रहित नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था

(ii) माध्यमिक स्तर पर विभिन्नीकृत पाठ्यक्रम व्यवस्था।

(ii) उच्च स्तर पर सभी के लिए अपेक्षित शैक्षिक उन्नति की व्यवस्था ताकि वे उचित योगदान देने में सक्षम हो सकें।

शिक्षा में समानता के सूचक

शिक्षा के निम्नलिखित चार तथ्य समानता के सूचक कहे जा सकते हैं–

1. **अधिगम की समानता–** इसका सम्बंध प्रवेश के अवसर से सम्बद्ध है। योग्यता को अतिरिक्त कोई अन्य कसौटी प्रवेश के लिए नहीं होनी चाहिए। जाति, धर्म इसमें बाधा उत्पन्न न करें। कुछ समय पहले भारतीय समाज में स्त्रियों एवं शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। यह अधि गम की विवशता थी। इस असमानता को अब समाप्त कर दिया गया है।

2. **उत्तरजीवितता की समानता** – विद्यालय में प्रवेश में ही समानता न हो बल्कि छात्र स्कूल में बना रहे, वह विद्यालय छोड़ न दे, इसके लिए भी समान अवसर दिया जाना चाहिए। अनुसूचित जाति के बच्चे की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण वे बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं।
3. **स्तर की समानता** – एक निश्चित स्तर तक सभी बालक-बालिकाओं को बिना किसी असमानता के अनिवार्य शिक्षा प्राप्त हो निर्धन बालकों को विशेष सुविधा प्रदान की जाए। एक स्तर तक अनिवार्य नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था हो।
4. **परिणाम की समानता** – स्कूल छोड़ने के पश्चात् प्रत्येक बच्चे को शिक्षा के आधार पर जीवन यापन करने के समान अवसर सुलभ हों। यदि किसी वर्ग विशेष को अवसर की विषमता नजर आये तो उसे विशेष सुविधा देकर उसके लिए समान अवसर की सुलभता निश्चित की जाए। इसी सूचक के अन्तर्गत जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के लिए नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये।

उपर्युक्त चारों सूचकों में किसी-किसी समाज में चारों, किसी में कुछ कम तो किसी में कुछ अधिक की उपस्थिति दिखायी देती है। यह आवश्यक नहीं है कि चारों सूचक सदा समाज में विद्यमान ही रहें।

संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provision)

भारतीय संविधान के निम्नलिखित अनुच्छेद महत्वपूर्ण हैं–

अनुच्छेद 15- धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग व जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव किसी भी भारतीय नागरिक के साथ नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद 16- सरकारी नौकरियां सभी के लिए खुली होंगी और अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए विशेष सुविधाएं सुरक्षित स्थानों के रूप में होंगी।

अनुच्छेद 19- प्रत्येक भारतीय नागरिक को व्यवसाय या रोजगार करने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 28- शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के सम्बन्ध में किसी भेदभाव किसी के साथ नहीं बरता जायेगा।

हिन्दुओं में अस्पृश्यता निवारण की दृष्टि से संविधान के निम्नलिखित अनुच्छेद द्रष्टव्य हैं-

अनुच्छेद 25- हिन्दुओं की सार्वजनिक, धार्मिक संस्थाओं के द्वारा सभी हिन्दुओं के लिए खोलना।

अनुच्छेद 29- राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य निधि से सहायता प्राप्त किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश पर किसी भी प्रकार का प्रतिबंध निषेध।

अनुच्छेद 46- इन जातियों के शैक्षिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा और उनका सभी प्रकार के शोषण एवं सामाजिक अन्याय से बचाव।

अनुच्छेद 146- केन्द्र व राज्यों में अछूतों के कल्याण के लिए समाज कल्याण एवं अशासकीय संस्थाओं को खोलने पर जोर दिया गया है।

अनुच्छेद 244- अनुसूचित जातियों के लिए प्रशासन संबंधी विशेष व्यवस्था की गयी है।

अनुच्छेद 330 व 335- संसद तथा विधान मण्डलों में अनुसूचित जातियों को विशेष प्रतिनिधित्व मिलेगा।

संविधान के अनुसार अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण की देखरेख करने के लिए विशेष कमिश्नर की नियुक्ति की जाए जो प्रतिवर्ष राष्ट्रति को उनकी स्थिति के सम्बंध में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करे। इस महत्वपूर्ण पद पर एम.ए. श्री कांत व सुप्रसिद्ध गांधीवाद व सामाजिक, मानव शास्त्री डॉ. एन के बोस कार्यरह रहे चुके थे। प्रतिवर्ष प्रस्तुत की जाने वाली कमिश्नर की रिपोर्ट में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के जीवन में द्रुतगति से प्रभावपूर्ण परिवर्तन लाने के लिए कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये जाते रहे हैं। इन जातियों में परिवर्तन करने के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओं को प्रदान करना हमारा प्रथम कर्तव्य है और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में व्याप्त निरक्षरता को समाप्त करने के लिए अनिवार्य शिक्षा के प्रसार पर बल दिया गया। इसके लिए संविधान में भी प्रावधान किया गया कि बालक-बालिकाओं को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाये।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में प्रावधान है कि लोकतंत्र को सफल बनाने तथा उसकी सुरक्षा के लिए सभी नागरिक का शिक्षित होना अत्यन्त आवश्यक है। लोकतंत्र वह शासन पद्धति होती है जिसमें सर्वोच्च सत्ता जनता के हाथ में होती है। अब लोकतंत्र के लिए सार्वजनिक मताधिकार होना आवश्यक समझा जाता है तथा मताधिकार का समुचित प्रयोग करने के लिए मतदाता को कुछ सामान्य शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है।

भारत में शिक्षा के अवसरों की विषमताएं

शिक्षा अवसरों की विषमताओं की जतटलताओं का निम्नलिखित रूप में उल्लेख किय गया है-

1. **ग्रामीण और नगरीय विभिन्नता –** "बुद्धि, नैतिक, न्याय और घनिष्ठता की दृष्टि से शिक्षा की व्यवस्था में अधिक असमानता है। यद्यपि जनसंख्या का तीन-चौथाई भाग ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है, फिर भी उन्हें शिक्षा के लिए बहुत कम संसाधन प्राप्त हो रहे हैं। समृद्ध लोग शहरों में निजी रूप से चलायी जाने वाली अच्छी शिक्षणा संस्थाओं का लाभ लेते हैं तथा ये ही व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं में अनारक्षित स्थानों के बहुत बड़े भाग पर अधिकार कर लेते हैं,

   जबकि ग्रामीण स्कूलों की अपेक्षाकृत दयनीय दशा के कारण ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ती है।"

2. **लिंग और जाति पर आधारित विषमता–** "लड़कियों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के बच्चों ने पिछले दशक के दौरान उल्लेखनीय उन्नति की है। इसके उपरान्त भी वे शैक्षकि उपलब्धि के अंतिम सोपान पर हैं। बालिकाएं तो घर-गृहस्थी के कार्यों में सामाजिक कुरीतियों की शिकार होती हैं इनमें से अधिकांशतः पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी होने के कारण बाल्यकाल के कुपोषण, सामाजिक अकेलेपन की भावना, कार्य करने की खराब आदतें तथा बौद्धिक क्षमताओं के प्रति आत्मविश्वास अभाव के परिणामस्वरूप समुचित विकास नहीं कर सकते। वे अपने को सामान्य धारा के छात्रों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। इन मनोवैज्ञानिक दबावों के कुप्रभाव को समाप्त करने के लिए तथा उनकी योग्यताओं में बढ़ोत्तरी करने के लिए एवं समाज की प्रमुख धारा में उन्हें समन्वित करने के लिए विशेष कार्यक्रम की आवश्यकता है।"

इन शैक्षिक विषमताओं का उल्लेख क्रमबद्ध ढंग से इस प्रकार किया गया है –

i. जिन स्थानों पर प्राथमिक, माध्यमिक या कॉलेज की शिक्षा देने वाली संस्थाएं नहीं हैं, वहां के बच्चों को वैसा अवसर प्राप्त नहीं हो पाता, जैसा उन बच्चों को मिल जाता है, जिनकी बस्तियों में ये संस्थाएं होती हैं।

ii. इस देश के विभिन्न भागों में शैक्षिक विकासों में भारी असंतुलन दिखायी देता है। एक राज्य और दूसरे राज्य के शैक्षिक विकासों में बहुत बड़ा अन्तर दिखाई देता है और एक जिले तथा दूसरे जिले के विकास में और भी बड़ा अन्तर दिखायी देता है।

iii. शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक और कारण यह है कि जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग निर्धन है और बहुत थोड़ा भाग धनी। किसी

NOTES

शिक्षा-संस्था के समीप होते हुए भी गरीब परिवारों के बच्चों को वह अवसर नहीं मिलता, जो धनी परिवारों के बच्चों को प्राप्त हो जाता है।

iv. शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक तथा बड़ा दु:साध्य रूप विद्यालयों तथा कॉलेजों के अपने-अपने भिन्न स्तरों के कारण उत्पन्न होता है। जब किसी विश्वविद्यालय या वृत्तिक कॉलेज जैसी संस्था में प्रवेश उन अंकों के आधार पर दिया जाता है, जो माध्यमिक स्तर की समाप्ति पर दी गयी सार्वजनिक परीक्षा में प्राप्त हुए हां तथा प्रवेश साधारणतया इसी आधार पर होता है, तब ग्रामीण क्षेत्र के साधनहीन ग्रामीण विद्यालय में पढ़े छात्र के लिए यह कसौटी या मापदण्ड एक समान नहीं रहता।

v. घरेलू पर्यावरणों के भिन्न-भिन्न होने के कारण भी भारी विषमताएं उत्पन्न होती हैं। देहात के घर या शहरी गन्दी बस्तियों में निवास करने वाले और अनपढ़ माता-पिता की संतान को शिक्षा पाने का वह अवसर नहीं मिलता, जो उच्चतर शिक्षा पाये हुए माता-पिता के साथ रहने वाली उनकी संतान को मिलता है।

vi. भारतीय परिस्थितियों ने निम्नलिखित दो प्रकार की शैक्षिक विषमताओं को प्रमुख रूप से उत्पन्न किया है- शिक्षा के सभी स्तरों पर तथा क्षेत्रों में लड़कों एवं लड़कियों की शिक्षा में भारी अंतर उन्नति वर्ग तथा पिछड़े वर्ग अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के बीच शैक्षिक विकास का अन्तर।

11.4.2 शैक्षिक अवसरों की समानता की आवश्यकता (Need of Equality of Educational Opportunities)

वर्तमान समय में पूरा संसार मानवाधिकार के प्रति सचेत है। विश्व के सभी देशों में शिक्षा को मानव का मूल अधिकार माना है। तब किसी भी देश को शिक्षा प्राप्त करने की समान सुविधाएं होनी चाहिए। लोकतंत्रीय देशों में तो यह और भी अधिक आवश्यक है, बिना इसके लोकतंत्र अर्थहीन है। हमारे लोकतंत्रीय देश में तो इसकी और अधिक आवश्यकता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं-

1. **लोकतंत्र की रक्षा के लिए** – लोकतंत्र की सफलता उसके नागरिकों पर निर्भर होती है, उसके नागरिकों की योग्यता तथा क्षमता पर निर्भर करती है। अत: देश के प्रत्येक नागरिक को शिक्षित करना आवश्यक है। इस क्षेत्र में हमारे देश की दशा बड़ी चुनौतीपूर्ण है। पहली बात तो यह है कि इसकी जनसंख्या बहुत अधिक है और साधन अपेक्षाकृत बहुत

कम हैं। दूसरी बात यह है कि देश की आधे से अधिक जनता निर्धन है, अपने बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करने में असमर्थ है। तीसरी बात यह है कि इसकी बहुसंख्यक जनता गांवों में निवास करती है। रेगिस्तानी पहाड़ी और जंगली क्षेत्रों में रहने वालों की बहुत बड़ी संख्या है। परिणाम यह है कि शिक्षा सर्वसुलभ नहीं है। अतः आवश्यक है कि हम उपेक्षित, निर्धन और दूर-दराज में निवास करने वालों को शिक्षा सुविधाएँ प्रदान करें।

2. **व्यक्ति के वैयक्तिक विकास के लिए** – लोकतंत्र व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्मान करता है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के स्वतंत्र अवसर देता है। और हमारे देश की दशा यह है कि इसकी आध े से अधिक जनसंख्या पिछड़ी है, निर्धन है, अच्छी शिक्षा से वंचित है। यदि हम सचमुच अपने देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के अवसर प्रदान करना चाहते हैं तो पहली आवश्यकता यह है कि सभी को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर तथा सुविधाएं उपलब्ध करायी जाये।

3. **वर्ग भेद की समाप्ति के लिए** – स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व हमारे देश में शिक्षा उच्च वर्ग तक सीमित थी, परिणाम यह हुआ कि इस देश में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उच्च वर्ग का अधिकार बढ़ता गया तथा निम्न वर्ग के व्यक्ति अधिक पिछड़ते गये और वर्ग भेद बढ़ता गया। लोकतंत्र इस प्रकार के सामाजिक और आर्थिक वर्ग भेद निषेधमानता है। इस वर्ग भेद की समाप्ति के लिए सभी वर्ग के बच्चों एवं युवकों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर एवं सुविधाएं देना आवश्यक है।

4. **समाज के उन्नयन के लिए**– लोकतंत्र सामाजिक वर्गभेद का विरोधी है, वह पूरे राष्ट्र को एक समाज मानता है तथा उसे सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज के रूप में विकसित करने में विश्वास करता है और यह तब तक संभव नहीं है जब तक देश के प्रत्येक नागरिक को शिक्षित नहीं किया जाता। इसके लिए हमारे देश में शैक्षिक अवसरों की समानता की अत्यन्त आवश्यकता है।

5. **राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए**– किसी राष्ट्र का आर्थिक विकास दो तत्वों पर निर्भर करता है-प्राकृतिक संसाधन तथा मानव संसाधन। जहाँ तक प्राकृतिक संसाधनों की बात है यह तो प्रकृति की देन है, लेकिन मानव संसाधन का विकास शिक्षा द्वारा होता है। और जिस राष्ट्र में जितनी अधिक तथा उत्तम प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था होती है, वह राष्ट्र उतनी ही तेजी से आर्थिक विकास करता है। अतः आवश्यकत है कि हम जिन तक शिक्षा नहीं पहुँचा पा रहे हैं, उन तक शिक्षा सुलभ करायी जाए,

उनके मार्ग की कठिनाईयों को दूर करें। यही शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ है।

भारत में गुणवत्ता व संख्यात्मक सम्बन्धी शैक्षिक पहलू व समता के उपाय (Quality, Quantity and Equity related aspects of Education in India)

NOTES

शैक्षिक अवसरों की समानता के दो मुख्य पहलू हैं- पहला यह कि देश के सभी वर्गों तथा युवकों को बिना किसी असमानता के, किसी भी स्तर की, किसी भी शिक्षा से सुलभ कराना और दूसरा यह कि किसी भी वर्ग के बच्चों के किसी भी स्तर की, किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने में आने वाली समस्याओं का समाधान करना। हम यह भी देख रहे हैं कि जिस तेजी के साथ विद्यालय व कॉलेजों की संख्या में बढ़ोतरी हो रही है उतनी तेजी के साथ शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि नहीं हो रही है। इसका कारण यह है कि शिक्षकों द्वारा शोध कार्य व पठ्न-पाठन पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया जा रहा है जब तक शिक्षक तथा छात्र शोध कार्य तथा आज की तकनीकी के प्रति जागरूक नहीं होंगे तब तक शिक्षा में गुणात्मकता की बात करना नाइंसाफी होगी।

कोठारी आयोग (1964-66) के सुझाव

i. कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क प्रदान की जाए और इस लक्ष्य को दो पंचवर्षीय योजनाओं में प्राप्त किया जाए।

ii. प्राथमिक स्तर पर छात्रों को पाठ्यपुस्तकें, लेखन सामग्री तथा मध्यान्ह भोजन निःशुल्क दिया जाए।

iii. पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक वर्ग, अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों के बच्चों को शिक्षा के लिए विशेष व्यवस्था की जाए और कबीलों के बच्चों के लिए आवासीय आश्रम स्कूलों की स्थापना की जाये।

iv. मंद बुद्धि और विकलांग बालकों के लिए अलग से स्कूल खोले जाएं, इनमें विशेष प्रशिखण प्राप्त शिक्षकों को रखा जाए।

v. माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा में निर्धन छात्रों को शुल्क मुक्त किया जाए?

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के प्रस्ताव

केन्द्र सरकार ने कोठारी आयोग के उपर्युक्त सुझावों के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में निम्नलिखित घोषणाएँ कीं-

NOTES

i. ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों में अधिक से अधिक स्कूल-कॉलेज खोले जाएंगे और इन क्षेत्रों के बच्चों और युवकों को सभी स्तरों की शिक्षा उपलब्ध कराई जाएगी।

ii. देश में सामान्य विद्यालय प्रणाली (Common School System) लागू की जाएगी, अर्थात् एक क्षेत्र में निवास करने वाले सभी वर्गों के बच्चे एक प्रकार के स्कूल में पढ़ेंगे, एक साथ पढ़ेंगे।

iii. पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा कबीलों के बच्चों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जाएगी एवं इनको आवश्यक आर्थिक सहायता भी प्रदान की जाएगी।

iv. मन्दबुद्धि तथा विकलांग बच्चों के लिए अलग से विद्यालय खोले जाऐंगे।

v. पब्लिक स्कूलों में निम्न निर्धन वर्ग के बच्चों के लिए स्थान आरक्षित किए जाएँगे और उन्हें निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध करायी जाएगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के प्रस्ताव निम्नलिखित हैं -

i. एक निश्चित कार्य योजना के अंतर्गत सर्वप्रथम कक्षा 1 से कक्षा 5 तक की शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क प्रदान की जाएगी और उसके बाद कक्षा 6 से 8 तक की शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क की जाएगी तथा यह लक्ष्य 1995 तक प्राप्त कर लिया जाएगा।

ii. पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और कबीलों आदि उपेक्षित वर्ग के बच्चों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था होगी।

iii. उपेक्षित वर्ग के बच्चों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाएगी, इनके लिए विशेष छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जाएगी।

iv. मन्द बुद्धि और विकलांग बालकों के लिए अलग से स्कूलों की स्थापना की जायेगी।

v. माध्यमिक स्तर पर गति निर्धारक विद्यालय स्थापित किये जाएंगे, इनमें उपेक्षित क्षेत्रों (ग्रामीण) और उपेक्षित वर्ग (अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति) के मेधावी छात्रों के लिए आवासीय निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाएगी।

विश्व मानवीय अधिकार (World Human Rights)

यू.एन.ओ. (यूनाइटेड नेशन्स ऑर्गनाइजेशन) तथा उसकी प्रमुख सहयोगी शाखा यूनेस्को (UNESCO) यूनाइटेड नेशन्स एजुकेशनल, साइन्टिफिक

एण्ड कल्चरल ऑर्गनाइजेशन को इस दिशा में महान कार्य करने का श्रेय दिया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व मानवीय अधिकारों के अंतर्गत निम्नलिखित क्षेत्रों में समान अवसरों की अवधारणा को स्वीकार किया है-

i. नागरिक अधिकार (Civil Rights) – मानवीय अधिकारों की घोषणा में विश्व के प्रत्येक नागरिक को निम्नलिखित अधिकार दिये गये हैं-

ii. सभी प्राणी जन्म से स्वतंत्र हैं तथा वे आत्म-सम्मान एवं अधिकारों के संदर्भ में एक समान हैं।

iii. प्रत्येक व्यक्ति को सुखी तथा सम्मानपूर्ण जीवन-यापन करने का अधि कार है। साथ ही स्वतंत्रता एवं सुरक्षा का भी हकदार है।

iv. किसी भी व्यक्ति को बंधुआ नौकर या गुलाम बनाकर नहीं रखा जा सकता तथा गुलामी प्रत्येक दृष्टिकोण से निषेध है। अतः उसे तत्काल प्रभाव से समाप्त किया जाये।

v. किसी भी व्यक्ति को यातनापूर्ण, बर्बर दण्ड प्रदान नहीं किया जा सकता।

राजनीतिक अधिकार– संयुक्त राष्ट्र के मानवीय अधिकारों की धारा 14, 15, 21 के अंतर्गत निम्नलिखित राजनीतिक अधिकारों की मान्यता प्रदान की गई है –

i. प्रत्येक व्यक्ति अपने राष्ट्र की सरकार में सक्रिय भागीदारी कर सकता है। वह प्रत्यक्ष रूप में भी हो सकती है अथवा चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में भी हो सकती है।

ii. प्रत्येक व्यक्ति को जन-सेवाओं का लाभ प्राप्त करने के लिए समान रूप से अधिकार प्राप्त है।

iii. किसी भी राष्ट्र में सरकारी की स्थापना वहाँ के निवासियों की इच्छा शक्ति पर निर्भर करेगी। इसके लिए आवर्ती चुनावों तथा गुप्त मतदान की सहायता ली जा सकती है।

आर्थिक अधिकार – धाराएं 17, 22, 23, 24 तथा 25 आर्थिक रूप से स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए मानवीय अधिकारों की घोषणा करती हैं। वे निम्नलिखित हैं-

i. प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संपत्ति रखने का अधिकार प्राप्त है। वह स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति की संपत्ति का नियोजन करे। किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से उसको संपत्ति से वंचित करने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

ii. प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है। इसके अंतर्गत प्रत्येक राष्ट्र को अपने नागरिक को सामाजिक जीवन-निर्वाह के लिए आर्थिक भत्ते की व्यवस्था करना अनिवार्य है, जब वह अशक्त, रोगी या बेरोजगार हो।

iii. प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने का अधिकार है। साथ ही राष्ट्र को उसकी बेरोजगारी से रक्षा करने का अधिकार है।

iv. प्रत्येक व्यक्ति को समान कार्य के लिए समान वेतन प्राप्त करने का अधिकार है।

सामाजिक अधिकार (Social Rights) – मानवीय अधिकारों के घोषणा-पत्र में निम्नलिखित सामाजिक अधिकारों का वर्णन किया गया है-

i. राष्ट्रों द्वारा निर्धारित निश्चित आयु वर्ग में प्रत्येक युवक-युवती को पारस्परिक पसन्द से विवाह करके घर बसाने का अधिकार है।

ii. परिवार किसी राष्ट्र एवं समाज की आधारभूत इकाई है। अतः उस राष्ट्र द्वारा उसकी सुरक्षा तथा परिपोषण की व्यवस्था करना अनिवार्य है।

iii. मातृत्व एवं बाल्यावस्था की देखरेख के लिए विशेष प्रयास करना प्रत्येक राष्ट्र का उत्तरदायित्व है।

iv. प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। इसलिए प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य रूप से निःशुल्क होनी चाहिए।

सांस्कृतिक अधिकार - मानवीय अधिकारों की घोषणा में निम्नलिखित सांस्कृतिक अधिकारों को शामिल किया गया है-

i. प्रत्येक व्यक्ति अपने सामुदायिक क्रिया-कलापों में सहभागिता के लिए स्वतंत्र है। अन्य शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति अपने कला-कौशलों के द्वारा आनन्द की अनुभूति कर सकता है तथा वैज्ञानिक उन्नति में सक्षम योगदान दे सकता है।

ii. प्रत्येक राष्ट्र के व्यक्ति को अपनी सांस्कृति धरोहर के संरक्षण, सम्प्रेषण तथा सुरक्षा का अधिकार है, चाहे यह वैज्ञानिक, वस्तुगत या साहित्यिक हो।

अध्याय का संक्षिप्त सार

1. यह सत्य है कि स्वतंत्रता के बाद शैक्षिक सुविधाओं के प्रसार के परिणामस्वरूप समाज के सभी वर्ग लाभान्वित हुए हैं, लेकिन अब भी

वर्गीय असमानता विद्यमान है। अतः नयी शिक्षा–नीति 'लाभ उठाने से अब तक वंचित वर्ग' को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप शैक्षिक अवसरों की समानता उपलब्ध कराकर असमानताओं के उन्मूलन को कम किया जा सकता है।

2. पुरूषों के समान महिलाओं को भी शिक्षा की आवश्यकता है तथा इसे प्राप्त करने का उन्हें अधिकार है। अतः महिलाओं की दशा में मूलभूत परिवर्तन लाने के उद्देश्य से शिक्षा के अभिकरण का उपयोग किया जाना चाहिए। प्राचीनकाल से चली आ रही इस विसंगति के समुच्चय को निष्प्रभावी बनाने हेतु महिलाओं के पक्ष में एक सुनियोजित कार्यक्रम विचारणीय है।

3. अनुसूचित जाति का एक विशाल समुदाय सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक पिछड़ेपन से ग्रस्त है। यद्यपि पहले की अपेक्षा उनके शैक्षिक स्तर में सुधार आया है फिर भी 1981 की जनगणना के अनुसार अन्य वर्गों की तुलना में उनकी यह उपलब्धि आधी है।

4. अनुसूचित जाति के शैक्षिक विकास में प्रमुख विचारणीय बात यह है कि उन्हें सभी आयामों में तथा शिक्षा के सभी क्षेत्रों में समान सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएँ। यह कम से कम समय में केवल केन्द्र तथा राज्य स्तर पर सतत् संचारेक्षण तथा प्रभावी रणनीति के द्वारा ही संभव हो सकता है।

5. विद्यालय भवन तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र ऐसे स्थान पर खोले जायें, जहाँ ऐसे छात्रों के लिए आने जाने की सुविधा हो।

शब्दावली

1. जनतंत्र- जनतंत्र स्वतंत्रता, समानता और शान्ति के तरीकों में विश्वास करता है। युद्ध और राजनैतिक अथवा अन्य प्रकार के तनावों के मध्य समाज की प्रगति नहीं हो सकती।

2. स्तर में अंतर– विभिन्न स्कूलों से आये बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि में अंतर होता है सबके मापदण्ड में अंतर होता है।

3. सामाजिक स्तरीकरण Social Stratifications – समाज के वयक्ति जब अपने स्तर से ऊपर या नीचे की ओर उन्मुख होते हैं तो इसे हम सामाजिक स्तरीकरण कहते हैं।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शैक्षिक अवसरों की समानता से क्या तात्पर्य है ? आपकी सम्मति में अपने देश में शैक्षिक अवसरों की समानता की प्राप्ति के लिए क्या उपाय करने चाहिए?
2. शैक्षिक अवसरों की समानता से आप क्या समझते हैं? हमारे देश में शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार की असमानताएं हैं? इन असमानताओं को कैसे दूर किया जा सकता है?
3. 'आज हमारे देश में शैक्षिक अवसरों की समानता के नाम पर वोट की राजनीति की जा रही है' इस कथन की विवेचना कीजिए।
4. शैक्षिक अवसरों की समानता की पृष्ठभूमि की विवेचना कीजिए।
5. शिक्षा में समानता के सूचक क्या हैं?
6. शैक्षिक अवसरों की समानता पर नई शिक्षा-नीति को स्पष्ट करिए।
7. असमानता के कारक क्या हैं ?

NOTES

3 विशेष रूप से बालिकाओं, गरीब एवं उपेक्षित समूह की शिक्षा

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- नारी शिक्षा।
- नारी शिक्षा का महत्व।
- लड़कियों की शिक्षा में असमानता।
- लड़कियों की शिक्षा के शैक्षिक प्रयास।
- महिलाओं का सशक्तीकरण।
- सूनीसेफ के सुझाव।
- अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को शिक्षा।
- उपेक्षित समूह के सुधार के लिए संविधान में प्रावधान।
- 1986 तथा 1992 की नीतियों में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की शिक्षा।
- सरकार द्वारा प्रयसास।
- शैक्षिक योजनाएँ।
- अन्य पिछड़े वर्गों का विकास।
- मण्डल कमीशन पर उच्चतम न्यायालय निर्देश।
- एन. जी. ओ. के प्रयास।
- शिक्षा सम्बन्धी संस्तुतियाँ।
- अल्पसंख्यकों की शिक्षा।
- अल्पसंख्यकों के लिए प्रावधान।
- अल्पसंख्यकों की साक्षरता दर।
- अल्पसंख्यकों के कल्याण के प्रयास।
- धर्म तथा शिक्षा सम्बन्ध।
- धर्म तथा शिक्षा का सम्बन्ध।
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे-

- नारी शिक्षा।
- नारी शिक्षा का महत्व।
- लड़कियों की शिक्षा में असमानता।
- लड़कियों की शिक्षा के शैक्षिक प्रयास।
- महिलाओं का सशक्तीकरण।
- सूनीसेफ के सुझाव।
- अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को शिक्षा।
- उपेक्षित समूह के सुधार के लिए संविधान में प्रावधान।
- 1986 तथा 1992 की नीतियों में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की शिक्षा।
- सरकार द्वारा प्रयास।
- शैक्षिक योजनाएँ।
- अन्य पिछड़े वर्गों का विकास।
- मण्डल कमीशन पर उच्चतम न्यायालय निर्देश।
- एन. जी. ओ. के प्रयास।
- शिक्षा सम्बन्धी संस्तुतियाँ।
- अल्पसंख्यकों की शिक्षा।
- अल्पसंख्यकों के लिए प्रावधान।
- अल्पसंख्यकों की साक्षरता दर।
- अल्पसंख्यकों के कल्याण के प्रयास।
- धर्म तथा शिक्षा सम्बन्ध।
- धर्म तथा शिक्षा का सम्बन्ध।

प्राक्कथन

भारत में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दृष्टि से निम्न स्तर की जातियों को वंचित वर्ग में रखा गया है।

भारत संविधान की धारा 340, 341 और 342 में आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ी जातियों को पिछड़े एवं कमजोर वर्ग में रखा गया है।

वोट की राजनीति ने अल्पसंख्यकों को भी वंचित, पिछड़े और कमजोर वर्ग में सम्मिलित कर दिया है। वर्तमान में हम वंचित, पिछड़े या कमजोर वर्ग की शिक्षा की बात करते हैं तो उससे निम्नलिखित वर्गों की शिक्षा आती है-

1. बालिकाओं के लिए शिक्षा।
2. अनुसूचित जातियों के लिए शिक्षा।
3. अनुसूचित जनजातियों के लिए शिक्षा।
4. अन्य पिछ्ड़े वर्ग के लिए शिक्षा।
5. अल्पसंख्यकों के बच्चों की शिक्षा।

स्त्री शिक्षा

प्राचीन काल से भारत में स्त्री शिक्षा तथा लैंगिक असमानता विवाद का विषय रही। भले ही 2001 की गनगणना में स्त्री शिक्षा 64.46 हो गयी हो, फिर भी उपरोक्त दोनों विषय वर्तमान में भी गम्भीर हैं। इस अध्याय में हम इसी विषय पर चर्चा करेंगे।

सामान्य शब्दों में लैंगिक असमानता का अर्थ है, नारियों के साथ सुरुषों के समान विभिन्न क्षेत्रों में एक जैसा बर्ताव न करना। उन्हें विभिन्न पदों पर नियुक्ति के लिए योग्य न समझना। उनको समान अवसर न देना। उन्हें समान कार्य के लिए वेतन आदि न देना। उन्हें एक प्रकार से 'भार' समझना। पुत्र की उत्पत्ति में प्रसन्नता दिखाना आदि।

निश्चय ही विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएँ लड़कियाँ संसाधनों, अवसरों, प्रशासनिक तथा राजनैतिक सत्ता पाने के समान अवसरों से वंचित हैं। महिलाओं और लड़कियों में भेदभाव के प्रमुख तरीके निम्नलिखित हैं-

1. महिलाओं और लड़कियों के लिए सीमित व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक विकल्प।
2. लड़कियों के स्थान पर लड़की को प्राथमिकता देना।
3. भ्रूण गर्भपात।
4. दहेज सम्बन्धी माँगें।
5. महिलाओं तथा लड़कियों से मार पीट।
6. आधारभूत मानव अधिकारों से वंचित रखना इत्यादि।

1. विश्व में विकसित, प्रगतिशील एवं जनतान्त्रिक देश अमरीका में राष्ट्रपति पद कभी किसी नारी को प्राप्त नहीं हुआ। समानता का दावा करने वाले रूस में भी यही स्थिति रही है। यूरोप के लगभग सभी देशों में भी इसी प्रकार की स्थिति है।

2. महिलाओं को अमेरिका में मताधिकार 1920 में, फ्रांस में 1945, इटली में 1948 तथा स्विट्ज़रलैण्ड में 1973 में दिया गया।

संविधान में स्त्री

हमारे भारतीय संविधान में लैंगिक समानता के लिये अनेक प्रावधान किये गये हैं, इनमें से प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं-

1. संविधान के अनुच्छेद 15(1) के अनुसार लिंग के आधार पर राज्य किसी भी नागरिक के साथ भेद-भाव नहीं करेगा। अर्थात् महिलाओं के साथ भेद-भाव नहीं करेगा। अर्थात् महिलाओं के साथ भेद-भाव नहीं करेगा। इसके साथ ही अनुच्छेद 16 के अधीन रोजगार एवं नियुक्तियों में महिलाओं को भी बिना भेद-भाव के समान अवसर प्रदान किये गये हैं।
2. महिलाओं को अनच्छेद 14 के द्वारा पुरुषों के समान ही कानून के समक्ष समानता तथा कानून के अनुसार संरक्षण का अधिकार दिया गया है-
3. महिलाओं के विकास के लिए अनुच्छेद 15(3) सबसे अधिक महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान है। इसके अनुसार राज्य को यह शक्ति दी गई है कि वह स्त्रियों व बालकों के लिए विशेष कानून बना सके। महिलाओं के लिए विभेदकारी कानून बनाने की शक्ति राज्य को इसलिए दी गई है जिससे वे मातृत्व रूपी प्राकृतिक दायित्व को निभा सकें तथा सदियों से पुरुष प्रधान समाज के कारण उन पर हो रहे शारीरिक, मानसिक, आर्थिक व सामाजिक शोषण का सामना कर सकें।
4. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 (ख) के अनुसार पुरुषों तथा स्त्रियों, दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन।

नारी शिक्षा का महत्व

निश्चय ही नारी शिक्षा अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसे हम निम्नलिखित बिन्दुओं से समझ सकते हैं-

1. स्त्री शिक्षा के विषय में स्वामी दयानन्दजी ने जोरदार शब्दों में कहा था कि राष्ट्र, समाज प्रशासन तथा परिवार के क्रिया-कलाप तब तक उचित ढंग से नहीं किए जा सकते, जब तक स्त्रियों को शिक्षा न मिले।
2. इस सम्बन्ध में श्रीमती हंसा मेहता समिति (1962) का कथन है कि यदि नए समाज का निर्माण ठोस आधार पर करना है तो स्त्रियों को वास्तविक और प्रभावपूर्ण ढंग से पुरुषों के समान अवसर देने होंगे।
3. भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही कहा था कि लड़के की शिक्षा केवल एक व्यक्ति की शिक्षा है। किन्तु एक लड़की की शिक्षा सम्पूर्ण परिवार की शिक्षा है।

4. महात्मा गाँधी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि स्त्रियों को वही शैक्षिक सुविधाएँ दी जाएँ जो पुरुषों के लिए हों। यदि हो सके तो उन्हें विशेष सुविधाएँ मिलनी चाहिए।

5. विवेकानन्द का कहना था कि वही देश उन्नति कर सकता है, जहाँ स्त्रियों को उचित स्थान दिया जाता है तथा उनकी शिक्षा का भी उचित प्रबंध किया जाता है।

6. स्त्री शिक्षा का विश्वविद्यालय आयोग (1948-49) ने महत्व इस प्रकार बताया है- "स्त्री शिक्षा के अभाव में व्यक्ति शिक्षित नहीं हो सकते। यदि शिक्षा को पुरुषों अथवा स्त्रियों के लिए सीमित करने का प्रश्न हो तो यह अवसर स्त्रियों को दिया जाए, क्योंकि उनके द्वारा ही भावी संतान को शिक्षा दी जा सकती है।"

7. कोठारी आयोग ने लिखा है- "स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों की शिक्षा से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। नारी शिक्षा पर जितना भी जोर दिया जाए, उतना थोड़ा है।"

   कोठारी आयोग ने स्त्रियों की शिक्षा पर बल निम्नलिखित कारणों से दिया है-

   - स्त्रियों की शिक्षा का शैशव के सर्वाधिक संस्कारमय वर्षों में चरित्र के निर्माण में अपना विशेष स्थान है।
   - स्त्री शिक्षा का हमारे मानवीय संसाधनों के पूर्ण विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान है।
   - स्त्रियों की शिक्षा प्रसवन-दर को घटाने में काफी सहायता कर सकती है।
   - घर की चारदीवारी के बाहर स्त्रियों का कार्य आज देश के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है और आगामी वर्षों में वह और भी बड़ा आकार ग्रहण कर लेगा, जिसका प्रभाव अधिकतर स्त्रियों पर पड़ने लगेगा।

8. इस बात पर 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में विशेष बल दिया गया है कि महिलाओं को शैक्षिक तथा सामाजिक दृष्टि से समान स्तर पर लाने के लिए विशेष कार्य-कलापों की आवश्यकता है। सुशिक्षित महिलाएँ राष्ट्र निर्माण के कार्य में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। महिलाओं की शिक्षा योजना विशेष रूप से तैयार करने की आवश्यता है तथा इस कार्य के लिए वित्तीय साधनों की व्यवस्था करनी होगी।

लड़कियों की शिक्षा में असमानता

निश्चिय ही लड़कियों की शिक्षा में असतानता का सबसे प्रमुख उदाहरण है कि स्वतन्त्रता के बाद केन्द्रीय स्तर पर शिक्षा मंत्रालय/मानव संसाधन विकसा मंत्रालय का मंत्री पर किसी नारी को नहीं मिला है। भारत सरकार में इसी प्रकार शिक्षा सचिव/शिक्षा सलाहाकार का पद भी पुरुषों को मिलता रहा है। लगभग यही स्थिति राज्यों में रही है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन संस्थान (2006 से शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय, नवोदय विद्यालय समिति आदि राष्ट्रीय स्तर के संगठन तथा संस्थाओं में प्राय: पुरुषों की ही सर्वोच्च पदों पर नियुक्तियाँ होती रही हैं।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) संस्तुतियाँ

इस आयोग के अनुसार अब वह समय नहीं रहा, जबकि स्त्रियों को घर की चारदीवारी में बंद रखा जाए। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) ने इस संबंध में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं-

"घर की देखभाल करना स्त्रियों का मुख्य कार्य है और आगे भी रहेगा। फिर भी उनका सम्बन्ध सीमित नहीं रहना चाहिए। विभिन्न परिस्थितियों के कारण वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की ऐसी रूपरेखा बनाएँ जो उनका जीवन सफल बनाने में सहायक हो। एक शिक्षक ने लिखा कि स्त्री शिक्षा तो एक घटना मात्र थी। इसके लिए किसी ने योजना नहीं बनाई थी।"

इस विषय पर आयोग ने निम्नलिखित संस्तुतियाँ दी हैं-

1. स्त्रियों को उनकी शिक्षा की वास्तविक अभिरुचियों से अवगत कराने के लिए उचित शिक्षा निर्देशन का कार्य योग्य व्यक्ति करें, जिससे वे पुरुषों का अनुकरण न करें, बल्कि पुरुषों की भाँति अच्छी शिक्षा प्राप्त करें। स्त्रियों और पुरुषों में कुछ समानता होनी चाहिए, परन्तु वह एक-सी न हो, जैसी कि आज है।
2. किसी भी स्थिति में स्त्री शिक्षा में कमी न की जाए, बल्कि इसे प्रोत्साहन दिया जाए।
3. वह कॉलेज जहाँ पर सहशिक्षा में पुरुषों पर इस बात का दबाव डाला जाए कि वे शालीनता रखें और सामाजिक जिम्मेदारी का अनुभव करें।
4. शिक्षा निर्देशन कार्य इस प्रकार किया जाए कि लड़कियाँ गृहविज्ञान के अध्ययन के प्रति उदासीन न रहें।
5. समान कार्य के लिए स्त्री तथा पुरुष अध्यापकों को समान वेतन दिए जाएँ।

6. लड़के-लड़कियों के लिए जहाँ नए कॉलेज बनाए जाएँ। वहाँ इस बात का ध्यान रहे कि वे वास्तव में सहशिक्षा संस्थाएँ हों। इनमें स्त्री और पुरुषों की आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखा जाए।

पृथक विद्यालय

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का विचार था कि आम राय मालूम होती है कि तेरह या चौदह वर्ष की आयु से लगभग अठारह वर्ष की आयु तक लडके-लड़कियों के विद्यालय अलग-अलग हों। आयोग ने अनुभव किया कि यह स्पष्ट नहीं होता कि इस विचारधारा का आधार रीति-रिवाज है अथवा अनुभव।

सहशिक्षा

विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिशों के अनुसार कॉलेज में प्रवेश की आयु लगभग अठारह वर्ष होगी। इस कारण से कॉलेज में सहशिक्षा हो सकती है, जैसा कि आज तक मैडिकल कॉलेज में है। इस स्तर पर अलग-अलग कॉलेजों के बनाने में आवश्यक रूप से व्यय की वृद्धि होगी। लड़के-लड़कियों के लिए अलग-अलग कॉलेज बनाने से दोहरे उपकरणों की आवश्यकता होगी, जो अभी पर्याप्त नहीं है और इनका भार सीमित साधनों पर पड़ेगा। लड़कियों के अलग कॉलेजों में साधारणतया निम्न कोटि के उपकरण, अपेक्षाकृत कम योग्यता वाले अध्यापक तथा अनुपयुक्त विद्यालय भवन होते हैं। जहाँ तक सम्भव हो कॉलेज स्तर पर सहशिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 तथा 1992

नारी शिक्षा के सम्बन्ध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के भाग चार में निम्नलिखित बातों का उल्लेख है-

शिक्षा नीति के पैरा 4.2 शिक्षा को महिलाओं के स्तर में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए एक साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाएगा। अतीत से चली आ रही विकृतियों एवं विषमताओं को खत्म करने के लिए महिलाओं को सुविचरित समर्थन दिया जाएगा। शिक्षा पद्धति द्वारा महिलाओं को शक्तिसम्पन्न बनाने के लिए एक ठोस भूमिका निभाई जाएगी और यह हस्तक्षेप के रूप में होगी। नए पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकों तथा शिक्षकों, निर्णयकर्ताओं और प्रशासकों के प्रशिक्षण और अनुसस्थापन एवं शिक्षा संस्थाओं के सक्रिय सहयोग द्वारा नए मूल्यों के विकास को प्रोत्साहन दिया जाएगा। वस्तुतः यह काम विश्वास और सामाजिक निर्माण के माध्यम से संभव हो सकेगा। महिलाओं से संबंधित अध्ययनों को विभिन्न पाठ्यक्रमों के अंतर्गत प्रोत्साहन दिया जाएगा और शिक्षा संस्थाओं को महिला विकास से संबंधित कार्यक्रम शुरू करने के लिए प्रेरित किया जाएगा।

NOTES

लड़कियों की शिक्षा के शैक्षिक प्रयास

निश्चय ही लड़कियों की शिक्षा के लिये अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। इनमें से प्रमुख प्रयासों का विवरण निम्नलिखित है-

1. आवश्यकता होने पर लड़कियों के लिए छात्रवास खोले जाएँ।
2. लड़कियों के लिए यातायात सम्बन्धी सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाएँ।
3. लड़कियों की शिक्षा स्कूल स्तर पर नि:शुल्क की जाए।
4. प्रचार माध्यम को योजना की स्पष्ट मार्गदर्शी रूपरेखाएँ तैयार करनी चाहिए।
5. अनुसंधान संस्थानों, स्वैच्छिक संस्थाओं और कलाकारों द्वारा महिलाओं में चेतना उत्पन्न करने और अपने व्यक्तित्व को उन्नत करने के लिए विशेष कार्यक्रम तैयार किए जाएँ।
6. महिला शिक्षकों तथा महिला अनुदेशकों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाए, ताकि वे महिलाओं की समानता के लिए सक्रिय भूमिका निभा सकें।
7. विभिन्न पाठ्यक्रम के रूप में महिलाओं के अध्ययनों को प्रोन्नत किया जाए।
8. स्वैच्छिक एजेंसियों तथा क्रियात्मक वर्गों को महिलाओं के विकास के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सम्मिलित किया जाए।
9. प्रत्येक शिक्षा संस्थान द्वारा महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करने, जागृति पैदा करने तथा महिलाओं में संप्रेषण तथा संगठन की प्रोन्नति के लिए तथा उनके विश्वास के लिए सक्रिय कार्यक्रम शुरू किए जाएँ।
10. शैक्षिक संस्थाओं को उन कार्यक्रमों को आरंभ करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए, जो समुदाय को प्रत्यक्ष लाभ पहुँचाए और महिलाओं में सामर्थ्य उत्पन्न करें।
11. अध्यापकों और अनुसंधानकर्ताओं का महिलाओं से संबंधित विषयों को हाथ में लेने के लिए अनुस्थापन और सामान्य विषयों में महिलाओं के आयामों को सम्मिलित किया जाए।
12. महिलाओं की शिक्षा को औद्योगिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रमों में व्यापक बनाया जाए।
13. पाठ्य पुस्तकों, पाठ्यचर्या, शिक्षकों, निर्णयकर्ताओं तथा प्रशासकों के प्रशिक्षण एवं अभिनव तथा शिक्षा संस्थाओं के सक्रिय सहयोग से नए मूल्यों के विकास को प्रोत्साहन दिया जाए।

14. राज्य स्तर की एजेंसियों द्वारा आरंभिक प्रशिक्षण, सेवाकालीन प्रशिक्षण और पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों के जरिए अध्यापकों, प्रशिक्षकों, आयोजकों और प्रशासकों को महिलाओं के मामलों में संवेदनशील बनाया जाए।

15. लड़कियों की शिक्षा के लिये कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना के अन्तर्गत मुख्य रूप से प्राथमिक स्तर पर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग और अल्पसंख्यकों की बालिकाओं के लिए दुर्गम क्षेत्रों में आवासीय सुविधाओं के साथ 2000 विद्यालयों की व्यवस्था की गई है। यह योजना शैक्षिक रूप से पिछड़े विकास खण्डों में चलाई जा रही है जहाँ महिला साक्षरता की दर राष्ट्रीय औसत से कम है तथा 'लिंग' भेदभाव अधिक है।

16. महिला शिक्षा की विशेष योजनाएँ शिक्षा विभाग की विद्यमान योजनाओं के अधीन महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना के अधीन संशोधित नीति निर्धारण में एक शर्त यह है कि भविष्य में नियुक्त किए जाने वाले शिक्षकों में 50% महिलाएँ होनी चाहिए। इसका स्वभावतः लड़कियों की गुणवत्ता शिक्षा पर प्रभाव पड़ेगा।

17. छात्रावासों के निर्माण की योजना का संचालन इस उद्देश्य से किया जा रहा है कि अधिक से अधिक बालिकाएँ माध्यमिक शिक्षा से लाभ प्राप्त कर सकें।

18. विकसित कानूनी साक्षरता सामग्रियों का महिला और बाल विकास विभाग द्वारा दूर-दूर तक प्रचार किया जाए, ताकि वे स्कूली पाठ्यचर्या, साक्षरता अभियानों तथा महिलाओं की गतिशीलता का अंग बन सकें। विशेषकर, सूचना और प्रसारण मंत्रालय की मीडिया (संचार) सहायता माँगी जाए।

19. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विश्वविद्यालयों को महिला अध्ययन में अनुसंधान की सु-परिभाषित योजनाएँ आरम्भ करने और स्नातक और स्नातकोत्तर स्तरों पर पाठ्यचर्या के विकास तथा संबंद्ध विस्तार क्रिया-कलापों के लिए भी वित्तीय सहायता प्रदान कर रहा है। आयोग ने सामाजिक विज्ञान तथा इंजीनियरिंग एवं प्रौद्योगिकी सहित विज्ञान और मानविकी में महिला उम्मीदवारों के लिए अंशकालिक रिसर्च एसोशिएटशिप के अनेक पदों का भी सृजन किया है।

20. 1989 में शुरू हुआ महिला समाख्या कार्यक्रम (महिलाओं की समानता हेतु शिक्षा) और उनके सशक्तिकरण हेतु एक ठोस कार्यक्रम है। नौ राज्यों के 65 जिलों के लगभग 16000 गाँवों में यह योजना चलाई जा रही हैं। ये राज्य हैं- आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, झारखण्ड, कर्नाटक, केरल, उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड।

इस महिला समाख्या की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही है कि इससे आधारभूत स्तर पर महिला सशक्तिकरण की नींव डाली जा सकती है और ग्रामीण महिलाओं के स्वरूप में एक परिवर्तन देखने को मिला है। कानूनी जागरूकता कार्यक्रम के फलस्वरूप नारी अदालतों का जन्म हुआ है। नारी अदालतें मुखरित और प्रभावकारी अनौपचारिक अदालतों के रूप में उभरी हैं। इन्हें लोगों की ओर से मान्यता तथा सम्मान दोनों मिला है।

महिला शिक्षण केन्द्रों ने युवतियों और किशोरियों को शिक्षा प्राप्त करने का अनौखा अवसर प्रदान किया है। इन महिला शिक्षा केन्द्रों को विशेष रूप से नए सघन गुणवत्ता पाठ्यक्रम तथा दक्षता विकास कार्यक्रमों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है ताकि यहाँ महिलाएँ और किशोरियाँ अपनी शिक्षा जारी रख सकें और जीवन का हुनर सीख सकें।

महिलाओं का सशक्तीकरण

महिलाओं की शिक्षा के साथ-साथ उनका सशक्तीकरण भी समाज तथा राष्ट्र के लिये महत्वपूर्ण है। अत: इस दिशा में भी अनेक प्रयास किये जा रहे हैं, इनमें से प्रमुख का विवरण निम्नलिखित है-

(अ) विभिन्न अभिकरण

भारत में सन् 2011 की जनगणना के अनुसार महिलाओं की संख्या 58.64 करोड़ थी जो देश की कुल जनसंख्या 121.01 करोड़ थी का 48.5 प्रतिशत था। भारत में महिलाओं तथा बच्चों के समग्र विकास को वांछित गति प्रदान करने के लिए 1985 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार के अधीन महिला और बाल विकास विभाग गठित किया गया। इस विभाग के मुख्य कार्यों का विवरण इस प्रकार है-

1. विभिन्न प्रकार के रोजगार के अवसर प्रदान करना तथा महिलाओं में रोजगार की क्षमता बढ़ाना।
2. महिलाओं तथा बच्चों के विकास की देखरेख करने वाली प्रमुख एजेंसी के रूप में योजनाएँ, नीतियाँ एवं कार्यक्रम बनाना।
3. महिलाओं तथा बच्चों के बारे में कानून बनाना तथा बनाए गए कानूनों में संशोधन करना।
4. महिलाओं तथा बच्चों के विकास के क्षेत्र में काम करने वाले सरकारी और गैर सरकारी संगठनों को दिशा-निर्देश देना।

   इस विभाग के अन्तर्गत प्रमुख संस्थाएँ निम्नलिखित हैं-

   (i) राष्ट्रीय जनसहयोग तथा बाल विकास संस्थान।

(ii) राष्ट्रीय महिला आयोग।

(iii) राष्ट्रीय महिला कोष।

(iv) केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड।

(ब) महत्वपूर्ण कानून

महिलाओं के सशक्तीकरण के लिये भी अनेक कानून बनाये गये हैं, इनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं-

1. दहेज निरोधक कानून, 1961 (1986 में संशोधन),
2. अनैतिक व्यापार (निरोधक) अधिनियम 1959 (1986 में संशोधन),
3. सती प्रथा निरोधक अधिनियम 1971।

(स) प्रमुख कार्यक्रम

महिला सशक्तीकरण के लिये कार्यक्रम भी चलाये जा रहे हैं, इनमें से प्रमुख का विवरण निम्नलिखित है-

1. स्वयंसिद्ध महिलाओं को अल्प ऋण उपलब्ध कराना।
2. रोजगार तथा प्रशिक्षण के लिए सहायता देने का कार्यक्रम।
3. स्वावलम्बन कार्यक्रम।
4. स्वाधारः कठिन परिस्थितियों में पड़ने वाली महिलाओं के लिए योजना।
5. महिला शिक्षा के लिए कंडेंस्ड पाठ्यक्रम।
6. स्वशक्ति ग्रामीण महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार लाना।
7. कामकाजी महिलाओं के लिए छात्रावास।

यूनिसेफ के सुझाव

यूनिसेफ संयुक्त राष्ट्र संघ की एक प्रमुख संस्था है। यह संस्था महिलाओं तथा बच्चों के कल्याण में विशेष रूप से क्रियाशील रहती है। अतः इसने भारत में लड़कियों के कल्याण को अनेक सुझाव दिये हैं, इनमें से प्रमुख का वर्णन इस प्रकार है-

(1) महिलाओं के स्तर में सुधार

महिलाओं को जमीन और संपत्ति के अधिकार देने के मामले में लैंगिक भेदभाव समाप्त करने के महत्वपूर्ण उपायों में निम्नलिखित उपाय शामिल होने चाहिए; लेकिन उन्हें सिर्फ उन्हीं उपायों तक सीमित नहीं रहना चाहिए-

NOTES

1. महिलाओं के संपत्ति के अधिकारों के उल्लंघनों का पता लगाने तथा उनका पर्दाफाश करने तथा सरकारों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार संधियों के पालन की निगरानी के प्रयासों में अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों एवं गैर-सरकारी संगठनों को सम्मिलित करना।
2. महिलाओं के प्रति भूमि और संपत्ति अधिकारों में सुधार करके भेदभाव मिटाना।
3. कानूनों को अंतर्राष्ट्रीय मानव-अधिकारों मानदंडों के अनुरूप बनाना।

(2) कामकाजी परिवारों को सहारा

वस्तुतः सरकारों को ऐसे विधायी, प्रशासनिक और वित्तीय कदम उठाने चाहिए जिनसे महिला उद्यमियों एवं श्रम बाजार में उनकी भागीदारी के लिए सशक्त और सार्थक वातावरण बन सके। यहाँ निम्नलिखित उपाय महत्वपूर्ण हैं-

1. रोजगार की बेहतर परिस्थितियाँ जुटाना।
2. करिअर विकास के अवसर पैदा करना।
3. सिर्फ लिंग के आधार पर वेतन में अंतर समाप्त करना।
4. बच्चों की देखभाल के लिए सुरक्षित, कम लागत की और उत्तम किस्म की सुविधा प्रदान करना।

(3) शिक्षा सम्बन्धी सुझाव

यूनिसेफ 'दुनिया के बच्चों की स्थिति 2007' में लड़कियों की शिक्षा में प्रगति लाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए-

1. माता-पिता और समुदाय के नेताओं को स्कूल के प्रबन्ध में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने के लिए बढ़ावा देना।
2. लिंग-आधारित हिंसा से स्कूल-सुविधाओं को सुरक्षित बनाना।
3. विवाहित किशोरों तथा अविवाहित माता-पिता को कक्षाओं में आने की अनुमति देना।
4. स्कूल के समय में स्थानीय स्कूल प्रशासन और शिक्षकों को लचीलापन लाने के लिए प्रोत्साहन देना।

उपरोक्त के अतिरिक्त इस बात पर ध्यान देना भी महत्वपूर्ण है कि स्कूल का पाठ्यक्रम बच्चों को लैंकिग समानता का महत्व समझाने में सहायता करे।

अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की शिक्षा

सामान्यत: अनुसूचित जातियों में वे जातियाँ शामिल की गई हैं जो सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक रूप से कमजोर व पिछड़ी समझी जाती है तथा जिन्हें समाज के अन्य उच्च कहे जाने वाले वर्ग ने तिरस्कृत किया हुआ है। धर्म एवं जन्म पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के कारण इन लोगों को अछूत कहा जाने लगा। यहाँ पर अनुसूचित जनजातियों से तात्पर्य एक ऐसे विशेष सामाजिक समूह से है जिसका निश्चित क्षेत्र, अपनी बोली, धर्म, संस्कृति और अलग से एक सामाजिक संगठन होता है।

इस अध्याय के अन्त में तीन प्रकार के वर्गों के सम्बन्ध में विवरण दिया जा रहा है। ये तीन वर्ग निम्नलिखित हैं–

1. अनुसूचित जातियाँ।
2. अनुसूचित जनजातियाँ।
3. अन्य पिछड़े वर्ग।

उपेक्षित समूह के सुधार के लिए संविधान में प्रावधान

हमारे भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों समेत सभी नागरिकों के लिए सामाजिक समानता की व्यवस्था की गई है। इसके निम्नलिखित प्रावधान हैं–

1. अनुच्छेत (15) 1 के अनुसार राज्य, धर्म, वंश, जाति, लिंग या जन्म-स्थान के आधार पर किसी भी नागरिकों के विषय में कोई भेदभाव नहीं करेगा।
2. अनुच्छेद (15) 2 के अनुसार सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के, जैसे- होटल, दुकान, कुएँ, तालाब आदि का प्रयोग करने का समान रूप से अधिकार दिया गया है।
3. अनुच्छेद (15) 4 के अधीन अनुसूचित जातियों की शैक्षिक प्रगति के लिए विशेष प्रावधान बनाए जाएँगे।
4. अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता (छुआछूत) प्रथा को जो हिन्दू समाज में लम्बे समय से प्रचलित थी, समाप्त किया गया है। इसका किसी भी रूप, भाषा या व्यवहार में प्रयोग कानूनी अपराध है। इस अनुच्छेद को लागू करने के लिए संसद ने कई कानून बनाए हैं।
5. अनुच्छेद (25) 2 के अनुसार राज्य द्वारा घोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्थान में किसी भी नागरिक को धर्म, वंश, जाति आदि में से किसी आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।

NOTES

6. अनुच्छेद (25) 2 (ख) में यह व्यवस्था की गई है कि हिन्दुओं के सभी वर्गों को, जिनमें अनुसूचित जातियाँ और जनजातियाँ भी हैं, मन्दिरों में अन्य हिन्दुओं के समान ही जाने का अधिकार होगा।

7. अनुच्छेद 243D के अनुसार स्थानों का आरक्षण निम्नलिखित बिन्दुओं से समझ सकते हैं-

   (i) प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा प्रत्येक पंचायत में भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या के कम से कम एक-तिहाई स्थान (जिसके अन्तर्गत अनुसूतिच जातियों और अनुसूचित जनजातियों को स्त्रियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या भी है) स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे तथा ऐसे स्थान किसी पंचायत में भिन्न-भिन्न निर्वाचन-क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आबंटित किए जा सकेंगे।

   (ii) प्रत्येक स्थिति में पंचायत में - (क) अनुसूचित जातियों, और (ख) अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे तथा इस प्रकार आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात, उस पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या से यथाशक्य वही होगा जो उसे पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की अथवा उस पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों का अनुपात उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या से है और ऐसे स्थान किसी पंचायत में भिन्न-भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आबंटित किए जा सकेंगे।

   (ii) प्रत्येक स्थिति में पंचायत में - (क) अनुसूचित जातियों, और (ख) अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे तथा इस प्रकार आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात, उस पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या से यथाशक्य वही होगा जो उसे पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की अथवा उस पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों का अनुपात उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या से है और ऐसे स्थान किसी पंचायत में भिन्न-भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आबंटित किए जा सकेंगे।

   (iii) खण्ड (1) के अधीन आरक्षित स्थानों की कुल संख्या के कम-से-कम एक तिहाई स्थान, यथास्थिति, अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे।

8. अनुच्छेद 244- अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजाति क्षेत्रों का प्रशासन निम्नलिखित विवरण से समझा जा सकता है-

   (i) संविधान की पांचवीं अनुसूची के उपबंध असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों से भिन्न किसी राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों और

अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण के लिए लागू होंगे।

(ii) संविधान की छठी अनुसूची के उपबंध असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों के जनजाति क्षेत्रों के प्रशासन के लिए लागू होंगे।

9. अनुच्छेद 330 लोकसभा में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए स्थानों का आरक्षण निम्नलिखित से समझ सकते हैं-

लोक सभा में- (क) अनुसूचित जातियों के लिए,

(ख) असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर अन्य अनुसूचित जनजातियों के लिए,

(ग) असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों के लिए, स्थान आरक्षित रहेंगे।

10. अनुच्छेद 338 में राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग के अनुसार निम्नलिखित प्रावधान हैं-

(i) भारत के राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित-अधिपत्र द्वारा आयोग के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य सदस्यों को नियुक्त करेगा।

(ii) संसद द्वारा इस निमित्त बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अध ीन रहते हुए, आयोग एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष और पाँच अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा और इस प्रकार नियुक्त किए गए अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य सदस्यों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जो राष्ट्रपति नियम द्वारा अवधारित करे।

(iii) आयोग को अपनी प्रक्रिया स्वयं विनियमित करने की शक्ति होगी।

(iv) एक आयोग अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए होगा जो राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग के नाम से ज्ञात होगा।

11. अनुच्छेद 339 अनुसूचित जातियों के प्रशासन और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के बारे में संघ का नियंत्रण। इसे निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है-

(i) उपरोक्त अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति, राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के बारे में प्रतिवेदन देने के लिए आयोग की नियुक्ति, आदेश द्वारा, किसी भी समय कर सकेगा और इस संविधान के प्रारंभ से दश वर्ष की समाप्ति पर करेगा।

आदेश में आयोग की संरचना, शक्तियाँ और प्रक्रिया परिनिश्चित की जा सकेंगी और उसमें ऐसे आनुपंगिक या सहायक उपबंध समाविष्ट हो सकेंगे जिन्हें राष्ट्रपति आवश्यक या वांछनीय समझे।

(ii) संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देश देने तक होगा जा उस राज्य की अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए निर्देश में आवश्यक बताई गई स्कीमों के बनाने और निष्पादन के बारे में है।

12. अनुच्छेद 340 पिछड़े वर्गों की दशाओं के अन्वेषण के लिए आयोग की नियुक्ति। इसे निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है-

(i) भारत में राष्ट्रपति भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की दशाओं के और जिन कठिनाइयों को वे झेल रहे हैं उनके अन्वेषण के लिए और उन कठिनाइयों को दूर करने और उनकी दशा को सुधारने के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो उपाय किए जाने चाहिए उनके बारे में एवं उस प्रयोजन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो अनुदान किए जाने चाहिए और जिन शर्तों के अधीन वे अनुदान किए जाने चाहिए। उनके सम्बन्ध में सिफारिश करने के लिए, आदेश द्वारा, एक आयोग नियुक्त कर सकेगा जो ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनेगा जो वह ठीक समझे और ऐसे आयोग को नियुक्त करने वाले आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।

(ii) भारत का राष्ट्रपति, इस प्रकार दिए गए प्रतिवेदन की एक प्रति, उस पर की गई कार्यवाही को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन सहित, संसद के समक्ष रखवाएगा।

13. अनुच्छेद 341 ये अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में हैं। इसका विवरण निम्नलिखित है-

(i) किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में और जहाँ वह राज्य हैं राष्ट्रपति वहाँ उसके राज्यपाल से परामर्श करने के बाद लोक अधिसूचना द्वारा, उन जातियों, मूलवंशों या जनजातियों, अथवा जातियाँ, मूलवंशों या जनजातियों के भागों या उनमें के यूथों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए, यथास्थिति, उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में अनुसूचित जातियाँ समझा जाएगा।

(ii) विधि द्वारा, किसी जाति, मूलवंश या जनजाति को अथवा जाति, मूलवंश या जनजाति के भारा या उसमें के यूथ को खण्ड (1) के

अधीन निकाली गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनुसूचित जातियों की सूची में संसद शामिल कर सकेगी या उसमें से अपवर्जित कर सकेगी, किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है उसके सिवाय उक्त खण्ड के अधीन निकाली गई अधिसूचना में किसी पश्चात्वर्ती अधिसूचना द्वारा परिवर्तन नहीं किया जाएगा।

14. अनुच्छेद 342 यहाँ अनुसूचित जनजातियों के विषय में निम्नलिखित प्रावधान हैं–

(i) राष्ट्रपति, किसी राज्य संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में और जहाँ वह राज्य है वहाँ राष्ट्रपति उसके राज्यपाल से परामर्श करने के बाद लोक अधिसूचना द्वारा, उस जनजातियों या जनजाति समुदायों अथवा जनजातियों या जनजाति समुदायों के भागों या उनमें के यूथों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए, यथास्थिति, उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में अनुसूचित जनजातियाँ समझा जाएगा।

(ii) विधि द्वारा, किसी जनजाति या जनजाति समुदाय को अथवा किसी जनजाति या जनजाति समुदाय के भाग या उसमें के यूथ को खण्ड (1) के अधीन निकाई गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनुसूचित जनजातियों की सूची में संसद शामिल कर सकेगी या उसमें से अपवर्जित कर सकेगी, किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है उसके सिवाय उक्त खण्ड के अधीन निकाली गई अधिसूचना में किसी पश्चात्वर्ती अधिसूचना द्वारा परिवर्तन नहीं किया जाएगा।

1986 तथा 1992 की नीतियों में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की शिक्षा

इस सम्बन्ध में संविधान के भाग 4 तथा पैरा 4 में निम्नलिखित विवरण दिया गया है–

(1) अनुसूचित जातियों की शिक्षा

1. अनुसूचित जाति के व्यक्ति एवं सफाई कार्य, पशुओं की चमड़ी उतारने तथा चर्म-शोधन जैसे व्यवसायों में लगे परिवारों के बच्चों के लिए मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्ति योजना पहली कक्षा से शुरू की जाये।
2. अनुसूचित जातियों के निर्धन परिवारों को इस प्रकार का प्रोत्साहन दिया जाए कि वे अपने बच्चों को 14 साल की उम्र तक नियमित रूप से स्कूल भेज सकें।

3. शिक्षा के क्षेत्र में अनुसूचित जातियों में से शिक्षकों की नियुक्ति पर विशेष ध्यान देना
4. स्कूल भवनों, बालवाड़ियों एवं प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों का स्थान चुनते समय अनुसूचित जाति के व्यक्तियों की सुविधा पर विशेष ध्यान देना।
5. इस अनुच्छेद में ऐसी सुनियोजित व्यवस्थाएँ करना और जाँच-पड़ताल की विधि स्थापित करना कि जिससे पता चलता रहे कि अनुसूचित जातियों के बच्चों के नामांकन होने, नियमित रूप से अध्ययन जारी रखने और पढ़ाई पूरी करने की प्रक्रिया में कहीं गिरावट तो नहीं आ रही है। साथ ही इन बच्चों की आगे की शिक्षा की सम्भावना को बढ़ाने के उद्देश्य से उनके लिए उपचारात्मक पाठ्यचर्या की व्यवस्था करना।
6. अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए जिला केन्द्रों पर छात्रावास की सुविधाएँ क्रमिक रूप से बढ़ाना।
7. अनुसूचित जातियों का शिक्षा की प्रक्रिया में समावेश बढ़ाने के लिए लगातार नये तरीकों की खोज जारी रखना।
8. अनुसूचित जातियों के लिए शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार करने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम के साधनों का उपयोग करना।

(2) अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा

भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजातियों को अन्य लोगों की बराबरी पर लाने के लिए निम्नलिखित कदम तत्काल उठाए जाएँ-

1. निश्चय ही आदिवासियों की अपनी सांस्कृतिक एंव सामाजिक विशिष्टता होती है और बहुधा उनकी अपनी बोलचाल की भाषाएँ हैं। पाठ्यक्रम निर्माण में तथा शिक्षण-सामग्री तैयार करने में यह आवश्यक है कि शुरुआत की अवस्था में आदिवासी भाषाओं का उपयोग किया जाए तथा ऐसा इन्तजाम किया जाए कि आदिवासी बच्चे शुरू के कुछ वर्षों के पश्चात् क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर सकें।
2. प्राथमिक शालाएँ (जनजाति क्षेत्रों में) खोलने के काम को प्राथमिकता दी जाए। इन क्षेत्रों में स्कूल भवनों के निर्माण का कार्य शिक्षा के बजट, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन गारन्टी कार्यक्रम, जनजाति कल्याण योजनाओं आदि के अन्तर्गत प्राथमिकता के आधार पर हाथ में लिया जाए।
3. विस्तृत संख्या में आश्रमशालाएँ तथा आवासीय विद्यालय खोले जाएँ।

4. आदिवासी युवकों (शिक्षित युवक) को प्रशिक्षण देकर अपने क्षेत्र में ही शिक्षक बनने के लिए प्रोत्साहन दिया जाये।
5. इस वर्ग को उनकी जिन्दगी के तौर-तरीकों और उनकी खास आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ऐसी प्रोत्साहन योजनाएँ तैयार की जाएँ जिनसे शिक्षा प्राप्ति में आने वाली बाधाएँ दूर हों। उच्च शिक्षा के लिए दी जाने वाली छात्रवृत्तियों में तकनीकी और व्यावसायिक पढ़ाई को ज्यादा महत्व दिया जाए। सामाजिक तथा मानसिक अवरोधों को दूर करने के लिए विशेष उपचारात्मक पाठ्यचर्या और अन्य कार्यक्रम चलाया जाए ताकि आदिवासी शिक्षार्थी सफलता से अपनी पढ़ाई पूरी कर सकें।
6. प्रत्येक कक्षा के लिए पाठ्यक्रम तय करते हुए इस बात का ख्याल रखा जाएगा कि आदिवासी छात्र अपनी बेशकीमती तहजीबी पहचान के प्रति सचेत हों और उनकी सृजनात्मक प्रतिभा का उपयोग हो सके।
7. आदिवासी बहुल इलाकों में आँगनबाड़ियाँ, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र और प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र प्राथमिकता के आधार पर खोले जाएँगे।

सरकार के द्वारा प्रयास

भारत सरकार अपना नैनितक दायित्व समझते हुये अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिये अनेक प्रयास कर रही है। ऐसे ही प्रमुख प्रयासों का विवरण निम्नलिखित है-

(1) दण्ड की व्यवस्था

नागरिक सुरक्षा अधिकार अधिनियम का उल्लंघन करने वाले अपराधी के लिए जहाँ जेल तथा जुर्माने की व्यवस्था है वहाँ उसे 6 वर्ष के लिये संसद या विधानपालिका के चुनाव से वंचित करने का भी प्रावधान है।

(2) नागरिक अधिकार सुरक्षा अधिनियम, 1976

अस्पृश्यता को दण्डनीय घोषित करने के लिए अपृश्यता (अपराध) अधि नियम 1955 (Untouchability Offence Act, 1955) संसद द्वारा पारित किया गया था। इस कानून में 1976 में व्यापक संशोधन करके अधिक कठोर बनाया गया तथा इसका नाम बदलकर नागरिक अधिकार सुरक्षा अधिनियम कर दिया गया। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्न हैं-

1. सार्वजनिक पूजा-स्थलों पर अस्पृश्यता के आधार पर प्रवेश व उपासना को रोकने तथा सार्वजनिक तालाबों, कुओं या जल स्रोतों से पानी लेने से रोकने आदि को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।
2. अनुच्छेद- 17 के अस्पृश्यता के आधार पर दुकान, जलपान गृह, होटल, सार्वजनिक अस्पताल आदि में जाने पर रोकने आदि को दण्डनीय

NOTES

अपराध घोषित किया गया है।

(3) विशेष अधिकारी की व्यवस्था

राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 338 के अनुसार अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की गई है जो इन वर्गों से सम्बन्धित रक्षा उपायों के सभी विषयों का अन्वेषण करके रिपोर्ट राष्ट्रपति का भेजता है। राष्ट्रपति यह रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों को कार्यवाही के लिए भेजता है।

(4) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पृथक राष्ट्रीय आयोग

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए पहले संविधान के अनुच्छेद 339 के द्वारा राष्ट्रपति द्वारा 1978 में यह आयोग नियुक्त किया गया था जिसमें अब संशोधन किया गया है। अब दो आयोग हैं- अलग-अलग इन जातियों से प्रत्येक आयोग सम्बन्धित सामाजिक तथा आर्थिक विकास के सम्बन्ध में विचार करते हैं जो केन्द्र सरकार को भेजे जाते हैं। इसी साथ राष्ट्रपति राज्य सरकारों को भी इन जातियों के कल्याणकारी उचित आदेश देता है।

(5) सरकारी तथा अन्य नौकरियों में आरक्षण

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को रोजगार दिलाने, सेवाओं में उनका प्रतिनिधित्व कढ़ाने तथा सामाजिक और शैक्षिक उत्थान के लिए सरकार ने लोक सेवाओं में जहाँ आरक्षण दिया है वहाँ राष्ट्रीयकृत बैंकों व सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में भी आरक्षण की व्यवस्था की गई है। उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व निश्चित करने के लिए उनकी शैक्षिक योग्यता के अंगों, आयु सीमा व अनुभव आवेदन-शुल्क आदि में विशेष छूट दी गई है।

(6) लोकसभा और विद्यालयों में आरक्षण

संविधान के अनुच्छेदों 330 और 332 के अधीन लोकसभा तथा राज्य की विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान प्रथम आम चुनाव 1952 से ही आरक्षित किये गये हैं। शुरू में यह व्यवस्था केवल 10 वर्ष के लिए की गई थी जो बाद में दस-दस वर्ष बढ़ाकर अब अनिश्चितकाल तक बढ़ा दी गई है। वर्तमान में, लोकसभा में अनुसूचित जातियों के लिए 82 तथा जनजातियों के लिए 49 स्थान आरक्षित हैं।

(7) पंचायती राज संस्थाओं तथा नगरीय संस्थाओं में आरक्षण

संविधान के 73वें व 74वें संशोधनों (1992) में यह व्यवस्था की गई है कि पंचायती राज की सभी स्तर की संस्थाओं एवं सभी नगरीय संस्थाओं में इन

जातियों के स्थान आरक्षित होंगे। संक्षेप में मूल स्तर पर इन वर्गों की भागीदारी निश्चित कर दी गई है।

शैक्षिक योजनाएँ

केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक विकास के लिए निम्नलिखित योजनाएँ चलाई जा रही हैं-

1. केन्द्र सरकार के सभी विभाग ऐसी योजनाएँ बनाते हैं जिससे इन जातियों का कल्याण हो तथा वे समाज के अन्य वर्गों के समान स्तर प्राप्त कर सकें।
2. ऐसी संस्थाएँ जो अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के विकास व कल्याण के लिए अनुसंधान या प्रशिक्षण कार्य में लगी हुई हैं उन्हें शत-प्रतिशत धन दिया जाता है।
3. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के जो विद्यार्थी चिकित्सा या इंजीनियरिग कॉलेज में पढ़ते हैं, वहाँ तीन विद्यार्थियों के लिए 5000 रुपये तक की पुस्तकों का एक सेट दिया जाता है।
4. मिडिल, हाई स्कूल, कॉलेज तथा विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले अनुसूचित जाति तथा जनजाति की लड़कियों के रहने के लिए छात्रावास स्थापित करने के लिए 50% धन केन्द्र सरकार और 50% राज्य सरकार देती है।
5. शिक्षा के लिए मैट्रिक से पहले उन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दी जाती है जिनके माता-पिता शौचालय साफ करने, चमड़ा सफाई करने आदि का कार्य करते हैं। मैट्रिक के बाद उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं।
6. 1990-91 में आश्रम स्कूलों की योजना आरम्भ की गई। इसके अन्तर्गत लगभग 400 स्कूल खोलने का प्रावधान किया गया।
7. अनुसूचित तथा जनजाति छात्रों के लिए सम्बन्धित जिलों में उनकी जनसंख्या के हिसाब से आरक्षण किया गया है।
8. कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय के अन्तर्गत प्रमुख रूप से प्राथमिक स्तर पर अनुसूचित जाति/जनजाति तथा पिछड़े वर्गों की बालिकाओं के लिए दुर्गम क्षेत्रों में आवासीय सुविधाओं के साथ लगभग 2000 विद्यालय खोलने का प्रावधान किया गया है। इनमें से लगभग 1000 विद्यालय खोले जा चुके हैं।

अन्य पिछड़े वर्गों का विकास

राष्ट्रपति द्वारा संविधान की धारा (अनुच्छेद) 340 के अनुसार सामाजिक तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए आयोगों का गठन किया जाता है जो

NOTES

पिछड़े वर्गों की दशा की जाँच-पड़ताल के बाद उनकी कठिनाईयों को दूर करने के लिए सिफारिशें करता है। इस प्रकार के दो आयोगों का गठन किया गया है।

1. **केलकर आयोग (1953-1955)** : इसकी रिपोर्ट पर कोई निर्णय न लिया जा सका। अतः यहाँ इसके विस्तृत विवरण की आवश्यकता नहीं है।
2. **मण्डल आयोग (1979-1980)** : इसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

   इस कमीशन के अध्यक्ष बी. पी. मण्डल थे। इस कमीशन का गठन 1979 में हुआ तथा इसने अपनी संस्तुतियाँ 1980 में दीं। इस कमीशन के महत्वपूर्ण सुझाव निम्नलिखित हैं-

   (i) सरकारी नौकरियों में पिछड़े वर्गों (जातियों) को 27 प्रतिशत आरक्षण दिया जाए।

   (ii) सरकार द्वारा पिछड़े वर्गों को वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिए अलग से वित्तीय संस्थानों की स्थापना की जाए।

   (iii) पछिड़ी जातियों के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा संचालित सभी वैज्ञानिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक संस्थानों में 24% सीटें आरक्षित की जाएँ।

सरकार का मण्डल आयोग की सिफारिशों पर निर्णय

मण्डल कमीशन की रिपोर्ट पर देश में कुछ समूहों ने जो आरक्षण के विरुद्ध थे, उन्होंने देशव्यापी हड़तालें कीं तथा जुलूस आदि निकाले।

7 अगस्त, 1990 को भारत सरकार ने सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण करने की घोषणा की। कुछ समय बाद कुद संशोधन किया गया, जिसके अनुसार 10% पदों को ऐसे निध न लोगों के लिए रखा जाएगा जो आरक्षण की वर्तमान किसी भी योजना के अन्तर्गत नहीं आते।

मण्डल कमीशन पर उच्चतम न्यायालय का निर्देश

16 नवम्बर, 1992 को उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया। मोटे तौर पर इसमें निम्न बातें कही गई हैं-

1. जो 10 प्रतिशत आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए किया गया था, वह ठीक नहीं है।

2. नौकरियों में जो अधिसूचना 27 प्रतिशत आरक्षण देने के सम्बन्ध में जारी की गई थी, वह सही है।
3. सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार पिछड़े वर्गों में जो आर्थिक रूप से सम्पन्न हैं, उन्हें आरक्षण की सूची से निकाल दिया जाए।

उपरोक्त के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय ने क्रीमीलेयर के विषय में निम्नलिखित निर्देश दिये-

1. केन्द्रीय सरकार, सशस्त्र सेनाओं तथा पब्लिक सेक्टर संस्थानों के प्रथम श्रेणी के अधिकारी।
2. वे व्यक्ति संवैधानिक पदों पर हैं अथवा रह चुके हैं जैसे राष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायधीश आदि मंत्री सदस्य आदि।
3. उपरोक्त के अतिरिक्त कुछ अन्य वर्गों के बच्चों को आय के आधार पर आरक्षण से बाहर रखा गया है।

उच्चतम न्यायालय ने सन् 2006 में अनुसूचितजाति और अनुसूचित जनजाति में सम्पन्न वर्ग को आरक्षण से बाहर रखा।

एन. जी. ओ. के प्रयास

केन्द्र तथा राज्य सरकारों के अतिरिक्त अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के छात्रों तथा व्यक्तियों को सुविधाएँ प्रदान करने के लिए अनेक गैर सरकारी संगठन कार्य कर रहे हैं। इन संगठनों को सरकार की ओर से कई प्रकार की सहायता प्रदानी की जा रही है। सामान्य रूप से ये संगठित निम्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करते हैं-

1. श्रव्य-दृश्य इकाइयों की स्थापना करना अनुसूचित जनजाति विकास के क्षेत्र में वर्ष 2005 में लगभग 400 तथा जनजाति क्षेत्र में लगभग 200 गैर सरकारी संगठनों को अनुदान सहायता उपलब्ध कराई गई।
2. पुस्तकालय खोलना।
3. बालवाड़ियों/शिशु सदनों की स्थापना करना।
4. आशुलिपि तथा टंकण प्रशिक्षण इकाइयों की स्थापना करना।
5. कम्प्यूटर प्रशिक्षण इकाइयों को स्थापित करना।
6. चिकित्सा इकाइयों को स्थायी करना।
7. छात्रवासों का प्रावधान करना।
8. आवासीय विद्यालयों की स्थापना करना तथा चलाना।

शिक्षा सम्बन्धी संस्तुतियाँ

सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा इन जातियों के लिये अनेक प्रयास किये जा रहे हैं, इनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं-

1. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सामुदायिक व्यवस्थाओं के श्रम से जुड़ाव के अतिरिक्त उनका ध्यान अपने समुदायों में शिक्षा के प्रति जागरुकता उत्पन्न करने के लिए शैक्षिक व्यवस्था से जोड़ना।
2. विद्यालयी सुविधाओं की पहुँच में समुचित सुधार लाकर, शिक्षा व्यवस्था को ऐसे लोगों के निवास स्थानों तक पहुँचाना जहाँ पर कभी यह सुविध ा उपलब्ध नहीं करायी गई जैसे मुख्यत: मुश्किल पहुँच वाले क्षेत्र तथा जंगलों में रह रहे अनुसूचित जनजाति के लोग।
3. इन वर्गों के लिये शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करने एवं संख्यात्मक आध ार में सुधार लाने के लिए जिस प्रकार पहले प्रयास किए गए हैं इन प्रयासों के अतिरिक्त अनुसूचित जाति/अनसूचित जनजाति तथा समानता सुनिश्चित करते हुए शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार लाने पर विशेष बल होना चाहिए।
4. विद्यालयों में कमजोर वर्ग के बच्चों की उपस्थिति ठहराव, एवं सम्प्राप्ति स्तर का नियमित मूल्यांकन करना।
5. इन वर्गों में उपलब्ध स्थानीय शिक्षकों का उपयोग करना तथा उनकी क्षमता अभिवृद्धि हेतु प्रयास करना।
6. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्यों, ग्राम शिक्षा समिति/शिक्षक माध्यमिक संघ की अत्यधिक भागीदारी, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति समुदायों द्वारा विद्यालय प्रबंध को अपनी मिल्कियत/अपना समझने की व्यवस्था सुनिश्चित करना।
7. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लोगों के मध्य संचारित समुदाय आधारित संस्थाओं जैसे शिक्षा समिति/शिक्षक अभिभावक संघ इत्यादि के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना।
8. विभिन्न सुदूर क्षेत्रों में निवास करने वाले अनुसूचितजाति/ अनुसूचित जनजाति की आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति के लिए विशेष प्रयास कर उनके लिए छात्रावास, विशेष सुविधाओं एवं प्रोत्साहन योजनाओं के अन्तर्गत संसाधनों की व्यवस्था करना।
9. आदिवासी कल्याण विभाग, आदिवासी विकास संस्थाएँ और शिक्षा विभाग को आपस में एक साथ मिलकर सुदृढ़ता के साथ कार्य करना।

10. आदिवासी क्षेत्रों की भौगोलिक एवं सम्प्रेषण समस्याओं को ध्यान में रखते हुए, अनुश्रवण प्रक्रिया को विकेन्दित कर पुनर्निर्माण का कार्य अति महत्वपूर्ण है। ग्राम शिक्षा समितियों को शैक्षिक व्यवस्था की देखभाल एवं अनुश्रवण के क्षेत्र में प्रशिक्षित किया जाना।
11. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के मध्य शैक्षिक विकास के सन्दर्भ में वातावरण सृजन की एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाना।
12. सामग्री की व्यवस्था करना/आवश्यकतानुसार, शिक्षण कार्य में स्थानीय भाषा एवं संवादों का प्रयोग, विशेषकर छोटी कक्षाओं के लिए सूक्ष्म-स्तर के नमूनों का निर्माण करना।
13. जनजाति के विद्यार्थियों के लिए स्थानीय आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम का चुनाव प्रोत्साहन योजनाओं के अंतर्गत संसाधनों की व्यवस्था करना।
14. स्थानीय आवश्यकतानुसार जनजाति बाहुल्य क्षेत्र में विद्यालय सारणी तैयार करना।

अल्पसंख्यकों की शिक्षा

किसी सम्प्रदाय अथवा धर्म के आधार पर व्यक्ति जिस धर्म अथवा सम्प्रदाय को मानते हैं, वे बहुसंख्यक कहे जाते हैं। बहुसंख्यक सम्प्रदाय अथवा धर्म के अतिरिक्त जो व्यक्ति समाज में रहते हैं, उनकी संख्या कम होती है, उन्हें सरल शब्दों में अल्पसंख्यक कहा जाता है।

यद्यपि भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं परन्तु उन्हें परिभाषित नहीं किया गया है। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम 1992 के तहत पाँच धार्मिक समुदायों को अल्पसंख्यक अधि सूचित किया गया है। इन सम्प्रदायों के नाम निम्नलिखित हैं-

1. मुसलमान, 2. ईसाई, 3. सिख, 4. बौद्ध, 5. पारसी।

इसके बाद जैन अनुयायियों को भी अल्पसंख्यक घोषित किया जा चुका है।

भारत में अल्पसंख्यकों की जनसंख्या

अल्पसंख्यकों की जनसंख्या देश की कुल आबादी का 18.47 प्रतिशत है।

अल्पसंख्यकों के लिये प्रावधान

संविधान के भाग III में संस्कृति तथा शिक्षा संबंधी अधिकार के अन्तर्गत दो अनुच्छेदों 29 और 30 में अल्पसंख्यकों के विषय में दिशा निर्देश दिए गए है जो निम्नलिखित हैं-

1. अनुच्छेद 29 (1) – इस अनुच्छेद के अनुसार भारत या भारत के किसी भी भू-भाग में रहने वाले नागरिकों के किसी भी ऐसे जन-समूह

को जिसकी अपनी पृथक् भाषा, लिपि या संस्कृति है, को यह अधिकार है कि वह अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति को बनाए रखें।

2. अनुच्छेद 29 (2) – यहाँ प्रावधान है, कि यदि कोई शैक्षिक संस्था राज्य द्वारा या राज्य की सहायता से संचालित की जा रही है तो उसमें प्रवेश के लिए वंश, जाति, धर्म और भाषा या इनमें से किसी एक के आधार पर भेद-भाव नहीं किया जाएगा।
3. अनुच्छेद 30 (1) – यहाँ यह प्रावधान किया गया है कि सभी अल्पसंख्यकों को चाहे वे धर्म या भाषा-सम्बन्धी क्यों न हों अपनी इच्छा की शैक्षिक संस्थाओं का संचालन करने का अधिकार है।
4. अनुच्छेद 30 (2) – इस अनुच्छेद के अनुसार शैक्षिक संस्थाओं को अनुदान देते समय राज्य इस कारण भेदभाव नहीं करेगा कि किसी शैक्षिक संस्था का संचालन किसी धर्म या भाषा सम्बन्धी अल्पसंख्यकों के वर्ग के प्रबन्ध में है।
5. अनुच्छेद 350A— मातृभाषा में प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की सुविधाएँ इसके अन्तर्गत प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय शासन भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों की शिक्षा के प्रथम स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकता है जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित करने के लिए अवश्य या उचित समझता है।
6. अनुच्छेद 350B(1)— यहाँ भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए एक विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।
7. 350B(2)— इस प्रावधान के अन्तर्गत विशेष अधिकारी का यह कर्त्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए उपबन्धित रक्षा उपायों से संबंधित सभी विषयों के सम्बन्ध में ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा तथा सम्बन्धित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।

अल्पसंख्यकों की साक्षरता दर

भारत में समय के साथ-साथ अल्पसंख्यकों की साक्षरता में वृद्धि हो रही है, किन्तु इसमें हमें विविधता देखने को मिलती है। इसे हम तालिका से समझ सकते हैं-

तालिका (जनसंख्या%)

	कुल औसत	हिन्दू	मुस्लिम	ईसाई	सिख	बौद्ध
साक्षरता दर	64.8	65.1	59.1	80.3	69.4	727
जनसंख्या%	100	80.46	13.43	02.34	0.167	0.105

धर्म के अनुसार भारत में साक्षरता दर।

अल्पसंख्यकों के कल्याण के प्रयास

केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए मुख्यत: अग्रलिखित उपाय किए जा रहे हैं-

(1) राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग

1993 में अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना की गई। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. रोजगार सम्बन्धी मामलों को निपटाना।
2. पुलिस द्वारा की जाने वाली ज्यादतियों को निपटाना।
3. ऊपरलिखित के बारे में शिकायतों की जाँच करने के बाद संबंधित अधिकारियों के रिपोर्ट मांगना उन्हें समुचित सलाह देना।
4. अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थानों तथा धार्मिक संबंधी विवादों को निपटना।

(2) राष्ट्रीय धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यक आयोग

2005 में इस आयोग ने काम करना शुरू किया। आयोग का निम्नलिखित कार्य क्षेत्र है-

1. धार्मिक तथा भाषायी अल्पसंख्यकों के सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के कल्याण के उपाय सुझाना। ये उपाय शिक्षा तथा सरकारी नौकरियों में आरक्षण के सन्दर्भ में भी होंगे।
2. धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों के सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों की पहचान के सम्बन्ध में परामर्श देना।
3. उपरोक्त सुझावों को लागू करने के लिए आवश्यक संवैधानिक कानूनी और प्रशासनिक उपाय सुझाना और उनकी संस्तुतियों के बारे में रिपोर्ट पेश करना।

(3) भाषायी अल्पसंख्यको के लिए विशेष अधिकारी

भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी का कार्यालय जो भाषायी अल्पसंख्यक के रूप में जाना जाता है, 1957 में स्थापित किया गया है। यह अधिकारी उन सभी मामलों की जाँच करता है जो संविधान में दिए गए प्रावध

ानों की पूर्ति नहीं करते हैं। इनसे उत्पन्न शिकायतों को दूर करने के उपाय यह अधिकारी सुझाता है।

(4) केन्द्रीय वक्फ परिषद्

1964 में केन्द्र सरकार ने वक्फ की स्थापना की। वक्फ ऐसे कार्यों के लिए स्थायी रूप से दान की गई चल या अचल संपत्तियाँ हैं जो मुस्लिम कानून के अनुसार पवित्र माने जाते हैं। वक्फ के पास करोड़ों रुपयों की संपत्ति है। वक्फ के प्रभारी केन्द्रीय मंत्री वक्फ परिषद् के अध्यक्ष हैं। वक्फ द्वारा चलाई जाने वाली योजनाएँ हैं- (1) शैक्षिक विकास कार्यक्रम, (2) शहरी वक्फ संपत्तियों का विकास।

(5) प्रधानमंत्री का पन्द्रह-सूत्री अल्पसंख्यक कल्याण कार्यक्रम

2006 में यह कार्यक्रम चालू किया गया। इसके अन्तर्गत अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए जिसमें शिक्षा एक महत्वपूर्ण घटक है, विकास सम्बन्धी कार्य किए जा रहे हैं।

(6) मौलाना आजाद एजुकेशन फाउंडेशन

यह एक पंजीकृत सोसाइटी है। इसका उद्देश्य समाज के शैक्षिक रूप से पिछड़े लोगों विशेषकर अल्पसंख्यकों में शिक्षा का प्रसार करना है। इस सोसाइटी को भारत सरकार संचित निधि उपलब्ध कराती है। अल्पसंख्यकों की इसके द्वारा शिक्षा के लिए अनेक योजनाएँ चलाई जा रही हैं। यह फाउंडेशन लड़कियों के लिए देश के अनेक राज्यों में छात्रवृत्तियाँ दे रहा है। यह फाउंडेशन साक्षरता में भी कार्य कर रहा है।

मार्च 2005 में प्रधानमंत्री कार्यालय, भारत सरकार ने इस समिति का गठन किया। समिति के कुल सात सदस्य थे। न्यायाधीश राजेन्द्र सच्चर इस समिति के अध्यक्ष थे। नवम्बर 2006 में समिति ने अपनी संस्तुतियाँ भारत सरकार को दी। समिति के कार्यक्षेत्र में मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं-

1. क्या मुस्लिम समुदाय को शिक्षा आदि के क्षेत्र में उच्च सुविधाएँ मिल रही हैं।
2. उनकी आय उच्च वर्गों की तुलना में किस अनुपात में है?
3. मुख्यतः वे विभिन्न भागों में जीवन निर्वाह के लिए कौन-कौन से व्यवसाय करते हैं?
4. भारत के किन राज्यों, क्षेत्रों, जिलों तथा ब्लॉकों में मुस्लिम मुख्य तौर पर रहते हैं?

समिति की मुख्य सिफारिशें

अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिये समिति ने अनेक सुझाव दिये, इनमें से प्रमुख सुझावों का वर्णन इस प्रकार है-

1. जिन क्षेत्रों में उर्दू भाषायी लोगों का बहुमत है वहाँ पर प्राथमिक स्तर पर उर्दू को शिक्षा का माध्यम बनाया जाए।
2. 1-12 ग्रेड में पढ़ने वाली छात्राओं के लिए लड़कियों के स्कूल खोले जाएँ।
3. मुस्लिम समुदाय की जहाँ पर अधिक जनसंख्या है वहाँ पर उच्च गुणवत्ता वाले स्कूल खोले जाएं।
4. सहशिक्षा स्कूलों में अधिक संख्या में अध्यापिकाओं की नियुक्ति की जाए।
5. दसवीं कक्षा में फेल होने पर अथवा उससे पहले जो मुस्लिम बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं, उनके लिए तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।
6. इस सन्दर्भ में नीति निर्धारण की अत्यन्त आवश्यकता है। मदरसों में पढ़े हुए छात्रों को प्रशासनिक सेवा, बैंक, रक्षा सेवा आदि भर्ती में उनकी शैक्षिक योग्यता के अनुसार पात्र माना जाए। आवश्यकतानुसार मदरसों के पाठ्यक्रमों में इस दिशा में वांछित परिवर्तन किए जाएँ।
7. मदरसों में दी जाने वाली उपाधियों को अन्य मान्यता प्राप्त उपाधियों के समतुल्य मान्यता देने की कार्य विधि का निर्माण किया जाए।
8. हिन्दी क्षेत्रों में उर्दू को इसका स्थान देकर त्रि-भाषा सूत्र का कार्यान्वयन किया जाए।
9. उर्दू भाषा केवल मुसलमानों की भाषा नहीं है। इस भाषा की अवहेलना की गई है। इसका परिणाम निकला है, बच्चों को उनकी मातृभाषा उर्दू में पढ़ने की अपर्याप्त व्यवस्था, उर्दू भाषायी स्कूलों में उर्दू पढ़ाने वाले अध्यापकों की कमी रही है। इसी प्रकार उर्दू माध्यम स्कूलों में भौतिक सुविधाओं का भी अभाव रहा है। इन कमियों को दूर किया जाए।
10. जिन राज्यों उर्दू भाषीय जनसंख्या अधिक हैं वहाँ पर प्रशिक्षण लेने वाले उन प्रार्थियों को जो उर्दू माध्यम में पढ़ा सकते हैं, प्राथमिकता दी जाए।
11. प्राथमिकता के आधार पर अल्पसंख्यकों के छात्रों को छात्रावास की सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। इन छात्रावासों के लिए सरकार तथा समुदाय मिलकर साधन जुटाएँ। मुस्लिम वक्फ परिषद् भी इसमें योगदान दें।

NOTES

12. उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के मानकों में परिवर्तन लाया जाए। अत्यन्त पिछड़े वर्गों को अंकों में छूट दी जाए।
13. अल्पसंख्यक संचालित उच्च शिक्षा संस्थाएँ निर्धन छात्रों से कम फीस लें तथा छात्रवृत्तियों का प्रावधान करें।
14. निजी कॉलेजों को जिसमें अल्पसंख्यक संचालित कॉलेज भी हैं, अतिरिक्त निधि दी जाए, यदि उनमें विभिन्न वर्गों के छात्र शिक्षा प्राप्त करते हों। ये संस्थाएँ तर्कसंगत शुल्क छात्रों से लें।
15. औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं (ITI) में प्रवेश के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता कक्षा 8 पास कर दी जाए।

भारत सरकार ने इन संस्तुतियों के कार्यान्वयन के लिए एक समिति का गठन 2007 में किया। इसके अनुसार अल्पसंख्यकों की शिक्षा के लिए अनेक योजनाएँ चलाई जा रही हैं। अल्पसंख्यक क्षेत्रों में शैक्षिक संस्थाएँ प्राथमिकता के आधार पर खोली जा रही है। परम्परागत पाठ्यक्रम के साथ-साथ नवीन पाठ्यक्रम जोड़े जा रहे हैं।

धर्म और शिक्षा

रौस के मतानुसार, "शिक्षा का आधार यदि धार्मिक है, तो वह हमारा पथ-प्रदर्शन ठीक कर सकती है तथा नवयुवकों को मूल्यों के मार्ग पर ले जा सकती है।"

राजवर्न के मतानुसार, "यहाँ के जनतंत्र के विद्यालयों का कार्य धर्म के कारण सरलापूर्वक चल सकता है।"

धर्म क्या है

धर्म की परिभाषा भारत में सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन को सुखमय बनाने के विचार से आरम्भ हुई है, जो आगे चलकर मुक्ति का लक्ष्य रखने लगी। यह मुक्ति पहले सम्पूर्ण समूह के लिए थी बाद में व्यक्तिगत हो गई, जिसमें धर्म आध्यात्मिक रूप में मुक्ति या मोक्ष का मार्ग बना। वेदों में प्राकृतिक तत्वों की उपासना हुई, जिसमें जीवन में सुख मिले और काम पूरा हो सके।

सामाजिक दृष्टिकोण से, "धर्म वह है, जिसमें इस लोग में उन्नति हो तथा परलोक की प्राप्ति है।"

जॉन के अनुसार, "आकाश गंगा के निर्माता एवं शासक के प्रति भक्ति और उसके जीवों के प्रति मेरी परोपकारिता ही धर्म है।"

धर्म और शिक्षा का सम्बन्ध

रॉस के शब्दों में, आज भी बढ़ती हुई संख्या में विचारशील व्यक्तियों का विश्वास है कि यदि शिक्षा के द्वारा सभ्यता को उच्च मात्रा में बढ़ाना और

कायम रखना है तथा उसकी समय-समय पर होने वाली सभ्यता और पाशविकता करना है तो उसे धर्म पर आधारित करना चाहिए।

धर्म जीवन का अंग है और शिक्षा जीवन की वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति के व्यवहारों, प्रवृत्तियों एवं संवेगों में परिवर्तन का सुधार होता है। यही कारण है कि धर्म और शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवनारम्भ के साथ-साथ होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से शिक्षा और धर्म घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। वास्तव में धर्म सत्यं और सुन्दरं की पूर्ण प्राप्ति में सहायक होता है, जो शिक्षा का लक्ष्य है। इसलिए कुछ लोग धर्म को "शिक्षा की पहली" मानते हैं, इसी कारण "सा विद्या या विमुक्तये" का लक्ष्य हमारे सामने रहा है।

भारत में ही नहीं विदेशों में भी धर्म और शिक्षा में गहरी घनिष्ठता बताई गई है। इस सम्बन्ध में निकोलस और बटलर का कथन है-

"यदि शिक्षा को केवल निर्देश नहीं कहा जा सकता, तो वह क्या है? इस शब्द का क्या तात्पर्य है? मैं उत्तर देता हूँ, अपनी शक्तियों को अनुभव करने तथा जिसे हम सभ्यता कहते हैं, उसके जटिल विचारों, कार्यों और संस्थाओं को आगे बढ़ाने में सहायता करने के विचार में जाति के आध्यात्मिक स्वत्वों के साथ क्रमिक व्यवस्थापन शिक्षा का अर्थ होना चाहिए।"

इस दृष्टि से इंग्लैण्ड की स्पेस कमेटी, भारत में राधाकृष्णन आयोग एवं मुदालियर आयोग ने धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा के लिए जोरदार सिफारिश की है। इंग्लैण्ड के पत्र "टाइम्स" ने प्रकाशित किया है, "किसी भी शिक्षा को शिक्षा कहलाने के लिए धर्म को अपना आधार बनाना चाहिए।" स्पेन्स रिपोर्ट ने भी जोरदार घोषणा की कि, "कोई लड़का या लड़की उचित ढ़ंग से तब तक शिक्षित न माना जायेगा जब तक वह जीवन की धार्मिक व्याख्या के अस्तित्व से सचेत न हो।"

येक्रेन के अनुसार, "धर्म का तात्पर्य अन्तरामय आत्मा और जीवन में उसकी महानतम शक्ति के विकास से है।"

धर्म-शिक्षा का क्या उद्देश्य होता है?

1. जीवन का सुधार और अच्छे गुणों का विकास है। अच्छे गुणों को विकसित करने में आध्यात्मिकता, नैतिकता और चारित्रिकता के विकास को रखा जा सकता है।

2. भावनाओं का उदात्तीकरण है। धर्म की शिक्षा के द्वारा यह चेष्टा की जाती है कि व्यक्ति में श्रद्धा, भक्ति, व्यक्ति का आदर, समाज के प्रति कर्तव्य-अकर्तव्य आदि भावों का विकास हो उसमें व्यक्ति का मन ऊँचा उठे।

3. **व्यक्तित्व का विकास** - व्यक्ति जब ऊँचे, गुणों, आदर्शों, ज्ञान, विवेक आदि को प्राप्त करेगा तो उसके व्यक्तित्व का विकास अवश्य होगा।

आचरण - आदत, ज्ञान, कौशल आदि की सुरक्षा करना भी है। वास्तव में व्यक्ति की अपनी तथा समाज की "संस्कृति" का धर्म से बहुत सम्बन्ध रहता है। इनसे धर्म शिक्षा संस्कृति का संरक्षण भी करता है।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. लैंगिक असमानता तथा नारी शिक्षा के विषय में आपके क्या विचार हैं? विस्तार से समझाइये।
2. अनुसूचित जाति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उनके शैक्षिक सुधार के लिये किये जा रहे प्रयासों की व्याख्या कीजिए।
3. अल्पसंख्यक का क्या अर्थ है? संविधान में उनके लिये क्या प्रावधान किये गये हैं?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वेदों में नारी का क्या स्थान है?
2. भारतीय संविधान में नारी समानता के लिये क्या प्रावधान है?
3. अनुसूचित जाति के विकास के लिये संवैधानि प्रावधान लिखिये।
4. मण्डल कमीशन से आप क्या समझते हैं?
5. मण्डल कमीशन पर सर्वोच्च न्यायालय ने क्या निर्देश दिये?
6. भारत में अल्पसंख्यकों की जनसंख्या पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखये।
7. भारत में अल्पसंख्यकों की साक्षरता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

4 शैक्षिक अवसरों की समानता व असमानता

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- शैक्षिक अवसर की समानता का अर्थ
- शैक्षिक अवसर की समानता को प्राप्त करने की विधियाँ
- शैक्षिक अवसर की समानता का प्रावधान
- शिक्षा के क्षेत्र में समानता के आदर्शों की प्राप्ति
- अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- अध्याय का संक्षिप्तकार
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे-

- शैक्षिक अवसर की समानता का अर्थ
- शैक्षिक अवसर की समानता को प्राप्त करने की विधियाँ
- शैक्षिक अवसर की समानता का प्रावधान
- शिक्षा के क्षेत्र में समानता के आदर्शों की प्राप्ति
- अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- अध्याय का संक्षिप्तकार

प्राक्कथन

आज किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक है कि उस राष्ट्र के सभी नागरिक शिक्षित हों। शिक्षा के बिना कोई भी देश विकास की दौड़ में सफल नहीं हो सकता। इसके लिए आवश्यक है कि सभी लोगों को शिक्षा के लिए आवश्यक सभी सुविधाएँ उचित व समान रूप से उपलब्ध कराई जाये। इसी के साथ प्रत्येक राष्ट्र व समाज का यह दायित्व भी होना चाहिए कि वह प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के उसके अंतर्गत समाहित प्रतिभाओं को विकसित करने के लिए आवश्यक सुविधायें प्रदान करें।

शैक्षिक अवसर की समानता का अर्थ

भारत में प्राचीनकाल से शिक्षा पर कुछ विशिष्ट वर्गों का ही अधिकार रहा है। पहले शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार केवल सुवर्ण जाति के लोगों को ही था। अन्य वर्ग के लोगों के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। अंग्रेजी शासन के समय शिक्षा उच्च्व वर्ग के लिए सीमित थी। इस युग में जो व्यक्ति अंग्रेजी सीखना चाहता था उसी को शिक्षा सुविधाएँ उपलब्ध थीं। इसीलिए अधिकांश प्रतिभाशाली और कुशाग्र बुद्धि के बच्चे निर्धनता के कारण शिक्षा से वंचित थे। इसी के साथ जाति, धर्म, सम्प्रदाय एवं लिंग के आधार पर भी शिक्षा में भेदभाव किया जाता था।

1947 के अन्तर्गत जब भारत आजाद हुआ, तत्पश्चात् भारत सरकार ने समस्त जाति के लोगों की शिक्षा पर ध्यान दिया। 1950 में भारत का संविध ान लिखा गया तब इस बात पर विशेष बल दिया गया कि किसी भी व्यक्ति के साथ जाति, वर्ण, लिंग, रंग आदि के आधार पर शिक्षा में भेदभव न किया जाये तथा योग्यता के अनुसार सभी को समान अवसर उपलब्ध कराये जायें।

भारतीय संविधान में सभी नागरिकों को स्वतंत्रता व समानता का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है। इसमें प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है कि वह शिक्षा के क्षेत्र में समान अवसर की मांग करे। संविधान के अनुसार जाति-पाति, रंग, धर्म, लिंग भेद के आधार पर किसी भी व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार शिक्षा के समान अवसर प्राप्त कर सकता है। अन्य शब्दों में कहा जाये तो शैक्षिक अवसरों की समानता से आशय है कि प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करने के अवसर समान रूप से प्राप्त होंगे। इस प्रकार सभी बालक अपनी योग्यता, क्षमता एवं रूचि के अनुसार शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।

कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) के अनुसार- "शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है, सबको समान अवसर प्रदान करना, जिससे पिछडे हुए तथा

सामाजिक सुविधाओं से वंचित वर्गों के बच्चे भी अपनी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए शिक्षा को साधन के रूप में प्रयुक्त कर सकें।"

किसी भी समाज की उन्नति में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा के द्वारा ही समाज में विकासशील परिवर्तन होते हैं। इसीलिए यह आवश्यक है कि सभी को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त हों। शिक्षा के द्वारा ही समाज से कुरीतियाँ, अन्धविश्वास एवं रूढ़िवादिता समाप्त हो सकती है। समाज के दलित, शोषित एवं पीड़ित वर्ग को जब शिक्षा के समान अवसर प्राप्त होंगे, तो उनका जीवन-स्तर से सुधरेगा ही, साथ ही समाज भी गतिशील होगा। इसीलिए सामाजिक परिवर्तन हेतु शिक्षा के अवसरों में समानता लाना अत्यंत आवश्यक है।

शैक्षिक अवसर की असमानता के कारण

भारत में शैक्षिक अवसर की असमानता के विभिन्न कारण हैं। वर्तमान परिदृश्य में देखा जाये तो शिक्षा में असमानता की स्थिति अत्यंत जटिल है। एक ओर जहाँ कुछ बच्चे ऊँची इमारतों की एसी कक्षाओं में अध्ययन कर रहे हैं। वहीं कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें क, ख, ग लिखने के लिए ब्लैकबोर्ड तक नहीं मिले हैं। शैक्षिक अवसरों की असमानता के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं -

1. देश के विभिन्न राज्यों में निर्जन एवं पहाड़ी क्षेत्र हैं जहाँ अभी तक शिक्षण सुविधाओं का अभाव है। ऐसे क्षेत्रों में विद्यालय तक उपलब्ध नहीं हैं। अतः यहाँ के निवासियों को शिक्षा के समान अवसर नहीं प्राप्त हो पा रहे।
2. हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवनयापन करती है। ऐसे लोगों का प्रथम लक्ष्य अपने लिए दो वक्त की रोटी की व्यवस्था करना होता है। इसीलिए ये अपने बच्चों को भी विभिन्न प्रकार की मजदूरी में लगा देते हैं। इन परिस्थितियों में शिक्षा के समान अवसरों की कल्पना करना उचित नहीं है।
3. ऐसे संस्थान जो आर्थिक दृष्टि से संपन्न हैं वहाँ बच्चों के लिए उत्तम कोटि की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं, वहीं कई विद्यालयों में स्थिति ऐसी है कि बच्चों को खुले आसमान के नीचे शिक्षा ग्रहण करनी पड़ रही है।
4. प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में हमारे देश में अनेक प्रयास किये जा रहे हैं जिससे प्रत्येक बच्चा विद्यालय पहुँचे। परन्तु यदि वास्तविकता पर नजर डाली जाये तो हम देख सकते हैं कि आज भी निर्बल वर्ग के बच्चे शिक्षा

सुविधाओं से वंचित हैं। पहले तो वे विद्यालय जाते ही नहीं, और अगर जाते भी हैं तो घरेलू आवश्यकताओं के कारण शिक्षा पूर्ण किये बिना ही विद्यालय छोड़ देते हैं।

5. निर्बल वर्ग के बच्चों को संपन्न घरों की अपेक्षा कम सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, जैसे घर का वातावरण, कोचिंग, आदि।
6. माध्यमिक स्तर पर भी निर्धन वर्ग के बच्चे आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण संपन्न घरों के बच्चों से पीछे रह जाते हैं। इनके लिए छात्रवृत्ति की भी कोई संतोषजनक व्यवस्था नहीं है।
7. उच्च शिक्षा के अन्तर्गत यह स्थिति और भी विकट हो जाती है। उच्च संस्थाएं अधिकांशतः शहरी क्षेत्र में होने के कारण उच्च वर्ग या मध्यम वर्ग के बच्चे ही लाभ उठा पाते हैं जबकि निर्बल वर्ग के बच्चे उच्च शिक्षा से संपूर्ण लाभ नहीं ले पाते हैं।
8. जिन संस्थाओं में प्रवेश मेरिट के आधार पर होता है वहां भी उच्च वर्ग के बच्चे निर्बल वर्ग के बच्चों को पीछे छोड़ देते हैं।
9. जब किसी विश्वविद्यालय या अन्य संस्थाओं में प्रवेश माध्यमिक स्तर की परीक्षा के अंकों के आधार पर किया जाता है तो शहरी क्षेत्र के बच्चे ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों की अपेक्षा अधिक सफल होते हैं।
10. शहरी क्षेत्र के बच्चों के माता-पिता अधिकांशतः पढ़े-लिखे होते हैं जबकि ग्रामीण क्षेत्रों के अनपढ़, यही कारण है कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों में समानता की बात करना उचित नहीं है।
11. हमारे देश में बालिकाओं की अपेक्षा बालकों की शिक्षा पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है, जो कि शैक्षिक विषमता का एक महत्वपूर्ण कारण है।

शैक्षिक अवसर की समानता को प्राप्त करने की विधियाँ

भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली से वास्तविक एवं सर्वाधिक लाभ साधन-संपन्न, धनीवर्ग और शहरी वर्ग के लोगों को हो रहा है। इस प्रणाली का लाभ निर्धन, निर्बल और सुविधाविहीन लोगों को नहीं हो पा रहा है। अतः आज की स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक है कि ऐसी शिक्षा प्रणाली को विकसित किया जाये जो सभी वर्गों को लाभ पहुंचाए और सबके लिए शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध करे।

1. काठारी आयोग (1964-66) ने लोक शिक्षा की "समान स्कूल व्यवस्था" को ग्रहण करने की सलाह दी है। यह एक ऐसी अवधारणा है जो योग्यता के आधार पर शिक्षा प्रदान करती है। इस व्यवस्था के अनुसार-

- सभी वर्ग के बच्चों को बिना किसी भेदभाव (जाति, सम्प्रदाय, समाज, धर्म, आर्थिक परिस्थिति और सामाजिक प्रतिष्ठा) हेतु शिक्षा के समान अवसर सुलभ हों।
- बच्चों को उनकी प्रतिभा के अनुसार शिक्षा के समान अवसर प्राप्त होने चाहिए।
- ऐसी शिक्षण संस्थाएं स्थापित की जाएं जिसमें सभी प्रकार की उत्तम शिक्षण व्यवस्था हो।
- बच्चों से किसी प्रकार का कोई शुल्क नहीं लिया जायेगा।
- ये ऐसी संस्थाएं होंगी जिसके कारण अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों को महंगे विद्यालयों में नहीं भेजना पड़ेगा।
- ये संस्थाएं देश के समस्त भागों में हो साथ ही इनमें स्कूल शिक्षा की सभी अवस्थाएं सम्मिलित हों।

आचार्य राममूर्ति समिति (1990) के अनुसार "शिक्षा आयोग को रिपोर्ट के समय से अर्थात 25 वर्ष से भी अधिक समय से समान स्कूल प्रणाली का अस्तित्व मात्र रहा है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वर्तमान सरकार को स्थानीय निकाय तथा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों को उनकी स्थिति में सुध ार करके वास्तविक पड़ोसी स्कूलों में परिवर्तित करना होगा। उसी प्रकार प्राइवेट स्कूलों को भी अपने द्वारा सभी योग्य बच्चों के लिए खोलने चाहिए।"

1. शिक्षा शुल्क निर्धन और निर्बल वर्ग को शिक्षा से दूर करने का एक प्रमुख कारण है। अत: ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि 10वीं तक की शिक्षा नि:शुल्क हो जाये। और आगे की शिक्षा का भी लक्ष्य यही होना चाहिए जिससे सभी बच्चों को समान अवसर प्राप्त हो सकें।
2. आज शिक्षा में अनेक प्रकार के व्यय बढ़ गए हैं जैसे कि पाठ्य-पुस्तकें, स्टेशनरी, सह-पाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप आदि। निर्बल व निर्धन वर्ग के बच्चे इतना अधिक व्यय करने में समर्थ नहीं होते। अत: इस प्रकार के कार्यक्रम बनाने चाहिये कि जरूरतमंद और योग्य छात्रों को स्टेशनरी नहीं तो पाठ्य-पुस्तकें ही कम दामों में प्राप्त हो सकें।
3. शैक्षिक अवसरों में समानता लाने के लिए छात्रवृतियां भी एक उत्कृष्ट उपाय है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि योग्य और जरूरतमंद छात्रों की शिक्षा आगे संचालित रहे, उनके लिए छात्रवृति की व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. विकलांग बच्चों को भी ऐसी उपयोगी शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए कि वे भी सामान्य बच्चों की विजय पाने योग्य बनाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति

NOTES

1986 में भी स्पष्ट किया गया है कि विकलांगों को शिक्षा देने का प्रमुख उद्देश्य उन्हें समाज के साथ कंधे से कन्धा मिलकर चलने योग्य बनाना है जिससे वे साहस के साथ अपना जीवन यापन कर सकें। इस प्रकार की शिक्षा को 'विशेष शिक्षा' कहा जाता है।

5. जो बच्चे पूर्णकालिक शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं उनके लिए अंशकालिक अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों की व्यवस्था की जानी चाहिए। अनौपचारिक शिक्षा मुख्यत: पिछड़े राज्यों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ऐसे केन्द्रों का वित्तीय दायित्व केंद्र और राज्य सरकारें 60.40 के अनुपात में वहन करती हैं।
6. बालिकाओं की शिक्षा को भी प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से अधिकांश योजनायें चलायी जा रही हैं।
7. नई शिक्षा नीति के अनुसार निर्धन, ग्रामीण और योग्य बच्चों के लिए नवोदय विद्यालय स्थापित किये जा रहे हैं जिससे उन्हें अच्छी शिक्षा मिल सके।
8. नौकरीपेशा व्यक्तियों को उच्च शिक्षा में आगे बढ़ने के लिए मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित किए गए हैं। जिससे वे काम के साथ-साथ पढ़ाई भी कर सकें।

शैक्षिक अवसर की समानता का प्रावधान

शैक्षिक अवसरों में समानता लाने हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि उन क्षेत्रों की ओर अधिक ध्यान दिया जाये जिनमें समानता लाना आवश्यक है। ये क्षेत्र निम्नलिखित हैं-

1. अनुसूचित जाति की शिक्षा (Education for scheduled castes)
2. निशक्तजनों की शिक्षा (Education of disabled)
3. जनजातियों की शिक्षा (Tribal-education)
4. स्त्री शिक्षा (Women education)

अनुसूचित जाति की शिक्षा (Education for scheduled castes)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में अनुसूचित जाति की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की बात कही गई है। इसलिए वर्तमान में इस जाति की एक बड़ी जनसंख्या आज भी शिक्षा से वंचित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस दिशा में निम्नलीखित सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं जिसके द्वारा इनकी शिक्षा में सुधार किया जा सके-

1. विद्यालय भवन ऐसी जगहों में खोले जायें जहाँ छात्र सरलता से पहुँच सकें।
2. अनुसूचित जाति के शिक्षकों की नियुक्ति की जाये।
3. बालकों को छात्रवृतियां प्रदान की जाये।
4. जिला मुख्यालयों में छात्रावास की व्यवस्था की जाये।
5. ऐसे बच्चे जो विद्यालय छोड़ रहे हैं उनके लिए अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था की जाये।
6. निर्बल और निर्धन को अपने बच्चों को 14 वर्ष की आयु तक विद्यालय भेजने के लिए प्रोत्साहित किया जाये।

निशक्तजनों की शिक्षा (Education of disabled)

कोठारी आयोग ने निशक्तजनों की शिक्षा के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं-

1. निशक्तजनों की शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रही संस्थाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
2. नवीन प्रयोगो के आधार पर इन बालकों को शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
3. इन बालकों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे ये अपना जीवन-यापन कर सकें।
4. यदि संभव हो तो चालकीय बाधाओं वाले बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ ही शिक्षा देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. ऐसे बालकों को शिक्षा देने वाले अध्यापकों को विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

जनजातियों की शिक्षा (Tribal-education)

हंटर आयोग ने जनजातीय शिक्षा में सुधार के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए हैं-

1. जनजातीय शिक्षा के अन्तर्गत सुधार कार्यक्रम चलाने वाली संस्थाओं को सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।
2. शिक्षकों के लिए विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए।
3. शिक्षा पूर्णतः निःशुल्क प्रदान की जाये।

4. जहाँ तक संभव हो शिक्षकों का चयन भी जनजातीय समाज द्वारा किया जाना चाहिए।
5. शिक्षा का माध्यम इनकी भाषा होगी तो ये आसानी से समझ सकेंगे।
6. सरकार द्वारा जनजातियों की शिक्षा में विशेष सुधार दिया जाना चाहिए।

शिक्षा आयोग ने भी जनजातियों की शिक्षा में सुधार हेतु जो सुझाव दिए हैं वे निम्नलिखित हैं-

1. शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा होना चाहिए।
2. जनजातियों को पढ़ाने वाले शिक्षकों को इनकी संस्कृति और जीवन शैली से संबंधित जानकारी होनी चाहिए।
3. विद्यालयों में किये जाने वाले क्रिया-कलाप जनजातियों के अनुकूल होने चाहिए।
4. जिन क्षेत्रों में आबादी कम है वहां आश्रम विद्यालय की स्थापना की जायें जिनमें निःशुल्क रहना, खाना, वस्त्र, शिक्षा व अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराई जायें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में जनजातीय वर्ग के उत्थान हेतु निम्नलिखित प्रावधान किये हैं-

1. राज्य एवं केंद्र सरकार द्वारा जनजातीय वर्ग के लिए विशेष अनुदान दिया जाना चाहिए।
2. इस वर्ग के बच्चों हेतु प्रवेश में आरक्षण दिया जाना चाहिए।
3. इस वर्ग के बच्चों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था होनी चाहिए।
4. शिक्षा पूर्णतः निःशुल्क होनी चाहिए साथ ही कॉपी किताबें, यूनिफॉर्म व अन्य सामग्री भी बिना किसी शुल्क के दी जानी चाहिए।
5. जनजातीय क्षेत्रों में विद्यालय खोलने के नियमों में शिथिलता प्रदान की गई है।
6. शैक्षिक स्तर में सुधार के लिए विशेष प्रशिक्षण प्रकोष्ट खोले गए हैं।
7. राजकीय विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में जनजातीय वर्ग के छात्रों हेतु आरक्षण की व्यवस्था है।
8. इन क्षेत्रों में लोक-जुंबिश, शिक्षा कर्मी, राष्ट्रीय प्राथमिक शिक्षा "पोषाहार" कार्यक्रम, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम आदि विशेष रूप से संचालित हो रहे हैं।

9. जातीय छात्रों की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा भी निःशुल्क कर दी गई है।

स्त्री शिक्षा (Women education)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्री शिक्षा में सुधार लाने हेतु विभिन्न समितियों का गठन हुआ जिनका प्रमुख उद्देश्य स्त्रियों की शिक्षा में सुधार, उनकी उन्नति और उन्हें जागरूक बनाना था। इन समितियों में मुख्य रूप से दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में हंसा मेहता की अध्यक्षता में तथा श्री भक्त वत्सल्म की अध्यक्षता में बनायी गई समितियों ने उल्लेखनीय कार्य किया है।

कोठारी आयोग ने स्त्री शिक्षा में सुधार एवं उन्नति के लिए जो सुझाव प्रस्तुत किये हैं वे निम्नलिखित हैं-

1. पुरुष एवं स्त्री शिक्षा में भिन्नता को शीघ्र समाप्त किया जाये।
2. स्त्री शिक्षा के लिए विशेष योजनायें तैयार की जायें और धन की व्यवस्था की जाये।
3. केंद्र व राज्यों में स्त्री शिक्षा के लिए अलग-अलग विभागों की स्थापना की जाये।
4. स्त्रियों के लिए व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाये जिससे वे आत्मनिर्भर बन सकें।
5. प्रौढ़ स्त्रियों के लिए भी व्यावसायिक शिक्षा देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

शिक्षा के क्षेत्र में समानता के आदर्शों की प्राप्ति

आधुनिक समय में प्रत्येक राष्ट्र के अन्तर्गत शिक्षा का उद्देश्य सभी लोगों को शिक्षा के समान व उचित अवसर प्रदान करना है। प्रगतिशील राष्ट्रों में आज भी अधिकांश वर्ग ऐसा है जो कि शिक्षा से वंचित है। इन वर्गों में मुख्य रूप से पिछड़े, अनुसूचित जाति, जनजाति, निशक्तजन एवं स्त्रियाँ आती हैं जिनकी शैक्षिक स्थिति आज भी संतोषजनक नहीं है। इनके लिए समान शैक्षिक अवसर उपलब्ध करना प्रत्येक राष्ट्र का पहला कर्त्तव्य है।

1947 में ब्रिटिश शासन से स्वतन्त्र होने के पश्चात् भारत में प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था को लागू किया गया। उस समय की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए राजनीतिज्ञों का प्रथम उद्देश्य नागरिकों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक करना था। इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण साधन शिक्षा था लेकिन उस समय शिक्षा की सुविधाएँ बहुत सीमित थीं और जो थीं भी उसका लाभ विशेष वर्गों तक ही सीमित था। समाज का एक बड़ा हिस्सा जिसमें नारी, अनुसूचित जाति जनजाति, पिछड़ी जाति, विकलांग आदि आते

हैं, अनेक कारणों से शैक्षिक सुविधाओं से वंचित थे। अत: इस कमजोर वर्ग तक शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करना अत्यंत आवश्यक था। इसीलिए जब 1950 में भारत का संविधान लिखा गया उसमें भी इस वर्ग की उन्नति के लिए विशेष ध्यान दिया गया और समस्त वर्गों में शैक्षिक समानता लाने का समर्थन किया गया।

संविधान के अनुच्छेद 46 में कहा गया है कि "राज्य, जनता के कमजोर वर्गों की शिक्षा विशेष रूप से अनुसूचित जाति और जनजाति के नागरिकों की शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा तथा सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण द्वारा उनकी सुरक्षा करेगा।"

शिक्षा के क्षेत्र में सभी को समान रूप से अवसर मिल सकें इसके लिए कोठारी आयोग ने कुछ सुझाव दिए हैं जो निम्नलिखित हैं-

शुल्क– शिक्षा के क्षेत्र में असमानता का एक प्रमुख कारण शुल्क को माना गया है। अत: समानता के आदर्शों की प्राप्ति हेतु आयोग द्वारा शुल्क सम्बन्ध ी दी गयी सिफारिशें निम्नलिखित हैं-

1. चौथी योजना (1975 के अंत तक प्राथमिक अवस्थाओं में ऐसी स्थिति बनायें कि बच्चों को कोई शुल्क न देना पड़े।
2. पांचवी योजना (1978) के अंत तक ट्यूशन फीस समाप्त की जाये।
3. आगामी 10 वर्षों में ऐसे प्रयास किये जायें कि माध्यमिक और उच्च शिक्षा में 30 प्रतिशत नि:शुल्क व्यवस्था की जाये जिसका लाभ जरूरतमंद और योग्य बच्चों को मिले।

अन्य उपाय– शुल्क के साथ ही कोठोरी आयोग ने शिक्षण साधनों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं जो अग्रलिखित हैं-

1. विद्यालय में नए प्रवेश करने वाले बच्चों को नि:शुल्क पुस्तकें प्रदान की जायें।
2. वार्षिक परीक्षा के अंत में सफल हुए छात्रों को अगली कक्षा की पुस्तकें पहले से दी जायें जिससे वे गर्मियों की छुट्टी में पढ़ सकें।
3. माध्यमिक विद्यालयों और उच्च संस्थाओं में विकसित पुस्तकालय तैयार किये जायें।
4. विद्यालय में संपूर्ण छात्र संख्या के 20 प्रतिशत छात्रों को पुस्तकें खरीदने के लिए अनुदान दिया जाये।
5. माध्यमिक विद्यालयों और उच्च संस्थाओं में बुक बैंक तैया किया जाये।

छात्रवृत्तियाँ– कोठारी आयोग ने शिक्षा के क्षेत्र में समानता लाने के लिए छात्रवृत्तियों को एक महत्वपूर्ण साधन माना है। आयोग के अनुसार कई छात्र ऐसे होते हैं जिनके पास प्रतिभा तो होती है लेकिन धन अभाव के कारण वे शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते हैं। अत: प्रतिभाशाली छात्रों के विकास में धन समस्या न बने इसके लिए छात्रवृत्तियों को देने का समुचित प्रबंध होना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित सुझाव आयोग द्वारा प्रस्तुत गए हैं-

1. योग्य और जरूरतमंद छात्रों को छात्रवृत्ति मिले इसके लिए व्यवस्थित तरीके से कार्यक्रम का संचालन किया जाये।
2. यह कार्यक्रम क्रमबद्ध होना चाहिए।
3. इसका आयोजन प्रत्येक स्तर पर होना चाहिए।
4. इन कार्यक्रमों को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए संस्था का निर्माण किया जाये।
5. यह कार्यक्रम उदार और व्यापक दृष्टिकोण के अनुसार बनाया जाये।
6. विदेशों में शिक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर छात्रवृत्ति देने का कार्यक्रम बनाया जाये। इसके अंतर्गत 500 छात्रवृत्तियाँ योग्य और प्रतिभाशाली छात्रों को विदेशों में अध्ययन हेतु प्रदान की जायें।

क्षेत्रीय असमानता– क्षेत्रीय असमानता भी शिक्षा के क्षेत्र में समानता लाने में एक समस्या बन रही है। यदि विभिन्न राज्यों में शिक्षा की वास्तविकता पर नजर डाली जाये तो उसमें भी एकरूपता नहीं दिखाई देगी। इसके लिए आवश्यक है कि राज्यों और जिलों में शैक्षिक एकरूपता और समानता लाने का प्रयास किया जायो। इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं-

1. विकसित और अर्धविकसित क्षेत्रों में एक समान शैक्षिक कार्यक्रम चलाये जायें।
2. जिला स्तर पर व्याप्त विषमताओं को राज्य स्तर से अलग किया जाये।
3. राष्ट्रीय स्तर पर राज्यों में शैक्षिक असमानता को दूर करने का कार्य केंद्र द्वारा किया जाना चाहिए।

सारांश

भारत में प्राचीन काल में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सिर्फ सुवर्ण जाति के लोगों को था। अन्य वर्ग के लोगों में प्रतिभा तथा कुशाग्र बुद्धि होने पर भी निर्धनता के कारण शिक्षा से संचित थे, साथ ही जाति, धर्म, सम्प्रदाय एवं लिंग के आधार पर भी शिखा में भेदभाव किया जाता था।

NOTES

भारतीय संविधान में सभी नागरिकों को स्वतंत्रता तथा समानता का मौलिक अधिकार दिया गया है। इसके अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है कि वह शिक्षा के क्षेत्र में समान अवसर की मांग करे।

कोठारी आयोग के अनुसार शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है- सबको समान अवसर प्रदान करना, जिससे पिछडे हुए तथा सामाजिक सुविधाओं से वंचित वर्गों के बच्चे भी अपनी आर्थिक एवं सामाजिक दशा सुधारने के लिए शिक्षा को साधन के रूप में प्रयुक्त कर सके।

शैक्षिक अवसर की असमानता के प्रमुख कारण देश के विभिन्न राज्यों में निर्जल एवं पहाड़ी क्षेत्र का होना, देश की अधिकांश जनसंख्या का गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करना निर्बल वर्ग के बच्चों को सम्पन्न घरों की अपेक्षा घर का वातावरण, कोचिंग आदि सुविधाएँ कम प्राप्त होना, छात्रवृत्ति की संतोषजनक व्यवस्था का न होना आदि हैं।

शैक्षिक अवसर की समानता को प्राप्त करने की विधियों में कोठारी कमीशन ने लोक शिक्षा की समान स्कूल व्यवस्था को अपनाने की सिफारिश की। यह एक ऐसी अवधारणा है जो योग्यता के आधार पर शिक्षा प्रदान करती है।

शैक्षिक अवसरों में समानता लाने हेतु आवश्यक है कि अनुसूचित जाति की शिक्षा निःशक्तजनों की शिक्षा, जनजातियों की शिक्षा, स्त्री शिक्षा आदि की तरफ ध्यान देते हुए इनमें समानता लायी जाए। शिक्षा के क्षेत्र में समानता के आदर्शों की प्राप्ति के लिए छात्रवृत्तियां, क्षेत्रीय असमानता तथा शैक्षणिक शुल्क में शिथिलता भी कुछ अन्य उपाय हैं।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कोठारी आयोग ने महिला शिक्षा में सुधार तथा उननति हेतु कौन-कौन से सुझाव दिये? स्पष्ट कीजिए।
2. सरकार द्वारा शैक्षिक अवसरों की समानता के लिए कौन-कौन से प्रयास हुए?
3. शैक्षिक अवसरों की समानता को विस्तृत रूप में समझाइए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अनुसूचित जाति की शिक्षा के समान अवसर कैसे प्रदान किये जा सकते हैं?
2. शैक्षिक अवसरों की समानता को प्रभावित कने वाले कारकों की व्याख्या कीजिए।

5 विद्यालयीकरण में असमानता (Inequality in Scholling)

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- शालेय शिक्षा में बढ़ती असमानता
- असमानता का स्वरूप
- शिक्षा में असमानता के परिणाम
- प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर पर शैक्षिक असमानताएँ
- शिक्षा में असमानता घटाने वाली अन्त:क्षेपी कार्य नीतियाँ
- सार्वजनिक निजी विद्यालय
- ग्रामीण-शहरी विद्यालय
- एक अध्यापक वाले विद्यालय
- गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका
- दूरस्थ का अर्थ
- दूरस्थ शिक्षा की विशेषताएँ
- दूरस्थ, मुक्त शिक्षा तथा पाश्चात्य शिक्षा में अन्तर
- दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकता
- दूरस्थ शिक्षा के उपाय
- दूरस्थ शिक्षा का महत्व
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे-

- शालेय शिक्षा में बढ़ती असमानता
- असमानता का स्वरूप
- शिक्षा में असमानता के परिणाम
- प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर पर शैक्षिक असमानताएँ

NOTES

- शिक्षा में असमानता घटाने वाली अन्तःक्षेपी कार्य नीतियाँ
- सार्वजनिक निजी विद्यालय
- ग्रामीण-शहरी विद्यालय
- एक अध्यापक वाले विद्यालय
- गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका
- दूरस्थ का अर्थ
- दूरस्थ शिक्षा की विशेषताएँ
- दूरस्थ, मुक्त शिक्षा तथा पाश्चात्य शिक्षा में अन्तर
- दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकता
- दूरस्थ शिक्षा के उपाय
- दूरस्थ शिक्षा का महत्व

प्राक्कथन

विद्यालयीकरण की असमानताओं को दूर करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यालयीकरण को औपचारिक शिक्षा कहा जा सकता है जिसे औपचारिक शिक्षा द्वारा विद्यालय के द्वारा पूरा किया जाता है। शिक्षा की औपचारिक प्रक्रिया, जो बालक के 'सामाजिक' अनुभवों को विशाल क्षेत्र प्रदान करती है और बौद्धिक विकास के लिए उपयुक्त अवसर देती है, वह विद्यालयीकरण कहलाती है।

विद्यालय शिखा का एक औपचारिक अंग है यद्यपि यह बालक के सामाजिक अनुभवों को विस्तार देती है। लेकिन विद्यालय के अन्दर दी जाने वाली शिक्षा, संकीर्ण शिक्षा है क्योंकि विद्यालयीकरण में बालक के सर्वांगीण विकास की कोई व्यवस्था न तो की जाती है और न इन परिस्थितियों में सफलता सम्भव है। विद्यालयीकरण में बालक के बौद्धिक विकास पर ही बल दिया जाता है। सामान्यतः भावात्मक, सामाजिक आदि विकास हेतु कोई कठिन प्रयास नहीं किया जाता है। सहज स्वाभाविक रूप में सामूहिक रूप से जो कुछ इस क्षेत्र में होता है, उसे नकारा नहीं जा सकता, परन्तु विद्यालयीकरण के अभिकरण विद्यालय द्वारा इस दिशा में कुछ नहीं किया जा सकता। सभी विद्यालयों में सभी बालकों को शारीरिक विकास के लिए अवसर दिये जाते हैं। बौद्धिक विकास पर प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। यह एक प्रश्न है कि क्या आज का पाठ्क्रम तथा शिक्षण विधियाँ बालक के ज्ञानात्मक विकास में सहायक हैं? अक्सर देखा जाता है कि बालक विद्यालय में प्राप्त ज्ञान को, विद्यालय छोड़ने

के बाद या परीक्षा होने के बाद भूल जाता है। उसके व्यावहारिक जीवन में इस ज्ञान का कोई महत्व नहीं रह जाता। वर्तमान उन्नत देशों में जन संचार के विभिन्न साधनों द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसकी अपेक्षा विद्यालय में मिलने वाला ज्ञात बहुत छोटा है। विद्यालय की इस हीन स्थिति के कारण अमेरिका में तो इवान इतियच द्वारा प्रस्तावित 'डिस्कूलिंग सोसाइटी' का नवीन आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस प्रकार विद्यालयीकरण का वहाँ बालक के जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वहाँ जन-संचार द्वारा परिवार, समुदाय आदि अनौपचारिक अभिकरण इतने सक्रिय हैं कि विद्यालयीकरण के बिना बालक के जीवन में कोई अभाव उत्पन्न नहीं होता। भारत जैसे अविकसित देशों में स्थिति इसके विपरीत है- ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ परिवार आदि अनौपचारिक अभिकरण बालक के सर्वांगीण विकास में असफल दिखाई देते हैं। ऐसे देशों में विद्यालयीकरण अभी भी एक अनिवार्यता है जो कि न शिक्षा का आदि है और न अन्त। यह तो शिक्षा का एक अनौपचारिक साधन है।

शालेय शिक्षा में बढ़ती असमानता (Growing Inequalities in Schooling)

शिक्षा की चुनौती नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य में शिक्षा में अवसरों की असमानताओं, विषमताओं की जटिलताओं का निम्नलिखित रूप में वर्णन किया गया है-

"बुद्धि, नैतिक, न्याय तथा घनिष्ठता की दृष्टि से शिक्षा की व्यवस्था में बहुत अधिक असमानता है। यद्यपि जनसंख्या का तीन-चौथाई भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है फिर भी उन्हें शिक्षा के लिए बहुत कम संसाधन प्राप्त हो रहे हैं। जबकि समृद्ध लोग शहरों में निजी रूप से चलायी जाने वाली अच्छी शिक्षण संस्थाओं का लाभ लेते हैं एवं ये ही व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं में अनारक्षित स्थानों के बहुत बड़े भाग पर अधिकार कर लेते हैं। जबकि ग्रामीण स्कूलों की अपेक्षाकृत दयनीय दशा के कारण ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ती है।"

इस प्रपत्र (Document) में लिंग पर आधारित असमानता तथा जातिगत असमानता के बिन्दुओं की विवेचना इस प्रकार की है-

"लड़कियों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के बच्चों ने पिछले दशक के दौरान उल्लेखनीय प्रगति की है। इसके बाद भी शैक्षिक उपलब्धि के अन्तिम सोपान पर हैं। बालिकाएँ तो घर-गृहस्थी के कार्यों में अपनी दत्तचिन्तता तथा सामाजिक कुरीतियों की शिकार होती हैं, जबकि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के बच्चे ऐसी अयोग्यताओं, जो स्थानों के आरक्षण से नहीं दूर की जा सकती हैं, के कारण उन्नति नहीं कर पाते। इनमें से अधिकांशतः पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी होने के कारण बाल्यकाल के

NOTES

कुपोषण, सामाजिक अकेलेपन की भावना, कार्य करने की खराब आदतें तथा अपनी बौद्धिक क्षमताओं के प्रति आत्मविश्वास के अभाव के कारण समुचित विकास नहीं कर सकते। वे अपने को मुख्य धारा के छात्रों से सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। इन मनोवैज्ञानिक दबावों के कुप्रभाव को समाप्त कने के लिए तथा उनकी योग्यताओं में बढ़ोत्तरी करने हेतु एवं समाज की प्रमुख धारा में उन्हें शामिल करने के लिए विशेष कार्यक्रम की आवश्यकता है।"

शैक्षिक विषमताएँ निम्नलिखित हैं-

1. जिन स्थानों पर प्राथमिक, माध्यमिक या महाविद्यालय की शिक्षा देने वाली संस्थाएँ नहीं हैं, वहाँ के बच्चों को वैसा अवसर नहीं मिल पाता जैसा उन बच्चों को मिलता है जिनकी बस्तियों में ये संस्थाएँ उपलब्ध हैं।

2. देश के विभिन्न भागों में शैक्षिक विकास में भारी असन्तुलन देखने को मिलता है- एक राज्य और दूसरे जिले के विकास में और भी बड़ा अन्तर मौजूद है और एक जिले तथा दूसरे जिले के विकास में बहुत अन्तर देखने को मिलता है।

3. शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक प्रमुख कारण यह है कि जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गरीब है और बहुत थोड़ा भाग धनी। किसी शिक्षा-संस्था के समीप होते हुए भी गरीब परिवारों के बच्चों को वह अवसर नहीं मिलता, जो धनी परिवारों के बच्चों को मिल जाता है।

4. शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक और बड़ा दु:साध्य रूप विद्यालयों एवं कॉलेजों के अपने-अपने भिन्न स्तरों के कारण उत्पन्न होता है। जब किसी विश्वविद्यालय या वृत्तिक कॉलेज जैसी संस्था में प्रवेश उन अंकों के आधार पर दिया जाता है, माध्यमिक स्तर की समाप्ति पर दी गयी सार्वजनिक परीक्षा में प्राप्त हुए हों और प्रवेश सामान्यत: इसी आधार पर होता है जब देहाती क्षेत्र के साधनहीन ग्रामीण विद्यालय में पढ़े छात्र के लिए यह कसौटी या मापदण्ड एक समान नहीं रहता।

5. घरेलू पर्यावरणों के भिन्न-भिन्न होने के कारण भी अत्यधिक विषमताएँ उत्पन्न होती हैं। देहात के घर या शहरी गन्दी बस्तियों में रहने वाले और अनपढ़ माता-पिता की सन्तान को शिक्षा पाने का वह अवसर नहीं मिलता, जो उच्चतर शिक्षा प्राप्त माता-पिता के साथ रहने वाले उनकी सन्तान को मिलता है।

6. भारतीय परिस्थितियों ने निम्नलिखित दो प्रकार की शैक्षिक विषमताओं को प्रमुख रूप से जन्म दिया है- (i) शिक्षा के समस्त स्तरों पर तथा क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा में भारी अन्तर। (ii) उन्नत वर्गों तथा पिछड़े वर्गों- अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों के मध्य शैक्षिक विकास का अन्तर।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में शैक्षिक विषमताओं का प्रभावी निरूपण किया है तथा उसमें निम्नलिखित क्रम में इन्हें वर्गीकृत किया है-

1. महिलाओं की समानता के लिए शिक्षा।
2. अनुसूचित जातियों हेतु शिक्षा।
3. अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा।
4. शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए अन्य वर्ग और क्षेत्र अल्पसंख्यक विकलांग प्रौढ़ शिक्षा आदि।

समानता के अवसर के अन्नयन के उपाय

समानता के अवसरों हेतु उन्नयन के उपाय निम्नलिखित प्रकार हैं-

1. **शिक्षा आयोग (Education Commission) :** "जीवन के अन्य सभी आदर्शों की तरह शिक्षा के अवसरों की भी पूर्ण समता कायम करना सम्भवत: असाध्य ही है पर ऐसे आम मामलों में असली प्रश्न पूर्ण लक्ष्य की सिद्धि का नहीं होता, ज्वलन्त आस्था तथा हार्दिक प्रयासों का होता है। किसी भी अच्छी शिक्षा-प्रणाली में महत्वपूर्ण विषमताएँ उत्पन्न करने वाले कारणों को पहचानने का और उन्हें या तो पूरी पूर्णरूप दूर या कम से कम न्यूनतम कर देने के लिए उचित कदम उठाने के प्रयास निरन्तर होता रहना चाहिए।"

   शिक्षा आयोग ने इन विसंगतियों के निदान के लिए निम्नलिखित उपाय बताये हैं-

   (1) प्राथमिक शिक्षा सभी विद्यालयों में नि:शुल्क प्रदान की जानी चाहिए।

   (2) माध्यमिक शिक्षा को यथाशीघ्र नि:शुल्क बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

   (3) आगामी दस वर्षों में उच्चतर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा में फीसों के सम्बन्ध में प्रसास किया जाना चाहिए कि सभी जरूरतमन्द और योग्य छात्रों को नि:शुल्क शिक्षा दी जा सके।

   (4) प्राथमिक स्तर पर पाठ्य-पुस्तकें और लेखन-सामग्री मुफ्त प्रदान की जानी चाहिए। विद्यालयों में नये भर्ती होने वाले बच्चों का स्कूल के

NOTES

समारोह में स्वागत किया जाना चाहिए। अन्य बच्चों को भी विद्यालय की वार्षिक परीक्षाओं का परिणाम घोषित होते ही अगले वर्ष की पुस्तकों का पूरा सैट प्रदान किया जाना चाहिए जिससे वे अवकाश के दिनों में अगले वर्ष की पढ़ाई कर सकें।

(5) माध्यमिक विद्यालयों तथा उच्च शिक्षा की संस्थाओं में पुस्तक-बैंकों (Book-Banks) का कार्यक्रम विकसित किया जाना चाहिए।

(6) प्रतिभाशाली छात्रों को पुस्तकें खरीदने के लिए अनुदान दिये जाने चाहिए।

(7) शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर छात्रवृत्तियों का निम्नांकित कार्यक्रम लागू किया जाय-

(i) प्राथमिक स्तर पर इसके लिए कदम उठाये जाने चाहिए कि अवसर प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर किसी भी होनहार बच्चों को आगे बढ़ाई जारी रखने से रूकना न पड़े और इस उद्देश्य से प्रत्येक जरूरतमन्द बच्चे को पर्याप्त राशि की छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए।

(ii) राज्य स्तर पर विभिन्न जिलों में शिक्षा के विकास के समकरण की नीति जान-बूझकर अपनायी जानी चाहिए।

(iii) राष्ट्रीय स्तर पर यह भारत सरकार की जिम्मेदारी समझी जानी चाहिए कि वह विभिन्न राज्यों में शिक्षा के विकास का समकरण करे। इसके लिए आवश्यक कार्यक्रम, जिनमें कम उन्नत राज्यों को विशेष सहायता देना सम्मिलित हैं, विकसित किये जाने चाहिए।

(8) लड़कियों के संबंध में निम्नांकित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए-

(i) लड़कियों की शिक्षा को अगले कुछ वर्षों के लिए शिक्षा का एक विशाल कार्यक्रम माना जाना चाहिए और उनमें आने वाली कठिनाइयों का सामना करने तथा पुरूषों एवं नारियों की शिक्षा के मौजूदा अन्तर को यथाशीघ्र कम करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किये जाने चाहिए।

(ii) केन्द्र में तथा लड़कियों की शिक्षा पर नजर रखने के लिए एक विशेष तन्त्र होना चाहिए। इस तन्त्र को चाहिए कि वह लड़कियों की शिक्षा के कार्यक्रमों के आयोजन एवं क्रियान्वयन में सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रयासों को एक जगह लाये।

(9) अनुसूचित जातियों की शिक्षा का मौजूदा कार्यक्रम संचालित रहना चाहिए और उसका विकास भी किया जाना चाहिए।

(10) अनुसूचित जातियों के बच्चों निम्नांकित कार्यक्रमों पर ध्यान दिया जाना चाहिए-

(i) विरल आबादी वाले क्षेत्रों में आश्रम-स्कूलों का निर्माण किया जाना चाहिए।

(ii) अध्यापकों को आदिम जातीय भाषाओं का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

(iii) माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों, छात्रावासीय सुविधाओं तथा छात्रवृत्तियों का अत्यधिक विस्तार किया जाना चाहिए।

(iv) उच्चतर शिक्षा में छात्रवृत्तियों का काफी विस्तार किया जाना चाहिए।

(v) उच्चतर शिक्षा में छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए।

2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक अवसरों की प्राथमिकता राष्ट्रीय शिक्षा नीति के खण्ड 12 में जिसका शीर्षक 'भविष्य' में है कहा गया है-

"सबसे बड़ा काम है शैक्षिक पिरामिड की नींव को सुदृढ़ बनाना, उस बुनियाद को जिससमें इस शताब्दी के अन्त तक करीब 100 करोड़ लोग होंगे। यह सुनिश्चित करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि जो इस पिरामिड के शिखर पर हों, वे विश्व में सर्वोत्तम स्तर के हों। अतीत में इन दोनों को हमारी संस्कृति के मूल स्रोतों ने भली-भाँति सिंचित रखा लेकिन विदेशी आधिपत्य और प्रभाव से इस प्रक्रिया में विकार पैदा हो गया। अब मानव संसाधन विकास का राष्ट्रव्यापी प्रयास पुनः प्रारम्भ होना चाहिए, जिसमें शिक्षा अपनी बहुमुखी भूमिका पूर्णरूप से निभाये।" इस महान् उद्देश्य की सम्प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति में समान शैक्षिक अवसरों को महत्व प्रदान करने के उद्देश्य से निम्नलिखित विशेष समूहों को संतुष्ट करने के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों की प्रस्तावित रूपरेखा को क्रियान्वित करने की योजना प्रस्तुत की है-

विशेष समूहों को सन्तुष्ट करने के लिए शैक्षिक कार्यक्रम : विशेष समूहों के लिए वैधानिक शैक्षिक व्यवस्था निम्न प्रकार है-

(1) महिलाओं की समानता हेतु शिक्षा।

(2) अनुसूचित जातियों की शिक्षा।

(3) अनुसूचित जन जातियों की शिक्षा।

(4) पिछड़े वर्गों की शिक्षा।

(5) अल्पसंख्यकों की शिक्षा।

(6) विकलांगों की शिक्षा।

(7) प्रौढ़ शिक्षा।

(8) गति निर्धारक विद्यालयों की स्थापना।

(9) उच्च शिक्षा में समानता के अवसर।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के बाद शिक्षा के अवसरों में समानता के लिए किए गये प्रयास एवं उपलब्धियाँ

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में शिक्षा नीति कार्यक्रम को ठोस रूप में लागू करने हेतु राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी। इसके प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं-

1. **राष्ट्रीय शिक्षा (National Education) :** राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जिसमें किसी जाति-पांति, धर्म, लिंग, निवास के भेद के बिना एक निश्चित स्तर तक सभी छात्र तुलनात्मक कोटि की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार पर्याप्त आर्थिक पोषित कार्यक्रमों को आरम्भ करेगी।

   (1) समन्वित बाल विकास सेवाएँ (Integrated Child Development Services)।

   (2) पूर्व-बाल्यावस्था (ई.सी.सी.ई.) के संचालन हेतु स्वैच्छिक संगठनों की सहायता।

   (3) प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों (Primary Health Centre) तथा उपकेन्द्रों द्वारा मातृ एवं शिशु-कल्याण सेवाएँ।

   इसमें भी पिछड़े वर्गों को प्राथमिकता प्रदान की गयी थी तथा पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में अत्यन्त निर्धन शहरी झुग्गी-झोंपड़ी समुदाय, घरेलू मजदूर वर्ग, असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत मजदूर वर्ग, घुमक्कड़ मजदूर वर्ग, निर्माण कार्यों में लगे श्रमिक वर्ग आदिम जातियाँ, वर जनजातियाँ, दुर्गम क्षेत्रों के निवासी आदि छोटे शिशुओं को प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

   प्राथमिक शिक्षा की उन्नति के लिए भी शिक्षा के लोकव्यापीकरण (यू.ई.ई.) की महत्त्वाकांक्षी योजना लागू की गयी है। जिसका सन् 2000

तक शत-प्रतिशत नामांकन लक्ष्य रखा गया था। इसकी सफलता सुनिश्चित रकने के लिए सरल उत्तीर्ण योजना, ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड, पिछड़े नौ राज्यों में चरणबद्ध क्रियान्वयन तथा विकेन्द्रीकरण एवं पुरस्कार प्रणालियाँ प्रारम्भ की गई हैं। स्कूलों में 'मिड-डे-मील' पौष्टिक आहार और अन्य भौतिक सुविधाएँ प्रदान करने की पूर्ण चेष्टा की गयी है।

2. **एक समान शैक्षिक संरचना (Uniform Educational Structure) :** राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत समस्त देश में एक ही प्रकार की शैक्षिक संरचना लागू करने की योजना प्रस्तुत की गयी। इस प्रकार 10+2+3 के शैक्षिक ढाँचे को समूचे राष्ट्र ने स्वीकार कर लिया है। प्रथम दस वर्ष का सामान्य विभाजन इस प्रकार लागू किया गया है- प्रथम 5 वर्ष का प्राथमिक स्तर, 3 वर्ष का उच्च प्राथमिक स्तर तथा 2 वर्ष का हाई स्कूल। राष्ट्र के अनेक राज्यों ने इसे वास्तविक रूप से स्वीकार कर लिया है। माध्यमिक स्तरों पर शिक्षा में आंशिक भेद होने के बावजूद भी उच्च स्तर की शिक्षा लगभग एक समान है। वर्ष 2001 से यह भी प्रयास किया जा रहा है कि सभी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में समानता तथा एकरूपता हो।

   इस शैक्षिक संरचना में एक समान अवसर संगठित करने के दृष्टिकोण से निम्नलिखित प्रयास किये गये हैं-

   (क) **नवोदय शालाओं की स्थापना** सातवीं योजना तक भारत सरकार ने प्रत्येक जिला स्तर पर एक नवोदय विद्यालय खोलने की इच्छा स्पष्ट की थी। ये विद्यालय इस आशय से खोले गये हैं जिससे ग्रामीण एवं निर्धन वर्ग के ग्रामीण माता-पिता के बुद्धिमान बालकों को उत्तम शिक्षा प्राप्त करने के सम्पूर्ण अवसर प्राप्त हो सकें। इन विद्यालयों में ग्रामीण छात्रों की संख्या करीब 75 प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के बालकों के लिए क्रमशः 15 एवं 7 प्रतिशत प्रवेश सुरक्षित किये गये हैं। इन्हें केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् से सम्बद्ध किया गया है। इस प्रकार भारत सरकार अब तक 500 करोड़ रूपयों से अधिक इस योजना पर खर्च कर चुकी है।

   (ख) **माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का व्यावसायीकरण** सभी को समान व्यावसायिक अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से माध्यमिक शिक्षा को पूर्ण व्यावसायिकता से मिलाने की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी थी। इसके लिए निम्नलिखित संस्थानों का सुझाव प्रस्तुत किया गया था-

(1) राज्य व्यावसायिक शिक्षा परिषद् (State Council of Vocational Education)

(2) राज्य व्यावसायिक शिक्षा संस्थान (State Institute of Vocational Education)

(3) व्यावसायिक शिक्षा विभाग (Department of Vocational Education)

(4) जिला स्तरीय समन्वय समिति (District level Co-ordination Committee)

3. **खुले विश्वविद्यालय की स्थापना :** उच्च शिक्षा के एक समान अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से सितम्बर, 1985 के अन्तर्गत केन्द्रीय इन्द्रा गाँध ी मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। इस विश्वविद्यालय को देश में दूरस्थ शिक्षा के समन्वय तथा इसके स्तर निर्धारण का कार्य दिया गया। सन् 1987-88 में इस विश्वविद्यालय में विभिन्न अभिनव पाठ्यक्रमों का प्रारम्भ किया गया तथा इनका शिक्षण सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय के सहयोग द्वारा रेडियो एवं टी.वी. चैनलों पर व्यवस्थाएँ की गयीं।

4. **महिलाओं की समानता के लिए शिक्षा :** महिला शिक्षा के क्षेत्र में समानता के अवसर एकत्रित करने के लिए निम्नलिखित लक्ष्यों की घोषणा की गयी थी-

(1) लड़कियों के लिए प्राथमिक शिक्षा का समयबद्ध, चरणबद्ध कार्यक्रम प्राथमिक स्तर एवं उच्च प्राथमिक स्तर तक।

(2) 15-35 आयु वर्ग में महिलाओं के लिए प्रौढ़ शिक्षा का समयवद्ध कार्यक्रम (लगभग) 6.8 करोड़)।

(3) तकनीकी, व्यावसायिक तथा विद्यमान उभरती प्रौद्योगिकी की शिक्षा में महिलाओं के लिए उचित अवसरों की वृद्धि करना।

(4) महिलाओं की समानता बढ़ाने वाले शैक्षणिक कार्य-कलापों की समीक्षा तथा पुर्नगठन।

(क) शिक्षा नीति में महिलाओं की शिक्षा हेतु प्रावधान : शिक्षा नीति में महिला शिक्षा के लिए निम्नलिखित रणनीति घोषित की गयी है-

(1) राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस बात की परिकल्पना की गई है कि शिक्षा को महिलाओं के स्तरों में मूल परिवर्तन के लिए अभिकर्त्ता के रूप में प्रयोग किया जायेगा।

(2) महिलाओं को अधिकार दिलाने में शिक्षा सही मध्यस्थता वाली भूमिका का निर्वहन करेगी।

(3) पाठ्य-पुस्तकों, पाठ्यचर्चा, शिक्षकों, निर्णयकर्त्ताओं तथा प्रशासकों के प्रशिक्षण एवं अभिनव तथा शिक्षा संस्थाओं के सक्रिय सहयोग से नये मूल्यों के विकास को बढ़ावा दिया जायेगा।

(4) महिलाओं के अध्ययनों को विभिन्न पाठ्यक्रमों के रूप में प्रोन्नत किया जायेगा।

(5) महिलाओं के विकास के लिए सक्रिय कार्यक्रम चलाने के लिए शैक्षिक संस्थानों को प्रोत्साहन दिया जायेगा।

(6) औद्योगिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रमों में महिलाओं की शिक्षा को व्यापक बनाया जायेगा।

(ख) **महिलाओं को सशक्त बनाने हेतु शैक्षिक उपाय :** इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति हेतु निम्नलिखित उपायों की उद्घोषणा की गयी है-

(1) प्रत्येक शिक्षा संस्थान में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करने, जाग्रति पैदा करने तथा महिलाओं में सम्प्रेषण एवं संगठन की प्रोन्नति एवं विकास के लिए सक्रिय कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया जाना चाहिए।

(2) प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों में महिला शिक्षिकाओं तथा महिला अनुदेशकों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि वे महिलाओं की समानता के लिए सक्रिय भूमिका का निर्वहन कर सकें।

(3) अनुसन्धान संस्थाओं, स्वैच्छिक संस्थानों एवं कलाकारों द्वारा महिलाओं में चेतना उत्पन्न करने, अपने व्यक्तित्त्व को उन्नत करने के लिए विशेष कार्यक्रम तैयार किये जाने चाहिए।

(4) स्कूल स्तर तक शिक्षकों की भर्ती के लिए महिलाओं को वरीयता दी जानी चाहिए।

(5) सामान्य कोर पाठ्यचर्या महिलाओं की नयी स्थिति के अनुरूप मूल्यों के संस्थापन के लिए तथा उनकी शक्ति बढ़ाने के लिए एक शक्तिशाली साधन हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT) में महिला प्रकोष्ठ की पुनःस्थापना की जायेगी।

(6) एन.सी.ई.आर.टी. और राज्य स्तर एजेन्सियों द्वारा आरम्भिक प्रशिक्षण, सेवाकालीन प्रशिक्षण और पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों

NOTES

द्वारा अध्यापकों, प्रशिक्षकों, आयोजकों और प्रशासकों को महिला मामलों में संवेदनशील बनाया जाय।

(ग) **लड़कियों के लिए शिक्षा का लोकव्यापीकरण एवं स्त्री तथा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम :** लड़कियों के लिए शिक्षा का लोकव्यापीकरण एवं स्त्री एवं प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में निम्नलिखित प्रावधान हैं-

(1) ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों को भाई-बहिनों तथा घर की देखभाल करने, ईंधन, चारा एवं पानी लाने अथवा दिहाड़ी मजदूरी में व्यस्त रखा जाता है। यही कारण है कि नीति सन्दर्भित विशेष समर्थन सेवा में इन सभी क्षेत्रों को सम्मिलित करने की आवश्यकता है।

(2) शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए मन्त्रालय एवं सम्बद्ध सामाजिक संगठन से पीने का पानी उपलब्ध कराने, मध्याह्न भोजन और अन्य स्त्रियों के जीवन से नीरसता समाप्त करने के कार्यक्रम लागू किये जायें।

(3) स्कूल में लड़कियों का दाखिला बढ़ाने और उन्हें स्कूल में बनाये रखने में शिशु शिक्षा केन्द्र महत्वपूर्ण सहायक सेवा के रूप में हैं, अतः उन्हें बढ़ावा दिया जाय।

(4) ग्रामीण अथवा स्थानीय क्षेत्रों में रोजगार अथवा कार्य के अवसरों से संबंधित शिल्पों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करने की आवश्यकता है जिससे लड़कियों को पढ़ाने के लिए माता-पिता को प्रोत्साहन मिल सके।

(5) लड़कियों में निरक्षरता समाप्त करने के लिए उनमें 15-35 आयु वर्ग के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम बड़े स्तर पर तैयार किये जाने चाहिए क्योंकि इस आयु वर्ग की अधिकांश महिलाएँ काम करती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि स्त्रियों के लिए प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किया जाय, जो उनकी कार्यकुशलता तथा आय उत्पन्न करने वाले कार्यकलापों को बढ़ाने से सम्बद्ध हो।

(6) कौशल निर्माण तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण में पालीटेक्नीक, सामुदायिक तकनीकी, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों, श्रमिक विद्यापीठों, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, स्वैच्छिक संगठनों, कृषि विज्ञान केन्द्रों, कृषि तथा गृह-विज्ञान कॉलेजों में, महिला केन्द्रों जैसे संगठनों तथा संस्थाओं द्वारा पर्याप्त सहायता प्रदान की जाय।

(7) स्कूल शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर कार्यानुभव एवं व्यावसायीकरण के एक भाग के रूप में लड़कियों को विभिन्न प्रकार की गतिविधियों से अवगत कराया जाना चाहिए।

असमानता का स्वरूप

असमानता किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार की हो सकती है- इस बात का स्पष्टीकरण आरम्भ में ही कर देना उचित रहेगा, ताकि इस पारिभाषिक शब्द की संकल्पना को विस्तार से और सार्थक रूप में समझा जा सके। कुछ निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक जो साधन-सुविधाएँ तथा अपेक्षित गुण या विशेषताएँ किसी समुदाय को अपनी सामाजिक व्यवस्था में उपलब्ध होती हैं, वे सब उसी समाज के अन्य व्यक्तियों को उपलब्ध न हो तो अनुपलब्धि की, इसी दशा को असमानता कहते हैं। (यह असमानता आर्थिक तथा भौतिक सुख-सुविधाओं, शैक्षिक अर्हताओं, सामाजिक हितों और स्थितियों से भी संबंधित हो सकती हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति, वर्ग या समुदाय को सशक्तिकरण करने में एक-दूसरे को पुष्ट करती हैं।) सामाजिक-आर्थिक स्थिति के कारण या जन्मजात असमानताओं के कारण सामर्थ्यसूचक विशेषताओं को नकारना ही 'असमानता' है। जैसे- भारतीय समाज में जातिप्रथा और लिंग आधारित भेदभाव में विश्वास करने की परम्परा है। इसी तरह से अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के बच्चों और सभी वर्गों की लड़कियों की शैक्षिक स्थिति दो वर्गों के बीच की खाई की कहानी कहती है।

ऊपर जिस खाई की व्याख्या की गई है उसे पाटने या मजबूत बनाने में समाज की विचारधारा या उसकी अर्थव्यवस्था प्रमुख भूमिका निभाती है। जैसे- यदि कोई समाज लोकतंत्र में विश्वास करता है और 'कल्याणकारी राज्य' की संकल्पना को स्वीकार करता है तो वह समाज वर्णव्यवस्था और लिंग आधारित असमानता को पनपने नहीं देगा तथा कुछ ही हाथों में संपत्ति और सत्ता को संकेन्द्रित नहीं होने देगा। यह निर्विवाद सत्य है कि समाज की जैसी विचारधारा होगी, वहाँ की सभी संस्थाओं (सरकार, परिवार, न्यास, संगठन, समितियाँ आदि) का ढाँचा और स्तर भी उसी के अनुरूप होगा। लोकतंत्र तथा कल्याणकारी राज्य की विचारधारा होगी तो समाज में पाए जाने वाले कृत्रिम विभेद समानता वर्ग विशेष की सत्ता और सामर्थ्य के महल को ढहाना उस समाज का लक्ष्य होगा। इस लक्ष्य के निर्धारित हो जाने के पश्चात् समाज की उपर्युक्त सभी संस्थाएँ अपनी-अपनी सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक प्रक्रियाओं में सुधार कर अपने सुविधावंचित व्यक्तियों, वर्गों या समुदायों की दशा में सुधार करने के काम में जुट जाएँगी ताकि उनमें भी वे सभी अच्छे और सकारात्मक गुण विकसित हो सकें तथा अंततोगत्वा सभी को अवसरों की

समानता वाला लक्ष्य प्राप्त हो सके। संक्षेप में, विचारधारा, संस्थाएँ तथा सामाजिक प्रक्रिया ही वे प्रमुख कारक हैं जो असमानता को बनाए रखने या उसमें सुधार कर धीरे-धीरे उसे पूरी तरह से मिटा देने की भूमिका निभाते हैं। हम अपने इन आयामों की सीमा शैक्षिक प्रक्रिया के चौखटें परिसीमित कर रहे हैं। लेकिन यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए शैक्षिक प्रक्रिया की विशेषताएँ आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक पक्षों को भी प्रभावित करती हैं। इसका वास्तविक कारण यह है कि शिक्षा हमारी संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की एक उप-व्यवस्था है। इन सभी पक्षों का सीधा प्रभाव शिक्षा-व्यवस्था पर पड़ता है। जैसे यदि कोई बालक स्कूल नहीं जाता, और यदि जाता भी है तो वहाँ न्यूनतम अपेक्षित स्तर प्राप्त नहीं करता तो इसके पीछे आर्थिक कारण होते हैं। इससे उसकी भावी सामाजिक व्यवस्था और स्कूल का तात्कालिक पर्यावरण भी प्रभावित होता है। हो सकता है, गरीबी ही वह कारक हो जिसकी वजह से वह बच्चा स्कूल न जाकर अपने परिवार के पालन-पोषण के काम में लगने के लिए मजबूर हुआ हो। इसी तरह, यदि कोई बालक न्यूनतम अपेक्षित स्तर प्रापत नहीं कर पाता, तो सभी उस स्कूल पर दोष लगाने लगते हैं और इस तरह से स्कूल के पर्यावरण पर तत्काल बुरा प्रभाव पड़ने लग जाता है।

असमानता की संकल्पना ऐतिहासिक प्रकृति की है। ऐतिहासिक प्रतिमान देश तथा काल से सम्बद्ध होता है। हम इस बात के पर्याप्त उदाहरण दे चुके हैं कि किस प्रकार से ऐतिहासिक विचारधाराओं ने हमारे समाज में असमानताओं की जड़ें मजबूत की। जब हम 'असमानता' के ऐतिहासिक प्रकारों की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय दो प्रकार के उन कारकों में अन्तर करना होता है जो इस परिघटना के पीछे काम करते हैं। ये कारक निम्नलिखित हैं-

(i) **बहिर्जात कारक :** ये वे कारक हैं जो शिक्षा-व्यवस्था से बाहर वाले हैं। जैसे- आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रौद्योगिक तथा सांस्कृतिक कारक। इन कारकों से सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था या शिक्षा प्रसार की कोई प्रणाली विशेष सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित होती नजर आती है।

(ii) **अंतर्जात कारक :** ये वे कारक हैं जो शिक्षा-व्यवस्था में से ही उभर कर असमानता को जन्म देते हैं। हम ऐसे कुछ कारकों को वर्णन कर चुके हैं। जैसे समाज में स्कूल-शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध न होना, या स्कूल-शिक्षा का पूरा-का-पूरा व्यवस्थागत ढांचा बिगड़ा होना। जहाँ बच्चे को शिक्षा अरूचिकर अनुपयोगी, निरर्थक लगने लगे, स्कूली शिक्षा का व्यवस्थागत ढांचा कमजोर होगा तो इससे पलायनशीलता को प्रोत्साहन मिलेगा, अर्थात् बच्चे स्कूल छोड़कर भाग जायेंगे और नए बच्चे भर्ती ही न होंगे या जो पढ़ रहे होंगे, उनमें से भी बीच में ही पढ़ाई छोड़ बैठेंगे।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि अधिकारों को नकारने से असमानता जन्म लेती है। असमानता की यह संकल्पना देश और काल से सम्बन्धित होती है, इसलिए हम कह सकते हैं कि किसी समाज विशेष में असमानता की जड़ें उस समाज के ऐतिहासिक विकास-क्रम में निहित होती हैं। असमानता के आयाम समाज की विचारधारा, विश्वास एवं शासन के अनुरूप हो सकते हैं। साम्यवाद समाजवाद या पूँजीवाद आदि राजनैतिक विचार धाराएँ हैं। इन विचारधाराओं की सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्थाएँ समाज में असमानता को प्रोत्साहन देती, मिटाती या कम करती हैं। इस प्रकार हर समाज में पाई जाने वाली असमानताओं की जननी उसकी विचारधारा, प्रक्रिया और संस्थाएँ होती हैं, कार्य-कारण संबंध सूचक ये सारे कारक भी दो प्रकार के होते हैं, बहिर्जात कारक, एवं अंतर्जात कारक। किसी खास विषय की सीमा से बाहर वाले कारक बहिर्जात कारक कहलाते हैं, जबकि अंतर्जात कारक व्यवस्था के अंदर से ही उभरते हैं। इसके सिवाय, असमानताएं गुणात्मक भी हो सकती हैं और मात्रात्मक भी। गुणात्मक असमानताओं में सामाजिक बाधाएँ, कुपोषण, मार्गदर्शन का अभाव आदि शामिल हैं तथा मात्रात्मक असमानताओं में निम्न आय, निम्न उपलब्धि स्तर आदि आते हैं।

आइए, अब इस बात का वर्णन करें कि शिक्षा व्यवस्था में, विशेषकर स्कूली शिक्षा में, असमानता के क्या परिणाम निकलते हैं।

शिक्षा में असमानता के परिणाम

शिक्षा में असमानता का एक दुखद दुष्परिणाम यह होता है कि इससे समाज का एक विशेष वर्ग अकारण ही शिक्षा के अवसरों से वंचित रह जाता है। ये दोष आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक हो सकते हैं। ये सभी दोष मिलकर उस वर्ग को अपने पैरों पर खड़ा नहीं होने देते। 'असमानता' के सभी आयामों को अच्छी तरह से समझने के लिए उनके दुष्परिणामों की कुछ विस्तार से व्याख्या करें-

आर्थिक परिणाम

गरीबी एक अभिशाप है। आय कम होगी तो गरीबों को पर्याप्त और पोष्टिक भोजन प्राप्त नहीं होगा। पौष्टिक भोजन के अभाव से उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा। पैसे की कमी से उनकी क्रयशक्ति भी कम होगी जिसके कारण वे धन से प्राप्त की जाने वाली सुविधाओं से वंचित रह जाएंगे। दुर्बल स्वास्थ्य सामाजिक स्थिति पर प्रभाव डालता है। भूख एवं अपुष्ट आहार से शिक्षा का स्तर घट जाता है। शिक्षा में निरन्तर निम्नस्तरीय निष्पादन के कारण विद्यार्थी पढ़ाई-लिखाई छोड़ देंगे। इससे असमानता को प्रोत्साहन मिलता है। गरीबी का एक दुःखद परिणाम यह भी है कि वे उपलब्ध चिकित्सा-सेवाओं का लाभ

नहीं उठा पाते। उन्हें इनकी जानकारी ही नहीं मिल पाती। परिणाम यह होता है कि वंचित वर्ग का सामान्य स्वास्थ्य निरन्तर बिगड़ता चला जाता है और उनकी शैक्षिक स्थिति निरन्तर दयनीय होती चली जाती है। अंततोगत्वा इसका परिणाम यह होता है कि राष्ट्र के लिए कम श्रमशक्ति तैयार हो पाती है।

सामाजिक परिणाम

आर्थिक अभावों से ग्रस्त वर्ग पूर्णरूप से शिक्षित नहीं हो पाता। समाज में जब शिक्षा की कमी होगी या किसी वर्ग का शैक्षिक स्तर निम्न होगा तो निश्चय ही उस समाज में ऊँच-नीच की भावना विकसित होगी और स्तर वाले वर्ग का शोषण, होना आरम्भ हो जाएगा। सामाजिक असमानता और शोषण के परिणामस्वरूप जातिगत, धर्मगत, वर्गगत और लिंगगत भेदभाव की खाई चौड़ी हो जाएगी तथा शहरी और ग्रामीण जनता में असमानता बढ़ती जाएगी। जिसके कारण साम्प्रदायिक दंगे होंगे और सामाजिक अपराधों में बढ़ोत्तरी होगी। इस प्रकार की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ राष्ट्र के लिए अनेक समस्याओं का कारण बनती हैं।

कानून और व्यवस्था को बनाए रखना कठिन हो जाता है और इस प्रकार राष्ट्र की प्रगति पर बड़ा दुष्प्रभाव पड़ता है।

राजनीतिक परिणाम

शैक्षिक अवसरों की असमानता के कारण होने वाले वर्ग संघर्ष से लोकतंत्र महत्वहीन हो जाता है और प्रतिष्ठा एक सामाजिक समस्या बन जाती है। ऐसे महत्त्वहीन लोकतंत्र में गरीबी बढ़ रही है, गरीबी का शोषण होता रहता है और वे समस्त प्रकार की आर्थिक सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। इससे समाज में भेदभाव की खाई चौड़ी होती जाती है, 'असमान वर्गों में भी नए असमान वर्ग' उत्पन्न हो जाते हैं। राजनीतिक प्रक्रिया में लोगों की साझेदारी में कमी आ जाने से राजनीतिक व्यवस्था और बिगड़ जाती है। ऐसे समाज में भ्रष्टाचार और राजनीति का अपराधीकरण सामान्य बात हो जाती है।

सांस्कृतिक परणिाम

शैक्षिक असमानता से उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक गतिरोध विभेदमूलक सामाजिक स्तरीकरण और संघर्ष की स्थिति के कारण समाज में असमानता की खाई चौड़ी होती जाती है, वर्ग-भेद बढ़ जाता है। सांस्कृतिक लोकाचार पर बौद्धिक वर्ग की पकड़ ढीली हो जाती है। जब समाज में समरसता हो, तब कला और संस्कृति पनपती है। जब समाज सभी प्रकार के अभावों से ग्रस्त हो, मूल्यों का विनाश हो रहा हो और प्रगति के स्थान पर दुर्गति की ओर पश्चगामी हो तो फिर भला हम रचनात्मक प्रक्रियाओं के उच्चतम शिखर पर पहुँचने की कल्पना ही कैसे कर सकते हैं?

शैक्षिक परिणाम

जब कुछ व्यक्तियों या वर्गों को समान शैक्षिक सुविधाएँ या अवसर उपलब्ध नहीं होंगे तो वृहत्तम स्तर पर संपूर्ण समाज का शैक्षिक विकास भी प्रभावित होगा। अज्ञान, अभिप्रेरणा का अभाव, प्रबुद्ध और प्रगतिशील दृष्टिकोण का अभाव, शिक्षा की कमजोर मार्ग तथा, आधुनिक प्रौद्योगिकी को पूर्ण रूप से अंगीकार न कर पाना आदि शिक्षा व्यवस्था में 'असमानता' या के कुछ नकारात्मक सहसंबंधित तथ्य हैं अर्थात् असमानता द्वारा ही इन परिणामों का उदय होता है।

प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर पर शैक्षिक असमानताएँ

भारत के संविधान के अनुच्छेद 45 और 46 में कहा गया है कि समाज के सभी वर्गों के 6-14 आयु वर्ग के बालकों को निःशुल्क और अनिवार्य 'बुनियादी शिक्षा' (प्रारंभिक शिक्षा) प्रदान की जाएगी। लेकिन जहां तक इस प्रावधान के कार्यान्ववयन का संबंध है, हम अभी तक बहुत पिछड़े हैं। असम, आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल और पश्चिम बंगाल जैसे अधिकांश राज्य हैं जिनमें प्राथमिक शिक्षा स्तर पर स्कूलों में बालकों की भर्ती की संख्या पर्याप्त नहीं है। इस क्षेत्र में ये राज्य अभी भी पिछड़े ही रह गए हें। यहीं नहीं, इन राज्यों में शिक्षा जारी न रख पाने वाले अर्थात् अधबीच में ही पढ़ाई छोड़ जाने वाले छात्रों की संख्या भी बहुत है। छात्राओं का प्रवेशदर भी बहुत कम है। इन्हीं सब कारणों से इन राज्यों को 'शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े राज्य' कहा जाता है। इन राज्यों की वर्तमान साक्षरता दर या स्तर में और अध बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने वाले छात्रों (विरत छात्रों) की संख्या दर में अनुपात का क्रम उल्टी गति से चल रहा है। जैसे-जैसे साक्षरता का स्तर बढ़ता जाता है। पढ़ाई छोड़ देने वाले छात्रों की संख्या दर घटती जाती है और विपरीत स्थिति में क्रम बदल सकता है। इस तरह से उपर्युक्त राज्यों में बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने वाले छात्रों की समस्या अत्यन्त जटिल हो गई है। कक्षा 1 में जितने बच्चे भर्ती हुए, उनमें से करीब आधे बच्चों ने कक्षा V में पहुँचने से पहले ही विद्यालय छोड़ दिया और दो तिहाई बच्चे कक्षा VIII में पहुँचने से पूर्व ही पढ़ाई छोड़ बैठे। नामांकन (भर्ती होने), प्रतिधारण (बने रहने) और अधिगम परिणामों में मामलों में अधिकांश क्षेत्रीय विषमताएँ हैं।

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि स्त्रियों की साक्षारता के प्रसंग में शहरों और गाँवों में अंतर बढ़ा है। सोचनीय स्थिति तो यह है कि आमतौर पर साक्षरता के स्तरों में सुधार होने के बावजूद अनुसूचित जातियों और जनजातियों में साक्षरता का स्तर आज भी बहुत नीचा है। अनुसूचित जातियों के मध्य सन् 1981 में साक्षरता दर 22 प्रतिशत थी जो सन् 1991 में बढ़कर 38 प्रतिशत

हो गई। इसी प्रकार अनुसूचित जनजातियों में सन् 1981 में साक्षरता की दर 17 प्रतिशत थी जो सन् 1991 में 30 प्रतिशत हो गई। इन सुधारों के बावजूद कुल जनसंख्या की साक्षरता दर (52 प्रतिशत) की अपेक्षा अनुसूचित जातियों और जनजातियों का साक्षरता स्तर स्पष्ट रूप से अधिक नीचा है। अनुसूचित जातियों और जनजातियों में लिंगमूलक विषमता और भी अधिक साफ दिखाई पड़ती है। राजस्थान के बाड़मेर जिले में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के बीच स्त्रियों की साक्षरता 8 प्रतिशत है तो केरल के कोट्टायम जिले में यह 94 प्रतिशत है।

यहाँ इस बात को रेखांकित करना भी आवश्यक है कि यदि जनसंख्या के भौगोलिक वितरण को ध्यान में रखकर देखें तो ये विषमताएँ और भी अधिक भयावह दिखाई देती हैं। यही नहीं, जातियों, धर्मों और समुदायों के बीच में भी ये अंतर पाए जाते हैं। यहाँ तक कि सामाजिक रूप से तथाकथित पिछड़ों में भी शैक्षिक अवसरों का वितरण अधिक कठिन हो गया है। जो अपने-अपने वर्गों के बीच आर्थिक दृष्टि से अधिक उन्नत हैं, उनकी शैक्षिक स्थिति अपने ही वर्ग के गरीब लोगों की स्थिति की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी है।

अत: इस प्रकार के सामाजिक परिदृश्य में शिक्षा के क्षेत्र में समानता लाने के लिए आवश्यक है कि वास्तविक आधार को ध्यान में रखते हुए शैक्षिक अवसरों के बारे में नीति विषयक निर्णय लिए जाएँ। इसलिए सकारात्मक भेदभाव (रियायतों) की कार्यनीति अपनानी होगी। इस कार्यनीति के अनुसार पहले उन लक्ष्यों वर्गों की पहचान कर ली जाए जिन्हें अतिरिक्त अवसर देने और आर्थिक लाभ पहुँचाने की आवश्यकता है। फिर उन सभी वर्गों को ये सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाएँ जिससे वे मुख्य धारा के बराबर पहुँच जाएँ और सामाजिक गतिशीलता प्राप्त कर सकें। इन लक्ष्य वर्गों का चयन करने और कार्यनीति का क्रियान्वयन करने से पूर्व इस बात की आवश्यकता है कि एक स्थानीकृत, सुनियोजित और विकेन्द्रीकृत कार्य-योजना तैयार की जाए और फिर उसका अनुपालन किया जाए। आगे के परिच्छेदों में इन्हीं सब बातों का विस्तार से विवेचन किया गया है।

शिक्षा में असमानता घटाने वाली अन्त:क्षेपी कार्यनीतियाँ

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् ही नीति-नियामकों योजनाओं ने व्यावहारिक प्रसंग में अन्त:क्षेपी कार्यनीतियों के महत्त्व को भली प्रकार समझ लिया था। आज हम परिवर्तन के लिए नीतिगत अन्त:क्षेपी के प्रबंधन संबंधी बात कर सकते हैं जो पहले की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित, कारगर और संव्यवसायिक है। इसका अर्थ यह हुआ कि अन्त:क्षेप की कार्यनीतियाँ उस अनभंवाश्रित विश्लेषण पर आधारित होती हैं जो स्वयं सुसंबंधित सूचनाओं, वास्तविकताओं

एवं व्यावहारिक रूप से संभव बातों पर आधारित होता है। प्रस्तुत प्रसंग में हम केवल उन मामलों में ही व्यवहार्य अन्तक्षेपों की चर्चा करना चाहेंगे जो जरूरतमंदों को गंभीरतापूर्वक सोच विचार कर शैक्षिक लक्ष्यों का प्राप्त करने पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं।

सूक्ष्म-योजना

जो वर्ग अब तक शैक्षिक अवसरों से वंचित रह हैं उन तक सार्विकीकृत शिक्षा प्रदान करने के लिए सकारात्मक विभेद जैसी अन्त:क्षेपी कार्यनीतियाँ तैयार करने की तत्काल आवश्यकता है। इसके लिए हमें पहले अलग-अलग प्रकार के लक्ष्य-समूह की पहचान करनी होगी और फिर उनके कुटुंब-वार और बालक-वार भेद कर उउन सबके लिए कार्य-नीति तैयार होगी।

इसका अभिप्राय है कि-

(i) स्वच्छता अभियान, स्वास्थ्य और पोषाहार, रोजगार उत्पादन जागरूकता आदि जैसे वातावरण निर्माण करने वाले कार्यक्रमों में द्वारा गाँवों में सामुदायिक भागीदारी एकत्रित करना।

(ii) शैक्षिक प्रशासन का विकेन्द्रीकरण करना, जिससे वह स्थानीय समुदाय के प्रति उत्तरदायी हो जाए।

(iii) स्थानीय प्रशासनिक और संसाधन सहायता की मांग करना और ऐसी व्यवस्था को मजबूत करना।

(iv) विस्तृत जनांकिकीय सर्वेक्षण कर और उससे संबंधित मानचित्र आदि तैयार कर क्षेत्र-विशेष की शैक्षिक आवश्यकताएँ निश्चित करना।

(v) विद्यालय में प्रवेश पाने योग्य तथा विरत छात्रों को विद्यालय में लाना।

(vi) यह देखना कि सभी बच्चे, विशेषकर लड़कियाँ और सुविधावंचित वर्गों के बच्चे, नियमित रूप से विद्यालय आएं और वास्तविक रूप में विद्यालय की पढ़ाई-लिखाई में ध्यान दें।

(vii) विद्यालयों/अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के लिए आवश्यक बुनियादी संरचना की योजना बनाना।

प्रसंगवश यहाँ विश्व बैंक की सहायता से हमारे देश में चल रहे जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) का उल्लेख भी कर दिया जाए। सूक्ष्म नियोजन कार्यनीति के अंतर्गत उपर्युक्त बातों की चर्चा की गई है, उन सबका इस कार्यक्रम में ध्यान रखा गया है। विशेष बल इस बात पर है कि कोई लक्षित वर्ग छूट न जाए। इस कार्यक्रम में विशिष्ट आवश्यकता आध

ारित कार्य-योजना के अनुसार तीन प्रकार के जिलों की पहचान की गई है। सभी वर्गों तक शिक्षा पहुँचे, सभी की इसमें साझेदारी हो, सबका उपलब्धि -स्तर समान हो, सबके लिए एक सरीखा वातावरण बने, हर समुदाय की शिक्षा में भागीदारी हो- इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए क्या कार्यनीति अपनाई जाए, इस दृष्टिकोण से विचार करें तो तीनों प्रकार के जिलों की आवश्यकताएँ अलग-अलग हैं। इन्हीं आवश्यकताओं के अनुसार जिलों को तीन वर्गों में बांटा गया है। पहला वर्ग उच्च साक्षरता वाले जिलों का है। यहाँ इस बात पर बल दिया जाता है कि जो बच्चे किसी भी कारण से अब तक स्कूल में भर्ती नहीं हो सके हों, उन्हें भर्ती किया जाए और शिक्षा की गुणवत्ता और उपलब्धि पर भी ध्यान दिया जाए। दूसरे वर्ग में वे जिले आते हैं जहाँ संपूर्ण साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त किया जा चुका है। ऐसे जिलों के लिए कार्यनीति यह अपनाई जाती है कि वहां सार्विक प्राथमिक शिक्षा (यू ई ई) की अनिवार्य व्यवस्था हो जिससे समुदाय की जागरूकता में कमी न आने पाए। तीसरा वर्ग उन जिलों का है जहां अभी भी साक्षरता की दर काफी कम है। ऐसे जिलों में शिक्षा के प्रति वातावरण निर्माण पर बल रहता है। इस समय भारत में 247 जिले ऐसे हैं जो शैक्षिक आधार से पिछड़े जिले माने जाते हैं। इन जिलों में बहुक्षेत्रकीय समाकलित विकास का 'प्रबल कार्यक्रम' चलाने की जरूरत है। भारत के अधिकतर जिलों में अब जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) संचालित किया जा रहा है।

न्यूनतम अधिगम स्तर (सार्विक उपलब्धि का ढाँचा)

न्यूनतम अधिगम स्तर की कार्यनीति में इस बात पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जाता है कि कक्षा में पढ़ाई-लिखाई का स्तर कैसा है और यह भी कि सभी बच्चों को समानता के आधार पर अच्छी शिक्षा प्राप्त हो रही है या नहीं। स्कूलों में न्यूनतम अधिगम स्तर लागम करने के मुख्य चरण ये हैं-

(i) अधिगम उपलब्धि के वर्तमान स्तरों का मूल्यांकन;

(ii) किसी क्षेत्र-विशेष के लिए न्यूनतम अधिगम स्तर निश्चित करना तथा उसे प्राप्त कर लेने की कालावधि निर्धारित करना; और

(iii) अध्यापक की भूमिका और पाठ्यचर्या - दोनों का स्पष्ट रूप से निर्धारण करना।

संरचनात्मक परिवर्तन

इस प्रसंग में तीसरी दुनिया के (विकाशील) देशों के लिए अधिक प्रासंगिक प्रश्न ये हैं कि विद्यालयी निविष्टियों की उपलब्धता को कैसे बढ़ाया जाए, उनका उचित वितरण कैसे किया जाए तथा उनका कुशलतापूर्वक पूर्ण उपयोग किस तरह से हो। ये सारी समस्याएँ सीधे तौर स्कूली शिक्षा के उत्पादन और दक्षता वाले पहलुओं से संबंधित हैं।

इन दोनों पहलुओं से जुड़े मौलिक प्रश्न जो नालगोंडेन ने उठाए हैं, वे इस प्रकार हैं-

(क) छात्र के अधिगम या उसकी शैक्षिक उपलब्धि को निर्धारित करने वाले कारक कौन-कौन से हैं?

(ख) उपलब्धिगत अंतरों के साधन कौन-कौन से हैं?

(ग) क्या वे स्रोत विद्यालयी निविष्टियों की सीमा में आते हैं या उन पर स्कूल का कोई नियंत्र नहीं होता?

(घ) छात्र की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि (परिवार निविष्टि) और समकक्ष समसमूह की उनमें क्या भूमिका होती है?

(ड) शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने में कौन से स्कूल (सरकारी या निजी) अत्यधिक कामयाब होते हैं?

(च) छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने में 'नीति' की क्या भूमिका हो सकती है।

(छ) शैक्षिक उपलब्धि में यदि स्कूल को महत्वपूर्ण योगदान करना हो तो किस कारक पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाए- स्कूल पर, कक्षा पर, शिक्षण-विधियों पर या भौतिक सुविधाओं पर (जिसमें अध्यापक भी सम्मिलित हैं)?

'विद्यालयी प्रभाविता' विषय पर वर्तमान में शोध कार्य हुआ। जिस में अत्यन्त परिष्कृत और विस्तृत शोध-विधियाँ (जैसे सोपानक्रमिक रेखीय प्रतिरूप का प्रयोग) अपनाई गई। इस शोध कार्य से यह निष्कर्ष निकला कि छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में जो अंतर पाया जाता है वह उनके वर्तमान स्कूलों की कक्षाओं या वहाँ के अध्यापकों जैसे कारकों द्वारा नियंत्रित न होकर उनके पहले वाले स्कूलों (प्राथमिक शिक्षा संबंधी) और उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के कारण होता है। दूसरे शब्दों में, माध्यमिक शिक्षा स्तर पर बालक की निष्पादन-क्षमता केवल उसके वर्तमान कक्षा आधारित कारकों की अपेक्षा अन्रू कारकों से अधिक प्रभावित होती है (रिडल : 1989)। भारत में अब तक ऐसा कोई अनुसंधान कार्य नहीं हुआ है जिसमें रिडल के सोपानक्रमिक रेखीय मॉडल (प्रतिरूप) को आधार बनाया गया हो।

समाजविज्ञानी शैक्षिक असमानता के ढाँचे के उस 'अन्योन्यक्रियान्तमक युक्ति' की प्रक्रिया के माध्यम से जांचने का प्रयत्न करते हैं जिससे वह शैक्षिक ढाँचा-विकसित हुआ है। हॉग अगार मैक्रहन (1992) के अनुसार, यह अन्योन्य क्रिया दो प्रकार से संचालित होती है-

(i) शिक्षा और छात्र के मध्य हुई अन्योन्य क्रिया और

(ii) घर और स्कूल के मध्य हुई अन्योन्य क्रिया।

इस प्रकार का अनुसंधान कार्य स्कूली के पुनरूत्पाद सिद्धांत पर प्रश्नचिन्ह लगाता हे, जिससे यह माना जाता है कि स्कूल तो मात्र उस संचारण पट्टे (Transmission belt) का काम भर करते हैं जिसके माध्यम से कामगार वर्ग के बेटे-बेटियां या तो उस कामगार वर्ग वाले काम-धधों में ही लग जाते हैं, या बहुत खराब हुआ तो वे किसी भी काम पर नहीं लग सकते। अब यह स्पष्ट है कि स्कूल तो वह अन्योन्य क्रिया करने वाली मशीन भर है जो छात्रों को उनकी पृष्ठभूमिपरक विशेषताओं और उस स्कूल की रचनात्मक प्रथाओं के बीच परस्पर प्रभाव के आधार पर ढाल देती है। "स्कूल अब 'ब्लेक बॉक्स' मात्र नहीं हैं जिनके मध्य से होकर गुजरते हुए छात्र पूँजीवादी-व्यवस्था वाले पूर्व निर्धारित संरचनाओं में जा गिरते हैं; उनका आपना स्पंदनयुक्त (Vibrant) जीवन होता है; जिसकी अपनी प्रक्रियाएं और व्यवहार होते हैं जो एक दूसरे से होड़ करते हुए उनकी माँगों के अनुसार अनुक्रिया करने लगते हैं और प्राय: न चाहते हुए भी असमानता को उत्पन्न कर देते हैं" (मैकहन, 1992)

कुछ अन्य अध्ययनों (बीस विकासशील देशों संबंधी अध्ययन (शुक्ला 1974), शुक्ला और अन्य, (1994 b); एन.सी.ई.आर.टी. (1994 c) से निकले सार के अनुसार यह आवश्यक नहीं कि बहुत अच्छी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आने वाले स्कूली छात्र उपलब्धि परीक्षणों में अच्छे परिणाम दिखाएंगे ही। इन अध्ययनों अनुसार विकसित देशों की तुलना में विकाशील देशों में सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि छात्रों की उपलब्धि को बहुत कम प्रभावित कर पाती है। अभी कुछ समय पूर्व स्कूली छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारकों की समीक्षा प्रकाशित हुई है (शीफैल्बिन और सिम्पन्स, 1978)। जिसका निष्कर्ष यह है कि समाज जितना कम विकसित होगा, उसके बच्चों की उपलब्धि पर उनकी घरेलू पृष्ठभूमि का प्रभाव उतना ही कम होगा; जबकि स्कूली चरों का प्रभाव कहीं अधिक होगा (इस अध्ययन में उनतीस देशों से नमूने इकट्ठे किए गए थे)। जैसे- स्कूल की गुणवत्ता के कारण होने वाले व्याख्या परीक्षण में समंको की छात्रों के प्राप्तांकों में प्रसरण का अनुपात विकसित देशों में सबसे कम पाया गया; जबकि विकासशील देशों में यह अनुपात दो या तीन गुना अधिक था।

इस अनुसंधान कार्यों के निष्कर्षों के विश्लेषण द्वारा यह सिद्ध होता है कि यह जरूरी नहीं है कि मात्रात्मक असमानता हर हालत में गुणात्मक असमानता का अनुसरण करे ही। दोनों सामाजिक संरचना के अलग-अलग पहलुओं से जन्म लेती हैं और इसीलिए दोनों की समस्याओं का समाधान अलग-अलग तरीके से किया जाना अपेक्षित है।

अध्यापक-प्रशिक्षण का प्रभाव

भारत में सदैव से यह मान्यता रही है कि अध्यापक-प्रशिक्षण पर अधिक ध्यान देने से छात्रों का उपलब्धि-स्तर उन्नत होगा और इससे स्कूली शिक्षा

की गुणवत्ता में वृद्धि होगी। इसी बात को ध्यान में रखते हुए अब स्कूल स्तर वाले अध्यापकों के लिए अत्यधिक मात्रा में सेवाकालीन अध्यापक-प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने लगे हैं। एन.सी.ई.आर.टी. ने अपनी केन्द्र-प्रायोजित योजना में नीचे लिखे कार्यक्रम आयोजित किए : स्कूली अध्यापकों के लिए बड़े पैमाने पर अभिमुखीकरण कार्यक्रम (पी.एम.ओ.एस.टी. : 1986-8); ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना (1989-1992); और अध्यापकों के लिए विशेष अभिमुखीकरण कार्यक्रम (एस.ओ.ी.टी. 1993-94 से 1996-97)। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी) के अंतर्गत संस्था आधारित सेवाकालीन प्रशिक्षण-कार्यक्रम पर जोर दिया जाता है जिससे अंतर्वस्तु की गुणवत्ता और पाठ्यक्रमों में निहित सभी अंतर्वस्तुओं की प्रस्तुति की प्रक्रिया की गुणवत्ता में वृद्धि की जा सके। आशा है, इन कार्यक्रमों का सकारात्मक की प्रस्तुति की प्रक्रिया की गुणवत्ता में वृद्धि की जा सके। आशा है, इन कार्यक्रमों का सकारात्मक प्रभाव इस रूप में देखने को मिलेगा कि छात्र, और विशेषरूप से सुविधावंचित वर्गों के छात्र, स्कूलों में बने रहें, यानी विरत न ही चले जाएं और उनकी अधिगम-उपलब्धि भी बढ़ती रहे। यह भी आशा की जाती है कि इन प्रशिक्षण-कार्यक्रमों से उत्तर-पूर्वी राज्यों की स्थिति सुधरेगी और उन राज्यों की स्थिति में भी सुधार होगा जहां पहले से ही प्रशिक्षित अध्यापकों की अधि क कमी है या जहां नियमानुसार सेवापूर्व प्रशिक्षण प्राप्त किए किबना ही अध्यापकों की सीधी भती की जा चुकी है या जहां अप्रशिक्षित अध्यापकों को प्रशिक्षित करने का काम अभी शेष है।

तथापि, अध्यापक-प्रशिक्षण के प्रसंग में निम्नलिखत बातों पर ध्यान दिया जाना आवश्यकत है-

- अध्यापक-प्रशिक्षण में सुधार का कार्यक्रम लागत खर्च की अपेक्षा में प्रभावी हो;
- वर्तमान अध्यापकों को उन्नत शिक्षण-सामग्री प्रदान कर उनका शिक्षण-स्तर बढ़ाया जाए,
- जिन अध्यापकों को स्तरीय प्रशिक्षण न मिा हो, या जो आज भी अप्रशिक्षित हों उन्हें पहले सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान किया जाए।
- नई पाठ्यचर्या के अनुरूप अध्यापकों को पुन:प्रशिक्षित किया जाए; और
- आद्य या सेवापूर्व प्रशिक्षण को ठोस और व्यावहारिक बनाने के लिए उसमें सुधार किए जाएँ।

अध्यापक प्रशिक्षण के क्षेत्र में अन्य प्रासंगिक मुद्दे हैं प्रशिक्षण देने के कारण और प्रशिक्षण की गुणवत्ता, जिनसे अध्यापक शिक्षा में अपेक्षित सुधार किया जा सके। (हसैन, साहा और नूनन, 1978 पृ. 47)

जब अध्यापकों के प्रशिक्षण-कार्यक्रम बड़े स्तर पर और पारंपरिक प्रतिनियुक्त प्रशिक्षण-पद्धति से अयोजित किए जाते हैं तब इस बात की पूरी आशंका बनी रहती है कि वे कार्यक्रम अपना 'जलप्रपाती प्रभाव' (Cascade effects) ही छोड़ जाएँ; अर्थात् वे देखने भर को अच्छे लगें लेकिन उनका परिणाम अधिक लाभप्रद न हो। होता यह है कि पहले विशेषज्ञता प्राप्त प्रशिक्षण संसाधनों को प्रशिक्षित करते हैं और फिर वे संसाधन अपनी बारी आने पर अध्यापकों को प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। प्रशिक्षण की यह सोपान-क्रमिक प्रक्रिया प्रशिक्षण के हित-लाभों को यथावत् बनाए रखने और उसकी प्रभावित को कम कर देती है। इसे दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण कार्य में इस सोपान क्रमिक प्रक्रिया को समाप्त किया जाए, और इसके स्थान पर ऐसा जालक्रम विकसित किया जाए जिसमें शैक्षिक प्रौद्यागिकी का भी पूर्ण सहयोग प्राप्त हो सके। लेकिन इसके लिए लेने और देने वाले दोनों छोरों पर पहले से काफी तैयारी करनी होगी। तभी, आगे चलकर यह प्रशिक्षण-प्रक्रिया लागत खर्च की दृष्टि से सस्ती और प्रभावी बन पाएगी।

सार्वजनिक निजी विद्यालय (Public-private School)

सामाजिक असमानता को दूर करने में सार्वजनिक निजी विद्यालयों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये विद्यालय विभिन्न विषय समूहों द्वारा संचालित होते हैं। सामान्य रूप से इनको तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. मान्यता एवं सहायता प्राप्त संस्थाएँ,
2. मान्यता प्राप्त संस्थाएँ,
3. मान्यताहीन संस्थाएँ।

इनमें मान्यता प्राप्त और मान्यताहीन संस्थाओं की संख्या कम है। निजी 'प्रबन्ध' के बाद भी ये विद्यालय जन-शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग हैं। इनका अधिकांशतः व्यय सरकार द्वारा पूर्ण किया जाता है। जहाँ पर शुल्क नियुक्ति है, वहाँ पर हानि की पूर्ति सरकार द्वारा की जाती है। इन विद्यालयों का समुदाय में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इन्हें कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। फिर इन पर विभागीय नियन्त्रण अधिक रहता है, इसके पश्चात् भी इन्हें पर्याप्त स्वतन्त्रता है। इन संस्थाओं में दो प्रकार के दोष पाये जाते हैं- 1. आर्थिक स्थिति अच्छी न होना, 2. बुरी प्रबन्ध कारिणी का होना।

बड़े विद्यालयों का स्तर निम्न तथा छोटे विद्यालयों का ऊँचा पाया जाता है। इनमें अध्यापकों का चयन, वेतन, आर्थिक सुविधाओं आदि में मनमानी होती है। संचालित विद्यालयों के अध्यापकों की अपेक्षा इनमें कार्य करने वाले अध्यापकों को सरकार एवं स्थानीय निकाय द्वारा न तो मान मिलता है और न ही वेतन तथा अन्य सुविधाऐं। इन सभी का शिक्षा पर अप्रत्यक्ष प्रभाव

NOTES

पड़ता है। शिक्षा आयोग द्वारा इन दोषों को दूर करने के निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं-

1. उत्तम शिक्षा हेतु आवश्यक सुविधायें प्रदान की जाएं।
2. निजी तथा सरकारी अध्यापकों के आपसी मतभेद को समाप्त किया जाये।
3. निजी विद्यालयों को समस्त सुविधायें सरकारी विद्यालयों के समान प्रदान की जायें।
4. चौथी योजना के अन्त तक प्राथमिक स्तर से शुल्क मुक्ति हो जाये।
5. सरकार सहायता प्राप्त विद्यालयों का मूल्यांकन कर अव्यवस्थित विद्यालय को वह स्वयं संचालित करें।
6. पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक निम्न माध्यमिक स्तर पर शुल्क माँफ हो।

ग्रामीण-शहरी विद्यालय (Rural-Urban School)

ग्रामीण शहरी क्षेत्रों में विषमताओं को दूर करने में ये स्कूल अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन स्कूलों में प्राथमिक स्तर पर छात्रों के भाषायी कौशलों की समस्याओं को दूर करने के प्रयास किये जाते हैं। ऐसे स्कूलों में प्राथमिक स्तर पर कक्षा 1 से अंग्रेजी शिक्षण प्रारम्भ किया जाता है।

एक अध्यापक वाले विद्यालय (Single Teachers School)

विषमताओं को दूर करने में एक अध्यापकीय विद्यालय विशेष योग देते हैं। भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण समिति रिपोर्ट के द्वारा इन विद्यालयों ने विषमताओं को दूर करने में विशेष योगदान दिया है। एक अध्यापक के लिए प्राथमिक स्तर पर एक साथ पाँच कक्षाओं को सम्भालना कठिन होता है। यदि अध्यापक छुट्टी चला जाए, तो विद्यालय ही बन्द हो जाता है। इसलिए बालक विद्यालय आने से डरते हैं और पढ़ाई छोड़ देते हैं।

गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका

शिक्षा हेतु उपलब्ध संसाधनों को विकेन्द्रित करने, प्रदत्त शैक्षिक अवसरों का समुचित प्रयोग करने, स्कूली शिक्षा संबंधी सुविधाओं का मात्रात्मक और गुणात्मक विस्तार करने तथा अब तक सुविधा-वंचित लक्ष्य-वर्गों को शिक्षा के दायरे में सम्मिलित करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षण-प्रक्रिया में गैर-सरकारी संगठनों का पूर्ण सहयोग प्राप्त किया जाए। हमारा देश अति विशाल है, शिक्षा संबंधी समस्याएँ जटिल हैं, अर्थात् हर क्षेत्र की अपनी-अपनी और अलग प्रकार की समस्याएँ हैं। सरकार की सकारात्मक विभेद जैसी अन्त:क्षेप नीतियाँ उचित रास्ता दिखा सकती हैं और किस बात पर तत्काल

बल देना है और किस पर नहीं- इसका निर्धारण कर सकती हैं। लेकिन ये नीतियाँ पूरी तरह से फलवती हों, इसके लिए आवश्यक है कि सरकार को समुदाय, अभिभावकों, महिला-मंडलों आदि का सहयोग मिलता रहे और नीतियों के कार्यान्वयन में इन सबकी सक्रिय भागीदारी प्राप्त हो। इस प्रकार यदि गैर- सरकारी संगठनों की सहायता ली जाए तो फिर शैक्षिक अवसरों की सफलता की प्रक्रिया निश्चत ही पूर्ण रूप से जनता की साझेदारी वाला कार्यक्रम बन जाएगा।

दूरस्थ शिक्षा का अर्थ (Meaning of Distance Education)

दूरस्थ शिक्षा एक महत्पूर्ण आयाम है। दूरस्थ शिक्षा को विभिन्न नामों से पहचाना जाता है, जैसे- मुक्त अधिगम अथवा शिक्षा (Open-learing or Education), पत्राचार शिक्षा (Correspondence Education), बाहरी अध्ययन (External Study), गृह अध्ययन (Home Study) एवं परिसर से बाहर अध्ययन आदि। भारत में इसे दूरस्थ शिक्षा और मुक्त शिक्षा के नाम से ही अधिक जाना जाता है, बल्कि उत्तरी अमेरिका में 'स्वतन्त्र अध्ययन- के नाम से जाना जाता है। शाब्दिक तथा पारिभाषित रूप से दूरस्थ शिक्षा से तात्पर्य शिक्षा के ऐसे प्रचलित एवं अपरम्परागत उपागम से है, जो परम्परागत (औपचारिक शिक्षा) के मानकों पर प्रश्नचिन्ह लगता हुआ इस प्रकार पृथक् विभिन्न मापदण्डों को प्राथमिकता प्रदान करता है। यह एक नवीन उपागम है। परम्परागत शिक्षा के इस उपागम में मौखिक अनुदेशन की विधियों का प्रयोग नहीं किया जाता है।

मुख्य रूप से हमारे भारत वर्ष में दूरस्थ शिक्षा के विषय में तीन शब्द अधिक प्रचलन में हैं; जैसे- पत्राचार शिक्षा (मुद्रित माध्यम), बाहरी दर्शन (व्यक्तिगत परीक्षा) और दूरस्थ शिक्षा। सामान्यत: भारत में विश्वविद्यालय छात्रों को शिक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व नहीं लेता है लेकिन विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप में परीक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व नहीं लेता है लेकिन विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप में परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति देता है। इसी कारण इसे व्यक्तिगत शिक्षा भी कहते हैं किन्तु दूरस्थ अथवा पत्राचार शिक्षा नहीं। भारत में दूरस्थ शिक्षा ब्द का ही अधिक प्रचलन है। कुछ विश्वविद्यालयों में इसे 'मुक्त विश्वविद्यालय व्यवस्था' भी कहा जाता है।

उपर्युक्त विवरण के अलावा दूरस्थ शिक्षा का एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य इसकी अपनी तार्किक भाषा तथा सम्वाद-विधि भी हैं, जो शिक्षण संस्थाओं से अलग निवास करने वाले विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान के कारण विकसित हुई है। शिक्षक एवं विद्यार्थी के बीच शिक्षा की परम्परागत व्यवस्था में आमने-सामने मौखिक संवाद होता है, जबकि दूरस्थ शिक्षा में मुद्रित तथा अमुद्रित बहुमाध्यमों का प्रयोग शिक्षक एवं छात्र के संचार माध्यम के रूप में किया जाता है।

NOTES

दूरस्थ शिक्षा की मुख्य विशेषताएँ
(Prominent Characteristics of Distance Education)

अपनी प्रकृति स्वरूप तथा उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि दूरस्थ शिक्षा की अनेक विशेषताएँ हैं। दूरस्थ शिक्षा की प्रमुख विशेषताओं तथा इसके लक्षणों का विवरण निम्नलिखित हैं-

1. दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के द्वारा छात्रों को अधिगम प्रारम्भ एवं समाप्त करने की अपनी क्षमता के अनुरूप ही स्वतन्त्रता होती है।
2. दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में व्यक्तिगत (Private) छात्रों तथा शिक्षकों के मध्य भिन्नता को अपनाने के लिए अनुदेशन प्रणाली को संरक्षण देने तथा बढ़ावा देने का अवसर प्रदान किया जाता है।
3. इसमें अनुदेशन प्रणाली को माध्यम तथा संचार का मिश्रण करके जोड़ा जाता है, जिससे प्रत्येक विषय अथवा इसकी इकाई को अधिक प्रभावशाली रूप से पढ़ाया जा सके।
4. दूरस्थ शिक्षा प्रणाली छात्रों को समान अवसर तथा चयन की स्वतन्त्रता अधिकार प्रदान करती है, इस प्रकार विद्यार्थियों में उत्तरदायित्व की भावना जागृत होती है।
5. इस अनुदेशन के अन्तर्गत सामग्री के अध्ययन का उत्तरदायित्व छात्रों पर ही अधिक मात्रा में होता है।
6. अनुदेशन प्रणाली को छात्रों की उपलब्धि का मूल्यांकन, छात्रों के अध्ययन के स्थान, उनके अध्ययन की दर, उनके अध्ययन की विधि एवं उनके अध्ययन के क्रम पर समस्याएँ उत्पन्न नहीं करती है।
7. इस अनुदेशन में प्रयोग में लाये जाने वाली तकनीकी अथवा कोई भी माध्यम पूर्ण हो चुके हैं, का ही प्रयोग होता है।
8. इस अनुदेशन योजना को समस्त शिक्षण माध्यम तथा विधियों में जो प्रभावशाली सिद्ध हो चुके हैं, का ही प्रयोग होता है।
9. दूरस्थ शिक्षा के अन्तर्गत अनुदेशन योजना में विभागीय सदस्यों को सरंरक्षकता सम्बन्धी कर्त्तव्य से मुक्त करता है, जिससे शिक्षक तथा छात्र अपना अत्यधिक समय शैक्षिक क्रियाओं को दे सकें।
10. दूरस्थ शिक्षा में अनुदेशन वहाँ उपलब्ध होता है जहाँ अनेक छात्र अथवा एकमात्र हो, चाहे उस समय तथा उस स्थान पर अध्यापक की उपस्थिति हो अथवा न हो।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि दूरस्थ शिक्षा में सभी स्तरों के अनेक रूप सामने आते हैं जो कि अध्यापकों के निरन्तर तथा तात्कालिक निरीक्षण

NOTES

में नहीं होते हैं, परन्तु जो एक शैक्षिक संगठन की योजना, निर्देशन तथा शिक्षण से किसी प्रकार कम उपयोगी नहीं होते हैं। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री होमबर्ग ने अपनी परिभाषा में इसे स्वीकार किया है। दूरस्थ शिक्षा छात्रों की क्रियाओं को निश्चय ही प्रसारित करती है। यह इसकी एक प्रमुख विशेषता है।

दूरस्थ शिक्षा, मुक्त शिक्षा तथा पत्राचार शिक्षा में अन्तर (Difference between Distance Education, Open Education and Correspondence Education)

क्र.सं.	विवरण	दूरस्थ शिक्षा	मुक्त शिक्षा	पत्राचार शिक्षा
1.	**प्रवेश का माध्यम**	इसमें प्रवेश परम्परागत आधार पर दिया जाता है।	इसमें परम्परागत रूप से विद्यार्थी के प्रवेश कम बाध्यताएँ अथवा शर्तें होती हैं।	इसमें प्रवेश परम्परागत शिक्षा के आधार पर प्रदान किया जाता है।
2.	**शिक्षा सामग्री**	इस पद्धति के अन्तर्गत अध्ययन सामग्री संचार प्रौद्योगिकी आधुनिक स्वरूप में हो सकती है।	शिक्षण सामग्री का चयन चयनात्मक प्रवृत्ति का होता है।	पत्राचार शिक्षा में नाम के अनुरूप अध्ययन सामग्री डाक द्वारा प्रेषित की जाती है।
3.	**शिक्षण उपकरण**	मुख्यत: दूरदर्शन, रेडियो वृत्तचित्र, कॉन्फ्रेसिंग इत्यादि	परम्परागत आधुनिक	यहाँ अध्ययन सामग्री मुख्य रूप से मुद्रित है।
4.	**परीक्षा पद्धति**	इसमें परीक्षा 'ऑन-लाइन' अथवा टेली - कॉन्फ्रेसिंग के माध्यम से भी होती है।	सामान्यत: इस पद्धति के अन्तर्गत परीक्षा का आधार परम्परागत होता है।	यहाँ परीक्षा का आधार परम्परागत अथवा पत्राचार द्वारा होता है।
5.	**स्वरूप**	दूरस्थ शिक्षा का प्रारूप आज अधिक विस्तृत होता जा रहा है। समय के साथ-साथ इसमें नये-नये आयाम सम्मिलित होते जा रहे हैं।	मुख्य रूप से मुक्त शिक्षा का प्रारूप चयनात्मक होता है।	पत्राचार शिक्षा का प्रारूप परम्परागत शिक्षा के समान ही होता है।
6.	**शिक्षक की भूमिका**	आवश्यकतानुसार विद्यार्थी शिक्षक की सहायता ले सकता है।	यहाँ शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।	यहाँ पर शिक्षक की भूमिका न्यून होती है।
7.	**विभिन्न व्यय**	यह शिक्षा प्रणाली अधिक व्यय की माँग करती है।	यहाँ अत्यधिक कम व्यय होता है।	यहाँ पर सीमित मात्रा में व्यय होता है।

दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकता (Need of Distance Education)

शिक्षा को आज के भौतिकवादी युग ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक आवश्यक तत्व बना दिया है। व्यक्ति यदि अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में निरक्षर ही रहा है तो वह प्रौढ़ अवस्था में अध्ययन कर सकता है तथा यदि किसी व्यक्ति द्वारा अपनी औपचारिक शिक्षा पूर्ण कर ली हो तो वह अपने जीवन में उन्नति के लिए भी दूरस्थ शिक्षा से संबंधित हो सकता है। व्यक्ति इस प्रकार निरक्षर हो अथवा साक्षर, शिक्षा सभी के लिए महत्त्वपूर्ण है किन्तु शिक्षा जब अपने सीमित संसाधनों के कारण सर्वसुलभ नहीं हो पाती तो शिक्षा के वैकल्पिक अथवा अनौपचारिक माध्यमों द्वारा लेनी होती हे। दूरस्थ शिक्षा के अन्तर्गत वैकल्पिक अथवा अनौपचारिक माध्यमों की सहायता लेनी होती है। दूरस्थ शिक्षा वैकल्पिक साधन के रूप में प्रयोग की जाती है। आज दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकता को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

1. वह क्षेत्र जहां पर शैक्षिक संस्थान उपलब्ध नहीं हैं वहां विद्यार्थी दूरस्थ शिक्षा द्वारा ऐच्छिक पाठ्यक्रम में प्रवेश पाकर शिक्षा को पूर्ण अथवा महत्वपूर्ण बना सकता है।
2. भारतीय संविधान एवं भारतीय सरकार सर्वशिक्षा अभियान चला रही है, ऐसी स्थिति में दूरस्थ शिक्षा का माध्यम एक सशक्त माध्यम सिद्ध हो सकता है।
3. अधिकांश ऐसे भी देश हैं जहाँ वैज्ञानिक, तकनीकी एवं मानव संसाधन की अन्यता है तथा परम्परागत शिक्षा प्रणाली इस अन्यता को दूर करने मं असमर्थ है। अतः दूरस्थ शिक्षा द्वारा अधिक विनियोग (Invest) किये बिना ही शिक्षा का प्रसार हो सकता है।
4. दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से ज्ञान तथा अधिगम को विभिन्न उपायों तथा क्षेत्रों का प्रसार सरलता के साथ किया जा सकता है।
5. दूरस्थ शिक्षा और मुक्त विद्यालयों की अन्य आवश्यकता माध्यमिक स्तर पर छात्रों के दबाव को कम करना है।
6. भारत के बीमारू राज्य कहे जाने वाले राज्यों; जैसे- उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, झारखण्ड एवं उत्तराखण्ड इत्यादि के अन्तर्गत शिक्षा की स्थिति अत्यन्त निम्न स्तरीय है। इसलिए दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से इन राज्यों की स्थिति में सुधार आवश्यक ही लाया जा सकता है।
7. कक्षीय शिक्षा पर शिक्षा के आधुनिक स्वरूप में अपेक्षाकृत अधिक व्यय होता है। अतः शिक्षा में अन्य व्यय के लिए दूरस्थ शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

NOTES

8. सामान्यतः दूरस्थ शिक्षा के द्वारा उन व्यक्तियों को शिक्षा का अवसर प्रदान कराया जाता है, जो कि रूढ़िवादी प्रणाली में शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते, लेकिन वह शिक्षा अवश्व ही ग्रहण करना चाहते हैं।
9. परम्परागत शिक्षा अपने परम्परागत प्रारूप में सर्वसुलभ तथा उपयोगी नहीं हो पा रही है। इस प्रकार से दूरस्थ शिक्षा का प्रसार अत्यन्त ही आवश्यक है।
10. मुख्यतः दूरस्थ शिक्षा उन व्यक्तियों के लिए है, जो अपने जीवन के प्रारम्भिक समय में शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाये हैं। दूरस्थ शिक्षा घर बैठे ही उन्हें शिक्षा ग्रहण करने का अवसर देती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि दूरस्थ शिक्षा की वर्तमान समय तथा परिस्थितियों में अत्यधिक मांग है। इससे शिक्षा को सर्वसुलभ, सर्वउपयोगी तथा रोजगारपरक बनाया जा सकता है।

दूरस्थ शिक्षा के उपाय (Objectives of Distance Education)

दूरस्थ शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों को निम्नलिखित बिन्दुओं के साथ समझा जा सकता है-

1. शिक्षित व्यक्तियों के उनके वर्तमान रोजगार में समस्या उत्पन्न किये बिना ज्ञान-विकास हेतु अवसर प्रदान करना।
2. उन सीखने वालों को अधिगम अवसर प्रदान करना जो कम आय, अधिक आयु, दूरी आदि के कारण अपनी शिक्षा को बनाये रखने में असमर्थ रहे थे।
3. सीखने वालों के लाभ एवं उत्थान के लिए उनके ज्ञान को समृद्ध बनाना।
4. शिक्षा का मुख्यतः उच्चतर शिक्षा के व्यापक अवसरों का मार्ग प्रशस्त करना।
5. सीखने वालों को उनकी रुचियों से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों में हुए वर्तमान विकास तथा सुधारों से अवगत कराना।
6. उन सीखने वालों को अपनी रुचि के विषयों एवं भाषाओं को अपनी गति तथा सुविधानुसार सीखने के योग्य बनाना जो इसको औपचारिक शिक्षा के कठोर नियमों तथा समय तालिका नहीं सीख सके थे।
7. सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े व्यक्तियों को समाज का उपयोगी नागरिक बनने में सहायता प्रदान करना।

दूरस्थ शिक्षा का महत्व (Importance of Distance Education)

विभिन्न देशों में दूरस्थ शिक्षा की अवधारणा का उदय विशेषकर लोगों की नवीन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए हुआ है। ये आकांक्षाएँ ज्ञान विस्फोटक, जनसंख्या विस्फोट एवं आवश्यकताओं के विस्फोट से पैदा हुई है। निम्नांकित तथ्य दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व को स्पष्ट करते हैं-

1. जनसंख्या विस्फोट ने छात्रों की संख्या में वृद्धि की है। इस वृद्धि की आकांक्षाओं को औपचारिक शिक्षा-पद्धति द्वारा पूर्ण करना सम्भव नहीं हो पा रहा है। अतः सभी के लिए शिक्षा (Education for All) हेतु दूरस्थ शिक्षा आवश्यक है, क्योंकि औपचारिक शिक्षा पद्धति में सभी को प्रवेश प्रदान करना सम्भव नहीं है। इस पद्धति में पगति व्यक्ति व्यय अधिक होता है। इसमें परीक्षा का दबाव अधिक है। यह पूर्णकालिक तथा लम्बी अध्ययन अवधि वाली प्रणाली है। यह व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित नहीं है।
2. दूरस्थ द्वारा नवीन परिवर्तनों को सम्मिलित करना सम्भव है। इसलिए इसके द्वारा ज्ञान को अधुनातन बनाये रखने में सहायता मिलती है।
3. यह विभिन्न अवस्थाओं के लोगों को विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक है।
4. यह आत्म-विश्वास के लिए महत्वपूर्ण है।
5. यह शिक्षा लोकतन्त्रीकरण (Democratization) में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।
6. यह शिक्षा आर्थिक, भौतिक, भावात्मक एवं पारिवारिक स्थितियों से उत्पन्न पृथकता को दूर करने में सहायता देती है।
7. यह प्रत्येक व्यक्ति को उसके दरवाजे पर शिक्षा प्रदान करती है।
8. यह शैक्षिक योग्यता बढ़ाने वाले इच्छुक व्यक्तियों को अवसर प्रदान करती है।
9. यह शिक्षा उन व्यक्तियों को अधिगम अवसर प्रदान करती है जो कमाते हुए सीखना चाहते हैं।
10. दूरस्थ शिक्षा द्वारा विभिन्न छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करना सम्भव है।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीघ उत्तरीय प्रश्न

1. शालेय शिक्षा में बढ़ती असमानता की सविस्तार व्याख्या कीजिए।
2. असमानता के स्वरूप का उल्लेख करते हुए, इसके कारकों को समझाइए।
3. शिक्षा में असमानता के परिणामों का उल्लेख कीजिए।
4. प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर पर शैक्षिक असमानताएँ स्पष्ट कीजिए।
5. शिक्षा में असमानता घटाने वाली अन्त:क्षेपी कार्य नीतियों समझाइए।
6. दूरस्थ शिक्षा से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विद्यालयीकरण में असमानता की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
2. सार्वजनिक विद्यालय से आप क्या समझते हैं?
3. ग्रामीण-शहरी तथा एक अध्यापक वाले विद्यालयों को समझाइए।
4. गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
5. दूरस्थ शिक्षा, मुक्त विद्यालय तथा पत्राचार शिक्षा में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
6. दूरस्थ शिक्षा के उपाय समझाइए।
7. दूरस्थ शिक्षा का महत्व स्पष्ट कीजिए।

1 शिक्षा संबंधी संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions with Regard to Education)

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- मूल अधिकार
- मूल कर्तव्य
- विभिन्न स्तरों पर राजकीय शैक्षिक कार्य
- भारत के संविधान में शिक्षा संबंधी अनुच्छेद-प्रावधान
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- मूल अधिकार
- मूल कर्तव्य
- विभिन्न स्तरों पर राजकीय शैक्षिक कार्य
- भारत के संविधान में शिक्षा संबंधी अनुच्छेद-प्रावधान
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009

प्राक्कथन

वर्तमान समय में मनुष्य के लिए शिक्षा आवश्यक हो गई है। इसका कारण यह है कि आज का युग तकनीकी एवं विज्ञान का युग है। इसलिए मनुष्य का सचेत तथा जागरूक होकर जीवित रहना आवश्यक हो गया है। एक समय था जब शिक्षा सबके लिए नहीं थी। शिक्षा केवल कुछ धनी लोगों के लिए थी तथा इसका उद्देश्य केवल व्यक्ति का बौद्धिक विकास था। लेकिन आज शिक्षा जनसाधारण व्यक्ति के लिए भी उतनी ही आवश्यक है जितनी वर्ग विशेष के लिए हुआ करती थी। इस स्थिति का मुख्य कारण प्रजातन्त्र का विकास एवं प्रसार है।

15 अगस्त 1947 ई. को हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। भारतीय संविधान जो 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया उसमें शिक्षा के प्रति पूर्ण रूप से संवैध ानिक दायित्व की चर्चा की गई। भारत का संविधान सर्वप्रथम हमें शिक्षा की विभिन्न समस्याओं को समझाने में सहायता करता है। शिक्षा जगत् से सम्बन्धि त संविधान में जो व्यवस्थाएँ हमारी राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन से सम्बन्धित हैं, उनका समझना बहुत आवश्यक है।

इस अध्याय में आप शिक्षा से सम्बंधित विभिन्न प्रावधानों का अध्ययन करेंगे।

भारत का संविधान-उद्देशिका

हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी धर्म निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा ओर राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढसंकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, तथा आत्मार्पित करते हैं।

मूल अधिकार

संविधान के अनुच्छेद 12 से 32 में नागरिकों के मूल अधिकारों का वर्णन किया गया है। वर्तमान समय में भारत के नागरिकों के निम्नलिखित छः मूल अधिकार हैं-

1. समानता या समता का अधिकार।
2. स्वतंत्रता का अधिकार।
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार।
4. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार।

5. संस्कृति और शिक्षा का अधिकार (6-14 वर्ष की आयु)।
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

वर्ष 2002 में 86वें संविधान संशोधन द्वारा 6-14 वर्ष तक के बालकों के लिए शिक्षा को मूल अधिकार घोषित किया गया।

मूल कर्तव्य

संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान 10 मौलिक कर्तव्यों को शामिल कर दिया गया है। वर्ष 2002 में 86वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 51-क से एक अन्य मौलिक कर्तव्य समाहित किया गया। भारत के प्रत्येक नागरिक के 11 मौलिक कर्तव्य निम्नलिखित हैं-

1. संविधान का पालन करें और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करें।
2. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजाए रखे तथा उनका पालन करें।
3. भारत की प्रभुसत्त, एकता तथा अखण्डता की रक्षा करें और उसे अक्षुण्ण रखें।
4. देश की रक्षा करें और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करें।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता एवं समान भ्रातृत्व की भावना जागृत करें, जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो। ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के खिलाफ हैं।
6. हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझें और उसका परिरक्षण करें।
7. प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसमें वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें और उसका संवर्धन करें तथा जीव के प्रति दयाभाव रखें।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववादी और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।
9. सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखें तथा हिंसा से दूर रहें।
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करें जिससे राष्ट्र उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

NOTES

NOTES

11. माता-पिता या अभिभावक के रूप में भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह 6 से 14 वर्ष के बच्चे को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध कराएगा।

विभिन्न स्तरों पर राजकीय शैक्षिक कार्य (Educational Functions of Government at Various Levels)

संविधान के अनुच्छेद 246 के अंतर्गत सूची 1-संघ सूची तथा सूची 3-समवर्ती सूची में शामिल शिक्षा विषयक तथ्य है। संविधान के अन्तर्गत सरकार के विभिन्न स्तरों पर शिक्षा से सम्बन्धित कर्तव्यों एवं दायित्वों का वर्णन है। सरकार संघ स्तर पर, राज्य स्तर पर तथा स्थानीय स्तर पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यों को व्यवहारिक रूप प्रदान करेगी। भारत का संविधान संघीय है। इसलिए शक्तियों का विभाजन केन्द्र और राज्यों के बीच किया गया है। शक्ति से सम्बन्धित तीन सूचियाँ हैं-

1. संघ सूची (Union List)
2. राज्य सूची (State List)
3. समवर्ती सूची (Concurrent List)

संघ सूची (Union List) 154

भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 की राज्य सूची में निम्नलिखित प्रविष्टियाँ हैं-

- **63** इस संविधान के प्रारम्भ पर काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और (दिल्ली विश्वविद्यालय) नामों से ज्ञात संस्थाएँ (अनुच्छेद 371 ड़ के अनुसरण में स्थापित विश्वविद्यालय) संसद द्वारा, विधि द्वारा, राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था।
- **64** भारत द्वारा पूर्णतः या भागतः वित्तपोषित तथा संसद द्वारा, विधि द्वारा, राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा संस्था।
- **65** संघ के अभिकरण तथा संस्थाएँ जो-

  (क) वृत्तिक, व्यवसायिक या तकनीकी प्रशिक्षण के लिए जिसमें अधिकारियों का प्रशिक्षण है।

  (ख) विशेष अध्ययन या अनुसंधान की अभिवृद्धि के लिए है।

  (ग) अपराध के अंवेषण या पता लगाने में वैज्ञानिक या तकनीकी सहायता के लिए है।

NOTES

- **66** उच्चतर शिक्षा या अनुसंधान संस्थाओं में तथा वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थाओं में मानकों का समन्वय एवं अवधारणा।

राज्य सूची (State List)

भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 की राज्य सूची में प्रविष्टियाँ निम्नलिखित हैं-

- **14** कृषि जिसके अंतर्गत कृषि शिक्षा और अनुसंधान, नाशक जीवों से संरक्षण और पादप रोगों का निवारण है।

समवर्ती सूची (Concurrent List)

सन् 1976 में 42वें संवैधानिक संशोधन से शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल किया गया। भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 की समवर्ती सूची में प्रविष्टियाँ सूची में प्रविष्टियाँ निम्नलिखित हैं-

- **25** सूची 1 की प्रविष्टि 63, 64, 64 और 66 के उपबंधों के अध ीन रहते हुए, शिक्षा जिसके अंतर्गत तकनीकी शिक्षा, आयुर्विज्ञान शिक्षा एवं विश्वविद्यालय है, श्रेमिकों का व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण।

भारत का संविधान और शिक्षा

अनुच्छेद 28- कुछ शिक्षा संस्थाओ में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के सम्बन्ध में स्वतंत्रता–

1. राज्य- निधि से पूर्णतः किसी शिक्षा में कोई धार्मिक शिक्षा प्रदान नहीं की जाएगी।
2. खण्ड (1) की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था में लागू नहीं होगी, जिसका प्रशासन राज्य करता है किन्तु जो किसी ऐसे विन्यास या न्यास के अधीन स्थापित हुई है, जिसके अनुसार उस संस्था में ध ार्मिक शिक्षा प्रदान करना आवश्यक है।
3. राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य-निधि से सहायता प्राप्त शिक्षा में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए या ऐसी संस्था में या उससे संलग्न स्थान में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति ने, या यदि वह अवयस्क है, तो उसके संरक्षक ने, इसके लिए अपनी सहमति नहीं प्रदान करता है।

NOTES

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

अनुच्छेद 39-अल्पसंख्यक- वर्गों के हितों का संरक्षण–

1. भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाव को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपी या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार प्राप्त होगा।
2. राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता प्राप्त किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इसमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30- शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने का अल्पसंख्यक- वर्गों का अधिकार–

1. धर्म या भाशा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन का अधिकार प्राप्त होगा।
2. शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरुद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक- वर्ग द्वारा संचलित है।

अनुच्छेद 41- कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार : राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के अन्दर, काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी तथा निःशक्तता तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा।

अनुच्छेद 46- अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्लब वर्गों के शिक्षा तथा अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि : राज्य, समाज के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।

अनुच्छेद 15(3) स्त्री शिक्षा का विशिष्ट प्रावधान : इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

अनुच्छेद 15(4) : इस अनुच्छेद या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

अनुच्छेद 350 व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा : प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में आवेदन दे सकता है।

अनुच्छेद 350 क. प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएँ : प्रत्येक राज्य के भीतर प्रत्येक प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक- वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा तथा राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

अनुच्छेद 350 ख. भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए विशेष अधिकारी:

1. भाषाई अल्पसंख्यक- वर्गों के लिए एक विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।
2. विशेष अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए उपबंधित रक्षा उपायों से संबन्धित सभी विषयों का अंवेषण करें तथा उन विषयों के सम्बन्ध में ऐसे अंतरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करें, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे और राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा एवं सम्बंधित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।

अनुच्छेद 343- संघ की राजभाषा : संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी।

अनुच्छेद 351 हिन्दी भाषा के विकास के लिए निदेश : संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का साधन बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तान में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए तथा जहाँ आवश्यक हो वहाँ उसके शब्द- भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009
(Right to Education Act 2009)

- शिक्षा के अधिकार को संवैधानिक आधार प्रदान करने के लिए दिसम्बर 2002 में 86वाँ संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 21A

NOTES

(भाग - III) जोड़ा गया जिसके अंतर्गत शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा प्रदान किया गया।

- 19 जुलाई 2006 को शिक्षा के अधिकार से जुड़े सभी संगठनों की संयुक्त बैठक बुलाई, जिसमें संसदीय कार्यवाही व निर्देशों की आवश्यकता व निर्धारण के लिए निर्णय लिए गये।
- 2 जुलाई 2009 को यह विधेयक केंद्रीय मंत्रीमंडल द्वारा अनुमोदित कर दिया गया।
- 20 जुलाई 2009 को राज्यसभा द्वारा इसे पास कर दिया गया है।

सुयोग्य शिक्षक स्कूलों में उपस्थित होने चाहिए। स्कूलों को पांच वर्षों के भीतर अपने सभी शिक्षकों को प्रशिक्षित करना होगा। उन्हें तीन वर्षों के भीतर समुचित सुविधाएँ भी सुनिच्चित करनी होगी, जिसमें खेल का मैदान, पुस्तकालय, पर्याप्त संख्या में अध्ययन कक्ष, शौचालय, शारीरिक विकलांग बच्चों के लिए निर्बाध पहुँच तथा पेय जल सुविधाएँ सम्मिलित हैं। विद्यालय प्रबंधन समितियों के 75 प्रतिशत सदस्य छात्रों की कार्यप्रणाली तथा अनुदानों के प्रयोग की देखरेख करेंगे। विद्यालय प्रबंधन समितियाँ तथा स्थानीय अधि कारी स्कूल से वंचित बच्चों की पहचान करेंगे और उन्हें उम्र के अनुसार समुचित कक्षाओं में प्रवेश दिलाएंगे। सम्मिलित विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से निजी स्कूल भी सबसे निचली कक्षा में समाज के गरीब और निर्धन वर्गों के लिए 25 प्रतिशत सीटें आरक्षित करेंगे।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत के संविधान में वर्णित मूल अधिकारों एवं मूल कर्तव्यों का वर्णन कीजिए।
2. भारत के संविधान में वर्णितशिक्षा संबंधी अनुच्छेदों की व्याख्या कीजिए।
3. शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 का उल्लेख कीजिए।

लघ उत्तरीय प्रश्न

1. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–
   - समता का अधिकार
   - स्वातंत्र्य का अधिकार
   - शोषण के विरुद्ध अधिकार
   - धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार
   - संस्कृति और शिक्षाका अधिकार (6-14 वर्ष की आयु)

2 राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964-66 (कोठारी कमीशन) (National Education Commision (1964-66))

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- आयोग के सदस्य
  - आयोग की नियुक्ति के कारण व प्रयोजन
  - आयोग का प्रतिवेदन
- राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के मुख्य सुझाव
  - शिक्षा के प्रशासन, वित्त एवं नियोजन सम्बन्धी सुझाव
  - शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य
  - अध्यापकों की स्थिति
  - अध्यापक शिक्षा
  - अध्यापक शिक्षा के दोष
  - प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार
  - विद्यालय शिक्षा का विस्तार
  - प्राथमिक शिक्षा का विस्तार
  - माध्यमिक शिक्षा का विस्तार
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- आयोग के सदस्य
  - आयोग की नियुक्ति के कारण व प्रयोजन
  - आयोग का प्रतिवेदन
- राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के मुख्य सुझाव

NOTES

- शिक्षा के प्रशासन, वित्त एवं नियोजन सम्बन्धी सुझाव
- शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य
- अध्यापकों की स्थिति
- अध्यापक शिक्षा
- अध्यापक शिक्षा के दोष
- प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार
- विद्यालय शिक्षा का विस्तार
- प्राथमिक शिक्षा का विस्तार
- माध्यमिक शिक्षा का विस्तार

प्राक्कथन

भारत बहुत समय ब्रिटिश शासन के अधीन रहा है यहाँ पर ब्रिटिश शासन की नीतियाँ ही लागू रही हैं जो भारतीयों के हित में न होकर ब्रिटिश के प्रति अधिक झुकी हुई थी। स्वतंत्र भारत में शिक्षा की विभिन्न समस्याओं पर विचार करने के लिए 1948 में विश्वविद्यालय आयोग (राधाकृष्णनन कमीशन) की नियुक्ति की गयी। इस आयोग द्वारा विश्वविद्यालय शिक्षा के प्रशासन संगठन और उसके स्तर को ऊँचा उठाने सम्बन्धी अनेक ठोस सुझाव प्रस्तुत किे गये। उसके कुछ सुझावों का क्रियान्वयन भी किया गया। उससे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कुछ सुधार भी हुआ, लेकिन वह सब हाथ नहीं लगा जिसे हम प्राप्त करना चाहते थे शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार का दूसरा बड़ा कदम था। माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर कमीशन) की नियुक्ति इस आयोग ने तत्कालीन माध्यामिक शिक्षा के दोषों को प्रस्तुत किया और उसके पुनर्गठन के लिए ठोस सुझाव दिए, कुछ प्रान्तीय सरकारों ने उसके सुझावों के आधार पर माध्यमिक शिक्षा में परिवर्तन किया परन्तु जोकि हमारे उद्देश्यों को पूर्ण नहीं कर सका अतः भारत सरकार ने शिक्षा के पुनर्गठन पर समग्र रूप से सोचने समझने और देश के लिए समान शिक्षा निति का निर्माण का निर्माण करने के उद्देश्य से 14 जुलाई 1964 को डॉ. डी. एस. कोठारी (तत्कालीन अध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का गठन किया गया। इस आयोग को इसके अध्यक्ष के नाम पर कोठारी आयोग (Kothari Commission) भी कहा जाता है। इस आयोग का उद्घाटन 2 अक्टूबर, 1964 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में हुआ।

आयोग के सदस्य (Members of the Commission)

शिक्षा आयोग के अन्तर्गत कुल 17 सदस्य थे। जिनमें 6 अन्य देशों के शिक्षा विशेषज्ञय थे राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का संगठन निम्न प्रकार है-

अध्यक्ष : प्रोफेसर दौलत सिंह कोठारी अध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग सदस्य।

सदस्य

(i) **शिक्षा, विज्ञान एवं तकनीकी में अनुसन्धान :** शिक्षा के द्वारा ही चतुर्मुखी विकास होता है। यह विकास तभी संभव है जब विज्ञान और प्रौद्यौगिकी के समस्त साधनों का प्रयोग करते हुए शोधकार्य किया जाये। शिक्षा और विज्ञान पर अधिकांश धन अनुसन्धान करने में लगाया जाऐगा।

(ii) **राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास :** इस प्रणाली का विकास करना भारत सरकार की प्रमुख आवश्यकता थी शिक्षा के द्वारा ही लोकतन्त्रीय समाज का निर्माण एवं राष्ट्रीय एकता सम्भव है शिक्षा द्वारा ही सन्तुलित एवं संगठित राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास होगा।

(iii) **धर्म निरपेक्ष लोकतन्त्र की शिक्षा :** परम्परागत शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन कर एक धर्मनिपेक्ष प्रजातन्त्र के लिए नए लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए, जैसे निर्धनता का अन्त, कृषि का आधुनिकीकरण, उद्योगों का विकास, विज्ञान और प्रोद्योगिकी का प्रयोग, समाजवादी समाज की रचना, शिक्षा रोजगार और सांस्कृतिक उन्नति के लिए समान अवसर आदि।

(iv) **शिक्षा में गुणात्मक विकास :** स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात शिक्षा में अत्यन्त तीव्र गति से विकास हुआ है। परन्तु उतना विकास नहीं हुआ जितना की आवश्यकता थी शिक्षा का स्तर निम्न था संख्यात्मक वृद्धि तो हुई है लेकिन गुणात्मक वृद्धि कम हुई।

(v) **शिक्षा स्तरों का विकास :** शैक्षिक विकास के लिए सम्पूर्ण क्षेत्र का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि शिक्षा प्रणाली के विभिन्न अंग एक दूसरे पर प्रबल प्रतिक्रिया करते हैं यदि प्राथमिक शिक्षा अच्छी होगी तो माध्यमिक शिक्षा भी अच्छी होगी माध्यमिक शिक्षा उत्तम है तो उच्च शिक्षा भी उत्तम होगी अत: शिक्षा स्तरों का विकास करने के लिए शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र की जांच करना अत्यन्त आवश्यक है।

आयोग का प्रतिवेदन (Report of the Commission)

आयोग ने इस विशाल कार्य को सम्पन्न करने के लिए दो विधियों का अनुसरण किया पहली निरिक्षण एवं साक्षात्कार और दूसरी प्रश्नावली इनका विवरण निम्न प्रकार है-

NOTES

(i) निरिक्षण एवं साक्षात्कार विधि (Observation and Interview method) : निरीक्षण एवं साक्षात्कार के लिए आयोग ने कार्यकारी दल (Working Groups) तैयार किये इन दलों ने देश के विभिन्न प्रान्तों का भ्रमण किया, उनके अधिकांश विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों को देखा एवं उनके छात्रों शिक्षकों और प्रशासकों से साक्षात्कार किया विभिन्न शिक्षाविदों से भेंट कर उनसे विचार विमर्श किया और प्रमुख तथ्यों को लेखबद्ध किया।

(ii) प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method) : आयेग ने शिक्षा की विभिन्न समस्याओं से सम्बन्धित एक विस्तृत प्रश्नावली (Questionnaire) तैयार की और उसे शिक्षा से संबंधित विभिन्न वर्ग के करीब 5000 व्यक्तियों के पास भेजा इनमें से 2400 व्यक्तियों ने इसे भरकर लौटाया आयोग ने इस प्रश्नावली का सांख्यिकीय विवरण तैयार किया आयोग ने इन दोनों विधियों से प्राप्त सुझावों पर विचार विमर्श किया अन्त में 29 जून, 1966 को अपना प्रतिवेदन शिक्षा एवं राष्ट्रीय प्रगति (Education and national Development) भारत सरकार को प्रस्तुत किया।

(iii) प्रतिवेदन (Report) : शिक्षा आयोग ने अपना प्रतिवेदन 29 जून, 1966 को भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा मंत्री एम.सी. छागला के समक्ष प्रस्तुत किया करीब 700 प्रष्ठों का यह प्रतिवेदन 3 भागों में विभाजित है और इसका नाम है।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के मुख्य सुझाव
(Suggestion of National Education Commission (Kothari Commission))

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग द्वारा तत्कालीन भारतीय शिक्षा का समग्ररूप से अध्ययन किया गया और उसके सम्बन्ध में अपने सुझाव प्रस्तुत किये। आयोग की मूलधारणा है कि शिक्षा राष्ट्र के विकास का प्रमुख आधार है। उसने अपने प्रतिवेदन का प्रारम्भ ही इस वाक्य से किया है “देश उसकी कक्षाओं में निर्मित हो रहा है।” आयोग का प्रतिवेदन सम्बन्धी दूसरा मुख्य तथ्य यह है कि भविष्य इसमें शिक्षा की कुछ समस्याओं का विवेचन तो समग्र रूप से किया गया है जैसे शिक्षा के राष्ट्रीय लक्ष्य, शिक्षा की संरचना, शिक्षकों की स्थिति, शैक्षिक अवसरों की समानता कृषि शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा और कुछ समस्याओं का विवेचन स्तर विशेष शिक्षा के सन्दर्भ में किया गया है; जैसे विद्यालयी शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियाँ आदि और उच्च शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियाँ आदि में सुधार के रूप पाये जाते हैं।

शिक्षा के प्रशासन, वित्त एवं नियोजन सम्बन्धी सुझाव (Suggestion for Administration of Education, Finance and Planning)

आयोग ने इन तीनों के सम्बन्ध में निम्नलिखित रचनात्मक सुझाव प्रदान किये।

शिक्षा के प्रशासन सम्बन्धी सुझाव

i. राष्ट्रीय शिक्षा अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) को अखिल भारतीय स्तर पर विद्यालयी शिक्षा का अधिकार सौंपा जाएँ।

ii. केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (CABE) को और अधिक अधिकार प्रदान किए जाएँ।

iii. शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व का विषय माना जाए और उसकी राष्ट्रीय नीति घोषित की जाए इसके लिए यदि आवश्यक हो तो केन्द्र सरकार 'नेशनल एजूकेशन एक्ट' बनाए और प्रान्तीय सरकारें 'स्टेट एजूकेशन एक्ट' बनाएँ।

iv. भारतीय शिक्षा सेवा में उन व्यक्तियों का चयन किया जाए, जिन्हें शिक्षण कार्य का अनुभव हो।

v. केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय में शिक्षा सलाहकार और शिक्षा सचिव के पदों पर सरकारी, गैरसकारी, भारतीय शिक्षा सेवा और विश्वविद्यालयों में से योग्यता व्यक्तियों का चयन किया जाए।

vi. शिक्षा प्रशासकों और शिक्षकों के बीच स्थानान्तरण की व्यवस्था की जाए।

शिक्षा के वित्त सम्बन्धि सुझाव

आयोग ने स्पष्ट किया कि 1965-66 की अपेक्षा 1985-86 में छात्रों की संख्या कम से कम दो गुनी हो जायेगी और प्रति छात्र व्यय 12 रु. के स्थान पर 54 रु. हो जाएगा इसलिए शिक्षा बजट में प्रति वर्ष वृद्धि करना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में उसने अग्रलिखित सुझाव दिये।

i. केन्द्र सरकार अपने बजट में शिक्षा के लिए कम से कम 6 प्रतिशत का प्रावधान करे।

ii. राज्य सरकारें भी अपने बजटों में शिक्षा के लिए कम से कम 6 प्रतिशत का प्रावधान करें।

iii. राज्यों में स्थानीय संस्थाओं (ग्राम पंचायतों और नगर पालिकाओं) को उनके क्षेत्र की प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं का विभिन्न भार सौंपा जाएँ।

iv. व्यक्तिगत स्त्रोतों से अधिक से अधिक धन प्राप्त किया जाए।
v. शिक्षा हेतु आप के स्त्रोत बढ़ाने के उपायों की खोज की जाए, इस क्षेत्र में अनुसंधान किए जाएँ।

शिक्षा के नियोजन सम्बन्धी सुझाव

NOTES

1951 में में हमारे देश में पंच वर्षीय योजनाओं का श्री गणेश हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में भी पंचवर्षीय नियोजन प्रारम्भ हुआ इस नियोजन में अनेक खामियाँ थी। आयोग ने इसमें सुधार हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए-

i. शैक्षिक नियोजन केन्द्रीय और प्रान्तीय स्तर पर अलग-अलग किया जाए।
ii. विद्यालय शिक्षा का नियोजन स्थानीय निकाए और राज्य सरकारें मिलकर करें और उच्च शिक्षा का नियोजन प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारें मिलकर करें।
iii. शैक्षिक नियोजन वर्तमान और भविष्य की माँगों के आधार पर किया जाए राष्ट्रीय प्रान्तीय और उसके बाद स्थानीय आधार प्राथमिकताओं का वर्गीकरण किया जाए और उनके आधार पर सभी कार्यक्रम नियोजित किए जाएँ।
iv. शैक्षिक नियोजन में अपव्यय एवं अवरोधन को रोकने के लिए विशेष प्रावधान किया जाए।
v. शैक्षिक नियोजन में शिक्षा प्रसार के साथ-साथ उसमें गुणात्मक सुध ार हेतु व्यवसाय किया जाए।

शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य (Education and National Objective)

शिक्षा द्वारा उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आयोग ने निम्नांकित पंचमुखी कार्यक्रम का विचार प्रकट किया है।

1. **शिक्षा व उत्पादन :** आयोग ने शिक्षा द्वारा उत्पादन में वृद्धि करने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं-

   i. विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में विज्ञान को महत्वपूर्ण योगदान दिया जाये।
   ii. कार्य- अनुभव को समस्त शिक्षा का अविभाज्य अंग माना जाए।
   iii. कृषि कार्य के विकास तथा उत्पादन को बढ़ाने में विज्ञान से सहायता ली जाये।
   iv. माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक स्वरूप प्रदान किया जाये।

v. विश्वविद्यालय एवं उच्च शिक्षा में कृषि तथा औद्योगिक शिक्षा को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाये।

2. सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास (Development of social, Moral and Spiritual Values) इस सम्बन्ध में आयोग ने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं-

   i. सभी शिक्षण संस्थाओं में नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा प्रदान की जाये।

   ii. प्राथमिक स्तर पर इन मूल्यों की शिक्षा रोचक कहानियों द्वारा दी जाए।

   iii. माध्यमिक स्तर पर इन मूल्यों के सम्बन्ध में अध्यापक तथा विद्यार्थी आपस में विचार विमर्श करें।

   iv. विद्यालयों का वातावरण इन मूल्यों द्वारा ओत-प्रोत रखना चाहिए।

3. शिक्षा और लोकतन्त्र की सुदृढ़ता (Education and Consolidation of Democracy) आयोग ने शिक्षा द्वारा प्रजातन्त्र को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये हैं-

   i. 14 वर्ष तक के सीाी बालकों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाये।

   ii. बिना भेदभाव के सभी बालकों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान किए जाएँ।

   iii. वयस्क शिक्षा के कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।

   iv. माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय शिक्षा का विकास करके सुयोग्य तथा कुशल नेतृत्व का प्रशिक्षण प्रदान किया जाये।

4. **शिक्षा और आधुनिकीकरण (Education and Modernisations) :** आयोग ने भारत के आधुनिकरण हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए हैं-

   i. आयुनिकरण के आधार से औद्योगिकी सहायता ली जाये।

   ii. आधुनिकरण करने के लिए शिक्षा को एक साधन के रूप में मान्यता दी जाये।

   iii. सामान्य व्यक्ति के शिक्षा स्तर को ऊँचा उठाया जाये।

   iv. शिक्षा के द्वारा उचित मूल्यों और दृष्टि कोण का विकास हो।

अध्यापकों की स्थिति (Status of Teachers)

आयोग ने शिक्षक की स्थिति में सुधार करने हेतु निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं-

1. वेतन (Remuneration) आयोग द्वारा शिक्षकों के वेतन के विषय में अघोलिखित विचार प्रकट किए गए हैं-
   - i. भारत सरकार विद्यालयों के शिक्षकों को न्यूनतम वेतनक्रम निश्चित करे।
   - ii. राजकीय तथा अराजकीय विद्यालयों के शिक्षकों हेतु वेतनक्रमों में समानता के सिद्धान्त का अनुसरण किया जाए।
   - iii. विश्वविद्यालयों एवं उनसे संबंधित कॉलेजों के अध्यापकों के वेतनक्रम में पूर्ण वृद्धि की जाए।
2. वेतन क्रम सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Pay Scales) आयोग ने शिक्षकों के वेतन क्रम के विषय में अघोलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं-
   - i. शिक्षकों के वेतन क्रमों को क्रियान्वित करने के साथ-साथ उनकी योग्यताओं एवं नियुक्ति की विधियों में सुधार किया जाए।
   - ii. शिक्षकों को सरकारी कर्मचारियों के समान महँगाई भत्ता दिया जाए।
   - iii. शिक्षकों के वेतन क्रम प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् दोहराये जाएँ।
   - iv. शिक्षकों के वेतन क्रम के विषय में दिए सुझाव शीघ्र क्रियान्वित हों।
3. नियुक्ति एवं पदोन्नति सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding Appointment and Promotion)-
   - i. किसी भी स्तर के शिक्षकों की न्यूनतम योग्यता में वृद्धि की जाए और उनके चयन की विधियों को सुधारा जाय।
   - ii. शिक्षकों के पदों पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की जाए इसकलए लिए योग्य व्यक्तियों को अग्रिम वेतन वृद्धि और अतिरिक्त प्रतिभा के व्यक्तियों को उच्च वेतनमान भी दिए जा सकते है।
   - iii. सभी आधारों पर महिला शिक्षकों की नियुक्ति प्रोत्साहित की जाए।
   - iv. अपने पदों पर कार्यकुशलता का परिचय देने वालों को अग्रिम वेतन वृद्धि प्रदान की जाए।
   - v. पदोन्नति का आधार वरीयता के स्थान पर योग्यता एवं कुशलता हो।

4. कार्य व सेवा की दशायें (Conditions of work and Service) : आयोग ने शिक्षकों के कार्य एवं सेवा की दशाओं में सुधार करने के लिए निम्न सुझाव दिये।
   i. सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की सेवा दशाओं में समानता स्थापित की जाए।
   ii. शिक्षा संस्थाओं के अन्तर्गत शिक्षकों के कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए न्यूनतम सुविधायें प्रदान की जाएँ।
   iii. शिक्षक को अपनी व्यावसायिक उन्नति करने के लिए उपयुक्त सुविधायें दी जाएँ।
   iv. शिक्षकों के अध्यापन कार्य के घण्टों को निश्चित करते समय उसके द्वारा किए जाने वाले अन्य कार्यों को ध्यान में रखा जाए।
   v. शिक्षकों को 5 वर्ष में कम से कम एक बार, देश के किसी स्थान में भ्रमण करने के लिए नके वेतन के आधार पर रियायती दर पर रेल के टिकट दिए जाएँ।
   vi. समस्त सरकारी एवं सहायता प्राप्त गैरसरकारी शिक्षकों के लिए त्रिमुखी लाभ योजना (जी.पी.एफ. बीमा और पेंशन) लागू होनी चाहिए।
   vii. ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने वाले शिक्षकों को आवास सुविधा दी जाए और शिक्षिकाओं को आवास सुविधा के साथ-साथ विशेष भत्ता भी प्रदान किया जाये।

अध्यापक शिक्षा (Teacher's Education)

आयोग ने अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में कहा है, शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिए अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा का ठोस कार्यक्रम अनिवार्य है।

अध्यापक शिक्षा के उपर्युक्त महत्त्व के आधार आयोग ने सर्वप्रथम अध्यापक शिक्षा के दोषों का उल्लेख किया तत्पश्चात् इस शिक्षा के सुधार के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रस्तुत किया।

अध्यापक शिक्षा के दोष (Defects of Teacher's Education)

अध्यापक शिक्षा के दोष निम्नलिखित हैं-

i. प्रशिक्षण संस्थाओं के कार्य निम्न या साधारण स्तर का है।
ii. प्रशिक्षण संस्थाओं के अन्तर्गत योग्य अध्यापक नहीं है।

iii. प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में नवीनता, सजीवता एवं वास्तविकता नहीं पायी जाती।

iv. संस्थाओं द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण परम्परागत तथा अल्प उपयोगिता वाला है।

v. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाएँ इन विद्यालयों की दैनिक समस्याओं से कोई सम्बन्ध नहीं रखती है।

अध्यापक शिक्षा के उपरोक्त दोषों का निराकरण करने के लिए आयोग ने निम्नांकित महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये-

1. अध्यापक शिक्षा की पृथकता का अन्त (Removal of Isolation of Teacher Education) आयोग द्वारा अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिए उसे एक ओर विश्वविद्यालयों के साहित्यिक जीवन संबंधी और दूसरी ओर विद्यालय जीवन एवं शिक्षा सम्बन्धी नवीनतम विचारों के सम्पर्क में लाया जाना अत्यन्त आवश्यक है इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किए हैं-

   i. कुछ विशेष विश्वविद्यालयों में अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रमों के विकास, अध्यापक एवं अनुसंधान के लिए शिक्षा विभाग (Department of Education) को स्थापित किया जाए।

   ii. शिक्षा विषय को विषय विद्यालयों के बी.ए. एवं एम. ए. के पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाए।

   iii. प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रसार सेवा विभाग (Extension Service Department) स्थापित किया जाए।

   iv. सब राज्यों में कॉम्प्रीहेन्सिव कॉलेजों (Comprehensive Colleges) की स्थापना करके उसमें शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

   v. प्रत्येक राज्य में अध्यापक शिक्षा की राज्य परिषद् (State Board of Teacher Education) की स्थापना की जाए जिस पर सब क्षेत्रों एवं स्तरों के प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व हो।

   vi. विभिन्न प्रकार की शिक्षण संस्थाओं की पृथकता का अन्त करने के लिए सबको ट्रेनिंग कॉलेजों की संज्ञा दी जाए तथा उनको अपने क्षेत्रों के विश्वविद्यालय से सम्बद्ध किया जाए।

2. व्यावसायिक शिक्षा की व्यावसायिक शिक्षा की गुणात्मक सुधारने के लिए निम्नांकित सिफारिशें की हैं-

i. शिक्षण के अभ्यास में गुणात्मक वृद्धि करने के प्रयास किए जायें।

ii. छात्राध्यापकों के लिए विशिष्ट कार्यक्रमों तथा पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाए।

iii. अध्यापक-शिक्षा के सभी स्तरों पर कार्यक्रमों एवं पाठ्यक्रमों को उन आधारभूत उद्देश्यों के दृष्टि गत दोहराया जाए, जिनके लिए छात्राध्यापकों को तैयार किया जा रहा है।

iv. सभी प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्क्रमों की शिक्षा एवं विषय सामग्री में इस प्रकार संशोधन किया जाए जिससे छात्राध्यापकों को विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विषयों के उद्देश्यों प्रयोजन एवं जटिलताओं का उचित ज्ञान प्राप्त हो।

3. प्रशिक्षण की अवधि (Period of Training) आयोग के विभिन्न प्रशिक्षण स्तरों की अवधि के विषय में निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं-

i. प्राथमिक विद्यालयों के उन अध्यापकों के लिए, जिन्होंने सेकेण्डरी स्कूल कोर्स पास किया है, प्रशिक्षण की अवधि 2 वर्ष की होनी चाहिए।

ii. माध्यमिक विद्यालयों के उन अध्यापकों के लिए जो स्नातक है, प्रशिक्षण की अवधि अभी तो 1 वर्ष की हो पर कुछ समय के पश्चात् 2 वर्ष की कर दी जाये।

iii. शिक्षा में स्नातकोत्तर (M.Ed) पाठ्यक्रम की अवधि 1 वर्ष की होनी चाहिए।

4. प्रशिक्षण संस्थाओं की उन्नति (Improvement in Training Institutions)- आयोग ने प्रशिक्षण संस्थाओं की गुणात्मक उन्नति के लिए निम्न सिफारिशें की हैं।

i. ट्रेनिंग कॉलेजों के अध्यापकों के पास शिक्षा की उपाधि (Degree in Education) के अतिरिक्त दो स्नातकोत्तर उपाधियाँ (Post-Graduate Degrees) होनी चाहिए।

ii. ट्रेनिंग कॉलेजों के अध्यापकों में डॉक्टर (Dectorate) की उपाधियाँ वाले शिक्षकों की संख्या उचित अनुपात में हो।

iii. गणित, विज्ञान, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र आदि विषयों की शिक्षा देने के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाए।

iv. प्रत्येक प्रशिक्षण संस्थाओं से एक प्रयोगात्मक (Experimental) विद्यालय संलग्न हो।

v. प्रशिक्षण संस्थाओं में छात्राध्यापकों से किसी प्रकार का शुल्क न बसूला जाए और उनको ऋण एवं छात्रवृत्तियों के रूप में आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की जाए।

vi. विद्यालयों में कार्य करने वाले अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए केन्द्रीय स्तर पर ग्रीष्मकालीन संस्थाओं की योजना आरम्भ की जाए।

प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार (Expansion of Training Facilities)

आयोग ने प्रशिक्षण सुविधाओं को बढ़ाने के लिए निम्नांकित विचार व्यक्त किए हैं-

i. प्रशिक्षण संस्थाओं के आकार में निश्चित योजना के अनुसार पर्याप्त विस्तार किया जाए।

ii. पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षा तथा अल्पकालीन प्रशिक्षण की सुविधाओं को बढ़ाया जाए।

iii. विद्यालय शिक्षकों को अध्यापन कार्य करते हुए शिक्षा तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने की सुविधायें प्रदान करने के लिए विश्वविद्यालयों तथा प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का संचालन करना चाहिए।

आयोग के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में दो प्रकार की व्यापक असमानतायें हैं-

1. शिक्षा के सभी स्तरों पर बालकों एवं बालिकाओं की शिक्षा में व्यापक असमानता पायी जाती है।
2. उन्नत वर्गों, पिछड़े वर्गों अछूत जातियों एवं आदिवासियों की शिक्षा में व्यापक असमानता देखने को मिलती है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार की असमानताओं को दूर करने के लिए आयोग ने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं-

i. निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए।

ii. शिक्षा के व्यय में कमी की जाए।

iii. छात्रवृत्तियों की उचित व्यवस्था की जाए।

iv. छात्रवृत्तियों की योजना को प्रोत्साहन दिया जाए।

1. निःशुल्क शिक्षा (Free Education) आयोग ने निःशुल्क शिक्षा के सम्बन्ध में निम्न विचार प्रस्तुत किए हैं-

(a) चौथी पंच वर्षीय योजना के अन्त से प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क किया जाए।

(b) पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक या उससे पूर्व निम्न माध्यमिक शिक्षा को निःशुल्क किया जाए।

(c) पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त से 10 वर्ष की अवधि के सुन्दर उच्चतर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय शिक्षा को योग्य एवं निर्धन छात्रों के लिए निःशुलक किया जाए।

2. शिक्षा के व्यय में कमी (Redication in the Cost Education) शिक्षा के व्यय में निम्न प्रकार कमी की जाए।

(a) प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों को पाठ्य पुस्तकें एवं लेखन सामग्री निःशुल्क उपलब्ध करायी जाए।

(b) माध्यमिक विद्यालयों कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में पुस्तक गृहों (Book Bank) की व्यवस्था की जाए जहाँ से छात्रों को आसानी से पाठ्य पुस्तकें मिल सके।

(c) छात्रों के प्रयोग हेतु माध्यमिक विद्यालयों एवं उच्च्व शिक्षा की संथाओं के पुस्तकालायों में पाठ्य पुस्तकें पर्याप्त संख्या में हो।

(d) योग्य छात्रों को पाठ्य पुस्तकों एवं अन्य आवश्यक पुस्तकों को खरीदने के लिए आर्थिक मदद दी जाए।

3. छात्रवृत्तियों की व्यवस्था (Provision for Scholarships)- आयोग ने छात्रवृत्तियों के सम्बन्ध में निम्नविचार प्रस्तुत किये–

(a) निम्न प्राथमिक स्तर के बाद शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम को संगठित किया जाए।

(b) छात्र के शिक्षा के एक स्तर से दूसरे स्तर पर पहुँचने पर इस बात का पूर्ण ध्यान रखा जाए कि कोई निर्धन पर योग्य विद्यार्थी छात्रवृत्ति न मिल पाने के कारण अपनी भावी शिक्षा से वंचित न रह जाए।

(c) छात्रावासों में रहकर कॉलिज या विश्वविद्यालय में अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों के रूप में इतना धन प्रदान किया जाए, जिससे शिक्षा से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष व्यय की पूर्ति हो सकें।

(d) अपने घरों में रहकर अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए केवल इतनी आर्थिक मदद दी जानी चाहिए, जिससमें अधिकांश प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष व्यय की पूर्ति हो जाए।

NOTES

4. छात्रवृत्तियों की योजनायें (Schemes of Scholarships) आयोग ने छात्रवृत्तियों की निम्न प्रकार की योजनाओं को लागू करने का विचार प्रस्तुत किया-
   (a) राष्ट्रीय छात्रवृत्तियों की योजना की पूर्ति के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विश्वविद्यालय छात्रवृत्तियों (University Scholarships) की योजना शुरू की जाए।
   (b) व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education) प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति व्यवस्था इस प्रकार हो (विद्यालय स्तर पर 30 प्रतिशत हो, कॉलेज स्तर पर 50 प्रतिशत हो)।
   (c) ऋण छात्रवृत्तियों (Loan Scholarships) की योजना को कुछ सीमा तक सामान्य शिक्षा प्राप्त करने वाले योग्य छात्रों के लिए क्रियान्वित किया जाए।
   (d) असाधारण प्रतिभा के विद्यार्थियों को विदेशों में उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रतिवर्ष 500 छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।
   (e) कुछ छात्रों, विशेषकर विज्ञान एवं तकनीकी के छात्रों को ऋण छात्रवृत्तियाँ दी जाऐं, जो वे आगे चलकर अपने वेतन में कटौती द्वारा वापस करें।
   (f) माध्यमिक स्तर की छात्रवृत्तियों का वित्तीय भार राज्य सरकारों पर हो और उच्च स्तर के छात्रों को प्रदान की जाने वाली छात्रवृत्तियों का वित्तीय भार केन्द्र सरकार पर होना चाहिए।

विद्यालय-शिक्षा का विस्तार (Expansion of School Education)

आयोग ने विद्यालय शिक्षा के विभिन्न अंगों के विस्तार के विषय में अपने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं-

पूर्व प्राथमिक शिक्षा का विस्तार (Expansion of Pre-primary Education) : पूर्व प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए निम्नांकित सुझाव दिये गये हैं-

i. प्रत्येक राज्य के राज्य शिक्षा संस्थान में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के विकास एवं विस्तार हेतु राज्य स्तर पर केन्द्र की स्थापना की जाए।

ii. व्यक्तिगत प्रबन्धकों को उदार आर्थिक सहायता देकर, पूर्व प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना एवं संचालन करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए।

iii. पूर्व प्राथमिक शिक्षा में परीक्षण को प्रोत्साहित किया जाए ताकि इस शिक्षा के विस्तार के लिए कम खर्चीले उपायों की खोज की जा सके।

iv. पूर्व प्राथमिक शिशुओं के खेल केन्द्रों (Sensorial Education) को प्राथमिक विद्यालयों से सम्बद्ध किया जाए।

प्राथमिक शिक्षा का विस्तार (Expansion of Primary Education)

आयोग के प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए सुझाव निम्न प्रकार हैं-

i. सन् 1975-76 तक देश के सभी बच्चों के लिए 5 वर्ष की उत्तम प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

ii. सन् 1985-86 तक देश के सभी बच्चों के लिए 7 वर्ष की उत्तम प्राथमिक शिक्षा की योजना पूरी की जाए।

iii. अपव्यय व अवरोध (Wasteage and Stagnation) को अधिक से अधिक कम करने के लिए प्रयास किए जाएं।

iv. जो बालक कक्षा 7 पास करने के समय 14 वर्ष के न हों तथा अपनी सामान्य शिक्षा के क्रम को जारी रखने के इच्छुक न हों उनको इस आयु तक उनकी रुचि के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।

v. प्राथमिक शिक्षा का विकास एवं विस्तार करने हेतु प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना इस प्रकार की जाए, कि ओअर प्राइमरी स्कूल किसी भी बालक के घर से क्रमशः 1 और 3 मील से अधिक दूर न हों।

vi. पिछड़ी जाति, अनुसूचित जाति और असुसूचित जनजातियों के बच्चों के लिए प्राथमिक विद्यालय की स्थापना की जाए।

vii. मन्द बुद्धि तथा विकलांग बच्चों के लिए अलग से स्कूल खोले जाएँ।

माध्यमिक शिक्षा का विस्तार (Expansion of Secondary Education)

धन की कमी के कारण कुछ अंशों तक माध्यमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाया जाना सम्भव नहीं है, अतः माध्यमिक शिक्षा का विस्तार निम्न उपायों एवं सिद्धान्तों के आधार पर किया जाना चाहिए।

i. माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकतानुसार निश्चित की जाए।

NOTES

ii. माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण (Vocationalization) इस प्रकार किया जाना चाहिए कि निम्न माध्यमिक स्तर पर 20 प्रतिशत छात्रों को एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 50 प्रतिशत छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा दी जा सके।

iii. माध्यमिक शिक्षा के अवसरों की समानता स्थापित की जाए।

vi. माध्यमिक स्तर पर होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन को रोकने के उपाय किए जाएँ।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीघ उत्तरीय प्रश्न

1. कोठारी आयोग की नियुक्ति के कारण व प्रयोजन की सविस्तार व्याख्या कीजिए।
2. राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के मुख्य सुझाव का विस्तार से उल्लेख कीजिए।
3. शिक्षा के प्रशासन, वित्त एवं नियोजन सम्बन्धी सुझाव से आप क्या समझते हो? स्पष्ट कीजिए।
4. अध्यापक शिक्षा के सम्बन्ध में कोठारी आयोग के सुझावों का हमारी शिक्षा पर प्रभाव स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कोठारी कमिशन का गठन कब हुआ?
2. राष्ट्रीय शिक्षा आयोग में कुल कितने सदस्य थे?
3. भारत में पंच वर्षीय योजना का प्रारम्भ कब हुआ?
4. अध्यापक शिक्षा के दो दोष लिखिए?
5. कोठारी कमीशन ने मंद बुद्धि बालकों के लिए क्या सुझाव दिये थे?

3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (National Education Policy 1986)

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का दस्तावेज
- कार्य योजना 1986 का दस्तावेज
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के मूल तत्व
- मुक्त विश्वविद्यालय तथा दूरस्थ शिक्षा
- ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का दस्तावेज
- कार्य योजना 1986 का दस्तावेज
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के मूल तत्व
- मुक्त विश्वविद्यालय तथा दूरस्थ शिक्षा
- ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना

प्राक्कथन

भारत देश सदियों तक अधीन रहा है जिसके कारण भारत की शिक्षा व्यवस्था बिखर गयी थी इस शिक्षा व्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए स्वतन्त्रता के पश्चात् अनेक नीतियों का निर्माण किया गया लेकिन समय व सरकार बदलने के साथ आधारभूत नीतियों को लागू नहीं किया जा सका। परिणाम यह रहा कि सरकार बदलते ही नीतियों में भी परिवर्तन देखा गया। 1969 में केन्द्र की कांग्रेस सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति घोषित की थी, कई राज्यों में 10+2+3 शिक्षा संरचना लागू हो गई थी, कई राज्यों ने अपने-अपने ढंग से त्रिभाषा सूत्र लागू कर दिया था, कई राज्यों में कृषि, व्यवसायिक एवं तकनीकी शिक्षा, विज्ञान शिक्षा तथा वैज्ञानिक शोधों के लिए विशेष प्रावधान किए जाने लगे थे, प्राय: सभी प्रान्तों में परीक्षा प्रणाली में सुधार की प्रक्रिया आरम्भ हो गई थी, आधुनिकीकरण के नाम पर विज्ञान एवं गणित की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी और शैक्षिक अवसरों की समानता के लिए प्रयास किये जाने लगे थे। परन्तु 1977 में केन्द्र में जनता दल सत्तारूढ़ हो गया और मोरारजी देसाई प्रध ानमंत्री बने। मोरारजी देसाई ने 10+2+3 शिक्षा संरचना के स्थान पर 8+4+3 शिक्षा संरचना का विचार प्रस्तुत किया। परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री श्री प्रताप चन्द्र चन्दर ने कुछ शिक्षाविदों तथा सांसदों के सहयोग से एक नई शिक्षा नीति का निर्माण किया और 1979 में उसकी घोषणा कर डाली। इसे अभी लागू भी नहीं किया जा सकता था कि 1982 में केन्द्र में पुन: कांग्रेस सत्ता में आ गई और श्रीमती इन्दिरा गाँधी पुन: प्रध ानमन्त्री बनी। इन्दिरा गाँधी ने पुन: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के अनुपाल पर बल दिया। इसी बीच इन्दिरा गाँधी की हत्या कर दी गई, उनके स्थान पर राजीव गाधी को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया।

युवा प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी ने प्रत्येक क्षेत्र में आन्दोलनकारी कदम उठाने शुरू किए शिक्षा के क्षेत्र में भी। उन्होंने कहा कि वर्तमान शिक्षा राष्ट्र की माँगों को पूरा करने में असमर्थ है, इनका पुननिरीक्षण किया जाना चाहिए और पुनगर्ठन होना चाहिए। पर इस बार न तो किसी आयोग का गठन किया गया और न ही किसी समिति का। सर्वप्रथम सरकार ने तत्कालीन शिक्षा का सर्वेक्षण कराया तथा उसे शिक्षा की चुनौती: नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य (Challenge of Education: A Policy Perspective) नाम से अगस्त, 1983 में प्रकाशित किया। इस दस्तावेज में भारतीय शिक्षा की 1951 से 1983 तक की प्रगति यात्रा का सांख्यिकीय उल्लेख, उसकी उपलब्धियों एवं असफलताओं

का यर्थाथ चित्रण तथा उसके गुण-दोषों का सम्यक् वर्जन किया गया। सरकार ने इस दस्तावेज को जनता के हाथों में पहुँचाया और इस पर देशव्यापी चर्चा शुरू की। सभी राज्यों के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से सुझाव प्राप्त हुए। केन्द्रीय सरकार ने इस सुझावों के आधार पर एक नई शिक्षा नीति तैयार की और उसे संसद के बजट अधिवेशन 1986 में प्रस्तुत किया। संसद के पारित कराने के पश्चात् इसे मई 1986 में प्रकाशित किया गया। इस शिक्षा नीति की घोषणा के कुछ माह बाद इसकी कार्य योजना (Plan of Action) नामक दस्तावेज प्रकाशित किया गया। यह भारत की ऐसी पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति है जिसके सम्बन्ध में कहा गया था कि यह आने वाले समय के लिए शिक्षा का महाधिकार-पत्र (Megna Chartaa) साबित होगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 का दस्तावेज (Documents with Regard to National Education Policy)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का दस्तावेज 12 भागों में बंटा हुआ है। यहाँ उनका वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत है-

प्रथम भाग- भूमिका (Introductory) : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का व्यापक प्रभाव पड़ा सभी राज्यों में 10+2+3 शिक्षा संरचना स्वीकार कर ली गई है, प्राथमिक शिक्षा 90 प्रतिशत बच्चों को उपलब्ध है, माध्यमिक स्तर पर विज्ञान तथा गणित की शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया है, उच्च शिक्षा के स्तर को उठाने की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी है और देश की आवश्यकतानुसार जन शक्ति की पूर्ति हो रही है। लेकिन साथ ही यह भी स्वीकार किया गया है कि उस नीति के अधिकांश सुझाव कार्य रूप में परिणित नहीं हो सके हैं। फिर इस बीच देश की परिस्थितियों में काफी परिवर्तन हुआ है। देश की जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ने पर लोकतन्त्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में अनेक समस्याएँ आ रही हैं। इनके अतिरिक्त हमें भविष्य में अनेक चुनौतियों का सामना करना होगा, अत: आवश्यक है कि वर्तमान और भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए शिक्षा की नई नीति तैयार करें और उसे क्रियान्वित करें।

द्वितीय भाग- शिक्षा का सार और उसकी भूमिका (The Essence and Role of Education) : सभी के लिए शिक्षा हमारे भौतिक एवं अध्यात्मिक विकास की बुनियादी आवश्यकता है। शिक्षा मनुष्य को सुसंस्कृत तथा संवेदनशील बनाती है जिससे राष्ट्रीय एकता विकसित होती है। यह मनुष्य में स्वतन्त्र चिन्तन एवं सोच-समझ की क्षमता उत्पन्न करती है जिससे हम

लोकतन्त्रीय लक्ष्य-स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत, समाजवादी, धर्मनिपेक्षता तथा न्याय की प्राप्ति कर सकते हैं, आर्थिक विकास के साथ हम अपने वर्तमान एवं भविष्य का निर्माण कर सकते हैं। शिक्षा वास्तव में एक उत्तम साधन है। सभी अभिभावकों को आज की स्थिति को देखते हुए उत्तम विद्यालयों में शिक्षा दिलानी चाहिए।

तीसरा भाग- राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली (National Education System) : राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में संविधान की मूल धारणा- 'एक निश्चित स्तर तक बिना किसी भेदभाव के सभी को समान रूप से शिक्षा उपलब्ध हो' को सर्वप्रथम वरीयता प्रदान की जानी चाहिए। साथ ही सम्पूर्ण देश में समान शिक्षा संरचना 10+2+3 लागू होनी चाहिए। इसमें प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा की ऐसी आधारभूत पाठ्यचर्या (Core Curriculum) तैयार की जानी चाहिए जिसके द्वारा राष्ट्रीय मूल्यों तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हो सके। साथ ही प्रत्येक स्तर की शिक्षा का न्यूनतम अधिगम स्तर (Minimum Level of Learning) निश्चित होना चाहिए तथा उसमें गुणात्मक सुधार होना चाहिए।

चौथा भाग- समानता के लिए शिक्षा (Education for Equality) : सभी वर्गों को शिक्षा का समान अधिकार प्राप्त हो। शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त असमानतों को दूर कर महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यकों, विकलांगों तथा प्रौढ़ की शिक्षा के लिए विशेष प्रयास किए जाने चाहिए। क्योंकि शिक्षा के ही द्वारा व्यक्ति अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकता है अथवा न मिलने पर कानून का सहारा लेकर सम्मान से जीवन-यापन कर सकता है।

पाँचवा भाग- विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का पुनर्गठन-शिशुओं की देख-भाल और शिक्षा (Reorganization of Education at Different Stages-Early Childhood Care and Education) : पूर्व प्राथमिक स्तर पर शिशुओं के पोषण, प्राथमिक स्तर पर बच्चों की रूचिपूर्ण क्रियाओं, माध्यमिक स्तर पर गति निर्धारक विद्यालयों की स्थापना और उच्च स्तर पर खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना पर जोर दिया गया है। साथ ही यह घोषणा की गई है कि चुने हुए क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उपलब्ध करने की शुरूआत की जाएगी।

छठा भाग- तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा (Technical and Management Education): इसके अन्तर्गत तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा के महत्व को स्पष्ट किया गया है तथा इसकी समुचित व्यवस्था पर बल दिया गया है।

NOTES

सातवाँ भाग- शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाना (Making the System Work) : शिक्षा तब तक प्रभावशाली नहीं बन सकती जब तक शिक्षक शिक्षा के प्रति समर्पित न हो। प्रशासनिक तन्त्र सक्रिय बनाने, शिक्षकों की जवाबदेही निश्चित करने तथा शिक्षार्थियों को कर्तव्य बोध कराने पर बल दिया गया है।

आठवाँ भाग- शिक्षा की विषयवस्तु और प्रक्रिया को नया मोड़ देना (Reorienting the Content and Process of Education) : सांस्कृतिक मूल्यों तथा वैज्ञानिक सोच में समन्वय करने पर बल दिया गया है, मूल्यों की शिक्षा और भारतीय भाषाओं के विकास के साथ-साथ गणित और विज्ञान की शिक्षा एवं स्वास्थ्यवर्द्धक क्रियाओं-खेल-कूद आदि पर बल दिया गया है और अन्त में परीक्षा प्रणाली एवं मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार के लिए सुझाव प्रस्तुत किये गये।

नवाँ भाग- शिक्षक (The Teacher) : शिक्षकों के वेतनमान बढ़ाने तथा सेवाशर्तों को आकर्षक बनाने की बात कहीं गई है एवं शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार के सुझाव दिए गए हैं। ताकि शिक्षा के स्तर में सुधार हो सके। व्यवसाय से संतुष्ट शिक्षक ही शिक्षण कार्यों में अधिक रूचि लेते हैं।

दसवां भाग- शिक्षा का प्रबन्ध (The Management of Education) : शिक्षा में प्रशासन के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया गया है, राष्ट्रीय स्तर पर 'भारतीय शिक्षा सेवा', राज्य स्तर पर 'प्रान्तीय शिक्षा सेवा' और जिसे स्तर पर 'जिला शिक्षा परिषद' के गठन की बात कही गई है। साथ ही शिक्षा पर राष्ट्रीय आय की 6 प्रतिशत धनराशि खर्च करने की घोषणा की गई है।

ग्यारवाँ भाग- संसाधन तथा समीक्षा (Resources and Review) : राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 को लागू करने के लिए एक बड़ी धनराशि की आवश्यकता पड़ेगी। अतः प्रत्येक कार्य के लिए अनुमानित धनराशि आवंटित करने की व्यवस्था की जाएगी। इस भाग में इस बात पर भी बल दिया गया है कि प्रत्येक पाँच वर्ष के पश्चात् नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन और उसके परिणामों का मूल्यांकन किया जाए। ताकि शिक्षा सभी बच्चों को आसानी से सुलभ हो सके।

बारहवाँ और अन्तिम भाग- भविष्य (The Feture) : भारत सरकार ने सार्वभौमिक शिक्षा के उद्देश्य प्राप्ति के लिए सभी के द्वार तक शिक्षा की अलख जगाने का प्रयास किया है यह विश्वास प्रकट किया गया है कि हम

निकट भविष्य में शतप्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे तथा हमारे देश के उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्त सर्वोत्तम पदों पर आसीन होंगे।

NOTES

कार्य योजना 1986 का दस्तावेज (Documents with regard to Plan of Action)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा मई 1986 में की गई नवम्बर, 1986 में कार्य योजना (Plan of Action, POA) नामक दस्तावेज प्रकाशित किया गया। यह कार्य योजना 24 भागों में बँटी हुई है। जिसका वर्णन इस प्रकार है–

प्रथम भाग- पूर्व बाल्यावस्था परिचर्या एवं शिक्षा (Early Childhood Care and Education) : शिशुओं के जन्म से लेकर 6 वर्ष की आयु तक स्वास्थ्य की देखरेख पूर्व प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए एकीकृत बाल विकास सेवाएँ के पूर्व विद्यालय शिक्षा पक्ष को सुदृढ़ करने, पूर्व बाल्यावस्था शिक्षा योजना में स्वास्थ्य एवं पोषण को शामिल करने, दिवस परिचर्या केन्द्रों को सुदृढ़ करने के लिए अलग से धनराशि की व्यवस्था करने की योजना की प्रस्तुत की गई है।

द्वितीय भाग- प्रारम्भिक शिक्षा और ब्लैक बोर्ड योजना (Elementary Education and Operation Black Board) : प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए 1 किमी. की दूरी के अन्दर प्राथमिक स्कूल और 3 किमी. की दूरी के अन्दर उच्च प्राथमिक स्कूल तथा आवश्यकतानुसार निरौपचारिक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की बात कही गई और प्राथमिक स्कूलों की स्थिति को सुधारने के लिए ब्लैक बोर्ड योजना प्रस्तुत की गई है। ब्लैक बोर्ड योजना के अन्तर्गत प्राथमिक विद्यालयों की न्यूनतम आवश्यकताओं (दो कमरों का भवन, फर्चीचर, शिक्षण सामग्री, पुस्तकालय सामग्री, खेल सामग्री तथा कम से कम दो शिक्षकों) की पूर्ति करने और इन सबके लिए धनराशि जुटाने का संकल्प किया गया है।

तृतीय भाग- माध्यमिक शिक्षा तथा नवोदय विद्यालय (Secondary Education and navodya Vidyalya) : माध्यमिक शिक्षा के प्रसार एवं उन्नयन के लिए आवश्यकतानुसार माध्यमिक स्कूलों की स्थापना सभी माध्यामिक स्कूलों की दशा सुधारने, माध्यमिक स्तर पर खुला शिक्षा की व्यवस्था करने तथा गति निर्धारक-नवोदय विद्यालयों की स्थापना की पूरी रूपरेख प्रस्तुत की गई है।

NOTES

चतुर्थ भाग-शिक्षा का व्यावसायीकरण (Vocationalization of Education) : प्रारम्भ से ही कार्यानुभव पर बल देने तथा के लिए विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक पाठ्यक्रम तैयार करने तथा उपेक्षित वर्गों के बच्चों के लिए अलग से विशेष व्यावसायिक संस्थान खोलने पर बल दिया गया है।

पंचम भाग- उच्च शिक्षा (Higher Education) : उच्च शिक्षा के विकास के लिए छात्रों को प्रवेश परीक्षा द्वारा प्रवेश देने, पाठ्यक्रमों के पुनर्गठन करने, उच्च शिक्षा संस्थानों को संसाधन उपलब्ध कराने और उनके शिक्षकों के लिए पुनर्बोध कार्यक्रमों की व्यवस्था करने पर बल दिया गया।

छठा भाग- मुक्त विश्वविद्यालय एवं संस्थान (Open University and Distance Education) : इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने और नए मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना सावधानी से करने की बात कही गई है।

सातवाँ भाग- ग्रामीण विश्वविद्यालय एवं संस्थान (Rural Universities and Institutes) : केन्द्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद (Central Council of Rural Institutes) की स्थापना करने, ग्रामीण विश्वविद्यालयों तथा संस्थाओं का पुनर्गठन करने तथा इन क्षेत्रों के कुछ संस्थानों को स्वायत्तता प्रदान करने की योजना प्रस्तुत की गई है।

आठवाँ भाग- तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा (Technical and Management Education): अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (AICTE) तथा राज्यों के तकनीकी शिक्षा बोर्डों को सुदृढ़ करने, कुछ अच्छे तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा संस्थाओं को स्वायत्तता प्रदान करने, तकनीकी शिक्षा संस्थाओं में अन्तर्सम्बन्ध बढ़ाने और इस क्षेत्र में सतत् शिक्षा की व्यवस्था करने पर बल दिया गया।

नौवाँ भाग- प्रणाली को कार्यकारी बनाना (Making the System Work) : संस्थाओं के प्रशासन तथा शिक्षकां के लिए मानक निर्धारित करने, शिक्षक एवं छात्रों की कार्य प्रणाली में सुधार करने तथा शिक्षा संस्थाओं का मूल्यांकन करने पर जोर दिया गया है।

दसवाँ भाग- उपाधियों की रोजगार से विलगता एवं मानव शक्ति का नियोजन : राष्ट्रीय परीक्षण सेवा आरम्भ करना निश्चित किया गया है। अब क्षेत्र विशेष के रोजगार प्राप्त करने के लिए क्षेत्र विशेष के राष्ट्रीय परीक्षण में उत्तीर्ण होना अत्यन्त आवश्यक होगा।

NOTES

ग्यारहवाँ भाग- अनुसंधान तथा विकास (Research and Development) : उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों को विकसित करने, अनुसंधान केन्द्रों की अधिसंरचना में सुधार करने, अनुसंधान के लिए प्रतिभाओं की खोज करने और कार्यरत शिक्षकों को अनुसंधान के लिए प्रेरित करने की योजना प्रस्तुत की गई है।

बारहवाँ भाग- नारी समानता के लिए शिक्षा (Education for Women's Equality) : बालिकाओं के लिए अलग से स्कूल एवं कॉलेजों की स्थापना, बालिकाओं के लिए अधिक छात्रवृतियों की व्यवस्था करने और शिक्षकों की नियुक्ति में महिलाओं को प्राथमिकता देने की योजना प्रस्तुत की गई है।

तेरहवाँ भाग- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्ग की शिक्षा (Education of SCs, STs and OBCs) : इनके क्षेत्रों में विद्यालय खोलने को प्राथमिकता देने, इन वर्गों के बच्चों को प्रदान की जाने वाली छात्रवृत्तियों की दर बढ़ाने, इनके लिए छात्रवासों की व्यवस्था करने तथा इन जातियों के शिक्षकों की नियुक्ति करने की योजना प्रस्तुत की गई है।

चौदहवाँ भाग- अल्पसंख्यकों की शिक्षा (Education of Minorities) : अल्पसंख्यकों के क्षेत्रों में स्कूल और पौलिटैक्निक कॉलेज की स्थापना, शिक्षकों को प्रशिक्षित करने, इनके लिए कोचिंग सेन्टर खोलने और इनकी बच्चियों की शिक्षा की व्यवस्था पर बल दिया गया है।

पन्द्रवाँ भाग- विकलांगों की शिक्षा (Education of the Handicapped) : जनपद स्तर पर विकलांगता जानकारी के लिए सेवाएँ आरम्भ करने और इनकी शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था करने की बाम कही गई है।

सोलहवाँ भाग- प्रौढ़ शिक्षा (Adult Education) : प्रौढ़ शिक्षा, सतत् शिक्षा को गति प्रदान करने के लिए ग्रामों में सतत् शिक्षा केन्द्र, पुस्तकालय एवं वाचनालय खोलने पर बल दिया गया।

सत्रहवाँ भाग- स्कूल शिक्षा की विषयवस्तु तथा प्रक्रिया (Content and Process of School Education) : केवल 10 तथा 12 कक्षाओं के अन्त में सार्वजनिक परीक्षा करने, सतत् मूल्यांकन करने और अक्षर ग्रेड प्रणाली अपनाने की बात कही गई है। और साथ ही राष्ट्रीय परीक्षण सेवा आरम्भ करने एवं नकल विरोधी कानून बनाने पर बल दिया गया।

उन्नीसवाँ भाग- युवा तथा खेल (Youth and Sports) : शारीरिक शिक्षा एवं खेलों को शामिल करने पर बल दिया गया है।

बीसवाँ भाग- भाषा विकास (Language Development) : आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास तथा हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित करने के लिए आर्थिक सहायता देने का वचन दिया गया है।

इक्कीसवाँ भाग-सांस्कृतिक परिपेक्ष्य (The Cultural Perspective) : सांस्कृतिक कार्यक्रमों को पाठ्यचर्या में शामिल किया गया है। ताकि व्यक्ति संस्कारवान बन सके।

बाईसवाँ भाग- संचार साधन तथा शैक्षिक तकनीकी (Media and Educational Technology): शिक्षा में रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर एवं ओवर हैड प्रोजेक्टर आदि के प्रयोग पर बल दिया गया।

तेईसवाँ भाग- शिक्षक एवं उनका प्रशिक्षण (Teacher and Their Training) : शिक्षक शिक्षा में सुधार करने के लिए प्रत्येक जिले में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIETs) स्थापित करने, कुछ अच्छे कॉलेजों को शिक्षक शिक्षा कॉलेजों (CTEs) में समाहित करने और कुछ बहुत अच्छे कॉलेजों को 'शिक्षा उच्च अध्ययन केन्द्रों (CASEs) में समाहित करने की योजना प्रस्तुत की गई है और साथ ही 'राष्ट्रीय शिक्षा परिषद' (NCTE) को स्वायत्त दर्जा देने की बात कही है।

चौबीसवाँ एवं अन्तिम भाग-शिक्षा का प्रबन्ध (Management of Education) : मानव संसाधन मन्त्रालय को सुदृढ़ करने, प्रशासन का विकेन्द्रीकरण करने, भारतीय शिक्षा सेवा आरम्भ करने और जिला शिक्षा परिषदों की स्थापना करने की योजना प्रस्तुत की गई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के मूल तत्व
(Main Components of National Education Policy)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और उसकी कार्य योजना से जो तत्व उजागर होते हैं, वे निम्नलिखित हैं-

1. **शिक्षा प्रशासन का विक्रेन्द्रीकरण किया जाएगा :** इस शिक्षा नीति के दसवें भाग में शिक्षा प्रशासन के विकेन्द्रीयकरण पर जो दिया गया है और राष्ट्रीय स्तर पर 'भारतीय शिक्षा सेवा', प्रान्तीय स्तर पर 'प्रान्तीय शिक्षा सेवा' तथा जिला स्तर पर 'जिला शिक्षा परिषद' के गठन की घोषणा की गई है।

NOTES

2. **शिक्षा में सुधार हेतु पर्याप्त धनराशि की व्यवस्था की जाएगी :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के तृतीय भाग में यह स्वीकार किया गया है कि शिक्षा मनुष्य का भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास करती है तथा यह हमारे सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास, लोकतन्त्रीय मूल्यों (स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और न्याय) के विकास और राष्ट्रीय लक्ष्यों (जनसंख्या नियन्त्रण, पर्यावरण संरक्षण और आधुनिकीकरण) की प्राप्ति में सहायक होती है। शिक्षा के अभाव में इन सबकी प्राप्ति असम्भव है। शिक्षा एक उत्तम निवेश है। इस शिक्षा नीति के ग्यारहवें भाग में इसे क्रियान्वित करने के लिए पर्याप्त धनराशि उपलब्ध कराना स्वीकार किया गया है तथा यह घोषणा की गई है कि केन्द्र अपने बजट में शिक्षा पर 6 प्रतिशत का प्रावधान करेगा।

3. **सम्पूर्ण देश में 10+2+3 शिक्षा संरचना लागू होगी :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के तृतीय भाग में सम्पूर्ण देश के लिए 10+2+3 शिक्षा संरचना स्वीकार की गई है। प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा सम्पूर्ण देश में समान होगी, इसके लिए एक आधारभूत पाठ्यचर्या होगी। +2 पर प्रतिभाशाली छात्र-छात्राओं को विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए तैयार किया जाएगा तथा सामान्य छात्र-छात्राओं की आवश्यकताओं और छात्र-छात्राओं की रूचित एवं योग्यतानुसार व्यावसायिक शिक्षा दी जाएगी। +3 पर छात्रों को उच्च ज्ञान प्रदान किया जाएगा जो देश की सांस्कृतिक सुरक्षा और उसके आधुनिकीकरण में सहायक होगा, साथ ही चिकित्सा, न्याय, कृषि विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी, जिसके द्वारा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति होगी।

4. **विभिन्न स्तरों पर शिखा का पुनर्गठन किया जाएगा :** इस शिक्षानीति के पाँचवें भाग में शिक्षा के सभी स्तरों का पुनर्गठन करने पर बल दिया गया है। और पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या में सुधार करने और उनके स्तर को उच्च करने बल दिया गया है। शिक्षा के सभी स्तरों पर एक तरफ सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की शिक्षा और दूसरी तरफ गणित, विज्ञान एवं कम्प्यूटर आदि की शिक्षा पर बल दिया गया है, सांस्कृतिक संरक्षण एवं आधुनिकीकरण में समन्वय का प्रयास किया गया है।

5. **पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी :** इस स्तर पर शिशुओं के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर ध्यान दिया जाएगा; उनके भोजन,

वस्त्र, सफाई तथा पर्यावरण पर ध्यान दिया जाएगा तथा उनके लिए खेल-कूद एवं व्यायाम की उचित व्यवस्था की जाएगी।

6. **अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को शीघ्रतिशीघ्र प्राप्त किया जाएगा:** प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाया जाएगा। अभी 90 प्रतिशत बच्चों को 1 किमी. की दूरी पर प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध हैं, शेष 10 प्रतिशत को 1990 तक उपलब्ध करा दिए जाएँगे। 1995 तक 11 से 14 आयु वर्ग के शत प्रतिशत बच्चों को भी उच्च प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध करा दी जाएगी। प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति में सुध ार किया जाएगा।

7. **माध्यामिक शिक्षा का पुनर्गठन किया जाएगा :** इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति के पाँचवें भाग में यह घोषणा की गई है कि माध्यमिक शिक्षा सभी इच्छुक लड़के-लड़कियों को प्रदान की जाएगी। इस स्तर पर त्रिभाषा सूत्र लागू होगा तथा गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, मानविकी, इतिहास, राष्ट्रीयता, संवैधानिक दायित्व, नागरिक अधिकार एवं कर्त्तव्य, सांस्कृतिक संस्कार तथा कार्यानुभव को अनिवार्य किया जाएगा। पत्येक जिले में एक नवोदय विद्यालय खोला जाएगा, जो अन्य विद्यालयों के लिए आदर्श विद्यालय होगा। +2 पर सामान्य शिक्षा के साथ-साथ क्षेत्र विशेष की आवश्यकतानुसार व्यावसायिक शिक्षा भी प्रदान की जाएगी और यह प्रयास किया जाएगा कि 1995 तक इस व्यावसायिक वर्ग में 25 प्रतिशत छात्र-छात्राएँ शिक्षा ग्रहण करें।

8. **उच्च शिक्षा का प्रसार एवं उन्नयन किया जाएगा :** इस शिक्षा नीति के पाँचवें भाग में यह स्पष्ट किया गया है कि उच्च शिक्षा द्वारा छात्रों में विशिष्ट ज्ञान तथा कुशलता का विकास किया जाएगा, जिससे राष्ट्र का विकास हो सके। इसके मौजूदा पाठ्यक्रमों में सुधार किया जाएगा और शिक्षण को चिन्तनपरक बनाया जाएगा। साथ ही शिक्षकों के कार्यों का मूल्यांकन किया जाएगा। तथा उनकी पदोन्नति योग्यता के आधार पर की जाएगी। उच्च शिक्षा का स्तर उच्च बनाए रखने का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का होगा। उच्च शिक्षा को सर्वसुलभ कराने के लिए खुले विश्वविद्यालयों की अधिक से अधिक स्थापना की जाएगी।

9. **तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा में सुधार किया जाएगा :** इस शिक्षा नीति के छठे भाग में तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते

NOTES

हुए उसकी उचित व्यवस्था करने पर जोर दिया गया है। यह घोषणा की गई है कि तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा को भविष्य की आवश्यकतानुसार नियोजित किया जाएगा। महिलाओं और समाज के कमजोर वर्ग के बच्चों को तकनीकी शिक्षा की पूरी-पूरी सुविधाएँ प्रदान की जाएंगी। इस शिक्षा के स्तर को उच्च के लिए इनके पाठ्यक्रमों को अद्यतन बनाया जाएगा और सैद्धान्तिक ज्ञान की अपेक्षा प्रायोगिक दक्षता पर अधिक बल दिया जाएगा। इस शिक्षा का स्तरमान निश्चित करने और इस प्रकार की शिक्षण संस्थाओं पर नियन्त्रण करने के लिए 'अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद' (All India Council for Technical Education) को कानूनी अधिकार दिए जाएंगे। निम्न स्तर की तकनीकी संस्थाओं को बन्द किया जाएगा और इस क्षेत्र में उच्च स्तरीय कार्य करने वालों को प्रोत्साहित किया जाएगा।

10. **परीक्षा प्रणाी और मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार किया जाएगा :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के आठवें भाग के अन्त में तत्कालीन परीक्षा प्रणाली और मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार की बात की गई है। यह घोषणा की गई है कि मूल्यांकन को एक सतत् प्रक्रिया बनाया जाएगा तथा बाह्य मूल्यांकन को अधिक महत्व दिया जाएगा। परीक्षाओं को वैध एवं विश्वसनीय बनाया जाएगा, प्रश्नपत्रों की रचना और उत्तर पुस्तकों के मूल्यांकन को वस्तुनिष्ठ बनाया जाएगा तथा श्रेणी के स्थान पर ग्रेड सिस्टम लागू किया जाएगा।

11. **शिक्षकों के स्तर और शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार किया जाएगा :** शिक्षकों का चयन उनकी योग्यता के अनुसार किया जाएगा। उनके स्तर को उच्च बनाने के लिए उनके वेतनमान बढ़ाए जाएँगे और सेवाशर्तों को आकर्षक बनाया जाएगा। सम्पूर्ण देश में समान कार्य के लिए समान वेतनमान के सिद्धान्त को लगू किया जाएगा, साथ ही सेवापूर्व और सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार किया जाएगा। प्रत्येक जिले में 'जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान' (District Institues of Education and Training, DIET) की स्थापना की जाएगा जिनमें प्राथमिक शिक्षकों तथा निरौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी और साथ ही अप्लकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम चालए जाएँगे और इस क्षेत्र में शोध कार्य किये जाएंगे। निम्नशिक्षा स्तर के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों को बन्द कर दिया जाएगा। कुछ चुने हुए उच्च स्तर के माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों का दर्जा बढ़ाया जाएगा,

उन्हें 'शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय' (College of Teacher Education, CTE) में समोन्नत किया जाएगा जिनमें माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था होगी।

12. **प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों का विस्तार किया जाएगा :** प्रौढ़ शिक्षा को राष्ट्रीय लक्ष्यों से जोड़ा जाएगा और 15-35 आयु वर्ग के प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिए सरकारी तथा गैरसरकारी संगठनों का सहयोग लिया जाएगा। औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों को उनमें कार्यरत निरक्षक प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा जाएगा। प्रौढ़ शिक्षा के दूसरे पक्ष-अद्यतन जानकारी के लिए सतत् शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी। ग्रामीण क्षेत्रों में सतत् शिक्षा केन्द्र खोले जाएंगे और पुस्तकालयों और वाचनालयों की व्यवस्था की जाएगी। प्रौढ़ शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में जनसंचार के माध्यमों का प्रयोग किया जाएगा।

13. **सतत् शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी :** युवा वर्ग, गृहणियों, किसानों, व्यापारियों तथा विभिन्न उद्योगों में कार्य करने वाले व्यक्तियों को उनके क्षेत्र की जानकारी देने हेतु सतत् शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी और इसके लिए खुली शिक्षा और दूर शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी तथा जनसंचार के माध्यमों का प्रयोग पर बल दिया जाएगा।

14. **शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग किया जाएगा :** किसी भी स्तर की शिक्षा के लिए शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग किया जाएगा। जन संचार के माध्यमों से शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने का प्रयास किया जाएगा।

15. **शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाया जाएगा :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के सातवें भाग में शिक्षा को कारगर बनाने के लिए शिक्षकों की जवाबदेही निश्चित करने तथा छात्रों को कर्त्तव्य का ज्ञान कराने पर बल दिया गया हैं इसके तीसरे भाग में शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिए न्यूनतम अधिगम स्तर (Minimum Level of Learning, MLL) निश्चित करने की बात कही गई है तथा उसमें गुणात्मक सुधार करने की बात कही गई है। इस दस्तावेज के दसवें भाग में प्रशासन तन्त्र को कार्यशील पर बल दिया गया है।

16. **शैक्षिक अवसरों की समानता के लिए ठोस कदम उठाए जाएँगे :** इस शिक्षा नीति के चौथे भाग में स्पष्ट घोषणा की गई है कि शैक्षिक असमानताओं को दूर किया जाएगा और महिलाओं, अनुसूचित जाति,

अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक तथा विकलांगों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जाएगी और सभी को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान किये जाएँगे।

17. **महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा :** इस हेतु निम्नलिखित कदम उठाए जाएँगे- स्त्री-पुरूषों की शिक्षा में अन्तर नहीं किया जाएगा, लिंक मूलक भेद को समाप्त किया जाएगा। महिलाओं की शिक्षा के विकास के लिए प्रारम्भ से ही प्रयत्न किए जाएँगे। महिलाओं को विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाएगा। महिलाओं को व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने के लिए विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाएंगी।

18. **अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाएगी :** इस क्षेत्र में निम्नलिखित कदम उठाए जाएँगे- नगरों, गाँवों, पहाड़ी एवं आदिवासी क्षेत्रों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जानजाति के बच्चों के लिए विद्यालयों की स्थापना की जाएगी। इन विद्यालयों में यथासम्भव इन्हीं वर्गों तथा इन्हीं क्षेत्रों के शिक्षकों की नियुक्ति की जागगी। दूर-दराज से आने वाले बच्चों के लिए छात्रावासों को निर्माण कराया जाएगा। इन वर्गों के बच्चों की आर्थिक सहायता की जाएगी।

19. **पिछड़े वर्ग एवं पिछड़े क्षेत्रों के बच्चों की शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाएगी :** इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाएँगे- पिछड़े वर्ग एवं पिछड़े क्षेत्रों के बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। देश के रेगिस्तानी, पहाड़ी तथा जंगली क्षेत्रों में अधिक से अधिक स्कूल खोल जाएँगे। इन क्षेत्रों के स्कूलों में इन्हीं क्षेत्रों के शिक्षित युवकों को प्रशिक्षित कर शिक्षक पद पर तैनात किया जाएगा। पिछड़े वर्ग के बच्चों को आर्थिक सहायता जारी रहेगी, साथ ही उन्हें छात्रवृत्तियाँ दी जाएँगी।

20. **अल्पसंख्यकों के बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा :** संविधान में अल्पसंख्यकों (मुसलमान एवं इसाई आदि) को अपनी भाषा, संस्कृति एवं धर्म की रक्षा करने का अधिकार प्रदान किया गया है। अतः इन्हें अपनी शिक्षण संस्थाएँ चलाने का अधिकार होगा, परन्तु इनका पाठ्यक्रम प्रान्तीय सरकारों द्वारा निश्चित ही होगा। इनके क्षेत्रों में स्कूलों की स्थापना की जाएगी।

21. विकलांग और मन्दबुद्धि बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी : इनकी शिक्षा की व्यवस्था के लिए निम्नलिखित कदम उठाये जाएँगे- विकलांग एवं मन्दबुद्धि बालकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा और इनकी शिक्षा व्यवस्था के लिए स्वैच्छिक प्रयासों को प्रोत्साहन दिया जाएगा। मामूली विकलांग बच्चे सामान्य बच्चों के साथ पढ़ेंगे, गूँगे, बहरे, अन्ध और मन्दबुद्धि बालकों के लिए अलग-अलग स्कूल खोल जाएँगे। विकलांग बच्चों को कुटीर उद्योग-धधों की शिक्षा प्रदान की जाएगी और उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जाएगा। विकलांग और मन्दबुद्धि बालकों की शिक्षा के लिए विशेष प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की नियुक्ति की जागगी।

मुक्त विश्वविद्यालय तथा दूरस्थ शिक्षा (Open University and Distance Learning)

उच्चतर शिक्षा के अवसरों को बढ़ाने के लक्ष्य को प्राप्त करने तथा शिक्षा को लोकतान्त्रिक बनाने वाले साधन के रूप में ओपन विश्वविद्यालय पद्धति का आरम्भ किया गया। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सन् 1985 में स्थापित 'इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (Indira Gandhi National Open University) को मजबूत बनाया जायेगा। दूरस्थ शिक्षा के द्वारा बढ़ावा देने के लिए भारत में आज 16 विश्वविद्यालय शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। उत्तराखंड में वर्ष 2005 में स्थापित उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी आज स्नातक व स्नातकोत्तर उपाधि प्रदान करने के साथ पी.एच.डी. व शोध कार्य करके राष्ट्र के विकास में अपना योगदान कर रहा है। इसके द्वारा उन लोगों के लिए शिक्षा आसान हो गयी है। जिनको किसी कारण से अपनी शिक्षा बीच में छोड़नी पड़ी। वे दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से अपनी शिक्षा पूरी कर रहे हैं।

ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना (Operation Black Board Plan) :

ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना के अनुसार कम से कम दो कमरों, एक वराण्डे तथा दो शौचालयों के पक्के भवन, दो शिक्षक (जिनमें यथा सम्भव एक महिला शिक्षक होगी), पुस्तकालय सामग्री, शिक्षण-अधिगम सामग्री (ब्लैक बोर्ड, चॉक, डस्टर, नक्शे, विज्ञान किट), टाट-पट्टी खेल के मैदान और खेल सामग्री उपलब्ध कराई जाएगी। ऐसे बच्चे जो किसी कारण औपचारिक शिक्षा केन्द्रों पर नहीं जा पाते हैं उनके लिए निरौपचारिक शिक्षा केन्द्र (Non Formal Education Centre) की स्थापना की जायेगी।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का विस्तृत उल्लेख कीजिए।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की कार्य योजना की व्याख्या कीजिए।
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में क्या प्रस्ताव किए गए हैं? उल्लेख कीजिए।
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्षकों के स्तर को उठाने के सम्बन्ध में क्या प्रस्ताव किए गए हैं? स्पष्ट कीजिए।
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा के सम्बन्ध में क्या प्रस्ताव किए गए हैं? स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-

   (a) ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड (b) नवोदय विद्यालय

   (c) खुले विश्वविद्यालय (c) जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान

2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में निम्नलिखित के सम्बन्ध में क्या प्रस्ताव किए गए हैं। लिखिए-

   (a) प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण

   (b) माध्यामिक शिक्षा का व्यावसायीकरण

   (c) त्रिभाषा सूत्र

   (d) शिक्षा योजना को कारगर बनाना

   (e) शैक्षिक अवसरों की समानता

   (f) परीक्षा एवं मूल्यांकन

4 संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (1982) (Revised National Education Policy, 1986 (1992))

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, (1992) की नीति व संशोधन
- कार्य योजना 1992 का दस्तावेज
- संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (1992) के मूल तत्त्व
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 एवं संशोधित (1992) का मूल्यांकन अथवा गुण-दो विवेचन
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 एवं संशोधन (1992) का प्रभाव
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, (1992) की नीति व संशोधन
- कार्य योजना 1992 का दस्तावेज
- संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (1992) के मूल तत्त्व
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 एवं संशोधित (1992) का मूल्यांकन अथवा गुण-दो विवेचन
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 एवं संशोधन (1992) का प्रभाव

NOTES

प्राक्कथन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अन्तर्गत यह घोषणा की गई थी कि प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् इस नीति के क्रियान्वयन और उसके परिणामों की समीक्षा की जाएगी। परन्तु केन्द्र सरकार ने 3 वर्ष बाद 1990 में ही इसकी समीक्षा के लिए 'राममूर्ति समीक्षा समिति, 1990' का गठन किया था। अभी इस समिति के प्रतिवेदन पर विचार भी शुरू नहीं हुआ था कि सरकार ने 1992 में इस नीति के क्रियान्वयन तथा परिणामों की समीक्षा के लिएए जनार्दन रेड्डी समिति, 1992' का गठन कर दिया। इन दोनों समितियों की रिपोर्ट के आधार पर सरकार ने 1992 में ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में कछ संशोधन किये गए। इसीलिए इसे संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (National Policy on Education, 1986, with Modifications Undertaken in 1992) के नाम से प्रकाशित किया। कुछ विद्वान इसी को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 कहते हैं। सरकार ने उसी वर्ष इसकी कार्य योजना (Plan of Action) में कुछ बदलाव किए। इस परिवर्तित कार्य योजना को कार्य योजना 1992 (Plan of Action, 1992) कहा जाता है। यहाँ 1992 की संशोधत नीति का एक स्पष्ट से अध्ययन करने से केवल दो अनुच्छेद सम्मिलित किए गए हैं और 34 अनुच्छेदों में सुधार किए गये हैं।

संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, (1992) की नीति व संशोधन

भारत सरकार ने 1992 के अन्तर्गत राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में निम्नलिखित संशोधन किए है-

भाग एक- भूमिका और भाग दो- शिक्षा का सार और उसकी भूमिका में कोई संशोधन और परिवर्तन नहीं किया गया है।

भाग तीन- राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में केवल एक संशोधन किया गया है।

(1) सम्पूर्ण देश में +2 को स्कूली शिक्षा का अंग बनाया जाएगा।

भाग चार- समानता के लिए शिक्षा में चार संशोधन किए गए हैं-

i. समग्र साक्षरता अभियान पर अत्यधिक बल दिया जाएगा।

ii. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन (NLM) को निर्धनता निवारण, राष्ट्रीय एकता, पर्यावरण संरक्षण, छोटा परिवार, नारी समानता को प्रोत्साहन, प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण और प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या द्वारा जोड़ा जाएगा।

iii. रोजगार/स्वरोजगार केन्द्रित एवं आवश्यकता तथा रूचि पर आधारित व्यावसायिक व कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर जोर दिया जाएगा।

iv. नव साक्षरों के लिए साक्षरता के उपरान्त सतत् शिक्षा के व्यापक कार्यक्रम उपलब्ध कराए जाएँगे।

भाग पाँच- विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का पुनर्गठन-शिशुओं की देखभाल एवं शिक्षा में सात संशोधन किए गए हैं-

i. ब्लैक बोर्ड योजना में प्रत्येक प्राथमिक विद्यालय के अन्तर्गत कम से कम तीन बड़े कमरों और तीन शिक्षकों की व्यवस्था की जाएगी।

ii. भविष्य में प्राथमिक स्कूलों के अन्तर्गत नियुक्त होने वाले शिक्षकों में से 50 प्रतिशत महिलाएँ होंगी।

iii. ब्लैक बोर्ड योजना को उच्च प्राथमिक विद्यालयों में भी लागू किया जाएगा।

iv. अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा के लक्ष्य को 2000 तक प्राप्त करने के लिए एक राष्ट्रीय मिशन चलाया जाएगा।

v. माध्यामिक शिक्षा में लड़कियों और अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के नामांकन पर अत्यधिक जोर दिया जाएगा।

vi. मुक्त अधिगम प्रणाी को सुदृढ़ किया जाएगा।

vii. परीक्षा एवं मूल्यांकन में सुधार हेतु 'राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन' गणित किया जाएगा।

भाग छह- तनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा में केवल एक संशोधन किया गया है-

a. अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (AICTE) को और अधिक सुदृढ़ किया जाएगा।

भाग सात- शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाने में कोई संशोधन नहीं किया गया है।

भाग आठ- शिक्षा की विषयवस्तु और प्रक्रिया को नया रूप देने में दो संशोधन किए गए हैं-

a. प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में जनसंख्या शिक्षा पर विशेष बल दिया जाएगा।

NOTES

b. परीक्षा संस्थाओं के दिशा निर्देशन के लिए परीक्षा सुधार प्रारूप तैयार किया जाएगा।

भाग नौ- शिक्षक के सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं किया गया है।

भाग दस- शिक्षा के प्रबन्ध में केवल एक संशोधन किया गया है-

a. शिक्षा पर राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत से अधिक व्यय किया जाएगा।

भाग ग्यारह- संसाधन और समीक्षा पर बदल दिया गया।

भाग बारह- भविष्य में कोई संसाधन नहीं बढ़ाया गया है।

कार्य योजना 1992 का दस्तावेज

भारत सरकार द्वारा 1992 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में संशोधन के साथ-साथ उसकी कार्य योजना में भी कुछ संशोधन किए गए और उसे कार्य योजना 1992 के नाम से प्रकाशित किया। कार्य योजना 1986 यह 24 भागों में वर्णित थी कार्य योजना 1992 को 23 भागों में विभाजित किया गया है। कार्य योजना 1992 के 23 शीर्षक हैं-

i. प्रारम्भिक शिक्षा (Elementary Education)

ii. माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)

iii. उच्च शिक्षा (Higher Education)

iv. विकलांगों की शिक्षा (Education of Handicapped)

v. प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा (Adult and Continuing Education)

vi. पूर्व बाल्य काल परिचर्या एवं शिक्षा (Early Childhood Care and Education)

vii. नारी समानता के लिए शिक्षा (Education for Women Equality)

viii. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं पिछड़े वर्गों की शिक्षा (Education of Scheduled Castes, Scheduled Tribes and Backward Classes)

ix. नवोदय विद्यालय (Novodya Vidyalaya)

x. व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education)

xi. अल्पसंख्यकों की शिक्षा (Education of Minorities)

NOTES

xii. मुक्त शिक्षा (Open Education)

xiii. उपाधि की रोजगार से विलगता (Delinking Degrees with Jobs)

xiv. ग्रामीण विश्वविद्यालय एवं संस्थान (Rural Universities and Institutes)

xv. तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा (Technical and Management Education)

xvi. अनुसंधान एवं विकास (Research and Development)

xvii. सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (Cultural Perspecitive)

xviii. भाषाओं का विकास (Development of Languages)

xix. जन संचार एवं शैक्षिक तकनीकी (Media and Educational Technology)

xx. खेल, शारीरिक शिक्षा एवं युवा (Sports, Physical Education and youth)

xxi. मूल्यांकन प्रक्रिया एवं परीक्षा सुधार (Evaluation Process and examination)

xxii. शिक्षा का प्रबन्ध (Management of Education)

xxiii. शिक्षक एवं उनका प्रशिक्षण (Teacher and Their Training)

पहले नारी समानता के लिए शिक्षा, अनुसूचित जाति एवं जनजाति तथा पिछड़े वर्गों की शिक्षा, अल्पसंख्यकों की शिक्षा, विकलांगों की शिक्षा, प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा तथा पूर्व बाल्य काल परिचर्या एवं शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं को प्रस्तुत करने से स्पष्ट है कि इस कार्य योजना में इन पर विशेष बल दिया गया है।

इसमें प्राथमिक सम्बन्धी योजनाओं को थोड़ा विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। योजना, 1986 में ब्लैक बोर्ड योजना केवल प्राथमिक स्कूलों के लिए तैयार की गई थी, कार्य योजना 1992 के अन्तर्गत इसकी सीमा में उच्च प्राथमिक स्कूलों को भी सम्मिलित किया गया। 1986 में 300 जनसंख्या वाले क्षेत्र में एक प्राथमिक 1986 में एक प्राथमिक में कम से कम 2 कमरों के भवन और 2 शिक्षकों की व्यवस्था करने की योजना तैयार की गई थी, 1992 में इसे कम से कम 3 कमरों के भवन और 3 शिक्षकों की व्यवस्था में बढ़ा दिया गया। 1986 में 3 किमी. की दूरी के अन्दर स्थापित करने की योजना तैयार की।

NOTES

इस योजना के भाग 13 से 23 तक में कोई नवीन योजना प्रस्तुत नहीं की गई है, केवल कार्य योजना, 1986 की योजनाओं को ही शब्द परिवर्तनों के साथ बलपूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (1992) के मूल तत्त्व

यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अन्तराल में किए गए संशोधनों और उनकी कार्य योजना 1992 को समग्र रूप से देखा-समझा जाए तो स्पष्ट होता है कि इनसे उसके (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986) के मूल तत्त्वों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, यहाँ कुछ प्रमुख तत्त्वों का वर्णन प्रस्तुत है-

1. 1 से 5 मूल तत्त्व- संख्या 1 से 5 में कोई संशोधन नहीं किया गया है।

2. मूल तत्त्व- संख्या 6 में अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को 1995 तक के स्थान पर 2000 के अन्त तक प्राप्त करने की घोषणा की गई है और इसके लिए 1 किमी. की दूरी के अन्दर प्राथमिक विद्यालय और 2.3 किमी. की दूरी के अन्दर उच्च प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की योजना बनाई गई है। और इसके साथ ही ब्लैक बोर्ड योजना द्वारा प्राथमिक विद्यालयों के साथ-साथ उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों की स्थिति सुधारने पर बल दिया गया है।

3. मूल तत्त- संख्या 6 में पहला संशोधन यह किया गया है कि +2 को स्कूली शिक्षा का अंग बनाया जाएगा। तथा दूसरा संशोधन यह किया गया है कि +2 पर बालिकाओं और अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के बच्चों को वाणिज्य, विज्ञान और व्यावसायिक धारा में लाने के लिए विशेष प्रयास किए जाएँगे। और तीसरा संशोधन यह किया गया है कि इस आधार पर शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग किया जाएगा।

4. मूल तत्त्व संख्या 8 में केवल एक संशोधन किया गया है कि नए विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों की स्थापना केवल वहीं की जाएगी जहाँ बहुत आवश्यकता होगी।

5. 9 से 21 मूल तत्त्व- संख्या 9 से 21 में कोई संशोधन नहीं किया गया है।

स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में जो संशोधन 1992 में किए गए हैं और उसके क्रियान्वयन के लिए जो कार्य योजना 1992 बनाई गई थी उससे राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के प्रमुख तत्त्वों का विस्तार ही हुआ है। अत: उसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1992 मानाना उचित नहीं है, उसे संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 ही कहना अधिक उचित रहेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 एवं संशोधित (1992) का मूल्यांकन अथवा गुण-दोष विवेचन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और उसके संशोधित रूप (1992) का मूल्यांकन निम्न मानदण्डों के आधार पर करेंगे। इन मानदण्डों पर करने पर इस शिक्षा नीति में निम्नलिखित गुण-दोष पाये जाते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं संशोधित (1992) के गुणा

यूँ तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और उसके संशोधित रूप (1992) में जो कुछ प्रस्तावित है वह सब कुछ बहुत अच्छा है, लेकिन इस नीति की कुछ बातें अन्य नीतियों से बहुत आगे है, उन्हें ही हम इसकी विशेषता कह सकते हैं।

1. **शिक्षा राष्ट्रीय महत्त्व की वस्तु :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अन्तर्गत शिक्षा को राष्ट्रीय महत्त्व का विषय घोषित किया गया है। यूँ तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में भी शिक्षा के महत्व माना गया था और उस पर केन्द्रीय बजट में 6 प्रतिशत व्यय करने की बात कही गई थी, परन्तु इस शिक्षा नीति के अन्तर्गत इसे उत्तम निवेश के रूप में स्वीकार किया गया है।

2. **कार्य योजना एवं वित्त व्यवस्था :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 और संशोधित 1992 भारत की ऐसी प्रथम शिक्षा नीति है जिसके क्रियान्वयन के लिए सम्पूर्ण कार्य योजना (Plan of Action) विस्तृत रूप से प्रस्तुत की गई तथा उसके लिए आवश्यक वित्त व्यवस्था भी की गई।

3. **निश्चित शिक्षा संरचना :** इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत राष्ट्रीय नीति, 1986 द्वारा घोषित 1+2+3 शिक्षा संरचना को पूरे देश में आवश्यक रूप से लागू करने पर बल दिया गया है और प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा के लिए आधारभूत पाठ्यचर्या (Plan of Action) और +2 पर विशेष स्थान की आवश्यकतानुसार पाठ्यचर्या के निर्माण पर बल दिया गया है उच्च स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम

NOTES

निर्माण का अधिकार विश्वविद्यालयों को प्रदान किया गया है लेकिन इस निर्देश के साथ ही ये पाठ्यक्रम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के होने चाहिए।

4. **प्राथमिक शिक्षा हेतु ब्लैक बोर्ड योजना :** प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क करने की बात तो पहले से ही कही जाती रही है, परन्तु प्राथमिक विद्यालयों के सुधार की बात राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में ही लागू की गई है और उसके लिए ब्लैक बोर्ड योजना बनाई गई है और उसका क्रियान्वयन भी किया जा रहा है। वर्ष 1987 से 2007 के समय प्राथमिक और 40 प्रतिशत उच्च प्राथमिक स्कूलों को इस योजना का लाभ प्रदान किया जा चुका था।

5. **गति निर्धारक विद्यालयों की स्थापना :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में माध्यमिक स्तर पर गति निर्धारक विद्यालय संचालित करने की घोषणा की गई थी और उसके अन्तर्गत 207 तक 565 नवोदय विद्यालय स्थापित किए जा चुके थे जिनमें 1.93 लाख छात्र-छात्राएँ अध्ययनरत थे। इनमें ग्रामीण क्षेत्रों एवं पिछड़े वर्ग और अनुसूचित जनजातियों के प्रतिभाशाली छात्र-छात्राओं को प्रवेश के विशेष अवसर प्राप्त हैं।

6. **खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अन्तर्गत खुले विश्वविद्यालय स्थापित करने की घोषणा की गई थी, उसके अन्तर्गत दिल्ली में इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है। यह विश्वविद्यालय उन युवकों को उच्च शिक्षा के अवसर दे रहा है जो अन्यत्र प्राप्त नहीं कर पा रहे। साथ ही देश में 11 अन्य खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई है।

7. **तकनीकी शिक्षा का उन्नयन :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में किसी भी स्तर की तकनीकी शिक्षा के पाठ्यक्रम को अद्यतन बनाने पर बल दिया गया है और तकनीक शिक्षा संस्थाओं की स्थिति सुधारने पर बल दिया गया है और वास्तविकता यह है कि इसके लिए वित्त व्यवस्था भी की गई है। राष्ट्रीय तकनीकी शिक्षा परिषद के निर्देशानुसार इस तकनीकी शिक्षा में अत्यधिक सुधार भी हुआ है।

8. **शिक्षक शिक्षा में सुधार :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्षकों के स्तर और उनके प्रशिक्षण में सुधार हेतु अत्यधिक बल दिया गया है। यूँ तो इस पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में भी बहुत बल दिया गया था। तथा तद्नुकूल शिक्षकों के वेतनमान में वृद्धि की गई थी और

उनकी सेवाशर्तों में सुधार किया गया था। लेकिन इस शिक्षा नीति, 1986 के तहत शिक्षक शिक्षा में सुधार के लिए 2007 तक 556 जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण शिक्षा महाविद्यालयों (CTEs) एवं 39 को शिक्षा उच्च अध्ययन केन्द्रों (CASEs) में सम्मिलित किया गया है। साथ ही 1993 में राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (NCTE) को संवैधानिक स्थान दिया गया और उसे अत्यधिक अधिकार दिए गए हैं। देश की समस्त शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह ईमानदारी से कर रही हैं जिससे उनकी स्थिति में सुधार हुआ।

9. **परीक्षा प्रणाली में सुधार :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में परीक्षा को विश्वसनीय और वस्तुनिष्ठ बनाने और सतत् मूल्यांकन पर बल दिया गया है। इस बीच परीक्षा एवं मूल्यांकन प्रणाली में अत्यधिक सुधार हुआ है।

10. **न्यूनतम अधिगम स्तर एवं जवाबदेही :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 पहली नीति है जिसमें योजना भी तैयार की गई और उसके क्रियान्वयन के लिए ठोस सुझाव भी प्रस्तुत किये गये। इसमें शिक्षा व्यवस्था को प्रभावी बनाने हेतु किसी भी स्तर की शिक्षा के लिए न्यूनतम अधिगम मानक (Minimum Learning Standard) बनाने, शिक्षकों एवं शिक्षा प्रशासकों की जवाबदेही (Accountability) निश्चित करने तथा छात्रों के उत्तरदायित्व निश्चित करने पर विशेष बल दिया गया है। जब तक छात्र, शिक्षक और शिक्षा प्रणाली से संबंधित सभी व्यक्ति अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करते तब तक कोई भी शिक्षा व्यवस्था सफल नहीं हो सकती।

11. **शैक्षिक अवसरों की समानता :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 और उसके संशोधित रूप (1992) में शैक्षिक अवसरों की समानता की प्राप्ति पर अत्यधिक बल दिया गया है और इसके लिए ठोस कदम उठाने पर बल दिया गया है और इसकी प्राप्ति हेतु वित्त व्यवस्था भी की गई है। यह बात दूसरी है कि इस क्षेत्र में अब तक जो भी कार्य किए गए हैं वे बोट की राजनीति पर आधारित हैं, लोकतन्त्र की माँग पर कम।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 एवं संशोधित (1992) के दोष

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 और उसके संशोधित रूप (1992) के अन्तर्गत जो कुछ भी कहा गया है वह सब बड़ा लुभावना है। लेकिन शिक्षा नीति के तहत जो कुछ किया गया है उसमें कुछ दोष भी हैं। जो निम्न प्रकार हैं-

NOTES

1. **असमान शिक्षा व्यवस्था :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 और उसके संशोधित रूप (1992) के अन्तर्गत केन्द्र एवं राज्य सरकारों के शैक्षिक अधिकार तथा उत्तरदायित्व निश्चित नहीं किए गए हैं। 1976 में संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची (Concurrent List) पर लाया गया था लेकिन केन्द्र एवं राज्य सरकारों के शैक्षिक अधिकार एवं कर्त्तव्यों को सुनिश्चित नहीं किया था। यह कार्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्माताओं को करना चाहिए था, उन्होंने भी नहीं किया। इसलिए प्रान्तीय सरकारें केन्द्र की उन शिक्षा योजनाओं को तो लागू कर देती हैं जिनके लिए केन्द्र शत प्रतिशत आर्थिक अनुदान प्रदान करता है, परन्तु प्राय: उन योजनाओं को लागू नहीं करती जिन पर आंशिक सहायता अनुदान मिलता है। यही कारण है कि पूरे देश में शिक्षा की व्यवस्था समान हीं है।

2. **जन सहयोग के नाम पर जन शोषण :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्षा की व्यवस्था के लिए जन सहयोग के प्रोत्साहन की बात कही गई है। इसे प्राप्त करने के लिए शिक्षा संस्थाओं में अभिभावक समिति बनाने और इसके द्वारा जन सहयोग प्राप्त करने की कार्य योजना प्रस्तुत की गई हैं इसका अनुपालन प्राय: सभी शिक्षा संस्थाएँ कर रही हैं। लेकिन प्रवेश के समय जबरन एक बड़ी धनराशि प्राप्त करना जन सहयोग है या जन शोषण।

3. **उच्च शिक्षा महँगी :** इस शिक्षा नीति के अन्तर्गत स्ववित्तपोषित संस्थाओं को प्रोतसाहित करने की बात कही गई है। इससे एक ओर उच्च शिक्षा अत्यन्त महंगी हो गई है और दूसरी ओर उच्च शिक्षा का स्तर निम्न रहा है।

4. **शैक्षिक अवसरों की समानता के नाम पर बोट की राजनीति :** शैक्षिक अवसरों की समानता के नाम पर बोट की राजनीति की गई है। भारत में शैक्षिक अवसरों की समानता का तात्पर्य देश के समस्त बच्चों को अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा प्रदान कराना, किसी भी आधार पर भेद-भाव किए बिना सभी को उनकी योग्यतानुसार माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा उपब्ध कराना और विशिष्ट शिक्षा (लॉ, मेडिकल और टेक्निकल आदि) सुलभ कराना। लेकिन हमारे देश में तो इसके ठीक विपरीत क्षेत्र, लिंग, जाति और धर्म के नाम पर शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करने की बात कही जा रही है और उसके अनुकूल प्रयत्न भी किए जा रहे हैं। यह बोट की राजनीति नहीं तो और क्या है।

5. **ब्लैक बोर्ड योजना का ईमानदारी से क्रियान्वयन नहीं :** ब्लैक बोर्ड योजना में प्राथमिक स्कूलों के जो भवन बनाए जा रहे हैं और उनके लिए जो फर्नीचर एवं सामग्री प्रदान की जा रही हैं, वे बहुत निम्न स्तर के हैं। संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्य योजना 1992 के अनुसार उच्च प्राथमिक स्कूलों को जो 40-40 जहार रूपयों की धनराशि प्रदान का जा रही है उसका भी उचित प्रयोग सुनिश्चित नहीं किया जा रहा है।

6. **नवोदय विद्यालय योजना असफल :** नवोदय विद्यालय केवल सफेद हाथी सिद्ध हुए हैं। नवोदय विद्यालय इस आधार से स्थापित किए गए थे कि इनमें पिछड़े क्षेत्रों, पिछड़े वर्गों और उपेक्षित जातियों के योग्य बच्चों को प्रवेश प्रदान किया जा सकेगा, उन्हें अपने विकास के अवसर दिए जा सकेंगे। पहली बात तो यह है कि ऐसे सिद्धान्तों के होते हुए भी बड़ी हेराफेरी हो रही है, इनका लाभ वे नहीं उठा पा रहे जिनके लिए ये स्थापित किए गए हैं। दूसरी बात यह है कि इनकी स्थापना एवं संचालन में जितना खर्च हो रहा है उसका 10वां भाग भी लाभ नहीं हो रहा है।

7. **+2 पर व्यावसायिक पाठ्यक्रम असफल :** इस बीच जिन प्रान्तों में +2 पर जो भी व्यावसायिक पाठ्यक्रम प्रारंभ किए गए, वे असफल रह हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि जिन विद्यालयों में ये पाठ्यक्रम प्रारम्भ किए गए उनमें संसाधनों और प्रशिक्षण शिक्षकों की कमी है। दूसरी बात यह है कि ये पाठ्यक्रम स्वयं में न पूर्ण हैं और न उपयोगी।

8. **उच्च शिक्षा के साथ खिलवाड़ :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में एक ओर उच्च शिक्षा में प्रवेश पर नियन्त्रण की बात कही गई है और दूसरी ओर उच्च शिक्षा के अवसर सभी को उपलब्ध कराने की बात कही गई है और इसलिए खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना और पत्राचार पाठ्यक्रम शुरू करने की बात कही गई है। प्रत्येक क्षेत्र की भांति शिक्षा के क्षेत्र में भी दोहरी नीति। इससे उच्च शिक्षा का अधि कांश संस्थाओं में अयोग्य छात्रों को प्रवेश हो रहा है, अराजक तत्त्वों का प्रवेश हो रहा है और अनेक उच्च शिक्षा संस्थाएँ डिग्रियाँ प्राप्त करने के कारखाने बन गई हैं। इस दौरान, शक्ति और धन का अपव्यय नहीं तो और क्या है। संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 के अन्तर्गत उच्च शिक्षा को स्ववित्तपोषित बनाना सरकार का अपने

उत्तरदायित्व से मुँह मोड़ना ही काह जाएगा। उच्च शिक्षा के निजीकरण (Privatization) द्वारा समझ से शिक्षा के क्षेत्र में शोषण बढ़ रहा है और उच्च शिक्षा निर्धनों की समझ से दूर होती जा रही है।

9. **कैपीटेशन फीस की मार :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में कैपीटेशन फीस के लिए इस बन्धन के साथ स्वीकृति प्रदान की गई कि ये संस्थाएँ सरकार द्वारा चयनित छात्रों को एक निश्चित प्रतिशत मात्रा में बिना कैपीटेशन फीस के प्रवेश देंगी। इससे भी शोषण बढ़ा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 एवं संशोधित (1992) का प्रभाव

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 देश की पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति है। जिसके अन्तर्गत नीति के साथ इसको लागू करने के लिए पूर्ण कार्य योजना, 1986 बनाई गई। 1992 के अन्तर्गत जब इसमें कुछ संशोधन किए गए तो साथ ही इसकी कार्य योजना में भी संशोधन किया गया है और उसे कार्य योजना, 1992 के नाम से प्रकाशित किया गया। इसमें अब तक जो विशेष हुआ है उसे निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. केन्द्र और प्रान्तों के शिक्षा बजटों में वृद्धि हुई है, यह बात दूसरी हे कि अभी तक केन्द्र के बजट में शिक्षा पर 6 प्रतिशत व्यय सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है।

2. समस्त देश में 10+2+3 शिक्षा संरचना लागू हो गई है, यह बात दूसरी है कि प्रथम 10 वर्षीय आधारभूत पाठ्यचर्या अभी लागू नहीं हो पाई है।

3. शिशुओं की देख-रेख और पोषण तथा पूर्व प्राथमिक शिक्षा के लिए अधिकांश योजनाएँ संचालित की जा रही है। 2007 तक देश में 7. 5 लाख से अधिक तो आँगनवाड़ियाँ एवं बालबाड़ियाँ स्थापित की जा चुकी थीं और इनमें 2.4 करोड़ से अधिक बच्चे लाभान्वित हो रहे थे, कितने लाभान्वित हो रहे, यह अलग बात है।

4. प्राथमिक शिक्षा का तीव्रता से प्रसार एवं उन्नयन हो रहा है। ब्लैकबोर्ड योजना के तहत 2007 तक करीब 80 प्रतिशत प्राथमिक और 40 प्रतिशत उच्च प्राथमिक स्कूलों की स्थिति सुधार किया जा चुका था।

5. माध्यमिक शिक्षा के प्रसार के प्रयत्नों में तीव्रता आई है। इसके लिए इस स्तर पर खुली शिक्षा का भी विस्तार किया गया है, केवल

राष्ट्रीय खुले विद्यालय (National Open School) में 4 लाख से अधिक छात्र-छात्राएँ पंजीकृत हैं। गति निर्धारक विद्यालयों के रूप में 2007 तक 565 नवोदय विद्यालय स्थापित किये जा चुके थे।

6. लगभग सभी प्रान्तों में +2 पर व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी प्रारम्भ किए गए हैं, यह बात दूसरी है कि इनमें सफलता नहीं मिल पा रही है।

7. उच्च शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, और प्रबन्ध शिक्षा सभी के विकास एवं उन्नयन के लिए प्रयास जारी हैं। इस बीच उच्च शिक्षा के प्रसार के लिए दूर शिक्षा (खुली शिक्षा) का अत्यधिक प्रसार किया गया है और इसके उन्नयन के लिए अद्यतन एवं स्तरीय पाठ्यक्रम तैयार एवं लागू किए गए हैं। साथ ही स्ववित्तपोषित उच्च शिक्षा संस्थाओं को खुले हाथ मान्यता प्रदान की गई है। इस प्रकार उच्च शिक्षा का प्रसार तो अवश्य हुआ है परन्तु उसके स्तर पर गिरावट आ रही है।

8. शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में तो क्रान्तिकाी परिवर्तन हुए हैं, 2007 तक 556 जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान (DIETs) स्थापित किए जा चुके थे, 104 शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों को शिक्षक शिक्षा केन्द्रों (CTEs) में सम्मिलित किया जा चुका था और 39 शिक्षक शिक्षा कॉलेजों को शिक्षा उच्च अध्ययन केन्द्रों (CASEs) में सम्मिलित किया जा चुका था। इसके मध्य दिसम्बर, 1993 में संसद के एक एक्ट द्वारा राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् (NCTE) को संवैधानिक स्थान दिया गया और 1995 में इस अधिनियम के अनुसार गठन किया गया। प्रारम्भ में तो उसके हस्तक्षेप से शिक्षक शिक्षा विद्यालयों एंव महाविद्यालयों की स्थिति में सुधार हुआ था। लेकिन अब यह परिषद् भी भ्रष्टाचार का शिकार हो गई है और स्ववित्तपोषित शिक्षक शिक्षा संस्थानों को खुले हाथ मान्यता दी जा रही है और शिक्षक शिक्षा एक व्यवसाय बन गई है।

9. इस बीच प्रौढ़ शिक्षा एवं सतत शिक्षा कार्यक्रमों के लिए भी अधिक धनराशि उपलब्ध कराई गई है जिससे इस क्षेत्र में भी कार्य की गति बढ़ी है। 2001 में हमारे देश में साक्षरता प्रतिशत 65.38 हो गया था जो आज (2008) करीब 72 प्रतिशत हो गया होगा।

10. यूँ शैक्षिक अवसरों की समानता के लिए जो प्रयास किये गए हैं वे बोट की राजनीति पर आधारित हैं लेकिन इसके स्त्री शिक्षा, अनुसूचित जाति,

NOTES

अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग और अल्पसंख्यकों के बच्चों की शिक्षा में वृद्धि हुई है, उनका नामांकन बढ़ा है। कुछ विद्यालय अपंग एवं मन्दबुद्धि बच्चों, किशोरों और युवकों के लिए भी खाले गए हैं।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं संशोधित (1992) का संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 कार्य योजनादस्तावेज का वर्णन कीजिए।
3. संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (1992) के मूल तत्त्व का उल्लेख कीजिए।
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 एवं संशोधित (1992) का मूल्यांकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं संशोधित 1992 के गुणों का उल्लेख कीजिए।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं संशोधित 1992 के दोषों का वर्णन कीजिए।

5 कार्यक्रम तथा योजनाएँ

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- एकीकृत शिक्षा का अर्थ
- एकीकृत शिक्षा की आवश्यकता
- एकीकृत शिक्षा का महत्व
- सर्वशिक्षा अभियान का अर्थ
- सर्वशिक्षा अभियान के मुख्य कार्यक्रम
- सर्वशिक्षा अभियान में कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना।
- राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान
- स्कूलों में सूचना, संचार एवं प्रौद्योगिकी
- व्यवसायिक शिक्षा
- बालिका छात्रावास
- समदृष्टि
- वित्तीय प्रबन्धन तथा प्रापण
- आर.एम.एस.ए.-टी.सी.ए.
- माध्यमिक स्तर पर अक्षमों की समावेशी शिक्षा
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे-

- एकीकृत शिक्षा का अर्थ
- एकीकृत शिक्षा की आवश्यकता
- एकीकृत शिक्षा का महत्व
- सर्वशिक्षा अभियान का अर्थ
- सर्वशिक्षा अभियान के मुख्य कार्यक्रम
- सर्वशिक्षा अभियान में कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना।
- राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान
- स्कूलों में सूचना, संचार एवं प्रौद्योगिकी
- व्यवसायिक शिक्षा
- बालिका छात्रावास
- समदृष्टि
- वित्तीय प्रबन्धन तथा प्रापण
- आर.एम.एस.ए.-टी.सी.ए.
- माध्यमिक स्तर पर अक्षमों की समावेशी शिक्षा

NOTES

प्राक्कथन

एकीकृत का अर्थ है इकट्ठा करना और समावेशित यानी समावेशन करना अर्थात वे बच्चे जिनको विशेष आवश्यकता है। उनके स्वयं की शारीरिक तथा मानसिक कमजोरी के कारण वे पढ़ने लिखने के असमर्थ होते है या उनको विशेष संरक्षण एवं निर्देशन प्रदान करने की आवश्यकता होती है। ऐसे बच्चों को शिक्षा के क्षेत्र में सामान्य बालकों के साथ आगे बढ़ना, पढ़ाना और उनकी शैक्षिक समस्याओं का समावेशन करना ही एकीकृत व समावेशित शिक्षा कहलाती है। सामान्य विकलांगता से ग्रस्त बच्चों को सामान्य शिक्षा एवं गंभीर विकलांगता से ग्रस्त बच्चों को मूलभूत शैक्षिक कौशल की आवश्यकता होती है उन बच्चों को शीघ्र अतिशीघ्र सामान्य स्कूलों में समावेशित किया जाता है यानी कि स्कूलों में प्रवेश दिया जाता है जिससे कि वह अपना जीवन शिक्षा के द्वारा सुधार सकें। इसके लिए समाज तथा सरकार द्वारा विभिन्न विद्यालयों का निर्माण किया गया है। जिसमें विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों को प्रवेश दिलाया जा सके। यदि बच्चे के घर से विशेष विद्यालय की दूरी अधिक है तो उसे हम सामान्य विद्यालय में भी प्रवेश दिला सकते हैं ताकि विद्यार्थी शिक्षा से वंचित न हो सके। इसके लिए हमारा 'शिक्षक' कर्त्तव्य है कि सबसे पहले विकलांगता की पहचान करें उसके पश्चात् विद्यार्थी को सहायक उपकरण यानी कि वैल्पिक अंग, ट्रायसिकल, सफेद छड़ी, चश्मा आदि दिलवाये जिससे उनकी पढ़ाई के प्रति रूचि जाग्रत हो तथा पढ़ने में उन्हें सहायता प्राप्त हो सके। ताकि उनमें स्वयं के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण की समाप्ति होगी, आगे बढ़ने की प्रेरणा, उत्साह एवं आत्मविश्वास जाग्रत होगा इस हेतु शिक्षक का उत्तरदायित्व है कि कक्षा के सामान्य विद्यार्थियों द्वारा इन बच्चों की उपेक्षा न करके उनके मनोबल को बढ़ाने हेतु प्रोत्साहित किया जाये एवं उनके साथ सामान्य बालकों की तरह बिना किसी भेदभाव के संतुलित व्यवहार किया जाये।

एकीकृत तथा समावेशित शिक्षा का अर्थ

अतः एकीकृत किए जाने का अर्थ है विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को उनके सामान्य साथियों के साथ नियमित शाला में ही आवश्यक सहयोग देकर अध्ययन करने की सुविधा देना, यहं प्रत्येक बच्चे की विशेष आवश्यकताओं को नियमित शाला में पूरा करने का प्रयास है। ऐसे बालक जो कि विकलांगता से ग्रस्त है, शाला के सभी कार्यक्रमों में भाग लेते हैं इस प्रकार समेकित मॉडल में सभी बच्चों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ ही शिक्षा की मुख्यधारा में बनाए रखने का प्रयास किया जाता है, तथा साथ

ही समुदाय, पालक, शिक्षक, सामान्य बच्चे विशेष बच्चे सभी को इन बच्चों की आवश्यकता तथा जिम्मेदारी का पूर्ण ध्यान रहता है।

सामान्य विकलांगता से ग्रस्त बालक को सामान्य रूप से तथा गंभीर किस्म की विकलांगता से पीड़ित बच्चों के लिए मूलभूत शैक्षिक कौशल तैयार कर उन्हें सामान्य स्कूलों में एकीकृत किया जा सकता है सामान्य स्कूलों में विशेष कक्षाएं आयोजित करके तथा विशेष स्कूलों के द्वारा उनमें विशेष प्रकार का कौशल विकसित किया जा सकता है। ऐसे बच्चों को प्रोत्साहित कर तथा माता-पिता को परामर्श देकर सामान्य स्कूलों में प्रवेश दिया जाता है।

एकीकृत शिक्षा की आवश्यकता

केन्द्र सरकार द्वारा विकलांग बच्चों के लिए समेकित शिक्षा योजना सन् 1974 में समाज कल्याण विभाग की ओर से आरम्भ की गई थी, बाद में यह योजना सन् 1982-83 में शिक्षा विभाग को हस्तांतरित कर दी गई। सन् 1992 में यह योजना अंतिम बार संशोधित की गई। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य विकलांग बच्चों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना है जिससे वे सामान्य स्कूलों में अध्ययन करते हुए स्वयं को योग्य बना सके। इस योजना के अंतर्गत विद्यार्थियों को सहयोगी उपकरण विशेष अध्यापकों के लिए वेतन और विकलांग छात्रों के लिए अनुदान सम्मिलित है।

एकीकृत शिक्षा का महत्व

समावेशी या एकीकृत शिक्षा यह कहती है, कि प्रतिभावान बच्चों के साथ-साथ सामान्य या जो सामान्य से कम है उनकी ओर भी ध्यान दिया जाये जिससे वे भी अपनी प्रतिभा का विकास कर देश की उन्नति में योगदान कर सके।

सामान्य विद्यालय सभी बालकों का प्रतिनिधित्व करता है, जिससे असमर्थ बालकों में समाजीकरण की भावना का विकास विशिष्ट विद्यालय की तुलना में अधिक होता है तथा उनमें सामाजिक मूल्यों जैसे प्यार, दयालुता, समायोजना, सहायता, भाईचारा आदि का विकास होता है। शिक्षा को कार्य रूप देने का स्थान विद्यालय तथा प्रमुख कर्ता शिक्षक होता है, अत: शिक्षक को लोकतांत्रिक मूल्यों पर विश्वास करते हुए सभी विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए समान ही समावेशी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

समावेशी शिक्षा सामाजिक समानता के साथ-साथ प्रत्येक बालक को उसकी क्षमता विकसित करने में सहायता करती है जिससे वह अपने जीवन की

चुनौतियों का सामना कर सके और समाज एवं देश का हिस्सा स्वीकार करते हुए उसके विकास में योगदान कर सके।

सर्वशिक्षा अभियान

अक्टूबर 1998 में आयोजित राज्यों के शिक्षा मन्त्रियों के सम्मेलन की सिफारिशों के आधार पर 'सर्वशिक्षा अभियान' योजना आरम्भ की गई। नवम्बर 2000 में इसे राष्ट्रीय मिशन के रूप में स्वीकार किया गया। इसके अध्यक्ष बनाए गए प्रधानमंत्री और उपाध्यक्ष बनाए गए मानव संसाधन विकास मंत्री।

सर्वशिक्षा अभियान का अर्थ

जैसा कि इस अभियान का नाम है, यह अभियान प्राथमिक स्तर पर 'सभी को शिक्षा' देने के लिए चलाया गया है। इस अभियान का आरम्भ 2001 में किया गया।

अभियान को चलाने के कारण संविधान की धारा 45 के अनुसार देश में निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध 6-14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए वर्ष 1960 तक किया जाना था, लेकिन इसमें प्रगति ढीली थी। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह अभियान चलाया गया।

प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति के बावजूद वर्ष 2000 में लगभग 2.4 करोड़ बच्चे स्कूल नहीं जाते थे।

लगभग 50 प्रतिशत बच्चे आठवीं कक्षा आते-आते तक स्कूल छोड़ जाते थे।

उद्देश्य (Objectives)

1. 2005 तक प्राथमिक शिक्षा का 5 साल पूरा करना और 2010 तक स्कूली शिक्षा का 8 साल पूरा करना था।
2. संतोषजनक गुणवत्ता जीवन के लिए उपयोगी शिक्षा पर बल देना।
3. 2007 तक प्राथमिक स्तर पर 2010 तक प्रारम्भिक स्तर पर सभी लैंगिक और सामाजिक भेदभाव को समाप्त करना था।
4. वर्ष 2010 तक सार्वभौमिक प्रतिधारण सर्वशिक्षा अभियान पूरा करना था।
5. सन् 2010 तक बीच में पढ़ाई छोड़ने वाले की संख्या शून्य हो जाए। जीवन के लिए शिक्षा पर बल देते हुए सभी को संतोषजनक गुणवत्ता की प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाए।

6. कार्यक्रम के अनुसार उन बस्तियों में नए स्कूल खोलने का प्रयास किया गया जहाँ स्कूली शिक्षा की सुविधा नहीं है और अतिरिक्त कक्षा, शौचालय, पीने का पानी, रखरखाव अनुदान तथा स्कूल सुधार अनुदान और सुधार अनुदान के द्वारा मौजूदा स्कूलों की बुनियादी ढाँचे में विकास करना था, जिन मौजूदा स्कूलों में अपर्याप्त शिक्षा हैं उनमें अतिरिक्त शिक्षा मुहैया कराना था, शिक्षकों की क्षमता को व्यापक, प्रशिक्षण, विकासशील शिक्षण अधिगम सामग्री अनुदान तथा ब्लॉक और जिला स्तर पर एक क्लस्टर पर अकादमिक सहायता संरचना को मजबूत बनाने के लिए अनुदान से सुदृढ़ बनाया गया। सर्वशिक्षा अभियान, जीवन कौशल सहित गुणवत्ता युक्त प्रारम्भिक शिक्षा देता है। सर्वशिक्षा अभियान द्वारा लड़कियाँ एवं विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया गया, सर्व शिक्षा अभियान, डिजिटल अन्तराल को खत्म करने के लिए कम्प्यूटर शिक्षा भी प्रदान करने का प्रयास करता है, बच्चों की उपस्थिति कम होने के चलते मध्यान्ह भोजन की शुरुआत की गई थी।

सर्वशिक्षा अभियान के मुख्य कार्यक्रम

1. ऐसी बस्तियों में स्कूल स्थापित करना जहाँ कोई स्कूल नहीं हैं।
2. अतिरिक्त कक्षाएँ खोलना।
3. शौचालय बनाना।
4. पेयजल की व्यवस्था करना।
5. अनुरक्षण अनुदान देना।
6. स्कूलों के बुनियादि ढ़ाँचे को दृढ़ करना।
7. शिक्षकों की कमी को दूर करना।
8. अध्यापन-अभिगम सामग्री जुटाना।
9. कमजोर वर्गों की लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना।
10. निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना।

हस्तक्षेप (Interference)

सर्वशिक्षा अभियान में पन्द्रह हस्तक्षेप हैं-

1. **बीआरसी (ब्लॉक रिसोर्स सेंटर)**

2. **सीआरसी (क्लस्टर रिसोर्स सेंटर)**

3. **एमजीएलसी एण्ड एआईई-** सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देने के लिए सर्वशिक्षा अभियान को अभिगम देने का एक प्रमुख हस्तक्षेप वैकल्पिक तथा अभिनव शिक्षा (एआईई) है। जनजातीय एवं तटीय क्षेत्रों में वंचित और हाशिए पर रहे समूहों के बच्चों के भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न रणनीतियों का विकास किया गया है।

4. **नागरिक कार्य** - नागरिक कार्य घटक सर्वशिक्षा अभियान के अन्तर्गत महत्वपूर्ण है। इस घटक के अधीन, बड़े पैमाने पर कुल परियोजना के बजट का 33% तक का निवेश है। स्कूल की बुनियादी सुविधाओं को बच्चों तक पहुँचाने का प्रावधान तथा उन्हें बनाए रखने में सहायता करना, दोनों ही सर्वशिक्षा अभियान का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। उपजिला स्तर पर संसाधन केन्द्रों के लिए बुनियादी सुविधाओं का प्रावधान जो कि शैक्षिक समर्थन में सहायता करता है, जिसकी भूमिका गुणवत्ता में सुधार की दिशा में एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है।

5. **नि:शुल्क पाठ्य-पुस्तक** - इस योजना के अन्तर्गत नि:शुल्क पाठ्य-पुस्तकें प्रदान की जाती हैं।

6. **अभिनव क्रियाकलाप** - अभिनव कार्यक्रमों को स्कूलों में लागू करने की भूमिका 6-14 आयु के सभी बच्चों के लिए उपयोगी तथा प्रासंगिक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया और समुदाय की सक्रिय भागीदारी में सामाजिक, क्षेत्रीय और लैंगिक अन्तराल के बीच पुल बनाने के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में होती है। यह कार्यक्रम शिक्षा के प्रति छात्रों में रुचि उत्पन्न करने में सफल रहे हैं एवं उनकी पढ़ाई को बनाए रखने में सहायता करते हैं। अभिनव योजनाओं के अन्तर्गत कार्यान्वित कार्यक्रम है। बचपन की देखभाल और शिक्षा, बालिका शिक्षा, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति शिक्षा तथा कम्प्यूटर शिक्षा।

7. **आर एण्ड ई (R & E) (अनुसंधान और मूल्यांकन)** - इस हस्तक्षेप में अनुसंधान, मूल्यांकन, निगरानी एवं पर्यवेक्षण होते हैं। एक प्रभावी EMIS पर क्षमता के विकास के लिए और संसाधन/अनुसंधान संस्थाओं के द्वारा प्रति स्कूल 1,500 रुपये की राशि सामान्यत: प्रस्तावित है। इसमें घरेलू डेटा को अद्यतन करने के लिए नियमित रूप से स्कूल मानचित्रण/माइक्रो योजना का प्रावधान है। राशि का प्रयोग सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त दोनों स्कूलों के लिए उपयोग किया जा सकता है। निम्नलिखित गतिविधियाँ हस्तक्षेप के तहत प्रस्तावित हैं-

1. प्रभावी क्षेत्र आधारित जाँच के लिए संसाधन व्यक्तियों के एक संघ का निर्माण करना।
2. समुदाय आधारित डेटा का नियमित उत्पादन प्रदान करना।
3. उपलब्धि परीक्षण आयोजन, मूल्यांकन अध्ययन।
4. अनुसंधान गतिविधि उपक्रम।
5. न्यून महिला साक्षरता तथा लड़कियों की विशेष निगरानी, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति आदि के लिए विशेष कार्य बल की स्थापना।
6. शिक्षा प्रबन्धन सूचना प्रणाली पर उत्तरदायी व्यय।
7. दृश्य जाँच प्रणाली के लिए चार्ट, पोस्टर, स्केच पेन, ओएचपी कलम आदि का आकस्मिक व्यय उपक्रम।
8. समूह अध्ययन आयोजन।

8. **शिक्षण प्रशिक्षण** - शिक्षा में गुणवत्ता लाना सर्वशिक्षा अभियान का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य है, प्रशिक्षण में सुधार लाने की निम्नलिखित रणनीतियाँ हैं।

   1. शिक्षकों का प्रशिक्षण और पुनः प्रशिक्षण, 2. नए पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों के साथ अभिज्ञता प्रशिक्षण, 3. नेशनल करिकुलम फ्रेम वर्क (एनसीएफ 2005) में अभिज्ञता प्रशिक्षण, परीक्षा सुधार, 5. ग्रेडिंग प्रणाली और ग्रेडिंग प्रणाली के प्रभाव का मूल्य निर्धारण, 6. शैक्षिक एवं गैर शैक्षिक क्षेत्रों में सुधार, 7. विशेष ध्यान योग्य बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा पर शिक्षकों का प्रशिक्षण, 8. गुणवत्ता शिक्षा मापदण्ड योजना तथा गुणवत्ता की शिक्षा का कार्यान्वयन।

9. सुधारात्मक शिक्षण।

10. समुदाय संग्रहण।

11. **दूरस्थ शिक्षा** - दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (डीईपी) सर्वशिक्षा अभियान का राष्ट्रीय घटक है, जो कि राष्ट्रीय मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रायोजित है। इसे भारत के सभी राज्य/संघ क्षेत्रों की मदद से इन्दिरा गाँधी नेशनल ओपन युनिवर्सिटी (आई जी एन ओ यू) द्वारा लागू किया गया है।

सर्वशिक्षा अभियान में कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना

भारत सरकार द्वारा 2004 में अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्ग की बालिकाओं के लिए सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय उच्च प्राथमिक विद्यालय की स्थापना के लिए कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना का प्रारम्भ किया गया था। कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना का प्रारम्भ प्रथम दो वर्ष तक एक अलग योजना के रूप में सर्वशिक्षा अभियान, बालिकाओं के लिए प्राथमिक स्तर पर शिक्षा दिलाने का राष्ट्रीय कार्यक्रम व महिला समाख्या योजना के साथ सामंजस्य बैठाते हुए शुरू की गई थी, लेकिन 1 अप्रैल, 2007 से इसे सर्व शिक्षा अभियान में एक अलग घटक के रूप में समाहित कर दिया।

उद्देश्य

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय का मुख्य उद्देश्य विषम परिस्थितियों में जीवन-यापन करने वाली अभिवंचित वर्ग की बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालय के द्वारा गुणवत्तायुक्त प्रारम्भिक शिक्षा उपलब्ध कराना है।
2. माता-पिता/अभिभावकों को उत्प्रेरित करना जिससे बालिकाओं को कस्तूरबा गाँधी आवासीय बालिका विद्यालय में प्रवेश दिलाया जा सके।
3. मुख्य रूप से ऐसी बालिकाओं पर ध्यान देना जो कि विद्यालय से बाहर (अनामांकित/छीजनग्रस्त) हैं तथा जिनकी उम्र 10 वर्ष से ऊपर है।
4. विशेषकर एक स्थान से दूसरे स्थान घूमने वाली जाति या समुदायों की बालिकाओं पर विशेष ध्यान देना। 75 प्रतिशत अनुसूचित जाति/जनजाति/अत्यन्त पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यक समुदाय की बालिकाओं तथा 25 प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवार की बच्चियों को कस्तूरबा गाँधी आवासीय बालिका विद्यालय में प्राथमिकता के आधार पर नामांकन कराना।

2011 के दौरान सर्व शिक्षा अभियान

1. गुणवत्ता निगरानी उपकरण का कार्यान्वयन -

- गुणवत्ता के कार्यान्वयन को मजबूत करने पर पांच क्षेत्रीय सम्मेलन।
- आरटीई अधिनियम के संदर्भ में निगरानी उपकरण।

NOTES

- वृद्धि के लिए गुणवत्ता निगरानी डेटा के आधार पर राज्यों को प्रतिक्रिया।
- प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता।
- प्रभावी बनाए रखने के लिए राज्यों तथा केंद्रशासित प्रदेशों को शैक्षणिक मदद की आवश्यकता है।
- गुणवत्ता निगरानी तंत्र।
- क्षेत्र आधारित के माध्यम से उप-जिलों के स्तर पर क्यूएमटी के कार्यान्वयन में सुधार करना।
- टिप्पणियाँ

2. **संगठन :** एसएसए के लिए एसएसए नेशनल रिसोर्स ग्रुप (एनआरजी) के लिए राष्ट्रीय संसाधन समूह की बैठक का संगठनात्मक आयोजन।

3. प्रारम्भिक साक्षरता कार्यक्रम

- नीति निर्माताओं और पाठ्यक्रम डिजाइनरों का ध्यान आकर्षित करना।
- प्रारंभिक वर्षों में पढ़ने एवं लिखने के अध्यापन पर बल देना।
- शिक्षकों और छात्रों के समर्थन के लिए सामग्री का विकास तथा
- शुरुआती ग्रेड में साक्षरता से संबंधित शैक्षिक प्रथओं को सूचित करना।
- प्रोजेक्ट स्कूलों में ग्रेडेड रीडिंग सीरीज, बरखा का वितरण करना।
- अर्थ के लिए पढ़ना और अन्य सामग्री को बढ़ावा देना।
- लेखकों के साथ पूरे देश में क्षेत्रीय कार्यशालाओं का आयोजन करना।
- सामग्री विकसित करने और विचार-विमर्श करने के लिए बच्चों के साहित्य के विशेषज्ञ।
- बच्चों के साहित्य से संबंधित मुद्दे।
- विभिन्न प्रकार के बच्चों के साहित्य और अन्य संसाधन उपलब्ध करना।
- उत्तर प्रदेश और अन्य राज्यों में पायलट परियोजना का समर्थन करने के लिए सामग्री प्रदान करना।

NOTES

- शिक्षकों की मदद के बारे में एक सूचित समझ विकसित करने में मदद करना।
- पढ़ने और लिखने की प्रक्रियाएं।
- प्रगति की निगरानी और शिक्षकों और अन्य को समर्थन प्रदान करना।
- राज्य कार्यकर्ताओं के बीच साक्षरता पर एक भाषण बनाना और राज्यों में संदर्भित उनके प्रयासों का समर्थन करना।
- संसाधन व्यक्तियों/मास्टर प्रशिक्षकों की क्षमता निर्माण के लिए प्रारंभिक साक्षरता पर समझ का प्रसार करना।
- हिन्दी में उपलब्ध बच्चों के साहित्य की पहचान और समीक्षा करना।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा का आशय

शिक्षा देश में उच्च स्तर पर चिरस्थायी विकास प्राप्त करने का उत्तम साध न है। इस सम्बन्ध में प्राथमिक शिक्षा सहभागिता, बुनियादी अभावों से मुक्ति पाने के मूल कारक के रूप में कार्य करती हैं; जबकि माध्यमिक शिक्षा आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय की स्थापना को सुविधाजनक बनाती है। कई वर्षों, उदारीकरण तथा वैश्वीकरण ने वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक जगत में तीव्र परिवर्तन किए हैं और जीवन की गुणवत्ता सुधारते हुए सामान्य आवश्यकताओं को पूरा किया है और निर्धनता को कम किया है। इसने बेशक स्कूल छोड़ने वालों के लिए, उसकी तुलना में जो उन्होंने आठ वर्ष की प्रारम्भिक शिक्षा के दौरान अनिवार्य रूप से प्राप्त किया हैं, ज्ञान एवं दक्षताओं का उच्चतर स्तर प्राप्त करना अनिवार्य किया है। साथ ही वह शैक्षिक पदाक्रुन, माध्यमिक शिक्षा का महत्वपूर्ण चरण भी है जो देश को उच्चतर शिक्षा तथा कार्य-जगत में आगे बढ़ाने की दिशा में बच्चों को सक्षम बनाता है।

1986 की नई नीति और योजना कार्यक्रम और 1992 की सिफारिशों के अनुक्रम में भारत सरकार ने भिन्न-भिन्न समय में माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के बच्चों की सहायता हेतु विभिन्न योजनाएँ आरम्भ कीं। आईईडीएसएस (पूर्व में आईईडीसी), बालिका छात्रावास तथा स्कूलों में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी योजनाएँ भारत में गुणवत्तायुक्त सम्बन्धित माध्यमिक शिक्षा वहनीय बनाने के समग्र उद्देश्य से आरम्भ की गई। 2009 में राज्य सरकार, तथा स्थानीय स्व-शासन की भागीदारी में आरम्भ आरएसएसए उपलब्ध चारों योजनाओं का अत्याधुनिक संस्करण है।

NOTES

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान भारत सरकार की एक महत्वपूर्ण योजना है जो मार्च, 2009 में माध्यमिक शिक्षा तक पहुँच बढ़ाने तथा इसकी गुणवत्ता में सुधार के लिए प्रारम्भ की गई। इस योजना का कार्यान्वयन 2009-10 में मानव जनशक्ति सृजित करने तथा वृद्धि और विकास तथा समानता को बढ़ावा देने हेतु पर्याप्त स्थितियाँ उपलब्ध कराने के साथ-साथ भारत में सभी को गुणवत्तायुक्त जीवन देने के लिए आरम्भ हुआ। एसएसए की व्यापक सफलता को देखते हुए एसएसए की तरह आरएमएसए बहुपक्षीय संगठनों, गैर-सरकारी संगठनों, सलाहकारों एवं परामर्शदाताओं, अनुसन्धान एजेंसियों तथा संस्थाओं सहित अधिकांश स्केटहोल्डरों से लाभप्रद मदद लेता है। योजना में बहुआयामी अनुसन्धान, तकनीकी परामर्श, कार्यान्वयन तथा निधियन सहयोग सम्मिलित है। इस समय कार्यान्वयन के चौथे वर्ष में आरएमएसए 50,000 सरकारी तथा स्थानीय निकाय माध्यमिक स्कूलों को शामिल करता है। इसके अतिरिक्त 30,000 अतिरिक्त सहायता प्राप्त माध्यमिक स्कूल भी आरएमएसए के लाभ उठा सकते हैं; लेकिन, कोर क्षेत्रों में अवसंरचना तथा सहयोग प्राप्त नहीं कर सकते।

उद्देश्य

- इस योजना में 2005-06 में 52.26% की तुलना में अपने कार्यान्वयन के पाँच वर्ष के अन्दर किसी भी गाँव से उपयुक्त दूरी पर एक माध्यमिक स्कूल उपलब्ध कराकर कक्षा IX-X के लिए 75% का सकल नामांकन अनुपात प्राप्त करने पर ध्यान दिया गया है।
- सभी माध्यमिक स्कूलों को निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप बनाकर माध्यमिक स्तर पर प्रदान की जा रही शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना।
- लैंगिक सामाजार्थिक तथा नि:शक्तता बाधाएँ समाप्त करना।
- वर्ष 2017 अर्थात् 12वीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक माध्यमिक स्तर शिक्षा तक व्यापक पहुँच।
- वर्ष 2020 तक छात्रों को स्कूल में बनाए रखने में वृद्धि तथा उसका सर्वसुलभीकरण।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की विशेषताएँ

- छात्र-शिक्षक अनुपात 30: 1 तक घटाने के लिए अतिरिक्त शिक्षकों की नियुक्ति।

- विज्ञान, गणित तथा अंग्रेजी शिक्षा पर ध्यान।
- शिक्षकों का सेवाकालीन-प्रशिक्षण।
- विज्ञान प्रयोगशालाएँ।
- आईसीटी समर्थित शिक्षा।
- पाठ्यचर्या सुधार।
- शिक्षण अधिगम सुधार।

योजना के लिए कार्यान्वयन तन्त्र

प्रत्येक राज्य में आरएमएसए राज्य कार्यान्वयन सोसायटियों की सहायता से आरएमएसए का समन्वय करने के लिए मानव संसाधन विकास मन्त्रालय केन्द्र सरकार का नोडल मन्त्रालय है। हालांकि, आरएमएसए के बेहतर कार्यान्वयन के लिए विभिन्न सहयोगी व्यवस्थाएँ तथा संस्थाएँ उपलब्ध हैं। एक राष्ट्रीय संसाधन दल शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं, पाठ्यचर्या, शिक्षण-अधिगम सामग्री, आईसीटी शिक्षा तथा निगरानी तथा मूल्यांकन के तन्त्रों में सुधार के लिए मार्गप्रशस्त है। मानव संसाधन विकास मन्त्रालय द्वारा समर्पित तकनीकी सहयोग दल राष्ट्रीय संसाधन दल का संघटक है तथा मन्त्रालय से इसका सीधा सम्बन्ध है। तकनीकी सहयोग दल राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरीय टीमों को तकनीकी तथा प्रचालन सम्बन्धी सहयोग तथा विशेषज्ञता प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त, एनआरजी के अन्तर्गत विभिन्न उप-समितियाँ; जैसे- पाठ्यचर्या सुधार उप-समिति, शिक्षक एवं शिक्षक विकास उप-समिति; आईसीटी उप-समिति और योजना और प्रबन्धन उप-समिति गठित की गई हैं। इन उप-समितियों में टीएसजी से सदस्य लिए जाते हैं और इनकी वर्ष में तीन बैठकें होती हैं जिनमें वे परस्पर निर्धारित लक्ष्यों और प्रतिबद्धताओं की उन्नति से स्वयं को अवगत करती हैं। इसके अलावा, एनसीईआरटी और एनयूईपीए आरएमएसए की समर्पित इकाइयों के द्वारा सहायता करते हैं। डीएफआईडी की सहायता से क्षमता निर्माण सहायता के लिए आरएमएसए-टीसीए का भी गठन किया है। वित्तीय निविष्टियों के रूप में केन्द्र का भाग कार्यान्वयन एजेंसियों को सीधे जारी किया जाता है जबकि राज्य का उपयुक्त भाग भी सम्बन्धित राज्य सरकारों द्वारा एजेंसियों को जारी किया जाता है।

NOTES

स्कूलों में सूचना, संचार और तकनीकी

स्कूलों में सूचना और संचार तकनीकी (आईसीटी) योजना दिसम्बर, 2004 में माध्यमिक स्तर के छात्रों को मुख्यत: अपनी आईसीटी कौशल क्षमता बढ़ाने और कम्प्यूटर सहायक शिक्षण प्रक्रिया के द्वारा सीखने के अवसर प्रदान करने के लिए किया गया था। यह योजना छात्रों के विभिन्न सामाजिक, आर्थिक डिजिटल डिवाइड और अन्य भौगोलिक अवरोधों को पार करने का सेतु है। योजना राज्यों/संघ राज्यों क्षेत्रों को चिरस्थायी आधार पर कम्प्यूटर प्रयोगशालाएँ स्थापित करने के लिए सहायता देती है। इसका केन्द्रीय विद्यालयों तथा नवोदय विद्यालयों में स्मार्ट स्कूल स्थापित करने का उद्देश्य भी है जो भारत सरकार ने 'प्रौद्योगिकी प्रदर्शकों' के रूप में काम करने और आईसीटी कौशल को पड़ोस के स्कूलों में प्रसारित करने के लिए गति प्रदान करने वाली संस्थाएँ हैं।

अब तक अर्जित अनुभव के आधार पर यह योजना जुलाई, 2010 में संशोधि त की गयी थी।

योजना के घटक

योजना के निम्नलिखित घटक हैं-

1. माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक, सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों को कप्यूटर सहायक शिक्षा देने के लिए राज्य सरकार और संघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों के साथ भागीदारी।
2. स्मार्ट स्कूलों की स्थापना करना जो तकनीकी प्रदर्शक होंगे।
3. शिक्षक-सम्बन्धित हस्तक्षेप; जैसे-विशिष्ट शिक्षक की नियुक्ति, आईसीटी में सभी शिक्षकों की क्षमता-बढ़ाना तथा प्रेरणा के रूप में राष्ट्रीय आईसीटी पुरस्कार हेतु योजना।
4. केन्द्रीय शिक्षा तकनीकी संस्थान (सीआईईटी), छ: शिक्षा तकनीकी सम्बन्धी राज्य संस्थानों (एसआईईटी) और पाँच प्रादेशिक शिक्षा संस्थानों (आरआईई) और आउटसोर्सिंग के द्वारा भी, ई-विषय-वस्तु का विकास करने से है।

स्कूल के लिए गैर-आवर्ती व्यय ₹ 6.7 लाख से ₹ 6.4 लाख संशोधित कर दिया गया है जबकि वार्षिक आवर्ती व्यय ₹ 1.34 लाख से ₹ 2.70 लाख तक संशोधित किया गया है। आवर्ती लागत संस्वीकृति के वर्ष से पाँच वर्षों की अवधि के लिए दी जाएगी।

योजना का उद्देश्य शैक्षिक रूप से पिछड़े बालकों में अ. जा./ अ. ज. जा./ अल्पसंख्यक/कमजोर वर्ग बहुल क्षेत्रों के स्कूलों के शीघ्र करवरेज को प्राथमिकता देते हुए सभी सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्कूलों को आवरण करना है।

व्यावसायिक शिक्षा

भारत सरकार की माध्यमिक शिक्षा की दूरदर्शिता से सम्बन्धित व्यापक सम्भावना और सुलभता के क्षेत्र वाली इस योजना के लिए यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि माध्यमिक स्तर पर गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रत्येक बच्चे को उपलब्ध, सुलभ तथा उसकी पहुँच में हो। इस सन्दर्भ में आरएमएसए सहित सभी पाँच योजनाओं ने विशिष्ट ग्रेड़ों और आयु स्तरों पर व्यापक आयु वर्ग में लक्षित मध्यस्थता से मदद की है। चारों योजनाओं पर आरएमएसए के मार्गदर्शी सिद्धान्तों तथा उद्देश्यों के मान-चित्रण से प्राप्त निष्कर्ष दर्शाते हैं कि आरएमएसए के समय उद्देश्य की पूर्ति में ये सभी योगदान करते हैं। तथापि, आरएमएसए हालांकि, इस समय मुख्य रूप से सुलभता, साम्यता और समानता पर दृष्टि है, आईटीसी और व्यावसायिक शिक्षा जैसी योजनाओं का उद्देश्य शिक्षा की प्रासंगिकता में सुधार करना है।

माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण की योजना शैक्षिक अवसरों को विविधता प्रदान करती हैं ताकि व्यक्तिगत नियोज्यता में वृद्धि हो, कुशल जनशक्ति की माँग तथा पूर्ति के बीच अन्तर को कम किया जाए और उच्चतर शिक्षा पाने के इच्छुक हों, उन्हें विकल्प प्रदान किया जा सके। +2 स्तर की माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण सन् 1988 से कार्यान्वित किया जा रहा है जबकि संशोधित योजना 1992-93 से प्रचलन में है। यह योजना राज्यों को प्रशासनिक ढाँचे स्थापित करने, क्षेत्रवार व्यावसायिक सर्वेक्षण करने, पाठ्यचर्या, पाठ्य-पुस्तकें, अभ्यास-पुस्तिकाएँ, पाठ्यचर्या गाइड़ें निर्देशिका तैयार करने, शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने, अनुसंधान और विकास के लिए तकनीकी सहायता प्रणाली सुदृढ़ करने, प्रशिक्षण तथा मूल्यांकन इत्यादि के लिए वित्तीय सहायता देती है। इसके अतिरिक्त यह एनजीओ और स्वैच्छिक संगठनों को अल्पावधि पाठ्यक्रमों के लिए विशिष्ट नवाचारी परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं।

इस योजना के अन्तर्गत अब तक 9619 स्कूलों में 21000 सेक्शनों की अवसंरचना से +2 स्तर पर 10 लाख छात्रों का क्षमता निर्माण किया जा चुका है। व्यावसायिक शिक्षा योजना के कार्यान्वयन के लिए अब तक ₹ 775 करोड़ का अनुदान जारी किया जा चुका है।

NOTES

बालिका छात्रावास

परिचय

वर्ष 2008-09 में आरम्भ की गई एक केन्द्र प्रायोजित योजना है जो देश के शैक्षिक रूप से पिछड़े 3479 ब्लॉकों में से प्रत्येक में 100 बिस्तर वाले कन्या छात्रावासों के निर्माण के लिए कार्यान्वित की जा रही है। यही योजना एनजीओ द्वारा माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के छात्रों के लिए चलाई गई कन्या छात्रावासों के निर्माण एवं उन्हें संचालित करने के स्थान पर है जिसमें ऐसे छात्रावासों को संचालित करने के लिए स्वैच्छिक संगठनों को दी गई थी।

14-18 वर्ष की आयु वर्ग में कक्षा 9 और 12 में अध्ययन करने वाली अ. जा., अ.ज.जा., अ.पि.व., अल्पसंख्यक समुदायों तथा गरीबी रेखा के नीचे से सम्बन्धित छात्राएँ इस योजना का लक्षित ग्रुप है। केजीबीवी पास करने वाली छात्राओं को छात्रावासों में प्रवेश के लिए प्राथमिकता प्रदान की जाती है और प्रवेश लेने वाली कम-से-कम 50% बालिकाएँ अ.जा., अ.ज.जा., अ.पि.व. , अल्पसंख्यक समुदायों की होती हैं।

उद्देश्य

बालिकाओं को माध्यमिक स्कूल में बनाए रखना, ताकि उन्हें स्कूलों से दूरी, अभिभावकों की वित्तीय सामर्थ्य तथा अन्य सम्बन्धित सामाजिक कारकों से शिक्षा के अवसर से वंचित न होना पड़े।

माध्यमिक और वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा बड़ी संख्या में छात्राओं को सुलभ करायी जाए।

लागत मानदंडों का संशोधन

पहले चारदीवारी, हैंडपम्प की खुदाई, बिजली, फर्नीचर और अन्य उपस्करों इत्यादि सहित 100 बिस्तरों के छात्रावास निर्माण के लिए प्रति इकाई लागत ₹ 42.5 लाख निर्धारित की गई थी तथापि मूल्यांकन की प्रक्रिया के समय अधिकांश राज्य सरकारों ने लागत मानदंड अपर्याप्त होने पर विचार प्रस्तुत किए और उनमें अधिमानतः राज्य अनुसूची दरों (एसओआर) पर आधारित वृद्धि का अनुरोध किया। ऐसा होने पर मामले का मन्त्रालय में सावधानी समाधान किया गया एवं निर्माण लागत महिला छात्रावास योजना की राज्य अनुसूची दरों के अनुसार संशोधित करने का प्रस्ताव किया। ईएफसी बैठक आयोजित करने, छात्रावासों के निर्माण लागत मानदंडों सहित महिला छात्रावास

NOTES

योजना के कुछ मानदंडों में संशोधन का प्रस्ताव आईएफडी के माध्यम से मार्च, 2011 में वित्त मन्त्रालय, व्यय विभाग को भेजा गया था। वित्त मन्त्रालय ने अपने 30-05-2011 के कार्यालय ज्ञापन के अन्तर्गत छात्रावासों के निर्माण के लिए वर्ष 2009-10 और 2010-11 में विशिष्ट, विस्तृत मानदंडों के अनुसार पहले संस्वीकृत 100 बिस्तर वाले छात्रावासों के निर्माण हेतु राज्य अनुसूची दरों के प्रयोग की सहमति प्रदान कर दी थी।

आईईडीएसएस

संक्षिप्त विवरण

माध्यमिक स्तर पर नि:शक्तों के लिए समावेशी शिक्षा योजना (आईईडीएसएस) का प्रारम्भ 2009-10 के दौरान किया गया था एवं जिसने नि:शक्त बच्चों के लिए एकीकृत शिक्षा की पूर्व योजना (आईईडीसी) का स्थान लिया। इस योजना का उद्देश्य सभी नि:शक्त विद्यार्थियों को आठ वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात समावेशी और उपयुक्त वातावरण में चार वर्ष की माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने में सहायक होना है।

उद्देश्य

इस योजना के अन्तर्गत एक या अधिक नि:शक्तता, जैसा कि नि:शक्त व्यक्ति अधिनियम, 1995 और राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, (1999) के तहत परिभाषित है, वाले उन सभी बच्चों के लिए जो सरकारी, स्थानीय निकाय और सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में कक्षा 11 से 12 में अध्ययन कर रहे हैं, शम्मिलित हैं। नि:शक्तता के प्रकार में दृष्टि हीनता, कम दृष्टि, उपचारित कुष्ठ रोग, श्रवणविकार, लोकोमीटर, नि:शक्तता, मानसिक विकार, मानसिक रोग, ओटोसम तथा सेरीबरल, कुष्ठरोग, वाक्‌दोष, लटरिंग नि:शक्तता आदि शामिल हैं। नि:शक्तता बालिका की और उसके विकास की क्षमता के लिए माध्यमिक शिक्षा, सूचना और मार्गदर्शन की प्राप्ति में सहायता हेतु विशेष ध्यान दिया जाता है। तथापि, योजना के प्रत्येक राज्य में मॉडल समावेशी स्कूलों की स्थापना पर ध्यान दिया जाता है।

घटक

सहायता दो मुख्य घटकों के लिए मान्य हैं-

विद्यार्थी सहायता घटक जैसे चिकित्सा और शिक्षा आंकलन, पुस्तकें तथा लेखन सामग्री, वर्दी, परिवहन भत्ता, रीडर एलाउंस, बालिकाओं के वजीफा, सहायक सेवाएँ, खान-पान और आवास सुविधाएँ, थेराप्यूरिक सेवाएँ, शिक्षण-शिक्षा सामग्री आदि हैं।

अन्य घटकों के अन्तर्गत विशेष शिक्षा शिक्षकों की नियुक्ति, सामान्य शिक्षक जो ऐसे बच्चों को पढ़ा रहे हैं, उनके भत्ते, शिक्षक-शिक्षण, स्कूल प्रशासकों का अभिविन्यास। संसाधन कक्ष की स्थापना, बाधारहित पर्यावरण प्रदान करना।

कार्यान्वयन एजेंसी

किसी राज्य सरकार/संघ राज्य क्षेत्र (यूटी) प्रशासन का स्कूल शिक्षा विभाग, कार्यान्वयन एजेंसी के रूप में कार्य करता है तथा योजनाओं में सम्मिलित सभी मदों के लिए 100 प्रतिशत केन्द्रीय सहायता उपलब्ध की जाती है। योजना के कार्यान्वयन में नि:शक्तों की शिक्षा के क्षेत्र में अनुभव प्राप्त एनजीओ को सम्मिलित करने का विशेषाधिकार पूर्णतया कार्यान्वयन एजेंसी का है। राज्य सरकारों को केवल प्रति वर्ष, प्रत्येक नि:शक्त बच्चों के लिए ₹ 600 की छात्रवृत्ति प्रदान करने का प्रावधान है।

योजना एवं मूल्यांकन

जिला और राज्य स्तर पर आरएमएसए कार्यक्रम के कार्यान्वयन के अन्तर्गत योजना और मूल्यांकन चुनौतीपूर्ण कार्य है। आरएमएसए के तहत माध्यमिक शिक्षा योजना की चुनौती अपनी विशिष्ट विशेषता से है जिसके अन्तर्गत बहुलवादी सामाजिक आर्थिक स्थिति से बच्चों की आवश्यकता का समाधान, शैक्षणिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, उच्च शिक्षा बनाये रखने के साथ आवश्यकता और आकांक्षा की पूर्ति या कार्य के संचार में प्रवेश बढ़ाने की भी है। आरएमएसए समाज, पंचायतीराज संस्थानों और अन्य हितधारकों के लिए योजना और कार्यान्वयन के समस्त पहलुओं से मुख्य कार्य करता है जिससे पर्याप्त समर्पण और पौधिकरण के विकेन्द्रीकरण और प्रबन्धन कार्य होते हैं।

अत: आरएमएसए के तहत तैयार जिला और राज्य स्तरीय माध्यमिक शिक्षा योजनाओं के विकास और मूल्यांकन में अत्यधिक व्यवहारिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। परिणात्मक दृष्टिकोण सहित पर्याप्त तकनीकी ज्ञान और गुणवत्ता के मुद्दों को उचित रूप से समाधान करने की भी आवश्यकता है। आरएमएसए कार्यक्रम के तहत उनसे सम्बन्धित क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा की योजना और प्रबन्धन के लिए राज्य और जिला स्तर पर गठित योजना दलों की क्षमता में वृद्धि चुनौतीपूर्ण कार्य है।

योजना और मूल्यांकन प्रक्रिया

प्राथमिकता और प्रक्रिया कार्य: योजना प्रारम्भ करने के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं है परन्तु प्रत्येक वर्ष जनवरी और जुलाई में संयुक्त समीक्षा मिशन (जेआरएम) द्वारा प्रदान की गई टिप्पणी अगले वर्ष हेतु योजना के लिए अधिकांश प्राथमिकताओं के निर्धारण में सहायक हैं। पंचवर्षीय योजना आबंटन और केन्द्रीय बजट भी योजना के लिए प्राथमिकता देता है। इन इनपुट के आधार पर टीएसजी विभिन्न राज्यों के साथ क्षेत्रीय कार्यशालाओं की व्यवस्था करता है, जिसमें कार्यान्वयन मूल्यांकन प्रक्रिया पर चर्चा और योजना प्राथमिकताओं के सम्बन्ध में विचार प्राप्त किए जाते हैं।

योजनाओं की तैयारी : राज्य योजना सामान्यतः एनयूईपीए द्वारा तैयार एडब्लूपी और बी मैन्यूवल में निहित करीब 10 अध्यायों द्वारा तैयार की जाती है। एसपीओ और जिला अधिकारी का कार्य योजना तैयार करने के लिए आवश्यक 60 विषम तालिकाओं में निहित पूर्ण सूचना, यूडीआईएसई डाटा को अन्तिम रूप प्रदान करने पर केन्द्रित करने और सिविल कार्य द्वारा सम्बन्धित सूचना संकलित करना है। जबकि स्कूल डाटा हेतु अन्तिम तारीख (यूडीआईएसई) 30 सितम्बर है, राज्य दिसम्बर तक डाटा अद्यतन करते हैं। अतः जिला योजना का लेखन और राज्य में उसका संकलन दिसम्बर और मार्च के मध्य किया जाता है।

योजनाओं की प्रस्तुति, टीएसजी और पूर्व पीएबी से चर्चा और अंतिम पीएबी अनुमोदन: आरएमएसए के अन्तर्गत योजनाओं की समीक्षा का वर्तमान में दो चरणों-राज्य स्तर और राष्ट्रीय स्तर पर अपेक्षित है। राज्य स्तरीय समीक्षा आरएमएसए की राज्य कार्यकारी परिषद् द्वारा की जाती है, जबकि, परियोजना अनुमोदन बोर्ड (पीएबी) राष्ट्रीय स्तर पर आखरी मंच है जहाँ राज्य की योजनाओं पर चर्चा, मूल्यांकन तथा अनुमोदन किया जाता है। पीएबी की तारीखें, सामान्यतया एक पीएबी दिन में 3-4 राज्यों को सम्मिलित करते हुए घोषित की जाती है। सभी अन्य गतिविधियों; जैसे- पूर्व-पीएबी बैठकें, टीएसजी परिचर्या, पुनः प्रस्तुतीकरण तद्नुसार योजनाबद्ध तरीके से तैयार की जाती हैं।

गुणवत्ता

माध्यमिक स्तर के स्कूल अध्ययन कक्ष स्तर पर गुणवत्ता और क्षमता सुधार करना आरएमएसए का प्रमुख कार्यक्षेत्र है। उनके अधिकांश उपयोग के बिना संसाधनों/अवसंरचना के प्रबन्धन को विपरीत रूप से प्रभावित करने के साथ ही बिना शिक्षण स्तर के सुधार हेतु केवल शिक्षा की पहुँच बनाने से लाभ

नहीं होता है। अतः आवश्यकता है कि पहुँच और इक्वेटी की वृद्धि के निदेश के प्रभाव सहित गुणवत्ता की प्राप्ति का प्रयास साथ-साथ चले। इसके अतिरिक्त यह सदैव महसूस किया जाता है कि पाठ्यक्रम और शैक्षिणिक सुधार के लिए दखल/उन्नति की योजना बनाना, मूल्यांकन और कार्यान्वयन का कार्य एक कठिन कार्य है। अतः सम्पूर्ण गतिविधियों में निगरानी का महत्वपूर्ण स्थान है, जिसका उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा के स्तर में सुधार करना है। सभी गुणवत्ता प्रयासों का मुख्य लक्ष्य स्कूल-अध्ययन कक्ष व्यवस्था में अनुकूल बदलाव लाना है। अतः गुणवत्तायुक्त शिक्षा की प्राप्ति के लिए इनपुट और प्रक्रिया की गुणवत्ता सुनिश्चित करना अत्यन्त आवश्यक है।

गुणवत्ता घटक

- पाठ्यचर्या सुधार।
- शिक्षक की तैयारी।
- गुणवत्ता के लिए अनुसंधान और निगरानी।
- सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी)।
- गुणवत्ता संकेतक।
- विभिन्न राष्ट्रीय/प्रान्तीय/जिलास्तरीय एजेंसियाँ।
- बहुस्तरीय कार्यनीतिक दिशा-निर्देश तथा सांकेतिक वित्तीय मानक।

समदृष्टि

समदृष्टि का प्रमुख सिद्धान्त बच्चों को पर्याप्त रूप में यह अधिकार प्रदान करता है कि ये स्कूल में पहले असमानता को समझें, फिर उस पर प्रश्न उठाएं और अन्ततः असमानता एवं अन्याय के साथ निपटें और स्कूली शिक्षा के बाद अपने जीवन में समानता और सामाजिक न्याय प्राप्त करने का प्रयास करें। विद्यालय प्रणाली, महिला-पुरुष के भेद का सामना करने वाले समूहों, आर्थिक विषमता, सामाजिक अर्थात् एससी/एसटी, पिछड़ापन, सांस्कृतिक अलगाव (धर्म और भाषाई वैविध्य के मुद्दों सहित), शारीरिक एवं मानसिक अशक्तता और ग्रामीण-शहरी अन्तराल के विशेष सन्दर्भ को केन्द्र में रखकर असमानता को दूर करने के लिए संघर्षशील रहती हैं। ये आयाम, हितकारी और दृष्टिकोण ग्रहण करने की अपेक्षा करते हैं, जिससे प्रत्येक बच्चे का आत्म-गौरव इस प्रकार से निर्मित हो सके कि वे अपनी माध्यमिक शिक्षा को संतोषजनक रूप से पूर्ण करने के लिए आश्वस्त हो सकें।

सामान्यत: एक दलित बच्चे के मामले में, जहाँ स्कूल पहुँच या अपने पड़ोस में विद्यालय की उपलब्धता संबंधी समानता का प्रश्न बना रहता है। ऐसे मार्मिक विवरण उपलब्ध हैं जिनसे ज्ञात होता है कि समाज के वंचित बच्चों को किस प्रकार के असंगत और अपमानयुक्त विद्यालय अनुभव हो सकते हैं। इस प्रकार की असंगति समान रूप से महिला-पुरुष विभेद में दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि यह सदैव पुरुष प्रधान समाज में विस्तृत रूप में एक 'गुप्त पाठ्यचर्या' का कार्य कारती है। इन परिस्थितियों में, विद्यार्थी केवल स्वेच्छा से ही विद्यालय नहीं छोड़ते हैं या जबरन निकाल दिए जाते हैं, बल्कि इसके विरोध स्वरूप स्कूल छोड़ जाते हैं। इसलिए यह मुद्दा विद्यालयों के लिए आवश्यक बनाता है कि वे नवीन सांस्कृतिक परिवेश और बाल अनुकूल पाठ्यचर्या का निर्माण करें, जिससे यह व्यापक पहुँच मन्त्र श्याम-पट या कम्प्यूटर शिक्षण से भी बढ़कर शिक्षा का माध्यम बन जाए।

राज्यों से निम्नलिखित प्रकार की योजना बनाने और सकारात्मक उपायों को अपनाने का अनुरोध किया जाता है-

- बालिकाओं को परिवहन सुविधा उपलब्ध कराना।
- विद्यार्थियों, विशेष रूप से बालिकाओं को आत्म-रक्षा का प्रशिक्षण प्रदान करना।
- एससी/एसटी के लिए शिक्षा महासभाएँ, पारम्परिक खेलों के आयोजन, पारम्परिक कला/ शिल्प/नृत्य प्रतियोगिता।
- शैक्षिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों के लिए उपाय।
- विद्यालय छोड़ने वालों की संख्या को कम करने के लिए विद्यार्थियों को विद्यालया में बनाए रखने के अभियान तथा सामुदायिक शिक्षा सम्बन्धी उपाय।

वित्तीय प्रबन्धन और प्रापण

वित्तीय प्रबन्धन का अभिप्राय, परियोजना के विभिन्न वित्तीय संसाधनों में सामान्य प्रबन्धन सिद्धान्त लागू करने से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत योजना बनाना, आयोजन करना और परियोजना निधियों के प्रापण एवं प्रयोज्यता जैसी गतिविधियों का निर्देशन और नियन्त्रण सम्मिलित है।

उद्देश्य

सामान्य रूप से वित्तीय प्रबन्धन का सम्बन्ध, किसी परियोजना के लिए खरीद, आबंटन तथा वित्तीय संसाधनों के नियन्त्रण से होता है। गैर-लाभकारी सामाजिक कार्यक्रमों के तहत वित्तीय प्रबन्धन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- कार्यक्रम में निधियों की नियमित और पर्याप्त रूप से पूर्ति सुनिश्चित करना।
- अधिकतम और पर्याप्त रूप से निधियों का प्रयोग करना जिससे कार्यक्रम अपने पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने की ओर अग्रसर होते हैं।
- समस्त नियोजित कार्यकलापों के लिए बजट और बजट कैलेंडर तैयार करना।
- परियोजना के लिए उपलब्ध निधियों/संसाधनों से दुरुपयोग से बचना।
- कार्यक्रम के कार्यान्वयन के समय निर्णयकर्त्ताओं को सुधारात्मक कदम उठाने में सक्षम करना।

वित्तीय प्रबन्धन के तत्व

आरएमएसए कार्यक्रम के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्धन में निम्नलिखित मुख्य घटक सम्मिलित हैं-

परियोजना के लिए बजट : बजट तैयारी में विशिष्ट कार्यों और लक्ष्यों को चिन्हित करना और इन कार्यकलापों को वित्तीय शब्दावली में 'आरएमएसए के लिए बजट' के रूप में प्रस्तुत करना शामिल है।

वित्तीय योजना : इसमें योजना निधि प्रवाह, प्रापण योजना, कार्मिक (स्टाफिंग), स्टाफ की क्षमता निर्माण, बजट कैलेंडर आदि तैयार करना सम्मिलित है।

वित्तीय परिषद् और निगरानी : वित्तीय प्रधान का यह दायित्व है कि वह निधियों के प्रयोग निगरानी करे और वह परियोजना के कार्यान्वयन हेतु निधारित नियमों और विनियमों का सुनिश्चित अनुपालन करे। नियन्त्रण और निगरानी के लिए सांविधिक लेखा-परीक्षा, आन्तरिक लेखा-परीक्षा, प्रापण-समीक्षा, वित्तीय एमआईएस आदि को वित्तीय साधनों के रूप में प्रयोग किया जाए।

निगरानी

आरएमएसए स्कीम के एक भाग के रूप में निगरानी में, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय और राज्यों द्वारा कार्यक्रम कार्यान्वयन संबंधी निरन्तर की जाने वाली निगरानी के अतिरिक्त, दो प्रमुख घटक नामत: संयुक्त समीक्षा मिशन (जेआरएम) और तिमाही एवं वार्षिक रिपोर्टें सम्मिलित हैं। आरएमएसए को घरेलू संसाधनों द्वारा सहायता प्राप्त होती है, आंशिक रूप में इसकी प्रतिपूर्ति बाह्य वित्त पोषण, विकास सोझेदारों, विश्व बैंक का अन्तर्राष्ट्रीय

एसोसिएशन (आईडीए) और यू. के. स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय विकास विभा (डीएफआईडी) के अनुसार किया जाता है। सम्बन्धित करारों के अनुसार, भारत सरकार और विकास भागीदार (डीपी) वर्ष में दो बार संयुक्त समीक्षा मिशन (जेआरएम) के रूप में कार्य किया है। इस संयुक्त समीक्षा मिशन का मुख्य प्रमुख उद्देश्य थोड़े बहुत मुद्दों पर विशेष बल देते हुए और आरएमएसए के उद्देश्यों के सन्दर्भ में कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में की गई प्रगति की समीक्षा करना है एवं प्रत्येक संयुक्त समीक्षा मिशन की जिन विचारणीय विषयों पर सहमति कायम है, उनके आलोक में अनुवर्ती कार्यवाही पर चर्चा करना है। सिविल कार्य, समानता और गुणवत्ता जैसे विभिन्न कार्यक्रम घटकों से सम्बन्धित वित्तीय और वास्तविक प्रगति को सूचित करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा मानव संसाधन मन्त्रालय को तिमाही रिपोर्टें प्रदान की जाती हैं। राज्य वर्ष के लिए अनुमोदित योजनाओं की तिमाही प्रगति से संबंधित सूचित करते हैं।

आरएमएसए-टीसीए

आरएमएसए-टीसीए

आरएमएसए की महत्वाकांक्षी योजना के अन्तर्गत विश्व में उपलब्ध उत्कृष्ट तकनीकी कुशलता और ज्ञान की अपेक्षा है। आरएमएसए तकनीकी कॉर्पोरेशन एजेंसी (टीसीए), राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय तकनीकी विशेषताओं का एक समूह है जिसका गठन कैंब्रिज शिक्षा के नेतृत्व में जनवरी, 2013 के अन्तर्गत किया गया था। इसका वित्त पोषण यू.के. अन्तर्राष्ट्रीय विकास विभाग (डीएफआईडी) द्वारा किया जाता है।

माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में टीसीए प्रत्येक स्कूल जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर एमएचआरडी-टीएसजी, एनसीईआरटी (आरआईईएस सहित), राज्य सरकार के विभागों एवं राज्य संस्थानों के माध्यम से कार्य करती हैं।

फिगर

आरएमएसए-टीसीए विषयक प्रगति

आरएमएसए टीसीए पाँच परस्पर सम्बन्धित विषयक क्षेत्रों में कार्य करती है। इस समेकित दृष्टिकोण (सीम-माध्यमिक शिक्षा संवर्धन कार्यक्रम) का प्रमुख उद्देश्य, सहायक प्रबन्धन प्रणाली जो स्कूलों के लिए अनुकूल परिवेश तथा अन्ततः शिक्षार्थियों को सफलता प्रदान करती है, उनमें सुधार लाना है।

NOTES

माध्यमिक स्तर पर अक्षमों की समावेशी शिक्षा (IDESS)

माध्यमिक स्तर पर नि:शक्तों के लिए समावेशी शिक्षा योजना (आईईडीएसएस) का प्रारम्भ 2009-10 के दौरान किया गया था तथा जिसने नि:शक्त बच्चों के लिए एकीकृत शिक्षा की पूर्व योजना (आईईडीसी) का स्थान लिया। इस योजना का उद्देश्य समस्त नि:शक्त विद्यार्थियों को आठ वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने के बाद समावेसी और उपयुक्त वातावरण में चार वर्ष की माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने में सहायक होना है।

उद्देश्य

इस योजना में एक या अधिक नि:शक्तता, जैसे कि नि:शक्त व्यक्ति अधि नियम (1995) तथा राष्ट्रीय न्यास अधिनियम (1999) के अन्तर्गत परिभाषित है, वाले उन सभी बच्चों के लिए जो सरकारी, स्थानीय निकाय और सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में कक्षा 11 से 12 में अध्ययन कर रहे हैं, शामिल है। नि:शक्तता के प्रकार में, दृष्टि हीनता, कम दृष्टि, उपचांचित कुष्ठरोग, श्रवणविकार, लोकोमोटर नि:शक्तता, मानसिक विकार, मानसिक रोग, ऑटोसम एवं सेरीबल कुष्ठरोग, वाकदोष लटरिंग नि:शक्तता आदि सम्मिलित हैं। नि:शक्त बालिका की ओर उसके विकास की क्षमता बढ़ाने के लिए माध्यमिक शिक्षा, सूचना और मार्गदर्शन की प्राप्ति में सहायता के लिए विशेष ध्यान दिया जाता है। तथापि, योजना में प्रत्येक राज्य में मॉडल समावेशी स्कूलों की स्थापना करना।

घटक : सहायता दो मुख्य घटकों के लिए मान्य है

विद्यार्थी सहायता घटक जैसे कि चिकित्सा एवं शिक्षा आंकलन, पुस्तकें तथा लेखन सामग्री, वर्दी, परिवहन भत्ता, रीडर एलाऊंस, बालिकायों के लिए वजीफा, सहायक सेवाएं, खान-पान एवं आवास सुविधाएं, थेराप्यूरिक सेवाएं, शिक्षण-शिक्षा सामग्री आदि।

अन्य घटकों : में विशेष शिक्षा शिक्षकों की नियुक्ति, सामान्य शिक्षक जो ऐसे बच्चों को पढ़ा रहे हैं, उनके भत्ते, शिक्षक शिक्षण, स्कूल प्रशासकों का अभिविन्यास। संसाधन कक्ष की स्थापना, वाधारहित पर्यावरण का निर्माण करना।

NOTES

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. एकीकृत शिक्षा से आप क्या समझते हैं? इसकी आवश्यकता का उल्लेख कीजिए।
2. एकीकृत शिक्षा का महत्व स्पष्ट कीजिए।
3. सर्व शिक्षा अभियान को स्पष्ट करें।
4. सर्व शिक्षा अभियान को अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके उद्देश्य, कार्यक्रम व कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय का उल्लेख कीजिए।
5. राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान का देश की शिक्षा व्यवस्था में किस तरह योगदान रहा है? स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सर्व शिक्षा अभियान का संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. सर्व शिक्षा अभियान का अर्थ समझाइये।
3. सर्व शिक्षा अभियान के उद्देश्य लिखिए।
4. सर्व शिक्षा अभियान के मुख्य कार्यक्रम बताइए।
5. सर्व शिक्षा अभियान में कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना को स्पष्ट करें।
6. राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान में केन्द्र एवं राज्य की भागीदारी पर प्रकाश डालिए।
7. आईईडीएसएस से क्या आशय है? संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

6 विशेष तथा समावेशित शिक्षा के संदर्भ में राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय नीतियाँ और कानून

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- अंतरराष्ट्रीय नीतियाँ और कानून
  - विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्रसंघ का घोषणा पत्र।
  - बच्चों के अधिकारों पर अधिवेशन।
  - सभी के लिए शिक्षा पर घोषणा पत्र।
  - सालामांका स्टेटमेंट और विशेष शिक्षण पर कार्ययोजना।
  - बिवाको मिलेनियम फ्रेमवर्क फॉर एक्शन।
  - विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ अधिवेशन।
  - मिलेनियम विकास लक्ष्य।
- राष्ट्रीय नीतियाँ और कानून।
  - संवैधानिक प्रावधान।
  - मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम।
  - भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनिय।
  - राष्ट्रीय न्यास अधिनियम।
  - विकलांग व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति।
  - शिक्षा का अधिकार अधिनियम।
  - इंचियोन रणनीतियाँ।
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- अंतरराष्ट्रीय नीतियाँ और कानून
  - विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्रसंघ का घोषणा पत्र।
  - बच्चों के अधिकारों पर अधिवेशन।
  - सभी के लिए शिक्षा पर घोषणा पत्र।
  - सालामांका स्टेटमेंट और विशेष शिक्षण पर कार्ययोजना।
  - बिवाको मिलेनियम फ्रेमवर्क फॉर एक्शन।
  - विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ अधिवेशन।
  - मिलेनियम विकास लक्ष्य।
- राष्ट्रीय नीतियाँ और कानून।
  - संवैधानिक प्रावधान।
  - मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम।
  - भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनिय।
  - राष्ट्रीय न्यास अधिनियम।
  - विकलांग व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति।
  - शिक्षा का अधिकार अधिनियम।
  - इंचियोन रणनीतियाँ।

प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते हैं कि विकलांग व्यक्तियों के लिए शिक्षा की शुरुआत विशेष विद्यालय से हुई जहाँ विकलांग व्यक्ति अपने घर-परिवार से दूर रहकर शिक्षा प्राप्त करता था। लेकिन समय के साथ विकलांग व्यक्तियों की शिक्षा का प्रारूप भी बदला, अब विशेष शिक्षा की जगह समावेशित शिक्षा के द्वारा इनको शिक्षा प्रदान करने की शुरुआत हो चुकी है।

इस इकाई में हम पढ़ेंगे कि अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर विशेष शिक्षा एवं समावेशित शिक्षा के लिए कौन-कौन सी नीतियाँ एवं कानून बनाये गये।

अंतरराष्ट्रीय नीतियाँ और कानून

इस अध्याय में हम विशेष एवं समावेशित शिक्षा के सन्दर्भ में कुछ प्रमुख अंतरराष्ट्रीय नीतियों एवं कानूनों की व्याख्या करेंगे।

विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणा पत्र

विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने 9 दिसम्बर 1975 को एक घोषणा पत्र पारित किया। यह घोषणा पत्र विकलांग व्यक्तियों के मानव अधिकारों की रक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण कदम था। इस घोषणा पत्र की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं-

1. विकलांग व्यक्ति दूसरे सामान्य नागरिकों की भाँति ही सभी मूलभूत अधिकारों की पात्रता रखते हैं, चाहे उनकी विकलांगता की गंभीरता कितनी भी हो।
2. विकलांग व्यक्तियों को आर्थिक व सामाजिक सुरक्षा के अधिकार के साथ ही सम्मानजनक जीवन यापन करने का अधिकार है। उन्हें अपनी क्षमताओं के अनुरूप नौकरी पाने व करने का अधिकार है।
3. विकलांग व्यक्तियों को अपने परिवारों के साथ रहने का तथा सभी सामाजिक, रचनात्मक तथा मनोरंजनात्मक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर इन अधिकारों को दिलाने की गारंटी के लिए दो महत्वपूर्ण कदम उठाए। पहला कदम था सन् 1983-92 के दशक को विकलांग व्यक्तियों हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ दशक घोषित करना तथा दूसरा कदम था सन् 1993-2002 के दशक को विकलांग व्यक्तियों के लिए एशिया पेसिफिक दशक घोषित करना। एशिया पेसिफिक दशक को पुन: बढ़ाकर सन् 2003-2012 कर दिया गया था।

बच्चों के अधिकारों पर अधिवेशन

संयुक्त राष्ट्र संघ ने 20 नवम्बर, 1989 को बच्चों के अधिकारों पर अधिवेशन घोषित किया। इस अधिवेशन की कुछ प्रमुख बातें इस प्रकार हैं-

1. इस अधिवेशिन में सम्मिलित अधिकारों को राज्य प्रत्येक बच्चे को बिना किसी भेदभाव के प्रदान करेगा।
2. राज्य विकलांग बच्चे के अधिकारों को पहचान करते हुए उनके लिए विशेष देखभाल का प्रबन्ध करेगा।
3. राज्य यह निश्चित करेगा कि मानसिक या शारीरिक विकलांग बच्चा समाज में सक्रिय भागीदारी करते हुए जीवन-यापन कर सकें।

इस अधिवेशन के अनुच्छेद 43 और 44 में कहा गया कि इस अधिवेशन में कहे गये दायित्व/ कर्तव्य की राज्य द्वारा किए गए प्रगति का मूल्यांकन किया जाएगा तथ यह मूल्यांकन बच्चे के अधिकार पर कमेटी द्वारा किया जाएगा।

सभी के लिए शिक्षा पर घोषणा पत्र

सन् 1990 ई. में जोमेटिन (थाईलैण्ड) में " सभी के लिए शिक्षा पर विश्व सम्मेलन" का आयोजन किया गया जिसमें 155 राष्ट्र के प्रतिनिधि एवं 150 गैर-सरकारी संस्थाओं ने भाग लिया। इस सम्मेलन का प्रमुख उद्देश्य था कि शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने के लिए तथा निरक्षरता हटाने के लिए उपायों पर विचार करना।

इस सम्मेलन का भारत सहित विश्व के अन्य देशों पर बहुत प्रभाव पड़ा तथा सभी के लिए शिक्षा में विकलांग बच्चों की भी शिक्षा पर गंभीरता पूर्वक ध्यान दिया जाने लगा।

इस घोषणा पत्र में बुनियादी शिक्षा के छः मुख्य उद्देश्यों की पहचान की गयी, जो निम्नलिखित हैं-

1. प्रारम्भिक बाल्यावस्था देख-रेख और विकासात्मक कार्यकलाप का विस्तार।
2. प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिक पहुँच तथा संपादन।
3. अध्ययन उपलिब्ध में सुधार करना ताकि अध्ययन उपलिब्ध एक आवश्यक स्तर तक पहुँच सके।
4. वयस्क निरक्षता के दर को कम करना।
5. बुनियादी शिक्षा के प्रावधानों तथा नवयुवक एवं व्यवस्क द्वारा अपेक्षित दूसरे आवश्यक कौशलों का विकास करना।
6. व्यक्तिगत एवं परिवार के अच्छे जीवन यापन के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशलों एवं मूल्यों के उपलब्धियों को बढ़ावा देना।

सालामांका स्टेटमेंट और विशेष शिक्षण पर कार्ययोजना

सन् 1994 ई. में स्पेन के सालामांका शहर में "विशेष आवश्यकता शिक्षण पर विश्व सम्मेलन" का आयोजन यूनेस्को एवं स्पेन की सरकार ने मिलकर किया था। इस सम्मेलन में 92 देशों के सरकारी प्रतिनिधि तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं ने भाग लिया था।

1. यह कथन (स्टेटमेंट) सभी के लिए शिक्षा की प्रतिबद्धता से आरम्भ होता है।

2. इस सम्मेलन में मुख्य रूप से समावेशित शिक्षा की व्याख्या हुई जो निम्नलिखित कथनों से रेखांकित किया गया:

- स्कूल में सभी बच्चों को समावेशित किया जाए, चाहे उनकी शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक, वाचिक या अन्य परिस्थितियाँ कैसे भी हों।
- समावेशित दिशा-निर्देशन युक्त सामान्य स्कूल भेदभाव पूर्ण दृष्टिकोणों से निपटने के लिए सबसे पहले प्रभावशाली साधन है। वे ऐसे समावेशित समाज की रचना कर सकें जो सबको अपना कर एवं सबके लिए शिक्षा का लक्ष्य भी पा सकें।

इस कथन में यूनेस्को, यनीसेफ, यूएनडीपी एवं विश्व बैंक से अनुरोध किया गया है कि वे समावेशित शिक्षा को प्रोत्साहन देने एवं विशेष आवश्यकता शिक्षण को शैक्षिक प्रोग्राम में शामिल करने के लिए कार्य करें।

बिवाको मिलेनियम फ्रेमवर्क फॉर एक्शन

22 मई, 2002 को एशिया पेसफिक क्षेत्र ने बिवाको मिलेनियम फ्रेमवर्क फॉर एक्शन को स्वीकार किया। प्रमुख उद्देश्य था 'अवरोध रहित तथा अधिकार आधारित एक समावेशित समाज की स्थापना करना। यह एशिया और प्रशांत क्षेत्र के विकलांग व्यक्तियों के लिए एवं ''एशियन पैसिफिक डिकेड ऑफ द डिजेबल्ड पर्सन्स'' का ही विस्तार है।

इसके निम्नलिखित प्राथमिक कार्यक्षेत्र हैं-

1. विकलांग व्यक्तियों, उनके परिवार तथा अभिभावक संघों के स्वयं-सहायता संगठन।
2. विकलांग महिलाएं।
3. शीघ्र निदान, शीघ्र हस्तक्षेप एवं शिक्षा।
4. स्व-रोजगार सहित, प्रशिक्षण एवं रोजगार।
5. निर्मित वातावरण एवं सार्वजनिक वाहनों की उपलब्धि।
6. सूचना एवं संपर्क तक पहुँच जिसमें सूचना संपर्क एवं सहयोगी तकनीकी भी शामिल हो।
7. क्षमता निर्माण, सामाजिक सुरक्षा व अविरत रोजगार कार्यक्रमों के द्वारा गरीबी उन्मूलन करना।

इन प्राथमिकताओं को साकार रूप देने के लिए 21 लक्ष्यों व इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए 17 तरीकों की भी इस घोषणा में पहचान की गयी है। इन सबके अतिरिक्त इसमें संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक आयोग द्वारा इस घोषणा में सुझायी गयी प्राथमिकताओं व लक्ष्यों की प्राप्ति में की गयी वृद्धि के अवलोकन व आवश्यकतानुसार बदलाव करने का भी प्रावधान है।

विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ अधिवेशन

विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर अधिवेशन जिसको संक्षेप में यू. एन.सी. आर.पी.डी.' भी कहा जाता है विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों को संरक्षित रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का यह एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा ने इस संधिपत्र को 13 दिसम्बर, 2006 को स्वीकार किया तथा 30 मार्च, 2007 को हस्ताक्षर करने हेतु रखा। इस दिन भारत सहित 82 देशों ने इस पर हस्ताक्षर किया, (मार्च, 2013 तक 155 देशों ने हस्ताक्षर किया है) यह संधिपत्र 3 मई 2008 को अंतरराष्ट्रीय कानून के रूप में पारित हुआ।

यूएनसीआरपीडी में कुल 50 अनुच्छेद (आर्टिकल) हैं। कुछ महत्वपूर्ण अनुच्छेद इस प्रकार हैं-

- अनु. 6 : विकलांग महिलाओं के सम्बन्ध में है, जिसमें कहा गया है कि सरकार विकलांग महिलाओं के विकास के लिए उपयुक्त कदम उठाये।
- अनु. 7 : में कहा गया है कि इन बच्चों के अधिकारों, स्वतंत्रता तथा अच्छे जीवन के लिए कार्य करें।
- अनु. 9 : इसमें कहा गया है कि विकलांगों को सषक्त करने के लिए अत्याधुनिक तकनीक से बने विशेष उपकरण उपलब्ध कराया जाय।
- अनु. 10 : में कहा गया है कि विकलांग व्यक्तियों को भी सामान्य व्यक्तियों के सामान सम्मान पूर्ण जीवन यापन का अधिकार है।
- अनु. 24 : इसमें कहा गया है कि विकलांग बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था सरकार करे जिससे वे अपने व्यक्तित्व, प्रतिभाओं व रचनात्मकता का विकास कर सकें।
- अनु. 27 : इसके अन्तर्गत प्रत्येक विकलांग व्यक्ति को हर तरह के काम, जो उसके योग्य हैं, करने का अधिकार प्राप्त है। जिसके लिए उपयुक्त सुविधाओं व वातावरण का उपलब्ध कराना आवश्यक है।

मुख्यत: यह अधिवेशन विकलांग व्यक्तियों के अधिकार निर्दिष्ट करता है और उनके संवर्द्धन संरक्षण एवं सुनिश्चितता के लिए राज्य के कर्त्तव्य निध रित करता है, जिसके साथ साथ उनके क्रियान्वयन एवं अनुश्रवण सहयोग के लिए उचित व्यवस्था विकसित करने का निर्देश देता है।

इस अधिवेशन की एक विशेष बात यह भी है कि इसमें विकलांगों को एक श्रेणी मात्र न मानकर विकलांग विशेष तथा उसमें भी व्यक्ति विशेष की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त सुविधाएं प्रदान करने की बात कही गयी है। इसके अतिरिक्त इसमें विकलांग व्यक्तियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की तरफ भी ध्यान दिया गया है।

इस संधिपत्र में यह व्यवस्था है कि समय-समय पर प्रत्येक देश को जिसने इस संधिपत्र पर हस्ताक्षर किया है, यह बताना होगा कि उसने इस संधिपत्र के कार्यान्वयन के लिए क्या कदम उठाए हैं।

मिलेनियम विकास लक्ष्य 2015

सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों (एमडीजी) सामान्य अध्ययन पेपर का एक महत्वपूर्ण भाग के लिए फार्म-समय सीमा से तृतीय एक ही विषय पर सीएसई में पिछले कुछ वर्षों में लगातार पूछे जाने वाले प्रश्नों की संख्या के कारण और इसके महत्व 2015 के रूप में वर्तमान में वृद्धि हुई है जो सभी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध है, जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों द्वारा हासिल किया गया है।

संयुक्त राष्ट्र जल्द ही संयुक्त राष्ट्र के मिलेनियम घोषणा की गोद लेने के बाद वर्ष 2000 में शिखर सम्मेलन डाक द्वारा सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों को स्थापित किए गए थे। सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों का स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण के रूप में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समयबद्ध लक्ष्य को प्राप्त करने पर ध्यान केन्द्रित है, जो आठ अंतरराष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों से मिलकर बनता है:

- अत्यधिक गरीबी और भूख के उन्मूलन के लिए।
- सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए।
- लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए।
- बाल मृत्यु दर को कम करने के लिए।
- मातृ स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए।
- एचआईवी/एड्स, मलेरिया, और अन्य बीमारियों का मुकाबला करने के लिए।

NOTES

- पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए।
- विकास के लिए एक वैश्विक साझेदारी विकसित करने के लिए।

वर्ष 2000 में सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध हैं, जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों की संख्या 189 थे और 23 अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों को भी लक्ष्य प्राप्त करने के लिए खुद को प्रतिबद्ध है। प्रत्येक लक्ष्य निश्चित तिथियों पर प्राप्त करने की आवश्यकता है जो विशिष्ट लक्ष्य है। 2013 के रूप में, प्रगति, विकशित तहत विकासशील और विकसित देशों की सूची में अपनी स्थिति के कारण विभिन्न देशों में आठ लक्ष्यो के संबंध में एक समान नहीं किया गया है। उनकी प्रगति का उपयोग करने के क्रम में प्रत्येक लक्ष्य के तहत लक्ष्य का विश्लेषण करने के लिए आवश्यक है:

- गरीबी और भूख उन्मूलन।
- 1990 और 2015 के बीच, आधा, कम से कम $ 1.25 एक दिन पर रहने वाले लोगों का अनुपात।
- महिलाओं, पुरुषों और युवा लोगों के लिए सभ्य रोजगार देना।
- 1.90 और 2015 के बीच, आधा, भूख से लोगों के अनुपात को कम करना।
- सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करना।
- सन् 2015 तक सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा, लड़कियों और लड़कों प्रदान करना।
- लिंग समानता को बढ़ावा देने और महिलाओं को सशक्त बनाना।
- अधिमानत: 2005 तक प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में लिंग असमानता को 2015 तक सभी स्तरों पर समाप्त करना।
- बाल मृत्यु दर में कमी।
- 1990 और 2015 के तहत पांच मृत्यु दर के बीच, दो-तिहाई तक कम करना।
- मातृ स्वास्थ्य में सुधार।
- 1990 और 2015 मातृ मृत्यु अनुपात के बीच, तीन तिमाहियों से कम करना।

- देश की नीतियों और कार्यक्रमों में टिकाऊ विकास के सिद्धांतों को एकीकृत करना।
- 2010 तक, प्राप्त करने, हानि की दर में उल्लेखनीय कमी जैव विविधता के नुकसान का कम करना।
- 2015 तक, आधा, सुरक्षित पीने के पानी और बुनियादी स्वच्छता के लिए स्थायी उपयोग के बिना जनसंख्या के अनुपात को बढ़ाना।
- 2020 तक कम से कम 100 मिलियन झुग्गी में रहने वाले लोगों के जीवन में एक महत्वपूर्ण सुधार हासिल करना।
- विकास के लिए एक वैश्विक साझेदारी विकसित करना।
- आगे एक खुले, नियम आधारित, उम्मीद के मुताबिक, भेदभाव रहित व्यापार और वित्तीय प्रणाली का विकास करना।
- अल्प विकसित देशों की विशेष जरूरतों का पता लगाना।
- विकासशील देशों और छोटे द्वीप राज्यों के विकास की विशेष जरूरतों को पूर्ण करना।
- लंबी अवधि में ऋण टिकाऊ बनाने के क्रम में राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय उपायों के माध्यम से विकासशील देशों के ऋण की समस्याओं को समाप्त करना।
- दवा कंपनियों के साथ सहयोग में, विकासशील देशों में सस्ती, आवश्यक दवावों के लिए पहुँच प्रदान करना।
- निजी क्षेत्र के साथ सहयोग में, नई प्रौद्योगिकियों, विशेष रूप से सूचना और संचार की उपलब्धि प्राप्त करना।

यह वर्तमान में प्रत्येक लक्ष्य के संबंध में भारत द्वारा की गई प्रगति की जांच और किसी भी कमियों को संबोधित करने के लिए आवश्यक है। रिपोर्ट शीर्षक: एशिया और प्रशांत क्षेत्र के लिए संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक आयोग द्वारा तैयार 'भारत और एमडीजी सभी के लिए एक टिकाऊ भविष्य की ओर "2015 मिलेनियम विकास लक्ष्यों के विषय में भारत बना दिया है उन्नति पर एक व्यापक अद्यतन देता है इस रिपोर्ट के माध्यम से हवा में घूमना और भारत द्वारा हासिल की महत्वपूर्ण मील के पत्थर और आठ सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्यों के संबंध में भारत की प्रगति के विषय में कुछ संस्थाओं द्वारा आगे रखा विचित्र सिफारिशों के नोट बनाने के लिए मदद मिलेगी।"

NOTES

राष्ट्रीय नीतियाँ और कानून

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विकलांग व्यक्तियों के कार्यों का अनुसरण करते हुए भारत सरकार ने भी इनके लिए कुछ नीतियाँ एवं कानून बनाये जिसका वर्णन इस प्रकार है-

संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान के अनु. 14 में उल्लेख किया गया है कि कानून के समक्ष सभी नागरिक एक समान हैं। तथा अनु. 15 में कहा गया है कि राज्य किसी भी नागरिक को धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी भी आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।

अनु. 41 जहाँ कार्य करने की अधिकार की बात करता हैं वहीं अनु. 45 स्पष्ट करता है कि राज्य 6 वर्ष तक के आयु वाले बच्चों को प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा देने का प्रयास करे।

भारतीय संविधान के 86 संशोधन (2002) के द्वारा अनु. 21। में 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की बात कही है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 जो कि 1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ, यह सुनिश्चित करता है कि शिक्षा प्रत्येक बच्चे का अधिकार है तथा राज्य को अनिवार्य रूप से उसको ये अधिकार प्रदान करने होंगे तथा उनसे कोई शुल्क वसूल नहीं किया जायेगा।

मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम

मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम सन् 1987 में लागू हुआ जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि मानसिक रोगी व्यक्तियों की शीघ्र पहचान करके उनका अच्छा उपचार किया जा सके। इस अधिनियम की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं-

1. मानसिक रोगी समाज के अंग हैं तथा राज्य उन सभी बाधाओं को दूर करके उन्हें उपचार पाने, देखभाल व सहारा पाने तथा सम्मानजनक जीवन यापन करने के समान अवसर प्रदान करेगा।
2. मानसिक रोग से ग्रस्त व्यक्तियों को मनोचिकित्सा, अस्पतालों या नर्सिंग होम में उपचार के लिए समय पर प्रवेश मिले।
3. मानसिक रोगियों को किसी का दुर्व्यवहार न सहना पड़े, न ही वे किसी से दुर्व्यवहार करें।

4. यदि मानसिक रोगी अपने मामलों की देखभाल के लिए किसी अभिभावक की माँग करें तो उन्हें उपलब्ध कराया जाए।

भारतीय पुनर्वास परिषद् अधिनियम

भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम जिसे संक्षेप में हम आर.सी.आइ.एक्ट कहते हैं, सन् 1992 में बना तथा 22 जून 1993 से लागू हुआ। सन् 2000 में इस अधिनियम में संशोधन किया गया।

भारत सरकार द्वारा इस अधिनियम की आवश्यकता इसलिए महसूस की गयी क्योंकि विकलांगता के क्षेत्र में शिक्षा की गुणवत्ता एवं प्रशिक्षण के लिए कोई अधिनियम तथा संस्था नहीं थी।

भारतीय पुनर्वास परिषद के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. विकलांग व्यक्तियों के पुनर्वास संबंधी प्रशिक्षण नीतियों तथा कार्यक्रमों को लागू करना।
2. विकलांग व्यक्तियों के साथ काम करने वाले विभिन्न श्रेणी के व्यावसायिकों की शिक्षा व प्रशिक्षण के लिए न्यूनतम मानक प्रस्तावित करना।
3. सम्पूर्ण देश में एकरूपता लाने के लिए सभी प्रशिक्षण संस्थानों में इन मानकों का नियमितीकरण करना।
4. उन सभी संस्थाओं/विश्वविद्यालयों को मान्यता प्रदान करना जो विकलांग व्यक्तियो के पुनर्वास विषय पर डिग्री/डिप्लोमा/सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम संचालित करता है।
5. मान्यता प्राप्त पुनर्वास योग्यता रखने वाले व्यक्तियों की सूची केन्द्रीय पुनर्वास पंजीकरण में शामिल करना।
6. पुनर्वास एवं विशेष शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान को प्रोत्याहन देना।

भारतीय पुनर्वास परिषद से मान्यता प्राप्त विभिन्न विश्व विद्यालय, प्रशिक्षण संस्थान व गैर सरकारी संगठन प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाते हैं। ये प्रशिक्षण बुनियादी पाठ्यक्रम और प्रमाणपत्र से डिप्लोमा, डिग्री, स्नातकोत्तर डिप्लोमा तक सभी प्रकार के होते हैं। पाठ्यक्रम पूर्ण करने वाले विद्यार्थी भारतीय पुनर्वास परिषद में पंजीकरण पाठ्यक्रम की अर्हता पा लेते हैं सफल विद्यार्थी अपने प्रशिक्षण के अनुरूप अधिकारी या व्यावसायिक की श्रेणी में पंजीकृत होते हैं। भारत में विकलांगता पुनर्वास के क्षेत्र में काम करने वाले किसी पुनर्वास विशेषज्ञ के लिए भारतीय पुनर्वास परिषद् में पंजीकृत होना अनिवार्य

है तथा प्रत्येक 5 वर्ष पश्चात् पंजीकरण का नवीनीकरण कराना पड़ता है जिसके लिए उन्हें समय-समय पर परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त सेमिनार, इत्यादि में भाग लेना होता है।

विकलांग व्यक्तियों के लिए अधिनियम

विकलांग व्यक्तियों के लिए अधिनियम सन् 1995 में पारित हुआ इसका पूरा नाम है- "विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों की सुरक्षा एवं पूर्ण सहभागिता) अधिनियम 1995। यह अधिनियम 7 फरवरी 1996 ई. से लागू हुआ। इस अधिनियम में सात विकलांगताएं सम्मिलित की हैं जो निम्नलिखित हैं-

- अंधत्व (Blindness)
- अल्पदृष्टि (Low Vision)
- श्रवण बाधा (Hearing Impairment)
- मानसिक विकलांगता (Mental Retardation)
- मानसिक रोग (Mental Illness)
- गामक बाधा (Locomotar Impairment)
- कोढ़ उपचारित (Leprosy Cured)

भारत में इस समय विकलांग व्यक्तियों को जो सुविधाएं प्रदान की जाती हैं, उसके लिए आवश्यक है कि वह विकलांग व्यक्ति उपर्युक्त सात विकलांगता में से किसी एक श्रेणी में हो तथा उसके विकलांगता का प्रतिशत कम से कम 40 हो।

पी.डब्लू.डी. एक्ट, 1995 का सरकार द्वारा संशोधन का कार्य चल रहा है तथा इसका ड्राफ्ट बिल बन चुका है। जिसमें उपर्युक्त सात विकलांगता के अतिरिक्त ग्यारह और विकलांगता को भी इसमें शामिल किया गया है। इस बिल का नाम है "विकलांग व्यक्तियों का अधिकार बिल, 2012"। पी. डब्लूडी. एक्ट 1995 में कुल 14 अध्याय हैं जिसमें से अध्याय-4 विकलांगता का शीघ्र निदान व रोकथाम के बारे में बताता है, अध्याय-5 विकलांग बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में है, जिसमें कहा गया है कि प्रत्येक विकलांग बच्चे को उचित व समावेशित वातावरण में 18 वर्ष की आयु तक निःशुल्क शिक्षा प्राप्त हो। अध्याय 6: विकलांग व्यक्तियों के रोजगार के सम्बन्ध में है, जिसमें इन व्यक्तियों के लिए सरकारी प्रतिष्ठानों में 3 प्रतिशत

नौकरियों के आरक्षण की बात कही गयी है तथा ये 3 प्रतिशत दृष्टिबाधित, श्रवणबाधित तथा गामक बाधित व्यक्तियों के लिए है (प्रत्येक के लिए 1 प्रतिशत)।

इस अधिनियम के अध्याय-8 में विकलांग व्यक्तियों के लिए बाधारहित वातावरण का भी प्रावधान है जिसमें कहा गया है कि वकलांग व्यक्ति अस्पताल, रेलवे स्टेशन, प्रशिक्षण केन्द्र, मनोरंजन स्थल, निर्वाचन बूथ, कार्यक्षेत्र तथा सभी सार्वजनिक स्थलों की सभी सुविधाओं का प्रभावशाली ढंग से उपयोग कर सके, इसके लिए सरकार इस बात की स्पष्ट घोषणा करती है कि इन सब सार्वजनिक स्थलों को बाधारहित होना अनिवार्य, इसके लिए इन सार्वजनिक इमारतों में रैंप, पहियेवाली कुर्सीवालों के लिए शौचालयों में अनुकूल सुविधा; लिफ्ट आदि में ब्रेक चिन्ह व श्रव्य संकेत; अस्पतलों में रैंप व ऐसे ही विभिन्न साधन होने चाहिए।

राष्ट्रीय न्यास अधिनियम

राष्ट्रीय न्यास अधिनियम सन् 1999 में पारित हुआ इसका पूरा नाम है- ''राष्ट्रीय न्यास अधिनियम (स्वलीनता, प्रमस्तिष्क, पक्षाघात, मानसिक विकलांगता तथा बहु-विकलांगता प्रभावित व्यक्तियों के कल्याण हेतु)। 1999''। इसको संक्षेप में एन.टी.एक्टए 1999 कहा जाता है।

जैसा कि नाम से ही पता चलता है कि यह अधिनियम चार विकलांगताओं के लिए है जो निम्नलिखित हैं-

- स्वलीनता (Autism)
- प्रमस्तिष्क पक्षाघात (सेरेबरल पॉलसी)
- मानसिक विकलांगता (Mental Retardation)
- बहु विकलांगता (Multiple Disabilities)

इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- विकलांग व्यक्ति जिस समुदाय के हैं, उसमें यथा संभव पास रह सकें, स्वतंत्रता एवं पूर्णता के साथ जीवन-यापन कर सकें। इतना उन्हें समर्थ व सशक्त किया जाए।
- विकलांग व्यक्तियों को सहायता देने योग्य सुविधाओं का प्रबलीकरण हो।
- विकलांग व्यक्तियों के अभिभावक या संरक्षक की मृत्यु हो जाने पर उनकी देखभाल तथा संरक्षण की व्यवस्था करना।

- विकलांग व्यक्तियों को समान अवसर, उनके अधिकारों की सुरक्षा तथा उनकी पूर्ण भागीदारी को साकार करने की सुविधाएँ देना।

राष्ट्रीय न्यास अधिनियम 1999 के कुछ प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार हैं-

- संगठनों का पंजीकरण (अभिभावकों एवं गैर सरकारी संगठनों का)।
- स्थानीय स्तर की समितियों का गठन।
- अभिभावकों की नियुक्ति।
- आवासीय सुविधाओं सहित अन्य अनेक प्रकार की सेवाओं को प्रोत्साहन देना।
- होम विजिट/अभिरक्षक के कार्यक्रम।
- जागरुकता तथा प्रशिक्षण सामग्री का विकास।
- लोगों की राहत के लिए सामुदायिक कार्यक्रम।

विकलांग व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति

विकलांग व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति 10 जनवरी, 2006 को पारित हुई। इस नीति का निर्माण विकलांग व्यक्तियों के लिए समान अवसर, उनके अधिकारों के संरक्षक तथा समाज में पूर्ण भागीदारी के लिए वातावरण तैयार करने के उद्देश्य से हुआ। इस राष्ट्रीय नीति की कुछ प्रमुख बातें इस प्रकार हैं-

1. विकलांगता की रोकथाम : विकलांगता की रोकथाम हेतु कार्यक्रम पर विशेष बल दिया गया है।
2. पुनर्वास कार्रवाई: इस नीति में कहा गया है कि पुनर्वास कार्यवाही तीन ग्रुप में होगी।
    i. शारीरिक पुनर्वास।
    ii. शैक्षिक पुनर्वास।
    iii. आर्थिक पुनर्वास।
3. विकलांग औरतों के सम्बन्ध में इस नीति में कहा गया है कि इन औरतों को अपने बच्चों की देखभाल करने में परेशानी होती है अत: सरकार इनको आर्थिक प्रदान करे ताकि ये अपने बच्चों की देखभाल के लिए किसी को किराये पर रख सके। इस प्रकार की आर्थिक सुविधा केवल दो बच्चों के लिए तथा अधिकतम दो साल के लिए दी जायेगी।

4. विकलांग बच्चों के सम्बन्ध में इस नीति में कहा गया है कि सरकार इन बच्चों की देखभाल व सुरक्षा सुनिश्चित करें तथा ये लोग समान अवसर एवं पूर्ण सहभागिता के साथ अपना जीवन यापन कर सकें।
5. विकलांग व्यक्तियों के लिए सार्वजनिक स्थलों पर अवरोध मुक्त वातावरण बनाना।
6. विकलांग व्यक्तियों को बिना किसी परेशानी के विकलांगता सर्टीफिकेट देना।
7. विकलांगता के क्षेत्र में काम करने के लिए गैर सरकारी संगठनों को प्रोत्साहन देने की बात भी इस नीति में कही गयी है।
8. विकलांग व्यक्तियों के सम्बन्ध में नियमित रूप से आँकड़े इकट्ठा करना।
9. इस नीति में एक महत्वपूर्ण बात कही गयी है कि विकलांग व्यक्तियों से सम्बन्धित अधिनियम जैसे आर.सी.आई.एक्ट, 1992, पी. डब्लू. डी. एक्ट 1995 तथा एन.टी.एक्ट 1999 में समय-समय पर संशोधन हाते रहने चाहिए। इसी नीति के परिणामस्वरूप ही पी.डब्लू.डी.एक्ट 1995 में संशोधन हो रहा है, जो 'विकलांग व्यक्तियों के अधिकार बिल, 2012' के रूप में ड्राफ्ट हो चुका है।

शिखा का अधिकार अधिनियम

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 का पूरा नाम है- 'बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009'।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 4 अगस्त, 2009 को बना तथा 1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ। इस अधिनियम में 6-14 वर्ष के बच्चे को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा देने की बात कही गयी हो कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21A में वर्णित है। इस अधिनियम को लागू करने के बाद विश्व के उन 135 देशों में सम्मिलित हो गया है जहाँ शिक्षा मूल अधिकार के रूप में है। इस अधिनियम में कुल सात अध्याय हैं, जिसमें से अध्याय-2 निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार पर है, अध्याय-3 उपयुक्त सरकार, स्थानीय प्राधिकरण, तथा माता-पिता के कर्तव्यों पर है, अध्याय-4: विद्यालयों एवं शिक्षकों के उत्तरदायित्वों पर है, अध्याय-5: प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम एवं संपादन पर है, तथा अध्याय-6: बच्चों के अधिकारों का संरक्षण पर है।

अगर हम विकलांग बच्चो के संदर्भ में बात करें तो इस अधिनियम में इनको स्पष्टतया एक भिन्न वर्ग के रूप में शामिल नहीं किया गया है, लेकिन अध्याय-1: प्रस्तावना के खण्ड 2 (d) में 'अलाभकारी समूह के बच्चे' (चाइल्ड बिलाँगइंग टु डिसट्वैन्टिज ग्रुप) के सम्बन्ध में चर्चा है। इसी खण्ड में कहा गया है कि उपयुक्त सरकार अधिसूचना के द्वारा स्पष्टीकरण करके किसी समूह को जो किसी दूसरे कारण से अलाभकारी है, को इस खण्ड में शामिल कर सकता है। अर्थात् उपयुक्त सरकार चाहे तो अधिसूचना के द्वारा विकलांग बच्चों को अधिनियम के खण्ड 2 (d) में शामिल कर सकती है।

इस कानून को लागू करने के लिए गुजरात राज्य के शिक्षा विभाग द्वारा फरवरी 2012 से नियम बनाये गये हैं।

यह कानून प्रत्येक बच्चे को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अवसर और अधिकार देता है, इसके मुख्य पहलू निम्नलिखित हैं-

1. प्रत्येक बच्चे को उसके निवास क्षेत्र के एक किलोमीटर के भीतर प्राथमिक स्कूल और तीन किलोमीटर के अन्दर-अन्दर माध्यमिक स्कूल उपलब्ध होना चाहिए। निर्धारित दूरी पर स्कूल नहीं हो तो उसके स्कूल आने के लिए छात्रावास या वाहन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

2. बच्चे को स्कूल में प्रवेश देते समय स्कूल या व्यक्ति किसी भी प्रकार का कोई अनुदान नहीं मांगेगा, इसके साथ ही, बच्चे या उसके माता-पिता या अभिभावक को साक्षात्कार देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। अनुदान की राशि मांगने या साक्षात्कार लेने के लिए भारी दंड का प्रावध ान है।

3. विकलांग बच्चे भी मुख्यधारा के नियमित स्कूल से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

4. किसी भी बच्चे को आवश्यक कागजों की कमी के कारण स्कूल में प्रवेश लेने से नहीं रोका जा सकता है, स्कूल में प्रवेश प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात् भी किसी भी बच्चे को प्रवेश के लिए मना नहीं किया जाएगा तथा किसी भी बच्चे को प्रवेश परीक्षा देने के लिए नहीं कहा जाएगा।

5. किसी भी बच्चे को किसी भी कक्षा में (फेल करके) नहीं रोका जाएगा तथा आठ वर्ष तक की शिक्षा पूरी करने तक किसी भी बच्चे को स्कूल से नहीं हटाया जाएगा।

6. स्कूलों में शिक्षकों तथा कक्षाओं की संख्या पर्याप्त मात्रा में रहेगी (हर 30 बच्चों पर एक शिक्षक, प्रत्येक शिक्षक के लिए एक कक्षा और प्रिंसिपल के लिए एक अलग कमरा उपलब्ध करवाया जाएगा।)

7. कोई भी शिक्षक/शिक्षिका निजी शिक्षण या निजी शिक्षण गतिविधि नहीं चलाएगा/चलाएगी।
8. स्कूलों में लड़कियों तथा लड़कों के लिए अलग शौचालय की व्यवस्था की जाएगी।
9. किसी भी बच्चे को मानसिक यातना या शारीरिक दंड नहीं दिया जाएगा।
10. इस अधिनियम के अन्तर्गत, शिकायत निवारण के लिए ग्राम स्तर पर पंचायल, ब्लॉक, स्तर पर संसाधन केन्द्र (सीआरसी), तहसील स्तर पर तहसील पंचायत, जिला स्तर पर जिला प्राथमिक शिक्षा अधिकारी की व्यवस्था है।

इंचियोन रणनीतियाँ :

क. पृष्ठभूमि

1. एशिया तथा प्रशांत क्षेत्र में नि:शक्त जनों के लिए अधिकार को वास्तविक बनाने के लिए इंचियोन रणनीति के विकास की व्युत्पत्ति, नि:शक्त जनों के एशिया एवं प्रशांत दो लगातार दशकों, 1993-2002 तथा 2003-2012 से प्रापत अनुभवों तथा नि:शक्त जनों के अधिकारों पर कंवेंशन की सन् 2006 में हुई आम सभा द्वारा ऐतिहासिक स्वीकार किए जाने से हुई है।
2. इंचियोन रणनीति के विकास को सरकारों, नि:शक्त जनों से संबंधित संगठित तथा अन्य हितधारकों से लाभ मिला। इसे निम्नलिखित क्षेत्रीय परामर्शों के द्वारा प्राप्त टिप्पणियों, फीडबैक तथा जानकारियों से आकर्षण मिला: नि:शक्त जनों के एशिया एवं प्रशांत दशक, 2003-2012 के कार्यान्वयन की समीक्षा के लिए विशेषज्ञ समूह बैठक एवं हितधारक परामर्श, बिवाकों फ्रेमवर्क कार्यवाही (बैंकांक, 23-25 जून, 2010); नि:शक्त जनों के एशिया तथा प्रशांत दशक, 2003-2012 की अंतिम समीक्षा पर उच्चस्तरीय अंतर-शासकीय बैठक के लिए क्षेत्रीय हितधरक परामर्श (बैंकाक, 14-16 दिसंबर, 2011); तथा नि:शक्त जनों के एशिया और प्रशांत दशक 2003-2012 के कार्यान्वयन की अंतिम समीक्षा पर उच्चस्तरीय अंतर-शासकीय बैठक के लिए क्षेत्रीय तैयारी बैठक (बैंकाक, 14-16 मार्च, 2012)।
3. नि:शक्त जनों के एशिया तथा प्रशांत दशक, 2003-2012 की अंतिम समीक्षा पर एस्केप नि:शक्तता सर्वेक्षण 2011-2012 पर सरकारों तथा नि:शक्त जनों से संबंधित संगठनों की प्रतिक्रिया में इंचियोन रणनीति विकसित करने के लिए एक व्यापक आधार प्रदान किया गया है।

4. इंचियोन रणनीति का उद्देश्य एशिया तथ्सा प्रशांत क्षेत्र में नि:शक्त जनों के लिए एक समावेशी, अवरोधमुक्त तथा अधिकारों पर आधारित समाज की दिशा में बिवाकों फ्रेमवर्क कार्यवाही तथा बिवाकों प्लस फाइव के व्यापक क्षेत्र को प्रतिध्वनित करने का नहीं है, ये सभी नि:शक्तता के क्षेत्र में क्षेत्रीय कार्य करने के लिए पूर्व प्रभावी नीतिगत फ्रेमवर्क के रूप में कार्य करेंगे।

5. सहस्त्राब्दी विकास ध्येय की तरह ही इंचियान ध्येय और लक्ष्य समयबद्ध हैं, जो नए सदश 2013-2022 की अवधि के उपरान्त तक प्राथमिकता ध्येय और लक्ष्यों की उपलब्धियों पर विशेष ध्यान देकर कार्यान्वयन में तेजी लाने तथा एशिया प्रशांत क्षेत्र में देशों तथा प्रदेशों द्वारा हासिल की जाने वाली प्रगति को मापने के लिए हों।

ख. प्रमुख सिद्धांत और नीति निर्देश

6. इंचियोन रणनीति नि:शक्त जनों के अधिकारों पर कंवेंशन के सिद्धान्तों पर आधारित है:

   क. जन्मजात गरिमा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सम्मान, जिसमें स्वयं का विकल्प देने की स्वतंत्रता तथा व्यक्तियों की स्वतंत्रता शामिल है;

   ख. भेदभाव रहित;

   ग. पूर्ण एवं प्रभावी भागीदारी तथा समाज में समावेश;

   घ. मानव विविधता और मानवीयता के भाग के रूप में भिन्नता का सम्मान तथा व्यक्तियों की स्वीकार्यता;

   ङ. समान अवसर;

   च. सुगम्यता;

   छ. पुरुषों तथा महिलाओं के बीच समानता;

   ज. नि:शक्त बच्चों की विकासशील क्षमताओं का सम्मान तथा उनकी पहचान को बनाए रखने के लिए नि:शक्त बच्चों के अधिकार का सम्मान।

7. एशिया और प्रशांत क्षेत्र में नि:शक्त जनों के अधिकारों को स्वीकार करने तथा उनके संरक्षण के लिए इंचियोन रणनीति में निम्नलिखित नीति निर्देशन दिये गये हैं:

क. अधिकारों की पूर्ति में सहायक विधायी, प्रशासनिक तथा अन्य उपाय अंग्रीकृत, कार्यान्वित, समीक्षाकृत एवं सुदृढ़ीकृत किए जाएं ताकि नि:शक्तता आधारित असमानता दूर हो सकें;

ख. नि:शक्त जनों को अधिकारों की पूर्ति शुलभ बनाने के लिए विकासपरक नीतियों और कार्यक्रमों में नि:शक्तता का समावेश तथा लैंगिक असमानता प्रति सचेतता तथा प्रौद्योगिकीय प्रगति के साथ वैश्विक स्वरूप को जोड़ने की क्षमता को उपयोग में लाया जाए;

ग. विकासपरक नीतियों तथा कार्यक्रमों में नि:शक्त जनों और उनके परिवारों, जो गरीबी की अवस्था में हैं, की बुनियादी जरूरतों को सम्मिलित किया जाए;

घ. लैंगिक रूप से अलग किए गए नि:शक्तता के आंकड़ों का प्रभावी तथा समय पर एकत्रण तथा विश्लेषण करके साक्ष्य आधारित नीति निर्माण किया जाए;

ङ. राष्ट्रीय उप-राष्ट्रीय और स्थानीय नीतियां तथा कार्यक्रम ऐसी योजनाओं पर आधारित हों, जिनमें नि:शक्त जनों का स्पष्ट रूप से समावेश हो और वे संगत निर्णय प्रक्रियाओं में नि:शक्त जनों की उनके प्रतिनिधि संगठनों के द्वारा सक्रिय भागीदारी को भी प्राथमिकता दें;

च. नि:शक्तता, समावेशी विकास के लिए सभी स्तरों पर बजट सहायता प्रदान की जाए और कर नीतियां भी नि:शक्त जनों के समावेश में सहायक होनी चाहिए।

छ. सभी विकास चाहने वाली राष्ट्रीय, उप क्षेत्रीय, क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं अपनी नीतियों एवं कार्यक्रमों में नि:शक्तता का आयाम सम्मिलित करें;

ज. राष्ट्रीय, उप राष्ट्रीय एवं स्थानीय समन्वयन उप क्षेत्रीय और क्षेत्रीय सम्पर्कों के साथ यह सुनिश्चित करें कि बहु क्षेत्रीय सहयोग को तीव्र बनाकर विकास नीतियों और कार्यक्रमों में नि:शक्तता को सम्मिलित किया जाए ताकि दशक के कार्यान्वयन और वंश संबंधी अच्छे व्यवहारों में तेजी आ सके;

झ. समुदाय और परिवार आधारित समावेशी विकास को प्रोत्साहन दिया जाए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि सभी नि:शक्त जन, चाहे सामाजिक-आर्थिक स्थिति, धार्मिक मान्यताएं, जातीयता तथा स्थान

कुछ भी हो, विकास पहलों, विशेषकर गरीबी उपशमन कार्यक्रमों से लाभांवित होने अथवा योगदान देने के लिए अन्य के समान हैं;

ञ. निःशक्त जनों को समुदाय जीवन की मुख्यधारा में सम्मिलित किया जाए और अन्य लोगों के समान स्वतंत्र रहने के विकल्प सहित जीवन के विकल्पों में सहायता प्रदान की जाए;

ट. निःशक्त जनों को समुचित आवास प्रदान करके वैश्विक डिजाइन और सहायक प्रौद्योगिकियों के द्वारा आर्थिक, भौगोलिक, भाषिक और अन्य सांस्कृतिक विविधता वाले पहलुओं, जो उनके अधिकारों की पूर्ति के लिए संयुक्त रूप से एक महत्वपूर्ण सेतु बनाते हैं, को समायोजित करने की आवश्कयता को ध्यान में रखते हुए व्यावहारिक ढ़ंग से भौतिक वातावरण जन परिवहन, ज्ञान, सूचना तथा संचार सुलभ होना चाहिए;

ठ. विभिन्न निःशक्तता समूहों को सशक्त बनाया जाए, जिनमें अन्य के साथ-साथ निम्नलिखित अल्प प्रतिनिधित्व वाले समूह सम्मिलित हैं: निःशक्त लड़के और लड़कियां, निःशक्त युवा, निःशक्त महिलाएं, बौधिक, शिक्षण तथा विकासात्मक अक्षमता वाले व्यक्ति, आत्मविमोही व मनो सामाजिक अक्षमता वाले व्यक्ति, बधिर, कम सुनने वाले और ऊंचा सुनने वाले व्यक्ति, बहरे व अंधे व्यक्ति, विविध निःशक्तता वाले व्यक्ति, व्यापक निःशक्तता वाले व्यक्ति, निःशक्त वृद्ध, एच आई वी ग्रस्त निःशक्त व्यक्ति, गैर-संक्रामक रोगों से उत्पन्न निःशक्तता वाले व्यक्ति, कुष्ठ रोग से प्रभावित निशक्तता वाले व्यक्ति, चिकित्सा कारणों एवं असाध्य मिर्गी से निःशक्त हुए व्यक्ति, सड़क यातायात दुर्घटनाओं से निःशक्त हुए व्यक्ति, निःशक्तता वाले जातीय अल्पसंख्यक व्यक्ति, बेघर और अपर्याप्त वास वाले निःशक्त व्यक्ति, सैन्य संषर्ष, मानवीय आकस्मिकताओं तथा प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदाओं की स्थिति सहित जोखिम की स्थिति में निःशक्त हुए व्यक्ति, ऐसे निःशक्त व्यक्ति, जिनके पास कोई कानूनी दर्जा नहीं है, घरेलू हिंसा के शिकार, निःशक्त व्यक्ति, विशेषकर महिलाएं, बच्चे तथा परिवार ग्रामीण और दूर दराज के क्षेत्रों में रह रहे विशेष रूप से किनारा किए गए व्यक्ति;

ड़. निःशक्त जनों से संबंधित संगठनों, स्वयं सहायता समूहों एवं स्व-परामर्श समूहों, जिनके परिवारों को सहायता की आवश्यकता पड़ती है तथा देख रेख करने वालों के निर्णय लेने में समुचित भागीदारी होनी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि किनारा किए गए समूहों के हितों पर पर्याप्त रूप से ध्यान दिया जाए;

ढ़. व्यवहार और आचरण में सुधार लाने कार्यान्वयन प्रविधियों में प्रभावी बहु-क्षेत्रीय विनियोजन को कार्यप्रवृत्त करने के लिए दशक के दौरान एशि तथा प्रशांत क्षेत्र में पर्याप्त बाजार सहायता का प्रावधान करके जागरुकता उत्पन्न करने पर कार्यवाही को सुदृढ़ बनाया जाए।

ग. इंचियोन ध्येय और लक्ष्य

8. इंचियोन रणनीति 10 परस्पर संबद्ध ध्येयों, 27 लक्ष्यों तथा 62 संकेतकों से मिलकर बनी है।

9. ध्येयों और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समय-सीमा निःशक्त जनों के एशिया तथा प्रशांत दशक, 2013 से 2022 तक की है।

10. ध्येयों में अपेक्षित समापन परिणामों का उल्लेख है। लक्ष्यों को दी गई निर्धारित समय-सीमा के अन्दर प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया है। संकेतक लक्ष्यों की दिशा में हुई प्रगति को मापते हैं और यह पुष्टि करते हैं कि लक्ष्यों को पूरा कर लिया गया है। दो प्रकार के संकेतक हैं: मुख्य संकेतक और अनुपूरक संकेतक। सभी संकेतकों को, जहां भी संभव हो, लैंगिक आधार पर अलग किया जाए।

गरीबी का उपशमन करना तथा कार्य और रोजगार की संभावनाओं में वृद्धि करना

11. इस दशक के अंदर निःशक्त जनों तथा उनके परिवारों के मध्य गरीबी कम करने में अधिक प्रगति होनी चाहिए। निःशक्त जनों को महत्वपूर्ण श्रम बाजार के नुकसान का सामना करना पड़ता है, उनकी कम आर्थिक भागीदारी होती है तथा इसलिए सशक्त जनों की बजाय असंगत रूप से ये अधिक होते हैं। एक अच्छी नौकरी तथा उस नौकरी को बनाए रखने में आवश्यक शिक्षा, प्रशिक्षण तथा समर्थन होना गरीबी से निजात पाने का एक सर्वोत्तम उपाय है। अतः जो लोग काम करना चाहते हैं और कर सकते हैं, उन्हें बेहतर समर्थन, संरक्षण तथा साधन प्रदान किए जाएं। इसके लिए अधिक समायोजनकारी श्रम बाजार की आवश्यकता होती है। निःशक्त जनों और उनके परिवारों को गरीबी से ऊपर उठाने से समावेशी विकास और सतत विकास प्राप्त करने में योगदान होगा।

प्रगति को जांचने के लिए संकेतक

प्रमुख संकेतक

1.1 विश्व बैंक द्वारा अद्यतन किए गए और समग्र जनसंख्या की तुलना में संयुक्त राज्य $ 1.25 (पी पी पी) प्रतिदिन की अंतर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले निःशक्त जनों का समानुपात।

NOTES

1.2 रोजगार में आम आबादी की तुलना में रोजगार में नि:शक्त जनों का अनुपात।

1.3 सरकार से वित्तपोषित व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा अन्य रोजगार सहायता कार्यक्रमों में भाग लेने वाले नि:शक्त जनों का सभी प्रशिक्षित व्यक्तियों की तुलना में समानुपात।

अनुपूरक संकेतक

1.4 राष्ट्रीय गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले नि:शक्त जनों का समानुपात।

राजनैतिक प्रक्रियाओं और निर्णय लेने में भागीदारी को बढ़ाना

12. राजनैतिक प्रक्रियाओं तथा निर्णय लेने में नि:शक्त जनों की भागीदारी नि:शक्त जनों के अधिकारों को बढ़ाने के लिए आधारशिला है। वोट देने के अधिकार का प्रयोग करने और चुने जाने के अधिकार के योग्य होना इस ध्येय के लिए आधार है। यह दशक सभी स्तरों पर महिलाओं तथा युवाओं सहित नि:शक्त जनों के विभिन्न समूहों की राजनैतिक प्रक्रियाओं और निर्णय लेने में भागीदारी में और भी अधिक व्यापक प्रगति का साक्षी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त नि:शक्त जनों को सार्वजनिक निर्णय लेने के प्रक्रियाओं में भाग लेने तथा अपने अधिकारों का प्रयोग करने और सोसायटी के पूर्ण सदस्यों के रूप में अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करने में समर्थ बनाने के लिए तकनीकीय सुधारों को भी प्रयोग में लाया जाए। सुधारों में, उच्चतम न्यायालय, मंत्रालयों तथा राष्ट्रीय विधायी निकाय सहित सरकार की न्यायिक, कार्यकारी तथा विधायी शाखाओं में नियुक्ति समान रूप से सुलभ करने के लिए नि:शक्त जनों के लिए एक समर्थकारी वातावरण का प्रावधान करना सम्मिलित है।

लक्ष्य 2. क

यह सुनिश्चित करना कि नि:शक्त जनों को सरकारों के निर्णय लेने वाले निकायों में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

लक्ष्य ख.

नि:शक्त जनों की राजनैतिक प्रक्रिया में भागीदारी बढ़ाने के लिए समुचित अवसर प्रदान करना।

ध्येय 3

भौतिक वातावरण, जन परिवहन, ज्ञान, सूचना तथा संचार की सुलभता में वृद्धि

13. किसी भी समावेशी समाज में निःशक्त जनों के लिए उनके अधिकारों की पूर्ति के लिए भौतिक वातावरण, जन परिवहन, ज्ञान, सूचना एवं संचार की सुलभता एक पूर्ण शर्त होती है। डिजाइन पर आधारित शहरी, ग्रामीण दूर-दराज के क्षेत्रों की सुलभता सुरक्षा को बढ़ाती है और न केवल निःशक्त जनों को बल्कि समाज के अन्य सभी सदस्यों को भी इनके उपयोग में आसानी होती है। सुलभता की जांच सुलभता को सुनिश्चित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है और इसमें नियोजन, डिजाइन, निर्माण, रखरखाव तथा निगरानी और मूल्यांकन प्रक्रियाओं की सभी अवस्थाएं सम्मिलित होनी चाहिए। निःशक्त जनों के लिए उनके दैनिक जीवन में स्वतंत्रता और गरिमा के साथ रहने के स्तर को अनुकूल बनाने के लिए सहायक उपकरणों और संगत सहायक सेवाओं की सुलभता भी एक पूर्व शर्त होनी चाहिए। अल्प संसाधनों में रहने वाले लोगों के लिए सहायक साधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए शोध, विकास, उत्पादन, वितरण तथा रख-रखाव को प्रोत्साहन दिया जाए।

लक्ष्य 3. क

राष्ट्रीय राजधानी में लोगों के लिए मुक्त भौतिक वातावरण की सुलभता में वृद्धि करना।

लक्ष्य 3. ख

जन परिवहन की सुलभता तथा प्रयोज्यता में वृद्धि करना।

लक्ष्य 3. ग

सूचना एवं संचार सेवाओं की सुभता और प्रयोज्यता में वृद्धि करना।

लक्ष्य 3. घ

ऐसे निःशक्त जनों के समानुपात को आधा करना, जिन्हें समुचित सहायक साधनों अथवा उत्पादों की आवश्यकता तो है लेकिन उनके पास है नहीं।

ध्येय 4

सामाजिक संरक्षण को मजबूत बनाना

14. एशिया तथा प्रशांत के विकासशील देशों में सामाजिक संरक्षण का दायरा प्रायः सामाजिक बीमा कार्यक्रमों तक ही सीमित रहता है और यह औपचारिक क्षेत्र में नियमित रोजगार अनुबंध के अन्तर्गत आने वालों के लिए उपलब्ध होता है, जिसमें अधिकांश आबादी, विशेषकर निःशक्त

जन पर्याप्त कवरेज के बिना छूट जाते हैं। अत: यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि नि:शक्त जनों को अन्यों के समान ही सामाजिक संरक्षण प्राप्त हो और सभी के लिए स्वास्थ्य सुविधा तथा बुनियादी आय संरक्षण पर बल देते हुए इस सामाजिक संरक्षण को आगे बढ़ाएं। इसके अलावा, समुदाय में स्वतंत्रतापूर्वक रहने के लिए नि:शक्त जनों को सक्षम बनाने वाल व्यक्तिगत सहायता एवं गहन परामर्शी सेवाओं सहित किफायती सेवाओं का अभाव है। कई नि:शक्त जनों के लिए ये सेवाएं समाज में उनकी भागीदारी के लिए पूर्व अपेक्षा होती हैं।

लक्ष्य 4. क

नि:शक्त जनों के लिए पुनर्वास सहित सभी स्वास्थ्य सेवाओं की सुलभता बढ़ाना।

लक्ष्य 4. ख.

नि:शक्त जनों के लिए सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों के अंदर कवरेज बढ़ाना।

लक्ष्य 4. ग

नि:शक्त जनों, विशेषकर समुदाय में स्वतंत्रतापूर्वक रहने में विविध, व्यापक तथा भिन्न नि:शक्तताओं वाले व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने वाली व्यक्तिगत सहायता और गहन परामर्शी सेवाओं सहित ऐसी सेवाओं और कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देना।

ध्येय 5

नि:शक्त बच्चों के लिए प्रारंभिक सहायता तथा शिक्षा का विस्तार करना

15. बच्चों के विकास में विलंब और नि:शक्तता से संबंधित मामलों को अपेक्षाकृत नजरअंदाज किया जाता रहा है, जिनमें अधिकांश बच्चे गरीबी में रह रहे परिवारों के होते हैं। एशिया और प्रशांत के अधिकांश क्षेत्रों में असमान संख्या में नि:शक्त बच्चों को प्रारंभिक सहायता तथा शिक्षा कार्यक्रम उपलब्ध नहीं होते। विकासात्मक मापदंडों के अनुसार विकास में विलंब का पहले पता लगाना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि शिशु एवं बच्चों की ऊंचाई और वजन को नियमित मापना महत्वपूर्ण है। विकासात्मक मापदंडों के अनुसार विकास में विलंब का पहले से पता लगाते रहने के लिए उनके सम्पूर्ण विकास के अनुकूल शीघ्र तथा

समुचित कार्यवाई करना आवश्यक है। ऐसे शीघ्र हस्तक्षेप की कार्यवाई में अन्य बातों के साथ-साथ प्रेरणा, पोषण और देख-रेख तथा स्कूल-पूर्व सम्मिलित है। प्रारंभिक बचपन कार्यक्रमों में निवेश से बाद के स्तरों की शिक्षा और प्रशिक्षण से अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे। प्रारंभिक बचपन कार्यक्रमों के लिए सरकारी प्रतिबद्धता होने से उनके विकास परिणामों में महत्वपूर्ण सुधार आएगा। इसके अतिरिक्त सरकारों के लिए यह सुनिश्चित करना अनिवार्य है कि नि:शक्त बच्चों को, जिस समुदाय में वे रहते है, उनमें अन्यों के समान ही गुणवत्तापरक प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा प्राप्त हो। इस प्रक्रिया में नि:शक्त बच्चों के लिए ज्यादा प्रभावी सहायता प्रदान करने में परिवारों को सहभागियों के रूप में सम्मिलित करना होगा।

लक्ष्य 5. क

नि:शक्त बच्चों के लिए जन्म से लेकर स्कूल-पूर्व आयु तक प्रारंभिक जांच और सहायता के उपायों को बढ़ाना।

लक्ष्य 5. ख

नि:शक्त बच्चों तथा सशक्त बच्चों की प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए पंजीयन के अनुपात के बीच के अंतर को आधा करना।

अनुपूरक संकेतक

5.4 प्रसव और जन्म से पूर्व ऐसी देख-रेख सुविधाओं का समानुपात, जो बच्चों में नि:शक्तता की पूर्व जांच से संबंधित सूचना और सेवाएं प्रदान करती हैं और नि:शक्त बच्चों के अधिकारों का संरक्षण करती है।

5.5 ऐसे बच्चों का समानुपात, जो बाधिर हैं तथा इंगित भाषा में निर्देश ग्रहण करते हैं।

5.6 ऐसे दृष्टि बाधित विद्यार्थियों का समानुपात, जिनके पास शैक्षिक सामग्रियां सरलता से सुलभ फार्मेट में हैं।

5.7 बौधिक नि:शक्तता, विकासात्मक नि:शक्तता, नेत्रहीन-बधिर, आत्म विमोही (ऑटिज्म) और ऐसी अन्य नि:शक्तताओं वाले विद्यार्थियों का समानुपात, जिनके पास सहायक साधन, अनुकूल पाठ्यक्रम एवं समुचित शिक्षण सामग्रियां हैं।

NOTES

ध्येय 6

लैंगिक समानता और महिलाओं का सशक्तिकरण सुनिश्चित करना

16. नि:शक्त बालिकाएं और महिलाएं विभिन्न प्रकार के भेदभाव और दुर्व्यवहार का सामना करती है। देख-रेख करने वालों पर निर्भरता से घिरे एकाकीपन के कारण उन्हें अनेक प्रकार के शोषण, जोर जबरदस्ती तथा दुर्व्यवहारों, परिचारक समस्याओं, एच आई वी संक्रमण, गर्भधारण तथा मातृत्व और शिशु मृत्यु जैसी अधिक असुरक्षा का सामना करना पड़ता है। नि:शक्त बालिकाएं और महिलाएं अधिकांशत: मुख्यधारा के लैंगिक समानता कार्यक्रमों में अदृश्य रहती हैं। यौन और जनन स्वास्थ्य, सामान्य स्वास्थ्य सुविधा और संगत सेवाओं से संबंधित सूचना यदा-कदा ही सुलभ फार्मेट और भाषा में मिलती है। वास्तव में दशक का वादा तभी पूरा होगा जब नि:शक्त बालिकाओं और महिलाओं की मुख्यधारा के विास में सक्रिय साझेदारी रहे।

लक्ष्य 6. क

नि:शक्त बालिकाओं और महिलाओं को समान रूप से मुख्यधारा के विकास अवसर उपलब्ध कराना।

लक्ष्य 6. ख

नि:शक्त महिलाओं का सरकारी निर्णय लेने वाले निकायों में प्रतिनिधित्व निश्चित करना।

लक्ष्य 6. ग

यह सुनिश्चित करना कि समस्त नि:शक्त बालिकाओं और महिलाओं को सशक्त बालिकाओं और महिलाओं के सामन ही यौन और जनन स्वास्थ्य सेवाएँ प्राप्त हों।

लक्ष्य 6. घ

नि:शक्त बालिकाओं और महिलाओं को सभी प्रकार की हिंसा और दुर्व्यवहार द्वारा संरक्षण दिलाने के उपायों में वृद्धि करना।

प्रगति को जांचने के लिए संकेतक

प्रमुख संकेतक

6.1 ऐसे देशों की संख्या, जो लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण पर अपनी राष्ट्रीय कार्य योजनाओं में नि:शक्त महिलाओं और बालिकाओं की भागीदारी में वृद्धि करते हैं।

6.2 नि:शक्त महिलाओं द्वारा संसद एवं समकक्ष राष्ट्रीय विधायी निकाय में धारित सीटों का समानुपात।

6.3 सरकारी और सिविल सोसाइटी की यौन और जनन स्वास्थ्य सेवाओं की प्राप्ति में सशक्त महिलाओं और बालिकाओं की अपेक्षा नि:शक्त बालिकाओं तथा महिलाओं का समानुपात।

6.4 नि:शक्त महिलाओं और बालिकाओं पर किए गए हिंसा, यौन दुर्व्यवहार एवं शोषण का उन्मूलन करने के उद्देश्य से सरकार और संगत एजेंसियों द्वारा प्रारंभ किए गए कार्यक्रमों की संख्या।

6.5 किसी भी प्रकार की हिंसा और दुर्व्यवहार की शिकार महिलाओं और बालिकाओं के लिए पुनर्वास देख-देख तथा सहायता प्रदान करने हेतु सरकार और संगत एजेंसियों द्वारा शुरू किए गए कार्यक्रमों की संख्या।

लक्ष्य 7

नि:शक्तता समावेशी आपदा जोखिम उपशमन और प्रबंधन सुनिश्चित करना

17. एशि-प्रशांत ऐसा क्षेत्र है जिस पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव सहित आपदा का सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। नि:शक्त जनों और अन्य संवेदनशील समूहों को आपदा उपमशन नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों में शामिल न किए जाने के कारण मृत्यु, चोट और अतिरिक्त क्षति होने का खतरा रहता है। जन सेवा घोषणाएं प्राय: ऐसे फार्मेट और भाषा में होती हैं, जो प्राय: नि:शक्त जनों को सुलभ नहीं होती है। इसके अतिरिक्त आपातकालीन निकास, आश्रय और सुविधाएं अवरोध मुक्त नहीं होती। नि:शक्त जनों की स्थानीय और जिला स्तरों पर आकस्मिकता तैयारी कवायदों तथा अन्य आपदा जोखिम उपशमन उपायों में नियमित सहभागिता से आपदा आने के समय होने वाले खतरों और क्षति को रोका अथवा कम किया जा सकेगा। वैश्विक डिजाइन सिद्धांतों को वास्तविक और सूचना अवसरंचना में सम्मिलित किए जाने से सुरक्षा और बचाव के अवसरों में सुधार आएगा।

लक्ष्य 7 क

नि:शक्तता समावेशी आपदा जोखिम उपशमन योजना को सुदृढ़ बनाना।

लक्ष्य 7. ख

आपदाओं के दौरान कार्यवाई करने में नि:शक्त जनों को यथा समय और उचित सहायता प्रदान करने संबंधी उपायों के कार्यान्वयन को सुदृढ़ करना।

प्रगति को जांचने के लिए संकेतक

प्रमुख संकेतक

7.1 नि:शक्तता समावेशी आपदा जोखिम उपशमन योजनाओं की उपलब्धता।

7.2 समस्त संगत सेवा कार्मिकों के लिए नि:शक्तता समावेशी प्रशिक्षण की उपलब्धता।

7.3 सुलभ आपातकालीन आश्रयों एवं आपदा राहत स्थलों का समानुपात।

लक्ष्य 8

नि:शक्तता आंकड़ों की विश्वसनीयता और तुलनात्मकता में सुधार लाना

18. नि:शक्त जनों को अनदेखा, अनसुना तथा अन गणना करने की प्रवृत्ति रही है। वर्तमान में जब उनकी गणना की गई तो नि:शक्तता आंकड़ों को संकलन करने के लिए प्रयुक्त 'नि:शक्तता' ओर निशक्त जन की परिभाषाओं में एशिया-प्रशांत क्षेत्र में व्यापक भिन्नता पाई गई। सभी देशों के एकत्रित तुलनात्मक आंकड़े निरंतर अवश्विसनीय हैं। एशिया-प्रशांत क्षेत्र को विविध नि:शक्तताओं वाले व्यक्तियों की आबादी और उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति के संबंध में अधिक सटीक आंकड़ों की आवश्यकता है। पर्याप्त नि:शक्तता आंकड़े होने से नीति निर्माताओं को नि:शक्त जनों के अधिकारों की प्राप्ति में सहायता हेतु साक्ष्य आधार मिल सकेगा। यह दशक समय और सीमाओं के साथ तुलनात्मक नि:शक्तता आंकड़ों को जुटाने के उद्देश्य से डाटा संकलन में वृद्धि करने का अवसर होगा। यह आवश्यक है कि इंचियोन रणनीति संकेतकों के लिए आधारभूत आंकड़े उपलब्ध कराए जाएं जिससे ध्येय और लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में प्रभावी प्रगति को जांचा जा सके।

लक्ष्य 8. क

नि:शक्त जनों के लिए सुलभ फार्मेट में विश्वसनीय और अंतर्राष्ट्रीय रूप से तुलनात्मक नि:शक्तता आंकड़ों को बनाना और प्रसारित करना।

लक्ष्य 8. ख

इंचियोन रणनीति में ध्येय और लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में प्रगति को जांचने के साधन के रूप में दशक के मध्य अर्थात् 2017 तक विश्वसनीय नि:शक्तता आंकड़े स्थापित करना।

ध्येय 9

नि:शक्त जनों के अधिकारों पर कंवेंशन की अभिपुष्टि और कार्यान्वयन में तीव्रता लाना तथा कंवेंशन के साथ राष्ट्रीय विधान की सामंजस्ता स्थापित करना।

19. नि:शक्त जनों के अधिकारों पर कंवेंशन ऐसा पहला नि:शक्तता विशिष्ट अंतर्राष्ट्रीय कानूनी साधन हैं जो कि नि:शक्त जनों के अधिकारों की गरिमा, संरक्षण तथा पूर्ति के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह कंवेंशन नि:शक्त जनों को दया का पात्र समझे जाने से अलग एक अधिकार धारक के रूप में सामान्य सशक्त बनाता है। एस्केप क्षेत्र ने कंवेंशन को प्रारंभ करने और इसके प्रारूपण में एक साधनयुक्त और ऐतिहासिक भूमिका निभाई। दिनांक 30 अक्टूबर, 2012 की स्थिति के अनुसार कंवेंशन में विश्व में 26 राज्य प्रतिभागी हैं और 154 हस्ताक्षरकता हैं जिनमें से एशिया-प्रशांत क्षेत्र में 35 सरकारों ने कंवेंशन पर हस्ताक्षर किए हैं और 25 कंवेंशन का अनुमोदन किया है तथा इसे स्वीकार किया है।

लक्ष्य 9 क

दशक के मध्य (2017) तक 10 और एशिया प्रशांत-सरकारें नि:शक्त जनों के अधिकारों पर कंवेंशन को अनुमोदन अथवा अनुर्भात दे चुकी होगी और दशक के अंत (2022) तक 10 अन्य एशिया-प्रशांत सरकारें कंवेंशन को अनुमोदन तथा स्वीकृति दे चुकी होंगी।

लक्ष्य 9 ख

ऐसे राष्ट्रीय कानूनों का अधिनियम करना, जिनमें भेदभाव विरोधी प्रावधान, तकनीकी मानदंड एवं अन्य ऐसे उपायों को सम्मिलित किया जाए जो नि:शक्त जनों के अधिकारों को कायम रख सके और उन्हें संरक्षण प्रदान कर सके तथा ऐसे राष्ट्रीय कानूनों में संशोधन करें अथवा प्रभावहीन करें जो प्रत्यक्ष अथव अप्रत्यक्ष रूप से नि:शक्त जनों के प्रति भेदभाव करते हैं जिससे कंवेंशन के साथ राष्ट्रीय कानूनों का सामंजस्य स्थापित हो सके।

ध्येय 10 उप क्षेत्रीय, क्षेत्रीय और अंतर-क्षेत्रीय सहयोग को आगे बढ़ाना

20. दोनों एशिया और प्रशांत दशकों का अनुभव सीखे गए सबक, अच्छे व्यवहारों एवं अभिनव समाधानों का आदान-प्रदान करके उप क्षेत्रीय, क्षेत्री और अंतर क्षेत्रीय स्तरों पर की गई सहायता की कीमत को रेखांकित करता है। सहयोग प्रभावकारिता पर चतुर्थ उच्च स्तरीय फोरम द्वारा दिनांक 1 दिसंबर, 2011 को अंगीकृत प्रभावी विकास सहयोग के लिए बुसान साझेदारी (बुसान, कोरिया गणराज्य) में प्रभावी विकास के लिए सहयोग का आधार तैयार करने के लिए नि:शक्तता पर अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के महत्व की पहचान की गई। सिविल सोसाइटी और निजी क्षेत्र इंचियोन ध्येयों और लक्ष्यों तक पहुंचने हेतु अभिनव दृष्टिकोणों को आगे बढ़ाने में अहम् भूमिका अदा कर सकेंगे। एशिया प्रशांत क्षेत्र के समक्ष अभी भी दीर्घावधिक चुनौतियां हैं। संघर्ष-पश्चात क्षेत्रों में, ऐसी चुनौतियां जो जमीनी सुरंगे और युद्ध में अवशेष नि:शक्तता के होने का अहसास दिलाते हैं और जीविका को प्रभावित करते हैं। यह दशक चुनौतियों का सामना करने और प्रभावी कार्यान्वयन में मदद करने हेतु बहु क्षेत्रीय आयामें के साथ अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए अवसर प्रदान करता है।

लक्ष्य 10. क

नि:शक्त जनों के एशिया-प्रशांत दशक, 2013-2022 और इंचियोन रणनीति संबंधी मंत्रालयी घोषणा पत्र का लागू करने हेतु सहायता प्रदान करने के लिए स्केप द्वारा प्रबंधित एशिया-पैसेफिक मल्टी-डोनर ट्रस्ट फंड के लिए अंशदान तथा पहल और कार्यक्रम।

लक्ष्य 10. ख

एशिया - प्रशांत क्षेत्र में विकास सहयोग एजेंसियों के अनुसार उनकी नीतियों और कार्यक्रमों में नि:शक्तता समावेश को सुदृढ़ करना।

लक्ष्य 10. ग

संयुक्त राष्ट्र राष्ट्रीय आयोगों द्वारा नि:शक्तता मामलों तथा नि:शक्त जनों के अधिकारों पर कंवेंशन को लागू करने संबंधी अनुभवों और अच्छे व्यवहारों के अंतर क्षेत्रीय आदान-प्रदान को सुदृढ़ करना।

घ. प्रभावी कार्यान्वयन के लिए प्रविधिया:
राष्ट्र स्तरीय, उप क्षेत्र स्तरीय तथा क्षेत्र स्तरीय

21. यह खंड उन प्रविधियों की पहचान करता है, जो मिलकर कार्यान्वयन को प्रोत्साहित करती है। विशेष रूप से ये प्रविधियां डाटा और सूचना तैयार करती हैं तथा दशक की अवधि में इंचियोन रणनीति को लागू करके नि:शक्त जनों के अधिकारों की प्राप्ति के क्षेत्र में प्रगति को आगे बढ़ाने के लिए बहु स्तरीय सहायोग को सुदृढ़ बनाती है।

1. **राष्ट्र स्तरीय**

22. इंचियोन रणनीति को लागू करने के लिए प्रमुख भाग के रूप में राष्ट्रीय नि:शक्तता समन्वयन तंत्र एवं इसकी सभी आवश्यक उप राष्ट्रीय कडियाँ है।

23. तंत्रों को निश:क्त जनों के पिछले दो एशिया प्रशांत दशकों के समय स्थापित किया गया था। अत: वे राष्ट्रीय और उप राष्ट्रीय स्तरों पर इंचियोन रणनीति को लागू करने में समन्यवयन तथा प्रेरित करने हेतु प्रांरभिक जिम्मेदारी संभालेंगे।

24. राष्ट्रीय समन्वयन तंत्रों के तत्वाधान में, राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय इंचियोन रणनीति को लागू करने में वृद्धि को जांचने तथा संकेतकों के लिए आधारभूत डाटा स्थापित करने के लिए केन्द्रीय बिन्दु का कार्य संभालेंगे।

25. राष्ट्रीय नि:शक्तता समन्वय तंत्र के कार्यों में अन्य के अतिरिक्त निम्नलिखित कार्य सम्मिलित होंगे;

- सभी स्तरों पर विविध क्षेत्रीय मंत्रालयों, विभागों एवं सरकारी संस्थानों, नि:शक्त व्यक्तियों से संबंधित संगठनों और उनके परिवार सहायता समूहों सहित सिविल सोसायटी, शोध संस्थानों तथा इंचियोन रणनीति को लागू करने के लिए बहु क्षेत्रीय और राष्ट्र व्यापी कार्यों के लिए निजी क्षेत्र को एकत्रित करना।
- इंचियोन रणनीति के ध्येय एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने के संबंध में राष्ट्रीय कार्यवाही योजनाओं का विकास, निगरानी तथा रिपोर्ट तैयार करना;
- इंचियोन रणनीति को राष्ट्रीय भाषाओं में अनुदित करना तथा यह सुनिश्चित करना कि सुलभ फार्मेट में राष्ट्रीय भाषा के पाठ सभी क्षेत्रों एवं सभी प्रशासनिक स्तरों पर व्यापक प्रसार के लिए उपलब्ध हों;

NOTES

- नि:शक्त जनों को सकारात्मकता का बोध कराने के लिए पूरे दशक के दौरान जागरूकता उत्पन्न करने के लिए 'अधिकार को वास्तविक बनाना'।
- नीति निर्माण के लिए आधार के रूप में नि:शक्त जनों की दशा पर शोध को प्रोत्साहन तथा सहायता देना;

26. संयुक्त राष्ट्र देशों की टीमें उप राष्ट्रीय स्तरों सहित कार्यान्वयन में निर्देशित परामर्श, समन्वय एवं सहयोग के लिए विशेष ध्यान देते हुए राष्ट्रीय समन्वयन तंत्रों के पुनरुद्धार और कार्यप्रणाली में यथा आवश्यक सहायता करेगी।

2. उप क्षेत्र स्तरीय

27. उप क्षेत्रीय अंतर-शासकीय संस्थाओं जैसे दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्र संघ, आर्थिक सहयोग संगठन, प्रशांत द्वीप समूह फोरम एवं दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ की उनके संगत अधिदेश के अंदर नि:शकताा समावेशी नीतियों तथा कार्यक्रमों को सक्रिय रूप से प्रोत्साहन मंत्रालयी घोषणा तथा इंचियोन रणनीति के त्वरित कार्यान्वयन के लिए योगदान में एक महत्वपूर्ण भूमिका है।

28. एस्केप सचिवालय नि:शक्त जनों के एशिया तथा प्रशांत दशक, 2013-2022 को प्रोत्साहन देने में उप-क्षेत्रीय अंतर शासकीय निकायों के साथ भागीदारी में उप क्षेत्रीय और अंतर-उप क्षेत्रीय सहयोग में सहायता प्रदान करेगा। ऐसा करने में यह नि:शक्तता समावेशी विकास को बढ़ावा देने में इसकी क्षेत्रीय संस्थानों की मदद से उत्तरी और मध्य एशिया, पूर्वी और उत्तरी-पूर्वी एशिया, प्रशांत, और दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम एशिया में इसके उप-क्षेत्रीय कार्यालयों की सक्रिय भागीदारी को उपयोग में लाएगा।

3. क्षेत्र स्तरीय

29. स्केप सदस्य तथा एसोसिएट सदस्य सामाजिक विकास संबंधी समिति अथवा इसकी समकक्ष समिति के नियमित सत्र में मंत्रालयी घोषणा तथा इंचियोन रणनीति को लागू करने में प्रगति, चनौतियों तथा अच्छे व्यवहारों की व्याख्या करेंगे। सिविल सोसाइटी संगठनों के प्रतिनिधियों को सत्र में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

30. नि:शक्त जनों के एशिया और प्रशांत दशक, 2013-2022 पर एक क्षेत्रीय कार्य समूह स्थापित किया जाएगा। यह कार्य समूचे दशक के दौरान पूर्ण तथा प्रभावी कार्यान्वयन का समर्थन करेगा। इसके कार्य

परामर्श के प्रावधान पर ध्यान केन्द्रित करेंगे और सदस्यों तथा एसोसिएट सदस्यों को मंत्रालयी घोषणा पत्र एवं इंचियोन रणनीति के क्षेत्रीय कार्यान्वयन के संबंध में समुचित मदद करेंगे। कार्य समूह के विचारार्थ विषय संलग्न हैं।

31. एस्केप सचिवालय मंत्रालयी घोषणा पत्र तथा इंचियोन रणनीति को लागू करने के लिए इसकी क्षेत्रीय संयोजन की भूमिका विश्लेषणात्मक कार्य तथा सरकारों को तकनीकी सहायता के द्वारा योगदान देना। विशेषकर यह संयुक्त राष्ट्र संस्थाओं के सहयोग से निम्नलिखित कार्य करेगा।

- नि:शक्त जनों के अधिकारों पर कन्वेंशन के साथ विधान का सामंजस्य बैठाने एवं अधिकार को वास्तविक बनाने के अभियान को प्रोत्साहन देने में सरकारों को समुचित सहायता प्रदान करना।
- नि:शक्त जनों के अधिकारों पर कन्वेंशन को बढ़ावा देने तथा सहायता प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय विधायिका तथा प्रशासनिक संस्थानों के बीच अनुभवों की हिस्सेदारी सहित नि:शक्तता समावेशी विकास में राष्ट्रीय अनुभवों तथा अच्छे व्यवहारों तथा नि:शक्त जनों के अधिकारों के संरक्षण तथा उन्हें कायम रखने में सदस्यों और ऐसोसिएट सदस्यों के मध्य हिस्सेदारी को प्रोत्साहन देना;
- दशक के दौरान नि:शक्तता सांख्यिकी में सुधार की प्रगति तथा सहायता को जांचना;
- नि:शक्तता समावेशी विकास को प्रोत्साहन देने के लिए सदस्यों और एसोसिएट सदस्यों की क्षमता के निर्माण में सहायता करना;
- सिविल सोसाइटी के संगठनों, विशेषकर नि:शक्त जनों से संबंधित संगठनों के साथ मिलकर काम करना तथा हितधारक पदार्थों के लिए एक क्षेत्रीय मंच प्रदान करना।

32. नि:शक्तता पर एशिया-प्रशांत विकास केन्द्र, जिसकी स्थापना नि:शक्त जनों एवं उनके प्रतिनिधि संगठनों को अधिकार प्रदान करने तथा एक अवरोध मुक्त और समावेशी समाज को प्रोत्साहन देने के लिए नि:शक्त जनों के प्रथम एशिया और प्रशांत दशक की बपौती के रूप में की गई थी, उसे नि:शक्तता अनुकूल उत्पादों, सेवाओं, रोजगार के अवसरों तथा उद्यमिता विकास को प्रोत्साहन देने वाले नि:शक्तता समावेशी कारोबार में निजी क्षेत्र की भागीदारी को प्रोत्साहित करने पर विशेष ध्यान देते हुए नि:शक्त जनों की क्षमता का निर्माण करने तथा बहु क्षेत्रीय सहयोग को जारी रखने के लिए कहा गया है।

33. अधिकार को वास्तविक बनाने संबंधी कोष को कोरिया गणराज्य में आरम्भ किया जाएगा जिसे निःशक्त जनों के एशिया एवं प्रशांत दशक, 2013-2011 तथा इंचियोन रणनीति के संबंध में मंत्रालयी घोषणा पत्र को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए सहायता प्रदान करने के लिए आमंत्रित किया गया है।

34. सिविल सोसाइटी संगठनों और विशेषकर निःशक्त जनों से संबंधित संगठनों को मंत्रालयी घोषणा पत्र तथा इंचियोन रणनीति को लागू करने में भागीदारी के लिए प्रोत्साहन देना तथा अपेक्षाओं और दशक के दौरान निःशक्त जनों की आवश्यकताओं पर निरंतर कार्यवाई के लिए प्रोत्साहित करना।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र की प्रमुख बातों का उल्लेख करें।
2. सभी के लिए शिक्षा से आप क्या समझते हैं? इस पर हुए सम्मेलन पर प्रकाश डालें।
3. यू.एन.सी.आर.पी.डी. के प्रमुख अनुच्छेदों का वर्णन करें।
4. भारतीय संविधान में बच्चों के अधिकारों से संबंधित कुछ प्रमुख प्रावधानों का उल्लेख करें। पी.डब्लू.डी.एक्ट एवं विकलांग व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति की मुख्य बातों की व्याख्या करें।
5. इंचियोन रणनीतियों की सविस्तार व्याख्या कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए-
   - पी.डब्लू.डी. एक्ट (1995)।
   - आर.सी.आई. एक्ट (1992)।
   - आर.टी.ई.एक्ट (2009)।
   - नेशनल पॉलिसी फॉर परसन्स विद डिजबेलिटी (2006)।
   - नेशनल ट्रस्ट एक्ट (1999)।
   - यू.एन.सी.आर.पी.डी. (2008)।

1 शिक्षा में मुद्दे एवं प्रवृत्तियाँ

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा प्रणाली।
- प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा की भूमिका तथा स्कूल शिक्षा।
- अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा का अधिकार।
- समावेशी शिक्षा का अर्थ।
- समावेशी शिक्षा की परिभाषाएँ।
- समावेशी शिक्षा की विशेषताएँ।
- समावेशी शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व।
- समावेशी शिक्षा के विभिन्न प्रतिरूप।
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे-

- प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा प्रणाली।
- प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा की भूमिका तथा स्कूल शिक्षा।
- अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा का अधिकार।
- समावेशी शिक्षा का अर्थ।
- समावेशी शिक्षा की परिभाषाएँ।
- समावेशी शिक्षा की विशेषताएँ।
- समावेशी शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व।
- समावेशी शिक्षा के विभिन्न प्रतिरूप।

NOTES

प्राक्कथन

हमारा संदर्भ सूचना प्रौद्योगिकी (आईसीटी), और विश्व की आबादी सहित वैज्ञानिक और चिकित्सा खोजों, प्रौद्योगिकी में तेजी से वृद्धि मे से एक है। परन्तु यह दुनिया के विभिन्न हिस्सों और अलग-अलग देशों में इस प्रकार के विकास के अन्तर्गत असमानता का एक संदर्भ भी है। इस स्थिति के परिणामों में सीमाओं का धुंधलापन, लोगों, समूहों और देशों के मध्य बढ़ती अंतराल और विशिष्ट ज्ञान की विश्वसनीयता एवं विशेषज्ञता के अधिकार, विशेष रूप से शिक्षा जैसे व्यवसायों में कमी के साथ अंतराल के अंत सम्मिलित हैं। यह संदर्भ और इसके परिणाम राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय एजेंडे पर विशेष मुद्दों को मजबूत कर रहे हैं। इन मुद्दों में सबसे महत्वपूर्ण हैं: आर्थिक प्रतिस्पर्धा एवं बाजार। हिस्सेदारी; स्थिरता; वैश्वीकरण में पहचान (सूचना, वाणिज्य और लोगों और उनकी संस्कृतियों सहित); इक्विटी; और तेजी से, शिक्षा के लिए सार्वजनिक संस्थानों की भूमिका सर्वाधिक चुनौतियों का सामना एवं मदद करने में। वास्तव में, शिक्षा द्वारा राजनीतिक एजेंडा को बढ़ा दिया है. और को कुंजी के रूप में देखा जाता है न केवल सामाजिक बल्कि आर्थिक समस्याओं को अनलॉक करना। हमारे समाज में उस समाज के अन्तर्गत पहचान और एकजुटता तथा अन्य समाजों की समझ और स्वीकृति सहित हमारे समाज में अत्यधिक बनाया गया है। विद्यालय कुछ शेष संस्थानों में से एक है जो सामाजिकरण और परिवारों के द्वारा सीखने के माध्यम से साझेदारी प्रदान करता है। स्कूल शिक्षा लोगों को परिवर्तनों को समझने में मदद करती है और एक साथ ही आजीवन सीखने के साथ-साथ स्थिरता को बढ़ावा देती है। ज्ञान का निर्माण, अधिग्रहण, संचार और बुद्धिमान उपयोग विशेष महत्वपूर्ण है। संक्षेप में समाज के अत्यधिक महत्वपूर्ण निवेश को अपने लोगों की शिक्षा में तेजी से देखा जा रहा है- हम अच्छी शिक्षा की अनुपस्थिति में पीड़ित हैं: हम इसकी उपस्थिति में समृद्ध हैं। प्रत्येक देश के शैक्षिक प्रावधान की उच्च उम्मीदों की इस स्थिति में, उन प्रमुख स्कूलों की एक बड़ी जिम्मेदारी है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि 'पिछले 20 वर्षों के स्कूल सुधार आंदोलन हमें बहुत अच्छा लगा है।

नेताओं की भूमिका पर जोर दिया। 'फुलन ने निष्कर्ष निकाला है कि,' प्रभावी स्कूल के नेता स्तर पर टिकाऊ शिक्षा सुधार के लिए महत्वपूर्ण हैं। 'न केवल स्कूल के नेता महत्वपूर्ण हैं बल्कि वे सामान्य भी लग रहे हैं अधिक से अधि

NOTES

क भूमिकाएं। लिथवुड एट अल (2002) उत्तरदायी स्कूल संदर्भों में प्रभावी नेतृत्व पर अनुभवजन्य साहित्य की समीक्षा 121 स्कूल नेतृत्व प्रथाओं की पहचान करती है। स्कूल के नेता पेशेवर विकास कार्यक्रमों या स्कूल के नेता मानकों हेतु योग्यता सूचियां इतनी विस्तृत हो सकती हैं। ये कभी प्रथाओं, दक्षताओं या मानकों की लंबी सूची एक चिंता का संकेत देती है कि स्कूल के नेताओं को न केवल अनेक अलग-अलग दिशाओं में खींचा जा रहा है बल्कि उनसे बहुत कुछ करने के लिए कहा जा रहा है। टाइक और क्यूबा ने अपनी इनाम जीतने वाली किताब टिंकरिंग में यूटोपिया की ओर इशारा करते हुए कहा कि स्कूलों के लिए जिम्मेदार लोगों को सावधान रहना चाहिए क्योंकि शिक्षा सरलता ने 'पैनेशिया से लेकर बकवास तक' स्थानांतरित हो सकती है। उनके स्कूलों के लिए आम तौर पर सख्त स्थानीय समर्थन के बावजूद, इस परिवर्तन को बढावा दिया जाएगा। जैसे न केवल उच्च और उच्च उम्मीदों द्वारा बल्कि अंतर्राष्ट्रीय बढ़ते हुए भी परस्पर निर्भरता और बेहतर संचार 'सर्वोत्तम अभ्यास' के वैश्विक प्रसार को सरलता से कुशल बनाते हुए। समाज और शिक्षा के अन्तर्गत यह व्यापक विकास कैसे स्कूल के नेताओं की भूमिका, भर्ती और विकास में परिलक्षित होते हैं? इस प्रकार यह पेपर होगाः

जांच करें कि स्कूल प्रशासन के विभिन्न दृष्टिकोणों के कारण स्कूल के नेताओं (धारा 2) के लिए भूमिकाएं बदल गई हैं। इन परिवर्तनों के कारण, और कुछ मामलों में परिवर्तनों के बावजूद, सबूत बताते हैं कि शिक्षा के लगातार सुधार हेतु स्कूल के नेता स्पष्ट रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते समावेशी शिक्षा यूनेस्को द्वारा शिक्षा में और उससे बहिष्कारा को कम करने और सीखने में भागीदारी को बढ़ाकर सभी शिक्षार्थियों की विविध आवश्यकताओं को संबोधित करने और प्रतिक्रिया देने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित की गई है। समावेशी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सभी के लिए शिक्षा का समर्थन करना है, विशेष जोर देना लड़कियों और महिलाओं, वंचित समूहों, विकलांग बच्चों और स्कूल के बाहर बच्चों के लिए भागीदारी और सीखने के लिए समस्याओं को दूर करना। समग्र लक्ष्य एक ऐसा स्कूल है जहां प्रत्येक बच्चे भाग ले रहे हैं और समान रूप से व्यवहार कर रहे हैं। समावेशी शिक्षा का सिद्धांत विशेष आवश्यकता शिक्षा पर सलामंका विश्व सम्मेलन में अपनाया गया था।

स्पेन, 1994 इसमें सामग्री, संरचनाओं, प्रक्रियाओं, नीतियों और रणनीतियों में परिवर्तन एवं संशोधन सम्मिलित हैं। समावेशी शिक्षा औपचारिक और गैर औपचारिक शैक्षिक सेटिंग्स में सीखने की आवश्यकताओं के व्यापक स्पेक्ट्रम के लिए उचित प्रतिक्रिया प्रदान् करने से संबंधित है। मुख्य शिक्षा प्रणाली में कुछ शिक्षार्थियों को कैसे एकीकृत किया जा सकता है, इस बार संबंध में एक मामूली विषय होने की अपेक्षा समावेशी शिक्षा एक दृष्टिकोण है जो सिस्टम को बदलने के तरीके को देखता है जिससे यह जवाब दे सके।

शिक्षार्थियों की विविधता के लिए। समावेशी शिक्षा के मूल में शिक्षा का मूल अधिकार है, जो 1948 के अंतर्गत मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा के पश्चात् कई अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संधि में निहित है। डकार में आयोजित विश्व शिक्षा मंच, 2000 के अंतर्गत सेनेगल ने एक मौलिक मानव के रूप में शिक्षा की पुष्टि की राष्ट्रीय स्तर पर ऑल (ईएफए) गतिविधियों के लिए शिक्षा को लागू करने में अधिकार-आधारित सरकारी कार्यवाइयों के महत्व को उचित और रेखांकित किया गया। सहमत होने का अनुसरण करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार उपकरणों में वर्णित सिद्धांतों एवं मानकों और अधिकार-आधारित शिक्षा प्रणाली विकसित करने हेतुख सरकारों को अपने प्रोग्रामिंग और योजना प्रक्रियाओं में शिक्षा के लिए अधिकार-आधारित दृष्टिकोण लागू करने की आवश्यकता है। इस संबंध में, शैक्षिणिक प्रणाली के अन्तर्गत सुधार अक्सर आवश्यक होता है, इसलिए यह सामग्री के साथ-साथ प्रक्रिया में मानव अधिकार मानकों को पूर्ण रूप से बढ़ावा देता है, बचाता है और बढ़ावा देता है। ये प्रयास समावेशी शिक्षा के सिद्धान्तों के साथ हाथ में हैं।

इस पत्र प्रमुख उद्देश्य शिक्षा प्रोग्रामिंग और शिक्षा में कोर मानवाधिकार दायित्वों, तथा समावेशी शिक्षा गतिविधियों को मजबूत बनाने में उनकी भूमिका के अधिकार-आधारित दृष्टिकोण की अंतर्निहित अवधारणाओं को स्पष्ट करना है। यह आगे बढ़ने के लिए संभावित प्रवेश बिंदुओं और औजारों पर भी संक्षेप में चर्चा करेगा। इसके अतिरिक्त यह उम्मीद की जाती है कि यह पेपर विकास सहयोग प्रोग्रामिंग को कम करने में मानव अधिकारों के महत्व को समझने के साथ-साथ ऐसे प्रोग्रामिंग को लागू करने के व्यावहारिक पहलुओं पर चर्चा को बढ़ावा देगा।

NOTES

प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा प्रणाली

सामान्य विद्यालय शिक्षा 6 साल की उम्र में प्रारंभ होती है और इसमें 3 शिक्षा चक्र होते हैं:

प्राथमिक,

सामान्य (मूल) माध्यमिक, और

पूर्ण माध्यमिक।

इस स्तर पर शिखा सामान्य शिक्षा स्कूलों, विशेष शिक्षा संस्थानों, जिमनासियम, लाइसेम, प्राथमिक और माध्यमिक व्यावसायिक पेशेवर स्कूलों में भी उच्च शिक्षा संस्थान के अन्तर्गत कॉलेजों और स्कूलों में महसूस की जाती है।

प्राथमिक शिक्षा चार साल तक (ग्रेड 1 से 4) चलती है और इसके बाद सामान्य (मूल) शिक्षा होती है जो पांच साल तक चलती है। इस चरण के शिक्षा हेतु सफल समापन के बाद, स्नातकों को एक समान राज्य दस्तावेज-सामान्य माध्यमिक शिक्षा चक्र का प्रमाण पत्र प्राप्त होता है।

माध्यमिक पूर्ण शिक्षा दो साल तक चलती है और माध्यमिक शिक्षा के ग्रेड 10-11 को कवर करती है। इस चरण के पश्चात राज्य अंतिम प्रमाणन किया जाता है जिसके बाद स्नातकों को एक राज्य पूर्ण माध्यमिक शिक्षा दस्तावेज-प्रमाण पत्र प्राप्त होता है- जो अन्य चक्रों (शिक्षा पर कानून के कला 19) में निरंतर शिक्षा की अनुमति प्रदान करता है।

व्यावसायिक शिक्षा माध्यमिक शिक्षा का हिस्सा है लेकिन माध्यमिक पूर्ण शिक्षा इसके एक हिस्से के रूप में प्राप्त की जा सकती है (अनुलग्नक 1 देखें)। सामान्य माध्यमिक शिक्षा के द्वारा पहली विशेष व्यावसायिक शिक्षा व्यावसायिक शैक्षणिक संस्थानों, विभिन्न संगठनों, उद्यमों, श्रमिक आदान-प्रदान, रोजगार कार्यालयों एवं संबंधित संगठनों के अन्य संरचनाओं में की जा सकती है। स्नातक जिन्होंने आधार पर पहले व्यावसायिक स्कूलों को पूर्ण किया। विशिष्ट माध्यमिक शिक्षा के साथ पूर्ण माध्यमिक शिक्षा को उनकी माध्यमिक शिक्षा (शिक्षा पर कानून के कला 20) के पूरा होने पर संबंधित राज्य दस्तावेज (स्कूल छोड़ने का प्रमाण पत्र) प्रदान किया जाता है।

माध्यमिक व्यावसायिक प्रशिक्षण हेतु यह सामान्यत: कॉलेज में लागू किया जाता है और उच्च शैक्षणिक संस्थानों के संबंधित संरचनाएं। हालांकि, सामान्य माध्यमिक शिक्षा के आधार पर व्यावसायिक स्कूलों में प्रवेश करने वाले छात्र भी माध्यमिक शिक्षा पूर्ण करते हैं। माध्यमिक व्यावसायिक शिक्षा के स्नातक को एक राज्य मानक दस्तावेज दिया जाता है- एक डिप्लोमा- जो अपने धारक को उच्च शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश करने का अधिकार प्रदान करता है। (इसे अगले स्तर पर उच्च शिक्षा अधिग्रहण के आधार के रूप में भी ध्यान में रखा जाता है।) इसके अतिरिक्त स्नातक जो इस शैक्षणिक स्तर को उच्च कार्यकारी (उप-स्नातक) के साथ पूर्ण करते हैं, संबंधित कार्यकारी निकाय (प्राधिकरण) द्वारा निर्धारित थर्मल पर आधारित होते हैं, उन्हें सीधे दूसरे में स्वीकार किया जाता है। उच्च शिक्षा संस्थानों (शिक्षा पर कानून के कला 21) के पाठ्यक्रम।

प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की भूमिका और स्कूल शिक्षक

कानूनी प्रावधानों (शिक्षा पर कानून के कला 19,2009) के आधार पर एक सामान्य माध्यमिक विद्यालय शिक्षा ज्ञान की सामान्य अवधारणा प्राप्त करने, आवश्यक ज्ञान, महत्वपूर्ण, क्षमताओं एवं आदमों को प्राप्त करने की गारंटी देती है, और जीवन तथा कार्य गतिविधि के लिए विद्यार्थियों और छात्रों को तैयार करती है। यह विद्यार्थियों को शारीरिक एवं बौद्धिक विकास का अवसर प्रदान करता है, स्वस्थ जीवन शैली और नागरिक मूल्यों के आधार पर राष्ट्रीय और विश्वव्यापी मूल्यों द्वारा अपनी नागरिकता जागरूकता बनाता है, और राज्य, परिवार तथा पीढ़ियों के प्रति अपने अधिकारों और कर्तव्यों को परिभाषित करता है। प्राथमिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों, समाज और प्रकृति के बारे में पहला ज्ञान प्रदान करने और बच्चों में सौंदर्य तथा कलात्मक स्वाद विकसित करने के लिए, विद्यार्थियों के मध्य तार्किक सोच तत्वों को पढ़ना, लिखना और गिनना कौशल बनाना है। कानून की कला 19 शिक्षा।

सामान्य (मूल) माध्यमिक शिक्षा की मुख्य भूमिका मौखिक, लेखन एवं संचार कौशल, साथ ही साथ विद्यार्थियों बौद्धिक गतिविधियों को विकसित करना है। यह आधुनिक सूचना-संचार प्रौद्यागिकियों (आईसीटी), परिस्थितियों के मूल्यांकन हेतु कौशल और भविष्य की गतिविधि के निर्देशों हेतु उपयोग के लिए कौशल विकसित करने के लिए शिक्षा कार्यक्रम और विश्व सभ्यता विकास पर लागू विषयों पर ज्ञान और विचार प्रदान करना भी है। पूर्ण

माध्यमिक शिक्षा चक्र के समय छात्र अपनी प्रतिभा और क्षमताओं को महसूस कर सकते हैं, वे स्वतंत्र जीवन की तैयारी प्राप्त करते हैं और अपनी विशेषता का चयन करते हैं, वे सीखते हैं कि कैसे सक्रिय नागरिक बनना है और राष्ट्रीय वैश्विक मूल्यों, मानवाधिकारों एवं स्वतंत्रओं का सम्मान और सहनशीलता, वे आधुनिक आईसीटी तथा अन्य तकनीकी उपकरणों का प्रयोग करने के लिए कौशल विकसित करते हैं, आर्थिक ज्ञान की नींव और एक या अधि क विदेशी भाषाओं में संवाद कैसे करें। व्यावसायिक शिक्षा के संदर्भ में, सामान्य माध्यमिक शिक्षा के आधार पर पहला व्यावसायिक प्रशिक्षण समाज और श्रम बाजार (कला 20) की मांगों के अनुसार विभिन्न कला और व्यवसायों में विशेष कार्य कर्मियों की तैयारी के क्षेत्रों को विभिन्न व्यवसायों के विशेषज्ञों के साथ प्रदान किया जाएगा जो समाज और श्रम बाजार की मांगों के द्वारा माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। शिक्षा पर कानून (2009) निर्दिष्ट नहीं करता है प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की सटीक भूमिका। शिक्षक शिक्षा में प्रमुख हितधारकों के प्रतिनिधियों से एकत्र की गई जानकारी के मुताबिक, प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय हेतु शिक्षकों की भूमिका को निम्नानुसार वर्णित किया जा सकता है।

1. प्राथमिक विद्यालय स्तर पर, शिक्षण विषयों जैसे: भाषा (मातृभाषा), भाषा, शारीरिक शिक्षा, प्राकृतिक इतिहास, सूचना विज्ञान, संगीत, गणित, रूसी (मूल), प्रौद्योगिकी, कला, विदेशी भाषा।

2. माध्यमिक विद्यालय स्तर पर, शिक्षण विषयों जैसे कि मातृभाषा, भाषा, साहित्य, विदेशी भाषा, गणित, सूचना विज्ञान, इतिहास, सामान्य इतिहास, भौतिकी, रसायन शास्त्र, जीवविज्ञान, भूगोल, विश्व का ज्ञान, प्रौद्योगिकी, शारीरिक शिक्षा, संगीत कला।

इसके अतिरिक्त एक प्राथमिक स्कूल शिक्षक को माध्यमिक (मध्यम) और उच्च स्तर पर आगे की शिक्षा के लिए ठोस नींव के साथ विद्यार्थियों को प्रदान करना चाहिए तथा उनके व्यक्तिगत विकास को सुनिश्चित करना चाहिए। प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों की भूमिका भी विद्यार्थियों के व्यक्तिगत गुणों को विकसित करना, उनके मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को प्रस्तुत करना है। माध्यमिक विद्यालय स्तर पर एक शिक्षक का मुख्य कार्य विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त प्रारंभिक ज्ञान और कौशल विकसित करना है, जिससे उन्हें स्वयं को ज्ञान प्राप्त करने के लिए सिखाया जा सके। (सीखने के लिए

सिखाएं)। इस चरण में एक शिक्षक की भूमिका मानवता, देशभक्ति और नागरिकता की भावना में शिक्षित करने के लिए है। शिक्षा मंत्रालय के अनुसार आज के शिक्षक को यह करना चाहिए:

- नैतिक गुण विकसित किया है;
- प्रतिबिंबित करने की क्षमता के साथ रचनात्मक बनें,
- पेशेवर और शैक्षणिक कौशल में महानता हासिल है और नवाचार करने के लिए प्रवण हो;
- शिक्षा और संस्कृति के महत्व को समझें;
- उसके विषय, अध्यापन और मनोविज्ञान का अत्यधिक ज्ञान है;
- एक व्यक्तिगत उन्मुख शिक्षण विधियों का उपयोग करें और लगातार अपने/herintellectual स्तर पर विकसित करने का प्रयास करें।

एक अनुभवी शिक्षक, अपने विषय हेतु ज्ञान के साथ, शैक्षणिक प्रक्रिया के प्रत्येक सदस्य की स्थिति को देखने, छात्र गतिविधियों को व्यवस्थित करने, उनके परिणामों का आकलन और सुधार करने में सक्षम होना चाहिए। शिक्षक वे लोग हैं जो जटिल, विविध और अनिश्चित सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में जीवन की नींव रखने में विशेष भूमिका निभाते हैं। अपने काम में, उन्हें इस प्रकार के जीवन, कई प्रौद्योगिकियों और प्रणालियों की व्यक्तिगत विशेषताओं एवं नई विशेषताओं को ध्यान में रखना चाहिए जिससे छात्रों को नए ज्ञान और कौशल प्राप्त करने में सहायता मिल सके। एक नए समाज की मांग और निरंतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए। वर्तमान में, प्राथमिकता छात्रों को सामाजिक और भावनात्मक समर्थन प्रदान करना, निरंतर शिक्षा के लिए एक अनुकूल वातावरण बनाना और छात्रों को विभिन्न सांस्कृतिक वातावरण में काम करने के लिए प्रशिक्षिण प्रदान है। शिक्षकों को यह सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए कि शिक्षा सभी के लिए सुलभ हो, और उन सभी सीमाओं को दूर करने के लिए जो आयु, क्षमताओं, संस्कृति, भाषा, धर्म, लिंग के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक और भौगोलिक क्षेत्रों के अन्तर्गत मतभेदों में अंतर डालती हैं।

इसके अलावा, शिक्षक पेशे पर दृष्टि पर विचारों का विश्लेषण करते समय और प्रमुख हितधारकों के अन्य प्रतिनिधियों के बीच समाज में इसकी भूमिका

हेतु इस अध्ययन के लिए संपर्क किया गया, निम्नलिखित टिप्पणियों को चित्रित किया जा सकता है:

- शिक्षण पेशे सबसे महत्वपूर्ण और आशाजनक है, क्योंकि शिक्षक सीधे युवा पीढ़ी को शिक्षित करने में सम्मिलित है, जो देश के भविष्य का निर्माण करेगा।
- Generation युवा पीढ़ी के गठन में एक आधुनिक शिक्षक की एक महत्वपूर्ण भूमिका है, जो राष्ट्रीय मूल्यों को बनाए रखते हुए समाज के अग्रिम विकास को रोकती है।
- एक शिक्षक अभ्यास में विभिन्न विषयों में अपने ज्ञान को लागू करने के लिए छात्रों को तैयार करने में सक्षम होना चाहिए।

अंत में, शिक्षकों का काम सामाजिक गतिविधि के साथ निकटता के रूप में माना जाता है। इसका तात्पर्य है कि शिक्षा के आधुनिकीकरण, शिक्षक के पारंपरिक कार्यों (प्रशिक्षण, शिक्षा, विकास सहायता, सीखने के परिणामों का मूल्यांकन, माता-पिता के साथ काम करना आदि) के साथ-साथ उनके पेशेवर कार्यों को अद्यतन किया जा रहा है, जैसे पूर्वानुमान और योजना सामग्री के संदर्भ में और संगठनात्मक दृष्टिकोण द्वारा शिक्षा दोनों। साथ ही, वर्तमान पिरिस्थितियों में, शिक्षकों के भाग पर संचार से संबंधित कार्यों की बढ़ती मांग देखी जा सकती है (सामाजिक वार्तालाप करने की क्षमता, सामाजिक साझेदारी सुनिश्चित करने की क्षमता।)

अच्छी गुणवत्ता शिक्षा का अधिकार

हालांकि दुनिया के कई देशों ने अपेक्षाकृत उच्च प्रारंभिक नामांकन आंकड़े प्राप्त किए हैं, फिर भी वे गरीब प्राथमिक विद्यालय की समापन दर और उच्च ड्रॉप-आउट दरों, विशेष रूप से लड़कियों, विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों और जातीय अल्पसंख्यकों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इससे ज्ञात होता है कि कई समस्याएं शिक्षा की गुणवत्ता, प्रासंगिकता और सीखने से बहिष्कार की कमी से संबंधित हैं। स्कूली शिक्षा/ सीखने और ईएफए लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बाधाओं पर रोक लगाने के बीच एक अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त लिंक है। इसलिए, सरकारों और स्कूलों को स्कूल में होना चाहिए, और नहीं, और स्कूल में रहने वाले बच्चों के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए, परन्तु

NOTES

वहां सफल होने में असमर्थ हैं। इसके अतिरिक्त बच्चे के अधिकारों पर सम्मेलन।

जिसे 192 देशें द्वारा अनुमोदित किया गया है, शिक्षा के सार्वभौमिक पहुंच और अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा के अधिकार दोनों पर बल देता है। इसके अतिरिक्त यह जोर देता है कि बच्चे के सर्वोत्तम हित में क्या है, इस पर विचार करना सभी बच्चों की विविध आवश्यकताओं से वंचित हैं, खासकर शिक्षा का अधिकार। हाल के अनुमानों में तनाव है कि 140 मिलियन से अधिक बच्चे है जो स्कूल से बाहर हैं, बहुसंख्यक लड़कियां और विकलांग बच्चों के साथ हैं। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र शिक्षा के अधिकार पर विशेष संवाददाता शिक्षा प्रणाली में और उसके माध्यम से होने वाली शिक्षा के अधिकार को पूर्ण करने के लिए एक प्रमुख समस्या के रूप में भेदभाव की पहचान करता है। शिक्षा के लिए अधिकार-आधारित दृष्टिकोण लागू करके, इस स्थिति को परिवर्तित किया जा सकता है। इसका मतलब है कि बच्चों को शिक्षा के अधिकार के धारकों के रूप में देखा जाना चाहिए, जो न केवल शिक्षा तक पहुंच का अधिकार है, बल्कि यह भी मानते हैं कि मानव अधिकारों को भी शिक्षा में लागू किया जाना चाहिए और शिक्षा के द्वारा प्रचारित किया जाना चाहिए।

हालांकि, अभ्यास में मानव अधिकारों का वास्तव में क्या अर्थ है, इस धारणा को अधिकांश चिकित्सकों और विशेष रूप से योजनाकारों और शिक्षा मंत्रालयों में निर्णय लेने वालों के लिए स्पष्ट नहीं है। इसके अतिरिक्त नीति और योजना प्रक्रिया में संरचना के रूप में मानव अधिकारों का उपयोग करने की अभी तक एक स्पष्ट स्वीकृति नहीं है। हालांकि, टिकाऊ मानव विकास को प्रापत करने के लिए एक शर्त के रूप में इसके महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ रही है। दरअसल, संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों, अंतर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठनों और द्विपक्षीय दाताओं के मध्य दुनिया भर में बढ़ती प्रवृत्ति है जो विकास सहयोग में मानव अधिकारों के मुख्यधारा की आवश्यकता पर जोर देती है। इसकी जरूरत मुख्यधारा के मानव अधिकार इस तथ्य से निकलते हैं कि किसी भी विकास गतिविधियों और कार्यक्रमों के सफल परिणाम, उनकी विशेष विशेषताओं के बावजूद, साझेदारी, जवाबदेही पर निर्भर हैं, और केवल तभी बनाए जा सकते हैं जब वे लाभार्थियों के स्वामित्व में हों। इस प्रकार, संयुक्त राष्ट्र और द्विविपक्षीय दाताओं और अंतर्राष्ट्रीय गैर

सरकारी संगठनों की बढ़ती संख्या द्वारा प्रदान की गई विकास सहायता के अंतर्निहित घटक के रूप में मानव अधिकार-आधारित दृष्टिकोणों को लागू करने की दिशा में एक स्पष्ट प्रभाव है।

NOTES

समावेशी शिक्षा का अर्थ (Meaning] of Inclusive)

समावेशी शिक्षा एक ऐसी व्यवस्था जो बालकों में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भाषायी और अक्षमताओं के अनुसार भेदभाव न करके समान रूप से स्वीकार करती है। यह भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा को प्राप्य मूल्यों के अनुरूप शिक्षा प्रदान करने में विश्वास करती है। समावेशी शिक्षा से अभिप्राय ऐसी शिक्षा प्रणाली है जिसमें प्रत्येक बालक को चाहे वो विशिष्ट हो या सामान्य बिना किसी भेदभाव के एक साथ, एक ही विद्यालय में सभी आवश्यक तकनीकों व सामग्रियों के साथ उनकी सीखने सिखाने की आवश्यकताओं को पूरा किया जाये।

समावेशित शिक्षा की अवधारणा में ऐसी आदर्श कक्षा की कल्पना की गई है जहाँ प्रत्येक बच्चे की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। विशेष शिक्षा स्कूल की अवधारणा में विशेष शिक्षा सामान्य शिक्षा का एक घटक था जबकि समावेशित शिखा में विशेष शिक्षा समान शिक्षण का ही एक हिस्सा है। समावेशित शिक्षा विशेष शिक्षा की अपेक्षा आगे है। सामाजिक समावेशन विकलांग बच्चों का मौलिक अधिकार है, समावेशित शिक्षा उस दायित्व को पूरा करने का प्रयास है।

समावेशी शिक्षा विशेष शिक्षा का ही विस्तार है। समावेशी शिक्षा की परिकल्पना इस संकल्पना पर आधारित है कि सभी बच्चों के विद्यालयी शिक्षा में समावेशन व्यापक रूप से क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश एवं विस्तृत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक, प्रक्रियाओं के संदर्भ में समझा जाए। समावेशी शिक्षा के समर्थन में भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा को प्राप्य मूलयों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। समावेशी समाज की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत करते हुए हमारा संविधान जाति, वर्ग, धर्म, आय एवं लैंगिक आधा पर किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध करता है। समावेशी शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में बच्चे को सामाजिक, जातिगत, आर्थिक वर्गीय, लैंगिक, शारीरिक एवं मानसिक आधार से अलग देखे जाने की अपेक्षा एक स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है, जिससे विद्यालय में बालकों को

समुचित विकास के वातावरण का सृजन किया जा सके।

समावेशी शिक्षा की परिभाषायें (Definitions of Inclusive Education)

वर्तमान समय में समावेशी शिक्षा समाज के सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने की बात का समर्थन करती है। एक आधार से सर्व शिक्षा जैसे शब्दों का ही रूपान्तरित रूप है जिसके कई उद्देश्य में से एक उद्देश्य है 'विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा' लेकिन दुर्भाग्यवश विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा द्वारा मानते हैं। समावेशी शिक्षा की कुछ प्रचलित परिभाषायें निम्नलिखित हैं-

मित्तल (2006) के अनुसार समावेशी शिक्षा 'बालकों में विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं एवं योग्यताओं (सीखने की गति एवं विधि के अन्तर को ध्यान में रखते हुए) की पहचान करती है तथा उनकी जबावदेही सुनिश्चित करती है।'

ए. बरौलिया के मतानुसार, समावेशी शिक्षा का अर्थ शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए छात्र, शिक्षक, अभिभावक, समुदाय प्रशासन एवं शैक्षिक नीति निर्माताओं के संयुक्त प्रयासों द्वारा है। जिनमें अक्षमता से युक्त सभी प्रकार के छात्रों की शिक्षा सुविधाओं पर विशेष केन्द्रीकरण किया जाता है।

सेवा एवं एंस्कोव (1996) के अनुसार समावेश उस प्रक्रिया का वर्णन करता है। जिससे एक विद्यालय अपनी पाठ्यचर्या के गठन एवं प्रावधान पर पुर्नविचार करके सभी छात्रों को व्यक्ति मानकर उनका प्रत्युत्तर देने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया के द्वारा विद्यालय स्थानीय समुदाय के उन समस्त छात्रों को स्वीकार करने के लिए अपनी क्षमता का विकास करता है जो विद्यालय आना चाहते हैं और इस प्रकार छात्रों को बाहर रखने की आवश्यकता को घटाता है।

स्थिम, पॉवेल, पैटॉन तथा डॉवडी (2011) के अनुसार 'समावेशी शिक्षा एक ऐसी शैक्षिक व्यवस्था एवं अभ्यास से संबंधित है जो सभी बालकों (उनकी क्षमता स्तर से हटकर) को समान शैक्षिक एवं सामाजिक अवसर प्रदान करने के लिए स्वतः प्रयास करती है।'

लिए वैशाखी, ट्रायसिकल, व्हील चेयर, कृत्रिम अंग आदि के कारण चलने-फिरने, बैठने के स्थान एवं उपयुक्त फर्नीचर की व्यवस्था करनी होती है। खेलकूद शारीरिक शिक्षण आदि शारीरिक गतिविधियों में अस्थिबाधित बालक अक्षम होते हैं। यह मॉडल सभी के लिए सामान्य शिक्षा के सिद्धान्त आदि पर आधारित है।

4. **सांस्कृतिक मॉडल** - इस मॉडल में सांस्कृतिक रूप से पृथक बालक असुविधायुक्त तथा वंचित वर्ग के वे बालक आते हैं जहाँ शिक्षा का प्रकाश नहीं पहुँच पाया है या जिनके परिवारों में निरक्षरता, निर्धनता, सांस्कृतिक-सामाजिक रूप से विघटन की स्थिति है। आदिवासी, अनुसूचित जाति, पिछड़ावर्ग, अल्पसंख्यक वर्ग के गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले अनेक परिवरों के बालक इस मॉडल के अंतर्गत आते हैं। अतः सांस्कृतिक रूप से भिन्न बालकों को भी विशेष बालक में परिगणित किया जाता है। अभावग्रस्त स्थिति के कारण तथा शैक्षिक-जागरुकता के अभाव के कारण शताब्दियों से इन बालकों के परिवार अशिक्षा तथा अज्ञान का अंधकार झेलते रहे हैं। ऐसे बालक औसत बुद्धिलब्धि के होते हैं। यदि इन बालकों को सरकारी सहायता, छात्रवृत्ति, निःशुल्क पाठ्यपुस्तकों, निःशुल्क गणवेश (पोशाक, यूनिफॉर्म) निःशुल्क मध्यान्ह भोजन, निःशुल्क आश्रम छात्रावास की सुविधाएं प्रदान की जाएं तो शालाओं में नामांकन एवं बिना शाला त्यागे प्रारंभिक शैक्षणिक स्तर उत्तीर्ण करने में ऐसे बालक सफल हो सकते हैं। समावेशी शिक्षा के लगभग सभी दार्शनिक सिद्धान्त एवं नीतियाँ सांस्कृतिक मॉडल के बालकों के लिए लाभदायक हैं। सबके लिए शिक्षा का लक्ष्य भी इन करोड़ों निर्धन बालकों के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता।

5. **मनोसामाजिक मॉडल**- मनोवैज्ञानिक रूप से तथा सामाजिक रूप से, कुसमायोजित बालक इस मॉडल के अन्तर्गत आते हैं। संवेगात्मक रूप से असंतुलित धीमी गति से सीखने वाले, मंदबुद्धि, वाले अपराधी, स्कूल से भागने वाले, शरारती, सस्यात्मक बालक, मनोसामाजिक मॉडल अंतर्गत आते हैं। समावेशी शिक्षा में इनकी प्रकृति तथा विशेषताओं की पहचान कर उसके अनुरूप मनोवैज्ञानिक व सामाजिक रूप से उपचार की कार्यवाही की जा सकती है। समावेशी शिक्षा के एकीकरण, मुख्य धारा से जोड़ना, वैयक्तिक विभिन्नता की शिक्षा, अभिभावकों से विमर्श,

सर्वांगीण विकास आदि के दार्शनिक सिद्धान्त इस मॉडल में प्रयोग किये जाते हैं।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा प्रणाली की सविस्तार व्याख्या कीजिए।
2. प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की भूमिका एवं स्कूल शिक्षक का वर्णन कीजिए।
3. अच्छी गुणवत्ता शिक्षा के अधिकार का वर्णन कीजिए।
4. समावेशी शिक्षा क्या है? इसकी आवश्यकता एवं महत्व का उल्लेख कीजिए।
5. समावेशी शिक्षा के विभिन्न प्रतिरूपों का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा में मुद्दे एवं प्रवृत्तियों की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
2. समावेशी शिक्षा को परिभाषित कीजिए।
3. समावेशी शिक्षा की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

2 समावेशी, विशेष स्कूलों की पूरकता तथा सामुदायिक शिक्षा

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- विशेष रूप से नेतृत्व के लिए मुद्दें तथा चुनौतियाँ।
- विशेष स्कूलों के बदलते कार्य।
- समावेशन तथा समानता।
- विशेष जरूरतों एवं तनाव।
- कर्मचारियों की भर्ती, रखरखाव तथा विकास करना।
- मुख्य चुनौतियों, रुझान तथा निष्पादन।
- शिक्षा में भाषायी मुद्दें।
- समुदाय सहभागिता आधारित शिक्षा।
- सामुदायिक शिक्षा।
- समाज में समुदाय की सहायक भूमिका।
- समुदाय का उत्तर दायित्व।
- परीक्षापयोगी प्रश्न

उद्देश्य–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- विशेष रूप से नेतृत्व के लिए मुद्दें तथा चुनौतियाँ।
- विशेष स्कूलों के बदलते कार्य।
- समावेशन तथा समानता।
- विशेष जरूरतों एवं तनाव।
- कर्मचारियों की भर्ती, रखरखाव तथा विकास करना।
- मुख्य चुनौतियों, रुझान तथा निष्पादन।
- शिक्षा में भाषायी मुद्दें।
- समुदाय सहभागिता आधारित शिक्षा।
- सामुदायिक शिक्षा।
- समाज में समुदाय की सहायक भूमिका।
- समुदाय का उत्तर दायित्व।

प्राक्कथन

शिक्षा एक मौलिक मानव अधिकार और एक समाज के लिए आधार है। समावेशी शिक्षा उन माध्यमों को प्रदान करती है जिनके लिए सभी के लिए शिक्षा हासिल की जा सकती है। कई सालों से, शिक्षा मंत्रालय सभी समावेशियों के बीच न्यायसंगत पहुंच सुनिश्चित करने तथा सभी शिक्षार्थियों के बीच विविध ता का स्वागत करने के लिए एक समावेशी शिक्षा कार्यक्रम चला रहा है।

कानून और दस्तावेज

समावेशी शिक्षा एक विकसित अवधारणा है और विशेष स्कूलों को संसाधन केन्द्रों में बदलने के लिए प्रस्तावित सुधार राष्ट्रीय स्तर पर और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किए गए निर्णयों तथा प्रतिबद्धताओं की एक श्रृंखला में अगला कदम है। इन निर्णयों और प्रतिबद्धताओं को निम्नलिखित दस्तावेजों में पाया जाना है:

- सलामंका वक्तत्व (1994)
- समावेशी स्कूल बनाना (2002)
- ऑल चिल्ड्रन टू सक्सेड (2005)
- समावेशी एवं विशेष शिक्षा समीक्षा (2005)
- शिक्षा अधिनियम (2006) में संशोधित)

सलामंका वक्तव्य (1994) जिसमें माल्टा एक हस्ताक्षरकर्ता है, अन्य चीजों के साथ विशेष स्कूलों की बदलती भूमिका को रेखांकित करता है। ऐसे स्कूलों को एक के रूप में देखा जाता है:

1. समावेशी स्कूलों के विकास के लिए मूल्यवान संसाधन.... विशेष विद्यालय नियमित स्कूलों में कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण एवं संसाधन केन्द्र के रूप में भी काम कर सकते हैं.. विशेष विद्यालयों या समावेशी विद्यालयों के भीतर इकाइयां विकलांग बच्चों की अपेक्षाकृत छोटी संख्या के लिए सबसे उपयुक्त शिक्षा प्रदान कर सकती हैं नियमित कक्षाओं या स्कूलों में पर्याप्त रूप से सेवा नहीं की जा सकती।

2. समावेशी स्कूलों (2002) पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या नीति के कार्यान्वयन के लिए दिशानिर्देशन-समावेशी स्कूल बनाना यह बताता है कि मौजूदा विशेष

स्कूल एक मूल्यवान तथा अभिन्न अंग बना सकते हैं। अधिक सहायक भूमिका ग्रहण करके समावेशी प्रणाली वे इसलिए मानव तथ सामग्री के केन्द्रों में विकसित किया जाना चाहिए। संसाधन, जहां पेशेवर सलाह मांगी जा सकती है।

3. ऑल चिल्ड्रन टू सक्सेड (2005) के लिए हाइलाइट करता है कि स्कूल के भीतर विशेष स्कूल कैसे शामिल किए जाएंगे। इन स्कूलों से दो गुना सेवा की पेशकश की उम्मीद की जाएगी। पहला होगा छात्रों के साथ गुणवत्ता शिक्षा प्रावधान प्रदान करना होगा। अक्षमता स्कूल का दूसरा कार्य चयन करने के लिए होगा। अक्षमता वाले छात्रों को सेवाएं, लेकिन मुख्यधारा में कौन हैं। इस तरह, विशेष विद्यालय जिन्हें हम आज जानते हैं वे विकसित होंगे संसाधन केन्द्रों के साथ-साथ सेवा प्रदाताओं में।

4. समावेशी और विशेष शिक्षा समीक्षा (2005) इंगित करता है कि: विशेष विद्यालय की मौजूदा स्थापना को पुनर्निर्मित किया जाना चाहिए। संसाध नों केन्द्रों में विकसित।

5. शिक्षा अधिनियम (2006 में संशोधित) अनुच्छेद 45 में बताता है कि यह संसाधन केन्द्र प्रदान करने के लिए राज्य का कर्तव्य होगा, जिसका विशेष भूमिका में व्यक्तिगत व्यक्तियों के लिए प्रावधान सम्मिलित होगा। शैक्षणिक आवश्यकताएं जो इस तरह से होने से ज्यादा लाभान्वित होंगी मुख्यधारा के स्कूलों की तुलना में केन्द्र ऐसे समय के लिए हो सकता है उनकी आवश्यकताओं के आधार पर उपयुक्त है।

उल्लेख की गई सिफारिशों और प्रतिबद्धताओं के आधार पर, विशेष विद्यालयों को संसाधन केन्द्रों में बदलने का लक्ष्य है: सभी छात्रों को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के लिए बेहतर पहुंच के साथ गुणवत्ता शिक्षा प्रदान करना। व्यक्तिगत शैक्षणिक आवश्यकताओं वाले छात्रों की शिक्षा के लिए अभिनव दृष्टिकोण की शुरुआत में उत्प्रेरक के रूप में कार्य करने के लिए पृष्ठभूमि की जानकारी होना।

1989 से, शिक्षा मंत्रालय समावेशी शिक्षा के प्रचार के लिए एक गहन कार्यक्रम चला रहा है। तब से, महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपलब्धियां बनी हैं। इस प्रतिमान शिफ्ट के परिणाम, अन्य चीजों के साथ, देखे जा सकते हैं: माता-पिता का अधिकार यह तय करने का अधिकार है कि उनका बच्चा

NOTES

कौन से स्कूल जाता है; विशेष विद्यालयों में भाग लेने वाले व्यक्तिगत शैक्षिक आवश्यकताओं वाले छात्रों की संख्या में काफी कमी। व्यक्तिगत शैक्षिक आवश्यकताओं में भाग लेने वाले छात्रों की संख्या में वृद्धि मुख्यधारा के स्कूल।

उपर्युक्त का समर्थन करने के लिए, कई पहल की गई और इनमें से निम्नलिखत का उल्लेख कर सकता है:

1. एक स्टेटमेंटिंग मॉडरेटिंग पैनल और अपील बोर्ड की स्थापना जो है विभिन्न क्षेत्रों से पेशेवरों से बना है। पैनलों को संदर्भित करने वाले छात्रों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं सं संबंधित लिखित आकलनों द्वारा उठाए गए मुद्दों के गहन मूल्यांकन में माता-पिता/अभिभावकों और/ या छात्र/ अभिभावक वकालत करने वाले और अन्य पेशवरों के साथ मिलकर कार्य का संचालन कर सकते हैं।

2. कथन के अनुसार पहुंच को सुविधाजनक बनाने के लिए विभिन्न सहायता सेवाओं का प्रावधान, जिसमें सम्मिलित हैं: सुनने के लिए परिध ीय शिक्षक अक्षम तथा दृष्टिहीन रूप से विकलांग; प्रारंभिक हस्तक्षेप शिक्षकों; मुख्यधारा के स्कूलों में छात्रों का समर्थन करने के लिए सीखने के सहायक एलएसए मनो-सामाजिक सेवाएं; ऑटिस्टिक स्पेक्ट्रम सपोर्ट टीम; संचार एवं प्रौद्योगिकी इकाई तक पहुंच; साइन लैंग्वेज दुभाषिया; छात्र सेवा विभाग की स्थापना, जिसमें सामावेशी और विशेष शिक्षा के लिए विशिष्ट कार्यों के साथ सेवा प्रबंधकों जैसे नए पदों की शुरूआत भी शामिल थी, समावेशन समन्वयक (आईएनसीओ) मनोविज्ञान-सामाजिक सेवा क्षेत्र के भीतर काम करने के लिए स्कूलों तथा अन्य संबंधित पेशेवरों के सहयोग से काम करने के लिए। जरूरतों के बयान वाले छात्रों के लिए व्यक्तिगत शैक्षणिक योजना (आईईपी) का परिचय और कार्यान्वयन।

3. विशेष रूप से सहायता सहायकों को सीखने के लिए डिप्लोमा और प्रमाणपत्र स्तर पर विभिन्न पाठ्यक्रमों की स्थापना।

4. स्कूल के सीनियर के लिए विभिन्न सेवा पाठ्यक्रमों तथा संगोष्ठियों का संगठन प्रबंधन दल, शिक्षकों और सीखने के समर्थन में सहायक।

5. सभी छात्रों के लिए पाठ्यचर्या तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए शिक्षकों और सीखने के समर्थन सहायकों को मार्गदर्शन करने के लिए पाठ्यक्रम का प्रावधान है।

6. शिक्षा अधिनियम में कई नीति दस्तावेजों तथा विधायी संशोधनों का प्रकाशन, सभी का लक्ष्य स्कूलों को अधिक समावेशी बनाना है। विशेष रूप से नेतृत्व के लिए मुद्दे एवं चुनौतियां स्कूल विशेष विद्यालयों के नेताओं द्वारा सामना किए जाने वाले कई मुद्दों तथा चुनौतियों के समान हैं जो किसी भी अन्य स्कूल की अगुवाई करते हैं और ऊपर वर्णित मुद्दों को शामिल करते हैं। हालांकि, कुछ ऐसे मुद्दे हैं जो विशेष रूप से विशेष स्कूलों के लिए प्रासंगिक हैं।

विशेष स्कूलों के बदलते कार्य

विशेष विद्यालयों में परिवर्तन जारी रहता है एवं उनके नेताओं को एक बदलती भूमिका का जवाब देने और अपने वर्तमान विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होना चाहिए।

एन्सको एट अल (2003) द्वारा किए गए विशेष विद्यालयों में नेतृत्व तथा प्रबंधन पर साहित्य की समीक्षा ने विशेष परिस्थितियों में उच्च गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करने के लिए विशेष विद्यालयों को सक्षम करने के लिए नेतृत्व की आवश्यकता पर प्रकाश डाला, जबकि साथ ही नई भूमिकांए विकसित की गईं। रेनर एट अल (2005) इसी तरह तर्क देते हैं कि विशेष विद्यालय प्रावधान का एक अनूठा रूप है तथा शैक्षणिक प्रणाली में इसकी जगह जगह विशेष रूप से कमजोर है। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि नेताओं को न केवल अपने कार्यबल को पुनर्निर्मित करने, बल्कि अपने शैक्षिक कार्यों में सुधार करने की चुनौती का पूरा करने की आवश्यकता है।

(उदाहरण के लिए मुख्य रूप से अपने एसईएन विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मुख्यधारा के स्कूलों का समर्थन करने में अधिक समय व्यतीत करना) या चेहरे को बंद कर दिया जाना चाहिए। 2000 के दशक के मध्य में विशेष स्कूलों के पुनर्गठन के अपने अनुभव पर प्रतिबिंबित करते हुए, एशडाउन तथा डार्लिंगटन (2007) कर्मचारियों की तैयारी, टीम निर्माण और प्रत्येक स्तर पर कर्मचारियों के साथ परामर्श के महत्व पर बल देते हैं। एन्सको एट अल (2003) ने सहयोगी टीमों और विभिन्न विषयों के

NOTES

पेशेवरों के साथ प्रभावी साझेदारी और माता-पिता के साथ प्रभावी साझेदारी की आवश्यकता के साथ विशेष रूप से महत्वपूर्ण रूप से सहयोग की पहचान की। उन्होंने देखा कि हेडटेकर के नेता के रूप में देखा जाने वाला साझा नेतृत्व की आवश्यकता है।

उन्होंने यह भी तर्क दिया कि विशेष विद्यार्थियों में नेतृत्व की भूमिका में उन लोगों को संगठनात्मक संस्कृतियों को विकसित करना चाहिए जो प्रयोग तथा सामूहिक समस्या सुलझाने को प्रोत्साहित करते हैं।

बेकार (2009) ने वर्तमान संदर्भ की मुख्य चुनौतियों की पहचान करने के लिए सीखने की कठिनाइयों विकलांगताओं के साथ विद्यार्थियों के लिए विशेष विद्यालयों के नौ प्रमुखों के साथ अपने छोटे अध्ययन पर आकर्षित किया। निरंतर परिवर्तन, निरंतर स्कूल सुधार, वित्त पोषण संबंधी चिंताओं, नौकरशाही और काम एवं निजी जीवन के बीच संतुलन बनाए रखना स्कूल के नेताओं द्वारा उद्धत सभी प्रमुख मुद्दे थे। अनुमानित अवसरों में मुख्य विद्यालयों के स्कूलों के लिए स्कूलों तथा आउटरीच सेवाओं के साथ भागीदारी लिंक शामिल थे। विशेष स्कूलों के हेडटेचर के लिए बेकर की सुझाई गई रणनीतियां निम्नानुसार थीं।

- सुनिश्चित करें कि आपके स्कूल के लिए आपके पास स्पष्ट, व्यक्तिगत दृष्टि है। सहायक सहकर्मियों एवं एक प्रभावी नेतृत्व टीम के साथ अपने आप को घेर लें।
- आपके अनुरूप होने वाले किसी अन्य व्यक्तिगत पेशेवर समर्थन तंत्र का उपयोग करें।
- अपने कर्मचारियों के लिए विशेष निरंतर व्यावसायिक विकास सहायता प्रदान करें ताकि वे आपके विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।
- स्थानीय मुख्यधारा के स्कूलों के साथ साझेदारी में काम करना, उन्हें विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं के साथ अपने विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता करना।
- अवसरों का उपयोग करें, जो भी आप उन्हें समझते हैं जो आपके लिए उपलब्ध हैं और आपके स्कूल एवं समुदाय के लिए आपकी दृष्टि को प्रतिबिंबित करते हैं।

जल निकासी से बचने के लिए सकारात्मक कार्य/जीवन संतुलन बनाए रखें। (बेकर, 2009:195) शैक्षणिक नीति और अभ्यास में बदलावों का जवाब देने के लिए विशेष स्कूल के नेताओं की आवश्यकता अन्य देशों में भी देखी गई है। उदाहरण के लिए, ऑस्ट्रेलिया में, ओब्रायन (2010) ने विशेष विद्यालयों के सफल नेतृत्व के लिए नेतृत्व कौशल, क्षमताओं, ज्ञान और समग्र क्षमता की जांच की और उनके अध्ययन में विशेष स्कूल के प्रिंसिपल के दृष्टिकोण की तूलना की।

पिछले शोध द्वारा जांच की गई मुख्यधारा के प्रिंसिपल के लोग ओब्रायन ने नोट किया गया कि विशेष विद्यालय के प्रधानाध्यापकों ने मुख्यधारा के प्रध ानाध्यापकों की तुलना में व्यक्तिगत और परस्परिक क्षमताओं पर बल दिया। इस बिंदु को बेट्ससन (अवांछित) द्वारा एक चर्चा पत्र में प्रतिबिंबित किया गया है जो बताता है कि विशेष विद्यालयों में नेतृत्व की विशिष्ट विशेषताओं में से एक यह स्वीकार कर रहा है कि विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक तथा व्यवहारिक डोमेन केवल सभी संबोधित किए जा सकते हैं जब प्रभावित डोमेन को भी ध्यान में रखा जाए, संबंध बनाने, बच्चे के चारों ओर प्रावध ान डिजाइन करके, निर्णय लेना।

व्यवहार, न कि व्यक्ति, प्रशंसा की तलाश, निंदा करने और अपरंपरागत एवं चुनौतीपूर्ण संचार तथा व्यवहार के सामने चेहरे को खोने के लिए तैयार होने की तलाश में। विशेष स्कूल के नेताओं के लिए हालिया चुनौती अकादमी की स्थिति के लिए आवेदन करना है या नहीं। यह 2011 में बनाए गए पहले विशेष स्कूल आकादमियों के साथ 2010 में विशेष स्कूलों के लिए उपलब्ध कराया गया था। विशेष विद्यालयों के विभिन्न वित्त पोषण व्यवस्था तथा स्थानीय अधिकारियों के साथ उनके संबंधों ने इसे मस्जिद स्कूलों की तुलना में अधिक मजबूत बनाया गया।

समावेशन और समानता

एशडाउन और डार्लिंगटन (2007) बताते हैं कि सम्मिलित करने के लिए धक्का ने कई विशेष विद्यालयों को व्यापक आबादी की सेवा के साथ अधि क परिवर्तनीय पठिनाइयों के साथ प्रेरित किया है, क्योंकि सबसे अधिक कठिनाइयों वाले लोगों के लिए 'समावेश' नहीं बल्कि 'डबल अलगाव' तक, एक विशेष स्कूल (ओवी, 1987) के भीतर एक विशेष कक्षा में अलग

किया जा रहा है। इससे बचने के लिए विचारशील योजना और अच्छे संसाध नों की आवश्यकता होती है, यह सुनिश्चित करना कि सभी शिक्षकों एवं सहायक कर्मचारियों के पास ज्ञान, कौशल संसाधन हैं जो उन्हें सभी गतिविधि यों, समूहों या वर्गों में सभी विद्यार्थियों को अर्थपूर्ण रूप से सम्मिलित करने की आवश्यकता है।

पुरुष और रेनर (2007) के अध्ययन में गहन और कई सीखने की कठिनाइयों (पीएमएलडी) के साथ विद्यार्थियों के लिए खानपान करने वाले विशेष विद्यालयों के हेडटेक्चर सम्मिलित हैं, ने कहा कि छात्र आबादी की बढ़ती विविधता ने व्यापक, संतुलित तथा प्रासंकिगक पाठ्यक्रम प्रदान करने के सम्बन्ध में विशेष चुनौतियों का सामना किया है, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम। पीएमएलडी के साथ विद्यार्थियों के लिए समावेश अवसरों को विशेष रूप से गरीब माना जाता था, जिसमें पुरुष और रेनर के अध्ययन में एक तिहाई से अधिक हेडटेक्चरों की रिपोर्टिंग पीएमएलडी के साथ अपने विद्यार्थियों के लिए कोई समावेश अवसर नहीं है और अन्य अपने विद्यार्थियों के अल्पसंख्यक के लिए अवसर शामिल करने की रिपोटिंग करते हैं। शोधकर्ताओं ने इवांस का हवाला दिया था।

लंट्स (2002) निष्कर्ष है कि पूरी तरह से समावेशी शैक्षणिक प्रणाली की ओर बढ़ रहा है। धीमा हो जाएगा और कभी हासिल नहीं किया जा सकता। (2002: 12) और टिप्पणी करते हैं कि पीएमएलडी के साथ विद्यार्थियों के संबंध में उनके अध्ययन से निष्कर्ष इस विचार का समर्थन करते हैं। अधि क सकारात्मक, ऑफस्टेड (2009) बारह स्कूलों के उदाहरण प्रदान करता है जो उनके समावेशन के लिए बकाया हैं।

विशेष जरूरतों एवं तनाव

विशेष विद्यालयों में तेजी से विविध और चुनौतीपूर्ण छात्र आबादी नेताओं एवं कर्मचारियों के लिए अतिरिक्त तनाव लाती है। इनमें चुनौतीपूर्ण व्यवहार से निपटना शामिल है। एलन और बर्नेट (2006) विशेष स्कूलों में खतरनाक या कठिन व्यवहार से निपटने के दौरान शारीरिक हस्तक्षेप के विवादित मुद्दे पर चर्चा करते हुए सुझाव देते हैं। कि दुर्व्यवहार के आरोपों के बारे में चिंताओं के जवाब में, हर कीमत पर शारीरिक हस्तक्षेप से बचने के लिए सरल नीति बनाने की प्रवृत्ति है। वे तर्क देते हैं कि यह विशेष विद्यालयों में यथार्थवादी

नहीं है और इसलिए यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि कर्मचारियों के पास उचित प्रशिक्षण तक पहुंच हो। ओब्रायन (2010) ऑस्ट्रेलियाई अध्ययन में यह भी पाया गया कि चुनौतीपूर्ण छात्र व्यवहार को विशेष विद्यालयों द्वारा अपने नेतृत्व व्यवहार को आकार देने में सबसे प्रभावशाली कारकों में से एक माना जाता है, साथ ही एक विशेष स्कूल प्रिंसिपल होने का सबसे चुनौतीपूर्ण पहलू भी माना जाता है। कुछ पर्यवेक्षकों ने विशेष स्कूलों में कर्मचारियों के शारीरिक हिंसा के उच्च स्तर पर टिप्पणी की है। उदाहरण के लिए, 2010 टाइम्स एजुकेशनल एप्लीमेंट आलेख (बार्कर, 2010) ने संख्या के सम्बन्ध में जीएमबी संघ की चिंताओं का हवाला दिया।

विद्यार्थियों द्वारा कर्मचारियों पर चोट की गई, विशेष रूप से विशेष विद्यालयों में समस्या का उच्चारण किया जा रहा है। जटिल स्वास्थ्य आवश्यकताओं वाले विद्यार्थियों के साथ विशेष स्कूलों को जटिल दवा व्यवस्था और प्रोटोकॉल वाले विद्यार्थियों का प्रबंधन करना होता है। छात्र अनुपस्थिति अक्सर औसत से अधिक होती है तथा स्कूलों को अस्पताल या स्वास्थ्य देखभाल सेटिंग में विद्यार्थियों का समर्थन करने की आवश्यकता हो सकती है। मुख्यध ारा के स्कूलों में आमतौर पर एक दुर्लभ घटना, विद्यार्थियों की मृत्यु, कुछ विशेष विद्यालयों में अधिक आम है, जिसके लिए स्कूल के नेताओं को बच्चों और कर्मचारियों दोनों के लिए हानि और शोक के मुद्दों का जवाब देने में सक्षम होना आवश्यक है। विशेष स्कूलों में कर्मचारियों की अनुपस्थिति के लिए कवर की निरंतरता प्रदान करना एक और चुनौती हो सकता है।

टाइम्स एजुकेशनल एप्लीमेंट (मैडर्न, 2009) में आलेख में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि विशेष स्कूलों में विद्यार्थियों द्वारा देखभाल की निरंतरता की आवश्यकता, विशेषज्ञ आपूर्ति शिक्षकों की कमी के साथ मिलकर तथा तथ्य यह है कि बाहरी लोगों को एसईएन/डी के साथ बच्चों को परेशान करने का मतलब है कि विशेष स्कूल के प्रमुख राष्ट्रीय वर्कलोड समझोतों के विपरीत होने के बावजूद कक्षाओं को कवर करने या स्वयं का कवर करने के लिए स्कूल में अन्य शिक्षकों का उपयोग करना पड़ता है।

कर्मचारियों की भर्ती, रखरखाव एवं विकास करना

अच्छी गुणवत्ता वाले कर्मचारियों की भर्ती और प्रतिधारण किसी भी स्कूल नेता के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती है और नेताओं की भर्ती स्वयं एक प्रमुख

मुद्दा है। अमेरिका में विशेषीकृत शिक्षा आबादी में वृद्धि तथा विशेष शिक्षा शिक्षकों (कैग्लर, 2011) की उच्च दुर्घटना दर में बढ़ोतरी से प्रमाणित विशेष शिक्षा शिक्षकों की राष्ट्रीय कमी को बढ़ा दिया गया है। यूके में, उचित प्रशिक्षित विशेषज्ञ शिक्षकों की उपलब्धता और विशेष शिक्षा (उदाहरण के लिए, मिटलर, 2000) के लिए विशेषज्ञ प्रशिक्षण अवसरों की कमी के सम्बन्ध में लंबी चिंताएं रही हैं।

नर और रेनर ने 2007 के अध्ययन से पता चला कि यह अभी भी मामला था, खासकर उन विद्यार्थियों के लिए जो गहन तथा एकाधिकार सीखने की अक्षमता के साथ काम कर रहे थे। उनके निष्कर्षों से संकेत मिलता है कि इस तरह के छात्रों की व्यक्तिगत जरूरतों को पूरा करने के लिए शिक्षण सहायकों की बढ़ती संख्या की भर्ती की जा रही है, लेकिन प्रमुखों ने विशेष रूप से विशेषज्ञ व्यावसायिक चिकित्सक, फिजियोथेरेपिस्ट और भाषण एवं भाषा चिकित्सक से अधिक समर्थन की पहचान की है। गंभीर एवं गहन और कई सीखने की कठिनाईयों वाले विद्यार्थियों के लिए प्रासंगिक अतिरिक्त योग्यता रखने वाले अपेक्षाकृत कुछ शिक्षक थे और प्रमुख शिक्षकों के अनुपात ने चिंता व्यक्त की थी विशेषज्ञ प्रारंभिक प्रशिक्षण और उच्च गुणवत्ता वाले पेशेवर कवाीस की कमी के सम्बन्ध में विशिष्ट शिक्षण विकलांगता (एसएलडी) पीएमएलडी के लिए प्रासंगिक अवसर। शिक्षक भर्ती और प्रतिधारणा और कथित उम्र बढ़ने कर्मचारियों की आबादी के प्रभावों के बारे में चिंता भी व्यक्त की गई थी। बेरी एट अल (2011) ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषज्ञ शिक्षकों की भर्ती की अतिरिक्त चुनौतियों को उजागर करता है। बेट्ससन (अवांछित) बताते हैं कि विशेष विद्यालयों में शिक्षकों अक्सर अल्पसंख्यक स्टाफ समूह होते हैं तथा इससे स्कूल के आचारों के लिए नेतृत्व प्रभाव और मानकों के लिए ड्राइव, पेशेवर सीखने की जरूरतें, मुख्यधारा के प्रदर्शन और मानदंडों एवं अंतर-एजेंसी के संपर्क में कर्मचारियों को बनाए रखना पड़ सकता है। समझ और सहयोग। वह विशेष तर्क देता है।

स्कूल के नेताओं को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि वे सीखने और देखभाल के कार्यों के बीच प्रतिस्पर्धा स्थापित नहीं कर रहे हैं, यह दर्शाकर कि वे दोनों मूल्यवान हैं। साथ ही विशेषज्ञ शिक्षकों अन्य कर्मचारियों की भर्ती और रखरखाव, विशेष स्कूल के नेताओं को भविष्य के विकास को सुनिश्चित करने के लिए उत्तराधिकार योजना की चुनौती भी है।

शीर्ष गुणवत्ता वाले लोगों को डेडशिप में आकर्षित करना सभी शैक्षणिक सेटिंग्स में एक चुनौती हो सकती है। दो अध्ययन सामान्य रूप से हेडशिप की गिरावट की आकर्षकता का विवरण देते हैं। एनसीएसएल (2006) में कोई भी उम्मीदवार नहीं होने के कारण लगभग एक तिहाई प्राथमिक तथा माध्यमिक हेडशिप का पुन: विज्ञापन किया गया। इसने 55 से अधिक उम्र के प्रमुख शिक्षकों के साथ जनसांख्यिकीय कारणों का सुझाव दिया एवं अगली पीढ़ी में शिक्षकों की औसत संख्या से कम, जिससे नए स्कूल के नेता आम तौर पर उभरे। स्मिथर्स एंड रॉबिन्सन (2007) ने अन्य महत्वपूर्ण कारकों का सुझाव दिया जो हेडशिप को कम आकर्षक बनाते हैं, वर्कलोड सहित बहुत से सरकारी पहलों, अत्यधिक जवाबदेही, खराब ऑफस्टेड के द्वारा बर्खास्तगी की कमजोरी रिपोर्ट और अपर्याप्त वेतन अंतर। रोड्स एंड ब्रुंड्रेट (2006) के एक सर्वेक्षण में शिक्षक के कैरियर में शुरूआती नेतृत्व प्रतिभा की पहचान में प्रो-गतिविधि का थोड़ा सबूत मिला। उन्होंने व्यक्तिगत शिक्षकों के साथ नेतृत्व उत्तराधिकार के लिए बाधा के रूप में व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक आत्मविश्वास की पहचान की एवं कहा कि निर्णय लेने वाले, आमतौर पर सिर द्वारा अगली भूमिका और संरक्षण के लिए सक्रिय तैयारी के बीच संतुलन होना आवश्यक है। सर्वेक्षण किए गए प्रमुखों ने घर के नेतृत्व के विकास के लिए कई प्रभावी तंत्र की पहचान की: सशक्तिकरण, समर्थन, नियंत्रित जोखिम लेने, परियोजना के काम के द्वारा जवाबदेही, कार्य छायांकन और नेटवर्किंग की एक डिग्री। यद्यपि प्रमुख शिक्षकों को प्रेरणा और प्रतिध ारण में सहायता करने के लिए विचार किए गए कारकों से अवगत था, लेकिन वे अपने स्कूलों में नेतृत्व प्रतिधारण को प्रोत्साहित करने के लिए उनकी नेतृत्व शैली तथा पेशेवर संस्कृति की भूमिका के रूप में अस्पष्ट थे। नेशनल कॉलेज के उत्तराधिकार योजना कार्यक्रम का एक प्रमुख एवं रणनीतियों को विकसित करने के लिए प्रमुखों और शासी निकायों को प्रोत्साहित कर रहा है।

बुश (2011) ने उत्तराधिकार योजना को कमजोर करने वाले आठ मुख्य कारकों की पहचान की: क्षमता विशेष रूप से समय की कमी; वित्त पोषण तथा बजट; एलए की प्रतिष्ठा या ब्रांड; हेडशिप की धारणा-विशेष रूप से भारी वर्कलोड एनपीक्यूएच की अनिवार्य प्रकृति (हालांकि यह अब अनिवार्य नहीं है); और कुछ स्थानीय अधिकारियों में नेतृत्व के नए मॉडल के प्रतिरोध

सीनियर स्टाफ (हेड, डेप्युटीज और सहायक हेड) की भर्ती विशेष स्कूलों के लिए विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण हो सकती है क्योंकि नेताओं को सामान्य नेतृत्व दक्षताओं एवं विशेष ज्ञान सेटिंग के लिए विशेषज्ञ ज्ञान और कौशल दोनों की आवश्यकता होती है। इन कारकों का मतलब है कि विशेष स्कूलों के लिए उत्तराधिकार योजना विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो सकती है।

हालांकि तथ्य यह है कि विशेष विद्यालयों में डिप्टी हेड मुख्यधारा के स्कूलों की तुलना में पुराने होते हैं और एक ही समय में सेवानिवृत्ति होने की संभावना है क्योंकि मुख्य शिक्षक एक विशेष मुद्दा है। उत्तराधिकार योजना के मुद्दे से संबंधित वर्तमान तथा संभावित विशेष स्कूल के नेताओं दोनों के लिए सतत व्यावसायिक विकास की भूमिका है। शॉ (2006) से पता चलता है कि विशेष विद्यालयों के लिए नेतृत्व विकास में सामान्य तथा विशेषज्ञ विकास दोनों सम्मिलित होना आवश्यक है। विशेष स्कूल के नेताओं के उनके सर्वेक्षण में पाया गया कि उत्तरदाताओं में से संदर्भ विशिष्ट प्रोग्राम पर सामान्य व्यावसायिक विकास की सराहना की।

प्रभावी विकास को निर्धारित करने में नेतृत्व विकास को और अधिक महत्वपूर्ण माना गया था प्रबंधन प्रशिक्षण से हेडशिप तथा विशेष जरूरत प्रशिक्षण से ज्यादा महत्वपूर्ण है। हालांकि, शॉ के अध्ययन ने निष्कर्ष निकाला कि संदर्भ विशिष्ट मुद्दों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है एवं इसलिए जेनेरिक नेतृत्व कार्यक्रमों पर विशेष विद्यालयों के प्रतिभागियों को सलाह, नेटवर्किंग और सहकर्मी सीखने वाले समूहों के द्वारा अतिरिक्त मॉड्यूल या प्रयोगात्मक शिक्षा की पेशकश की जानी चाहिए क्योंकि अन्य सभी प्रतिभागियों को आम जमीन मिलना मुश्किल है मुख्यधारा के स्कूलों से हैं। परामर्श तथा कोचिंग का महत्व विशेष स्कूल कर्मचारियों के लिए महत्वपूर्ण के रूप में पहचान गया है।

उदाहरण के लिए अब (2009) एक विशेष स्कूल में कोचिंग के अनुभव का वर्णन करता है और तर्क देता है कि शिक्षकों एवं सहायक कर्मचारियों को उनके कौशल विकसित करने और अधिक मल्यवान महसूस करने के लिए यह एक उपयोगी तरीका है। कागलर (2011) अमेरिकी अध्ययन ने सुझाव दिया कि महत्वपूर्ण कारक शिक्षक प्रेरण कार्यक्रम, प्रशासनिक सहायता, एवं शिक्षक सलाहकार थे। समावेशन के सिद्धांतों को मजबूत करने के लिए क्षेत्र

विशिष्ट व्यावसायिक विकास भी महत्वपूर्ण हो सकता है। माले (2011) ने विशेष और समावेशी शिक्षा में मास्टर कार्यक्रम के मूल्यांकन से संकेत दिया कि शुरुआत में की तुलना में प्रतिभागियों के मॉड्यूल के अंत में सम्मिलित होने की दिशा में अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण थे।

मुख्य चुनौतियों, रुझान तथा निष्पादन

शिक्षक शिक्षा की वर्तमान ताकत एवं कमजोरियां

प्रमुख मजबूत पक्ष

शिक्षक शिक्षा के क्षेत में सकारात्मक विकास में से एक 2005 में बोलोग्ना प्रक्रिया में शामिल हो रहा था। उच्च शिक्षा की यूरोपीय प्रणाली के साथ एकीकरण की प्रक्रिया में, विशेषज्ञ शिक्षा में तीन-स्तरीय प्रणाली की शुरूआत की दिशा में कार्यवाही की गई थी, छात्रों एवं शिक्षकों की गतिशीलता, डिप्लोमा तथा प्रमाण पत्र, वयस्क शिक्षा और अन्य क्षेत्रों की मान्यता। बोलोग्ना प्रक्रिया के तहत प्रतिबद्धताओं और 2006-2010.115 के लिए गतिविधियों की योजना के संबंध में मानक दस्तावेज विकसित करने के लिए एक कार्यकारी समूह की स्थापना की गई थी।

साथ ही, 2009 में शिक्षा के कानून के साथ-साथ संबंधित नियमों और विनियमों को शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए बहुत महत्व है। नए कानूनी ढांचे के अन्तर्गत निम्नलिखित चरणों को प्रभावी माना जा सकात है:

- दूरस्थ शिक्षा का उपयोग।
- शिक्षा के मुक्त रूपो को अपनाना (बाहरी, rusl eksternatura);
- डॉक्टरेट स्तर पर अकादमिक डिग्री परिभाषित करना।
- आगे की शिक्षा की स्थिति का स्पष्टीकरण।

शिक्षा शिक्षकों की गुणवत्ता में सुधार करने के उद्देश्य से सार्वजनिक शिक्षा रणनीति विकसित की गई है। निपटने में समस्याएं पहचाने जाते हैं और विशिष्ट कार्यों से सम्बन्धित होते हैं। उदाहरण के लिए स्कूलों के लिए तकनीकी सहायता की समस्या का विस्तार से अध्ययन किया गया था। स्कूलों

में, आईसीटी कौशल केवल 1% शिक्षकों के पास थे और 1.5% स्कूल इंटरनेट से जुड़े थे। इस मुद्दे को हल करने के लिए, सरकारी अनुमोदित कार्यक्रम शिक्षकों, कंप्यूटरों एवं स्कूलों के लिए इंटरनेट पहुंच, और अन्य देशों से जांच की गई प्रथाओ के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं। ध ारा 4.3 में कई अन्य उपलब्धियों का भी उल्लेख किया गया है।

इस अध्ययन में पहचाने गए प्रारंभिक (पूर्व सेवा) शिक्षक शिक्षा के क्षेत्रों में मुख्य चुनौतियों में सम्मिलित हैं:

- शिक्षक-चिकित्सकों के लिए प्रशिक्षण प्रदान करने वाले विषयों के लिए समर्पित बुनियादी शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों के भीतर बहुत कम घंटों; प्राथमिक शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों में शिक्षण अभ्यास के लिए अपर्याप्त ध्यान:
- शिक्षक शिक्षा के प्रारंभिक (मूल) कार्यक्रमों के बीच संबंध की कमी तथा पेशेवर विकास कार्यक्रम, प्री-सर्विस पाठ्यक्रम और नए स्कूल पाठ्यक्रम के बीच अंतर।
- डबल विशेषज्ञता में कमजोर शिक्षा।
- जूनियर विशेषज्ञों के लिए स्नातक की डिग्री के लिए अल्पकालिक प्रशिक्षण में सुधार के लिए कार्यक्रमों की कमी।
- एक शिक्षण नौकरी के साथ प्रदान किए गए सालाना तैयार शिक्षकों और शिक्षकों की संख्या के बीच एक तेज विसंगति, और नतीजतन, शिक्षक शिक्षा के लिए आवंटित संसाधनों का अक्षम उपयोग।
- शिक्षक शिक्षा संस्थानों में बहुमत में गुणवत्ता आश्वासन प्रणाली की कमी एवं उनकी गतिविधियों में पारदर्शिता के सिद्धांत के साथ अपर्याप्त अनुपालन।
- शिक्षक प्रमाणन और प्रमाणीकरण प्रणाली की कमी, आंतरिक मूल्यांकन विधियों की ओर प्राथमिकता और तृतीय पक्ष निर्धारण तंत्र की कमी, प्राथमिक शिक्षक शिक्षा में मुख्य रूप से सैद्धांतिक छात्र तैयारी का मूल्यांकन, शिक्षक के लिए आवश्यक उनके कौशल और ज्ञान का परीक्षण करने के लिए ध्यान देने की कमी के साथ।

- विश्वविद्यालयों और स्कूलों एवं उनकी संयुक्त गतिविधियों के बीच संबंध स्थापित करने के लिए एक तंत्र की कमी, इसलिए व्यक्तिगत संस्थानों के बीच कमजोर संबंध और संयुक्त कार्यक्रमों के कार्यान्वयन; प्राथमिक शिक्षक शिक्षा में माध्यमिक विद्यालयाके की अपर्याप्त भागीदारी।
- चल रहे सुधारों में सुधार के सैद्धांतिक मॉडल की कमी में उच्च शिक्षा संस्थानों के अध्यापन विभागों की कमजोर भागीदारी।
- प्रशिक्षण शिक्षक शिक्षा की प्रक्रिया में तथा इसके आवश्यक शर्तों को बनाने में पेशेवर शिक्षकों संगठनों की कमजोर भागीदारी।
- पेशेवर विकास में केवल शैक्षणिक कार्यकर्ताओं के प्रबंधन के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का संगठन, इसलिए बैचलर और परास्नातक कार्यक्रमों के भीतर शिक्षा प्रबंधन में विशेषज्ञों को तैयार करने और प्रारंभिक शिक्षक शिक्षा स्तर पर शिक्षा प्रबंधन में विषयों की कमी के लिए प्रशिक्षण की कमी; शिक्षा के पबंधन पर कोई शोध नहीं; शिक्षक शिक्षा संस्थानों में सामग्री एवं तकनीकी आधार के अपर्याप्त स्तर के साथ ही मानव संसाध न क्षमता।

कुछ कमजोरियां भी सेवा में शिक्षक शिक्षा और शिक्षकों पुन: प्रशिक्षण के क्षेत्र में होती हैं। विशिष्ट समस्याओं में सम्मिलित हैं–

- सेवा प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है;
- प्रशिक्षकों के बीच पर्याप्त पेशवरता तथा कौशल की कमी;
- शिक्षकों के बीच रूढ़िवादी सोच;
- सेवा प्रशिक्षण और पुन: प्रशिक्षण संस्थानों की कमजोर सामग्री, तकनीकी एवं शिक्षण केन्द्र;
- आईसीटी और निम्न स्तर की जानकारी का सीमित उपयोग;
- निगरानी और मूल्यांकन तंत्र लागू नहीं होते हैं और शिक्षकों की आवश्यकताओं का उचित मूल्यांकन नहीं किया जाता है;

- सेवा प्रशिक्षण संगठनों द्वारा आदेश प्रस्ताव के सिद्धांत का पालन नहीं करना;
- वैल्पिक कार्यक्रम लागू नहीं होते हैं और कार्यक्रम के लिए ग्राहक की आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा जाता है;
- सेवा संरचनाओं (विधिवत, शिक्षण, मानव संसाधन सेवाओं) के कार्य जो बीमा प्रशिक्षण को व्यवस्थित करते हैं, विनियमित नहीं होते हैं और इन-सर्विस प्रशिक्षण से सम्बन्धित वैज्ञानिक शोध आयोजित नहीं किए जाते हैं;
- सेवा में प्रशिक्षण -प्रमाणन - प्रोत्साहन तंत्र लागू नहीं है;
- सेवा प्रशिक्षण का संगठन प्रमुख रूप से सैद्धांतिक ज्ञान पर आधारित है, और शिक्षण तकनीकों पर थोड़ा ध्यान दिया जाता है।
- शिक्षक औसत साप्ताहिक वर्कलोड की छोटी राशि, शिक्षक के अनुपात में कमी के परिणामस्वरूप (लगभग 1/10);
- क्षेत्र में स्थानीय पहलों की कमी के कारण शिक्षक पेशेवर संघों की सीमित संख्या तथा सुधार के शीर्ष-नीचे दृष्टिकोण।

उपर्युक्त समस्याओं के फलस्वरूप युवा शिक्षक पेशेवर विकास के निम्न स्तर के कारण स्कूलों में नई पहल की जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार नहीं हैं।

कार्यक्रम (उदाहरण के लिए प्राथमिक शिक्षक के लिए नया पाठ्यक्रम)। स्कूल-आधारित चल रहे शिक्षक पेशेवर विकास की अवधारणा भी अविकसित है तथा शिक्षकों के व्यावसायिक विकास के तंत्र के रूप में स्कूलों में शिक्षक कार्य समूह शुरू किए जाने चाहिए।

इसके अतिरिक्त सेवा प्रशिक्षण और पुनः प्रशिक्षण के मामले में विश्व अभ्यास के अनुसार तैयार समकालीन मॉडल और तंत्र कुशलता से लागू नहीं होते हैं। वर्तान सेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षकों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करते हैं और शिक्षकों को इन-सर्विस प्रशिक्षण के लिए अपने परिणामों के आधार पर प्रोत्साहित नहीं किया जाता है। ये मुख्य कारणों में से हैं क्यों इन-सर्विस प्रशिक्षण के लिए अपने परिणामों के आधार पर प्रोत्साहित नहीं किया जाता है। ये मुख्य कारणों में से हैं क्यों परिणाम गुणवत्ता के दृष्टिकोण

से संतोषजनक नहीं है। रीट्रेनिंग के गलत संगठन के कारण, शिक्षा में शामिल शिक्षक अपने पेशे के लिए आवश्यक ज्ञान तथा कौशल प्राप्त नहीं करते हैं। नतीजतन, उनके व्यावसायिकता का स्तर कम रहता है, जो बदले में माता-पिता और समाज के बीच असंतोष उत्पन्न करता है।

1. राष्ट्रीय और यूरोपीय स्तर पर आगे की नीति कार्रवाई की आवश्यकता

शिक्षक शिक्षा में सुधार और लोकतांत्रिककरण की दिशा में किए गए कार्यों को राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर और समर्थन की आवश्यकता है। यूरोपीय मानकों के लिए उच्च शिक्षा प्रणाली को समायोजित करने के लिए, सेवा प्रशिक्षण के लिए एक नया पाठ्यक्रम विकसित किया ना चाहिए, तथा दूरस्थ शिक्षा अभ्यास का विस्तार किया जाना चाहिए।

अधिक अंतरराष्ट्रीय विशेषज्ञों और संगठनों को आगे नीति बनाने की प्रक्रियाओं में सम्मिलित होना चाहिए। ई-लर्निंग, पर्याप्त अप-टू-डेट शैक्षणिक सामग्री तथा विजुअल एड्स की भी आवश्यकता है।

सामान्य रूप से, अधिक व्यवस्थित और व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। अधिकांश पहली पायलटिंग चरण पर हैं और उनमें कानूनी दृष्टि से संस्थागतकरण के प्रभावशीलता और तरीकों के विश्लेषण की कमी है। गैर सरकारी संगठनों द्वारा की जाने वाली प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण जैसे पायलट परियोजनाओं का मूल्यांकन देशव्यापी अनुप्रयोगों के लिए किया जाना चाहिए। जबकि वर्तमान प्रक्रिया में तथा सुधार लाने के लिए कुछ प्रक्रियाएँ पहले ही शुरू हो चुकी हैं (उदाहरण के लिए, गैर-निजी प्रदाताओं के लिए मान्यता नीति, मानकों तथा सेवा की गुणवत्ता की निगरानी, मॉड्यूलर प्री-सर्विस शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रमों की शुरूआत)

राष्ट्रीय स्तर पर आगे की नीति कार्रवाई की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए:

सभी स्तरों पर शिक्षा को समझने के लिए शिक्षा के लिए एक सरल ज्ञान संचरण से दूर जाना चाहिए;

सभी स्तरों पर शिक्षक शिक्षा में मानकों की स्थापना की जानी चाहिए तथा आत्मविश्वास को बहाल करने और बनाए रखने के लिए सभी गतिविधियों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए;

NOTES

सेंटर फॉर एप्लाइड रिसर्च को पायलट प्रोजेक्ट के रूप में बनाया जाना चाहिए ताकि शिक्षा उपायों नामक शिक्षा के नए अध्ययन के निर्माण और समर्थन के लिए कई तरीकों को समझने के लिए शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जा सके;

प्री-सर्विस, इन-सर्विस और रीट्रेनिंग की राष्ट्रीय प्रणाली को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए, लेकिन कमजोर युग्मित प्रणालियों के रूप में जो स्थानीय विविधता, रचनात्मकता तथा व्यक्तिगत वरीयता की अनुमति देते हैं;

शिक्षण के पहले वर्षों के दौरान सभी नए योग्य शिक्षकों को विशेष रूप से लक्षित इन-सर्विस प्रशिक्षण की पेशकश की जानी चाहिए;

विधियों के केंद्रों और स्कूलों द्वारा दी गई सलाह पर शिक्षकों को उनकी प्राथमिकताओं के अनुसार सेवा प्रशिक्षण में भाग लेने का विकल्प दिया जाना चाहिए था;

- सेवा में अनुभव को परास्नातमक डिग्री के साथ संयुक्त बिंदु प्रणाली के द्वारा पहचाना जाना चाहिए;

सेवा के अवसरों का नक्शा स्कूलों और उच्च शिक्षा संस्थानों के बीच बातचीत के माध्यम से बढ़ाया जाना चाहिए;

स्कूल आधारित चल रहे शिक्षक पेशेवर विकास की अवधारणा विकसित की जानी चाहिए;

शिक्षक पेशेवर विकास के तंत्र के रूप में स्कूल में शिक्षक कार्य समूह पेश किए जाने चाहिए।

इन-सेवा प्रदाताओं के लिए सुविधाएं तथा उपकरण में सुधार किया जाना चाहिए;

दीर्घकालिक, प्रशिक्षण आवश्यकताओं की भविष्यवाणी के लिए विज्ञान आधारित तंत्र विकसित किया जाना चाहिए;

उच्च शिक्षा के संस्थानों को मार्गदर्शन के साथ मौजूदा संसाधनों से गुणवत्ता आश्वासन की अपनी योजनाएं पेश करनी चाहिए;

ग्रामीण स्कूलो में काम करने के लिए शिक्षकों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

संस्थागत समर्थन के रूप में स्कूल आधारित परार्मा पेश किया जाना चाहिए, तथा

अधिक उन्नति देशों में प्रशिक्षुओं को भेजने की बजाय शिक्षा नींव से मास्टर डिग्री प्रदान करने के लिए अपनी क्षमता विकसित करने पर ध्यान देना चाहिए।

अंत में, पूर्वी साझेदारी पहल के द्वारा यूरोपीय संघ शैक्षिक प्रक्रिया में सुधार और शिक्षा में नई तकनीकों और नवाचारों के गहन परिचयर के साथ-साथ ईएपी और यूरोपीय विश्वविद्यालयों के बीच अनुभव का आदान-प्रदान करने के उद्देश्य से साझेदार देशों में परियोजनाओं का समर्थन कर सकता।

शिक्षा में भाषायी मुद्दे –

सर्वप्रथम राधाकृष्णन आयोग ने सुझाव दिया कि किस स्तर पर कितनी भाषाएँ पढ़ाई जाएँ। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं –

1. माध्यममिक स्तर पर प्रादेशिक भाषा, राष्ट्रभाषा एवं संघीय हिन्दी और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा एवं सहसंघीय भाषा अंग्रेजी आदि का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए–
2. यह तभी सम्भव होगा जब क्षेत्रीय भाषाओं तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी का उचित विकास किया जाए। सरकार को इन भाषाओं के विकास के लिए कठिन परिश्रम करना चाहिए।

लेकिन जैसे ही सुझाव प्रस्तुत किये गए हिन्दी प्रेमी स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी को अनिवार्यता पर रोक लगाने लगे तथा अधिकांश दक्षिण भारत के लोग राष्ट्र-भाषा हिन्दी की अनिवार्यता का विरोध करने लगे। इन सुझावों में हिन्दी भाषी बच्चों को केवल दो भाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक था और अहिन्दी भाषी बच्चों को तीन भाषाओं का। दक्षिण भारत के लोगों को यह डर था कि केवल हिन्दी संघीय भाषा बन गई तो फिर उनका संघीय सेवाओं में प्रवेश वर्जित हो जायेगा।

तभी सन् 1952 में मुदालियर आयोग की नियुक्ति की गई। इस आयोग ने भाशा सम्बन्धी समस्या समाधान के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये–

1. हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में महत्व दिया जाना चाहिए। सम्पूर्ण देश में निम्न माध्यमिक (उच्च प्राथमिक) स्तर (कक्षा 6 से 8) पर राष्ट्रभाषा हिन्दी का अनिवार्य रूप से अध्ययन कराया जाए।
2. निम्न माध्यमिक स्तर पर दो भाषाओं का अध्यन आवश्यक होना चाहिए–
   (i) अहिन्दी राज्यों में प्रादेशिक भाषा तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी।
   (ii) हिन्दी राज्यों में प्रादेशिक भाषा हिन्दी और अन्य कोई भारतीय भाषा।
3. माध्यमिक स्तर पर भी दो ही भाषाओं का अध्ययन कराया जाए।
   (i) अहिन्दी राज्यों में प्रादेशिक भाषा एवं हिन्दी अथवा कोई अन्य भारतीय भाषा अथवा अंग्रेजी, अन्य कोई यूरोपीय भाषा।
   (ii) हिन्दी राज्यों में प्रादेशिक भाषा हिन्दी और अन्य कोई भारतीय भाषा अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषा।

लेकिन इन सुझावों को किसी ने नहीं माना। हिन्दी राज्यों में अन्य किसी भारतीय भाषा के अध्ययन को व्यर्थ समझा गया। अहिन्दी राज्यों में राष्ट्रभाषा हिन्दी को अनिवार्य करना दूरगामी योजना माना। यही कारण है कि माध्यमिक स्तर पर भाषाओं के अध्ययन को अधिकांश स्थिति वही थी जो अंग्रेजी शासनकाल में थी।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (1956) ने इस समस्या पर गहन अध्ययन करते हुए इसकी समस्या समाधान के लिए 'त्रिभाषा सूत्र' प्रस्तुत किया। सन् 1957 में भारतीय सरकार ने इस सूत्र को अपनी स्वीकृति प्रदान की। लेकिन इसे लागू करने में विभिन्न समस्याएँ थीं, अतः 1961 में मुख्यमन्त्रियों के सम्मेलन में इस त्रिभाषा सूत्र को अन्तिम प्रदानता दी गई जो इस प्रकार थी–

माध्यमिक स्तर पर प्रत्येक विद्यार्थी को तीन भाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक होगा–

1. मातृ भाषा (प्रादेशिक भाषा)

2. राष्ट्रभाषा हिन्दी (अहिन्दी क्षेत्रों में) कोई अन्य स्वीकृत भारतीय भाषा (हिन्दी क्षेत्रों में)

3. अंग्रेजी अथवा कोई अन्य यूरोपीय भाषा।

त्रिभाषा के निम्न तीन उद्देय थे –

1. प्रान्तीय भाषाओं का विकास करना।

2. राष्ट्रभाषा हिन्दी को सम्पर्क एवं संघीय भाषा बनाना।

3. राष्ट्रीय एकता तथा अन्तर्राज्यीय संवाद।

कुछ विद्वानों ने त्रिभाषा सूत्र के समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिये–

1. यह देश में उत्पन्न भाषायी समस्या का उपयुक्त समाधान है, इसके द्वारा प्रान्तीय भाषाओं तथा राष्ट्रभाशा हिन्दी का विकास होगा।

2. अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी और हिन्दी क्षेत्रों में किसी अन्य स्वीकृत भारतीय भाषाओं के अध्ययन द्वारा राष्ट्रीय एकता का विकास तथा अन्तर्राज्यीय संवाद सम्भव होगा।

3. अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी तथा किसी अन्य यूरोपीय भाषा के अध्ययन द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के विकास में सहायता प्राप्त होगी।

4. यह सूत्र शिक्षा द्वारा समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है लेकिन अधि कांश राज्यों में इसका विरोध हुआ।

इस सम्बन्ध में कुछ तर्क प्रस्तुत थे–

1. माध्यमिक स्तर के छात्रों के लिए तीन भाषाओं का अध्ययन अनावश्यक है। ऐसा किसी देश में नहीं है।

2. हिन्दी भाषा व्यक्तियों का मत था कि यदि बच्चे कोई अन्य भारतीय भाषा सीख लेते हैं तो इससे उन्हें क्या लाभ होगा। जब उसका प्रयोग ही नहीं होगा तो वह स्वयं विस्मरण हो जाएगी।

3. अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियों का कहना था कि हिन्दी उन पर लादी जा रही है।

4. अहिन्दी भाषा क्षेत्रों के व्यक्तियों को यह डर था कि कहीं हिन्दी संघीय भाषा हो जाती है तो फिर संघीय सेवा में उनका मुश्किल होगा।
5. कुछ शिक्षाविदों का मानना है कि 70% बच्चे माध्यमिक स्तर के बाद उच्च शिक्षा में प्रवेश नहीं लेते, क्योंकि उन्हें अंग्रेजी अथवा अन्य कोई यूरोप भाषा के अध्ययन की कोई आवश्यकता नहीं है।

कुछ शिक्षा शास्त्रियों के अनुसार अधिकांश छात्र माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी भाषा में ही अनुत्तीर्ण होते हैं। इस प्रकार अपव्यय तथा अवरोधन दोनों होते हैं क्योंकि अपव्यय इसलिए कि अंग्रेजी के भय से छात्र बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं और अवरोधन इसलिए कि फेल होने वाले बच्चों को कक्षा में एक से अधिक वर्ष लगता है।

अत: परिणाम यह हुआ कि त्रिभाषा सूत्र को मुख्यमन्त्री ही अपने प्रान्तों में लागू नहीं कर पाए तथा समस्या यथावत बनी रही। तभी 1964 में कोठारी आयोग का गठन हुआ।

आयोग ने अपना प्रतिवेदन 1966 में प्रस्तुत किया। आयोग ने त्रिभाया सूत्र में कुछ परिवर्तन का सुझाव दिया जो निम्नलिखित हैं –

1. प्राथमिक स्तर पर केवल प्रादेशिक भाषा का अध्ययन अनिवार्य होगा।
2. उच्च स्तर पर दो भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य होगा–

   (i) प्रादेशिक भाषा

   (ii) हिन्दी एवं अंग्रेजी।
3. माध्यमिक स्तर पर तीन भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य होगा–

   (i) प्रादेशिक भाषा

   (ii) हिन्दी अथवा अंग्रेजी

   (iii) कोई आधुनिक भारतीय भाषा अथवा आधुनिक यूरोपीय भाषा जो (i) तथा (ii) में न ली गई हो।

इस प्रकार त्रिभाषा सूत्र का मुख्य उद्देश्य देश के सभी लोगों को राष्ट्र भाषा हिन्दी का ज्ञान कराना था।

समुदाय सहभागिता आधारित शिक्षा

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य को अपने समाज पर निर्भर रहना पड़ता है। समुदाय की उत्पत्ति सम्भवतः मनुष्य की योग्यताओं के अनुसार उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के सन्दर्भ में ही हुई है। जिसका अर्थ क्रमशः एक साथ तथा सेवा करना से है। इस प्रकार समुदाय व्यक्तियों के ऐसे समूह से है जो एक साथ रहते हुये एक-दूसरे की आवश्यकताओं को समझकर उनकी पूर्ति करते हों। चूँकि मनुष्य एक विशाल क्षेत्र के सभी सदस्यों से सम्पर्क में नहीं रह सकता है। इस कारण समुदाय का सम्बन्ध एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र से होता है। समाज एक अमूर्त अवधारणा है। जबकि समुदाय मूर्त है इसे देखा जा सकता है।

मैकाइवर तथा पेज के मतानुसार, "जब किसी छोटे या बड़े समूह के सदस्य साथ-साथ इस प्रकार रहते हैं कि वे किसी विशेष हित में ही भागीदार न होकर सामान्य जीवन की मूलभूत दशाओं या स्थितियों में भाग लेते हों, तो ऐसे समूह को समुदाय कहा जाता है।" उन्होंने आगे कहा है कि, "समुदाय सामाजिक जीवन में ऐसा क्षेत्र है जिसमें सामाजिक सम्बद्धता (Social Coherence) की कुछ मात्रा पायी जाती है।

3.2.2 सामुदायिक शिक्षा (Community Education)

सामुदायिक विकास के शैक्षिक कार्य (Educational Functions of Community)

सामुदायिक शिक्षा एक दार्शनिक सम्प्रत्यय है। प्रत्येक समुदाय अपने सदस्यों की आवश्यकता के अनुसार उनके लिए शैक्षणिक व्यवस्था करता है। सामुदायिक के लिए शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। समुदाय विशेष बालकों की आवश्यकता, रूचि एक क्षमता को पहचानते हुये उन बालकों के शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए विभिन्न प्रकार की व्यवस्था करता है।

विलियम ए. ईगर के अनुसार मानव स्वभाव में से एक सामाजिक प्राणी हैं। अतः वर्षों से यह अनुभव किया गया है कि इनके व्यक्तिगत तथा सामूहिक क्रियाओं का विकास समुदाय द्वारा ही किया जा सकता है। शारीरिक विकास के लिए समुदाय अपने सदस्यों के लिए खेलकूद के मैदान तथा व्यायामशाला

NOTES

की व्यवस्था करता है। समुदाय में सभी लोग एक दूसरे की मदद के लिए तत्पर रहते हैं उनमें प्रेम, सहयोग और उदारता की भावना जाग्रत होती है। इससे विशेष योग्यता वाले बालकों का चारित्रिक एवं नैतिक विकास होता है। प्रत्येक व्यक्ति समुदाय में रहकर ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। समुदाय अपने सदस्यों के लिए समय समय पर साहित्यिक, सांस्कृतिक, ध ार्मिक, सामाजिक राजनैतिक एवं सामाजिक समारोहों का आयोजन करता है। इससे बालक रीति-रिवाज मूल्यों तथा मान्यताओं एवं सामाजिक समायोजन की शिक्षा ग्रहण करता है। इसके अतिरिक्त धार्मिक भावना के अनुरूप आध्यात्मिक विकास एवं संस्कारों का ज्ञान भी व्यक्ति समुदाय से ग्रहण करता है।

वंचित बालकों के पर्याप्त शैक्षिक अवसर प्रदान करने के लिए समुदाय निम्नलिखित कार्य करता है -

- **समाज में समुदाय की सहायक भूमिका**

स्कूलों की स्थापना – समुदाय अपनी संस्कृति के विकास तथा हस्तान्तरण के लिए विद्यालयों की स्थापना करता है। समुदाय बालक को औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान करता है। इन विद्यालय में समुदाय के सभी वर्गों को समान अवसर प्राप्त होते हैं-

विद्यालय उपरान्त कार्यक्रम– विद्यालयों की स्थापना के अतिरिक्त समुदाय अपने सदस्यों के लिए ऐसे भी केन्द्रों की स्थापना करता है जहाँ बालकों को स्कूल में दिये गये गृह कार्य के अलावा केन्द्र पर बालकों की शैक्षिक क्षमताओं में बढ़ोतरी के लिए मंच मनोरंजन की भी व्यवस्था होती है। समुदाय अपने सदस्यों के सहयोग से बालकों के अवकाश के समय का बेहतर सदुपयोग तथा सीखने के लिए प्रेरित करने के लिए ऐसे केन्द्रों की स्थापना करता है।

ज्ञान शिक्षा– समाज अपने सदस्यों की आवश्यकता, आवश्यकताओं एवं रूचियों के अनुसार विभिन्न प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रमों का आयोजन करता है। अतः शिक्षा को लचकदार एवं अपनाने योग्य उपागम ही समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समुदाय सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था करता है। यह सार्वभौमिक शिक्षा प्राप्त करने की ओर एक कदम है।

विद्यालय साझेदारी– समुदाय शिक्षा के उद्देश्यों का निर्माण करता है तथा उन्हें प्रत्येक के लिए विद्यालय के सहयोग प्राप्त करता है जन शिक्षण एवं

समुदाय के विभिन्न सदस्यों के लिए समुदाय एवं विद्यालय का सहयोग होना अत्यन्त आवश्यक है। शैक्षिक लक्ष्यों के प्राप्त करने के लिए समुदाय उचित कार्यक्रम का निर्माण करता है और उसके संचालन के लिए विद्यालयों को निरन्तर निर्देशित करता है।

सेवा अधिगम कार्यक्रम– यह एक प्रकार की शिक्षण विधि है जिसमें सामुदायिक सेवा के साथ-साथ शैक्षणिक कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है। इससे बालकों का सामाजिक तथा चारित्रिक विकास होता है। इस विधि की सहायता से बालकों की विद्यालय में रूचि बढ़ जाती है तथा वह नियमित रूप से विद्यालय जाना शुरू कर देता है। इस प्रकार के कार्यक्रमों के संचालन के सामुदायिक विकास के साथ-साथ बालकों की व्यक्तिगत तथा सामाजिक जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं।

स्वयं सेवा– विशेषज्ञ शैक्षिक व्यवस्था को सुधारने के लिए समुदाय की सहायता करना चाहते हैं। समुदाय को ऐसे लोगों की पहचान कर उन्हें प्रेरित करना चाहिए ताकि जरूरत मन्द बालकों की उत्तम शैक्षिक व्यवस्था बहाल की जा सके। स्वयं सेवकों की मदद से समुदाय बेहतर शैक्षणिक वातावरण उत्पन्न कर सकता है।

अर्न्तपीढोय क्रियायें– इस प्रकार की सेवाओं में समुदाय के गणमान्य तथा वृद्ध लोगों की सहायता ली जाती है। समाज से बुर्जुग सदस्य अपने अनुभवों एवं सहयोग से नवयुवकों को लाभान्वित कर सकते हैं। परिवर्तित शैक्षिक परिदृश्य में नैतिक शिक्षा, मूल्यों आदि संस्कारों का ज्ञान वर्तमान पीढ़ी को प्रदान करने के लिए समुदाय में ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। इससे दो पीढ़ियों के मध्य विचारधारा को समझने का अवसर मिलता है और पूर्व अनुभवों के आधार पर उज्जवल भविष्य की योजना का निर्माण किया जा सकता है।

● समुदाय का उत्तरदायित्व (Responsibilities of Community)

समुदाय के सभी सदस्य परस्पर सहयोग की भावना से एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। समुदाय के बेहतर संचालन के लिए सदस्यों में सहभागिता का गुण होना अत्यन्त आवश्यक है। समुदाय अपने व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम होता है। अपने सामान्य जीवन एक दैनिक कार्य-कलापों के संचालन में सहायता के लिए ही व्यक्ति आपस में जुड़कर समुदाय की

रचना करते हैं। समुदाय की अपने व्यक्तियों की हितों तथा आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए कुछ जिम्मेदारियाँ होती हैं।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. विशेष रूप से नेतृत्व के लिए मुद्दे और चुनौतियों का उल्लेख कीजिए।
2. विशेष जरूरत एवं तनाव का वर्णन कीजिए।
3. शिक्षक शिक्षा की वर्तमान ताकतों एवं कमजोरियों का उल्लेख कीजिए।
4. आईसीटी और निम्न स्तर की जानकारी का सीमित उपयोग समझाइये।
5. शिक्षा में भाषायी मुद्दे समझाइये।
6. सामुदायिक शिक्षा से आप क्या समझते हैं? समाज में इसकी सहायक भूमिका स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. समावेशी विशेष स्कूलों की पूरकता की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
2. समुदाय से आप क्या समझते हैं?
3. समुदाय का उत्तरदायित्व समझाइये।

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY
Raja Bhoj Marg (Kolar Road), Bhopal - 462016,
Phone : 91-755-2424660, Fax : 91-755-2424640
Website :www.bhojvirtualuniversity.com